विनय-पिटक

[१-भिक्खु-पातिमोक्ख, २-भिक्खुनी-पातिमोक्ख, ३-महावग्ग, ४-चुल्लवग्ग]

अनुवादक

राहुल सांकृत्यायन

प्रकाशक

महाबोधि सभा

सारनाथ (बनारस)

बुद्धाब्द

प्रथम संस्करण | २४७८

१५०० | १९३५ ई०

प्रकाशक
ब्रह्मचारी देवप्रिय, बी० ए०
प्रधान-मंत्री, महाबोधि-सभा
सारनाथ (बनारस)

मुद्रक
महेन्द्रनाथ पाण्डेय
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, प्रयाग

समर्पण

जीवनकी उषाके छिटकतेही, पत्नीके लिए कही जाती
जिनके पर्यटन और शिकारकी कथाओंने मनपर
अमिट छाप छोड़ा; जिन्होंने स्वजन-वियोजक
चिरप्रोषित नातीको एक बार देख लेनेकी
अपूर्ण कामनाके साथ संसारसे
प्रस्थान किया; उन्हीं स्वर्गीय
मातामह श्री० रामशरण
पाठककी कृतज्ञता-
पूर्ण स्मृतिमें

ॐ

प्रकाशकीय निवेदन

हिन्दी पाठकोके सम्मुख आज महाबोधि ग्रन्थमालाके तृतीय पुष्पके रूपमे, विनय-पिटकके हिन्दी अनुवादको लेकर उपस्थित होनेमे हमे बहुत प्रसन्नता हो रही है। अगले सालके लिए 'दीघ-निकाय'का अनुवाद तैयार हो रहा है। इनके अतिरिक्त हम और भी कितने ही प्रसिद्ध बौद्ध-ग्रन्थोके हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना चाहते हैं। हमारे काममे जिस प्रकारसे कितने ही सज्जनोने आर्थिक सहायता और उत्साह प्रदान किया है उससे हम उत्साहित जरूर हुए हैं, किन्तु, इस कामको अच्छी तौरपर सफलताके साथ चलानेके लिये हमे और सहायताकी आवश्यकता है। आप दो प्रकारसे हमारी सहायता कर सकते हैं, (१) एक तो आठ आने भेजकर हमारे स्थायी ग्राहक बन जावे, इससे हमारी उत्साह-वृद्धि भी होगी तथा आपको पुस्तक पौने मूल्यमे मिल जावेगी, (२) हमारे राजा महाराजा और लक्ष्मीपात्र द्रव्यसे हमारी सहायता करे।

ग्रन्थमाला के द्वितीय पुष्प मज्झिम-निकाय के प्रकाशित हो चुकने पर, जिन और निम्न-लिखित दानियोने हमे उसके मुद्रण-व्यय भारको हलका करनेमे सहायता दी है, हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं—

१—महाराज भूटान	८००)
२—श्रीमती ई० हेवावितारने (लका)	५००)
३—महामान्य सर तेज बहादुर सप्रू (प्रयाग)	२५०)
४—डा० कैलाशनाथ काटजू	२००)
५—श्रीमती रूपाशी वाला बरुआ	१००)
६—श्री० योगेन्द्रलाल बरुआ	१००)
७—श्री० यू० थ्विन्	१००)

विनय-पिटकके मुद्रणमे भी हमे निम्नलिखित सज्जनोने द्रव्यकी सहायता दी है—

१—सेट युगल किशोर बिडला	५००)
२—श्री० जोजेफ ऐल्स (लका)	१००)
३—श्री० आर० एस० पडित (प्रयाग)	३०)

२४–२–३५

विनम्र
(ब्रह्मचारी) देवप्रिय
प्रधान मन्त्री, महाबोधि सभा
सारनाथ (बनारस)

प्राक्कथन

मज्झिम-निकायके छपते वक्त, मैंने इस वर्ष विनयपिटकका अनुवाद करनेकी बात लिखी थी। अबकी बार सस्कृत ग्रथोकी खोजमे मुझे तिब्बत आना पळा। मै जानता था, कि यहाँ खोजके काममे ही बहुत समय लग जायेगा, इसलिये तिब्बतके भीतर (डो-मो=छुम्बी उपत्यकामे) पहुँचते ही मैंने अनुवादके काममे हाथ लगानेका निश्चय कर लिया। हमारे खच्चरवालेका घर डो-मोके पद्-मो-गड गॉवमे था। २७ अप्रैलको वही विश्राम करते वक्त अनुवाद प्रारम्भ किया गया। सारा अनुवाद २७ दिनोमे हुआ, जिसका विवरण इस प्रकार है—

			स्थानका नाम
अप्रैल	२७	१ दिन	पद्-मो-गड
मई	२–४	३ .	फ-रि
..	१२	१ ..	ग्या-चे
	२१–२५	५	ल्हासा
.	२९–३१	३	..
जून	१,२	२ .	..
..	४–६	३	..
	८,९	२	
.	११–१७	७	
		२७	

बुद्धचर्याका अनुवाद ६८ दिनमे समाप्त हुआ था, मज्झिम-निकायका ३८ दिनोमे, और अबकी बार इस विनय-पिटकका सिर्फ २७ दिनोमे। मेरे मित्र अनुवादकी सभी त्रुटियोको इस शीघ्रताके कारण बतलाते है, यद्यपि उसकी अधिक जिम्मेवारी कामके नयेपन और मेरी अल्पज्ञतापर अधिक है। तो भी इस ग्रथमे कुछ त्रुटियोके दूर करनेका प्रयत्न किया गया है।

इस अनुवादमे श्रीराजनाथ, एम० ए० की द्रुतगामिनी लेखनीने बहुत सहायता की है। अबकी बार अपनी परीक्षा देकर वह ल्हासाकी यात्रा करने आये थे। वह कुछ पत्रोको छोळ भिक्खु-पातिमोक्ख, भिक्खुनी-पातिमोक्ख और महावग्ग सारा ही, तथा चुल्लवग्गके तीसरे स्कन्धकके कुछ अश तकको लिखकर ७ जूनको भारत लौट गये। श्रीराजनाथका इस सहायताके लिये कृतज्ञ होना जरूरी है। इसके साथ ही ल्हासाकी छु-स्त्रिन्-शर् कोठीके स्वामी साहु ज्ञानमान और साहु पूर्णमानने भी निवास और भोजनका उत्तम प्रबध करके कम सहायता नही पहुँचाई है, इसलिये उनके लिये भी कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

इस वर्ष 'दीघ-निकाय'का अनुवाद करना था। उसके कितने ही सूत्रोका अनुवाद मैं पहिले कर चुका था, बाकीका अनुवाद मेरे कनिष्ट भाई भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए० ने कर डाला है। अबकी गर्मियोमे जापानमे रहते वक्त, उस अनुवादकी आवृत्ति होगी। भिक्षु काश्यप और श्री कृष्णदेव, बी० ए० ने परिशिष्ट तैयार करनेमे बहुत सहायता की है। और उन्होने तथा पण्डित, उदयनारायण त्रिपाठी, एम० ए० और भदन्त आनन्दने प्रूफ-सशोधनमे बहुत सहायता की है।

भदन्त आनन्द कौसल्यायनने अपनी प्रतिज्ञानुसार अबकी साल १०० जातक-कहानियोका अनुवाद कर डाला है, और ग्रथ प्रेसमे है। आशा है चार और भागोमे वह जातकोको हिन्दीमे ला देगे।

ल्हासा
७-७-३४

राहुल साकृत्यायन

भूमिका

बुद्धके उपदेशोको तीन पिटकोमे बँटा कहा जाता है। यथार्थमे मात्रिकाओको छोळ शेष अभिधर्मपिटक पीछेका है, और इस प्रकार बुद्धके कथित उपदेशो और नियमोके लिये हमे सुत्त और विनय पिटकोकी ओर ही देखना पळेगा। चुल्लवग्गके पचशतिका स्कधक (पृष्ठ ५४८)मे पाठक सिर्फ धर्म (=सुत्त) और विनयके ही सगायनकी बात पायेगे। सुत्तपिटकके ग्रथोके बारेमे मैने धम्मपदके अनुवादके समय कुछ कहा है। यहाँ विनय-पिटकके बारेमे कुछ विशेष परिचय देना अनावश्यक न होगा।

विनय (=Discipline) कहते है नियमको। चूँकि इस पिटकमे भिक्षु-भिक्षुणियोके आचार-सबधी नियम तथा उनके इतिहास और व्याख्याओको जमा किया गया है, इसलिये इसका नाम विनयपिटक यथार्थ ही है।

चुल्लवग्गके सप्तशतिका स्कधक (पृष्ठ ५४९)से मालूम है कि बुद्ध-निर्वाणके १०० वर्ष बाद बौद्ध भिक्षु दो निकायो (=सम्प्रदायो)मे विभक्त हो गये—प्राचीन बातोके दृढ पक्षपाती स्थविर कहलाते थे, और विनय-विरुद्ध कुछ नई बातोके प्रचार करनेवाले महासाघिक। पालीकी कथावत्थु-अट्ठकथा, दीप-वस, महावस तथा कुछ और ग्रथोके अनुसार बुद्ध-निर्वाणके २२० वर्षो बाद सम्राट् अशोकके समय महासाघिको और स्थविरोमे फिर कितने ही छोटे मोटे मतभेद होकर १८ निकाय हो गये। कथावत्थु-अट्ठकथाके अनुसार यह शाखाभेद इस प्रकार है—
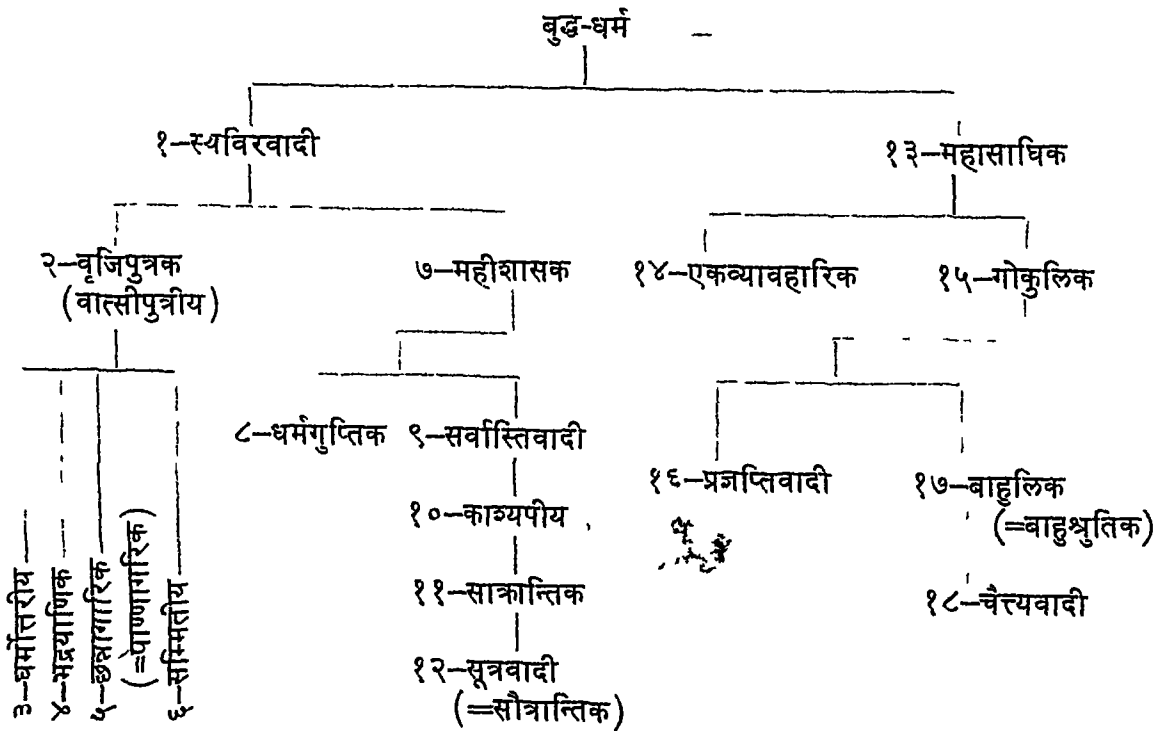
चीनभाषामे अनुवादित भदन्त वसुमित्र-प्रणीत अष्टादशनिकाय ग्रथके अनुसार यह अठारह शाखा-भेद इस प्रकार है—

बुद्ध-धर्म

- १–स्थविरवादी
  - २–हैमवत
  - ३–वात्सीपुत्रीय
  - ४–धर्मोत्तरीय
  - ५–भद्रयाणीय
  - ६–सम्मितीय
  - ७–पाण्णागारिक
  - ८–सर्वास्तिवादी
    - ९–महीशासक
      - १०–धर्मगुप्त
    - ११–काश्यपीय
    - १२–सौत्रान्तिक
- १३–महासाधिक
  - १४–शि-चि-लुन (=प्रज्ञप्तिवादी?)
    - १५–चैतीय
  - १६–लोकोत्तरवादी
  - १७–एकव्यावहारिक
    - १८–गोकुलिक
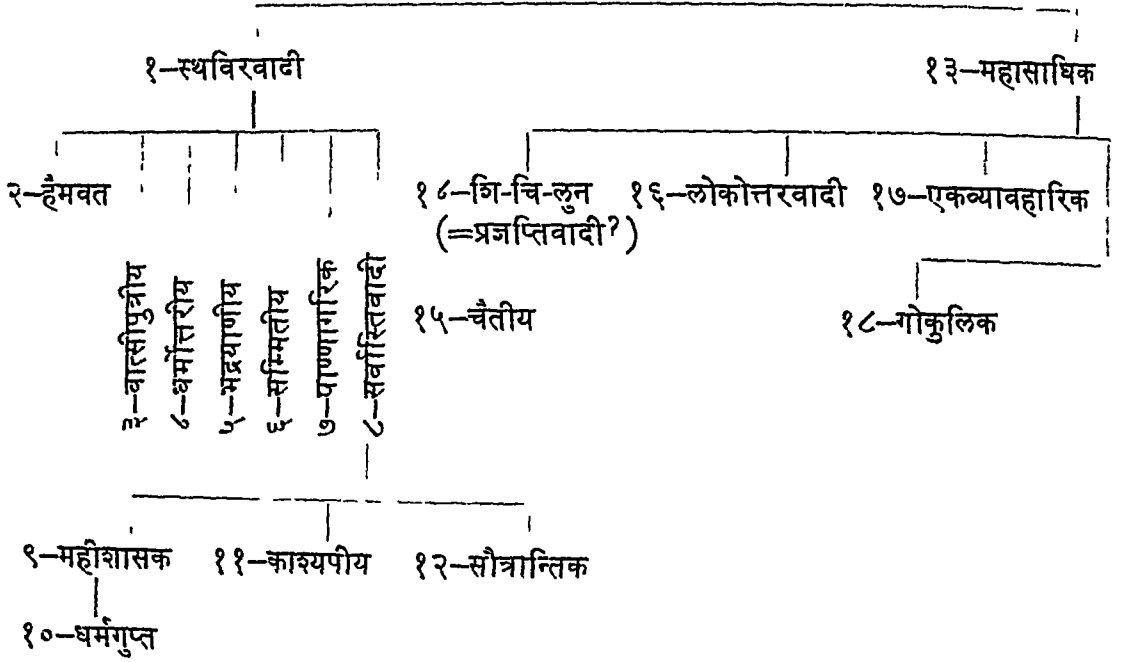
यद्यपि दोनो परम्पराओमे भेद है, तो भी इन पुराने निकायोके अठारह भेदको सभी सम्प्रदायो और देशोके बौद्ध ग्रथ मानते है। ईसाकी चौथी पाँचवी शताब्दीमे महायानके प्रावल्यके पूर्व भारत और वृहत्तर भारतमे कही न कही सभी निकायोके अनुयायी मिलते थे, जिनमे दक्षिण भारतमे सम्मितीय और चैत्यवादी, लकामे स्थविरवादी तथा उत्तर भारतमे सर्वास्तिवादी प्रधान स्थान ग्रहण करते थे। १८ निकायोमे सबके सूत्र, विनय और अभिधर्मपिटक भी थे, जिनमे कितनी ही जगहोमे भेद होनेपर भी वह महायान-सूत्रोकी अपेक्षा आपसमे बहुत अधिक सादृश्य रखते थे। उन निकायोके नाशके साथ उनके पिटकोका भी सर्वदाके लिये लोप हो गया है, सिर्फ महासाधिक, सर्वास्तिवादी तथा एकाध औरके कुछ ग्रथ चीन और तिब्बतकी भाषाओमे अनुवादित हो अब भी मिलते है।

सर्वास्तिवाद और स्थविरवादके विनय-पिटकोंकी तुलना

जिस अनुवादको हम पाठकोके सामने रखते है, वह स्थविर-निकायका है। स्वर्गीय फ्रेंच विद्वान सेनार्ने लोकोत्तर-वादियोके म हा व स्तु नामक विनयग्रथको सस्कृतमे छपवाया है, किन्तु वह लोकोत्तर-वादियोके विनयपिटकका एक अश मात्र ही है। हाँ, भोटभाषामे अनुवादित मूल सर्वास्तिवादियोका विनयपिटक सम्पूर्ण है, उससे तुलना करनेपर हमे दोनोमे बहुत समानता मिलती है। यद्यपि आजकल पाली विनयपिटकमे प रि वा र[1]को भी शामिल किया जाता है, किन्तु उसके देखनेहीसे मालूम होता है, वह वि भ ग और ख न्ध क ग्रथोका सक्षेप मात्र है, और वह पढनेवालोकी सुगमताके लिये वादमे बनाया गया। विनयका विभाग स्थविरवादीय पिटकमे इस प्रकार है—

---

[1] प रि वा र के अनुसार लंकामें विनय-परम्परा—
१—बुद्ध
२—उपालि
३—दासक
४—सोणक

१—विभग { १—भिक्खु-विभग
२—भिक्खुनी-विभग

२—खन्धक { १—महावग्ग
२—चुल्लवग्ग

मूल सर्वास्तिवादके विनय-पिटकमे ग्रथोका विभाग इस प्रकार है—

१—विभग { १—भिक्षु-विभग
२–भिक्षुणी-विभग

२—विनय-वस्तु { १—विनय-महावस्तु
२—विनय-क्षुद्रकवस्तु

५—सिग्गव
६—मोग्गलिपुत्त तिस्स
७—महिक
८—अरिट्ठ
९—तिस्सदत्त
१०—काल सुमन (१)
११—दीघ सुमन
१२—काल सुमन (२)
१३—नागत्थेर
१४—बुद्धरक्खित
१५—तिस्स
१६—देव
१७—सुमन (१)
१८—चूलनाग
१९—धम्मपालित
२०—खेम
२१—उपतिस्स
२२—फुस्स देव (१)
२३—सुमन (२)
२४—फुस्स (पुप्फ) (१)
२५—महासीव
२६—उपालि (२)
२७—महावग्ग
२८—अभय
२९—तिस्स (२)
३०—पुस्स (पुप्फ) (२)
३१—चूल अभय
३२—तिस्स (३)
३३—फुस्स देव (२) (चूलदेव)
३४—सिव

इसके देखनेसे मालूम होगा, कि विभगके सबधमे तो दोनो निकाय एक राय रखते है, किन्तु दूसरे भागके लिये स्थविरवादी ख न्ध क नाम देते है, और मूलसर्वास्तिवादी वि न य व स्तु। लेकिन उनके वर्णित विषयोंको देखनेमें मालूम होगा कि ख न्ध क और वि न य-व स्तु दोनोके विस्तार और सक्षेप का ख्याल छोळ देनेपर, वह एक ही है। खन्धककी भाँति विनय-वस्तुमे भी हर एक विनय-नियमके बननेका इतिहास दिया हुआ है। पालीमे भी पे त व त्थ, वि मा न व त्थु ग्रथोके वत्थु नामकरण उनमे कथाओके सग्रह होनेके कारण हुए है। धम्मपदकी अट्ठकथामे भी कथाके लिये व त्थु (=वस्तु) शब्दका प्रयोग बराबर हुआ है। इस प्रकार मूलसर्वास्तिवादियोका वि न य व स्तु (=विनयकी कथाएँ), महावस्तु, क्षुद्रकवस्तु नाम बिल्कुल ही युक्तियुक्त है। इसके विरुद्ध स्थविरवादियोका ख न्ध क, तथा महावग्ग, चुल्लवग्ग नाम उतने सार्थक नही है। सच तो यह है, कि पालि-विनयपिटकवालोको भी ख न्ध क का विनय-वस्तु नाम होना उसी तरह ज्ञात था, जिस तरह सुत्तपिटकके नि का यो का आ ग म नाम होना। चु ल्ल व ग्ग के बारहवे सप्तशतिका-स्कधक (पृष्ठ ५५७)मे इसीलिये चा म्पे य क-स्क ध क की जगह चा म्पे य क-वि न य-व स्तु कहा गया है। वहीसे यह भी मालूम होता है, कि विनयपिटकके प्रथम भाग विभगका पुराना नाम सु त्त-वि भ ग था। मूलसर्वास्तिवादके विनयमे पहिले भागको प्रातिमोक्ष-सूत्र और विभग इन दो भागोमे बाँटा गया है। भोटग्रथ-सम्पादकोने विभगको प्रातिमोक्ष-सूत्रका भाष्य (=देऽि-दोन्-र्नम-छेर्-बृशद्-प) कहा है। वस्तुत-विभगका शब्दार्थ भी (अर्थ-)विभाजित करना ही होता है। चुल्लवग्गके सप्तशतिका स्कधकमे आये सुत्त-विभगमे मतलब प्रातिमोक्ष-सूत्रोका भाष्य ही है। मूलसर्वास्तिवाद-विनय-पिटकमे हम प्रातिमोक्ष-सूत्रोको अलग पाते है, किन्तु पाली विनयपिटकमे पातिमोक्खपर अलग अट्ठ-कथा होनेपर भी उसे पिटकके भीतर सम्मिलित नही किया गया, कारण यह था, कि वि भ ग मे वह मूल सुत्त भी आते है। मैने अपने इस अनुवादमे सुत्त-विभगके भाष्यवाले अशको छोळ, सिर्फ प्रातिमोक्ष-सूत्रोको ही लिया है।

प्रातिमोक्ष-सूत्र भिक्षु प्रातिमोक्ष और भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष इन दो भागोमे बँटे हुए है। प्रातिमोक्ष मे आये नियमोकी सख्या मूलसर्वास्तिवाद और स्थविरवादमे इस प्रकार है—

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	मूलसर्वास्तिवाद
१—पाराजिक	४	४
२—सघादिसेस	१३	१३
३—अ-नियत	२	२
४—निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३०
५—पाचित्तिय	९२	९०
६—पाटिदेसनिय	४	४
७—सेखिय	७५	११२
८—अधिकरण-समथ	७	७
	२२७	२६२

भिक्षुणी-नियम	स्थविरवाद	मूलसर्वास्तिवाद
१—पाराजिक	८	८
२—सघादिसेस	१७	२०
३—निस्सग्गिय पाचित्तिय	३०	३३
४—पाचित्तिय	१६६	१८०
५—पाटिदेसनिय	८	११

भिक्षु-नियम	स्थविरवाद	
६—सेखिय	७५	११२
७—अधिकरण-समथ	७	७
	३११	३७१

इसमें मालूम होगा, कि स्थविरवादके विनयकी अपेक्षा मूलसर्वास्तिवादके विनयमें भिक्षुओंके ३५ ओर भिक्षुणियोंके ६० नियम अधिक हैं। खन्धक और विनयवस्तुके मिलानेपर भी मूलसर्वास्तिवादमें अधिक परिच्छेद मिलते हैं। जिस प्रकार स्थविरवादियोंका खन्धक महावग्ग और चुल्लवग्ग (=क्षुद्रक-वर्ग)में बँटा है, वैसे ही मूलसर्वास्तिवादियोंका भी महावस्तु, क्षुद्रकवस्तु (=चुल्ल-वत्थु) दो भागोंमें बँटा है। क्षुद्रकवस्तुके बाद आये दो उत्तरग्रंथ तो क्षुद्रकवस्तुके ही परिशिष्ट हैं। पाली महावग्ग, चुल्लवग्ग और महावस्तुके परिच्छेदोंकी तुलना इस प्रकार है—

		महावस्तु
महावग्ग	१—प्रव्रज्यास्कन्धक	१—प्रव्रज्यावस्तु
	२—उपोसथस्कन्धक	२—उपोसथवस्तु
	३—वर्षोपनायिकास्कन्धक	४—वर्षावस्तु
	४—प्रवारणास्कन्धक	३—प्रवारणा वस्तु
	५—चर्मस्कन्धक	५—चर्मवस्तु
	६—भैषज्यस्कन्धक	६—भैषज्यवस्तु
	७—कठिनस्कन्धक	७—चीवरवस्तु
	८—चीवरस्कन्धक	८—कठिन-आस्थान-वस्तु
	९—चम्पेयवस्तुस्कन्धक	९—कौशाम्बकवस्तु
	१०—कौशाम्बकस्कन्धक	१०—कर्मवस्तु
चुल्लवग्ग	१—कर्मस्कन्धक	
	२—पारिवासिकस्कन्धक	११—पारिवासिकवस्तु
	३—समुच्चयस्कन्धक	१२—पुद्गलवस्तु
	४—शमथस्कन्धक	१३—शमथवस्तु
	५—क्षुद्रकवस्तु[1]स्कन्धक	१६—अधिकरण-वस्तु
	६—शयन-आसनस्कन्धक	१५—शयनासनवस्तु
	७—सघभेदस्कन्धक	१७—सघभेदवस्तु
	८—व्रतस्कन्धक	
	९—प्रातिमोक्षस्थपनस्कन्धक	१८—प्रातिमोक्ष स्थपन वस्तु

इस प्रकार चुल्लवग्गके अन्तिम ३ स्कधकोंको छोळ, बाकी सभी स्कन्धक महावस्तुमें आ गये हैं। चुल्लवग्गके अवशिष्ट स्कधक, क्षुद्रक-वस्तु[2]में आ जाते हैं, ओर इनके अतिरिक्त वहाँ बहुतसी और बातें हैं, जो कि पाली-विनय-पिटकमें नहीं मिलतीं।

---

[1]इसमें कथायें छोटी छोटी हैं, इसलिये इसे क्षुद्रकवस्तु-स्कधक कहा गया है।

[2]मूलसर्वास्तिवादके विनय-पिटकका भोट-भाषानुवाद १२ पोथियो (ऽदुल्-व क, ख, ग, ङ, च, छ, ज, ञ, त, थ, द, न, प)में हुआ है जिनमें—

महावस्तु क, ख, ग, ङ,

मूल सर्वास्तिवादकी अपेक्षा सक्षिप्त होना भी पाली-विनय-पिटकके अधिक प्राचीन होनेमे प्रमाण है।

विनय-पिटककी टीका

अशोकके समय सर्वास्तिवादका केन्द्र मगधमे नालदा थी, पीछे मथुराके पास उरुमुड पर्वत (=गोवर्धन) उसका केन्द्र बना। सभवत इसी समय इसका पिटक सस्कृतमे हुआ। मथुरावाले सर्वास्तिवाद या आ र्य स र्वा स्ति वा द की पुस्तक अशोकावदान इस वक्त उपलब्ध है। मथुरामे जब शकोकी प्रधानता हो गई, और आर्यसर्वास्तिवाद उनका विशेष श्रद्धा-भाजन हो गया, उसी समय उनका केन्द्र कश्मीर-गधार चला गया, जहाँपर कि शक-साम्राज्यका केन्द्र था। इस तीसरे सर्वास्तिवादका नाम मू ल - स र्वा स्ति वा द है। सम्राट् कनिष्कके समय (ईसाकी प्रथम शताब्दीमे) कुछ मतभेदोके मिटानेके लिये विद्वानोकी एक सभा की गई, जिसमे त्रिपिटकके लेखबद्ध करनेके अतिरिक्त तीनो पिटकोपर वि भा षा नामकी टीकाये लिखी गई। इन्हीके कारण पीछे सर्वास्तिवादयोका नाम वै भा षि क पळा। (विनय-विभाषा का अनुवाद सिर्फ चीन-भाषामे मिलता है)। यह टीका उन परम्पराओपर अवलम्बित है, जो कि तब तक गुरु-शिष्य क्रमसे चली आती थी।

स्थविर-वादियोका विनय पिटक, जो कि पाली-भाषामे है, सम्राट् अशोकके पुत्र और पुत्री महेन्द्र और सघमित्राके साथ भारतसे सिहल (लका) पहुँचा। तबसे अब तक लका स्थविरवादका केन्द्र है। इसमे आई कथाओकी प्रामाणिकता साँची, कनेरी आदिके स्तूपोसे निकली अशोक कालीन आचार्यो की अस्थियोसे हो चुकी है। इसके विनय पिटककी टीकाये=अट्ठकथाये पहिले कई थीं। कु रु न्दि-अट्ठकथा, म हा प च्च रि -अट्ठकथा, स खे प-अट्ठकथा, अ न्ध क-अट्ठकथा, म हा -अट्ठकथा आदि कितनी ही अट्ठकथाये बनी थी, जिनमे कुछ सिहलकी तत्कालीन प्राकृत भाषामे थी। पाँचवी शताब्दीके आरम्भमे भारतीय आचार्य बुद्धघोषने इन्ही अट्ठकथाओकी सहायतासे पाली भाषामे अपनी अट्ठकथाये लिखी, जिनकी उपयोगिता अधिक होनेके कारण पहिलेकी अट्ठकथाये पीछे लुप्त हो गई। बुद्धघोष-विरचित विनय-अट्ठकथाका नाम स म न्त पा सा दि का है। मूल विनयकी भाँति यह अट्ठकथा भी बहुतसी ऐतिहासिक सूचनाये देती है। अशोकके समयकी बौद्ध सभा और सिहलमे धर्म-प्रचारके बारेमे तो इसमे सविस्तर वर्णन मिलता है (इसे मै अपनी बु द्ध च र्या के अन्तमे अनुवादित कर चुका हूँ)। इसमे आये सिहलके आचार्यो और तत्कालीन राजाओके नामसे मालूम होता है, कि पुरानी अट्ठकथाओके निर्माणका समय ईसाकी तीसरी शताब्दीसे पूर्व ही पूरा हो चुका था।

पाठ-परिवर्तन

बुद्ध-निर्वाणसे (४८३ ई० पूर्व)से लेकर राजा व ट्ट गा म नी (२९-१ ई० पूर्व)के काल तक स्थविरवादियोका त्रिपिटक बराबर कठस्थ ही चला आया था। वट्टगामनीके समय लकामे त्रिपिटक लेख-बद्ध किया गया। इन चार सौसे अधिक वर्षो तक कठस्थ ले आनेका प्रभाव एक तो यह पळा, कि मूल त्रिपिटककी भाषा, जो पहिले मागधी थी—का उच्चारण बिगळकर महाराष्ट्रीसा हो गया। वस्तुत यह स्वाभाविक ही था। सिहलके प्रथम प्रवासी गुजरात (=लाट)से वहाँ पहुँचे थे। पुरानी महाराष्ट्रीकी

भिक्षु-प्रातिमोक्ष और विभग च, छ, ज, झ
भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष और विभग त
[१]क्षुद्रकवस्तु थ, द
उत्तर-ग्रथ न, प

भाँति ही उनकी भाषामे भी श का पूरा बायकाट था, और र को ल मे बदल देनेका रवाज न था। इसके विरुद्ध स की जगह भी श, तथा र के स्थानपर ल (जैसे राजाका लाजा) कहना मागधी भाषाके विशेष लक्षण थे। महेन्द्रके सिहल-आगमन (२४७ ई० पू०)से प्राय ढाई सौ वर्ष तक त्रिपिटकके कठस्थका भार सिहलके गुजराती-प्रवासियोको मिला था, जिनके उच्चारण मागधीसे बिल्कुल ही उल्टे थे, यही कारण है, जो पलिबोध (=परिबोध) आदि कुछ शब्दोको छोळ जिनमे मागधी व्याकरणके अनुसार र के स्थानपर ल कायम रक्खा गया, मागधीकी सभी विशेषताये लुप्त हो गई, और एक प्रकारसे वर्तमान पाली त्रिपिटक मागधी न होकर प्राचीन गुजराती भाषाका त्रिपिटक है।

इसके कठस्थ ले आनेका एक और प्रभाव पळा। हाँ, उस परिवर्तनका स्थान अधिकतर सिहल न होकर भारत था, जहाँपर कि बुद्ध-निर्वाणके २३६ वर्षो बाद तक वह रहा था। यह प्रभाव था याद करने के सुभीतेके लिये बहुतसे एकसे अर्थवाले पाठोको बिल्कुल उन्ही शब्दोमे दुहराना।

मूल बुद्ध-वचन

त्रिपिटकमे कुछ गाथाओके प्रक्षिप्त होनेकी बात तो पुराने आचार्योने भी स्वीकार की है[1]। मात्रिकाओको छोळ सारा अभिधर्म-पिटक ही पीछेका है, इसीलिये जिस प्रकार सुत्त-पिटक और विनय-पिटकमे स्थविरवादियो और सर्वास्तिवादियोके पिटकोके पाठकी समानता है, वैसा उसमे नही। मे अपने दूसरे लेख म हा या न बौ द्ध ध र्म की उ त्प त्ति[2] मे यह भी लिख चुका हूँ, कि अभिधर्म-पिटकका एक ग्रथ-क था - व त्थु का अधिकाश अशोकके समयमे न लिखा जाकर बहुत पीछे ईसा पूर्व प्रथम शताब्दीके वै पु ल्य वा दी आदि निकायोके विरुद्ध लिखा गया है। चुल्लवग्गके प च श नि का और स प्त श ति का स्कधकोमे भी ध र्म (=सुत्त) और वि न य की ही बात आती है, यह भी उक्त बातकी पुष्टि करती है।

फिर प्रश्न होता है, क्या सुत्त-पिटक और विनय-पिटक सभी बुद्ध-वचन है? सुत्त-पिटकमे म ज्झि म - नि का य के घो ट मु ख सुत्तन्त (९४)की भाँति कितने तो स्पष्ट ही बुद्धनिर्वाणके बादके है। खु द्द क - नि का य के प टि स म्भि दा म ग्ग और नि द्दे स जैसे कुछ ग्रथ तो अधिकाशमे सिर्फ पहिले आये सूत्रोके भाष्य मात्र है। सुत्त-पिटकमे आई वह सभी गाथाये, जिन्हे बुद्धके मुखसे निकला उ दा न नही कहा गया, पीछेकी प्रक्षिप्त मालूम होती है। इनके अतिरिक्त भगवान् बुद्ध और उनके शिष्योकी दिव्य शक्तियाँ और स्वर्ग-नर्क देव-असुरकी अतिशयोक्ति पूर्ण कथाओको भी प्रक्षिप्त माननेमे कोई बाधा नही हो सकती। इन अपवादोके साथ सक्षेपमे कहा जा सकता है, कि सुत्त-पिटकमे दी घ, म ज्झि म, स यु त्त, अ गु त्त र चारो निकाय, तथा पाँचवे खुद्दक-निकायके खु द्द क पा ठ, ध म्म प द, उ दा न, इ ति वु त्त क, और सुत्त-निपात यह छ ग्रथ अधिक प्रामाणिक है। बल्कि खुद्दक निकायके इन ग्रथोमे अधिकतर पहिले चारो निकायोके ही सूत्रो और गाथाओके आनेसे, तथा कितने ही ऐतिहासिक लेखोमे च तु नि का यि क शब्द आनेसे तो दी घ, म ज्झि म, स यु त्त और अ गु त्त र इन चार निकायोको ही वह स्थान देना अधिक युक्तियुक्त मालूम होता है। इन चारोमे भी म ज्झि म - नि का य अधिक प्रामाणिक है।

---

[1] महावग्ग, महाक्खन्धककी अट्ठकथामें ने र ज रा य भ ग वा आदि गाथाओको पीछे डाली (=पच्छा पक्खित्ता) कहा गया है।

[2] गगा-पुरातत्त्वाक पृष्ठ २१०।

विनय-पिटक

बु द्ध च र्या के प्राक्कथनमे मैने लिखा था—"इस पुस्तकमे कुछ जगह एक ही घटनाको अ ट् ठ क था वि न य, और सू त्र तीनोके शब्दोमे दिया है, उसके देखनेमे मालूम होगा, कि सू त्रो की अपेक्षा वि न य मे अधिक अतिशयोक्ति ओर अलौकिकतासे काम लिया गया है, और अ ट् ठ क था तो उस बातमे विनयमे बहुत आगे बढी हुई है। और इसीलिये इसके ही अनुसार इनकी प्रामाणिकताका तारतम्य मान लेनेमे कोई हानि नही है।" इस प्रकार प्रामाणिकतामे विनय-पिटक सुत्त-पिटकमे दूसरे नवरपर है। विनय-पिटकमे भी प रि वा र के पीछे लिखे जानेकी बात मै पहिले कह चुका हूँ। वि भ ग ओर ख न्ध क मे विभग तो पातिमोक्ख-सुत्तोपर व्याख्या मात्र है, इस व्याख्यामे भी प ड् व र्गी य भिक्षुओके नामकी बहुत सी नजीरे तो सिर्फ उन अपराधोका उदाहरण देने मात्रके लिये गढी गई जान पळती है। यद्यपि ऐसी नजीर ख न्ध क मे भी पाई जाती है, किन्तु वहाँ उनकी सख्या अपेक्षाकृत कम है। इस प्रकार विनय-पिटक का सबसे अधिक प्रामाणिक अग भिक्षु-भिक्षुणी-प्रातिमोक्ष (० पातिमोक्ख) है, फिर खन्धकका नवर आता है, और वि भ ग उसके वाद। ख न्ध क मे भी पातिमोक्खमे आये, पा रा जि क[1] से खि य आदिके कितने ही नियम फिरसे दुहराये गये है। खन्धकके म हा व ग्ग, चु ल्ल व ग्ग पहिले एक ही ग्रन्थके रूपमे थे, जैसे कि वह मूल सर्वास्तिवादियोके महावस्तुमे मिलते है, सिर्फ प च श ति का और सप्त श ति का जैसे कुछ अध्याय पीछेके जोळे है।

बुद्धके सम्बन्धमे

ख न्ध क मे बुद्धके जीवनके कितने ही अश ही नही आते, बल्कि कही कहीं तो भगवान्‌के एक स्थानसे दूसरे स्थान, वहाँसे तीसरे स्थान—इस प्रकार छ छ सात सात स्थानो तककी यात्राका वर्णन आता है। किन्तु इन यात्राओको सीधे तोरपर जीवनके लिये इस्तेमाल नही किया जाता, क्योकि कितनी ही जगह बुद्धके जीवनके बहुत पीछेकी घटनाये नजीर देनेके लिये पहिले रख दी गई है[2], और दूसरे प्रत्येक स्कधकका विनय अलग होनेसे वहाँ यात्राका क्रम टूटा हुआ है। तो भी उनसे सहायता अवश्य मिल सकती है।

विनय पिटककी उपयोगिता

विनय-पिटक भिक्षुओके आचार नियमोके जाननेके लिये तो उपयोगी है ही, साथ ही वह पुराने अभिलेखो तथा फाहियान, इ-चिङ् आदिके यात्रा विवरणोको समझनेके लिये भी बहुत सहायक है। यही नही विनयमे तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक अवस्थाकी सूचक बहुत सी सामग्री मिलती है। यदि ची व र-स्क ध क, च र्म-स्क ध क और भि क्षु णी वि भ ग मे आये वस्त्र-आभूषण आदिके नामोको हम साँ ची की मूर्तियोसे मिलाकर पढे, तो हम उत्तरी भारतके स्त्री पुरुषोकी तत्कालीन वेष-भूषाका बहुतसा ज्ञान पा सकते है। शमथ-स्कधकमे आई श ला का ग्रहणकी प्रक्रिया तो वस्तुत समकालीन लिच्छवि गणतत्रके वोट लेने आदिकी प्रक्रियाकी नकल मात्र है। आजकल भी हमारी कौसिलोमे किसी प्रस्तावको पेश करने, बहस करने, अन्तमे सभापति द्वारा सम्मति लेनेके खास नियम है। विनय-पिटकके देखनेसे मालूम होगा कि भिक्षु-सघ (जो कि वस्तुत उस समयके गणतत्रोकी नकल थी) मे भी प्रस्ताव पेश करते वक्त एक खास आकारमे पेश किया जाता था, जिसे ज्ञ प्ति कहते थे। ज्ञप्तिके बाद सदस्योको

---

[1] महावग्ग १§४।८ (पृष्ठ १३५)।

[2] देखो पृष्ठ २८९ में पाटलिग्रामकी बात।

प्रस्तावको दुहराते हुये उसके विपक्षमें बोलनेके लिये तीन बार तक अवसर दिया जाता था, जिसे अ न - श्रा व ण कहते थे, और अन्तमें धा र णा द्वारा सम्मतिके परिणामको सुनाया जाता था ।

अन्य पुराने ग्रथोकी भाँति इस विनय-पिटकमें वर्णित विषयोकी सुर्खी देनेका ख्याल बहुत ही कम रक्खा गया है । वस्तुत यह ग्रथ तो कठस्थ करनेवालोके लिये था, और उनके लिये सुर्खियाँ उतनी आवश्यक न थी । मैंने सभी जगह अपेक्षित सुर्खियोको भिन्न टाइपोमे दे दिया है। अपने पहिलेके अनुवादोकी भाँति यहाँ भी अन्तमे विस्तृत परिशिष्ट दे दिया है । यदि पाठकोकी सहायता प्राप्त होगी, तो रह गई त्रुटियोको दूसरे सस्करणमे ठीक कर दिया जायेगा ।

ल्हासा
७-७-३४ ई०

राहुल सांकृत्यायन

विनय-पिटक-प्रकरण सूची

विषय-सूची

ग्रंथ-सूची

विभाग-सूची

क—पातिमोक्ख-सुत्त

(विभंग)

१–भिक्खु-पातिमोक्ख

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स।

(पातिमोक्ख[1])

१—भिक्खु-पातिमोक्ख

निदान। १—पाराजिक। २—संघादिसेस। ३—अ-नियत। ४—निस्सग्गिय पाचित्तिय। ५—पाचित्तिय। ६—पाटिदेसनिय। ७—सेखिय। ८—अधिकरण-समथ।

§(निदान)

(एक भिक्षु-) भन्ते ! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसद हो (तो) मै इस नामके[2] आयुष्मानसे *विनय* पूछूँ।[3]

(चुना जाने वाला भिक्षु—) भन्ते! सघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसद हो (तो) मै इस नामके[4] आयुष्मान् द्वारा पूछे *विनय* (=भिक्षु-नियम)का उत्तर दूँ।—

सम्मज्जनी पदीपो च उदकं आसनेन च।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकरणन्ति वुच्चति॥
(सम्मार्जनी प्रदीपश्च उदकं आसनेन च।
उपोसथस्य एतानि पूर्वकरणमित्युच्यते॥)

(संघसे) अवकाश (माँगकर कहता हूँ)—*सम्मज्जनी*=झाड़ू देना (उपोसथागार को साफ करना), *पदीपो* च = और दिया जलाना [(दिन होनेसे-) इस समय सूर्यके प्रकाशके कारण दीपकका काम नही है (कहना चाहिये)], *उदकं आसनेन* च = और आसन (बिछाने)के साथ पीने तथा धोनेके लायक जलको रखना, *एतानि*=समार्जन करना आदि यह चार कार्य (=व्रत) संघके एकत्रित होनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स*=*उपोसथ*[5] के, *पुब्बकरणन्ति*=“पूर्व-करण”, *वुच्चति* = कहे जाते हैं।

---

[1] मासकी प्रत्येक कृष्ण चतुर्दशी तथा पूर्णिमाको उस स्थानमें रहनेवाले सभी भिक्षु संघके उपोसथागारमें एकत्रित हो इन पातिमोक्ख (= प्रातिमोक्ष)के नियमोंकी आवृत्ति करते हैं।

[2] यहाँ जिस भिक्षुको उस दिन धर्मासनके लिये चुनना हो, उसका नाम लेना चाहिए।

[3] संघकी स्वीकृति जान वह भिक्षु सघको प्रणाम कर पोतीके आरम्भमें रक्खे धर्मासन पर बैठ आगेकी बातोंको कहता है।

[4] प्रस्तावक भिक्षुका यहाँ नाम लेना चाहिये।

[5] कृष्ण चतुर्दशी और पूर्णमासी।

छन्द-पारिसुद्धि उतुक्खानं भिक्खु-गणना च ओवादो ।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति ॥
(छन्द-पारिशुद्धिः ऋतु-ख्यानं भिक्षु-गणना चाऽववादः ।
उपोसथस्यैतानि पूर्वकृत्यमित्युच्यते ॥)

छन्दपारिसुद्धि = छन्द (=सम्मति=Vote) के योग्य (रोगी आदि होने के कारण उपोसथमे स्वयं उपस्थित न हो सकनेवाले) भिक्षुओंके छन्द और शुद्धता[1], *उतुक्खान* = हेमन्त आदि तीन ऋतुओंमेसे इतने बीत गये, इतने बाकी है—का कहना । यहाॅ (बौद्ध-) धर्ममे हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षाको लेकर तीन ऋतुये होती है । [(जैसे—) यह हेमन्त ऋतु है, इस ऋतुमे (प्रत्येक पक्षमे एक एक करके) आठ उपोसथ (होते है), इस पक्ष से एक उपोसथ पूर्ण हो रहा है, एक उपोसथ (पहिले) चला गया, (अब) छ उपोसथ बाकी है] । *भिक्खुगणना* च = और इस उपोसथमे एकत्रित भिक्षुओकी गणना [इतने] भिक्षु है, *ओवादो* = भिक्षुणियोको उपदेश देना [इस समय उनकी परंपराके लोप हो जानेसे वह उपदेश अब नहीं देना रहा] । *एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति* = छन्द भेजना आदि यह पाँच काम *पातिमोक्ख* कहनेसे पहिले किये जाने से, *उपोसथस्स* = उपोसथ कर्मके, *पुब्बकिचन्ति वुचति* = "पूर्वकृत्य" कहे जाते है ।

उपोसथो, यावतिका च भिक्खू, कम्मप्पत्ता सभागापत्तियो च ।
न विज्जन्ति वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति, पत्तकल्लन्ति वुच्चति ।
(उपोसथे यावन्तश्च भिक्षवः, कर्मप्राप्ताः सभागापत्तयश्च ।
न विद्यन्ते वर्जनीयाश्च पुद्गलाः तस्मिन् न भवंति, प्राप्तकल्यमित्युच्यते ॥)

उपोसथो = (कृष्ण-)चतुर्दशी, पूर्णमासी, (और विशेष कामके लिये संघका) एकत्रित होना—इन तीन उपोसथके दिनोमे [आज पूर्णमासीका उपोसथ है] । *यावतिका च भिक्खू* = जितने भिक्षु, *कम्मप्पत्ता* = उस *उपोसथ*-कर्मको प्राप्त, के योग्य = के अनुरूप है, कमसे कम चार शुद्ध भिक्षु जोकि—(१) भिक्षु-संघ द्वारा न त्यागे भिक्षु, (२) हस्त-पाशको विना छोड़े (बैठकके घिरावेको विना तोड़े) एक सीमाके भीतर स्थित, (३) *सभागापत्तियो च न विज्जति*=(जिनमे) दोपहर बाद भोजन करने आदिके अपराध(=आपत्तियाँ) नही वर्तमान होते; (४) *वज्जनीया च पुग्गला तस्मि न होन्ति*=गृहस्थ नपुसक आदि बैठकके घिरावे (=हस्तपाश)से दूर रक्खे जानेवाले इक्कीस (प्रकारके) व्यक्ति उस (उपोसथ)मे नहीं होते, *पत्तकल्लन्ति वुचति*—इन चार लक्षणोसे युक्त सघका उपोसथ कर्म *प्राप्तकल्य*=उचित समयसे युक्त कहा जाता है ।

पूर्वकरण, (और) *पूर्वकृत्यो*को समाप्त कर, (अपने) दोषोको (एक दूसरेको) बतलाकर एकत्रित हुए भिक्षु-सघकी अनुमतिसे *प्रातिमोक्ष*की आवृत्तिके लिये प्रार्थना करता हूँ ।

भन्ते ! सघ मेरी (बातको) सुने—आज पूर्णमासी[2]का उपोसथ है । यदि संघ

---

[1] संघके सामने आनेवाले अभियोग या दूसरे काममें अपनी सम्मति, अनुपस्थित भिक्षुणी दूसरी भिक्षुणी द्वारा भेज सकती है, इसीको यहाॅ छन्द कहा गया है । इसी प्रकार रोगी भिक्षुणी अपनी अदोषता (=शुद्धता)को भी दूसरे द्वारा भेज सकती है, जिसे पारिशुद्धि कहा गया है ।

[2] यहाँ जिस दिनका उपोसथ हो, उसका नाम लेना चाहिये ।

उचित समझे तो उपोसथ करे और प्रातिमोक्ष (नियमों)की आवृत्ति करे।

क्या है संघका पूर्व कृत्य ? आयुष्मानो ! (अपनी) शुद्धि (=अ-दोषता)को कहो, हम प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करेंगे, सो हम सभी शान्त हो अच्छी तरह सुने और मनमे करे। जिससे कोई दोष हुआ हो वह प्रकट करे। दोष न होने पर चुप रहना चाहिये। चुप रहने पर मै आयुष्मानोको शुद्ध (=दोष-रहित) समझूँगा। जैसे एक एक आदमीसे पूछनेपर उत्तर देना होता है, वैसे ही इस प्रकारकी सभामे तीन बार तक पुकारा जाता है। किन्तु, जो भिक्षु तीन बार पुकारनेपर याद रहते भी, विद्यमान दोषको प्रकट नही करता, वह जान बूझकर झूठ बोलनेका दोषी होता है। आयुष्मानो! भगवान्ने जान बूझकर झूठ बोलनेको अन्तरायिक (=विघ्नकारक) कर्म कहा है; इसलिये याद रखते हुए दोष -युक्त भिक्षुको शुद्ध होनेकी कामनासे विद्यमान दोषको प्रकट करना चाहिये; (दोषोका) (अपनेमे) प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।

आयुष्मानो ! *निदान* कह दिया गया। अब मै आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या इन (आप सब) (निदानमे कही बातो)से शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या इनसे शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ, क्या इनसे शुद्ध हैं ? आयुष्मान् परिशुद्ध ही है, इसीलिए चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ, इति।

निदान समाप्त

---

§१—पाराजिक[१] (१-४)

आयुष्मानो ! यह चार *पाराजिक*[२] धर्म कहे जाते हैं :—

(१) मैथुन

१—जो भिक्षु भिक्षुओंके कायदा और नियमसे युक्त होते हुए भी, शिक्षाको बिना छोडे, दुर्बलताको बिना प्रकट किये, अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्मका सेवन करे, वह *पाराजिक* होता है =(भिक्षुओंके) साथ न रहने लायक होता है[३]।

(२) चोरी[४]

२—जो भिक्षु चोरी समझी जाने वाली किसी ऐसी वस्तुको बिना दिये ही ग्राम या अरण्यसे ग्रहण करे, जिसे (मालिकके) बिना-दिये-हुए ले लेनेसे राजा किसी व्यक्तिको चोर=स्तेन, मूर्ख, मूढ कहकर बाँधता, मारता या देश-निकाला देता है, तो वह भिक्षु *पाराजिक* होता है=(भिक्षुओंके) साथ न रहने लायक होता है[५]।

---

[१] पाराजिकोके इतिहास और विस्तारके लिये देखो बुद्धचर्या पृष्ठ १४१-४६, ३०९-२२।

[२] जिन अपराधोंके करनेसे भिक्षु भिक्षुपनसे हमेशाके लिये निकाल दिया जाता है वे पाराजिक कहे जाते हैं।

[३] बुद्धधर्म (=शासन)मे जो जो उपद्रव हुए, वह सब वज्जिपुत्तकों (=वज्जी गणके राजपुरुषो)को लेकर ही हुए। देवदत्तने भी वज्जिपुत्तकोको अपने पक्षमे पा संघमें फूट डाली। भगवान्‌के निर्वाणके सौ वर्ष बाद भी इसी तरह इन्होने ही धर्म और विनयके विरुद्ध शिक्षा देनी शुरू की। (-अट्ठकथा)।

[४] उस समय राजगृहमे बीस मासे (=मासक) का कार्षापण था। 'यह पुराने नील कार्षापणके बारेमे है, दूसरे रुद्रदामक आदिके (कार्षापणो) के बारेमे नही (—अट्ठकथा।)

[५] अन्तर-समुद्रमे एक भिक्षुने सुन्दर आकारके एक नारियलके फलको पा, खरादपर चढ़ा, शखके कटोरे सा मनोरम पीनेका कटोरा बना, वहीं रखकर चैत्य गिरि (=मिहिन्तले, लङ्का) चला गया। तब दूसरा भिक्षु अन्तर-समुद्रमे जा उसी विहारमे निवास करते, उस कटोरे (=थालक)को देख चोरीके ख्यालसे ले (वह) भी चैत्य गिरिको ही गया। उस कटोरेमें खिचडी पीते समय देखकर कटोरेके स्वामीने कहा—यह कहाँ तुम्हे मिला? अन्तर-समुद्रसे लाया हूँ। उसने—यह तुम्हारा नही है, चोरीसे तुमने लिया है—(कह) संघमे पेश किया। वहाँ निर्णय न होनेपर वह (दोनो) महाविहार (अनुराधपुर, लङ्का) गये। वहाँ भेरी बजवा महाचैत्यके पास (संघ)को एकत्रित कर मुकदमा देखना शुरू किया। विनय-धर स्थविरोने (संघसे) निकाल देनेकी व्यवस्था दी। उस बैठकमे आभिधर्मिक गोध स्थविर नाम एक विनयमे निपुण (भिक्षु) थे। उन्होंने यह कहा—'इसने इस कटोरेको कहाँ चुराया?'—'अन्तर-समुद्रमे।' 'वहाँ' इसका क्या

(३) मनुष्य-हत्या

३—जो भिक्षु जान कर मनुष्यको प्राणसे मारे, या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लाये, या मरनेकी तारीफ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे पुरुष ! तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवन से ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है; इस प्रकारके चित्त-विचारसे इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे मरनेकी जो तारीफ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे तो वह भिक्षु पाराजिक होता है=(भिक्षुओंके साथ) सहवासके अयोग्य होता है[1] ।

(४) दिव्यशक्तिका दावा

४—जो भिक्षु नविद्यमान्, दिव्य-शक्ति (=उत्तर-मनुष्य-धर्म[2])=अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको, अपनेमे वर्तमान कहता है—"ऐसा जानता हूँ, ऐसा देखता हूँ," तब दूसरे समय

मूल हैं ?'—'मूल कुछ नहीं है, वहाँ नारिकेलको फोड गरी खा खोपडीको फेंक देते हैं; (वह) इंधनका काम देता है ।' 'इस भिक्षुके हाथके कामका क्या मूल्य होगा ?'—'मासा या माससे कम ।' 'क्या सम्यक्-सम्बुद्धने कहीं मास या माससे कमकी (चोरी)के लिए पाराजिककी व्यवस्था देनेके बारेमें कहा है ?' ऐसा कहनेपर,—'साधु, साधु, ठीक कहा, ठीक विचार किया'—एक ओरसे (कह लोगोंने) साधुवाद दिया । उस समय भातिक राजाने भी चैत्यकी वंदनाके लिये नगरसे निकलते वक्त उस शब्दको सुना । (—अट्ठकथा) ।

[1] वसभ राजा (लङ्कामें ६६-११० ई०)की देवी बीमार पडी । एक स्त्रीके आकर पूछनेपर महापद्म स्थविरने—मैं नहीं जानता—(यह) न कह, इस प्रकार भिक्षुओंके साथ बात की। सिंहलद्वीपमें अभय नामक चोर (=डाकू) पाँच सौ अनुयायियोंके साथ एक जगह छावनी बाँधकर चारों ओर तीन योजन तक लूटमार करता था । (जिसके कारण) अनुराधपुर निवासी कलम्बु नदीके भी पार नहीं जाते थे । चैत्यगिरिके रास्तेपर लोगोंका जाना बन्द हो गया था । तब एक दिन (वह) चोर—चैत्यगिरिको लूटूँ— (सोच) चला । आरामके नौकरोंने देख कर दीर्घभाणक (=दीर्घनिकाय के पंडित) अभय स्थविर से कहा । (—अट्ठकथा) ।

[2] उत्तर-मनुष्य-धर्म=(१) ध्यान, (२) विमोक्ष, (३) समाधि, (४) समापत्ति, (५) ज्ञान-दर्शन, (६) मार्ग-भावना, (७) फल-साक्षात्कार, (८) क्लेश-प्रहाण (९) विनीवरणता, (१०) शून्यागारमे चित्तकी अभिरति (=अनुराग) । अलम्-आर्य-ज्ञान=तीन विद्यायें=दर्शन । जो ज्ञान है वही दर्शन है, जो दर्शन है वही ज्ञान है ।

विशुद्धापेक्षी=गृही होनेकी इच्छासे, या उपासक होनेकी इच्छासे, या आरामिक (=आराम-सेवक) होनेकी इच्छासे, या श्रामणेर होनेकी इच्छासे ।

ध्यान=(१) प्रथमध्यान, (२) द्वितीयध्यान (३) तृतीयध्यान, (४) चतुर्थध्यान ।
विमोक्ष=(१) शून्यता-विमोक्ष, (२) अनिमित्त-विमोक्ष, (३) अ-प्रणिहित-विमोक्ष ।
समाधि=(१) शून्यता-समाधि, (२) अनिमित्त०, (३) अप्रणिहित० ।
समापत्ति=(१) शून्यता-समापत्ति, (२) अनिमित्त० (३) अप्रणिहित० ।
ज्ञान=तीन विद्यायें ।

मार्ग-भावना=(१) चार स्मृति-प्रस्थान, (२) चार सम्यक्-प्रधान, (३) चार ऋद्धि-पाद, (४) पाँच इन्द्रिय, (५) पाँच बल, (६) सात बोध्यंग, (७) आर्य-अष्टांगिक-मार्ग ।

पूछे जाने या न पूछे जानेपर बदनीयतीसे, या आश्रम छोड जानेकी इच्छासे (कहे)—"आयुष्मान् ! न जानते हुए मैने 'जानता हूँ' कहा, न देखते हुए मैने 'देखता हूँ' कहा, मैंने झूठ=तुच्छ कहा; (तो) वह *पाराजिक* होता है, यदि अधिमान (=अभिमान) से न कहा हो।

आयुष्मानो ! यह चार पाराजिक दोष कहे गये। इनमेसे किसी एकके करनेसे भिक्षु भिक्षुओके साथ वास नही करने पाता। जैसे (भिक्षु होनेसे) पहले वैसेही पीछे *पाराजिक* होकर साथ रहनेके योग्य नही रहता।

आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी वार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी वार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

पाराजिक समाप्त ॥१॥

फल साक्षात्कार=(१) स्रोतआपत्ति-फलका साक्षात् करना, (२) सकृद्-अगामी०, (३) अनागामी०, (४) अर्हत्०।

क्लेश-प्रहाण=(१) रागका प्रहाण (=विनाश), (२) द्वेष-प्रहाण, (३) मोह-प्रहाण।

विनीवरणता= (१) रागसे चित्तकी विनीवरणता (=मुक्ति), (२) द्वेषसे चित्त-विनीवरणता, (३) मोहसे चित्त-विनीवरणता।

शून्यागारमे अभिरति=(१) प्रथमध्यानसे शून्य स्थानमे संतोष, (२) द्वितीयध्यानसे० (३) तृतीयध्यानसे०, (४) चतुर्थध्यानसे०, (-भिक्खु-विभंग)।

§२—संघादिसेस[1] (५-१७)

आयुष्मानो ! यह तेरह दोष *संघादिसेस* कहे जाते है—

(१) कामासक्तिता

१—स्वप्नके अतिरिक्त जान-बूझकर वीर्य-मोचन *सघादिसेस* है।

२—किसी भिक्षुका विकार युक्त चित्तसे किसी स्त्रीके हाथ या वेणीको पकड़कर या और किसी अगको छूकर शरीरका स्पर्श करना *सघादिसेस* है।

३—किसी भिक्षुका विकारयुक्त चित्तसे किसी स्त्रीके साथ ऐसे अनुचित वाक्योंका कहना जिन्हे कि कोई युवा किसी युवतीसे मैथुनके सम्बन्धमे कहता है, *सघादिसेस* है।

४—किसी भिक्षुका विकार युक्त चित्तसे अपनी काम-वासनाकी तृप्तिके लिये किसी स्त्रीसे यह कहना—भगिनी ! सभी सेवाओ मे 'यह' सर्व श्रेष्ठ सेवा है कि तू मेरे जैसे सदाचारी, ब्रह्मचारी पुण्यात्माको मैथुनसे सेवा करे, *संघादिसेस* है।

५—किसी भिक्षुका (दूत बन) किसी स्त्रीकी बातको किसी पुरुषसे या किसी पुरुषकी बातको किसी स्त्रीसे जाकर कहना—(तू) जार बन या पत्नी बन या अन्ततः कुछ ही क्षणोंके लिये (उसकी बन), *संघादिसेस* है।

(२) कुटी-निर्माण

६—याचना द्वारा किसी भिक्षुको अपने लिये स्वामिरहित (= नई) कुटी बनवाते समय, (१) प्रमाण-युक्त बनवाना चाहिये। प्रमाण इस प्रकार है—लंबाईमे बुद्धके[2] बित्ते (=बालिश्त)से बारह बित्ता और चौड़ाईमे सात बित्ता। (२) मकानके विषयमे भिक्षुओको सम्मति देनेके लिये बुलाना चाहिये और भिक्षुओको मकानकी जगह ऐसी बतलानी चाहिये, जहाँ (मकानके बनानेमे जीवोकी) हिंसा न हो, जहाँ पहुँचना (गाड़ी या सीढ़ी आदिसे) सुकर हो। भिक्षुका याचना करके हिंसा युक्त तथा पहुँचनेमे कठिन स्थानमे कुटी बनवाना या भिक्षुओको मकानके बारेमे बतलानेके लिये न बुलाना या (कुटीको) प्रमाणके अनुसार न बनाना *संघादिसेस* है।

---

[1] इस दोषके लिये कुछ समयका परिवास (मुअत्तली) आदि दड सघ ही दे सकता है, बहुत भिक्षु या एक भिक्षु इसका निर्णय नही कर सकते; इसीलिये इसे संघादिसेस कहते हैं। (—अट्ठकथा)।

[2] बुद्ध लंबे क़दके थे। यदि हम उन्हे ६ फुट क़दका माने तो कुटीका भीतरी भाग $10\frac{1}{2}$ फुट × ६ फुट होना चाहिये।

७—किसी भिक्षुको अपने लिये स्वामियुक्त (= पुराने), बड़े विहारको बनवाते समय (१) मकानके विषयमे भिक्षुओको सम्मति देनेके लिये बुलाना चाहिये और भिक्षुओको मकानकी जगह ऐसी बतलानी चाहिये जहाँ (मकानके बनानेमे जीवो की) हिसा न हो, जहाँ पहुँचना (गाड़ी या सीढ़ी आदिसे) आसान हो। भिक्षुका हिसा युक्त तथा पहुँचनेमे कठिन स्थानमे कुटी बनवाना या मकानके बारेमे सलाह लेनेके लिये भिक्षुओको न बुलाना *संघादिसेस* है।

(३) पाराजिकका इलज़ाम लगाना

८—कोई भिक्षु दुष्ट (चित्तसे) द्वेषसे, नाराजगीसे दूसरे भिक्षुपर निर्मूल पाराजिक दोष लगाता है, जिसमे कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो (=भिक्षु आश्रम छोड) जाय। फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगडा निर्मूल (मालूम) हो और उस (दोष लगाने वाले) भिक्षुका दोष सिद्ध हो तो *सघादिसेस* है।[1]

९—किसी भिक्षुका दुष्ट (चित्तसे) द्वेषसे नाराजगीसे दूसरे प्रकारके झगड़े (= अधिकरण)की कोई छोटी बात लेकर दूसरे भिक्षुको *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमे कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय। फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी असलियत मालूम हो और उस (दोष लगाने वाले) भिक्षुका दोष सिद्ध हो, (तो उसे) *सघादिसेस* है।[2]

संघमें फूट डालना

१०—यदि कोई भिक्षु एक मत संघमे फूट डालनेका प्रयत्न करे या फूट डालने वाले झगडे को लेकर (उसपर) हठ पूर्वक कायम रहे (जब) उसे अन्य भिक्षु इस प्रकार कहे—आयुष्मान्! मत (आप) एकमत सघको फोड़नेका प्रयत्न करे, मत (आप) फोड़ने वाले झगड़ेको लेकर (उसपर) हठ पूर्वक कायम रहे। आयुष्मान्! संघसे मेल करिये, परस्पर हेल मेल रखने वाला, विवाद न करनेवाला, एक उद्देश्य वाला, एक मत रखनेवाला संघ सुखपूर्वक रहता है। उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा समझाया जानेपर भी यदि वह भिक्षु उसी प्रकार (अपनी जिदको) पकड़े रहे, तो दूसरे भिक्षु उस भिक्षुको उस (जिद)से हटानेके लिये तीन बार तक कहे। यदि तीन बारके कहनेपर उस (जिद)को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है, यदि न छोड़े तो यह *सघादिसेस* है।[4]

---

[1] भातिय राजा (लंकामें १४१-६५ ई०)के समय महाविहार-वासी और अभय-गिरिवासी स्थविरोका इस विषयमे विवाद हुआ। राजाने सुनकर स्थविरोको जमा कर दीर्घकारायण नामक ब्राह्मण मत्रीको स्थविरोकी बात सुननेके लिये भेजा। (अट्ठकथा)।

[2] अट्ठकथामे महापद्म स्थविर, महासुम्म स्थविर और गोदत्त स्थविरके मत उद्धृत हैं।

[3] त्रैपिटक चूल-अभय स्थविर लोहप्रासाद (लंका)मे भिक्षुओको विनयकी कथा कह कर उठे (अट्ठकथा)।

[4] उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके वेणुवन कलंदकनिवापमे विहार करते थे। तब देवदत्त, कटमोर-तिस्सक कोकालिक और खंडदेवीपुत्र समुद्रदत्तके पास जाकर बोला—

आओ आवुसो! हम श्रमण गौतमके सघ = चक्रको फोडे। आओ! हम श्रमण

११—उस (सघ-भेदक) भिक्षुके अनुयायी, पक्षपाती एक दो या तीन भिक्षु हों और वे यह कहे—'आयुष्मानो ! मत इस भिक्षुको कुछ कहो। यह भिक्षु धर्मवादी है, नियमानुकूल (= विनय) बोलने वाला है। हमारी भी राय और रुचिको लेकर यह कह रहा है, हमारे मनकी (बातको) जानता है, कहता है। हमको भी यह पसन्द है।' तब दूसरे भिक्षु उन भिक्षुओंको इस प्रकार कहे—मत आयुष्मानो ! ऐसा कहो। यह भिक्षु धर्मवादी नही है और न यह भिक्षु नियमानुकूल बोलने वाला है। आयुष्मानो-को भी संघमे फूट डालना न रुचना चाहिये। आयुष्मानो ! संघसे मेल करो। परस्पर हेल मेल वाला, विवाद न करने वाला, एक उद्देश्य वाला, एकमत रखने वाला संघ सुख-पूर्वक रहता है। यदि उन (समझाने वाले) भिक्षुओंके ऐसा कहने पर भी वे (संघ-भेदक भिक्षुके साथी) अपनी ज़िदको पकड़े रहे तो (समझाने वाले) भिक्षु तीन बार तक उस (ज़िद)से हटानेके लिये उसको कहे। यदि तीन बार कहनेपर वे उस (ज़िद) को छोड़ दे तो यह उनके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो यह *सघादिसेस* है।

(५) बात न सुनने वाला बनना

१२—यदि कोई भिक्षु कटु-भाषी है, विहित आचार नियमो (= शिक्षा-पदो) के बारेमे भिक्षुओ द्वारा उचितरीतिसे कहे जाने पर कहता है—'आप लोग मुझे कुछ न बोले, आयुष्मान् लोग मुझे अच्छा या बुरा कुछ मत कहे। मै भी आयुष्मानोको अच्छा बुरा कुछ नही कहूँगा। आयुष्मानो ! (आप सब) मुझसे बात करनेसे बाज आये।' तो

गौतमके पास चलकर पॉच बाते मॉगें। 'अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर वनमे ही रहा करें। जो गॉवमे रहे वह दोषी हो। (२) जिन्दगी भर भिक्षा मॉग कर ही खाये। जो निमत्रण खाये वह दोषी हो। (३) जिन्दगी भर फेके चीथडोको ही सीकर पहने। जो गृहस्थोके दिये वस्त्र को पहने वह दोषी हो। जिन्दगी भर पेड़के नीचे ही रहे। जो छतके नीचे रहे वह दोषी हो। और (४) जिन्दगी भर मछली-मांस न खाये। जो मछली मांस खाय वह दोषी हो।' श्रमण गौतम इसे नहीं मानेगा तब हम इन पॉच बातोको लेकर लोगोंको समझायेंगे। आवुसो ! इन पॉच बातोको लेकर श्रमण गौतमके संघ = चक्रको फोड़ा जा सकता है। मनुष्य तो आवुसो ! कठोर जीवनकी ही ओर अधिक श्रद्धा रखते हैं।"

तब देवदत्त अपनी मंडली के साथ जहॉ भगवान् थे वहॉ गया। जाकर भगवान् को अभि-वादन कर एक ओर बैठे हुए 'बोला—" अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर वनमे ही रहा करे (आदि पॉचो बाते बोला)।"

"रहने दे देवदत्त ! जो चाहे वनमे रहे, जो चाहे गॉवमे रहे, जो चाहे भिक्षा मॉगकर खाय, जो चाहे निमंत्रण खाय, जो चाहे फेके चीथडोको सीकर पहने, जो चाहे गृहस्थोके दिये हुए (नये) वस्त्रको पहने। देवदत्त ! (वर्षाको छोड़) आठ मास तक वृक्षके नीचे रहने की तो अनुमति मैंने दे दी है। और उस मांसके (खाने के) लिये मैने अनुमति दे दी है जिसके सम्बन्धमें, न यह देखा गया हो, न सुना गया हो, न इसका सन्देह ही किया गया हो (कि वह उसके लिये मारा गया है)।"

(देवदत्तने इस बहानेको लेकर संघमे फूट डाल दी। यह संघ-भेद भी एक सघादि-सेस समझा गया।)

भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—मत आयुष्मान् अपनेको अवचनीय (= दूसरोंका उपदेश न सुनने वाला) बनाये। आयुष्मान् अपनेको वचनीय ही बनावे। आयुष्मान् भी भिक्षुओंको उचित बात कहे। भिक्षु भी आयुष्मान्को उचित बात कहे। परस्पर कहने-कहाने, परस्पर उत्साह दिलानेसे ही भगवान्की यह मडली (एक दूसरे से) संबद्ध है।' भिक्षुओंके ऐसा कहने पर भी यदि वह अपनी जिदको पकड़े रहे तो भिक्षु तीन बार तक उस (जिद्)से हटानेके लिये उसको कहे। यदि तीन बार कहनेपर वह उस (जिद)को छोड दे तो यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो यह *संघादिसेस* है।

(६) कुलोंका बिगाड़ना

१३—कोई भिक्षु किसी गाँव या कस्बे मे कुल-दूषक[1] और दुराचारी होकर रहता है। उसके दुराचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। कुलोको उसने दूषित किया है यह देखा भी जाता है सुना भी जाता है। तो दूसरे भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—आयुष्मान् कुल-दूषक और दुराचारी है। आयुष्मान्के दुराचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। आयुष्मान्ने कुलोंको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (-स्थान)से, आयुष्मान् चले जायँ। आपका यहाँ रहना ठीक नही है।' भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने पर यदि वह भिक्षु ऐसा बोले—'भिक्षु लोग रागके पीछे चलने वाले है, द्वेषके पीछे चलने वाले है, मोहके पीछे चलने वाले है, भयके पीछे चलने वाले है। उन्ही अपराधोके कारण किसी-किसीको हटाते है और किसी-किसीको नही हटाते।' तो उन भिक्षुओंको उस भिक्षुसे यह कहना चाहिये—'मत आयुष्मान् ऐसा कहे। भिक्षु लोग रागके पीछे चलने वाले नही है, द्वेषके पीछे चलने वाले नहीं है, मोहके पीछे चलने वाले नहीं है। भयके पीछे चलने वाले नही है, आयुष्मान् कुल-दूषक और दुराचारी है। आयुष्मान्के दुराचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। आयुष्मान्ने कुलोको दूषित किया है, यह सुना भी जाता है, देखा भी जाता है। इस निवास (-स्थान) से आयुष्मान् चले जायँ। आपका यहाँ रहना ठीक नही है।' भिक्षुओं द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी यदि वह भिक्षु अपनी जिदको पकड़े रहे तो भिक्षु तीन बार तक उस (जिद)से हटने के लिये उसको कहे। यदि तीन बार कहने पर वह उस (जिद)को छोड दे तो यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो यह *संघादिसेस* है[2]।

---

[1] देखो चुल्लवग्ग(§ २1७)

[2] श्रावस्तीमें ६ आदमी (आपसमे) मित्र थे। वह आपसमे सलाह कर दोनो अग्र श्रावकों—सारिपुत्र और मौद्गल्यायनके पास प्रव्रजित हुये। पाँच वर्ष बीत जानेपर मात्रिका को ख्व सीखकर उन्होने सलाहकी—देशमे कभी सुभिक्ष भी होता है, कभी दुर्भिक्ष भी, इसलिये हम सबको एक जगह नहीं वास करना चाहिये। फिर उन्होने (१) पण्डुक और (२) लोहितकसे यह कहा—'आवुसो! श्रावस्तीमें सत्तावन लाख कुल निवास करते हैं। (वह) अस्सी हजार गाँवोसे अलकृत, तीन सौ योजन विस्तृत काशी और कोसल देशोकी आमदनीका मुख है, यहीं तुम निश्चल हो (वास करो)। ' (३) मेत्तिय और (४) भुम्मजकसे कहा—'आवुसो! राजगृहमे अट्ठारह कोटि मनुष्य वास करते है। (वह) अस्सी हजार गाँवोसे अलंकृत, तीन सौ

आयुष्मानो ! यह तेरह *संघादिसेस* कहे जाते है—नव प्रथम (बार हीमे) दोष (समझे जाने) वाले और चार तीन बार (दोहराने पर)। जिनमेसे किसी एक दोष-को करके, भिक्षु जब तक कि जानकर प्रतिकार करता है तब तक (और भिक्षुओके) साथ निवास करनेकी इच्छा छोड़ वह भिक्षु *परिवास*[2] करे। *परिवास* कर चुकने पर फिर छ: रात तक वह भिक्षु *मानत्व*[3] करे। *मानत्व* पूरा हो जाने पर वह भिक्षु जहाँ बीस पुरुषो वाला भिक्षु-संघ हो उसके पास जावे। यदि बीस पुरुषोंमेसे एक भी कम वाला भिक्षु-संघ हो और वह उस भिक्षुको (अपराध) मुक्त करे तो वह भिक्षु मुक्त नही है, और वे भिक्षु लोग निन्दनीय है—यह वहाँ पर उचित (क्रिया) है।

आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? आयुष्मान लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै धारण करता हूँ।

संघादिसेस[4] समाप्त ॥२॥

योजन विस्तृत अंग और मगध देशोकी आमदनीका मुख है, वही तुम निश्चल हो (वास करो) '। (५) अश्वजित् और (६) पुनर्वसुकसे कहा—'आवुसो ! कीटागिर पर दोनों मेघोकी कृपा है, वहाँ (अच्छे) सस्य (फसल) उत्पन्न होते हैं। वहाँ तुम निश्चल हो (वास करो) '।'

[2]देखो चुल्लवग्ग (§२।१) [3]देखो चुल्लवग्ग (§२।३)

[4]उत्तर राजपुत्रने सुवर्णका चैत्य बनवा महापद्म स्थविरके लिये भेजा। स्थविरने अविहित समझ (लेनेसे) इन्कार कर दिया (अट्ठकथा)।

§३—अनियत (१८-१९)

आयुष्मानो ! यह दो अपराध *अनियत* कहे जाते है—

(१) मैथुन

१—यदि कोई भिक्षु किसी स्त्रीके साथ अकेले, (ऐसे) एकान्त (=गुप्त) आसन वाले (मैथुन) कर्मके योग्य (स्थान)मे बैठे जहाँ उसे श्रद्धालु उपासिका *पाराजिक, संघादिसेस*, या *पाचित्तिय* इन तीन बातोमेसे किसी एककी बात चलाये, (तो) बैठना स्वीकार करने पर (उस भिक्षुको) *पाराजिक, सघादिसेस, पाचित्तिय* इन तीन बातोमेसे जिसे वह विश्वास-पात्र उपासिका बतलाये उसी (अपराध)का (अपराधी) उसे बनाना चाहिये। यह अपराध (पाराजिक, संघादिसेस पाचित्तिय तीनोमेसे एकमे नियत न रहनेसे) *अनियत* कहा जाता है।

२—चाहे आसन गुप्त न हो और न (मैथुन) कर्मके योग्य हो, किन्तु (वहाँ) स्त्रीके साथ अनुचित बाते की जा सकती हो, (तो) जो (जहाँ पर कि) भिक्षु वैसे आसनपर किसी स्त्रीके साथ अकेले एकान्तमे बैठे। उसको देखकर विश्वास-पात्र उपासिका *संघादिसेस* और *पाचित्तिय* इन दो बातोमेसे किसी एककी बात चलाये, (तो) बैठना स्वीकार करने पर (उस भिक्षुको) *संघादिसेस* और *पाचित्तिय* इन दो बातोमेसे जिसका (दोषी) वह विश्वास-पात्र उपासिका बतलाये उसी (अपराध)का (अपराधी) उसे बनाना चाहिये। यह अपराध भी (*सघादिसेस, पाचित्तिय* दोनोमेसे किसीमे नियत न रहनेसे) अनियत है।

अनियत समाप्त ॥३॥

---

§४–निस्सग्गिय-पाचित्तिय[1] (२०-४७)

(१) कठिन चीवर और चीवर

आयुष्मानो ! यह तीस अपराध *निस्सग्गिय पाचित्तिय* कहे जाते है ।

१—चीवरके[2] तैयार हो जानेपर *कठिन*[3] (चोवर)के मिल जानेपर अधिकसे अधिक दस दिन तक अतिरिक्त (=तीनसे अधिक) चीवरको (पास) रखना चाहिये । इस (अवधि)को अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

२—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर भिक्षुओकी सम्मतिके बिना यदि भिक्षु एक रात भी तीनो चीवरोसे रहित रहे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

३—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर यदि भिक्षुको बिना समयका चीवर (का कपडा) प्राप्त हो, तो इच्छा होनेपर भिक्षु उसे ग्रहण कर सकता है । ग्रहण करके (चीवर) शीघ्रही दस दिन तकमें बना लेना चाहिये । यदि उसको पूरा नही कर सकता तो प्रत्याशा होनेपर कमीकी पूर्तिके लिये एक मास भर भिक्षु उसे रख छोड़ सकता है । प्रत्याशा होनेपर इससे अधिक यदि रख छोडे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

४—कोई भिक्षु *अज्ञातिका* (=जिससे कि उसका पिता या माताकी ओरसे सात पीढो के भीतर तक कोई सबध नही) भिक्षुणीसे (अपने) पुराने चीवर धुलवाये, रँगवाये या पिटवाये (कुन्दी कराये) तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

५—जो कोई भिक्षु किसी *अज्ञातिक* भिक्षुणीके हाथसे बदलौनके अतिरिक्त चोवरको स्वीकार करे तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है ।

६—जो कोई भिक्षु किसी *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनीसे खास अवस्थाके सिवाय चीवर देनेके लिये कहे तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है । खास अवस्था है, जब कि भिक्षुका चीवर छिन गया हो या खो गया हो ।

---

[1] जिन अपराधोंका प्रतिकार संघ, बहुतसे भिक्षु या एक भिक्षुके सामने स्वीकार कर उसे छोड देनेपर हो जाता है उन्हे निस्सग्गिय-पाचित्तिय (=नैस्सर्गिक-प्रायश्चित्तिक) कहते हैं ।

[2] भिक्षुओके तीन वस्त्र (१) अन्तरवासक (=लुङ्गी), (२) उत्तरासग (=चादर), (३) सघाटी (=दोहरी चादर)

[3] वर्षावासके अंतमे गृहस्थों द्वारा एक सघाटी प्रदान की जाती है जिसे संघ अपनी ओरसे किसी सम्मानित भिक्षुको देता है । इसी चीवरको कठिन चीवर कहते हैं, क्योंकि इसकी प्राप्ति बहुत कठिन है ।

७—उसी (भिक्षु)को यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियाँ यथेच्छ चीवर प्रदान करे तो उन चीवरोंमेंसे अपनी आवश्यकतासे एक कम चीवर लेवे[1]। उससे अधिक लेवे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

८—उस भिक्षुके लिये ही *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने चीवरके लिये धन तैयार कर रखा हो—इस चीवरके धनसे चीवर तैयार कर अमुक नामवाले भिक्षुको हम चीवर दान करेंगे। वहाँ यदि वह भिक्षु प्रदान करनेसे पहिले ही जाकर अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेर-फेर करावे—अच्छा हो आयुष्मान् मुझे इस चीवरके धनसे ऐसा-ऐसा चीवर बनवाकर प्रदान करें; तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

९—उसी भिक्षुके लिये दो *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने एक एक चीवरकेलिये धन तैयार करके रखा हो—हम चीवरोंके इन धनोंसे एक एक चीवर बनवाकर अमुक नाम वाले भिक्षुको चीवर-दान करेंगे। तब यदि वह भिक्षु प्रदान करनेके पहिले ही अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमें हेर फेर करावे—अच्छा हो आयुष्मानो! मुझे इन प्रत्येक चीवरोंके धनसे दोनों मिलाकर इस-इस तरहका (एक) चीवर बनवा कर प्रदान करें, तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१०—उसी भिक्षुके लिये राजा, राजकर्मचारी, ब्राह्मण या गृहस्थ चीवरके लिये (यह कहकर) धनको दूत द्वारा भेजे—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर अमुक नामके भिक्षुको प्रदान करो। और वह दूत उस भिक्षुके पास जाकर यह कहे—भन्ते! आयुष्मानके लिये यह चीवरका धन आया है। इस चीवरके धनको आयुष्मान् स्वीकार करें। तो उस भिक्षुको उस दूतसे यह कहना चाहिये—आवुस! हम चीवरके धनको नहीं लेते। समयानुसार विहित चीवर ही को हम लेते हैं। यदि वह दूत उस भिक्षु को ऐसा कहे—क्या आयुष्मान्का कोई कामकाज करने वाला है? तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको आश्रम-सेवक या उपासक—किसी कामकाज करने वालेको बतला देना चाहिये—आवुस! यह भिक्षुओंका कामकाज करनेवाला है। यदि वह दूत उस कामकाज करनेवालेको समझाकर, उस भिक्षुके पास आकर यह कहे—भन्ते! आयुष्मान्ने जिस कामकाज करनेवालेको बतलाया उसे मैंने समझा दिया। आयुष्मान् समयपर जायें। वह आपको चीवर प्रदान करेगा। भिक्षुओ! चीवरकी आवश्यकता रखनेवाले भिक्षुको उस काम-काज करनेवालेके पास जाकर दो तीन बार याद दिलानी चाहिये—आवुस! मुझे चीवरकी आवश्यकता है। दो तीन बार प्रेरणा करनेपर, याद दिलानेपर, यदि चीवरको प्रदान करे तो ठीक न प्रदान करे तो चार बार पाँच बार, अधिकसे अधिक छः बार तक (उसके यहाँ जाकर) चुपचाप खड़ा रहना चाहिये। चार बार, पाँच बार और अधिकसे अधिक छः बार तक चुपचाप खड़े रहनेपर यदि चीवर प्रदान करे तो ठीक, उससे अधिक कोशिश करके यदि उस चीवरको प्राप्त करे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है। यदि न प्रदान करे तो जहाँसे चीवरका धन आया है वहाँ स्वयं जाकर या दूत भेजकर (कहलवाना चाहिये)—आप आयुष्मानोंने भिक्षुके लिये जो चीवरका धन भेजा था वह उस भिक्षु

[1] उदाहरणार्थ—यदि उसके तीनों चीवर नष्ट हो गये हो तो वह दो चीवर ले सकता है, दोके नष्ट होनेपर एक ले सकता है, और यदि एक ही नष्ट हुआ हो तो एक भी नहीं ले सकता।

के कामका नहीं हुआ। आयुष्मानो! अपने (धन)को देखो, तुम्हारा (वह) धन नष्ट न हो जाय—यह वहाँपर उचित कर्तव्य है।

(इति) चीवर वग्ग ॥ १ ॥

---

(२) आसनके कपड़े आदि

११—जो कोई भिक्षु कौषेय[1]से मिश्रित आसनको बनवाये उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१२—जो कोई भिक्षु स्वाभाविक काले भेड़के ऊनका आसन बनवाये उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१३—नया आसन बनवाते वक्त भिक्षुको भेड़के ऊनमेंसे दो भाग शुद्ध काला, तीसरा भाग सफेद और चौथा भाग कपिल वर्णका लेना चाहिये। यदि भिक्षु दो भाग शुद्ध काले, तीसरा भाग सफेद और चौथा भाग कपिल वर्णके भेड़के ऊनको न लेकर नया आसन बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१४—नया आसन बनवाकर भिक्षुको छ· वर्ष तक धारण करना चाहिये। यदि छः वर्षके पहिले ही उस आसनको छोडे या बिना (ही) छोडे भिक्षुओंकी सम्मतिके बिना दूसरे नये आसनको बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१५—बिछानेका आसन बनवाते वक्त भिक्षुको पुराने आसनके छोरसे बुद्धके बित्ते भर दुर्वर्ण करनेके लिये लेना चाहिये। यदि भिक्षु पुराने आसनके छोरसे बुद्धके बित्ते भर बिना लिये नया आसन बनवाये तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१६—रास्तेमे जाते वक्त यदि भिक्षुको भेड़की ऊन प्राप्त हो तो इच्छा होनेपर भिक्षु ले सकता है। (किन्तु) लेकर लेचलनेवाला न मिलनेपर तीन योजन भर तकही (अपने) ले जा सकता है। लेचलनेवालेके न होनेपर भी यदि उससे आगे लेजाय तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

१७—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीसे भेड़के ऊनको धुलवाये, रंगवाये या जटा खुलवाये, उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(३) चाँदी-सोने रुपये-पैसेका व्यवहार

१८—जो कोई भिक्षु सोना या रजत[2] (चाँदी आदिके सिक्के)को ग्रहण करे या ग्रहण करवाये या रखे हुए का उपयोग करे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

---

[1] कीडेके अंडेसे उत्पन्न होने वाले सूत—रेशम, अंडी, टसर आदि।

[2] रजत कार्षापण (सिक्के)का नाम है जो ताँबेके मासक (=माशा), दारूके माशा और लोहेके माशोके रूपमे व्यवहृत होता था। अट्ठकथामे सोने, चांदी, ताँबे, लकडी, हड्डी, चमडे, लाहके सिक्कोका भी जिक्र आता है।

१९—जो कोई भिक्षु नाना प्रकारके रूपयो (= रूपिय = सिक्का) का व्यवहार[1] करे। उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(४) क्रय-विक्रय

२०—जो कोई भिक्षु नाना प्रकारके खरीदने बेचनेके[2] कामको करे उसको *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(इति) कोसिय वग्ग ॥ २ ॥

(५) पात्र

२१—फाजिल (भिक्षा) पात्रको अधिकसे अधिक दस दिन तक रखना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

२२—जो कोई भिक्षु पाँचसे कम (जगह) टाँके (छेद वाले) पात्र[3]से दूसरे नये पात्रको बदले उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है। उस भिक्षुको वह पात्र भिक्षु-परिषद्को दे देना चाहिये। और जो (पात्र) भिक्षु-परिषद्का अन्तिम पात्र है उस भिक्षुको (यह कह कर) देना चाहिये—भिक्षु! यह तेरे लिये पात्र है। जब तक न टूटे तब तक (इसे) धारण करना।—यह यहाँ उचित (प्रतिकार) है।

(६) भैषज्य

२३—भिक्षुको घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़ ( ) आदि रोगी भिक्षुओंके सेवन करने लायक पथ्य (= भैषज्य)को ग्रहण कर अधिकसे अधिक सप्ताह भर रखकर भोग कर लेना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।[4]

---

[1] महा अशांतिके कारण (उस समय) एक ही भिक्षुको महानिद्देस (ग्रंथ) कंठस्थ था, तब चारों निकायोंके स्मरण करनेवाले तिष्य (= तिस्स) स्थविरके उपाध्याय महात्रिपिटक स्थविरने महारक्षित स्थविरसे कहा—'आवुस ! महारक्षित इस (भिक्षु)के पाससे महानिद्देस को सीख लो'। (अट्ठकथा)

[2] महासुम्म स्थविरके उपाध्यायका नाम अनुरुद्ध स्थविर था। उन्होंने अपने इस प्रकार के पात्रको घीसे भरकर संघको दिया। त्रिपिटक चूल-नाग स्थविरके शिष्योंके पास भी इस प्रकारका पात्र था (अट्ठकथा)।

[3] आधे आढक भर भात ग्रहण करते थे = मगधकी दो नाली चावलका भात ग्रहण करते थे। मगधकी नाली साढे बारह पलकी होती है—यह अन्धक-अट्ठकथामे कहा है। सिंहलद्वीप मे प्रचलित नाली बडी होती है, तमिल (देश) की नाली (अधिक) छोटी, मगधकी नाली (मध्यम) प्रमाणकी होती है। उस मगधकी डेढ नालीके बराबर एक सिहल-नाली होती है—यह महाअट्ठकथामे कहा है।' नाली भर भात = मगधकी नालीभरका भात। प्रस्थभरका भात = मगधकी नालीसे डेढ़ (= उपड्ढ) नाली भरका भात (अट्ठकथा)।

[4] उपतिष्य स्थविरसे शिष्योंने पूछा —'भन्ते ! मक्खन, दहीकी गुलिका और छाछ की बूँदे एकट्ठा पकानेसे मिल जानेपर तेज-वर्द्धक, रोग-नाशक हैं ? 'हाँ आवुसो !' स्थविरने

(७) चीवर

२४—ग्रीष्म (ऋतु)[1] के एक मास शेष रह जानेपर भिक्षुको *वर्षिकशाटिका*[2] चीवरके लिये यत्न करना चाहिये। ग्रीष्मका आधा मास रह जानेपर पहनना चाहिये। ग्रीष्मके एक मास शेष रहनेसे पहिले यदि *वर्षिकशाटिका* चीवरकी खोज पड़े; और ग्रीष्मके आधा मास शेष रहनेसे पहिले पहिने तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२५—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको स्वयं चीवर देकर फिर कुपित और नाराज हो, छीने या छिनवाये उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२६—जो कोई भिक्षु स्वयं सूत माँगकर कोली (= जुलाहा)से चीवर बुनवाये उसको *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२७—उसी भिक्षुके लिये *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनी कोलीसे चीवर बुनवाये और वह भिक्षु प्रदान करनेसे पहिले हो कोलीके पास जाकर (यह कह) चीवरमे हेर फेर कराये—आवुस ! यह चीवर मेरे लिये बुना जा रहा है। इसे लबा-चौड़ा बनाओ, घना, अच्छी तरह तना, ख़ूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छी तरह छाँटा हुआ बनाओ तो हम भी आयुष्मानोको कुछ दे देंगे, और नही तो कुछ भिक्षा से ही; तो उसे *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२८—कार्त्तिककी त्रैमासी पूर्णिमाके आनेसे दस दिन पहिलेही यदि भिक्षुको फाजिल चीवर प्राप्त हो तो (उसे) फाजिल समझते हुए भिक्षुको ग्रहण करना चाहिए। ग्रहणकर *चीवर-काल*[3] तक रखना चाहिये। उसके बाद यदि रखे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

२९—वर्षावास करते हुए कार्तिक पूर्णिमा तक शंका-युक्त=भय-सहित, आरण्यक (=वन) आश्रमोमे रहते हुए भिक्षु चाहे तो तीन चीवरोमेसे एक चीवरको रख दे सकता है, यदि उसे उस चीवरके चलेजानेका डर हो। (किन्तु) उस भिक्षुको अधिकसे अधिक छः रात तक उस चीवरके बिना रहना चाहिये। यदि भिक्षुओंकी सम्मतिके बिना उससे अधिक (समय तक चीवरके) बिना रहे तो उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

कहा। महासुम्म स्थविरने कहा—विहित मांसकी चर्बी आमिष युक्त भोजनके साथ (ग्रहण की) जा सकती है। और दूसरी (चीजे) निरामिष भोजनके साथ किन्तु महापद्म स्थविरने—यह कुछ नहीं—कह खंडन कर कहा—'वातरोगी भिक्षु पचमूलके कषायसे यवागू (= खिचड़ी)मे भालू और सूअरके तेल आदिको डाल पीते हैं, और वह तेज देनेवाली रोगनाशक होती है, (इसलिये) वह (ग्रहण की जा) सकती है। (अट्ठकथा)

[1] आषाढ़ पूर्णिमा तक ग्रीष्मका अन्तिम मास होता है और बादके प्रतिपद्से कार्तिक पूर्णिमा तक वर्षा। (अट्ठकथा)

[2] बरसातमे कपड़ोके जल्दी न सूखनेसे भिक्षु बरसात भरके लिये लुङ्गीके तौरपर पहनने लायक एक और चीवर ले सकता है, इसे वर्षिकशाटिका कहते हैं।

[3] आश्विन पूर्णिमाके बादकी प्रतिपदासे कार्त्तिक-पूर्णिमा तकका समय।

(८) संघके लाभमें भाँजी मारना

३०—जो कोई भिक्षु संघके लिये प्राप्त वस्तु (=लाभ)को अपने लिये परिवर्तन कराले उसे *निस्सग्गिय पाचित्तिय* है।

(इति) पत्त वग्ग ॥३॥

आयुष्मानो! तीस *निस्सग्गिय पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या (आपलोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

निस्सग्गिय-पाचित्तिय समाप्त ॥४॥

---

§ ५—पाचित्तिय (५०-१४१)

आयुष्मानो ! यह बानबे *पाचित्तिय* दोष कहे जाते है।

(१) भाषण-संबंधी

१—जानबूझकर झूठ बोलनेमे *पाचित्तिय* है।

२—*ओमसवाद* (=वचन मारने)मे *पाचित्तिय* है।

३—भिक्षुओकी चुगली करनेमे *पाचित्तिय* है।

४—भिक्षुका भिक्षु-भिन्न (=*अनुपसपन्न*)को पदोंके क्रमसे *धर्म* (=बुद्धोपदेश) बॅचवानेमे *पाचित्तिय* है।

(२) साथ लेटना

५—जो कोई भिक्षु अनुपसपन्नके साथ दो तीन रातसे अधिक एकसाथ शय्या रक्खे तो *पाचित्तिय* है।

६—जो भिक्षु स्त्रीके साथ शयन करे उसे *पाचित्तिय* है।

(३) धर्मोपदेश

७—विज्ञ पुरुपको छोड़ जो कोई भिक्षु स्त्रीको पॉच छः वचनोसे अधिक धर्मका उपदेश दे उसे *पाचित्तिय* है।

(४) दिव्य-शक्ति प्रदर्शन

८—जो कोई भिक्षु *अनुपसपन्नको* दिव्य-शक्तिके बारेमे यथार्थ भी कहे उसे *पाचित्तिय* है।

(५) अपराध प्रकाशन

९—जो कोई भिक्षु (किसी) भिक्षुके *दुट्ठुल*[1] अपराधको भिक्षुओंकी सम्मतिके विना *अनुपसम्पन्न* (पुरुष)से कहे उसे *पाचित्तिय* है।

(६) जमीन खोदना

१०—जो कोई भिक्षु जमीन खोदे या खुदवाये उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) मुसावाद वग्ग ॥१॥

---

[1] चार पाराजिका और तेरह संघादिसेस दोप दुट्ठुल कहे जाते हैं।

(७) वृक्ष काटना

११—भूत-ग्राम (=तृण वृक्ष आदि)के गिरानेमे *पाचित्तिय* है।

(८) संघके पूछनेपर चुप रहना

१२—(संघके पूछनेपर) उत्तर न दे हैरान करनेमे *पाचित्तिय* है।

(९) निंदना

१३—निंदा और बदनामी करनेमे *पाचित्तिय* है।

(१०) संघकी चीजमें बेपर्वाही

१४—जो कोई भिक्षु संघके मंच, पीढ़ा, बिस्तरा, और गद्देको खुली जगहमे बिछा या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उन्हे न उठाता है न उठवाता है, या बिना पूछेही चला जाता है उसे *पाचित्तिय* है।

१५—जो कोई भिक्षु, संघके *विहार* (=आश्रम) मे बिछौना बिछाकर या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उसे न उठाता है, न उठवाता है, या बिना पूछेही चला जाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

१६—जो कोई भिक्षु, जानकर संघके *विहार*मे पहिलेसे आये भिक्षुका बिना ख्याल किये, यही सोचकर कि दूसरा नही (इस तरह) आसन लगाये कि जिससे (पहलेवाले भिक्षुको) दिक्कत हो और वह चला जाये, तो उसे *पाचित्तिय* है।

१७—जो कोई भिक्षु कुपित और असतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको संघके विहारसे निकाले या निकलवाये उसे *पाचित्तिय* है।

१८—जो कोई भिक्षु संघके विहारमे ऊपरके कोठेपर पैर धबधबाते हुए मच (=चारपाई) या पीठपर एकदमसे बैठे या लेटे उसे *पाचित्तिय* है।

१९—भिक्षुको स्वामीवाला (=महल्लक) विहार बनवाते समय, दरवाजेमें किवाडोंके बद करने और जंगलेके घुमाने या लीपनेके समय हरियालीसे अलग खड़ा हो (वैसा) करना चाहिये। उससे आगे यदि हरियालीपर खड़े होकर करे तो *पाचित्तिय* है।

(११) बिना छना पानी पीना आदि

२०—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणी-सहित पानीसे, तृण या मिट्टीको सीचे या सिचवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भूत-गाम वग्ग ॥२॥

(१२) भिक्षुणियोंको उपदेश

२१—जो कोई भिक्षु (संघकी) सम्मतिके बिना भिक्षुणियोको उपदेश दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२२—सम्मति होनेपर भी जो भिक्षु सूर्यास्तके बाद भिक्षुणियोको उपदेश दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२३—जो कोई भिक्षु सिवाय खास अवस्थाके भिक्षुणि-आश्रममे जाकर भिक्षुणियोको उपदेश करे तो पाचित्तिय है। विशेष अवस्था है, भिक्षुणीका रुग्ण होना।

२४—जो कोई भिक्षु ऐसा कहे—आमिष (=भोजन वस्त्र आदि)के लिये भिक्षु, भिक्षुणियोको उपदेश करते है, उसे *पाचित्तिय* है।

(१३) भिक्षुणीके सम्बन्धमें

२५—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीको परिवर्तनके बिना (और तरहसे) चीवर दे, उसे *पाचित्तिय* है।

२६—जो कोई भिक्षु *अज्ञातिका* भिक्षुणीके चीवरको सिये या सिलवाये, उसे *पाचित्तिय* होता है।

२७—जो कोई भिक्षु खास अवस्थाको छोड़ भिक्षुणीके साथ सलाह करके, चाहे दूसरेही गाँव तक, एक रास्तेसे जाय, उसे *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—जब कि वह मार्ग काफिले (=सार्थ)का है या भय और शङ्का-पूर्ण है।

२८—जो कोई भिक्षु, भिक्षुणीके साथ सलाह करके, तिर्छे उतारने वालीको छोड, (स्रोतके) ऊपर जानेवाली या नीचे जानेवाली नाव[1] पर चढ़े, उसे *पाचित्तिय* है।

२९—जो कोई भिक्षु जानकर भिक्षुणीके पकवाये भोजनको, सिवाय गृहस्थके विशेष समारोहके, खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३०—जो कोई भिक्षु भिक्षुणीके साथ अकेले एकान्तमे बैठे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भिक्खुनोवाद-वग्ग ॥३॥

(१४) भोजन सम्बन्धी

३१—नीरोग भिक्षुको (एक) निवास-स्थानमे एक ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। इससे अधिक ग्रहण करे, उसे पाचित्तिय है।

३२—सिवाय विशेष अवस्थाओके *गण*के साथ भोजन करनेमे *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्थाएं ये है—रोगी होना, चीवर-दान, चीवर बनाना, यात्रा, नावकी यात्रा *महासमय* (=बुद्ध आदिके दर्शनके लिये जाना) और श्रमणो (=सभी मतके साधुओ)के भोजनका समय।

३३—सिवाय विशेष समयके बंधानवाले भोजनके करनेमे *पाचित्तिय* है। विशेष समय है—रोग चीवर-दान और चीवर बनाना।

३४—घरपर जानेपर यदि (गृहस्थ) भिक्षुको आग्रहपूर्वक पूआ (= पाहुर), मंथ (= मट्ठा) यथेच्छ प्रदान करे तो इच्छा होनेपर पात्रके मेखला तक भरा ग्रहण करे। उससे अधिक ग्रहण करे, उसे *पाचित्तिय* है। पात्रको मेखला तक भरकर ग्रहणकर वहाँसे निकल भिक्षुओमे बाँटना चाहिये—यह उस जगह उचित है।

३५—जो कोई भिक्षु भोजन कर लेनेपर, तृप्त हो जाने[2] पर, खादनीय या भोजनीयको अधिक खाये या भोजन करे, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] यहाँ केवल नदियोंसे ही नहीं महातीर्थ पट्टन (= बन्दरगाह)से जो ताम्रलिप्ति या सुवर्णभूमि जावे, उसे भी आपत्ति नहीं है। सभी अट्ठकथाओंमे नदी सम्बन्धी आपत्तिका ही विचार किया गया है, समुद्र सम्बन्धी नही (—अट्ठकथा)।

[2] मांसको अलग कर मांसके रस (=शोरवा)को ग्रहण करो—यह कहनेपर, यदि उस

३६—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको, खा लेनेपर, तृप्त हो जानेपर, अधिक खादनीय भोजनीयको आग्रह पूर्वक दे—"अहो भिक्षु ! खा, भोजन कर"—यह सोच कि (इसके इस) खानेको लेनेपर (पीछे मै आक्षेप करूँगा)—उसे *पाचित्तिय* है।

३७—जो कोई भिक्षु *विकाल* (= मध्याह्नके बाद)मे खाद्य, भोज्य खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३८—जो कोई भिक्षु रख छोड़े खाद्य, भोज्यको खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

३९—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़, मछली, मांस, दूध, दही (आदि) जो अच्छे भोजन है उन्हे यदि भिक्षु नीरोग होते हुए अपने लिये माँगकर खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

४०—जो कोई भिक्षु जल और दन्तधावनको छोड विना दिये मुखमे जाने लायक आहारको ग्रहण करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भोजन वग्ग ॥४॥

४१—जो कोई भिक्षु अचेलक (= नंगे साधू), परिव्राजक या परिव्राजिकाको अपने हाथसे खाद्य, भोज्य देवे तो *पाचित्तिय* है।

४२—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको ऐसा कहे—"आओ आवुस ! गाँव या कस्बेमे भिक्षाटनके लिये चलें।" फिर उसे दिलवाकर या न दिलवाकर प्रेरित करे—"आवुस ! जाओ, तुम्हारे साथ मुझे बात करना या बैठना अच्छा नहीं लगता।"—दूसरा (कारण) न होने पर, सिर्फ इतने ही कारणसे *पाचित्तिय* है।

४३—जो कोई भिक्षु भोजवाले कुलमें प्रविष्ट हो बैठकी (बैठक बाजी) करता है उसे *पाचित्तिय* है।

४४—जो कोई स्त्रीके साथ एकान्त पर्देवाले आसनमे बैठे तो *पाचित्तिय* है।

४५—जो कोई भिक्षु स्त्रीके साथ अकेले, एकान्तमे बैठे उसे *पाचित्तिय* है।

४६—सिवाय विशेष अवस्थाके, निमंत्रित होनेपर यदि भिक्षु भोजन रहनेपर भी विद्यमान भिक्षुको बिना पूछे भोजनके पहिले या पीछे गृहस्थोंके घरमे गमन करे तो *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था है—चीवर बनाने और चीवर-दान (का समय)।

४७—नीरोग भिक्षुको *पुनः प्रवारणा*[1] और *नित्य*[1]*-प्रवारणा*के सिवाय चातुर्मासके भोजन आदि पदार्थ (=प्रत्यय)के दानको सेवन करना चाहिये। उससे बढ़कर यदि सेवन करे तो *पाचित्तिय* है।

मे सरसों भरका मांस का टुकडा हो, तो उसे छोडनेपर प्रवारणा (=भोजनकी पूर्ति) होती है; यदि छान लिया गया हो, तो (लिया जा) सकता है—यह अभय स्थविरने कहा है। मांस-रसके लिये पूछनेपर महास्थविरने—एक मुहूर्त ठहरो—कह, 'प्यालेको आवुसो !—लाओ'—कहा। यहाँ कैसा है—पूछनेपर महासुम्म स्थविरने—लानेवालेका गमन टूट गया इसलिये प्रवारणा हो गई—कहा। महापद्म स्थविरने—'यह कहाँ जाता है ? इसका गमन कैसा है ?—ऐसा ग्रहण करनेपर भी प्रवारणा होती है—यह कहकर प्रवारणा नही करता है'—कहा (अट्ठकथा)।

[1] रोगी होनेपर पथ्यादिका दान पुन. प्रवारणा और नित्य-प्रवारणा है।

(१५) सेनाका तमाशा

४८—जो कोई भिक्षु वैसे किसी कामके बिना सेना प्रदर्शनको देखने जाये तो *पाचित्तिय* है।

४९—यदि उस भिक्षुको सेनामे जानेका कोई काम हो तो उसे दो तीन रात सेनामे बसना चाहिये। उससे अधिक बसे तो *पाचित्तिय* है।

५०—दो तीन रात सेनामे बसते हुए (भी) यदि भिक्षु रण-क्षेत्र (= *उद्योधिका*), परेड (=*बलाग्र*), *सेना-व्यूह* या *अनीक* (= हाथी घोड़ा आदिकी सेनाओंकी क्रमसे स्थापना)को देखने जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) अचेलक वग्ग ॥५॥

(१६) मद्य-पान

५१—सुरा और कच्ची शराब पीनेमे *पाचित्तिय* है।

(१७) हँसी खेल

५२—उँगलीसे गुदगुदानेमे *पाचित्तिय* है।

५३—पानीमे खेल करनेमे *पाचित्तिय* है।

५४—(व्यक्ति या वस्तुके) तिरस्कार करनेमे *पाचित्तिय* है।

५५—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको डरवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(१८) आग तापना

५६—वैसी जरूरत न होते जो कोई नीरोग भिक्षु तापनेकी इच्छासे आग जलाये या जलवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(१९) स्नान

५७—जो कोई भिक्षु सिवाय विशेष अवस्थाके आध माससे पहले नहाये तो *पाचित्तिय* है। विशेष अवस्था यह हैं—ग्रीष्मके पीछेके डेढ़ मास और वर्षाका प्रथम मास, यह ढाई मास और गर्मीका समय, जलन होनेका समय, रोगका समय, काम (=लीपने पोतने आदिका समय), रास्ता चलनेके समय तथा आँधी-पानीका समय।

(२०) चीवर पात्र

५८—नया चीवर पानेपर नीला, काला या कीचड़ इन तीन दुर्वर्ण करनेवाले (पदार्थों)मेसे एकसे बदरंग (= दुर्वर्ण) करना चाहिये। यदि भिक्षु तीन बदरंग करने वाले (पदार्थों)मेसे किसी एकसे नये चीवरको बिना बदरंग किये उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

५९—जो कोई भिक्षु (किसी) भिक्षु, भिक्षुणी, *शिक्षमाणा*,[1] श्रामणेर या श्रामणेरी को, स्वयं चीवर प्रदान कर बिना लौटाने (की सम्मति पाये) उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] जो भिक्षुणी होनेकी उम्मीदवारी कर रही हो।

६०—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुके पात्र, चीवर, आसन, सुई रखनेकी फोंफी (सूचीघर) या कमरबन्दको हटाकर चाहे परिहासके लिये ही क्यो न रक्खे, *पाचित्तिय* है।

(इति) सुरापान वग्ग ॥६॥

(२१) प्राणिहिंसा

६१—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणीके जीवको मारे, उसे *पाचित्तिय* है।

६२—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणि-युक्त जलको पीये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२२) झगडा बढ़ाना

६३—जो कोई भिक्षु जानते, धर्मानुसार फैसला हो गये मामलेको फिरसे चलवाने के लिये प्रेरणा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(२३) अपराध छिपाना

६४—जो कोई भिक्षु जानते हुए (दूसरे) भिक्षुमे *दुट्ठुल्ल*[1] अपराधको छिपाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२४) कम आयुवालेकी उपसम्पदा

६५—यदि भिक्षु जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको *उपसम्पन्न* (= भिक्षु बनाना) करे तो वह व्यक्ति अन्-उपसम्पन्न (समझा जाय), वह भिक्षु निन्दनीय हैं—यह इस (अपराध)मे *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(२५) यात्राके साथी

६६—जो कोई भिक्षु जानते हुए सलाह करके चोरोके काफिलेके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गॉव ही तक, जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

६७—जो कोई भिक्षु सलाह करके स्त्रीके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गॉव तक ही, जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

(२६) बुरी धारणा

६८[2]—जो कोई भिक्षु ऐसा कहे—मै भगवान्के धर्मको ऐसे जानता हूँ, कि, भगवान्के जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक कार्य कहे है, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नही कर सकते। तो (दूसरे) भिक्षुओको उसे ऐसा कहना चाहिये—"मत आयुष्मान्! ऐसा कहो। मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नही है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। भगवान्ने विघ्नकारक कार्योको अनेक प्रकारसे विघ्न करने वाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते है—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुओके कहने पर वह भिक्षु यदि जिद् करे तो भिक्षुओको तीन बार तक उसे छोडनेके लिये उस भिक्षुको कहना चाहिये। यदि तीन बार कहे जानेपर उसे छोड़दे तो अच्छा, यदि न छोड़े तो *पाचित्तिय* है।

---

[1] चार पाराजिक और तेरह सघादिसेस। [2] देखो 'मज्झिम निकाय' १।३।२, पृष्ठ ८४।

६९—यदि कोई भिक्षु जानते हुये उक्त (प्रकारकी बुरी) धारणावाले (तथा) धर्मानुसार (मत) परिवर्तन न करनेवाले उक्त विचारको न छोड़े भिक्षुके साथ सह-भोज, सह-वास या सह-शय्या करता है, उसे *पाचित्तिय* है।

७०—(क) *श्रमणोद्देश*[1] भी यदि ऐसा कहे—"मै भगवान्‌के धर्मको ऐसे जानता हूँ कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (= विघ्नकारक) कार्य कहे है, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नही कर सकते", तो (दूसरे) भिक्षुओंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आवुस! श्रमणोद्देश! मत ऐसा कहो। मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नही है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कार्योको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वे विघ्न करते है—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा कहे जानेपर यदि वह श्रमणोद्देश जिद्द करे तो भिक्षु श्रमणोद्देशसे ऐसा कहे—"आवुस श्रमणोद्देश! आजसे तुम उन भगवान्‌को अपना शास्ता (= उपदेशक= गुरु) न कहना; और जो दूसरे श्रमणोद्देश दो रात, तीन रात तक भिक्षुओंके साथ रहते हैं वह (साथ रहना) भी तुम्हारे लिये नही है। चलो, (यहाँसे) निकल जाओ!"

(ख) जो कोई भिक्षु जानते हुए, इस प्रकार निकाले हुए श्रमणोद्देशको, सेवामे रक्खे, (उसके साथ) सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) सप्पाणक वग्ग ॥७॥

(२७) धार्मिक बातका अस्वीकारना

७१—जो कोई भिक्षु, भिक्षुओंके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आवुस! मै तबतक इन भिक्षु-नियमो (=शिक्षा-पदो)को नही सीखूँगा जबतक कि दूसरे चतुर *विनय-धर*[2] भिक्षुको न पूछ लूँ, उसे *पाचित्तिय* है। भिक्षुओ! सीखनेवाले भिक्षुको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है।

(२८) प्रातिमोक्ष

७२—जो कोई भिक्षु *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)की आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोको आवृत्तिसे क्या मतलब जो सन्देह, पीड़ा और क्षोभ पैदा करने वाले है। (इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमे *पाचित्तिय* होता है।

७३—जो कोई भिक्षु प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"आवुस! यह तो मै अब जानता हूँ कि सूत्रोमे आये, सूत्रो द्वारा अनुमोदित इस धर्मकी भी प्रति पन्द्रहवे दिन आवृत्तिकी जाती है। यदि दूसरे भिक्षु उस भिक्षुको पूर्वसे बैठा जाने; दो तीन या अधिक *पातिमोक्ख*की आवृत्ति कीजानेपर भी (उसको वैसेही पाये), तो बेसमझीके कारण वह भिक्षु मुक्त नही हो सकता। जो कुछ अपराध उसने किया है उसका धर्मानुसार प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आवुस! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते

---

[1] भिक्षु बननेका उम्मेदवार।

[2] जिसको विनयपिटक कंठस्थ है।

वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमे धारण नही करता। उस मोहके करनेपर (=मूढ़तामे) *पाचित्तिय* है।

(२९) मारना धमकाना

७४—जो कोई भिक्षु कुपित, असतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको पीटता है, उसे *पाचित्तिय* है।

७५—जो कोई भिक्षु कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरे) भिक्षुको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है।

(३०) संघादिसेसका दोषारोप

७६—जो कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुके ऊपर निर्मूल *सघादिसेस* (दोष)का लांछन लगाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(३१) भिक्षुको दिक् करना

७७—यदि कोई भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको और नही सिर्फ इसी मतलवसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी जान बूझकर संदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है।

७८—यदि कोई भिक्षु—दूसरे नही सिर्फ इसी मतलवसे कि जो कुछ यह कहेंगे उसे सुनूँगा—कलह करते, विवाद करते, झगडते भिक्षुओके (झगडेको सुननेके लिये) कान लगाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

(३२) सम्मति-दान

७९—यदि कोई भिक्षु धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी सम्मति (=छन्द) देकर पीछे मुकर जाता है, उसे *पाचित्तिय* है।

८०—यदि कोई भिक्षु, सघके फैसला करनेकी वातमे लगे रहते वक्त विना (अपना) छन्द (=सम्मति=vote) दियेही आसनसे उठकर चला जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

८१—जो कोई भिक्षु सारे संघके साथ (एकमत हो) चीवर देकर पीछे पलट जाता है—मुँह देखी करके (यह) भिक्षु लोग सघके धनको बाँटते हैं—उसे *पाचित्तिय* है।

(३३) सांघिक लाभमें भाँजी मारना

८२—जो कोई भिक्षु जानते हुए संघके लिये मिले हुए लाभको (एक) व्यक्ति (के लाभके रूपमे) परिणत कराये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) सहधम्मिक वग्ग ॥८॥

(३४) राजप्रासादमें प्रवेश

८३—जो कोई भिक्षु *मूर्द्धाभिषिक्त* (=Sovereign) क्षत्रिय राजाके (राजप्रासाद)मे राजा और रानीके शयनागारसे बाहर न निकले समय, विना पहिले सूचना दिये *इन्द्र-कील*[1] (=इन्दखील)के आगे बढ़े, उसे *पाचित्तिय* है।

---

[1] शयनागारका द्वार-स्तंभ।

(३५) बहुमूल्य वस्तुका हटाना

८४—(क) जो कोई भिक्षु रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* और सराय (=आवसथ)को छोड, अन्यत्र लेजाये या लिवाजाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(ख) रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* या *आवसथ*मे लेकर या लिवाकर भिक्षुको उसे (एक जगह) रख देना चाहिये, कि जिसका होगा वह ले जायगा।—यह यहाँ उचित है।

(३६) अपराह्नको गाँवमे जाना

८५—जो कोई भिक्षु विद्यमान भिक्षुको बिना पूछे *विकाल*मे (=मध्याह्नके बाद) गाँवमे बिना किसी वैसे अत्यन्त आवश्यक कामके प्रवेश करे तो *पाचित्तिय* है।

(३७) सूचीघर

८६—जो कोई भिक्षु हड्डी, दन्त या सींगके *सूचीघर*को बनवाये तो (उस सूचीघर का) तोड देना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(३८) चौकी, चारपाई

८७—नई चारपाई या तख्त (=पीठ)को बनवाते वक्त भिक्षु उन्हे, निचले ओटका छोड बुद्धके अगुलसे आठ अगुलवाले पावोका बनवाये। इसके अतिक्रमण करनेपर (पावोंको नाप करके) कटवा देना *पाचित्तिय* है।

८८—जो कोई भिक्षु चारपाई या तख्तको रुई भरकर बनवाये तो उधेड डालना *पाचित्तिय* है।

८९—(बैठनेका आसन) बनवाते समय भिक्षु उसे प्रमाणके अनुसार बनवावे। प्रमाण इस प्रकार है—लबाई बुद्धके बित्तेसे दो बित्ता। चौडाई डेढ, और मगजी एक बित्ता। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(३९) वस्त्र

९०—खुजली ढाँकनेके वस्त्र (लगोट)को बनवाते समय भिक्षु प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है—सुबुद्धके बित्तेसे चार बित्ता लबा दो बित्ता चौडा। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

९१—वर्षाकी लुगी (=वर्षिक-शाटिका) बनवाते समय भिक्षु उसे प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है—सुबुद्धके बित्तेसे लबाई छ बित्ता, चौडाई ढाई बित्ता। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

९२—जो कोई भिक्षु बुद्धके चीवरके बराबर या उससे बडा चीवर बनवाये तो काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है। बुद्धके चीवरका प्रमाण इस प्रकार है—सुगत (=बुद्ध)के बित्तेसे लबाई नव बित्ता और चौडाई छ बित्ता।

(इति) रतन वग्ग ॥९॥

आयुष्मानो ! यह बानबे *पाचित्तिय* दोष कहे गये। आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है। आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिए चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

पाचित्तिय समाप्त ॥५॥

---

§६—पाटिदेसनिय (१४२-१४५)

(१) भोजनग्रहण और भिक्षुणी

आयुष्मानो ! यह चार *पाटिदेसनिय* दोष कहे जाते है ।

१—जो कोई भिक्षु (गृहस्थके) घरमे प्रविष्ट *अज्ञातिका* भिक्षुणीके हाथसे खाद्य भोज्यको अपने हाथ ग्रहण कर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको *पटिदेसना* (प्रतिदेशना=अपराधकी स्वीकृति) करनी चाहिये—"आवुस ! मैने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्यको किया, सो मै उसको प्रतिदेशना करता हूँ ।"

२—गृहस्थके घरोमे निमंत्रित हो भिक्षु भोजन करते है । वहाँ वह भिक्षुणी स्नेह दिखलाती हुई खड़ी हो (कहती है)—"यहाँ सूप (उड़द या मूँगकी दाल) दो, यहाँ भात दो," तो उन भिक्षुओको उस भिक्षुणीको रोक देना चाहिये—"भगिनी ! जब तक भिक्षु भोजन करते है तब तक तू परे चली जा ।" यदि एक भिक्षुको भी उस भिक्षुणीका (यह कहकर) हटाना ठीक न जँचे कि—"भगिनी जब तक भिक्षु भोजन करते है, तब तक तू परे चलीजा" तो उन (सारे) भिक्षुओको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुसो ! हमने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्यको किया, सो हम उसकी प्रतिदेशना करते है ।"

अपने हाथसे ले भोजन करना

३—जो वह *शैक्ष्य*[1] (सेख) माने गये कुल है उन कुलोमे जो भिक्षु अनिमंत्रित या नीरोग रहते (जाकर) खाद्य भोज्यको अपने हाथसे ग्रहणकर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुस ! मैने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया सो मै उसकी प्रतिदेशना करता हूँ ।"

४—जो वह भयावने शंकायुक्त आरण्यक आश्रम है वैसे आश्रमोमे विहार करने वाला, जो भिक्षु आरामके भीतर भी पहलेसे न निवेदित किये खाद्य भोज्यको निरोग रहते अपने हाथसे ले कर खाये या भोजन करे तो उस भिक्षुको प्रतिदेशना करनी चाहिये—"आवुस ! मैने निंदनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया, सो मै उसकी प्रतिदेशना करता हूँ ।"

आयुष्मानो ! यह चार *पाटिदेसनिय* दोष कहे गये । आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या आप लोग इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ— क्या शुद्ध है ? आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ ।

पाटिदेसनिय समाप्त ॥ ६ ॥

---

[1] अत्यन्त श्रद्धालु किन्तु धनहीन कुल ।

§७–सेखिय (१४६-२२०)

आयुष्मानो ! यह (पचहत्तर) *सेखिय*[1] बाते कही जाती है ।

(१) चीवर पहिनना

१—*परिमंडल* (चारो ओरसे ढाँककर वस्त्र) पहिनूँगा—यह शिक्षा (ग्रहण) करनी चाहिये ।

२—*परिमडल* ओढ़ूँगा ० ।

(२) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

३—(गृहस्थोके) घरमे अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित कर जाऊँगा—०।

४—घरमे अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित कर बैठूँगा—०।

५—घरमे अच्छी तरह सयमके साथ जाऊँगा—०।

६—घरमे अच्छी तरह सयमके साथ बैठूँगा—०।

७—घरमे नीची आँख कर जाऊँगा—०।

८—घरमे नीची आँख कर बैठूँगा—०।

९—घरमे शरीरको बिना उतान किये जाऊँगा—०।

१०—घरमे शरीरको बिना उतान किये बैठूँगा—०।

(इति) परिमंडल वग्ग ॥ १॥

११—(गृहस्थोके) घरमे कहकहा न लगाते जाऊँगा—०।

१२—(गृहस्थोके) घरमे कहकहा न लगाते बैठूँगा—०।

१३—घरमे चुपचाप जाऊँगा—०।

१४—घरमे चुपचाप बैठूँगा—०।

१५—घरमे देहको न भाँजते हुए जाऊँगा—०।

१६—घरमे देहको न भाँजते हुए बैठूँगा—०।

१७—घरमे बाँहको न भाँजते हुए जाऊँगा—०।

१८—घरमे बाँहको न भाँजते हुए बैठूँगा—०।

१९—घरमे सिरको न हिलाते हुए जाऊँगा—०।

२०—घरमे सिरको न हिलाते हुए बैठूँगा—०।

(इति) उज्जग्घिक वग्ग ॥२॥

---

[1] "जिस शिक्षा (भिक्षु-नियम) को (लोग) सीखते हैं, वह सेखिय (शिक्षणीय) हैं (अट्ठकथा) ।"

२१—घरमे कमरपर हाथ न रखकर जाऊँगा—०।
२२—घरमे कमरपर हाथ न रखकर बैठूँगा—०।
२३—घरमे न अवगुंठित हो (=सिर ढाँके) जाऊँगा—०।
२४—घरमे न अवगुंठित हो (=सिर ढाँके) बैठूँगा—०।
२५—घरमे न पंजोंके बल जाऊँगा—०।
२६—घरमे न पलथी मारकर बैठूँगा—०।

(३) भिक्षान्न ग्रहण और भोजन

२७—भिक्षान्नको सत्कारपूर्वक ग्रहण करूँगा—०।
२८—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।
२९—(अधिक नही) मात्राके अनुसार सूप(=तेमन)वाले भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।
३०—(पात्रसे उभरे नही) समतल भिक्षान्नको ग्रहण करूँगा—०।

(इति) खम्भक वग्ग ॥३॥

३१—सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३२—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३३—एक ओरसे भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३४—मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको खाऊँगा—०।
३५—पिंड (स्तूप)को मीज मीजकर नही भोजन करूँगा—०।
३६—अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (व्यजन)को भातसे नही ढाँकूँगा—०।
३७—नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नही भोजन करूँगा—०।
३८—न अवज्ञाके ख्यालसे दूसरोंके पात्रको देखूँगा—०।
३९—न बहुत बडा ग्रास बनाऊँगा—० ।
४०—ग्रासको गोल बनाऊँगा—० ।

(इति) सक्कच्च-वग्ग ॥४॥

४१—ग्रासको बिना मुँह तक लाये मुखके द्वारको न खोलूँगा—० ।
४२—भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमे न डालूँगा—० ।
४३—ग्रास पड़े हुए मुखसे बात नही करूगा—० ।
४४—ग्रास उछाल उछालकर नही खाऊँगा—० ।
४५—ग्रासको काट काटकर नही खाऊँगा—० ।
४६—न गाल फुला फुलाकर खाऊँगा—० ।
४७—न हाथ झाड़ झाड़कर खाऊँगा—० ।
४८—न जूठ बिखेर बिखेरकर खाऊँगा—० ।
४९—न जीभ चटकार चटकारकर खाऊँगा—० ।
५०—न चपचप करके खाऊँगा—० ।

(इति) कवल-वग्ग ॥५॥

५१—न सुड़सुड़कर खाऊँगा—० ।
५२—न हाथ चाट चाटकर खाऊँगा—० ।
५३—न पात्र चाट चाटकर खाऊँगा—० ।
५४—न ओठ चाट चाटकर खाऊँगा—० ।

५५—न जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन पकड़ूँगा—० ।
५६—न जूठ लगे पात्रके धोवनको घरमे छोड़ूँगा—० ।

(४) कैसेको उपदेश न करना—

५७—हाथमे छाता धारण किये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
५८—हाथमे दंड लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
५९—हाथमे शस्त्र लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६०—हाथमे आयुध लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।

(इति) सुरुसुरु-वग्ग ॥६॥

६१—खड़ाऊँ पर चढ़े नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६२—जूता पहने नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६३—सवारीमे बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
६४—शय्यामे लेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।
६५—पालथी मारकर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।
६६—सिर लपेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।
६७—ढँके शिरवाले नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।
६८—न (स्वय) भूमिपर बैठकर आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगा—० ।
६९—न नीचे आसनपर बैठकर ऊँचे आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगा—० ।
७०—खड़े हो, बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।
७१—(स्वय) पीछे पीछे चलते आगे आगे जाते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगा—० ।
७२—(स्वयं) रास्तेसे हटकर चलते हुए, रास्तेसे चलते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगा—० ।

(५) पिसाब-पाखाना

७३—नीरोग रहते खड़े खड़े पिसाब-पाखाना नहीं करूँगा—० ।
७४—नीरोग रहते हरियालीमे पिसाब-पाखाना नही करूँगा—० ।
७५—नीरोग रहते पानीमे पिसाब-पाखाना नहीं करूँगा—० ।

(इति) पादुका-वग्ग ॥७॥

आयुष्मानो ! (यह पचहत्तर) *सेखिय* बाते कह दी गई । आयुष्मानोसे पूछता हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ ।

सेखिय समाप्त ॥७॥

---

§८—अधिकरण-समथ[1] (२२१-२७)

आयुष्मानो ! (समय समयपर) उत्पन्न हुए अधिकरणो (=झगड़ों)के शमनके लिये यह सात *अधिकरण-समथ* (=झगड़ामिटाव) कहे जाते है—

(१) झगड़ा मिटानेके तरीके

१—सन्मुख-विनय देना चाहिये।

२—स्मृति-विनय देना चाहिये।

३—अमूढ़-विनय देना चाहिये।

४—प्रतिज्ञात-करण-(=स्वीकार) कराना चाहिये।

५—यद्भूयसिक।

६—तत्पापीयसिक।

७—तिणवत्थारक।

आयुष्मानो ! यह सात अधिकरण समथ कहे गये। आयुष्मानोंसे पूछता हूँ—क्या आप लोग इनमे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछता हूँ—क्या शुद्ध है ? आयुष्मान् लोग शुद्ध है, इसीलिए चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।

अधिकरणसमथ समाप्त ॥८॥

आयुष्मानो ! *निदान* कह दिया गया। (१—४) चार *पाराजिक* दोष कह दिये गये। (५—१७) तेरह *सघादिसेस* दोष कह दिये गये। (१८—१९) दो *अनियत* दोष कह दिये गये। (२०—४९) तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (५०—१४१) बानबे *पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। (१४२—१४५) चार *पाटिदेसनिय* दोष कह दिये गये। (१४६—२२०) (पचहत्तर) *सेखिय* बाते कह दी गई। (२२१—२२७) सात *अधिकरणसमथ* कह दिये गये। इतना ही उन भगवान्के सुत्तो (=सूक्तो=कथनों) मे आये, सुत्तोंद्वारा अनुमोदित (नियम हैं, जिनकी कि) प्रत्येक पन्द्रहवे दिन आवृत्ति की जाती है। उनको (हम) सबको एकमत हो परस्पर अनुमोदन करते=विवाद न करते, सीखना चाहिये। इति।

भिक्खु-पातिमोक्ख समाप्त

---

[1] अधिकरणसमथोके अर्थ-विस्तारके बारेमे देखो चुल्लवग्ग शमथस्कन्धक ४।

२–भिक्खुनी-पातिमोक्ख

२—भिक्खुनी-पातिमोक्ख

निदान। १—पाराजिक। २—संघादिसेस। ३—निस्सग्गिय-पाचित्तिय। ४—पाचित्तिय। ५—पाटिदेसनिय। ६—सेखिय। ७—अधिकरण-समथ।

§निदान

(एक भिक्षुणी—) आर्ये ! संघ मेरी (बात) सुने, यदि संघको पसंद हो (तो) मै इस नामकी[1] आर्यासे विनय पूछूँ ।[2]

(चुनी जाने वाली भिक्षुणी—) आर्ये ! संघ मेरी (बात) सुने, यदि सघको पसन्द हो (तो) मै इस नामकी[3] आर्या द्वारा पूछे *विनय* (=भिक्षुणी-नियम)का उत्तर दूँ ।—

सम्मज्जनी पदीपो च उदकं आसनेन च ।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकरणन्ति वुच्चति ॥
(सम्मार्जनी प्रदीपश्च उदकं आसनेन च ।
उपोसथस्य एतानि पूर्वकरणमित्युच्यते ॥)

(संघसे) अवकाश (माँगकर कहती हूँ)—*सम्मज्जनी*=झाड़ू देना (उपोसथागार को साफ करना), *पदीपो च* = और दिया जलाना [(दिन होनेपर—) इस समय सूर्यके प्रकाशके कारण दीपकका काम नहीं है (कहना चाहिये)], *उदक आसनेन च* = और आसन (बिछाने)के साथ पीने तथा धोनेके लायक जलको रखना, एतानि=संमार्जन करना आदि यह चार कार्य (=व्रत) संघके एकत्रित होनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स=उपोसथ*[4] के, *पुब्बकरणन्ति* = "पूर्व-करण", *वुच्चति* = कहे जाते है ।

छन्द-पारिसुद्धि उतुक्खानं भिक्खुनी-गणना च ओवादो ।
उपोसथस्स एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति ॥
(छन्द-पारिशुद्धिः ऋतु-ख्यानं भिक्षुणी-गणना चाऽववादः ।
उपोसथस्यैतानि पूर्वकृत्यमित्युच्यते ॥)

छन्दपारिसुद्धि=छन्द (=सम्मति=Vote)के योग्य (रोगो आदि होनेके कारण

---

[1] यहाँ जिस भिक्षुणीको उस दिन धर्मासनके लिये चुनना हो, उसका नाम लेना चाहिए।

[2] संघकी स्वीकृति जान वह भिक्षुणी संघको प्रणाम कर सबके आरम्भमें रक्खे धर्मासनपर बैठ आगेकी बातोंको कहती है ।

[3] प्रस्तावक भिक्षुणीका यहाँ नाम लेना चाहिये ।

[4] कृष्ण चतुर्दशी और अमावस्या ।

उपोसथमे स्वयं उपस्थित न हो सकनेवाली) भिक्षुणियोंके छन्द और शुद्धता[1], *उतुक्खानं* = हेमन्त आदि तीन ऋतुओमेसे इतने बीत गये, इतने बाकी है—का कहना। यहाँ (बौद्ध-) धर्ममे हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षाको लेकर तीन ऋतुये होती है। [(जैसे—) यह हेमन्त ऋतु है, इस ऋतुमे (प्रत्येक पक्षमे एक एक करके) आठ उपोसथ (होते हैं), इस पक्षसे एक उपोसथ पूर्ण हो रहा है, एक उपोसथ (पहिले) चला गया, (अब) छ उपोसथ बाकी है]। *भिक्खुनी-गणना* च=और इस उपोसथमे एकत्रित भिक्षुणिओकी गणना [इतनी] भिक्षुणियाँ है, ओवादो=भिक्षुणियोंको उपदेश देना *एतानि पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति*=छन्द भेजना आदि यह पाँच काम *पातिमोक्ख* कहनेसे पहिले किये जानेसे, *उपोसथस्स*=उपोसथ कर्मके, *पुब्बकिच्चन्ति वुच्चति*="पूर्वकृत्य" कहे जाते है।

उपोसथो, यावतिका च भिक्खुनी, कम्मप्पत्ता सभागापत्तियो च।
न विज्जन्ति वज्जनीया च पुग्गला तस्मिं न होन्ति, पत्तकल्लन्ति वुच्चति।
(उपोसथे यावन्तश्च भिक्षुण्यः, कर्मप्राप्ताः सभागापत्तयश्च।
न विद्यन्ते वर्जनीयाश्च पुद्गलाः तस्मिन् न भवंति, प्राप्तकल्यमित्युच्यते॥)

उपोसथो=(कृष्ण-) चतुर्दशी, पूर्णमासी, (और विशेष कामके लिये संघका) एकत्रित होना—इन तीन उपोसथके दिनोमे [आज पूर्णमासीका उपोसथ है]। *यावतिका* च *भिक्खुनियो*=जितनी भिक्षुणी, *कम्मप्पत्ता*=उस *उपोसथ*-कर्मको प्राप्त, के योग्य=के अनुरूप है, कमसे कम चार शुद्ध भिक्षुणियाँ जो कि(१) भिक्षुणी संघ द्वारा न त्यागी,(२) हस्त-पाशको बिना छोड़े (=बैठकके घिरावेके बिना तो है) एक सीमाके भीतर स्थित; (३) *सभागापत्तियो च न विज्जन्ति*=(उनमे) दोपहर बाद भोजन करने आदिके अपराध (=आपत्तियाँ) नही होते; (४) *वज्जनीया च पुग्गला तस्मि न होन्ति*=गृहस्थ नपुंसक आदि बैठकके घिरावे(=*हस्त-पाश*)से दूर रक्खे जानेवाले इक्कीस (प्रकारके) व्यक्ति उस (उपोसथ)मे नही होते; *पत्तकल्लन्ति वुच्चति*—इन चार लक्षणोंसे युक्त संघका उपोसथ-कर्म *प्राप्तकल्य*= उचित समयसे युक्त कहा जाता है।

पूर्वकरण, (और) पूर्वकृत्योको समाप्त कर, (अपने) दोषोको (एक दूसरेको) बतलाकर एकत्रित हुए भिक्षुणी-सघकी अनुमतिसे *प्रातिमोक्ष*की आवृत्तिके लिये प्रार्थना करती हूँ।

आर्ये! संघ मेरी (बात) सुने—आज पूर्णमासी[2]का उपोसथ है। यदि सघ उचित समझे तो उपोसथ करे और प्रातिमोक्ष (=नियमो)का आवृत्ति करे।

सघको क्या है *पूर्व-कृत्य*? आर्याओ! (अपनी) शुद्धता (=अ-दोषता)को कहो, हम प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करने जा रहे है, सो हम सभी शान्त हो अच्छी तरह सुने और मनमे करे। जिससे कोई दोष हुआ हो वह प्रकट करे। दोष न होनेपर (उसे) चुप रहना चाहिये। चुप रहनेपर मै आर्याओको शुद्ध (=दोष-रहित) समझूँगी। जैसे एक-एक आदमीसे

---

[1] अनुपस्थित व्यक्ति संघके सामने आनेवाले अभियोग या दूसरे काममें अपनी सम्मति, दूसरे भिक्षु द्वारा भेज सकता है, इसीको यहाँ छन्द कहा गया है। इसी प्रकार रोगी व्यक्ति अपनी अदोषता (=शुद्धता)को भी दूसरे द्वारा (Proxy) भेज सकता है, जिसे पारिशुद्धि कहा गया है।

[2] यहाँ जिस दिन का उपोसथ हो, उसका नाम लेना चाहिये।

पूछनेपर उत्तर देना होता है, वैसे ही इस प्रकारकी सभामे तीन बार तक पुकारा जाता है। किन्तु, जो भिक्षुणी तीन बार पुकारनेपर याद रहते हुए भी, विद्यमान दोषको प्रकट नही करती, वह जान बूझकर झूठ बोलनेकी दोषी होती है। आर्याओ! भगवान्‌ने जान-बूझ कर झूठ बोलनेको *अन्तरायिक* (=विघ्नकारक) कर्म कहा है; इसलिये याद रखते हुए दोष युक्त भिक्षुणीको शुद्ध होनेकी कामनासे (अपनेमें) विद्यमान दोषको प्रकट करना चाहिये, (दोषोंका) प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।

आर्याओ! *निदान* कह दिया गया। अब मै आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप सब) इन (निदानमे कही बातो)से शुद्ध है? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या इनसे शुद्ध है? तीसरी बार भी पूछती हूँ, क्या इनसे शुद्ध है? आर्या परिशुद्ध ही है, इसीलिए चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ, इति।

निदान समाप्त

---

§१—पाराजिक (१-८)

(१) मैथुन

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* धर्म कहे जाते है।

१—जो कोई भिक्षुणी कामासक्त हो अन्ततः पशुसे भी मैथुन-धर्म सेवन करे वह *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोके) साथ न रहने लायक होती है।

(२) चोरी

२—जो कोई भिक्षुणी चोरी समझी जाने वाली किसी वस्तुको ग्राम या अरण्यसे बिना दिये हुए ही ग्रहण करे, जिसे (मालिकके) बिना दिये हुए लेलेनेसे राजा उस व्यक्तिको चोर = स्तेन, मूर्ख, मूढ़ कहकर बाँधता, मारता या देश-निकाला देता है, तो वह भिक्षुणी पाराजिका होती है, (भिक्षुणियोंके) साथ न रहने लायक होती है।

(३) मनुष्य-हत्या

३—जो भिक्षुणी जानकर मनुष्यको प्राणसे मारे या (आत्म-हत्याके लिये) शस्त्र खोज लावे, या मरनेकी तारीफ करे, मरनेके लिये प्रेरित करे—अरे ! स्त्री तुझे क्या (है) इस पापी दुर्जीवनसे ? (तेरे लिये) जीनेसे मरना अच्छा है। इस प्रकारके विचारसे, इस प्रकारके चित्त-संकल्पसे अनेक प्रकारसे जो मरनेकी तारीफ करे, या मरनेके लिये प्रेरित करे। यह भी *पाराजिका* होती है, (भिक्षुणियोके) साथ न रहने लायक होती है।

(४) दिव्य शक्तिका दावा

४—जो भिक्षुणी न विद्यमान, दिव्य-शक्ति (= उत्तर-मनुष्य-धर्म) = अलम्-आर्य-ज्ञान-दर्शनको अपनेमे विद्यमान बतलाती है—"ऐसा जानती हूँ, ऐसा देखती हूँ।" तब दूसरे समय पूछे जाने या न पूछे जानेपर बदनीयतीसे, या आश्रम छोड़ जानेकी इच्छासे (कहे)—'आर्ये' ! न जानते हुए मैने 'जानती हूँ' कहा, न देखते हुए मैने 'देखती हूँ' कहा मैने झूठ=तुच्छ कहा। वह *पाराजिका* होती है। यदि अधिमान(=अभिमान)से न कहा हो।

(५) कामासक्तिके कार्य

५—जो कोई भिक्षुणी कामुकी हो, कामुक पुरुषके जानुसे ऊपरके निचले शरीरको सहरावे, घर्षण करे, ग्रहण करे, छुवे, या दबानेके स्वादको ले तो वह *ऊर्ध्वजानु-मंडलिका* (भिक्षुणी) पाराजिका होती है।

६—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए पाराजिक दोषवाली भिक्षुणीको न स्वयं टोके, न गणको ही सूचित करे, और जब (उक्त भिक्षुणी भिक्षुणी-वेषमे) स्थित या च्युत या निकाल दी जाये, या मतान्तरसे चली जाये तो ऐसा कहे—"आर्ये ! मै पहले हीसे यह जानती थी—यह भगिनी ऐसी ऐसी है, किन्तु न मैने स्वय टोका, न (भिक्षुणी) गणको

सूचित किया। यह दोष छिपानेवाली (भिक्षुणी) भी *पाराजिका* होती है ०।

(६) संघसे निकालेका अनुगमन

७—जो भिक्षुणी *समग्र* संघ द्वारा अलग किये गये *धर्म–विनय*–और–बुद्धोपदेशमें आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और अकेले भिक्षुका अनुगमन करे तो भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्ये ! (= अइया !) यह भिक्षु सारे संघ द्वारा अलग किया गया और धर्म, विनय, तथा बुद्धोपदेशमें आदर-रहित, प्रतिकार-रहित और सहायता रहित है। आर्ये ! मत (इस) भिक्षुका अनुगमन करो।" इस प्रकार उन भिक्षुणियो द्वारा कही जानेपर यदि वह भिक्षुणी वैसे ही जिद् पकडे रहे तो भिक्षुणियोंको उस भिक्षुणीसे तीन बार तक उसके छोड़नेके लिये कहना चाहिये। तीन बार कही जानेपर यदि वह उसे छोड़ दे तो अच्छा, यदि न छोड़े तो वह *उत्क्षिप्तानुवर्तिका* (= अलग किये हुएका अनुगमन करनेवाली) *पाराजिका* होती है ०।

(७) कामासक्तिसे पुरुषका स्पर्श

८—जो कोई भिक्षुणी आसक्त हो, कामातुर पुरुपके हाथ पकड़ने या चद्दरके कोनेके पकड़नेका आस्वाद ले, या (उसके साथ) खडो रहे, या भाषण करे, या सकेत की ओर जाय या पुरुपका अनुगमन करे, या छिपे (स्थान)मे प्रवेश करे, या शरीरको उसपर छोडे, तो यह आठ बातोवाली भिक्षुणी भी *पाराजिका* होती है।

आर्याओ ! यह आठ *पाराजिक* दोष कहे गये। इनमेसे किसी एकके करनेसे भिक्षुणी भिक्षुणियोके साथ वास नही करने पाती। जैसे पहिले वैसे ही पीछे *पाराजिका* होकर साथ रहने योग्य नही रहती। क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? आर्या लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।

पाराजिका समाप्त ॥ १ ॥

---

§२—संघादिसेस (६-२५)

आर्याओ! यह सत्रह दोष संघादिसेस कहे जाते है—

(१) पुरुषोंके साथ विहरना

१—जो भिक्षुणी घुमन्त होकर गृहस्थ, गृहस्थके पुत्र, दास या मजदूरके साथ अन्ततः श्रमण परिव्राजकके साथ भी विहरे तो यह भिक्षुणी भी प्रथम (श्रेणीके) दोष की अपराधिनी है। और (उसके लिये) *सघादिसेस* है निकाल देना।

(२) चोरनी या बध्याको भिक्षुणी बनाना

२—जो भिक्षुणी राजा, सघ[1], गण[2], पूग[3], श्रेणी[4] को बिना सूचित किये—जानकर प्रकट चोरनी या बध्याको—(दूसरे मतमे) साधुनी बनी हुईको छोड़—साधुनी बनावे, वह भिक्षुणी भी ०।

(३) अकेले घूमना

३—जो भिक्षुणी अकेली ग्रामान्तरको जावे, अकेली नदी पार जावे, अकेली रात को प्रवास करे, (या) गणसे अलग चली जावे, वह भिक्षुणी भी ०।

(४) संघसे निकालीको साथिन बनाना

४—जो भिक्षुणी सारे संघद्वारा धर्म, विनय और बुद्धोपदेशसे अलगकी गई भिक्षुणीको *कारक-सघ* (= संघकी कार्यकारिणी सभा)को बिना पूछे, और गणकी रुचि को बिना जाने, साथी बनाती है, वह भिक्षुणी भी ०।

(५) कामासक्तिके कार्य

५—जो भिक्षुणी आसक्त हो, आसक्त पुरुषके हाथसे खाद्य, भोज्य अपने हाथसे लेकर खाये, भोजन करे, वह भिक्षुणी भी ०।

६—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—"आर्ये! चाहे आसक्त हो या अनासक्त, यह पुरुष तेरा क्या करेगा क्योंकि तू तो अनासक्त है? हाँ! तो आर्ये! जो कुछ खाद्य भोज्य यह पुरुष तुझे देता है उसे तू अपने हाथसे लेकर खा, भोजन कर, वह भिक्षुणी भी०।

७—किसी भिक्षुणीका किसी स्त्रीकी बातको किसी पुरुषसे या किसी पुरुषकी बात को किसी स्त्रीसे कहना—तू जारी बन, या पत्नी बन, या अन्ततः कुछ ही क्षणोंके लिये (उसकी बन); वह भिक्षुणी भी०।

---

[1] भिक्षुणी-संघ। [2] प्रजातंत्र। [3] = पुंज, सामूहिक शासन। [4] श्रेणीका शासन।

(६) पाराजिकका दोषारोपण

८—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराज़गीसे दूसरी भिक्षुणीपर निर्मूल *पाराजिक* दोषका लगाना, जिसमे कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जावे, (=भिक्षुणी न रह जावे) फिर पीछे पूछने या न पूछनेपर वह झगडा निर्मूल (मालूम) हो, और उस (दोष लगाने वाली) भिक्षुणीका दोष सिद्ध हो, तो वह भी० ।

९—किसी भिक्षुणीका दुष्ट (चित्तसे), द्वेषसे, नाराज़गोसे, अन्य प्रकारके झगड़े की कोई बात लेकर दूसरी भिक्षुणीको पाराजिक दोषका लगाना, जिसमें कि वह इस ब्रह्मचर्यसे च्युत हो जाय, और फिर पूछने या न पूछनेपर उस झगड़ेकी असलियत मालूम हो और उस (दोप लगानेवाली) भिक्षुणीका दोप सिद्ध हो, तो वह भी० ।

(७) धर्मका प्रत्याख्यान

१०—यदि कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो यह कहे—"मै बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करती हूँ, सघका प्रत्याख्यान करतो हूँ, *शाक्यपुत्रीय* श्रमणियो (=साधुनियो) से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भो श्रमणियाँ है । मै उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी ।" तो भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये ! मत कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहो,—'मै बुद्धका प्रत्याख्यान करती हूँ, धर्मका प्रत्याख्यान करतो हूँ, सघका प्रत्याख्यान करती हूँ । शाक्यपुत्रीय श्रमणियो से मुझे क्या लेना है ? लज्जा, संकोच, शील, शिक्षाकी चाहवाली दूसरी भी श्रमणियाँ है; मै उनके पास ब्रह्मचर्य-वास करूँगी'—आर्ये ! यह धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है । इसमे श्रद्धालु बन दु.खके अच्छी तरह नाशके लिये ब्रह्मचर्य-वास करो ।" भिक्षुणियो द्वारा ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी वैसेही जिद पकडे रहे तो भिक्षुणियोको तीन बार तक उससे उस जिद्को छोड़नेके लिये कहना चाहिये । तीन बार तक कही जानेपर यदि वह उस जिद्को छोड़ दे तो उसके लिये अच्छा है, यदि न छोड़े तो वह भी० ।

(८) भिक्षुणियोंका निन्दना

११—जो कोई भिक्षुणी किसी अभियोगमे हार जानेपर कुपित, असतुष्ट हो ऐसा कहे—"रागके पीछे जानेवाली हैं भिक्षुणियाँ, द्वेषके पीछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ, भयके पोछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ ।" तो उस भिक्षुणीको और भिक्षुणियाँ ऐसे कहे—"आर्ये ! किसी झगडेमे हार जानेसे कुपित और असतुष्ट हो मत ऐसा कहो—'रागके पीछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ, द्वेपके पीछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ, मोहके पीछे जानेवाली है भिक्षुणियाँ, भयके पीछे जानेवालो है भिक्षुणियाँ ।' आर्या हो राग, द्वेष, मोह, भयके पीछे जा सकती है ।" इस प्रकार उन भिक्षुणियो द्वारा कही जाने पर यदि वह भिक्षुणी वैसेही ज़िद पकडे रहे तो भिक्षुणियाँ तीन बार तक उससे वह ज़िद् छोड़नेके लिये कहे । तोन बार तक कहे जानेपर यदि वह उस ज़िद्को छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है नही तो वह भिक्षुणी भी० ।

(९) बुरा संसर्ग

१२—भिक्षुणियाँ यदि दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-सघके प्रति द्रोह करती और एक दूसरेके दोषोको ढाँकती (बुरे) संसर्गमे रहती हो, तो (दूसरी) भिक्षुणियाँ उन भिक्षुणियोको ऐसा कहे—"भगिनियो ! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन,

भिक्षुणी-संघके प्रति द्रोह करती हो और एक दूसरेके दोषोंको छिपाती (बुरे) संसर्गमे रहती हो। भगिनियोका सघ तो एकान्त शील और विवेकका प्रशंसक है।" यदि उनके ऐसा कहनेपर वे भिक्षुणियाँ अपने दोषोको छोड देनेके लिये न तैयार हो तो वे तीन बार तक उनसे उन्हे छोड देनेके लिये कहे। यदि तीन बार तक कहनेपर वे उन्हे छोड दे तो यह उनके लिये अच्छा है नही तो वे भिक्षुणियाँ भी०।

१३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणियोको ऐसा कहे—"आर्याओ! तुम सब (बुरे) संसर्गमे रहो; मत अलग रहो! सघमे ऐसे आचार ऐसी बदनामी, ऐसी अपकीर्ति-वाली, भिक्षुणी-संघसे द्रोह करनेवाली, एक दूसरेके दोषको छिपानेवाली, दूसरी भिक्षु-णियाँ भी है। उनको सघ कुछ नही कहता, संघ दुर्बल और कमजोर होनेके कारण तुम्हाराही कोपसे अपमान करता है, परिभव करता है; और यह कहता है—'भगिनियो! तुम सब दुराचारिणी, बदनाम, निंदित बन भिक्षुणी-सघके प्रति द्रोह करती हो, और अपने दोषोको ढाँकनेवाली हो (बुरे) ससर्गमे रहती हो। भगिनियोंका सघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशसक है'?" तो भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो—'आर्याओ! तुम सब० विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षु-णियोके कहे जाने पर०। यदि न माने तो वह भिक्षुणी भी०।

(१०) संघमें फूट डालना

१४—यदि कोई भिक्षुणी एकमत सघमें फूट डालनेका प्रयत्न करे, या फूट डालनेवाले झगडेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहे, तो उसे और भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहे—'आर्ये! मत (आप) एकमत संघमे फूट डालनेका प्रयत्न करे, मत फूट डालनेवाले झगडेको लेकर (उसपर) हठपूर्वक कायम रहे। आर्ये! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला, विवाद न करनेवाला, एक उद्देश्यवाला, एकमत रखनेवाला संघ सुखपूर्वक रहता है।" उन भिक्षुणियो द्वारा ऐसा समझाये जानेपर भी यदि वह भिक्षुणी उसी प्रकार अपनी जिद्पर कायम रहे तो दूसरी भिक्षुणियाँ उसे ० उसके लिये अच्छा है। यदि न छोडे, तो वह ०।

१५—उस (संघ-भेदक) भिक्षुणीकी अनुयायी, पक्षपाती, एक दो या तीन भिक्षुणियाँ हो और वे यह कहे—"आर्याओ! मत इस भिक्षुणीको कुछ कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी है। नियमानुकूल (विनय) बोलने वाली है। हमारी भी राय और रुचिको लेकर यह कह रही है। हमारे मनकी (बातको) जानकर कहती है। हमको भी यह पसद है।" तब दूसरी भिक्षुणियोको उन भिक्षुणियोसे इस प्रकार कहना चाहिये—"मत आर्याओ! ऐसा कहो। यह भिक्षुणी धर्मवादिनी नही है और न यह नियमानुकूल बोलने वाली है। आर्याओको भी संघमे फूट डालना न रुचना चाहिये। आर्याओ! संघसे मेल करो। परस्पर हेलमेलवाला, विवाद न करनेवाला एक उद्देश्य वाला, एकमत रखने वाला सघ सुख-पूर्वक रहता है।" यदि भिक्षुणियोके ऐसा कहनेपर भी वे भिक्षुणियाँ अपनी जिद्को पकड़े रहे०। यदि न छोड़े ०।

(११) बात न सुननेवाली बनना

१६—यदि कोई भिक्षुणी कटुभाषिणी है, विहित आचार नियमो (शिक्षा-पदो)के बारेमे उचित रीतिसे कहे जानेपर कहती है—"आर्यालोग अच्छा या बुरा मुझे कुछ मत कहे। मै भी आर्याओको अच्छा या बुरा कुछ न कहूँगी। आर्याओ! मुझसे बात करनेसे बाज आओ।" तो (अन्य) भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत

आर्या अपनेको अवचनीया (दूसरोका उपदेश न सुनने वाली) बनावे। आर्या अपनेको बचनीया ही बनावे। आर्या भी भिक्षुणियोको उचित बात कहे, भिक्षुणियाँ भी आर्याको उचित बात कहे। परस्पर कहने कहाने, परस्पर उत्साह दिलानेसे ही भगवान्‌की यह मडली (एक दूसरेसे) संबद्ध है। भिक्षुणियोंके ऐसा कहनेपर भी ० यह उसके लिये अच्छा है। यदि न छोड़े तो ०।

(१२) कुलोंका बिगाड़ना

१७—कोई भिक्षुणी किसी गाँव या कस्बेमे कुलदूपिका और दुराचारिणी होकर रहती है। उसके दुराचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। कुलोको उसने दूपित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। तो दूसरी भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"आर्या कुलदूपिका और दुराचारिणी है। आर्याके दुराचार देखे भी जाते हैं, सुने भी जाते है। आर्याने कुलोको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ, यहाँ (आपका) रहना ठीक नहीं है।" भिक्षुणियोके ऐसा कहनेपर यदि वह भिक्षुणी ऐसा बोले—"भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली है, द्वेपके पीछे चलनेवाली है, मोहके पीछे चलनेवाली है, भयके पीछे चलने वाली है। उन्ही अपराधोके कारण किसी किसोको दूर करती है और किसी किसोको दूर नही करती।" तो भिक्षुणियोको उस भिक्षुणीसे यह कहना चाहिये—"मत आर्या ऐसा कहे—भिक्षुणियाँ रागके पीछे चलनेवाली नही है, द्वेपके पीछे चलनेवाली नही है, मोहके पीछे चलनेवाली नही है, भयके पीछे चलनेवाली नही है। आर्या कुलदूषिका और दुराचारिणी है। आर्याके दुराचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। आर्याने कुलोको दूषित किया है, यह देखा भी जाता है, सुना भी जाता है। इस निवास (स्थान)से आर्या चली जायँ। यहाँ रहना ठीक नहीं है।" भिक्षुणियो द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी यदि ०। यदि न ०।

आर्याओ! यह सत्रह *संघादिसेस* कह दिये गये। नव प्रथम (बारहीमें) दोष (गिने जाने) वाले और आठ तीन बार तक (दोहरानेपर), इनमेसे यदि किसी एक अपराधको भिक्षुणी करे तो वह भिक्षुणी, (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनो संघोंमे पक्ष भर *मानत्व*[१] करे। *मानत्व* पूरा हो जानेपर जहाँ बीस भिक्षुणियोवाला भिक्षुणी-संघ हो उसके पास जावे। यदि बीस भिक्षुणियोमेसे एक (भी) कम वाला भिक्षुणी-संघ हो और वह भिक्षुणीको (अपराध) मुक्त करे तो वह भिक्षुणी मुक्त नही होती और वह भिक्षुणियाँ निंदनीय है।—यह यहाँपर उचित (क्रिया) है।

आर्याओसे पूछती हूँ, क्या (आप) इनसे शुद्ध है? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।

संघादिसेस समाप्त ॥ २ ॥

---

[१] देखो चुल्लवग्ग पारिवासिक स्कंधक २§१, ३.

§३—निस्सग्गिय-पाचित्तिय (२५-५५)

आर्याओ ! यह तीस अपराध *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* कहे जाते है।

(१) पात्र

१—जो भिक्षुणी पात्रोका सचय करे तो *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

२—जो भिक्षुणी असमयके चीवरको समयका चीवर मान् बँटवाये तो ०।

(२) चीवर

३—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके साथ चीवरको वदलकर पीछे यह कहे—"हन्त ! आर्ये ! इस अपने चीवरको ले जाओ। जो तुम्हारा है वह तुम्हारा हो, और जो मेरा है वह मेरा। उसे ले आओ, और अपना ले जाओ" (—यह कह) छीन ले या छिन-वाले तो ०।

(३) चीजोंका चेताना (=माँगना)

४—जो भिक्षुणी एक (चीज)के लिये कह कर फिर दूसरीके लिये कहे तो ०।

५—जो भिक्षुणी एक (चीज)को चेताकर (=माँगकर) फिर दूसरीको चेतावे तो ०।

६—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले संघके सामानसे (=के बदले) दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०

७—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले सघके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

८—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजन (=जनसमूह) के सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

९—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले महाजनके माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

१०—जो भिक्षुणी दूसरे निमित्तवाले, दूसरे प्रयोजनवाले, व्यक्ति (विशेष)के माँगे हुए सामानसे दूसरे (सामान)को चेतावे तो ०।

(इति) पत्तवग्ग ॥१॥

(४) ओढ़नेको चेताना

११—जाड़ेके ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक चार *कंस* (=सोलह कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। यदि उससे अधिकका चेताये तो ०।

१२—गर्मीके ओढ़नेको चेताते हुए अधिकसे अधिक ढाई *कंस* (=दस कार्षापण) मूल्यका चेताना चाहिये। उससे अधिक चेताये तो ०।

(५) कठिन चीवर और चीवर

१३—चीवरके तैयार हो जानेपर, *कठिन* (चीवर)के मिल जानेपर अधिकसे अधिक दस दिन तक, अतिरिक्त (=पाँचसे अतिरिक्त) चीवरको रखना चाहिये। इस अवधिका अतिक्रमण करनेपर *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* है।

१४—चीवरके तैयार हो जानेपर *कठिन*के मिल जानेपर भिक्षुणियोंकी सम्मतिके बिना यदि भिक्षुणी एक रात भी पाचों चीवरोसे रहित रहे तो ०।

१५—चीवरके तैयार हो जानेपर, *कठिन*के मिल जानेपर यदि भिक्षुणीको बिना समयका चीवर (का कपड़ा) प्राप्त हो तो इच्छा होनेपर भिक्षुणी उसे ग्रहण कर सकती है। ग्रहण करके शीघ्र ही दस दिन तक (चीवर) बना लेना चाहिये। यदि उसको पूरा नहीं करे तो प्रत्याशा होने पर कमीको पूर्तिके लिये एक मास भर भिक्षुणी उसे रख छोड़ सकती है। प्रत्याशा होनेपर इससे अधिक यदि रख छोड़े तो ०।

१६—जो कोई भिक्षुणी किसी *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनीसे, खास अवस्थाके सिवाय, चीवर देनेके लिये कहे तो ०। खास अवस्था यह है—जब कि भिक्षुणीका चीवर छिन गया हो या नष्ट हो गया हो।

१७—उसी (भिक्षुणी)को यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियाँ यथेच्छ चीवर प्रदान करे तो उन चीवरोमेसे अपनी आवश्यकतासे एक चीवर कम लेना चाहिये। यदि अधिक ले तो ०।

१८—उसी भिक्षुणीके लिये ही यदि *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोंने चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर मै अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करूँगा। वहाँ यदि वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिले ही जाकर अच्छेकी इच्छासे (यह कहकर) चीवरमे हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मान् मुझे इस चीवरके धनसे ऐसा ऐसा चीवर बनवाकर प्रदान करे, तो०।

१९—उसी भिक्षुणीके लिये दो *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनियोने एक एक चीवर के लिये धन तैयार कर रखा हो—हम चीवरोके इन धनोसे एक एक चीवर बनवाकर अमुक नामवाली भिक्षुणीको चीवर-दान करेंगे। वहाँ यदि वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिलेही अच्छे-की इच्छासे (यह कहकर) चीवरमे हेरफेर कराये—अच्छा हो आयुष्मानो ! मुझे इन प्रत्येक चीवरके धनसे दोनो मिलाकर ऐसा (एक) चीवर बनवाकर प्रदान करे, तो ०।

२०—उसी भिक्षुणीके लिये राजा, राज-कर्मचारी, ब्राह्मण या गृहस्थ चीवरके लिये (यह कहकर) धनको दूत द्वारा भेजे—इस चीवरके धनसे चीवर तैयारकर अमुक नामकी भिक्षुणीको प्रदान करो। और वह दूत उस भिक्षुणीके पास जाकर यह कहे—भगिनी ! आर्याके लिये यह चीवरका धन आया है। इस चीवरके धनको आर्या स्वीकार करे। तो उस भिक्षुणीको उस दूतसे यह कहना चाहिये—आवुस ! हम चीवरके धनको नही लेतीं। समयानुसार विहित चीवरहीको हम लेती हैं। यदि वह दूत उस भिक्षुणीको ऐसा कहे—क्या आर्याका कोई काम-काज करनेवाला है ?—तो उस भिक्षुणीको आश्रम-सेवक या उपासक—किसी काम-काज करनेवालेको बतला देना चाहिये—आवुस ! यह भिक्षुणियोका कामकाज करनेवाला है। यदि वह दूत उस कामकाज करने वालेको समझाकर उस भिक्षुणीके पास आकर यह कहे—भगिनी ! आर्याने जिस काम काज करनेवालेको बतलाया, उसे मैने समझा दिया। आर्या समयपर जाये। वह आपको

चीवर प्रदान करेगा। चीवरकी आवश्यकता रखनेवाली भिक्षुणीको उस काम-काज करने वालेके पास जाकर दो तीन बार याद दिलानी चाहिये—आवुस ! मुझे चीवरकी आवश्यकता है। दो तीन बार प्रेरणा करनेपर, याद दिलानेपर यदि चीवरको प्रदान करे तो ठीक, न प्रदान करे तो चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक (उसके यहाँ जाकर) चुपचाप खड़ी रहना चाहिये। चार बार, पाँच बार, अधिकसे अधिक छ बार तक चुपचाप खड़ी रहनेपर यदि चीवर प्रदान करे तो ठीक, उससे अधिक कोशिश करने पर यदि उस चीवरको प्राप्त करे तो ०। यदि न प्रदान करे तो जहाँसे चीवरका धन आया है, वहाँ स्वय जाकर या दूत भेज कर (कहना चाहिये)—आप आयुष्मानोंने जिस भिक्षुणीके लिये चीवरका धन भेजा था वह उस भिक्षुणीके कामका नही हुआ। आयुष्मानो ! अपने (धन) को देखो, तुम्हारा (वह) धन नष्ट न हो जाय—यह वहाँ पर उचित कर्तव्य है।

(इति) चीवर वग्ग ॥२॥

(६) चाँदी-सोने रुपये-पैसेका व्यवहार

२१—जो कोई भिक्षुणी सोना या रजत (=चाँदी आदिके सिक्के)को ग्रहण करे या ग्रहण करवाये, रखे हुएका उपयोग करे, तो ०।

२२—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके रुपयों (=*रुपिय* = सिक्का)का व्यवहार करे तो ०।

(७) क्रय-विक्रय

२३—जो कोई भिक्षुणी नाना प्रकारके खरीदने वेचनेके कामको करे, तो ०।

(८) पात्र

२४—जो कोई भिक्षुणी पाँचसे कम (जगह) टाँके पात्रसे दूसरे नये पात्रको बदले तो ०। उस भिक्षुणीको वह पात्र भिक्षुणी-परिषद्को दे देना चाहिये और जो (पात्र) भिक्षुणी-परिषद्का अंतिम पात्र है उस भिक्षुणीको (यह कहकर) देना चाहिये—भिक्षुणी ! यह तेरे लिये पात्र है। जब तक न टूटे तब तक (इसे) धारण करना।—यह यहाँ उचित (प्रतिकार) है।

(९) भैषज्य

२५—भिक्षुणीको घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँड़ (आदि) रोगी भिक्षुणियोंके सेवन करने लायक पथ्य (= भैषज्य)को ग्रहण कर अधिकसे अधिक सप्ताह भर रखकर भोग कर लेना चाहिये। इसका अतिक्रमण करनेपर ०।

(१०) चीवर

२६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको स्वय चीवर देकर फिर कुपित और नाराज हो, छीने या छिनवाये उसे ०।

२७—जो कोई भिक्षुणी स्वयं सूत माँगकर कोली (= जुलाहा)से चीवर बुनवाये उसको ०।

२८—उसी भिक्षुणीके लिये *अज्ञातक* गृहस्थ या गृहस्थिनी कोलीसे चीवर बुनवाये और वह भिक्षुणी प्रदान करनेसे पहिले ही कोलीके पास जाकर (यह कहकर) चीवरमे

हेरफेर कराये—आवुस ! यह चीवर मेरे लिये बुना जा रहा है। इसे लंबा चौड़ा बनाओ घना, अच्छी तरह तना, खूब अच्छी तरह बुना, अच्छी तरह मला हुआ और अच्छ तरह छटाँ हुआ बनाओ, तो हम भी आयुष्मानोको कुछ दे देंगी, और नही तो कुछ भिक्ष मेसे ही; तो ०।

२९—कार्तिककी त्रैमासी पूर्णिमाके आनेसे दस दिन पहिले ही यदि भिक्षुणीकं फाजिल (पाँच से अधिक) चीवर प्राप्त हो तो फाजिल समझते हुए भिक्षुणीको उसे प्राप्त करना चाहिये। ग्रहणकर *चीवरकाल* तक रखना चाहिये। उसके बाद यदि रखे तो ०।

(११) संघके लाभमें भाँजी मारना

३०—जो कोई भिक्षुणी, संघके लिये प्राप्त वस्तु (=लाभ)को अपने लिये परिवर्तन करा ले तो ०।

(इति) जातरूप वग्ग ॥३॥

आर्याओ ! तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये। आर्याओसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? आर्या लोग शुद्ध है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।

निस्सग्गिय-पाचित्तिय समाप्त ॥३॥

---

§४–पाचित्तिय (५६-२२१)

आर्याओ! यह एकसौ छियासठ *पाचित्तिय* दोष कहे जाते हैं—

(१) लहसुनका खाना

१—जो भिक्षुणी लहसुन खाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(२) कामासक्तिके कार्य

२—जो भिक्षुणी गुह्यस्थानके लोमको बनवावे, उसे ०।

३—*तलघातक*[1] मे *पाचित्तिय* है।

४—*जतुमट्टक*[2] मे पाचित्तिय है।

५—(स्त्री-इन्द्रिय) की जलसे शुद्धि करते वक्त, भिक्षुणीको अधिकसे अधिक दो अँगुलियोके दो पोर तक लेना चाहिये, उसका अतिक्रमण करनेपर *पाचित्तिय* है।

(३) भिक्षुकी सेवा

६—जो भिक्षुणी, भोजन करते भिक्षुकी जलसे या पंखेसे सेवा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(४) कच्चा अनाज

७—जो भिक्षुणी कच्चे अनाजको माँगकर या मँगवाकर, भूनकर या भुनवाकर, कूटकर या कुटवाकर, पकाकर या पकवाकर खाये उसे ०।

(५) पेसाब-पाखाना-सम्बन्धी

८—जो भिक्षुणी, पेसाब या पाखानेको, कूडे या जूठेको दीवारके पीछे या प्राकारके पीछे फेके, उसे ०।

९—जो भिक्षुणी पेसाब या पाखानेको, कूड़े या जूठेको हरियालीपर फेके, उसे ०।

(६) नाच गान

१०—जो भिक्षुणी नृत्य, गीत, वाद्यको देखने जाये, उसे ०।

(इति) लसुन-वग्ग ॥१॥

(७) पुरुषके साथ

११—जो भिक्षुणी, प्रदीपरहित रात्रिके अंधकारमे अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

---

[1] कृत्रिम मैथुन। [2] लाखका बना मैथुन-साधन।

१२—जो भिक्षुणी, आड़के स्थानमे अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

१३—जो भिक्षुणी चौड़ेमे अकेले पुरुषके साथ अकेली खडी रहे, या बातचीत करे, उसे ०।

१४—जो भिक्षुणी, सड़कपर, या व्यूह (= एक निकास) या चौरस्तेपर अकेले पुरुषके साथ अकेली खड़ी रहे या बातचीत करे, या कानमे बात करे, या दूसरी भिक्षुणीको (वैसा करनेके लिये) प्रेरित करे, उसे ०।

(८) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

१५—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल) के पूर्व गृहस्थोके घरोंमे जा आसनपर बैठे, (गृह-) स्वामियोंको बिना पूछे चली आये, उसे ०।

१६—जो भिक्षुणी, भोजन (-काल)के पश्चात् गृहस्थोके घरोमे जा, स्वामियोको बिना पूछे आसनपर बैठे या लेटे, उसे ०।

१७—जो भिक्षुणी, मध्यान्ह्के बाद (= *विकालमें*) गृहस्थोके घरोमे जा, स्वामियोको बिना पूछे बिस्तरा बिछाकर या बिछवाकर बैठे या लेटे, उसे ०।

(९) भिक्षुणीको दिक् करना

१८—जो भिक्षुणी, (बातको) उलटा समझ उलटा पकड़कर दूसरी (भिक्षुणी) को दिक् करे, उसे ०।

(१०) सरापना

१९—जो भिक्षुणी, अपनेको या दूसरेको नरक या ब्रह्मचर्यको ले कर शाप दे, उसे ०।

(११) देह पीटकर रोना

२०—जो भिक्षुणी, अपने (शरीर)को पीट पीटकर रोये, उसे ०।

(इति) रत्तन्धकार-वग्ग ॥२॥

(१२) स्नान

२१—जो भिक्षुणी, नगी होकर नहाये ०।

२२—बनवाते समय भिक्षुणीको प्रमाणके अनुसार नहानेकी साड़ी बनवानी चाहिये। प्रमाण यह है—बुद्धके बित्तेसे लम्बाई चार बित्ता, चौड़ाई दो बित्ता। इसका अतिक्रमण करे, तो उसे ०।

(१३) चीवर

२३—जो भिक्षुणी, (दूसरी) भिक्षुणीके चीवरको न सीने न सिलवाने देकर, पीछे कोई बाधा न होनेपर भी वह न सिये न सिलवानेके लिये प्रयत्न करे, तो चार पाँच दिन (की देर)को छोड़, उसे ०।

२४—जो भिक्षुणी, पाँचवे दिन अवश्य *संघाटी* धारण करने (के नियम)का अतिक्रमण करे, उसे ०।

२५—जो भिक्षुणी, बिना पूछे (दूसरेके) चीवरको धारण करे, उसे ०।

२६—जो भिक्षुणी, (भिक्षुणी-) गणके चीवर-लाभमे विघ्न डाले, उसे ०।

२७—जो भिक्षुणी धर्मानुसार चीवरके बँटवारेमे बाधा डाले, उसे ०।

२८—जो भिक्षुणी, श्रमण (= भिक्षु)के चीवरको (किसी) गृही, परिव्राजक या परिव्राजिकाको दे, उसे ०।

२९—जो भिक्षुणी, चीवरको कम आशासे चीवरकालकी अवधि[1] को बिता दे, उसे ०।

३०—जो भिक्षुणी (भिक्षुणी-संघ द्वारा) धर्मानुसार किये जाते *कठिन* (चीवर) के लेने (= उद्धार)मे रुकावट डाले, उसे ०।

(इति) नग्ग वग्ग ॥३॥

(१४) साथ लेटना

३१—यदि दो भिक्षुणियाँ एक चारपाईपर लेटें तो उन्हे ०।

३२—यदि दो भिक्षुणियाँ एक बिछौने-ओढ़नेमे लेटें तो उन्हे ०।

(१५) हैरान करना

३३—जो भिक्षुणी जानबूझकर (दूसरी) भिक्षुणीको हैरान करे, उसे ०।

(१६) रोगी शिष्याकी सेवा न करना

३४—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को रोगी देख न सेवा करे न सेवा करानेके लिये उद्योग करे, उसे ०।

(१७) उपाश्रय दे निकालना

३५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको आश्रय (= *उपाश्रय*) देकर पीछे कुपित और असंतुष्ट हो निकालदे या निकलवादे, उसे ०।

(१८) पुरुष संसर्ग

३६—जो भिक्षुणी गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके रहे उस भिक्षुणीको (दूसरी) भिक्षुणियाँ इस प्रकार कहे—"आर्ये ! गृहस्थ या गृहस्थके पुत्रसे संसर्ग करके मत रह। भगिनियोका संघ तो एकान्तशीलता और विवेकका प्रशंसक है।" इस प्रकार उन भिक्षुणियो द्वारा कहे जानेपर यदि वह जिद न छोड़े तो भिक्षुणियाँ उसे तीन बार तक समझावे। यदि तीन बार तक समझानेपर वह अपनी जिद छोड़ दे तो यह उसके लिये अच्छा है; यदि न छोडे, तो उसे ०।

(१९) विचरना

३७—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण (स्व-)देशमे साथियोके बिना अकेली विचरण करे, उसे ०।

३८—जो भिक्षुणी भयपूर्ण, अशान्तिपूर्ण बाह्यदेशमे साथियोके बिना (अकेली) विचरण करे, उसे ०।

३९—जो भिक्षुणी वर्षा कालके भीतर विचरण करे, उसे ०।

४०—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके कमसेकम पाँच छ योजन भी विचरण करनेके लिये न चली जाय, उसे ०।

(इति) तुवट्ट-वग्ग ॥४॥

---

[1] आश्विन पूर्णिमासे कार्तिक पूर्णिमा तकका समय।

(२०) तमाशा देखना

४१—जो भिक्षुणी राज-प्रासाद, चित्र-शाला, आराम, उद्यान, या पुष्करिणीको देखने जाये, उसे ०।

(२१) कुर्सी पलंगका इस्तेमाल

४२—जो भिक्षुणी कुर्सी या पलंगका उपयोग करे, उसे ०।

(२२) सूत कातना

४३—जो भिक्षुणी सूत काते, उसे ०।

(२३) गृहस्थोंकेसे काम-काज करना

४४—जो भिक्षुणी गृहस्थकेसे काम-काजको करे, उसे ०।

(२४) झगड़ा न निबटाना

४५—जो भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके यह कहनेपर—"आओ आर्ये! इस झगड़ेको निबटा दो"; "अच्छा"—कह पीछे कोई हर्ज न होनेपर भी (उस झगड़ेको) न निबटावे, न निबटानेके लिये प्रयत्न करे, तो उसे ०।

(२५) भोजन देना

४६—जो भिक्षुणी गृहस्थ, परिव्राजक या परिव्राजिकाको अपने हाथसे खाद्य, भोज्य दे, उसे ०।

(२६) आश्रमके चीवरमें बेपर्वाही

४७—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोगकर (उसे) धोकर न रखदे, उसे ०।

४८—जो भिक्षुणी ऋतुकालके चीवरका उपयोग करके बिना धोये रख चारिका (= विचरण = रामत)के लिये चली जाय, उसे ०।

(२७) झूठी विद्याओंका पढना पढ़ाना

४९—जो कोई भिक्षुणी झूठी, विद्याओको सीखे पढ़े, उसे ०।

५०—जो भिक्षुणी झूठो विद्याओंको पढ़ाये, उसे ०।

(इति) चित्तागार-वग्ग ॥५॥

(२८) भिक्षुवाले आराममें प्रवेश

५१—जो भिक्षुणी जानत हुए जिस आराममे भिक्षु हो उसमे बिना पूछे प्रवेश करे, उसे०।

(२९) निन्दना

५२—जो भिक्षुणी भिक्षुको दुर्वचन कहे या निंदा करे, उसे ०।

५३—जो भिक्षुणी क्रुद्ध हो (भिक्षुणी-) गणकी निन्दा करे, उसे ०।

(३०) तृप्तिके बाद खाना

५४—जो भिक्षुणी निमंत्रित हो तृप्त होजानेपर खाद्य-भोज्यको (फिर) खाये, उसे ०।

(३१) गृहस्थोंसे डाह

५५—जो भिक्षुणी (गृहस्थ-)कुलसे मत्सर करे, उसे ०।

(३२) भिक्षुओंरहित स्थानमें वर्षावास

५६—जो भिक्षुणी भिक्षुओं-रहित आश्रम(वाले स्थान)मे वर्षावास करे, उसे ०।

(३३) प्रवारणा

५७—जो भिक्षुणी वर्षा-वास करके (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनों सघोके पास दृष्ट, श्रुत, परिशंकित इन तीनो प्रकारसे (जाने गये अपराधोको) न स्वीकार करे, उसे ०।

(३४) उपदेश-श्रवण और उपोसथ

५८—जो भिक्षुणी उपदेश और उपोसथके लिये न जाय, उसे ०।

५९—भिक्षुणीको प्रति पन्द्रहवे दिन भिक्षु-संघसे दो बातोंके पानेकी इच्छा रखनी चाहिये—(१) उपोसथमे पूछना, (२) उपदेश सुननेके लिये जाना। इनका अतिक्रमण करनेसे उसे ०।

(३५) पुरुषसे फोड़ा चिरवाना

६०—जो भिक्षुणी गुह्यस्थान मे उत्पन्न फोड़े या व्रणको बिना (भिक्षुणियोके) संघ या गणको पूछे अकेले पुरुषसे अकेलीही चिरवाये या धुलवाये या लेप कराये बँधवाये या छुडवाये; उसे ०।

(इति) आराम-वग्ग ॥६॥

(३६) भिक्षुणी बनाना

६१—जो भिक्षुणी गर्भिणीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६२—जो भिक्षुणी दूध पीते बच्चेवालीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६३—जो भिक्षुणी—जिसने दो वर्ष तक (हिंसा, चोरी, व्यभिचार, झूठ, मद्य-पान और मध्याह्नोपरान्त भोजन—इन छओंके परित्याग रूपी) छः धर्मोंको नहीं सीखा—ऐसी *शिक्षमाणा*[1] को भिक्षुणी बनाये, उसे ०।

६४—जो भिक्षुणी दो वर्षों तक छहो धर्मोको सीखे हुए *शिक्षमाणा*को संघकी सम्मतिके बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६५—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कमकी ब्याही स्त्रीको भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६६—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी ब्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओ धर्मोकी शिक्षा बिना दिये भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६७—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षकी ब्याही स्त्रीको दो वर्ष तक छओ धर्मोकी शिक्षा देकर सघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ०।

६८—जो भिक्षुणी शिष्या (=सहजीविनी)को भिक्षुणी बनाकर दो वर्षों तक (शिक्षा, दीक्षा आदिमे) न सहायता करे न करवाये, उसे ०।

६९—जो भिक्षुणी *उपसंपन्न* (=भिक्षुणी) हो (अपनी) उपाध्यायाके साथ दो वर्ष तक न रहे, उसे ०।

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मीदवारीमें जो नियमोंको सीख रही है।

७०—जो भिक्षुणी शिष्याको भिक्षुणी बनाकर कमसे कम पाँच छ योजन भी न ले लिवा जाये, उसे ० ।

(इति) गाब्भिनी-वग्ग ॥७॥

७१—जो भिक्षुणी बीस वर्षसे कमकी कुमारीको भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७२—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओ धर्मोंकी शिक्षा बिना दिये भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७३—जो भिक्षुणी पूरे बीस वर्षकी कुमारीको दो वर्ष तक छओं धर्मोंकी शिक्षा देकर सघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७४—जो भिक्षुणी बारह वर्षसे कम उम्रवालीको भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७५—जो भिक्षुणी पूरे बारह वर्षवालीको संघकी सम्मति बिना भिक्षुणी बनावे, उसे ० ।

७६—जो भिक्षुणी—"आर्ये ! मत (इसे) भिक्षुणी बना"—कहे जानेपर "अच्छा" कह, पीछे बातसे हट जाय, उसे० ।

७७—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! मुझे चीवर देगी तो मै तुझे भिक्षुणी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे० ।

७८—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*को—"यदि तू आर्ये ! दो वर्ष तक मेरे साथ साथ रहेगी तो मै तुझे साधुनी बनाऊँगी"—कह कर पीछे बिना किसी कारणके न भिक्षुणी बनावे, न उसके लिये प्रयत्न करे, उसे० ।

७९—जो भिक्षुणी पुरुष या कुमारसे संसर्ग रखनेवाली चंडी दुःखदायिका, *शिक्षमाणा*-को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८०—जो भिक्षुणी माता, पिता या पतिकी आज्ञाके बिना *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८१—जो भिक्षुणी *परिवास*के सम्मति-दानसे, *शिक्षमाणा*को भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८२—जो भिक्षुणी प्रति वर्ष भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

८३—जो भिक्षुणी एक वर्षमे दोको भिक्षुणी बनावे, उसे० ।

(इति) कुमारिभूत वग्ग ॥८॥

(३७) छाता-जूता, सवारी

८४—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए छाते, जूतेको धारण करे, उसे० ।

८५—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए सवारीसे जाये, उसे० ।

(३८) आभूषण आदिका शृङ्गार, सँवार

८६—जो कोई भिक्षुणी *सघाणी*[१]को धारण करे, उसे० ।

८७—जो कोई भिक्षुणी स्त्रियोंके आभूषणको धारण करे, उसे० ।

८८—जो भिक्षुणी सुगंधित चूर्णसे नहाये, उसे० ।

---

[१] एक तरहकी माला ।

८९—जो भिक्षुणी बासे *पानी* (तिलकी खली)से नहाये, उसे० ।
९०—जो भिक्षुणी, भिक्षुणीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।
९१—जो भिक्षुणी *शिक्षमाणा*से (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।
९२—जो भिक्षुणी श्रामणेरीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।
९३—जो भिक्षुणी गृहस्थिनीसे (अपनी देह) मलवाये, मिँजवाये, उसे० ।

(३९) भिक्षुके सामने आसनपर बैठना, प्रश्न पूछना

९४—जो भिक्षुणी भिक्षुके सामने बिना पूछे आसनपर बैठे, उसे० ।
९५—जो भिक्षुणी अवकाश माँगे बिना भिक्षुसे प्रश्न पूछे, उसे० ।

(४०) बिना कंचुक गाँवमें जाना

९६—जो भिक्षुणी कंचुकके बिना गाँवमे प्रवेश करे, उसे० ।

(इति) छत्त-वग्ग ॥९॥

(४१) भाषणकी अनियमता

९७—जानबूझकर झूठ बोलनेमे *पाचित्तिय* है ।[1]
९८—*ओमसवाद* (=वचन मारनेमे) *पाचित्तिय* है ।
९९—भिक्षुणियोकी चुगली करनेमे *पाचित्तिय* है ।
१००—भिक्षुणीका, अ-भिक्षुणीको पदोंके क्रमसे *धर्म* (=बुद्धोपदेश) बँचवाना *पाचित्तिय* है ।

(४२) साथ लेटना

१०१—जो कोई भिक्षुणी अन्-उपसंपन्नाके साथ दो तीन रातसे अधिक एक साथ सोये उसे *पाचित्तिय* है ।

१०२—जो भिक्षुणी पुरुषके साथ शयन करे, उसे *पाचित्तिय* है ।

(४३) धर्मोपदेश

१०३—पण्डिता (=विज्ञा)को छोड़ जो कोई भिक्षुणी पुरुषको पाँच छः वचनोंसे अधिक धर्मका उपदेश दे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४४) दिव्य-शक्ति प्रदर्शन

१०४—जो कोई भिक्षुणी अनुपसंपन्नाको यथार्थ दिव्य-शक्तिके बारेमे भी कहे उसे *पाचित्तिय* है ।

(४५) अपराध-प्रकाशन

१०५—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षुणीके दुट्ठुल[2] अपराधको भिक्षुणियोंकी सम्मतिके बिना अन्-उपसम्पन्ना (=अ-भिक्षुणी)से कहे, उसे *पाचित्तिय* है ।

---

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §५ १-६४ (पृष्ठ २३-२८)
[2] चार पाराजिका और तेरह संघादिसेस दोष दुट्ठुल्ल कहे जाते हैं ।

(४६) जमीन खोदना

१०६—जो कोई भिक्षुणी जमीन खोदे या खुदवाये उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) मुसावाद-वग्ग ॥१०॥

(४७) वृक्ष काटना

१०७—भूत-ग्राम (=तृण वृक्ष आदि)के गिरानेमे *पाचित्तिय* है।

(४८) संघके पूछनेपर चुप रहना

१०८—(संघके पूछनेपर) उत्तर न दे हैरान करनेमे *पाचित्तिय* है।

(४९) निंदना

१०९—निंदा और बदनामी करनेमे *पाचित्तिय* है।

(५०) संघकी चीज़में बेपर्वाही

११०—जो कोई भिक्षुणी संघके मंच, पीढ़ा, बिस्तरा और गद्देको खुली जगहमे बिछा या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उन्हे न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१११—जो कोई भिक्षु, संघके विहार (=आश्रम)में बिछौना बिछाकर या बिछवाकर वहाँसे जाते वक्त उसे न उठाती है, न उठवाती है, या बिना पूछेही चली जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

११२—जो कोई भिक्षुणी जानकर सघके *विहार*मे पहिलेसे आई भिक्षुणीका बिना ख्याल किये, यही सोचकर कि दूसरा नहीं, (इस तरह) आसन लगाये जिससे कि (पहलेवाली भिक्षुणीको) दिक्कत हो, और वह चली जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११३—जो कोई भिक्षुणी कुपित और असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको संघके विहारसे निकाले या निकलवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

११४—जो कोई भिक्षुणी सघके विहारमे ऊपरके कोठेपर पैर धबधबाते हुए मंच (=चारपाई) या पीठपर एकदमसे बैठे या लेटे उसे *पाचित्तिय* है।

११५—भिक्षुणीको स्वामीवाला(=महल्लक)विहार बनवाते समय, दरवाजे तक किवाड़ो के बद करने और जंगलोके घुमानेके या लीपनेके समय हरियालीसे अलग खड़ी होकर करना चाहिये। उससे आगे यदि हरियालीपर खड़ी हो करे तो *पाचित्तिय* है।

(५१) बिना छना पानी पीना आदि

११६—जो कोई भिक्षु जानकर प्राणी-सहित पानीसे तृण या मिट्टीको सींचे या सिचवाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भूत-गामवग्ग ॥११॥

(५२) भोजन सम्बन्धी

११७—नीरोग भिक्षुणीको (एक) निवास-स्थानमें एक ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। इससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है।

११८—सिवाय विशेष अवस्थाके गणके साथ भोजन करनेमे *पाचित्तिय* है । विशेष अवस्थाएँ ये है—रोगी होना, चीवर-दान, चीवर बनाना, यात्रा, नावपर चढ़ा होना, *महासमय* (=बुद्ध आदिके दर्शनके लिये जाना) और श्रमणो (=सभी मतके साधुओ)के भोजनका समय ।

११९—घरपर जानेपर यदि (गृहस्थ) भिक्षुणीको आग्रहपूर्वक पूआ (=पाहुर), मंथ (=पाथेय) यथेच्छ प्रदान करे तो इच्छा होनेपर पात्रके मेखला तक भर ग्रहण करे। उससे अधिक ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है । पात्रको मेखला तक भरकर ग्रहण कर वहाँसे निकल भिक्षुणियोमे बाँटना चाहिये यह उस जगह उचित है ।

१२०—जो कोई भिक्षुणी विकाल (=मध्याह्नके बाद)मे खाद्य, भोज्य खाये तो *पाचित्तिय* है ।

१२१—जो कोई भिक्षुणी रख-छोड़े खाद्य, भोज्यको खाये तो *पाचित्तिय* है ।

१२२—जो कोई भिक्षुणी जल और दन्त धोवन को छोड़कर बिना दिये मुखमे जाने लायक आहारको ग्रहण करे तो *पाचित्तिय* है ।

१२३—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको ऐसा कहे—"आओ आर्ये ! गाँव या कस्बेमे भिक्षाटनके लिये चले ।" फिर उसे दिलवाकर वा न दिलवाकर प्रेरित करे—"आर्ये ! जाओ, तुम्हारे साथ मुझे बात करना या बैठना अच्छा नही लगता, अकेले ही अच्छा लगता है ।"—दूसरे नहीं, सिर्फ इतने ही कारणसे *पाचित्तिय* है।

१२४—जो कोई भिक्षुणी भोजवाले कुलमे प्रविष्ट हो बैठकी करती है तो उसे *पाचित्तिय* है।

१२५—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ एकान्त पर्देवाले आसनमे बैठती है तो *पाचित्तिय* है।

१२६—जो कोई भिक्षुणी पुरुषके साथ अकेले एकान्तमे बैठे उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) भोजन-वग्ग ॥१२॥

१२७—सिवाय विशेष अवस्थाके, निमंत्रित होनेपर जो भिक्षुणी भोजन रहनेपर भी विद्यमान भिक्षुणीको बिना पूछे भोजनके पहिले या पीछे गृहस्थोके घरमे गमन करे, उसे *पाचित्तिय* है । विशेष अवस्था है—चीवर बनाना और चीवर-दान ।

१२८—नीरोग भिक्षुणीको *पुनः प्रवारणा*[1] और *नित्य*[1]*-प्रवारणा*के सिवाय चातुर्मासके भोजन आदि पदार्थ (= प्रत्यय)के दानको सेवन करना चाहिये । उससे बढ़कर यदि सेवन करे तो *पाचित्तिय* है ।

(५३) सेनाका तमाशा

१२९—जो कोई भिक्षुणी वैसे किसी कामके बिना सेना प्रदर्शनको देखने जाये, उसे *पाचित्तिय* है ।

१३०—यदि उस भिक्षुणीको सेनामे जानेका कोई काम हो तो उसे दो तीन रात सेनामे वसना चाहिये । उससे अधिक वसे तो *पाचित्तिय* है ।

---

[1] रोगी होनेपर पथ्यादिका दान पुन-प्रवारणा और नित्य-प्रवारणा है ।

१३१—दो तीन रात सेनामे बसते हुए (भी) यदि भिक्षुणी रण-क्षेत्र (= उद्योधिका), परेड (= वलाग्र), सेना-व्यूह या अनीक (= हाथी घोड़ा, आदिकी सेनाओंका क्रमसे स्थापना)को देखने जाये तो उसे *पाचित्तिय* है।

(५४) मद्य-पान

१३२—सुरा और कच्ची शराब पीनेमे *पाचित्तिय* है।

(५५) हँसी खेल

१३३—उँगलीसे गुदगुदानेमे *पाचित्तिय* है।

१३४—पानीमे खेल करनेमे *पाचित्तिय* है।

१३५—(व्यक्ति या वस्तुके) तिरस्कार करनेमे *पाचित्तिय* है।

१३६—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको डरवाये तो *पाचित्तिय* है।

(इति) चरित्त-वग्ग ॥१३॥

(५६) आग तापना

१३७—वैसी जरूरत होनेके बिना जो कोई नीरोग भिक्षुणी तापनेकी इच्छासे आग जलाये या जलवाये तो *पाचित्तिय* है।

(५७) स्नान

१३८—जो कोई भिक्षुणी सिवाय विशेष अवस्थाके आध माससे पहले नहाये, उसे *पाचित्तिय* होता है। विशेष अवस्था यह है—ग्रीष्मके पीछेके डेढ़ मास और वर्षाका प्रथम मास, यह ढाई मास और गर्मीका समय, जलन होनेका समय, रोगका समय, काम (= लीपने पोतने आदिका समय), रास्ता चलनेका समय तथा आँधी-पानी का समय।

(५८) चीवर-पात्र

१३९—नया चीवर पानेपर नीला, काला या कीचड़ इन तीन दुर्वर्ण करनेवाले (पदार्थों)मेसे किसी एकसे बदरंग (=दुर्वर्ण) करना चाहिये। यदि भिक्षुणी तीन बदरंग करने वाले (पदार्थों)मेसे किसी एकसे नये चीवरको बिना बदरंग किये, उपभोग करे तो *पाचित्तिय* है।

१४०—जो कोई भिक्षुणी (किसी) भिक्षु, भिक्षुणी, *शिक्षमाणा*,[१] श्रामणेर या श्रामणेरी को, स्वयं चीवर प्रदान कर बिना लौटाने (की सम्मति पाये) उपयोग करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१४१—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीके पात्र, चीवर, आसन, सुई रखनेकी फोफी (सूचीघर) या कमरबन्दको हटाकर, चाहे परिहासके लिये ही क्यो न रक्खे, *पाचित्तिय* है।

(५९) प्राणिहिंसा

१४२—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणीके जीवको मारे तो *पाचित्तिय* है।

---

[१] जो [illegible]

१४३—जो कोई भिक्षुणी जान कर प्राणि-सहित जलको पीये, उसे *पाचित्तिय* है।

(६०) झगड़ा बढ़ाना

१४४—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए धर्मानुसार फैसला हो गये मामलेको फिर चलाने के लिये प्रेरणा करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(६१) यात्राके साथी

१४५—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए सलाह करके चोरोके काफिलेके साथ एक रास्तेसे, चाहे दूसरे गाँव ही तक जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) जोति वग्ग ॥१४॥

(६२) बुरी धारणा

१४६—जो कोई भिक्षुणी ऐसा कहे—मै भगवान्‌के धर्मको ऐसा जानती हूँ, कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक कार्य कहे है, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नही कर सकते। तो दूसरी भिक्षुणियोको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! मत ऐसा कहो। मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते है—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियोंके कहनेपर वह भिक्षुणी यदि जिद् करे, तो भिक्षुणियोको तीन बार तक उसे छोड़नेके लिये उस भिक्षुणीसे कहना चाहिये। यदि तीन बार तक कहे जानेपर उसे छोड़ दे, तो अच्छा। यदि न छोड़े तो पाचित्तिय है।

१४७—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए उक्त (प्रकारकी बुरी) धारणावाली (तथा) धर्मानुसार (मत) न परिवर्तन करनेवाली हो उस विचारको न छोड़नेवाली, भिक्षुणीके साथ (जो भिक्षुणी) सहभोज, सह-वास या सह-शय्या करती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१४८—(क) *श्रामणेरी*[1] भी यदि ऐसा कहे—मै भगवान्‌के धर्मको ऐसे जानता हूँ कि भगवान्‌ने जो (निर्वाण आदिके) विघ्नकारक (=अन्तरायिक) काम कहे हैं, उनके सेवन करनेपर भी वह विघ्न नही कर सकते"; तो (दूसरी) भिक्षुणियोंको उसे ऐसा कहना चाहिये—"आर्ये! श्रामणेरी! मत ऐसा कहो! मत भगवान्‌पर झूठ लगाओ। भगवान्‌पर झूठ लगाना अच्छा नहीं है। भगवान् ऐसा नहीं कह सकते। भगवान्‌ने विघ्नकारक कामोको अनेक प्रकारसे विघ्न करनेवाले कहा है। सेवन करनेपर वह विघ्न करते है—कहा है।" इस प्रकार भिक्षुणियो द्वारा कहे जानेपर यदि वह श्रामणेरी ज़िद् करे तो भिक्षुणियाँ श्रामणेरीको ऐसा कहे—"आर्ये! श्रामणेरी! आजसे तुम उन भगवान्‌को अपना शास्ता (=उपदेशक=गुरु) न कहना, और जो दूसरी श्रामणेरियाँ दो रात, तीन रात तक भिक्षुणियोंके साथ रह सकती हैं वह (साथ रहना) भी तुम्हारे लिये नही है। चलो, (यहाँसे) निकल जाओ!"

---

[1] भिक्षुणी बननेकी उम्मेदवार।

(ख) जो कोई भिक्षुणी जानते हुये, इस प्रकार निकाली हुई श्रामणेरीको, सेवामे रक्खे, सहभोजन करे, सह-शय्या करे, उसे *पाचित्तिय* है।

(९३) धार्मिक बातका अस्वीकारना

१४९—जो कोई भिक्षुणी, भिक्षुणियोके धार्मिक बात कहनेपर इस प्रकार कहे—आर्ये! मै तब तक इन भिक्षुणी-नियमों (=*शिक्षा-पदों*)को नहीं सीखूँगी जब तक कि दूसरी चतुर *विनय-धर*[1] भिक्षुणीको न पूछलूँ; उसे *पाचित्तिय* है। भिक्षुणियो! सीखनेवाली भिक्षुणियोको जानना चाहिये, पूछना चाहिये, प्रश्न करना चाहिये—यह उचित है।

(९४) प्रातिमोक्ष

१५०—जो कोई भिक्षुणी *पातिमोक्ख* (=प्रातिमोक्ष)की आवृत्ति करते वक्त ऐसा कहे—इन छोटे छोटे शिक्षा-पदोकी आवृत्तिसे क्या मतलब जो कि सन्देह, पीड़ा और क्षोभ पैदा करने वाले हैं—(इस प्रकार) शिक्षा-पदके विरुद्ध कथन करनेमे *पाचित्तिय* है।

१५१—जो कोई भिक्षुणी प्रत्येक आधे मास *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते समय ऐसा कहे—"यह तो मै आर्ये! अब जानती हूँ; कि सूत्रोमे आये, सूत्रो द्वारा अनुमोदित इस धर्मकी भी प्रति पन्द्रहवे दिन आवृत्ति की जाती है। यदि दूसरी भिक्षुणियाँ उस भिक्षुणीको पूर्वसे बैठी जाने, (और) दो तोन या अधिक बार *पातिमोक्ख*की आवृत्तिकी जानेपर भी (उसको वैसेही पाये); तो बेसमझीके कारण वह भिक्षुणी मुक्त नहीं हो सकती। जो कुछ अपराध उसने किया है धर्मानुसार उसका प्रतिकार कराना चाहिये और आगे उसपर मोहका आरोप करना चाहिये—आर्ये! तुझे अलाभ है, तुझे बुरा लाभ हुआ है जो कि *पातिमोक्ख*की आवृत्ति करते वक्त तू अच्छी तरह दृढ़ कर मनमे धारण नही करती। उस मोहके करनेपर (=मूढ़ताके लिये) *पाचित्तिय* है।

(९५) मारना, धमकाना

१५२—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको पीटती है, *पाचित्तिय* है।

१५३—जो कोई भिक्षुणी कुपित, असंतुष्ट हो (दूसरी) भिक्षुणीको (मारनेका आकार दिखलाते हुए) धमकावे, उसे *पाचित्तिय* है।

(९६) संघादिसेसका दोषारोप

१५४—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीपर निर्मूल *संघादिसेस* (दोष)का लांछन लगाये, उसे पाचित्तिय है।

(९७) भिक्षुणीको दिक करना

१५५—जो कोई भिक्षुणी (दूसरी) भिक्षुणीको, दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि इसको क्षण भर बेचैनी होगी; जान बूझकर सदेह उत्पन्न करे, उसे *पाचित्तिय* है।

१५६—जो कोई भिक्षुणी दूसरे नहीं सिर्फ इसी मतलबसे कि जो कुछ यह कहेगी उसे

---

[1] विनयपिटक जिसे कंठस्थ है।

सुनूँगी, कलह करती, विवाद करती, झगड़ती भिक्षुणियोंके (झगड़ेको सुननेके लिये) कान लगाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

(इति) दिट्ठि-वग्ग ॥१५॥

(६८) सम्मति दान

१५७—जो कोई भिक्षुणी धार्मिक कर्मोंके लिये अपनी सम्मति (=छन्द) देकर पीछे हट जाती है, उसे *पाचित्तिय* है।

१५८—जो कोई भिक्षुणी संघके फैसला करनेकी बातमे लगे रहते वक्त बिना (अपना) छन्द (= सम्मति = vote) दियेही आसनसे उठकर चली जाय, उसे *पाचित्तिय* है।

१५९—जो कोई भिक्षुणी सारे संघके साथ (एकमत हो) चीवर देकर पीछे पलट जाती है—मुँह देखी करके (यह) भिक्षु लोग संघके धनको बाँटते है—उसे *पाचित्तिय* है।

(६९) सांघिक लाभमें भाँजी मारना

१६०—जो कोई भिक्षुणी जानते हुए संघके लिये मिले हुए लाभको (एक) व्यक्ति (के लाभके रूपमे) परिणत करती है, उसे वह *पाचित्तिय* है।

(७०) बहुमूल्य वस्तुका हटाना

१६१ —(क) जो कोई भिक्षुणी रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* और सराय (=आवसथ)से दूसरी जगह ले या लिवा जाये, उसे *पाचित्तिय* है।

(ख) रत्न या रत्नके समान (पदार्थ)को *आराम* या *आवसथ*मे लेकर या लिवाकर भिक्षुणीको उसे एक (जगह) रख देना चाहिये, (यह सोचकर) कि जिसका होगा वह ले जायगा।—यह यहाँ उचित है।

(७१) सूचीघर

१६२—जो कोई भिक्षुणी हड्डी, दन्त या सीकके *सूचीघर*को बनवाये, उसके लिये (उस सूचीघरका) तोड़ देना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

(७२) चौकी, चारपाई

१६३—नई चारपाई या तख्त (=पीठ)को बनवाते वक्त भिक्षुणी उन्हें, निचले ओटको छोड बुद्धके अगुलसे आठ अगुलवाले पावोका बनवाये। इसे अतिक्रमण करनेपर (पावोको नाप कर) कटवा देना *पाचित्तिय* है।

१६४—जो कोई भिक्षुणी चारपाई या तख्तको रुई भरकर बनवाये, उसके लिये उधेड डालना *पाचित्तिय* है।

(७३) वस्त्र

१६५—खुजली ढाँकनेके वस्त्र (लंगोट)को बनवाते समय भिक्षुणी प्रमाणके अनुसार बनवाये। प्रमाण इस प्रकार है—बुद्धके बित्तेसे चार बित्ता लबा दो बित्ता चौड़ा। इसका अतिक्रमण करनेपर काट डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है।

१६६—जो कोई भिक्षुणी बुद्धके चीवरके बराबर या उससे बड़ा चीवर बनवाये तो काट

डालना *पाचित्तिय* (=प्रायश्चित्त) है। बुद्धके चीवरका प्रमाण इस प्रकार है—सुगत (=बुद्ध)के बित्तेसे लंबाई नौ बित्ता और चौड़ाई छ बित्ता। .. ।

(इति) धम्मिक-वग्ग ॥१६॥

आर्याओ! यह एकसै छाछठ *पाचित्तिय* दोष कहे गये। आर्याओंसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।

पाचित्तिय समाप्त ॥४॥

---

§५–पाटिदेसनिय[1] (२२२-२६)

आर्याओ ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कहे जाते है—

(१) खानेकी चीज़को खास तौरसे माँगकर खाना

१—जो भिक्षुणी नीरोग होते हुए माँगकर घी खाये उसे *प्रतिदेशना* करनी चाहिये—"आर्ये ! मैने निन्दनीय, अयुक्त, प्रतिदेशना करने योग्य कार्य किया। सो मै उसकी प्रतिदेशना करती हूँ।"

२—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दहीको माँगकर खाये, उसे० ।

३—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए तेलको माँगकर खाये, उसे० ।

४—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मधुको माँगकर खाये, उसे० ।

५—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मक्खनको माँगकर खाये, उसे० ।

६—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मछलीको माँगकर खाये, उसे० ।

७—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए मांसको माँगकर खाये, उसे० ।

८—जो कोई भिक्षुणी नीरोग होते हुए दूधको माँगकर खाये, उसे० ।

आर्याओ ! यह आठ *पाटिदेसनिय* दोष कहे गये। आर्याओसे पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध है ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? तीसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।

पाटिदेसनिय समाप्त ॥५॥

---

[1] तुलना करो भिक्खु-पातिमोक्ख, पाचित्तिय §५ । ३९ (पृष्ठ २६) । अपराध स्वीकार पूर्वक क्षमायाचना पाटिदेसनिय कहा जाता है ।

§६—सेखिय[1]

आर्याओ ! यह (पचहत्तर) *सेखिय* (= सीखने योग्य) बाते कही जाती हैं—

(१) चीवर पहिनना

१—*परिमंडल* (चारों ओरसे ढाँककर) वस्त्र पहिनूँगी—यह शिक्षा (ग्रहण) करनी चाहिये ।

२—*परिमडल* ओढ़ूँगी ।

(२) गृहस्थोंके घरमें जाना, बैठना

३—(गृहस्थोके) घरमे अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके जाऊँगी—० ।

४—घरमे अच्छी तरह (शरीरको) आच्छादित करके बैठूँगी—० ।

५—घरमे अच्छी तरह सयमके साथ जाऊँगी—० ।

६—घरमे अच्छी तरह संयमके साथ बैठूँगी—० ।

७—घरमे नीची आँखकर जाऊँगी—० ।

८—घरमे नीची आँखकर बैठूँगी—० ।

९—घरमे शरीरको बिना उतान किये जाऊँगी—० ।

१०—घरमे शरीरको बिना उतान किये बैठूँगी—० ।

(इति) परिमंडल वग्ग ॥ १ ॥

११—(गृहस्थोके) घरमे न कहकहा लगाते जाऊँगी—० ।

१२—(गृहस्थोके) घरमे न कहकहा लगाते बैठूँगी—० ।

१३—घरमे चुपचाप जाऊँगी—० ।

१४—घरमे चुपचाप बैठूँगी—० ।

१५—घरमे देहको न भाँजते हुए जाऊँगी—० ।

१६—घरमे देहको न भाँजते हुए बैठूँगी—० ।

१७—घरमे बाँहको न भाँजते हुए जाऊँगी—० ।

१८—घरमे बाँहको न भाँजते हुए बैठूँगी—० ।

१९—घरमे सिरको न हिलाते हुए जाऊँगी—० ।

२०—घरमे सिरको न हिलाते हुए बैठूँगी—० ।

(इति) उज्जग्घिक वग्ग ॥२॥

---

[1] मिलाओ—भिक्खु-पातिमोक्ख §७ (पृष्ठ २३-२५)

२१—घरमे न कमरपर हाथ रखकर जाऊँगी—० ।
२२—घरमे न कमरपर हाथ रखकर बैठूँगी—० ।
२३—घरमे न अवगुंठित हो (सिर ढाँके) जाऊँगी—० ।
२४—घरमे न अवगुंठित हो (सिर ढाँके) बैठूँगी—० ।
२५—घरमे न पंजोके बल जाऊँगी—० ।
२६—घरमे न पालथी मारकर बैठूँगी—० ।

(३) भिक्षान्न ग्रहण और भोजन

२७—भिक्षान्नको सत्कार पूर्वक ग्रहण करूँगी—० ।
२८—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—० ।
२९—(अधिक नही) मात्राके अनुसार सूप (= तेमन)वाले भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—० ।
३०—(पात्रसे उभरे नहीं) समतल भिक्षान्नको ग्रहण करूँगी—० ।

(इति) खम्भक वग्ग ॥३॥

३१—सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—० ।
३२—(भिक्षा) पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको खाऊँगी—० ।
३३—एक ओरसे भिक्षान्नको खाऊँगी—० ।
३४—मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको खाऊँगी—० ।
३५—पिंड (स्तूप)को मीज मीजकर नही भोजन करूँगी—० ।
३६—अधिक दाल या भाजीकी इच्छासे (व्यजन)को भातसे नहीं ढाँकूगी—० ।
३७—नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नही भोजन करूँगी—० ।
३८—न अवज्ञाके ख्यालसे दूसरोके पात्रको देखूँगी—० ।
३९—न बहुत बड़ा ग्रास बनाऊँगी—० ।
४०—ग्रासको गोल बनाऊँगी—० ।

(इति) सक्कच्च-वग्ग ॥४॥

४१—ग्रासको बिना मुँह तक लाये मुखके द्वारको न खोलूँगी—० ।
४२—भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमे न डालूँगी—० ।
४३—ग्रास पड़े हुए मुखसे बात नही करूँगी—० ।
४४—ग्रास उछाल उछालकर नहीं खाऊँगी—० ।
४५—ग्रासको काट काटकर नही खाऊँगी—० ।
४६—न गाल फुला फुलाकर खाऊँगी—० ।
४७—न हाथ झाड़ झाड़कर खाऊँगी—० ।
४८—न जूठ बिखेर बिखेरकर खाऊँगी—० ।
४९—न जीभ चटकार चटकार कर खाऊँगी—० ।
५०—न चपचप करके खाऊँगी—० ।

(इति) कबळ-वग्ग ॥५॥

५१—न सुड़सुड़कर खाऊँगी—० ।
५२—न हाथ चाट चाटकर खाऊँगी—० ।

५३—न पात्र चाट चाटकर खाऊँगी—०।
५४—न ओठ चाट चाटकर खाऊँगी—०।
५५—न जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन पकड़ूँगी—०।
५६—न जूठ लगे पात्रके धोवनको घरमे छोड़ूँगी—०।

(४) कैसेको उपदेश न करना

५७—हाथमे छाता धारण किये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
५८—हाथमे दंड लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
५९—हाथमे शस्त्र लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६०—हाथमे आयुध लिये नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।

(इति) सुरुसुरु-वग्ग ॥६॥

६१—खड़ाऊँपर चढ़े नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६२—जूता पहने निरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६३—सवारीमे बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६४—शय्यामे लेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६५—पालथी मारकर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६६—सिर लपेटे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
६७—ढँके शिरवाले नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।
६८—न (स्वय) भूमिपर बैठकर; आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—०।
६९—न नीचे आसनपर बैठकर ऊँचे आसनपर बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म उपदेशूँगी—०।
७०—खड़े हो, बैठे नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
७१—(अपने) पीछे पीछे चलते आगे आगे जाते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नही उपदेशूँगी—०।
७२—(अपने) रास्तेसे हटकर चलते हुए, रास्ते से चलते नीरोग (व्यक्ति)को धर्म नहीं उपदेशूँगी—०।

(५) पिसाब-पाखाना

७३—नीरोग रहते खड़े खड़े पिसाब-पाखाना नही करूँगी—०।
७४—नीरोग रहते हरियालीमे पिसाब-पाखाना नही करूँगी—०।
७५—नीरोग रहते पानीमे पिसाब-पाखाना नही करूँगी—०।

(इति) पादुका-वग्ग ॥७॥

आर्याओ ! यह (पचहत्तर) *सेखिय* बाते कह दी गई। आर्याओसे मैं पूछती हूँ—क्या (आप लोग) इनसे शुद्ध हैं ? दूसरी बार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी बार फिर पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? आर्या लोग इनसे शुद्ध हैं, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।

सेखिय समाप्त ॥६॥

§७—अधिकरण-समथ (३०५-११)

आर्याओ ! (समय समयपर) उत्पन्न हुए अधिकरणों (= झगडो)के शमनके लिये यह सात *अधिकरण-समथ* कहे जाते है—

(१) झगड़ा मिटानेके तरीके

१—सन्मुख-विनय देना चाहिये ।
२—स्मृति-विनय देना चाहिये ।
३—अमूढ़-विनय देना चाहिये ।
४—प्रतिज्ञात-करण (=स्वीकार) कराना चाहिये ।
५—यद्भूयसिक ।
६—तत्पापीयसिक ।
७—तिणवत्थारक ।

आर्याओ ! यह सात *अधिकरण समथ* कहे गये । आर्याओसे पूछती हूँ—क्या आप लोग इनसे शुद्ध है ? दूसरी वार पूछती हूँ—क्या शुद्ध हैं ? तीसरी वार भी पूछती हूँ—क्या शुद्ध है ? आर्या लोग इनसे शुद्ध है, इसीलिये चुप हैं—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ ।

अधिकरण समथ समाप्त ॥७॥

आर्याओ ! *निदान* कह दिया गया । (१-८) आठ *पाराजिक* दोष कह दिये गये । (९-२५) सत्तरह *संघादिसेस* दोष कह दिये गये । (२६-५५) तीस *निस्सग्गिय-पाचित्तिय* दोष कह दिये गये । (५६-२२१) एक सौ छाछठ *पाचित्तिय* दोष कह दिये गये । (२२२-२२९) आठ *पाटिदेसनिय* दोष कह दिये गये । (२३०-३०४) पचहत्तर *सेखिय* बातें कह दी गईं । (३०५-३११) सात *अधिकरण-समथ* कह दिये गये । इतनाही उन भगवानके सुत्तो (= सूक्तो=कथनो)मे आये, सुत्तो द्वारा अनुमोदित (नियम हैं जिनकी कि) प्रत्येक पन्द्रहवे दिन आवृत्ति की जाती है । (हम) सबको एकमत हो परस्पर अनुमोदन करते, विवाद न करते उन्हे सीखना चाहिये ।

इति

भिक्खुनी-पातिमोक्ख समाप्त

पातिमोक्ख समाप्त

ख—खन्धक

३—महावग्ग

३–महावग्ग

१–महास्कन्धक[1]

१—बुद्धत्त्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा। २—शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्तव्य। ३—उपसपदा और प्रव्रज्या। ४—उपसपदाकी विधि।

§१–बुद्धत्त्व लाभ और बुद्धकी प्रथम यात्रा

१—उरुवेला

(१) बोधि-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् उ रु वे ला मे[2] ने र ज रा नदीके तीर बोधि-वृक्षके नीचे, प्रथम बुद्धपद (=अभिसबोधि)को प्राप्त हुए थे। भगवान् बोधिवृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे मोक्षका आनद लेते हुए बैठे रहे। उन्होने रातके प्रथम याममे प्रतीत्य-समुत्पादका अनुलोम (=आदिसे अन्तकी ओर) और प्रतिलोम (अन्तसे आदिकी ओर) मनन किया।—"अविद्याके कारण सस्कार होता है, सस्कारके कारण वि ज्ञा न होता है, विज्ञानके कारण ना म - रू प, नाम-रूपके कारण छ आ य त न, छ आयतनोके कारण स्प र्श, स्पर्शके कारण वे द ना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भ व, भवके कारण जा ति, जाति (=जन्म)के कारण जरा (=बुढापा), मरण, शोक, रोना पीटना, दु ख, चित्त-विकार और चित्त-खेद उत्पन्न होते है। इस तरह इस (ससार)की—जो केवल दु खोका पुज है—उत्पत्ति होती है। अविद्याके बिल्कुल विरागसे, (अविद्याका) नाश होनेसे, सस्कारका विनाश होता है। सस्कार-नाशसे विज्ञानका नाश होता है। विज्ञान-नाशसे नाम-रूपका नाश होता है। नाम-रूपके नाशसे छ आयतनोका नाश होता है। छ आयतनोके नाशसे स्पर्श का नाश होता है। स्पर्श-नाशसे वेदना का नाश होता है। वेदना-नाशसे तृष्णा का नाश होता है। तृष्णा-नाशसे उपादान का नाश होता है। उपादान-नाशसे भव का नाश होता है। भव-नाशसे जाति का नाश होता है। जाति-नाशसे जरा, मरण, शोक, रोना-पीटना, दु ख, चित्त-विकार और चित्त-खेद नाश होते है। इस प्रकार इस केवल दु ख-पुञ्जका नाश होता है। भगवान्ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उ दा न कहा—

---

[1] भोट-भाषामें अनुवादित मूल सर्वास्तिवादके विनय-वस्तुमें इसे ही प्रव्रज्या-वस्तु कहा गया है।

[2] बोधगया, जि० गया (बिहार)।

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्र (=ब्राह्मण)को।
तब शात हो काक्षा सभी, देखे स-हेतू धर्मको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके मध्यम-याममे प्र ती त्य - स मु त्पा द को अनुलोम-प्रतिलोमसे मनन किया।—"अविद्याके कारण सस्कार होता है० दु ख पुजका नाश होता है"। भगवान्‌ने इस अर्थको जान-कर उसी समय यह उदान कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
तब शात हो काक्षा सभीही जान कर क्षय-कार्यको॥"

फिर भगवान्‌ने रातके अन्तिम-याममे प्रतीत्य-समुत्पादको अनुलोम-प्रतिलोम करके मनन किया।—"अविद्या० केवल दु ख-पुजका नाश होता है"। भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"जब धर्म होते जग प्रकट, सोत्साह ध्यानी विप्रको।
ठहरै कँपाता मार-सेना, रवि प्रकाशै गगन ज्यो॥"

बोधिकथा समाप्त।

(२) अजपाल कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठकर, बो धि वृ क्ष के नीचेसे वहाँ गये, जहाँ अ ज पा ल नामक बर्गदका वृक्ष था, वहाँ पहुँचकर अजपाल बर्गदके वृक्षके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनद लेते हुए, एक आसनसे बैठे रहे। उस समय कोई अभिमानी ब्राह्मण, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया। पास आकर भगवान्‌के साथ (कुशलक्षेम पूछ) एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे हुए उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यो कहा—"हे गौतम! ब्राह्मण कैसे होता है? ब्राह्मण बनानेवाले कौनसे धर्म है"? भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर, उसी समय यह उ दा न कहा—

"जो विप्र बाहित-पाप मल-अभिमान-विनु सयत रहे।
वेदात-पारग, ब्रह्मचारी ब्रह्मवादी धर्मसे।
सम नहि कोई जिससा जगत् (में)।"

(३) मुचलिन्द कथा

फिर सप्ताह बीतनेपर भगवान् उस समाधिसे उठ, अ ज पा ल बर्गदके नीचेसे वहाँ गये, जहाँ मु च लि द (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर मु च लि दके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय सप्ताह भर अ-समय महामेघ, (और) ठडी हवा-वाली बदली पळी। तब मु च लि न्द नाग-राज अपने घरसे निकलकर भगवान्‌के शरीरको सात बार अपने देहसे लपेटकर, शिरपर बळा फण तानकर खळा हो गया जिसमे कि भगवान्‌को शीत, उष्ण, डँस, मच्छर, वात, धूप तथा रेंगनेवाले जन्तु न छूवे। सप्ताह बाद मु च लि न्द नागराज आकाशको मेघ-रहित देख, भगवान्‌के शरीरसे (अपने) देहको हटाकर (और उसे) छिपाकर, बालकका रूप धारणकर भगवान्‌के सामने खळा हुआ। भगवान्‌ने इसी अर्थको जानकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"सन्तुष्ट देखनहार श्रुतधर्मा, सुखी एकान्तमें।
निर्द्वन्द्व सुख है लोकमें, सयम जो प्राणी मात्रमें॥
सब कामनायें छोळना, वैराग्य है सुख लोक में।
है परम सुख निश्चय वही, जो साधना अभिमानका॥

(४) राजायतन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, मु च लि द के नीचेसे वहाँ गये, जहाँ रा जा-य त न (वृक्ष) था। वहाँ पहुँचकर रा जा य त नके नीचे सप्ताह भर मोक्षका आनन्द लेते हुए एक आसनसे बैठे रहे। उस समय त प स्सु और भ ल्लि क, (दो) बनजारे उ त्क ल दे श से उस स्थानपर पहुँचे। उनकी जात-बिरादरीके देवताने त प स्सु, भ ल्लि क बनजारोसे कहा—"मार्ष (मित्र)! बुद्धपदको प्राप्त हो यह भगवान् रा जा य त नके नीचे विहार कर रहे है। जाओ उन भगवान्‌को मट्ठे (=मन्थ) और लड्डू (=मधु-पिंड)से सम्मानित करो, यह (दान) तुम्हारे लिये चिरकाल तक हित और सुखका देनेवाला होगा। तब तपस्सु और भल्लिक बनजारे मट्ठा और लड्डू ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक तरफ खडे हो गये। एक तरफ खडे हुए तपस्सु और भल्लिक बनजारोने यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! हमारे मट्ठे और लड्डुओको स्वीकार कीजिये, जिससे कि चिरकाल तक हमारा हित और सुख हो।"

उस समय भगवान्‌ने सोचा—"तथागत (भिक्षाको) हाथमे नही ग्रहण किया करते, मै मट्ठा और लड्डू किस (पात्र) मे ग्रहण करूँ।" तब चारो म हा रा जा भगवान्‌के मनकी बात जान, चारो दिशाओसे चार पत्थरके (भिक्षा-)पात्र भगवान्‌के पास ले गये—"भन्ते! भगवान्! इसमे मट्ठा और लड्डू ग्रहण कीजिये।" भगवान्‌ने उस अभिनव शिलामय पात्रमे मट्ठा और लड्डू ग्रहणकर भोजन किया। उस समय तपस्सु, भल्लिक बनजारोने भगवान्‌से कहा—'भन्ते! हम दोनो भगवान् तथा धर्म-की शरण जाते है। आजसे भगवान् हम दोनोको अजलिबद्ध शरणागत उपासक जाने।"

ससारमे वही दोनो (बुद्ध और धर्म) द्वो वचनो-से प्रथम उपासक हुए।[1]

(५) ब्रह्मयाचन कथा

सप्ताह बीतनेपर भगवान् फिर उस समाधिसे उठ, रा जा य त न के नीचेसे जहाँ अ ज पा ल बर्गद था, वहाँ गये। वहाँ अजपाल बर्गदके नीचे भगवान् विहार करने लगे। तब एकान्तमे ध्यानावस्थित भगवान्‌के चित्तमे वितर्क पैदा हुआ—"मैने गभीर, दुर्दर्शन, दुर्-ज्ञेय, शात, उत्तम, तर्कसे अप्राप्य, निपुण, पण्डितो द्वारा जानने योग्य, इस धर्मको पा लिया। यह जनता काम-तृष्णा (=आलयमे) रमण करने

---

[1]इस प्रकार (वैशाख पूर्णिमाके दूसरे दिन) प्रतिपद्‌की रातको यह मनमें कर (१) बोधि वृक्षके नीचे सप्ताह भर एक आसनसे बैठे। .. तब भगवान्‌ने आठवें दिन समाधिसे उठ .(२) (वज्र-)आसनसे थोडा पूर्वलिये उत्तर दिशामें खडे हो . (वज्र-)आसन और बोधि वृक्षको, बिना पलक गिराये (=अनि-मेष) नेत्रोसे देखते सप्ताह बिताया। वह स्थान अनिमेष चैत्य नामवाला हुआ। फिर (३) (वज्र-)-आसन और खडे होने (अनिमेष चैत्य)के स्थानके बीच, पूर्वसे पश्चिम लम्बे रत्न-चक्रम (=रत्नमय टहलनेके स्थान)पर टहलते सप्ताह बिताया, वह रत्न-चक्रम चैत्य नामवाला हुआ। उसके पश्चिम-दिशामें देवताओने रत्नघर बनाया। वहाँ आसन मार बैठ अभिधर्म-पिटक पर विचार करते सप्ताह बिताया। वह स्थान रत्नघर-चैत्य नामवाला हुआ। इस प्रकार बोधिके पास चार सप्ताह बिता, पाँचवें सप्ताह बोधिवृक्षसे जहाँ (५) अजपाल न्यग्रोध था, (भगवान्) वहाँ गये। उस न्यग्रोध (बर्गद)के नीचे बकरी चरानेवाले (=अजपाल) जाकर बैठते थे, इसलिये उसका अजपाल न्यग्रोध नाम हुआ। बोधिसे पूर्वदिशामें यह वृक्ष था।....(६) मुचलिन्द वृक्षके पास वाली पुष्करिणीमें उत्पन्न यह दिव्य शक्तिधारी नागराज था। .. महाबोधिके पूर्वकोणमें स्थित (उस) मुचलिन्द वृक्षसे.... (७) दक्षिण दिशामें स्थित राजायतन वृक्षके पास गए। (—अट्ठकथा)

वाली काम-रत काममे प्रसन्न है। काममे रमण करनेवाली इस जनताके लिये, यह जो कार्य का र ण रूपी प्र ती त्य - स मु त्पा द है, वह दुर्दर्शनीय है, और यह भी दुर्दर्शनीय है, जो कि यह सभी सस्कारो-का शमन, सभी मन्त्रोका परित्याग, तृष्णाका क्षय, विराग, निरोध (=दुख-निरोध), और निर्वाण है। मै यदि धर्मोपदेश भी करूँ और दूसरे उसको न समझ पावे, तो मेरे लिये यह तुरद्दुद, और पीडा (मात्र) होगी। उसी समय भगवान्‌को पहिले कभी न सुनी, यह अद्भुत गाथाये सूझ पडी—

"यह धर्म पाया कष्टसे, इसका न युक्त प्रकाशना।
नहिं राग-द्वेष-प्रलिप्तको है सुकर इसका जानना।
गभीर उल्टी-धारयुत दुर्दृश्य सूक्ष्म प्रवीणका।
तम-पुज-छादित रागरतद्वारा न सभव देखना॥"

भगवान्‌के ऐसा समझनेके कारण, (उनका) चित्त धर्मप्रचारकी ओर न झुककर अल्प-उत्सुकताकी ओर झुक गया। तव स हा प ति ब्र ह्मा ने भगवान्‌के चित्तकी वातको जानकर ख्याल किया—"लोक नाश हो जायगा रे! जव तथागत अर्हत् सम्यक् सवुद्धका चित्त धर्म-प्रचारकी ओर न झुक, अल्प-उत्सुकता (=उदासीनता)की ओर झुक जाये।"

(ऐसा ख्यालकर) सहापति ब्रह्मा, जैसे वलवान् पुरुप (विना परिश्रम) फैली वाँहको समेट ले, समेटी वाँहको फैलादे, ऐसे ही ब्रह्मलोकसे अन्तर्धान हो, भगवान्‌के सामने प्रकट हुए। फिर सहापति ब्रह्माने उपरना (=चद्दर) एक कधेपर करके, दाहिने जानुको पृथिवीपर रख, जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोड, भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान् धर्मोपदेश करें,सुगत! धर्मोपदेश करे। अल्प-मलवाले प्राणी भी है, धर्मके न सुननेसे वह नष्ट हो जायेंगे। (उपदेश करे) धर्मको सुननेवाले (भी होवेंगे)" सहापति ब्रह्माने यह कहा, और यह कहकर यह भी कहा—

"मगधमे मलिन चित्तवालोमे चिन्तित, पहिले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ।
(अव दुनिया) अमृतके द्वारको खोलनेवाले विमल (पुरुप)मे जाने गये इस धर्मको सुने।
"पथरीले पर्वतके शिखरपर खडा (पुरुप) जैसे चारो ओर जनताको देखे। उसी तरह हे सुमेध! हे सर्वत्र नेत्रवाले! धर्मरूपी महलपर चढ सव जनताको देखो॥

"हे शोक-रहित! शोक-निमग्न जन्मजरासे पीळित जनताकी ओर देखो। उठो वीर! हे सग्रामजित्! हे सार्थवाह! उऋण-ऋण! जगमे विचरो, धर्मप्रचार करो, भगवान्! जाननेवाले भी मिलेगे।"

तव भगवान्‌ने ब्रह्माके अभिप्रायको जानकर, और प्राणियोपर दया करके, वुद्ध-नेत्रसे लोकका अवलोकन किया। वुद्ध-चक्षुसे लोकको देखते हुए भगवान्‌ने जीवोको देखा, उनमे कितने ही अल्प-मल, तीक्ष्ण-बुद्धि, सुन्दर-स्वभाव, समझानेमे सुगम प्राणियोको भी देखा। उनमे कोई कोई परलोक और दोपसे भय करते, विहर रहे थे। जैसे उत्पलिनी, पद्मिनी (=पद्मसमुदाय) या पुडरीकिनीमे से कितने ही उत्पल, पद्म या पुडरीक उदकमे पैदा हुए उदकमे वँधे उदकसे वाहर न निकल (उदकके) भीतर ही डूबकर पोपित होते है। कोई कोई उत्पल (नीलकमल), पद्म (रक्तकमल), या पुडरीक (श्वेतकमल) उदकमे उत्पन्न, उदकमे वँधे (भी) उदकके वरावर ही खडे होते है। कोई कोई उत्पल, पद्म या पुडरीक उदकमे उत्पन्न, उदकसे वँधे (भी), उदकसे वहुत ऊपर निकलकर, उदकसे अलिप्त (हो) खडे होते है। इसी तरह भगवान्‌ने बुद्ध-चक्षुसे लोकको देखा—अल्पमल, तीक्ष्णवुद्धि, सुस्वभाव, सुवोध्य प्राणियो को देखा जो परलोक तथा वुराईसे भय खाते विहर रहे थे। देखकर स हा प ति ब्रह्मासे गाथाद्वारा कहा—

'उनके लिये अमृतका द्वार वद होगया, जो कानवाले होनेपर भी, श्रद्धाको छोड देते है।
'हे ब्रह्मा! (वृथा) पीडाका ख्यालकर मै मनुष्योको निपुण, उत्तम, धर्मको नही कहता था।'

(६) धर्म चक्र प्रवर्तन

तब ब्रह्मा सहापति—'भगवान्‌ने धर्मोपदेशके लिये मेरी बात मानली' यह जान, भगवान्‌को, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान होगये।

उस समय भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"मैं पहिले किसे इस धर्मकी देशना (=उपदेश) करूँ इस धर्मको शीघ्र कौन जानेगा?" फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"यह आ ला र - का ला म पण्डित, चतुर मेधावी चिरकालसे निर्मल-चित्त है, मैं पहिले क्यो न आलार-कालामको ही धर्मोपदेश दूँ? वह इस धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तब (गुप्त) देवताने भगवान्‌से कहा—"भन्ते! आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ—"आलार-कालामको मरे एक सप्ताह हो गया।" तब भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"आलार-कालाम महा-आजानीय था, यदि वह इस धर्मको सुनता, शीघ्र ही जान लेता।" फिर भगवान्‌के (मनमे) हुआ—"यह उ द्द क-रा म पु त्त पण्डित, चतुर, मेधावी, चिरकालसे निर्मल चित्त है, क्यो न मैं पहिले उद्दक-रामपुत्तको ही धर्मोपदेश करूँ? वह इस धर्मको शीघ्र ही जान लेगा।" तब (गुप्त=अन्तर्धान) देवताने आकर कहा—"भन्ते! रात ही उद्दक-रामपुत्त मर गया।" भगवान्‌को भी ज्ञान-दर्शन हुआ। । फिर भगवान्‌के (मनमें) हुआ—"प ञ्च - व र्गी य भिक्षु मेरे बहुत काम करनेवाले थे, उन्होंने साधनामें लगे मेरी सेवा की थी। क्यो न मैं पहिले पञ्चवर्गीय भिक्षुओको ही धर्मोपदेश दूँ।" भगवान्‌ने सोचा—"इस समय पञ्चवर्गीय भिक्षु कहाँ विहर रहे हैं?" भगवान्‌ने अ-मानुष विशुद्ध दिव्य नेत्रोसे देखा—"पञ्चवर्गीय भिक्षु वा रा ण सी के[1] ऋ षि-प त न मृगदावमें विहारकर रहे हैं।"

तब भगवान् उ रु वे ला में इच्छानुसार विहारकर, जिधर वाराणसी है, उधर चारिका (=रामत)के लिये निकल पडे। उ प क आ जी व क[2]ने भगवान् को बो धि (=बोध गया) और गयाके बीचमें जाते देखा। देखकर भगवान्‌से बोला—"आयुष्मान् (आवुस)! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न है, तेरी कांति परिशुद्ध तथा उज्वल है। किसको (गुरु) मानकर, हे आवुस! तू प्रव्रजित हुआ है? तेरा गुरु कौन है? तू किसके धर्मको मानता है?"

यह कहनेपर भगवान्‌ने उपक आजीवकसे गाथामे कहा—

"मैं सबको पराजित करनेवाला, सबको जाननेवाला हूँ,
सभी धर्मोमें निर्लेप हूँ।
सर्व-त्यागी (हूँ), तृष्णाके क्षयसे मुक्त हूँ, मैं अपनेही जानकर उपदेश करूँगा।
मेरा आचार्य नही है मेरे सदृश (कोई) विद्यमान नही।
देवताओ सहित (सारे) लोकमें मेरे समान पुरुष नही।
मैं ससारमे अर्हत् हूँ, अपूर्व उपदेशक हूँ।
मैं एक सम्यक् सबुद्ध, शान्ति तथा निर्वाणको प्राप्त हूँ।
धर्मका चक्का घुमानेके लिये का शि यो के नगरको जा रहा हूँ।
(वहाँ) अन्धे हुए लोकमे अमृत-दुन्दुभी बजाऊँगा॥"

"आयुष्मान्! तू जैसा दावा करता है उससे तो अनन्त जि न हो सकता है।"
"मेरे ऐसे ही आदमी जिन होते है, जिनके कि चित्तमल (=आस्रव) नष्ट हो गये हैं।
मैंने बुराइयोको जीत लिया है, इसलिये हे उपक! मैं जिन हूँ।"
ऐसा कहनेपर उपक आजीवक—"होवोगे आवुस!" कह, शिर हिला, बेरास्ते चला गया।

---

[1] वर्तमान सारनाथ, बनारस। [2] उस समयके नगे साधुओका एक सम्प्रदाय था। मक्खली-गोसाल इनका एक प्रधान आचार्य था।

२—वाराणसी

तब भगवान् क्रमश यात्रा करते हुए, जहाँ वाराणसीमे ऋषि-पतन मृगदाव था, जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु थे, वहाँ पहुँचे। पञ्चवर्गीय भिक्षुओने भगवान्को, दूरसे आते हुए देखा। देखते ही आपसमे पक्का किया—

"आवुसो! साधना-भ्रष्ट जोळू वटोरू श्रमण गौतम आ रहा है। इसे अभिवादन नही करना चाहिये और न प्रत्युत्थान (=सत्कारार्थ खळा होना) करना चाहिये। न इसका पात्र-चीवर (आगे बढकर) लेना चाहिये। केवल आसन रख देना चाहिये, यदि इच्छा होगी तो बैठेगा।"

जैसे जैसे भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओके समीप आते गये, वैसेही वैसे वह अपनी प्रतिज्ञापर स्थिर न रह सके। (अन्तमे) भगवान्के पास जानेपर एकने भगवान्का पात्र-चीवर लिया, एकने आसन विछाया, एकने पादोदक (=पैर धोनेका जल), पादपीठ (=पैरका पीढा) और पादकठलिका (=पैर रगळनेकी लकळी) ला पास रक्खी। भगवान् विछाये आसनपर बैठे। बैठकर भगवान्ने पैर धोये। (उस समय) वह (लोग) भगवान्के लिये 'आवुस' शब्दका प्रयोग करते थे। ऐसा करनेपर भगवान्ने कहा— "भिक्षुओ! तथागतको नाम लेकर या 'आवुस' कहकर मत पुकारो। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध है। इधर कान दो, मैंने जिस अमृतको पाया है, उसका तुम्हे उपदेश करता हूँ। उपदेशानुसार आचरण करनेपर, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो सन्यासी होते है, उस अनुपम ब्रह्मचर्यफलको, इसी जन्ममे शीघ्र ही स्वय जानकर=साक्षात्कारकर=लाभकर विचरोगे।"

"ऐसा कहनेपर पञ्चवर्गीय भिक्षुओने भगवान्से कहा—'आवुस! गौतम! उस साधनामे, उस धारणामे और उस दुष्कर तपस्यामे भी तुम आर्योके ज्ञानदर्शनकी पराकाष्ठाकी विशेषता, उत्तरमनुष्य-धर्म (=दिव्य शक्ति)को नही पा सके, फिर अब साधनाभ्रष्ट, जोळू-वटोरू हो तुम आर्य-ज्ञान-दर्शनकी पराकाष्ठा, उत्तर-मनुष्य-धर्मको क्या पाओगे।"

यह कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओसे कहा—"भिक्षुओ! तथागत जोळू-वटोरू नही है, और न साधनासे भ्रष्ट है,। भिक्षुओ! तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्ध है०।० लाभकर विहार करोगे।

दूसरी बार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओने भगवान्से कहा—"आवुस! गौतम०" दूसरी बार भी भगवान्ने फिर (वही) कहा०। तीसरी वार भी पञ्चवर्गीय भिक्षुओने भगवान्से (वही) कहा०। ऐसा कहनेपर भगवान्ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओसे कहा—"भिक्षुओ! इससे पहिले भी क्या मैंने कभी इस प्रकार बात की है?"

"भन्ते! नही"

"भिक्षुओ! तथागत अर्हत्० विहार करोगे।"

तब भगवान् पञ्चवर्गीय भिक्षुओको समझानेमे समर्थ हुए, और पञ्चवर्गीय भिक्षुओने भगवान्के (उपदेश) सुननेकी इच्छासे कान दिया, चित्त उधर किया।

[१] "भिक्षुओ! साधुको यह दो अतिया सेवन नही करनी चाहिये। कोनसी दो? (१) जो यह हीन, ग्राम्य, अनाळी मनुष्योके (योग्य), अनार्य(-सेवित), अनर्थोसे युक्त, कामवासनाओमे लिप्त होना है, और (२) जो दुख (-मय), अनार्य(-सेवित) अनर्थोसे युक्त आत्म-पीळामे लगना है। भिक्षुओ! इन दोनो ही अतियोमे न जाकर, तथागतने मध्यम-मार्ग खोज निकाला है, (जोकि)

---

[१] देखो, संयुत्त नि० ५५ : २ : १

आँख-देनेवाला, ज्ञान-करानेवाला शातिके लिये, अ भि ज्ञा के लिये, परिपूर्ण-ज्ञानके लिये और निर्वाणके लिये है। वह कौनसा मध्यम-मार्ग (=मध्यम-प्रतिपद्) तथागतने खोज निकाला है, (जोकि) ०? वह यही [1]आर्य-अष्टागिक मार्ग है, जैसे कि—ठीक-दृष्टि, ठीक-सकल्प, ठीक-वचन, ठीक-कर्म, ठीक-जीविका, ठीक-प्रयत्न, ठीक-स्मृति, ठीक-समाधि। यह है भिक्षुओ ! मध्यम-मार्ग (जिसको)०।

यह भिक्षुओ ! दु ख आर्य (=उत्तम) सत्य (=सच्चाई) है।—जन्म भी दु ख है, जरा भी दु ख है, व्याधि भी दु ख है, मरण भी दु ख है, अप्रियोका सयोग दु ख है, प्रियोका वियोग भी दु ख है, इच्छा करनेपर किसी (चीज)का नही मिलना भी दु ख है। सक्षेपमे सारे भौतिक अभौतिक पदार्थ (=पाँच[1] उपादानस्कन्ध) ही दु ख है। भिक्षुओ ! दु ख-समुदय (=दु ख-कारण) आर्य सत्य है। यह जो तृष्णा है—फिर जन्मनेकी, खुश होनेकी, राग-सहित जहाँ तहाँ प्रसन्न होनेकी—। जैसे कि—काम-तृष्णा, भव (=जन्म) तृष्णा, विभव-तृष्णा। भिक्षुओ ! यह है दु ख-निरोध आर्य-सत्य, जोकि उसी तृष्णाका सर्वथा विरक्त हो, निरोध = त्याग= प्रतिनिस्सर्ग = मुक्ति = निलीन होना। भिक्षुओ !—यह है दु ख-निरोधकी ओर जानेवाला मार्ग (दु ख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद्) आर्य सत्य। यहीः आर्य अष्टागिक मार्ग है।

"यह दु ख आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे न-सुने धर्मोमे, आँख उत्पन्न हुई = ज्ञान उत्पन्न हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दु ख आर्य-सत्य परिज्ञेय है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न-सुने धर्मोमे०। (सो यह दु ख-सत्य) परि-ज्ञात है।' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमे०।

"यह दु ख-समुदय आर्य-सत्य है' भिक्षुओ, यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमे आँख उत्पन्न हुई, ज्ञान हुआ = प्रज्ञा उत्पन्न हुई = विद्या उत्पन्न हुई = आलोक उत्पन्न हुआ। 'यह दु ख-समुदय आर्य-सत्य त्याज्य है", भिक्षुओ ! यह मुझे०।' ०प्रहीण (छूट गया)' यह भिक्षुओ मुझे०।

"यह दु ख-निरोध आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमे आँख उत्पन्न हुई० "सो यह दु ख-निरोध आर्य-सत्य साक्षात् (=प्रत्यक्ष) करना चाहिये" भिक्षुओ ! यह मुझे०। 'यह दु ख-निरोध-सत्य साक्षात् किया' भिक्षुओ ! यह मुझे०।

"यह दु ख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्य-सत्य है' भिक्षुओ ! यह मुझे पहिले न सुने गये धर्मोमे, आँख उत्पन्न हुई०। यह दु ख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् आर्यसत्य भावना करनी चाहिये, भिक्षुओ ! यह मुझे०। "यह दु ख-निरोध-गामिनी-प्रतिपद् भावना की" भिक्षुओ ! यह मुझे०।

"भिक्षुओ ! जवतक कि इन चार आर्यसत्योका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका—यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन न हुआ, तबतक भिक्षुओ ! मैंने यह दावा नही किया—देवो सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सभी) लोकमे, देव-मनुष्य-सहित, साधु-ब्राह्मण-सहित (सभी) प्राणियोमे, अनुपम परम ज्ञानको मैंने जान लिया' भिक्षुओ ! (जव) इन चार आर्य-सत्योका (उपरोक्त) प्रकारसे तेहरा (हो) बारह आकारका यथार्थ शुद्ध ज्ञान-दर्शन हो गया, तव मैंने भिक्षुओ ! यह दावा किया—'देवो सहित० मैंने जान लिया। मैंने ज्ञानको देखा। मेरी मुक्ति अचल है। यह अतिम जन्म है। फिर अव आवागमन नही।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो पचवर्गीय भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनन्दन किया। इस व्याख्यानके कहे जानेके समय, आयुष्मान् कौ ण्डि न्य को—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह

---

[1] विस्तारके लिये दीघनिकायके "सतिपट्ठानसुत्त" को देखो ।

सब नाशमान् है, यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। इस उपदेशके कहे जानेके समय आयुष्मान् कौ ण्डि न्य को—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है वह सब नाशमान् है"—यह विरज= निर्मल धर्मका नेत्र उत्पन्न हुआ।

(इस प्रकार) भगवान्के धर्मके चक्केके घुमाने (=धर्म-चक्रके प्रवर्त्तन करने)पर भूमिके देवताओने शब्द किया—"भगवान्ने यह वा रा ण सी के ऋ पि प त न म ग दा व में उस अनुपम धर्मके चक्केको घुमाया जोकि किसीभी साधु, ब्राह्मण, देवता, मा र, ब्रह्मा या ससारके किसी व्यक्तिसे रोका नही जा सकता।" भूमिके देवताओके शब्दको सुनकर च तु र्म हा रा जि क देवताओने शब्द सुनाया—०। च तु र्म हा रा जि क देवताओके शब्दको सुनकर त्र य स्त्रि श देवताओने०। ० या म देवताओने०। ० तु षि त देवताओने०। ० नि र्मा ण र ति देवताओने०। ० व श व र्ती देवताओने०।० ब्र ह्म का यि क देवताओने०। इस प्रकार उसी क्षणमे, उसी मुहूर्त्तमे यह शब्द ब्रह्मलोक तक पहुँच गया और यह दस हजारो वाला ब्रह्माड कपित, सम्प्रकपित=सवेपित हुआ। देवताओके तेजसे भी बढकर बहुत भारी, विशाल प्रकाश लोकमे उत्पन्न हुआ।

तब भगवान्ने उदान कहा—"ओहो! कौडिन्यने जान लिया (=आज्ञात)। ओहो! कौडिन्यने जान लिया।" इसीलिये आयुष्मान् कौडिन्यका आ ज्ञा त कौ डि न्य नाम पळा।

(७) पंच वर्गीयोकी प्रव्रज्या

तब धर्मको साक्षात्कारकर प्राप्तकर=विदितकर, अवगाहनकर सशय-रहित, विवाद-रहित, बुद्धके धर्ममे विशारद (और) स्वतंत्र हो आयुष्मान् आज्ञात कौडिन्यने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! भगवान्के पास मुझे प्र व्र ज्या[1] मिले, उ प स म्प दा[2] मिले।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षु! आओ, (यह) धर्म सुदर प्रकारसे व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके नाशके लिये ब्रह्मचर्य (का पालन) करो।"

यही उन आयुष्मान्की उ प स म्प दा हुई।

भगवान्ने उसके पीछे भिक्षुओको फिर धर्म-सबधी कथाओका उपदेश किया। भगवान्के धार्मिक उपदेश करते=अनुशासन करते आयुष्मान् व प्प और आयुष्मान् भ द्दि य को भी—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान् है'—यह विरज=विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। तब धर्मको साक्षात्कार कर० उन्होने भगवान्से कहा—"भन्ते! भगवान्के पास हमे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है, अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य (पालन) करो।"

यही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।

उसके पीछे भगवान् (भिक्षुओ द्वारा) लाये भोजनको ग्रहण करते, भिक्षुओको धार्मिक कथाओ द्वारा उपदेश करते=अनुशासन करते (रहे)। तीन भिक्षु जो भिक्षा माँगकर लाते थे, उसीसे छओ जने निर्वाह करते थे। भगवान्के धार्मिक कथाका उपदेश करते=अनुशासन करते, आयुष्मान् म हा ना म और आयुष्मान् अ श्व जि त् को भी 'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान् है'—०। वही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।

तब भगवान्ने पचवर्गीय भिक्षुओको सम्बोधित किया—

---

[1] श्रामणेर होनेका संन्यास। [2] भिक्षु होनेका सन्यास।

"भिक्षुओ! रूप (=भौतिक पदार्थ) अन्-आत्मा है। यदि रूप (पुरुष)का आत्मा होता तो यह रूप पीळादायक न वनता, और रूपमे—'मेरा रूप ऐसा होता' मेरा रूप ऐसा न होता, यह पाया जाता। चूकि भिक्षुओ! रूप अनात्मा है इसलिये रूप पीळादायक होता है, और रूपमे—मेरा रूप ऐसा होता, मेरा रूप ऐसा न होता—यह नही पाया जाता।

"भिक्षुओ! वेदना अनात्मा है०।० सज्ञा०।० सस्कार०। "भिक्षुओ! विज्ञान अनात्मा है। यदि भिक्षुओ! विज्ञान (=अभौतिक पदार्थ) आत्मा होता तो विज्ञान पीळादायक न वनता, और विज्ञानमे—मेरा विज्ञान ऐसा होता, मेरा विज्ञान ऐसा न होता—यह नही पाया जाता।

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य"?

"अनित्य, भन्ते!"

"जो अनित्य है वह दुख है या सुख?"

"दुख, भन्ते!"

"जो अनित्य दुख, और विकारको प्रप्त होनेवाला है, क्या उसके लिये यह समझना उचित है—यह (=अनित्य पदार्थ) मेरा है, यह मै हूँ, यह मेरा आत्मा है?"

'नही, भन्ते!"

"तो क्या मानते हो भिक्षुओ! वेदना नित्य है या अनित्य? ०।० सज्ञा०।० सस्कार०।० विज्ञान०।"

"तो भिक्षुओ! जो कुछ भी भूत, भविष्य, वर्तमान सवधी, भीतरी या वाहरी, स्थूल या सूक्ष्म, अच्छा या बुरा, दूर या नजदीकका रूप है, सभी रूप न मेरा है, न मै हूँ, न वह मेरा आत्मा है—ऐसा समझना चाहिये। इस प्रकार ठीक तौरसे समझकर देखना चाहिये०।० वेदना०।० सज्ञा०।० सस्कार०।० विज्ञान०।

"भिक्षुओ! ऐसा देखते हुए, विद्वान्, आर्य-शिष्य रूपसे उदास होता है, वेदनासे उदास होता है, सज्ञासे उदास होता है, सस्कारसे उदास होता है, विज्ञानसे उदास होता है। उदास होनेपर (उनसे) विरागको प्राप्त होता है। विरागके कारण मुक्त होता है। मुक्त होनेपर 'मुक्त हूँ' ऐसा ज्ञान होता है। और वह जानता है=आवागमन नष्ट हो गया, ब्रह्मचर्यवास पूरा हो गया, करना था सो कर लिया, अव यहाँ कुछ करनेको (वाकी) नही है[1]।"

भगवान्ने यह कहा। सतुष्ट हो पचवर्गीय भिक्षुओने भगवान्के भाषणका अभिनदन किया।

इस उपदेशके कहते समय पचवर्गीय भिक्षुओका चित्त आस्रवो (=मलो)से विलग हो मुक्त हो गया।

उस समय तक लोकमे छ अर्हत् थे।

प्रथम भाणवार ॥ १ ॥

---

[1] चराचर जगत्का उपादान कारण, रूप आदि पॉच स्कन्धो (=समूहो)में वॅटा है। सारे भौतिक पदार्थ रूप स्कन्धमें है। साधारणतः रूप वह है जिसमें भारीपन और स्थान घेरनेकी योग्यता हो। जिसमें न भारीपन है, और न जो जगहको घेरता है वह विज्ञान स्कन्ध है! रूपके सवधसे विज्ञानकी तीन अवस्थाएँ है—वेदना, (=अनुभव करना), सज्ञा (=जानकारी प्राप्त करना), और सस्कार (=चित्तमें उक्त जानकारी और अनुभवका असर रह जाना) है।

(८) यशकी प्रव्रज्या

उस समय य श नामक कुलपुत्र, वा रा ण सी के श्रेष्ठीका [1] सुकुमार लडका था। उसके तीन प्रासाद थे—एक हेमन्तका, एक ग्रीष्मका, एक वर्षाका। वह वर्षाके चारो महीने वर्षा-कालिक प्रासादमे, अ-पुरुषो (=स्त्रियो)के वाद्योसे सेवित हो, प्रासादसे नीचे न उतरता था। (एक दिन) यश कुल-पुत्रकी निद्रा खुली। सारी रात वहाँ तेलका दीप जलता था। तब यश कुलपुत्रने अपने परिजनको देखा—किसीकी बगलमे वीणा है, किसीके गलेमे मृदग है । किसीको फैले-केश, किसीको लार-गिराते, किसीको बर्राते, साक्षात् श्मशानसा देखकर, (उसे) घृणा उत्पन्न हुई, चित्तमे वैराग्य उत्पन्न हुआ। यश कुल-पुत्रने उदान कहा—"हा ! सतप्त !! हा ! पीळित !!"

यश कुलपुत्र सुनहला जूता पहिन, घरके फाटककी ओर गया । फिर नगर द्वारकी ओर । तब यश कुल-पुत्र वहाँ गया, जहाँ ऋ पि प त न मृ ग दा व था। उस समय भगवान् रातके भिन्सार-को उठकर, खुले (स्थान)मे टहल रहे थे। भगवान्‌ने दूरसे यश कुल-पुत्रको आते देखा। देखकर टह-लनेकी जगहसे उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। तब यश कुलपुत्रने भगवान्‌के समीप (पहुँच), उदान कहा—"हा ! सन्तप्त !! हा ! पीळित !!"।

भगवान्‌ने यश कुलपुत्रसे कहा—"यश ! यह है अ-सतप्त। यश ! यह है अ-पीळित। यश ! आ बैठ, तुझे धर्म बताता हूँ ।"

तब यशकुल-पुत्र "यह अ-सन्तप्त है, यह अ-पीळित है"—(सुन) आह्लादित, प्रसन्न हो सुनहले जूतेको उतार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। पास जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे यश कुलपुत्रको, भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा, जैसे—दान-कथा, शीलकथा, स्वर्ग-कथा, कामवासनाओका दुष्परिणाम अपकार दोष, निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भग-वान्‌ने यशको भव्य-चित्त, मृदुचित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त और प्रसन्नचित्त देखा, तब जो बुद्धोकी उठानेवाली देशना (=उपदेश) है—दु ख, समुदय (=दु खका कारण), निरोध (=दु खका नाश), ओर मार्ग (=दु ख-नाशका उपाय)—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रग पकळता है, वैसेही यश कुल-पुत्रको उसी आसनपर "जो कुछ उत्पन्न होनेवाला धर्म है, वह नाशमान् है"—यह वि-रज=निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ ।

(९) श्रेष्ठी गृहपतिकी दीक्षा

य श कुल-पुत्रकी माता प्रासादपर चढ, यशकुल-पुत्रको न देख, जहाँ श्रेष्ठी गृह-पति था वहाँ गई, (और) बोली—"गृहपति ! तुम्हारा पुत्र यश दिखाई नही देता है" ?

तब श्रेष्ठी गृह-पति चारो ओर सवार छोळ, स्वय जिधर ऋषि-पतन मृग-दाव था, उधर गया। श्रेष्ठी गृहपति सुनहले जूतोका चिन्ह देख, उसीके पीछे पीछे चला। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिको दूरसे आते देखा। तब भगवान्‌को (ऐसा विचार) हुआ—"क्यो न मै ऐसा योगबल करूँ, जिससे श्रेष्ठी गृह-पति यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको न देख सके।" तब भगवान्‌ने वैसाही योग-बल किया। श्रेष्ठी गृहपतिने जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! क्या भगवान्‌ने यश कुल-पुत्रको देखा है ?"

"गृहपति ! बैठ। यही बैठा तू यहाँ बैठे यश कुलपुत्रको देखेगा।"

श्रेष्ठी गृहपति—"यही बैठा मै यहाँ बैठे यश कुल-पुत्रको देखूँगा" (सुन) आह्लादित=

---

[1] श्रेष्ठी नगरका एक अवैतनिक पदाधिकारी होता था, जो कि धनिक व्यापारियोमेंसे बनाया जाता था।

प्रसन्न हो, भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। भगवान्‌ने आनुपूर्वी[1] कथा, जैसे—'दान-कथा०' प्रकाशित की। श्रेष्ठी गृहपतिको उसी आसनपर० धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ।

भगवान्‌के धर्ममे स्वतन्त्र हो, वह भगवान्‌से बोला—"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अधकारमे तेलका प्रदीप रख दे, जिसमे कि आँखवाले रूप देखे, ऐसेही भगवान्‌ने अनेक पर्यायसे धर्मको प्रकाशित किया। यह मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे मुझे भगवान् अजलिवद्ध शरणागत उपासक ग्रहण करे।"

वह (गृहपति) ही ससारमे [2]तीन-वचनोवाला प्रथम उपासक हुआ।

जिस समय (उसके) पिताको धर्मोपदेश किया जा रहा था, उस समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार गभीर चिन्तन करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवो (=दोषो = मलो)से मुक्त होगया। तव भगवान्‌के (मनमे) हुआ—"पिताको धर्म-उपदेश किये जाते समय (अपने) देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करते, यश कुल-पुत्रका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोसे मुक्त हो गया। (अव) यश कुल-पुत्र पहिली-गृहस्थ अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)मे रह, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य नही है, क्यो न मैं योग-वलके प्रभावको हटा लूँ।" तव भगवान्‌ने ऋद्धिके प्रभावको हटा लिया। श्रेष्ठी गृहपतिने यश कुल-पुत्रको वैठे देखा। देखकर यश कुलपुत्रसे बोला—

"तात ! यश ! तेरी माँ रोतीपीटती और शोकमे पळी है, माताको जीवन दान दे।"

यश कुलपुत्रने भगवान्‌की ओर आँख फेरी। भगवान्‌ने श्रेष्ठी गृहपतिसे कहा—

"सो गृहपति ! क्या समझता है, जैसे तुमने अपूर्ण ज्ञानसे, अपूर्ण साक्षात्कारसे धर्मको देखा, वैसेही यशने भी (देखा) ? देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, उसका चित्त अलिप्त हो, आस्रवोसे मुक्त हो गया है। अव क्या वह पहिली गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)मे रहकर, गृहस्थ सुख भोगनेके योग्य है ?"

"नही, भन्ते !"

"गृहपति ! (पहिले) अपूर्ण ज्ञानसे, और अपूर्ण दर्शनसे यशने भी धर्मको देखा, जैसे तूने। फिर देखे और जानेके अनुसार प्रत्यवेक्षण करके, (उसका) चित्त अलिप्त हो आस्रवोसे मुक्त हो गया। गृहपति ! अव यश कुल-पुत्र पहिलेकी गृहस्थ-अवस्थाकी भाँति हीन(-स्थिति)मे रह गृहस्थ-सुख भोगने योग्य नही है।"

"लाभ है भन्ते ! यश कुल-पुत्रको, सुलाभ किया भन्ते ! यश कुल-पुत्रने, जो कि यश कुलपुत्रका चित्त अलिप्त हो आस्रवोसे मुक्त हो गया। भन्ते ! भगवान् यशको अनुगामी भिक्षु वना, मेरा आजका भोजन स्वीकार कीजिये।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकृति प्रकट की।

श्रेष्ठी गृहपति भगवान्‌की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा-कर, चला गया। फिर यश कुल-पुत्रने श्रेष्ठी गृहपतिके चले जानेके थोळीही देर वाद भगवान्‌से कहा—
"भन्ते ! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दे, उपसपदा दे।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षु ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है अच्छी तरह दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही इस आयुष्मान्‌की उपसम्पदा हुई। उस समय लोकमे सात अर्हत् थे।

यश-प्रवज्या समाप्त।

---

[1]देखो पृष्ठ ८४।   [2]बुद्ध, धर्म और सघ तीनोकी शरणागत होनेका वचन।

भगवान् पूर्वाह्ण समय वस्त्र पहिन (भिक्षा-)पात्र और चीवर ले, आयुष्मान् यशको अनुगामी भिक्षु बना, जहाँ श्रेष्ठी गृहपतिका घर था, वहाँ गये। वहाँ ,विछे आसनपर वैठे। तव आयुष्मान् यशकी माता और पुरानी पत्नी भगवान्के पास आईं। आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गई। उनसे भगवान्ने आनुपूर्वी कथा० कही। जव भगवान्ने उन्हे भव्यचित्त०, देखा, तव जो वुद्धोकी उठाने वाली देशना है—दु ख, समुदाय, निरोध और मार्ग—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रग पकळता है, वैसेही उन (दोनो) को, उसी आसनपर—"जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है"—यह विरज—निर्मल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। धर्मको साक्षात्कार कर०, सन्देह-रहित, कथोपकथन-रहित, भगवान्के धर्ममे विशारद और, स्वतन्त्र हो, उन्होने भगवान्से कहा—"आश्चर्य ! भन्ते ! ! आश्चर्य भन्ते ! ! ० आजसे हमे भगवान् अञ्जलिवद्ध शरणागत उपासिकाये जाने। लोकमे वही तीन वचनो वाली प्रथम उपासिकाये हुई।

आयुष्मान् यशके माता पिता और पुरानी पत्नीने, भगवान् और आयुष्मान् यशको उत्तम खाद्य भोजनसे सतृप्त किया=सप्रवारित किया। जव भोजनकर, भगवान्ने पात्रमे हाथ खीच लिया, तव वह भगवान्की एक ओर वैठ गये। तव भगवान् आयुष्मान् यशकी माता, पिता और पुरानी पत्नीको धार्मिक-कथा द्वारा सदर्शन=समादापन=समुत्तेजन=सप्रहर्षण कर आसनसे उठकर चल दिये।

(१०) यशके गृहस्थ मित्रोंकी प्रव्रज्या

आयुष्मान् यशके चार गृही मित्र, वाराणसीके श्रेष्ठी-अनुश्रेष्ठियोके कुलके लळको—वि म ल, सु वा हु, पू र्ण जि त् और ग वा प ति ने सुना, कि यश कुल-पुत्र शिर-दाढी मुळा, कापायवस्त्र पहिन, घरसे वेघर हो प्रव्रजित हो गया। सुनकर उनके (चित्तमें) हुआ—"वह [1]धर्मविनय छोटा न होगा, वह सन्यास (=प्रव्रज्या) छोटा न होगा, जिसमे यश कुलपुत्र शिर-दाढी मुळा, कापाय-वस्त्र पहिन, घरसे वेघर हो, प्रव्रजित हो गया।"

वह वहाँसे आयुष्मान् यशके पास आये। आकर आयुष्मान् यशको अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। तव आयुष्मान् यश उन चारो गृही मित्रो सहित जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे हुए आयुष्मान् यशने भगवान्से कहा—"भन्ते ! यह मेरे चार गृही मित्र वा रा ण सी के श्रे ष्ठी-अनुश्रेष्ठियोके कुलके लळके—वि म ल, सु वा हु, पू र्ण जि त् और ग वा म्प ति—है। इन्हें भगवान् उपदेश करे=अनुशासन करे।"

उनसे भगवान्ने ० [2]आनुपूर्वी कथा कही ०। वह भगवान्के धर्ममे विशारद=स्वतन्त्र हो, भगवान्से वोले—"भन्ते ! भगवान् हमे प्रव्रज्या दे, उपसम्पदा दे।"

भगवान्ने कहा—"भिक्षुओ ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है। अच्छी तरह दु खके क्षयके लिये ब्रह्मचर्यका पालन करो।" यही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई। तव भगवान्ने उन भिक्षुओको धार्मिक कथाओ द्वारा उपदेश दिया—अनुशासना की। (जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमें ग्यारह अर्हत् थे।

आयुष्मान् यशके ग्रामवासी (=जानपद=दीहाती) पुराने खान्दानोके पुत्र, पचास गृही-मित्राने सुना, कि यश कुलपुत्र साधु हो गया। सुनकर उनके चित्तमे हुआ—"वह धर्मविनय छोटा न होगा । जिसमे यश कुल-पुत्र प्रव्रजित हो गया।" वह आयुष्मान् यशके पास आये। . आयुष्मान् यश उन पचास गृहीमित्रो सहित भगवान्के पास गये। भगवान्ने निष्कामताका माहात्म्य वर्णन किया । वह . विशारद हो भगवान्से वोले—"हमे उपसम्पदा मिले" । उन

---

[1] धार्मिक सम्प्रदाय। [2] देखो पृष्ठ ८४

आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई। तव भगवान्ने . उपदेश दिया। (जिससे) अलिप्त हो उनके चित्त आस्रवोसे मुक्त हो गये। उस समय लोकमे एकसठ अर्हत् थे।

भगवान्ने भिक्षुओको सम्वोधित किया—

"भिक्षुओ! जितने (भी) दिव्य और मानुष बन्धन है, मै (उन सवो)से मुक्त हूँ, तुम भी दिव्य और मानुप वधनोसे मुक्त हो। भिक्षुओ! वहुत जनोके हितके लिये, वहुत जनोके सुखके लिये, लोकपर दया करनेके लिये, देवताओ और मनुष्योके प्रयोजनके लिये, हितके लिये, सुखके लिये विचरण करो। एकसाथ दो मत जाओ। हे भिक्षुओ! आदिमे कल्याण-(कारक) मध्यमे कल्याण (-कारक) अन्तमे कल्याण(-कारक) (इस) धर्मका उपदेश करो। अर्थ सहित=व्यजन-सहित, केवल (=अमिश्र)=परिपूर्ण परिशुद्ध व्रह्मचर्यका प्रकाश करो। अल्प दोषवाले प्राणी (भी) है, धर्मके न श्रवण करनेसे उनकी हानि होगी। (सुननेसे वह) धर्मके जाननेवाले वनेगे। भिक्षुओ! मै भी जहाँ उ रु वे ला है, जहाँ से ना नी ग्राम है, वहाँ धर्म-देशनाके लिये जाऊँगा"

(११) मार कथा

तव पापी मार जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्से गाथाओमे वोला—

"जितने दिव्य और मानुष बन्धन है, उनसे तुम वँधे हो।
हे श्रमण! मेरे इन महावन्धनोसे वँधे तुम नही छूट सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"जितने दिव्य मानुप वन्धन है उनसे मै मुक्त हूँ।
हे अन्तक! महावन्धनोसे मै मुक्त हूँ, तू ही वरवाद है॥"

(मारने कहा)—,

"(राग रूपी) आकाशचारी मनका जो वन्धन है।
हे श्रमण! मै तुम्हे उससे वाँधूंगा, मुझसे तुम छूट नही सकते॥"

(भगवान्ने कहा)—

"(जो) मनोरम रूप, शव्द, रस, गन्ध और स्पर्श (है)।
उनसे मेरा राग दूर हो गया, इसलिये अन्तक! तुम वरवाद हुए॥"

तव पापी मारने कहा—मुझे भगवान् जानते है, मुझे सुगत पहचानते है—(कह) दुखी=दुर्मना हो वही अन्तर्धान हो गया।

मार-कथा समाप्त ॥११॥

(१२) उपसम्पदा-कथा

उस समय भिक्षु नाना दिशाओसे नाना देशोसे प्रव्रज्याकी इच्छावाले, उपसम्पदाकी अपेक्षावाले (आदमियोको) लाते थे, कि भगवान् उन्हे प्रव्रजित करे, उपसम्पन्न करे। इससे भिक्षु भी परेशान होते थे, प्रव्रज्या-उपसम्पदा चाहनेवाले भी। एकान्तस्थित ध्यानावस्थित भगवान्के चित्तमे (विचार) हुआ—"क्यो न भिक्षुओको ही अनुमति दे दूँ, कि भिक्षुओ! तुम्ही उन उन दिशाओमे, उन उन देशोमे (जाकर) प्रव्रज्या दो, उपसम्पदा करो।"

तव भगवान्ने सन्ध्या समय भिक्षु-सघको एकत्रितकर धर्मकथा कह, सम्वोधित किया—"भिक्षुओ! एकान्तमे स्थित, ध्यानावस्थित०।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तुम्हे ही उन उन दिशाओमें, उन उन देशोमें प्रव्रज्या देनेकी, उपसम्पदा देनेकी। I

"ओर उपसम्पदा देनेका प्रकार यह है—पहिले शिर दाढी मुंळवा, कापाय-वस्त्र पहना, उप-रना एक कन्धेपर करा, भिक्षुओकी पाद-वदना करा, उकळूं बैठा, हाथ जोळवाकर "ऐसे बोलो" कहना चाहिये—"बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ। दूसरी वार भी बुद्ध० धर्म० सघकी शरण जाता हूँ। तीसरी वार भी बुद्ध०, धर्म० सघकी शरण जाता हूँ। इन तीन शरणा-गमनोसे प्रव्रज्या और उपसम्पदा (देनेकी) अनुमति देता हूँ।"

तव भगवान्‌ने वर्पावास कर भिक्षुओको सम्बोधित किया—भिक्षुओ ! मैंने मूलसे मनमे (विचार) करके, मूलसे ठीक प्र धा न (=मोक्षकी साधना) करके अनुपम मुक्तिको पाया, अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया। तुमने भी भिक्षुओ ! मूलसे मनमे (विचार) करके, मूलसे ठीक प्र धा न करके अनुपम मुक्तिको पाया, अनुपम मुक्तिका साक्षात्कार किया।"

तव पापी मार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌ने गाथाओमे बोला—

"जो दिव्य और मानुष मारके बधन हैं उनसे (तुम) बँधे हो।

श्रमण मारके बन्धनसे बँधे हो, मुझसे मुक्त नही हो सकते॥"

(भगवान्‌ने कहा)—

"जो दिव्य और मानुष मारके बधन है उनसे मै मुक्त हूँ।

मै मारके बन्धनसे मुक्त हूँ, अन्तक ! तुम बरबाद हो॥"

तव पापी मार—"मुझे भगवान् जानते है, मुझे सुगत पहचानते ह"—(कह) दुःखी=दुर्मना हो वही अन्तर्धान हो गया।

(१३) भद्रवर्गीय कथा

भगवान् वाराणसीमे इच्छानुसार विहारकर, (साठ भिक्षुओको भिन्न भिन्न दिशाओमे भेज), जिधर उ रु वे ला है, उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल दिये। भगवान् मार्गसे हटकर एक वन खण्डमे पहुँच, वन-खण्डके भीतर एक वृक्षके नीचे जा बैठे। उस समय भ द्र व र्गी य (नामक) तीस मित्र, अपनी स्त्रियो सहित उसी वन-खण्डमे विनोद करते थे। (उनमे) एककी पत्नी न थी। उसके लिये वेश्या लाई गई थी। वह वेश्या उनके नशामे हो घूमते वक्त, आभूपण आदि लेकर भाग गई। तव (सव) मित्रोने (अपने) मित्रकी मददमे उस स्त्रीको खोजते, उस वन-खण्डको हीळते, वृक्षके नीचे बैठे भगवान्‌को देखा। (फिर) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌से बोले—"भन्ते ! भग-वान्‌ने (किसी) स्त्रीको तो नही देखा ?"

"कुमारो ! तुम्हे स्त्रीसे क्या है ?"

"भन्ते ! हम भद्रवर्गीय तीस मित्र (अपनी अपनी) पत्नियो सहित इस वन-खण्डमे सैर विनोद कर रहे थे। एककी पत्नी न थी, उसके लिये वेश्या लाई गई थी। भन्ते ! वह वेश्या हमलोगोके नशामे हो घूमते वक्त आभूपण आदि लेकर भाग गई। सो भन्ते ! हमलोग मित्रकी मददमे उस स्त्रीको खोजते हुए, इस वन-खण्डको हीळ रहे हैं।"

"तो कुमारो ! क्या समझते हो, तुम्हारे लिये कौन उत्तम होगा, यदि तुम स्त्रीको ढूँढो, या तुम अपने (=आत्मा)को ढूँढो।"

"भन्ते ! हमारे लिये यही उत्तम है, यदि हम अपने को ढूँढे।"

"तो कुमारो ! बैठो, मै तुम्हे धर्म-उपदेश करता हूँ।"

"अच्छा, भन्ते !" कह, वह भ द्र व र्गी य मित्र भगवान्‌को वन्दना कर, एक ओर बैठगये।

उनसे भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1] कही। भगवान्‌के धर्ममे विशारद हो ...भगव
भगवान्‌के हाथसे हमे प्रव्रज्या मिले । वही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।"

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥ २ ॥

३—उरुवेला

(१४) उरुवेलामे चमत्कार प्रदर्शन

वहाँसे भगवान् क्रमश विचरते हुए उ रु वे ला पहुँचे। उस समय उ रु वे ला मे तीन जटिल (=जटाधारी)—उ रु वे ल-का श्य प, न दी-का श्य प और ग या-का श्य प—वास करते थे। उनमे उ रु वे ल-का श्य प जटिल पाँच सौ जटिलोका नायक=विनायक=अग्र=प्रमुख=प्रामुख्य था। न दी-का श्य प जटिल तीन सौ जटिलोका नायक०। ग या-का श्य प जटिल दो सौ जटिलोका नायक०। तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके आश्रमपर पहुँच, उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"हे काश्यप! यदि तुझे भारी न हो, तो मै एकरात (तेरी) अग्निशालामे वास करूँ।"

"महाश्रमण! मुझे भारी नही है (लेकिन), यहाँ एक बळाही चड, दिव्य-शक्तिधारी, आशी-विष=घोर-विष नागराज है। वह (कही) तुम्हे हानि न पहुँचावे।"

दूसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—" ।"

तीसरी बार भी भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—" ।"

"काश्यप! नाग मुझे हानि न पहुँचावेगा, तू मुझे अग्निशालाकी स्वीकृति दे दे।"

"महाश्रमण! सुखसे विहार करो।"

१—प्र थ म प्रा ति हा र्य—तब भगवान् अग्निशालामे प्रविष्ट हो तृण विछा, आसन बाँध, शरीरको सीधा रख, स्मृतिको थिर कर बैठ गये। भगवान्‌को भीतर आया देख, नाग क्रुद्ध हो धुआँ देने लगा। भगवान्‌के (मनमे) हुआ—"क्यो न मै इस नागके छाल, चर्म, मास, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (इसके) तेजको खीच लूँ।" फिर भगवान् भी वैसेही योगवलसे धुँआँ देने लगे। तब वह नाग कोपको सहन न कर प्रज्वलित हो उठा। भगवान् भी तेज-महाभूत(=तेजो धातु) मे समाधिस्थ हो प्रज्वलित हो उठे। उन दोनोके ज्योतिरूप होनेसे, वह अग्निशाला जलती हुई=प्रज्व-लित-सी जान पळने लगी। तब वह जटिल अग्निशालाको चारो ओरसे घेरे, यो कहने लगे—"हाय! परम-सुन्दर महाश्रमण नागद्वारा मारा जा रहा है।" भगवान्‌ने उस रातके बीत जानेपर, उस नागके छाल, चर्म, मास, नस, हड्डी, मज्जाको विना हानि पहुँचाये, (अपने) तेजसे (उसका) तेज खीचकर, पात्रमे रख (उसे) उ रु वे ल का श्य प जटिलको दिखाया—"हे काश्यप! यह तेरा नाग है, (अपने) तेजमे (मैने) इसका तेज खीच लिया है।"

तब उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमे) हुआ—महादिव्यशक्तिवाला=महा-आनुभाव-वाला महाश्रमण है, जिसने कि दिव्यशक्ति-सम्पन्न आशी-विष=घोर-विष चण्ड नागराजके तेजको (अपने) तेजसे खीच लिया। किन्तु मेरे जैसा अर्हत नही । तब भगवान्‌के इस चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य) से उ रु वे ल का श्य प ज टि ल ने प्रसन्न हो भगवान्‌से यह कहा—"महाश्रमण! यही विहार करो, मै नित्य भोजनसे तुम्हारी (सेवा करूँगा)।"

२—द्वि ती य प्रा ति हा र्य—तब भगवान्[2] जटाधारी उरुवेल-काश्यपके आश्रमके पास एक वन-खण्डमे विहार करते थे। एक प्रकाशमान रात्रिको अतिप्रकाशमय चारो म हा रा ज (देवता),

---

[1] देखो पृष्ठ ८४।　　　　[2] कप्पासिय वन-संड।

उस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित करते, जहाँ भगवान् थे, वहाँ आये। आकर भगवान्‌को अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारो दिशाओमे खळे हो गये। तव जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रि को बळे ही प्रकाशमान् वह कौन थे, जोकि इस वन-खण्डको पूर्णतया प्रकाशित कर, जहाँ तुम थे, वहाँ आये। आकर तुम्हे अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति चारो दिशाओमे खळे हो गये?"

"काश्यप! यह चारो महाराजा थे, जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आये थे।"

तव जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमे) हुआ—"महाश्रमण बडी दिव्यशक्तिवाला=महानुभाव है, जिसके पास कि चारो महाराजा धर्म सुननेके लिये आते है। तो भी यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मै।"

तव भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खडमे विहार करने लगे।

३—तृतीय प्रातिहार्य—तव एक प्रकाशमान् रात्रिको पहलोके प्रकाशसे(भी)अधिक प्रकाशमान्, अधिक उत्तम, अति दीप्तिमान् देवोका इन्द्र शक्र उस वन-खडको पूर्णतया प्रकाशित करता जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खडा हो गया। तव जटिल उरुवेल काश्यप उस रात के बीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको पहलोके प्रकाशसे अधिक प्रकाशमान्, अधिक उत्तम, अति प्रकाशमान् कौन इस वन-खडको पूर्णतया प्रकाशित करते आकर तुम्हे अभिवादन कर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खडा हुआ था?"

"काश्यप! वह देवोका इन्द्र शक्र था जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।"

तव जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमे) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है जिसके पास कि देवोका इन्द्र शक्र धर्म सुननेके लिये आता है, तो भी यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मै।"

तव भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खडमे विहार करने लगे।

४—चतुर्थ प्रातिहार्य—तव एक प्रकाशमान् रात्रिको अति प्रकाशमय सहा (लोक-समूह)का पति ब्रह्मा उस वन-खडको पूर्णतया प्रकाशित करता, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ।

तव जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"महाश्रमण! (भोजनका) काल है। भात तैयार है। महाश्रमण! इस प्रकाशमान् रात्रिको बळाही प्रकाशमान वह कौन था जोकि इस वन-खडको पूर्णतया प्रकाशितकर, जहाँ तुम थे, वहाँ आकर तुम्हे अभिवादनकर महान् अग्नि-समूहकी भाँति एक ओर खळा हुआ?"

"काश्यप! वह सहाका पति ब्रह्मा था, जो मेरे पास धर्म सुननेके लिये आया था।"

तव जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमे) हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्यशक्तिवाला—महानुभाव है, जिसके पास कि सहापति ब्रह्मा धर्म सुननेके लिये आता है। तौभी यह वैसा अर्हत् नही है जैसा कि मै।"

तव भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खडमे विहार करने लगे।

भगवान् उ रु वे ल का श्य प जटिलके आश्रमके समीपवर्ती एक वन-खडमे उरुवेल काश्यपका दिया भोजन ग्रहण करते हुए, विहार करने लगे।

५—प च म प्रा ति हा र्य—उस समय उरुवेल-काश्यप जटिलको एक महायज्ञ आ उपस्थित हुआ, जिसमे सारेके सारे अ ग-म ग ध-निवासी वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आनेवाले थे। तव उरु-वेल काश्यपके चित्तमे (विचार) हुआ—"इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है, सारे अग-मगधवाले वहुतसा खाद्य भोज्य लेकर आयेगे। यदि महाश्रमणने जन-समुदायमे चमत्कार दिखलाया, तो महाश्रमणका लाभ और सत्कार वढेगा मेरा लाभ सत्कार घटेगा। अच्छा होता यदि महाश्रमण कल(से) न आता।"

भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यप जटिलके चित्तका वितर्क (अपने) चित्तसे जान, [1]उत्तर कुरु जा, वहाँसे भिक्षान्न ले अ न व त प्त [2]सरोवरपर भोजनकर, वही दिनको विहार किया। उरुवेल-काश्यप जटिल उस रातके बीत जानेपर, भगवान्‌के पास जा बोला—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया। महाश्रमण! कल क्यो नही आये? हम लोग आपको याद करते थे—क्यो नही आये? आपके खाद्य-भोज्यका भाग रक्खा है।"

"काश्यप! क्यो? क्या तेरे मनमे (कल) यह न हुआ था, कि इस समय मेरा महायज्ञ आ उपस्थित हुआ है० महाश्रमणका लाभसत्कार वढेगा०? इसीलिये काश्यप! तेर चित्तके वितर्कको (अपने) चित्तसे जान, मैने उत्तरकुरु जा, अनवतप्त सरोवरपर० वही दिनको विहार किया।"

तब उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण महानुभाव दिव्य-शक्तिधारी है, जोकि (अपने) चित्तसे (दूसरेका) चित्त जान लेता है। तो भी यह (वैसा) अर्हत् नही है, जैसा कि मै।"

तब भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर उसी वन-खडमे (जा) विहार किया।

६—ष ष्ठ प्रा ति हा र्य—एक समय भगवान्‌को पासुकूल[3] (=पुराने चीथडे) प्राप्त हुए। भगवान्‌के दिल मे हुआ,—"मै पासु-कूलोको कहाँ धोऊँ।" तब देवोके इन्द्र श क्र ने, भगवान्‌के चित्तकी बात जान हाथसे पुष्करिणी खोदकर, भगवान्‌से कहा—"भन्ते! भगवान्! (यहाँ) पासुकूल धोवे।"

तब भगवान्‌को हुआ—"मै पाँसुकूलोको कहाँ उपछूँ।"

इन्द्रने (वहाँ) बळी भारी शिला डाल दी ।

तब भगवान्‌को हुआ—"मै किसका आलम्ब ले (नीचे) उतरूँ?" इन्द्रने शाखा लटका दी ।

मै पासुकूलोको कहाँ फैलाऊँ? इन्द्रने. एक बळी भारी शिला डालदी ।

उस रातके बीत जानेपर, उरुवेल-काश्यप जटिलने, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँच, भगवान्‌से कहा—"महाश्रमण! (भोजनका) समय है, भात तैयार हो गया है। महाश्रमण! यह क्या? यह पुष्करिणी पहिले यहाँ न थी! । पहिले यह शिला (भी) यहाँ न थी, यहाँपर शिला किसने डाली? इस ककुध (वृक्ष)की शाखा (भी) पहिले लटकी न थी, सो यह लटकी है।"

"मुझे काश्यप! पासुकूल प्राप्त हुआ० ।" उरुवेल-काश्यप जटिलके (मनमे) हुआ—"महाश्रमण

---

[1] मेरुपर्वतकी उत्तर दिशामें अवस्थित द्वीप। [2] मानसरोवर झील।
[3] रास्ता या कूळोंपर फेंके चीथळे।

दिव्य-शक्ति-धारी है ! महा-आनुभाव-वाला है । तो भी यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मैं।"

भगवान्‌ने उरुवेल-काश्यपका भोजन ग्रहणकर, उसी वन-खडमे विहार किया।

७—स प्त म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उ रु वे ल-का श्य प, उस रातके वीत जानेपर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से कालकी सूचना दी—"महाश्रमण (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप ! चल मैं आता हूँ"—कह जटिल उरुवेल-काश्यपको भेजकर, जिस जम्बू (=जामुन) के कारण यह ज म्बू-द्वी प कहा जाता है, उसमे फल लेकर (काश्यपसे) पहले ही आकर अग्निशालामे बैठे। जटिल उरुवेल-काश्यपने भगवान्‌को अग्निशालामे बैठे देखकर कहा—

"महाश्रमण किस रास्तेमे तुम आये। मै तुमसे पहिले ही चला था लेकिन तुम मुझसे पहिले ही आकर अग्निशालामे बैठे हो ?"

"काश्यप ! मैं तुझे भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है, उसमे फल ले पहिले ही आकर मैं अग्निशालामे बैठ गया। काश्यप यह वही (सुन्दर) वर्ण, रस, गन्ध युक्त जम्बू फल है। यदि चाहता है तो खा।"

"नही महाश्रमण ! तुम्ही इसे लाये, तुम्ही इसे खाओ।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके मनमे हुआ—"महाश्रमण बळी दिव्य-शक्ति-वाला—महानुभाव है, जोकि मुझे पहिले ही भेजकर जिस जम्बू (=जामुन)के कारण यह जम्बू-द्वीप कहा जाता है, उससे फल लेकर मुझसे पहिले ही (आकर) अग्निशालामे बैठा। तो भी यह वैसा अर्हत् नही है जैसा कि मैं।"

तब भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपके भातको खाकर उसी वन-खडमे विहार करने लगे।

८-१०—अ ष्ट म्, न व म, द श म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतनेपर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण ! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप चल ! मैं आता हूँ।"—(कहकर) जटिल उरुवेल-काश्यपको जिस जम्बूके कारण यह ज म्बू-द्वी प कहा जाता है उसके समीपके आम०। ० आँवला०। ० हर्रे ०।

११—ए का द श म प्रा ति हा र्य—तब जटिल उरुवेल काश्यप उस रातके बीतने पर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"महाश्रमण ! (भोजनका) काल है। भात तैयार है।"

"काश्यप ! चल मे आता हूँ।"—(कहकर) त्र य स्त्रिं श (देव-लोक)मे जाकर पारिजात पुष्पको ले (काश्यपसे) पहिले ही आकर अग्निशालामे बैठे। जटिल उरुवेल काश्यपने भगवान्‌को अग्निशालामे (पहलेही) बैठे देखकर यह कहा—

"महाश्रमण ! किस रास्तेसे तुम आये, मैं तुमसे पहिले ही चला था, लेकिन तुम मुझसे पहिलेही आकर अग्निशालामे बैठे हो ?"

"काश्यप ! मैं तुझे भेजकर त्र य स्त्रिं श (देव-लोक)मे जाकर पारिजात पुष्पको ले पहले ही आकर अग्निशालामे बैठा हूँ। काश्यप ! यही वह (सुन्दर) वर्ण और गन्ध युक्त पारिजातका पुष्प है।"

तब जटिल उरुवेल काश्यपके (मनमे) यह हुआ—"महाश्रमण दिव्य शक्तिवाला= महानुभाव है जो कि मुझे पहलेही भेजकर त्रयस्त्रिंश (देव लोक) जा पारिजातके फूलको ले पहिले ही आकर अग्निशालामे बैठा है, तो भी यह वैसा अर्हत नही है जैसा कि मैं।

१२—द्वा द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल (=जटाधारी वाणप्रस्थ साधु) अग्निहोत्र के लिये लकळी (फाळते वक्त) फाळ न सकते थे। तब उन जटिलोके (मनमे) यह हुआ—"निस्सशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है, जोकि हम काठ नही फाळ सकते है।"

तव भगवान् जटिल उरुवेल काश्यपसे यह बोले—

"काश्यप ! फाळी जायँ लकळियाँ ?"

"महाश्रमण ! फाळी जायँ लकळियाँ।"

और एक ही बार पाँच सौ लकळियाँ फाळदी गई ।

तव जटिल उरुवेल काश्यपके मनमे यह हुआ—"महाश्रमण दिव्यशक्तिवाला=महानुभाव है जोकि लकळियाँ फाळी नही जा सकती थी। तो भी यह वैसा अर्हत् नही है जैसा कि मै।"

१३—त्र यो द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल अग्नि-परिचर्याके लिये (जलाते वक्त) आगको न जला सकते थे । तब उन जटिलोके (मनमे) यह हुआ—

"निस्सशय यह महाश्रमणका दिव्य-बल है जो हम आग नही जला सकते है ।"

तब भगवान्ने जटिल उरुवेल काश्यपसे यह कहा—

"काश्यप ! जल जावे अग्नि ?"

"महाश्रमण ! जल जावे अग्नि ।"

और एक ही बार पाँच सौ अग्नि जल उठी० ।

१४—च तु र्द श म प्रा ति हा र्य—उस समय जटिल परिचर्या करके आगको बुझा नही सकते थे०। उस समय वह जटिल हेमन्तकी हिम-पात वाली चार माघके अन्त और चार फाल्गुनके आरम्भकी रातोमे ने र ज रा नदीमे डूबते उतराते थे, उन्मज्जन, निमज्जन करते थे। तब भगवान्ने पाँच सौ अँगीठियाँ (योगवलसे) तैयार की, जहाँ निकलकर वे जटिल तापे। तव उन जटिलोके मनमे यह हुआ—"निस्सशय०।"

१५—प च द श म प्रा ति हा र्य—एक समय बळा भारी अकालमेघ बरसा। जलकी बळी बाढ आगई। जिस प्रदेशमे भगवान् विहार करते थे, वह पानीसे डूब गया। तब भगवान्को हुआ—"क्यो न मै चारो ओरसे पानी हटाकर, बीचमे धूलियुक्त भूमिपर चक्रमण करूँ (टहलूँ) ?" भगवान् पानी हटाकर धूलि-युक्त भूमिपर टहलने लगे। उरुवेल-काश्यप जटिल—"अरे ! महाश्रमण जलमे डूब न गया होगा !!" (यह सोच) नाव ले, बहुतसे जटिलोके साथ जिस प्रदेशमे भगवान् विहार करते थे, वहाँ गया। (उसने) भगवान्को धूलि-युक्त भूमिपर टहलते देखा। देखकर भगवान्से बोला—"महाश्रमण ! यह तुम हो ?"

"यह मै हूँ" कह भगवान् आकाशमे उळ, नावमे आकर खळे हो गये।

तव उरुवेल-काश्यप जटिलको हुआ—"महाश्रमण दिव्य-शक्ति-धारी है, हो ! किन्तु यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मै ।"

तब भगवान्को (विचार) हुआ—"चिरकाल तक इस मूर्ख (=मोघपुरुष)को यह (विचार) होता रहेगा—कि महाश्रमण दिव्य-शक्तिधारी है, किन्तु यह वैसा अर्हत् नही है, जैसा कि मै। क्यो न मै इस जटिलको फटकारूँ ?"

तब भगवान्ने उरुवेल-काश्यप जटिलसे कहा—"काश्यप ! न तो तू अर्हत् है, न अर्हत्के मार्गपर आरूढ। वह सूझ भी तुझे नही है, जिससे अर्हत् होवे, या अर्हत्के मार्गपर आरूढ होवे।"

(१५) काश्यप-बंधुओंकी प्रव्रज्या

(तब) उरुवेल-काश्यप जटिल भगवान्के पैरोपर शिर रख, भगवान्से बोला—"भन्ते !

भगवान्‌के पाससे मुझे प्रव्रज्या मिले, उपसम्पदा मिले।"

"काश्यप! तू पाँच सौ जटिलोका नायक है। उनको भी देख।"

तब उरुवेल काश्यप जटिलने जाकर, उन जटिलोसे कहा—"मै महाश्रमणके पास ब्रह्मचर्य-ग्रहण करना चाहता हूँ, तुमलोगोकी जो इच्छा हो सो करो।"

"पहलेहीसे! हम महाश्रमणमे अनुरक्त है, यदि आप महाश्रमणके शिष्य होगे, (तो) हम सभी महाश्रमणके शिष्य बनेगे"।

वह सभी जटिल केश-सामग्री, जटा-सामग्री, [1]खारी और घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री (आदि अपने सामानको) जलम प्रवाहितकर, भगवान्‌के पास गये। जाकर भगवान्‌के चरणोपर शिर झुका बोले—"भन्ते! हम भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पावे, उपसम्पदा पावे।"

"भिक्षुओ! आओ धर्म सु-व्याख्यात है, भली प्रकार दु खके अन्त करनेके लिये ब्रह्मचर्य पालन करो।"

यही उन आयुष्मानोकी उपसपदा हुई।

न दी का श्य प जटिलने केश-सामग्री, जटा-सामग्री, खारी और घीकी सामग्री, अग्निहोत्र-सामग्री नदीमे वहती हुई देखी। देखकर उसको हुआ—"अरे! मेरे भाईको कुछ अनिष्ट तो नही हुआ है," (ओर) जटिलोको—"जाओ, मेरे भाईको देखो तो" (कह,) स्वय भी तीन सौ जटिलोको साथ ले, जहाँ आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप थे, वहाँ गया, और जाकर बोला—"काश्यप! क्या यह अच्छा है?"

"हाँ, आवुस! यह अच्छा है।"

तब वह जटिल भी केश-सामग्री जलमे प्रवाहितकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर बोले—"भन्ते! उपसम्पदा पावे।" वही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।

ग या का श्य प जटिलने केश-सामग्री नदीमें वहती देखी। "काश्यप! क्या यह अच्छा है?"

"हाँ! आवुस! यह अच्छा है।"

यही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।

४—गया

तब भगवान् उ रु वे ला मे इच्छानुसार विहारकर, सभी एकसहस्र पुराने जटिल भिक्षुओके महाभिक्षु-सघके साथ ग या सी स गये।

(१६) गयासीस पर आदीप्त पर्यायका उपदेश

वहाँ भगवान् एक हजार भिक्षुओके साथ ग या [2]ग या - सी स प र विहार करते थे। वहाँ भगवान्‌ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—"भिक्षुओ! सभी जल (=नष्ट हो) रहा है। क्या जल रहा है? चक्षु जल रही है, रूप जल रहा है, चक्षुका विज्ञान[3] जल रहा है, चक्षुका स स्प र्श जल रहा है, और चक्षुके सस्पर्शके कारण जो वेदनाये—सुख, दु ख, न-सुख-न-दु ख—उत्पन्न होती है, वह भी जल रही है?—राग-अग्निसे, द्वेष-अग्निसे, मोह-अग्निसे जल रहा है। जन्म, जरासे, और मरणके योगसे, रोने-पीटनेसे, दु खसे, दुर्मनस्कतासे, परेशानीसे जल रही है—यह मै कहता हूँ।

"श्रोत्र०। ०शब्द०। ०श्रोत्र-विज्ञान०। ०श्रोत्रका-सस्पर्श०। ०श्रोत्रके सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनाये०। घ्राण (=नासिका-इन्द्रिय) गध घ्राण-विज्ञान जल रहे है। घ्राणका सस्पर्श

---

[1] खरिया, झोली। [2] गयासीस=गयाका ब्रह्मयोनि पर्वत है।

[3] इन्द्रिय और विषयके सम्बन्धसे जो ज्ञान होता है।

जल रहा है यह मै कहता हूँ। जिह्वा०। ०रस०। ०जिह्वा-विज्ञान०। ०जिह्वा-सस्पर्श ०।०जिह्वा सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदनाये० ०जल रही है। यह मै कहता हूँ। काया०-०स्पर्श० काय विज्ञान० ०काय-सस्पर्श काय-सस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनाये० ०जल रही है। ० मन० ०धर्म० ०मनो-विज्ञान० .० ०मन-सस्पर्श मन-सस्पर्शसे (उत्पन्न) वेदनाये जल रही है। किससे जल रही है। राग-अग्निसे द्वेप-अग्निसे मोह-अग्निसे जल रही है। जन्म, जरा और मरणके योगसे जल रही है। रोने-पीटनेसे दु खसे दुर्मनस्कतासे जल रही है"—यह मै कहता हूँ।

"भिक्षुओ! ऐसा देख, (धर्मको) सुननेवाले आर्य[1]शिष्य चक्षुसे निर्वेद[2]-प्राप्त होता है रूपसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-सस्पर्शसे[3] निर्वेद-प्राप्त होता है, चक्षु-सस्पर्शके कारण जो यह उत्पन्न होती है वेदना—सुख, दु ख, न सुख-न दु ख—उससे भी निर्वेद प्राप्त होता है।

"श्रोत्र०। शब्द०। श्रोत्र-विज्ञान०। श्रोत्र-सस्पर्श०। श्रोत्र-सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना० घ्राण०। गध०। घ्राण-विज्ञान०। घ्राण-सस्पर्श० घ्राण-सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। जिह्वा० रस०। जिह्वा-विज्ञान०। जिह्वा-सस्पर्श०। जिह्वा-सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०। काय० स्पर्श[3] ०। काय-विज्ञान०। काय-सस्पर्श०। काय-सस्पर्शके कारण (उत्पन्न) वेदना०।

"मनसे निर्वेद-प्राप्त होता है। धर्मसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मनो-विज्ञानसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-सस्पर्शसे निर्वेद-प्राप्त होता है। मन-सस्पर्शके कारण जो यह वेदना—सुख, दु ख, न सुख-न दु ख—उत्पन्न होती है उससे भी निर्वेद-प्राप्त होता है।

उदास हो विरक्त होताहै। विरक्त होनेसे मुक्त होता है। मुक्त होनेपर मै मुक्त हूँ" यह ज्ञान होता है। वह जानता है—"आवागमन खतम हो गया, ब्रह्मचर्य पूरा हो गया, करना था सो करचुका और यहाँ कुछ (करनेको बाकी) नही है।" इस व्याख्यानके कहे जाते वक्त उन हजार भिक्षुओके चित्त निर्लिप्त हो आवागमन देनेवाले चित्त-मलोसे छूट गये।

उरुवेल प्रातिहार्य (नामक) तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

५—*राजगृह*

(१७) राजगृहमे बिबिसारकी दीक्षा

भगवान् ग या सी स मे इच्छानुसार विहारकर, (रा जा बि बि सा र से की हुई प्रतिज्ञा का स्मरणकर) सभी एक हजार पुराने जटिल भिक्षुओके महान् भिक्षु-सघके साथ, चारिकाके लिये चल दिये। भगवान् क्रमश चारिका करते, रा ज गृ ह पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमे लट्ठि[4] (यट्ठि) वनके सु प्र ति ष्ठि त चौरे (=चैत्य)मे ठहरे।

मगध-राज श्रेणिक बि बि सा र ने (अपने मालीके मुँहसे) सुना, कि शाक्यकुलसे साधु बने शाक्यपुत्र श्रमण गौ त म राजगृहमे पहुँच गये है। राजगृहमे लट्ठि (=यट्ठि) व न के सुप्रतिष्ठित चैत्यमे विहार कर रहे है। उन भगवान् गौतमका ऐसा मगल-यश फैला हुआ है—"वह भगवान् अर्हत् है, सम्यक्-सबुद्ध है, विद्या और आचरणसे युक्त है, सुगत है, लोकोके जानने वाले है, उनसे उत्तम कोई नही है ऐसे (वह) पुरुषोके चाबुक-सवार है, देवताओ और मनुष्योके उपदेशक है— (ऐसे वह) बुद्ध भगवान् है।" वह ब्रह्मलोक, मारलोक, देवलोक, सहित इस लोकको, देव-मनुष्य-सहित

---

[1] स्रोतआपन्न, सकृदागामी, अना-गामी, अर्हत्। [2] वैराग्यकी पूर्वावस्था।
[3] शीत, उष्णआदि। [4] राजगिरके पासका जठियाँव।

साधु-ब्राह्मण-युक्त (सभी) प्रजाको, स्वय समझ=साक्षात्कारकर जानते है। वह आदिमे कल्याण-(-कारक), मध्यमे कल्याण(-कारक), अन्तमे कल्याण(-कारक) धर्मका, अर्थ-सहित=व्यञ्जन-सहित उपदेश करते है। वह केवल पूर्ण और शुद्ध ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते है। इस प्रकारके अर्हत् लोगोका दर्शन करना उत्तम है।"

मगध-राज श्रेणिक बि वि सा र बारह लाख म ग ध-निवासी ब्राह्मणो और गृहस्थोके साथ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। वह बारह लाख मगध-निवासी ब्राह्मण गृहस्थ भी—कोई भगवान्को अभिवादनकर, कोई भगवान्से कुशल प्रश्न पूछकर, कोई भगवान्की ओर हाथ जोळकर, कोई भगवान्को नाम-गोत्र सुनाकर, कोई कोई चुप-चापही एक ओर बैठ गये। तब उन बारह लाख मगधके ब्राह्मणो, गृहस्थोके (चित्तमे) होने लगा—

"क्योजी! महाश्रमण (गोतम) उ रु वे ल - का श्य प का शिष्य है, अथवा उरुवेल-काश्यप महाश्रमणका शिष्य है?"

तब भगवान्ने उस बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणो और गृहस्थोंके चित्तके वितर्कको जान, आयुष्मान् उरुवेल-काश्यपसे गाथामे कहा—

"हे उरुवेल-वासी! हे तप कृशोके उपदेशक! क्या देखकर (तूने) आग छोळी?

काश्यप! तुमसे यह बात पूछता हूँ, तुम्हारा अग्निहोत्र कैसे छूटा?"

(काश्यपने कहा)—"रूप, शब्द और रसरूपी कामभोगोमे, स्त्रियोके रूप शब्द, और रसमे हवन करते है, काम-भोगोके रूप शब्द और रसमे [1]कामेष्ठि-यज्ञ करते है। यह रागादि उपधियाँ मल है, (मैंने) यह जान लिया, इसलिये मै यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।"

भगवान्ने (कहा)—"हे काश्यप! रूप शब्द और रसमे तेरा मन नही रमा। तो देव-मनुष्य-लोकमे कहाँ तेरा मन रमा, काश्यप! इसे मुझे कह।"

"काम-मदमे अविद्यमान, निर्लेप, शात रागादि-रहित (निर्वाण-) पदको देखकर। निर्विकार, दूसरेकी सहायतासे न पार होने वाले (निर्वाण-)पदको देखकर (मै) इष्ट और यज्ञ और होमसे विरक्त हुआ।"

तब आयुष्मान् उरुवेल-काश्यप आसनसे उठ, उपरने (=उत्तरासग) को एक कधेपर कर, भगवान्के पैरोपर शिर रख भगवान्से बोले—"भन्ते! भगवान् मेरे गुरु है, मै शिष्य हूँ। भन्ते! भगवान् मेरे गुरु है, मै शिष्य हूँ।" तब उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणो और गृहस्थोके (मनमें) हुआ—"उरुवेल-काश्यप महा-श्रमणका शिष्य है।"

तब भगवान्ने उन बारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणो और गृहस्थोके चित्तकी बात जान आनुपूर्वी कथा० कही०। तब बिबिसार आदि ग्यारह लाख मगध-वासी ब्राह्मणो और गृहस्थोको उसी आसनपर "जो कुछ पैदा होनेवाला है, वह नाशमान है" यह विरज=निर्मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ, और एक लाख उपासक बने।

तब धर्मको जानकर, प्राप्तकर, विदितकर, अवगाहनकर सन्देह-रहित, विवाद-रहित बन भगवान्के धर्ममे विशारद और स्वतत्र हो, बिम्बिसारने भगवान्से कहा—"भन्ते! पहिले कुमार-अवस्थामे मेरी पाँच अभिलाषाये थी, वह अब पूरी हो गई। भन्ते! पहिले कुमार अवस्थामे (चित्तमें) यह होता था—"(क्या ही अच्छा होता) यदि मुझे (राज्यका) अभिषेक मिलता।" यह मेरी पहिली अभिलाषा थी, जो अब पूरी हो गई है। "मेरे राज्यमे अर्हत् यथार्थ बुद्ध आते" यह मेरी दूसरी अभिलाषा

---

[1] किसी कामनासे किया जानेवाला यज्ञ।

थी, वह भी अब पूरी होगई । "उन भगवान्‌की मै सेवा करता", यह मेरी तीसरी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी हो गई। "वह भगवान् मुझे धर्म-उपदेश करते" यह मेरी चौथी अभिलाषा थी, वह भी अब पूरी हो गई । "उन भगवान्‌को मै जानता" यह पाँचवी अभिलाषा थी, वह भी अव पूरी होगई। आश्चर्य है! भन्ते!! आश्चर्य है! भन्ते!! जैसे औधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अधकारमे तेलकी रोशनी रख दे, जिसमे आँखवाले रूप देखे, ऐसेही भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। इसलिये मै भगवान्‌की शरण लेता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे हाथ-जोळ शरणमे आया उपासक जाने। भिक्षु-सघ-सहित कलके लिये मेरा निमन्त्रण स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौन रह उसे स्वीकार किया। तव मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसार भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। मगध-राज श्रेणिक विम्बिसारने उस रातके बीतनेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तेयार करा, भगवान्‌को कालकी सूचना दी—भन्ते! काल होगया, भोजन तैयार है। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित (हो), (भिक्षा-) पात्र और चीवर ले, सभी एक सहस्र पुराने जटिल-भिक्षुओवाले महान् भिक्षुसघके साथ राजगृहमे प्रविष्ट हुए ।

उस समय देवोका इन्द्र शक्र ब्राह्मण-कुमारका रूप धारणकर बु द्ध स हि त भिक्षु-सघके आगे आगे यह गाथाएँ गाता हुआ चलता था—

"(भगवान् राजगृहमे प्रवेश कर रहे है)
पुराण जटिलोके साथ (वह) सयमी,
मुक्तोके साथ वह मुक्त, कुदन जैसे वर्णवाले, भगवान् राजगृहमे ॥
पुराने शान्त जटिलोके साथ (वह) शान्त, मुक्तोके साथ (वह) मुक्त । कुदन जैसे० ॥
पुराने मुक्त जटिलोके साथ (वह) मुक्त, विप्रमुक्तोके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुदन जैसे०॥
पुराने पार उतरे जटिलोके साथ (वह भव) पार उतरे विप्रमुक्तोके साथ (वह) विप्रमुक्त । कुदन जैसे०॥

दश (आर्य-) निवास, दश-बल, दश-धर्म (=कर्मपथ-) सहित, दशो (अशैक्ष्य अगो)से युक्त ।
दश सौ (पुरुषोसे) युक्त (वह) भगवान् राजगृहमें प्रवेश करते हैं ।

लोग देवोके इन्द्र श क्र को देखकर ऐसा कहते थे—

"अहो! यह ब्राह्मण-कुमार सुदर है। अहो! यह कुमार दर्शनीय है। अहो! यह कुमार चित्तको भला लगनेवाला है। किसका यह माणवक है?"

ऐसा कहनेपर देवोका इन्द्र शक्र उन मनुष्योसे गाथामे बोला—

"जो धीर, सवसे वुद्धिमान्, दान्त, शुद्ध (और) अनुपम पुरुष है।
लोकमे अर्हत्, सुगत है, उनका मै परिचारक हूँ॥"

तव भगवान्, जहाँ मगध-राज श्रेणिक बिम्बिसारका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मगधराजने बुद्धसहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम भोजन कराया, सतृप्त कराया, पूर्ण कराया, और भगवान्‌के पात्रसे हाथ खीच लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगध-राज के (चित्तमे) हुआ—"भगवान् कौनसी जगह विहार करे? जो कि गाँवसे न वहुत दूर हो, न वहुत समीप हो, इच्छुकोके आने जाने लायक हो, (जहाँ) दिनमे वहुत भीळ न हो (और) रातमे लोगोका हल्ला गुल्ला न हो, मनुष्यके लिये एकान्त स्थान हो, एकान्तवासके योग्य हो?" तव मगध-राज को हुआ—"यह हमारा वे ळु (वे णु) व न उद्यान गाँवसे न वहुत दूर है, न वहुत समीप०,

एकान्तवासके योग्य है। क्यो न मै वेणुवन-उद्यान बुद्ध सहित भिक्षु-सघको प्रदान करूँ।"

तव मगध-राज ने भगवान्मे निवेदन किया—"भन्ते! मै वे णु व न उ द्या न बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको देता हूँ।"

भगवान् आराम स्वीकार किये, और फिर मगध-राजको धर्म-सवधी कथाओ द्वारा, समुत्तेजितकर आसनसे उठकर चलेगये।

भगवान्ने इसीके सम्बन्धमे धर्म-सवधी कथा कह, भिक्षुओंको सम्बोधित किया—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आरामके ग्रहण करनेकी।" 2

(१८) सारिपुत्र और मोद्गल्यायनकी प्रव्रज्या

उस समय स ज य (नामक) परिव्राजक रा ज गृ ह मे ढाई सौ परिव्राजकोकी बळी जमातके साथ निवास करता था। सा रि पु त्र, और मौ द्ग ल्या य न, सजय परिव्राजकके चेले थे। उन्होने (आपसमे) प्रतिज्ञाकी थी—जो पहिले अमृतको प्राप्त करे, वह दूसरेसे कहे। उस समय आयुष्मान् अ श्व जि त् पूर्वाह्ण समय सु-आच्छादित हो, पात्र और चीवर ले, अति सुन्दर=प्रतिक्रात आलोकन=विलोकनके साथ, सकोचन और प्रसारणके साथ, नीची नजर रखते, सयमी ढगसे, राजगृहमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्को अतिसुन्दर आ-लोकन=विलोकनके साथ नीची नजर रखते सयमी ढगसे राजगृहमे भिक्षाके लिये घूमते देखा। देख-कर उनको हुआ—"लोकमे अर्हन् या अर्हत्के मार्गपर जो आरूढ है, यह भिक्षु उनमेसे एक है। क्यो न मै इस भिक्षुके पास जा पूछूँ—आवुस! तुम किसको (गुरु) करके साधु हुए हो, कौन तुम्हारा गुरु है?, तुम किसके धर्मको मानते हो?" फिर सारिपुत्र परिव्राजक (के चित्तमे) हुआ—यह समय इस भिक्षुसे (प्रश्न) पूछनेका नही है, यह घर घर भिक्षाके लिये घूम रहा है। क्यो न मै इस भिक्षुके पीछे होलूँ।"

आयुष्मान् अश्वजित् राज-गृहमे भिक्षाके लिये घूमकर, भिक्षाको ले, चल दिये। तव सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ आयुष्मान् अश्वजित् थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् अश्वजित्के साथ यथायोग्य कुशल प्रश्न पूछ एक ओर खळा होगया। खळे होकर सारिपुत्र परिव्राजकने आयुष्मान् अश्वजित्से कहा—

"आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न है, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल है। आवुस! तुम किस-को (गुरु) करके साधु हुए हो, तुम्हारा गुरु कौन है? तुम किसका धर्म मानते हो?"

"आवुस! शा क्य-कुलसे प्रव्रजित शा क्य-पु त्र (जो) महाश्रमण है, उन्ही भगवान्को (गुरु) करके मै साधु हुआ। वही भगवान् मेरे गुरु है। उन्ही भगवान्का धर्म मै मानता हूँ।"

"आयुष्मान्के गुरुका क्या मत है किस (सिद्धात)को वह मानते है?"

"आवुस! मै नया हूँ, इस धर्ममे अभी नया ही साधु हुआ हूँ, विस्तारसे मै तुम्हे नही वतला सकता, इसलिए सक्षेपमे तुमसे धर्म कहता हूँ।"

"तव सा रि पु त्र परिव्राजकने आयुष्मान् अ श्व जि त् से कहा—"अच्छा आवुस!

थोडा वहुत जो हो कहो, सारहीको मुझे वतलाओ।

सारही से मुझे प्रयोजन है, क्या करोगे वहुतसा विस्तार कहकर।"

तव आयुष्मान् अश्वजित्ने सारिपुत्र परिव्राजकसे यह ध र्म-प र्या य (=उपदेश) कहा—

"हेतु (=कारण)से उत्पन्न होनेवाली जितनी वस्तुये है, उनका हेतु है, (यह) तथागत वतलाते है।

उनका जो निरोध है (उसको भी वतलाते है), यही महाश्रमणका वाद है।"

तव सारिपुत्र परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सव

नाशमान् है," यह विरज=विमल धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ। यही धर्म है, जिससे कि शोक-रहित पद, प्राप्त किया जा सकता है, और जिसे कि कल्पोसे लाखो बिना देखे छोळ गये थे।

तब सारिपुत्र परिव्राजक जहाँ मौद्गल्यायन परिव्राजक था, वहाँ गया। मौद्गल्यायन परिव्राजकने दूरसे ही सारिपुत्र परिव्राजकको आते देखा। देखकर सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—आवुस! तेरी इन्द्रियाँ प्रसन्न है, तेरी कान्ति शुद्ध तथा उज्वल है। तूने आवुस! अमृत तो नही पा लिया?"

"हाँ आवुस! अमृत पा लिया।"

"आवुस! कैसे तूने अमृत पाया?"

"आवुस! मैंने आज राजगृहमे अश्वजित् भिक्षुको अति सुन्दर आलोकन=विलोकनसे भिक्षाके लिये घूमते देखकर (सोचा) 'लोकमे जो अर्हत् है यह भिक्षु उनमेंसे एक है।' मैंने अश्वजित् से पूछा तुम्हारा गुरु कौन है । अश्वजित्ने यह धर्मपर्याय कहा—हेतुसे उत्पन्न०।

तब मौद्गल्यायन परिव्राजकको इस धर्म-पर्यायके सुननेसे—"जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब नाशमान् है"—यह विमल=विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ।

मौद्गल्यायन परिव्राजकने सारिपुत्र परिव्राजकसे कहा—"चलो चले आवुस!! भगवान्के पास, वह हमारे गुरु है। और यह (जो) ढाई सौ परिव्राजक हमारे आश्रयसे=हमें देखकर यहाँ विहार करते है, उन्हे भी बूझले (और कहदें)—जैसी तुम लोगोकी राय हो वैसा करो—।"

तब सारिपुत्र, मौद्गल्यायन जहाँ वह परिव्राजक थे, वहाँ गये, जाकर उन परिव्राजकोसे बोले—"आवुसो! हम भगवान्के पास जाते है, वह हमारे गुरु है ।"

"हम आयुष्मानोके आश्रयसे—आयुष्मानोको देखकर, यहाँ विहार करते है। यदि आयुष्मान् महाश्रमणके शिष्य होगें, तो हम सबभी महाश्रमणके शिष्य होगे ।"

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन सजय परिव्राजकके पास गये। जाकर सजय परिव्राजकसे बोले—

"आवुस! हम भगवान्के पास जाते है, वह हमारे गुरु है ।"

"नही, आवुसो! मत जाओ। हम तीनो (मिलकर) (इस जमातकी महन्थाई करेगे।"

"दूसरी बार भी सारिपुत्र और मौद्गल्यायनने सजय परिव्राजकसे कहा—" हम भगवान्के पास जाते है ।"

" मत जाओ! हम तीनो (मिलकर) इस जमातकी महन्थाई करेगे।"

तीसरी बार भी ।

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन उन ढाई सौ परिव्राजकोको ले, वेणुवन चले गये। सजय परिव्राजकको वही मुँहसे गर्म खून निकल आया।

भगवान्ने दूरसे ही सारिपुत्र और मौद्गल्यायनको आते हुए देख भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! यह दो मित्र कोलित (=मौद्गल्यायन) और उपतिष्य (=सारिपुत्र) आ रहे है। यह मेरे प्रधान शिष्य-युगल होगे, भद्र-युगल होगे।"

गम्भीर ज्ञान अनुपम, भवनाशक, मुक्त, (और) दुर्लभ (निर्वाण)के विपयमे वेणुवनमे बुद्धने हमारे लिये भविष्यद्वाणी की ॥—

कोलित और उपतिष्य यह दो मित्र आ रहे है।

यह मेरे दो मुख्य शिष्य उत्तम जोळी होगे॥"

तब सारिपुत्र और मौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्के चरणोमे शिर झुकाकर बोले—

"भन्ते ! हमें भगवान् प्रव्रज्या दे, उपसम्पदा दे।"

भगवान्‌ने कहा—"भिक्षुओ आओ (यह) धर्म सु-व्याख्यात है। अच्छी प्रकार दुःखके क्षयके लिये ब्रह्मचर्य-पालन करो।"

यही उन आयुष्मानोकी उपसम्पदा हुई।

उस समय मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र भगवान्‌के शिष्य होते थे। लोग (देखकर) हैरान होते, निन्दा करते और दुःखी होते थे—"अपुत्र बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है, विधवा बनानेको श्रमण गौतम (उतरा) है, कुल-नाशके लिये श्रमण गौतम (उतरा) है। अभी उसने एक सहस्र जटिलोको साधु बनाया। इन ढाई सौ संजयके परिव्राजकोको भी साधु बनाया। अब मगधके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कुल-पुत्र भी श्रमण गौतमके पास साधु बन रहे है।" वह भिक्षुओको देख इस गाथाको कह, ताना देते थे—

"महाश्रमण मगधोके [१]गिरिव्रजमें आया है।
संजयके सभी चेलोको तो ले लिया, अब किसको लेनेवाला है?"

भिक्षुओने इस बातको भगवान्‌से कहा। भगवान्‌ने कहा—

"भिक्षुओ ! यह शब्द देर तक न रहेगा। एक सप्ताह बीतते लोप हो जायगा। जो तुम्हें उस गाथासे ताना देते हैं। उन्हें तुम इस गाथासे उत्तर दो—

"महावीर तथागत सच्चे धर्म (के रास्ते)से ले जाते है।
धर्मसे ले जाये जाताके लिये बुद्धिमानोको हसद क्यो?"

लोगोने कहा—"शाक्यपुत्रीय (=शाक्य-पुत्र बुद्धके अनुयायी) श्रमण, धर्म (के रास्ते)से ले जाते है, अधर्मसे नही।"

सप्ताह भर ही वह शब्द रहा। सप्ताह बीतते-बीतते लोप होगया।

चतुर्थ भाणवार समाप्त ॥४॥

§२–शिष्य, उपाध्याय आदिके कर्त्तव्य

(१) शिष्यका कर्त्तव्य

उस समय भिक्षु उपाध्यायके बिना रहते थे, (इसलिये वह) उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, बिना ठीकसे पहने, बिना ठीकसे ढाँके, बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे। खाते हुए मनुष्यो के भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर पेयके ऊपर जूठे पात्रको बढा देते थे। स्वयं दाल भी भात भी माँगकर खाते थे। भोजनपर बैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुःखी होते थे। क्यो शाक्यपुत्रीय श्रमण बिना ठीकसे पहिने० भोजनपर बैठे भी हल्ला मचाते रहते है, जैसे कि ब्राह्मण ब्राह्मण-भोजमे। भिक्षुओने लोगोका हैरान होना० सुना। जो भिक्षु निर्लोभी सन्तुष्ट, लज्जी,[२] सकोचशील, शिक्षार्थी थे, वह हैरान हुए, धिक्कारने लगे, दुखी हुए०। तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से इस बातको कहा। भगवान्‌ने धिक्कारा—'भिक्षुओ ! उन नालायकोका (यह करना) अनुचित है अयोग्य है असाधुका आचार है, अभव्य है, अकरणीय है। भिक्षुओ ! कैसे वह

---

[१] राजगृह। [२] जानकर अपराध नही करता, अपराध हो जानेपर छिपाता नहीं। न जानेके रास्ते नही जाता, ऐसा व्यक्ति लज्जी कहा जाता है।" (—अट्ठकथा)

नालायक विना ठीकसे पहिने० भिक्षाके लिये घूमते हैं०। भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नही है, और न प्रसन्नो (=श्रद्धालुओ)को अधिक प्रसन्न करनेके लिये, बल्कि अप्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नोमेसे भी किसी किसीके उलट देनेके लिये है।" तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपाध्याय (करने)की । उपाध्यायको शिष्य (=सद्धिविहारी) मे पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको उपाध्यायमे पिता-बुद्धि ।

इस प्रकार उपाध्याय ग्रहण करना चाहिये—उपरना (उत्तरा-सग)को एक कधेपर करवा, पाद-वदन करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहलवाना चाहिये—'भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये, भन्ते! मेरे उपाध्याय बनिये।'

"भिक्षुओ! शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिये। अच्छा बर्ताव यह है—समयसे उठकर, जूता छोळ, उत्तरासगको एक कधेपर रख, दातुवन देनी चाहिये, मुख (धोनेको) जल देना चाहिये। आसन बिछाना चाहिये। यदि खिचळी (कलेऊके लिये) है, तो पात्र धोकर (उसे) देना चाहिये। । पानी देकर पात्र लेकर बिना घसे धोकर रख देना चाहिये। उपाध्यायके उठ जानेपर, आसन उठाकर रख देना चाहिये। यदि वह स्थान मैला हो, तो झाळू देना चाहिये। यदि उपाध्याय गाँवमे जाना चाहते है, तो वस्त्र थमाना चाहिये, , कमर-बन्द देना चाहिये, चौपेतकर सघाटी[1] देनी चाहिये, धोकर पानी भर पात्रदेना चाहिये। यदि उपाध्याय अनुगामी-भिक्षु चाहते है, तो तीन स्थानोको ढाँकते हुए घेरादार (चीवर) पहन, कमर-बन्द बाँध चौपेती सघाटी पहिन, मुद्धी बाँध, धोकर पात्रले उपाध्यायका अनुचर (=पीछे चलनेवाला) भिक्षु बनना चाहिये। (साथमे) न बहुत दूर होकर चलना चाहिये, न बहुत समीप होकर चलना चाहिये। पात्रमे मिली (भिक्षा)को ग्रहण करना चाहिये। उपाध्यायके बात करते समय, बीच बीचमे बात न करना चाहिये। उपाध्याय (यदि) सदोष (बात)बोल रहे हो, तो मना करना चाहिये। लौटते समय पहिलेही आकर आसन बिछा देना चाहिये, पादोदक (=पैर धोनेका जल), पाद-पीठ, पा द क ठ ली (=पैर घिसनेका साधन) रख देना चाहिये। आगे बढकर पात्र-चीवर (हाथसे) लेना चाहिये। दूसरा वस्त्र देना चाहिये। पहिला वस्त्र ले लेना चाहिये। यदि चीवरमे पसीना लगा हो, थोळी देर धूपमे सुखा देना चाहिये। धूपमे चीवरको डाहना न चाहिये। (फिर) चीवर बटोर लेना चाहिये। यदि भिक्षान्न है, और उपाध्याय भोजन करना चाहते है, तो पानी देकर भिक्षा देनी चाहिये। उपाध्यायको पानीके लिये पूछना चाहिये। भोजन कर लेनेपर पानी देकर, पात्र ले, झुकाकर बिना घिसे अच्छी तरह धो-पोछकर मुहूर्तभर धूपमे सुखा देना चाहिये। धूपमे पात्र डाहना न चाहिये। यदि उपाध्याय स्नान करना चाहे, स्नान कराना चाहिये। यदि ज ता घ र (=स्नानागार)मे जाना चाहे, (स्नान-) चूर्ण ले जाना चाहिये, मिट्टी भिगोनी चाहिये। जताघरके पीढेको लेकर उपाध्यायके पीछे पीछे जाकर, जन्ताघरके पीढेको दे, चीवर ले एक ओर रख देना चाहिये। (स्नान-)चूर्ण देना चाहिये। मिट्टी देनी चाहिये। उपाध्यायका (शरीर) मलना चाहिये। (उपाध्यायके) नहा लेनेसे पूर्वही अपने देहको पोछ (सुखा), कपळा पहन, उपाध्यायके शरीरसे पानी पोछना चाहिये। वस्त्र देना चाहिये। सघाटी देनी चाहिये। जताघरका पीढा ले पहिलेही आकर, आसन बिछाना चाहिये०।

जिस विहारमे उपाध्याय विहार करते है, यदि वह विहार मैला हो, तो समर्थ होनेपर उसे साफ करना चाहिये। विहार साफ करनेमे पहिले पात्र चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये।

---

[1] दोहरा चीवर।

गद्दा-चद्दर निकालकर एक ओर रखना चाहिये। तकिया.. रखनी चाहिये। चारपाई खळीकर केवाळमे बिना टकराये लेकर, एक ओर रख देना चाहिये। पीढेको खळाकर केवाळमे बिना टकराये०। चारपाईके (पावेके) ओट०। पौदानको एक ओर०। सिरहानेका पटरा एक ओर०। फर्शको बिछावट के अनुसार हिफाजतसे ले जाकर०। यदि विहारमे जाला हो, तो उल्लोक पहिले वहारना चाहिये। अँधेरे कोने साफ करने चाहिये। यदि भीत (=दीवार) गेरूसे गच की हुई हो, तो लत्ता भिगोकर रगळकर साफ करनी चाहिये। यदि काली हो गई, मलिन भूमि हो, (तो भी) लत्ता भिगोकर रगळकर साफ करनी चाहिये। । जिसमे धूलसे खराब न हो जाय। कूळेको ले जाकर एक तरफ फेकना चाहिये। फर्शको धूपमे सुखा, साफकर फटकारकर, ले आकर पहिलेकी भाँति विछा देना चाहिये। चारपाईके ओटको धूपमे सुखा साफकर ले आकर, उनके स्थानपर रख देना चाहिये। चारपाईको धूपमे सुखा, साफकर, फटकारकर नवाकर केवाळको बिना टकराये ले आकर०। पीढा०। तकिया०। गद्दा चद्दर धूपमे सुखा साफकर फटकारकर ले आकर बिछा देना चाहिये। पीकदान सुखा साफकर लेकर यथा-स्थान रख देना चाहिये। ।

यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो, पूर्वकी खिळकियाँ बन्द कर देनी चाहिये। । यदि जाळेके दिन हो, दिनको जगला खुला रखकर, रातको बन्द कर देना चाहिये। यदि गर्मीका दिन हो तो दिनको जगला बन्दकर रातको खोल देना चाहिये। यदि आगन (=परिवेण) मैला हो, आगन झाळना चाहिये। यदि कोठरी मैली हो०। यदि बैठक मैली हो०। यदि अग्निशाला (=पानी गर्म करनेका घर) मैली०। यदि पाखाना मैला हो०। यदि पानी न हो, पानी भरकर रखना चाहिये। यदि पीनेका जल न हो०। यदि पाखानेकी मटकीमे जल न हो०।

यदि उपाध्यायको उदासी हो, तो शिष्यको (उसे) हटाना हटवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको शका (=कौकृत्य) उत्पन्न हुई हो, तो शिष्यको हटाना हटवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायको (उल्टी) धारणा उत्पन्न हुई हो, तो शिष्यको छुळाना छुळवाना चाहिये, या धार्मिक कथा उनसे करनी चाहिये। यदि उपाध्यायने प रि वा स[1] देने योग्य बळा अपराध किया हो, तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये, जिसमे कि सघ उपाध्यायको परिवास दे। यदि उपाध्याय (दोपके कारण) मू ला य-प्र ति क र्प ण[1] के योग्य हो, तो शिष्यको कोशिश करनी चाहिये, जिसमे कि सघ उपाध्यायका मूलाय-प्रतिकर्पण करे। यदि उपाध्याय मा न त्त्व [1]के योग्य हो, ०। यदि उपाध्याय अ ह्वा न [1]के योग्य हो, ०। यदि (भिक्षु-) सघ, उपाध्यायको त र्ज नी य[1] (=तज्जनीय), नि य स्स[1], प्र व्रा ज नी य,[1] प ति सा र णी य[1], या उ त्क्षे प णी य[1] कर्म (=दड) करना चाहे तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये, जिसमे कि सघ उपाध्यायको दड न करे या हल्का दड करे। यदि सघने त ज्ज नी य, नि य स्स, प ब्बा ज नी य, प ति सा र णी य या उत्क्षेपणीय दड कर दिया हो तो शिष्यको उत्सुकता करनी चाहिये कि उपाध्याय ठीकसे रहे, लोम गिरा दे, निस्तारके अनुकूल बर्ताव करे, जिसमे कि सघ उस दडको मसूख कर दे।

यदि उपाध्यायका चीवर धोने लायक हो तो शिष्यको धोना चाहिये, या उत्सुकता करनी चाहिये जिसमे कि उपाध्यायका चीवर धोया जावे। यदि उपाध्यायको चीवर बनाने की जरूरत हो,० यदि उपाध्यायको रग पकानेकी जरूरत हो,० यदि उपाध्यायका चीवर रँगने लायक हो,०। चीवरको रँगते वक्त अच्छी तरह उलट पलटकर रँगना चाहिये। कही खाली न छोळना चाहिये। उपाध्यायको विना पूछे न किसीको पात्र देना चाहिये न किसीसे पात्र ग्रहण करना चाहिये, न किसीको चीवर देना

---

[1] देखो चुल्लवग्गके २ (पारिवासिक) स्कधक और ३ (समुच्चय) स्कधक।

चाहिये न किसीसे चीवर लेना चाहिये न किसीको परिष्कार (=उपयोगी सामान) देना चाहिये न किसीसे परिष्कार लेना चाहिये, न किसीका बाल काटना चाहिये न किसीसे बाल कटवाना चाहिये, न किसीकी (देह) घँसनी चाहिये, न किसीसे घँसानी चाहिये, न किसीकी सेवा करनी चाहिये, न किसीसे सेवा करानी चाहिये, न किसीका पीछे चलनेवाला भिक्षु बनना चाहिये, न किसीको पीछे चलनेवाला भिक्षु बनाना चाहिये, न किसीका भिक्षान्न ले आना चाहिये, न किसीसे भिक्षान्न लिवाना चाहिये। उपाध्यायको विना पूछे न गाँवमे जाना चाहिये, न (साधनाके लिये) श्मशानमे जाना चाहिये, न (किसी) दिशाकी ओर चल देना चाहिये। यदि उपाध्याय रोगी हो तो (रोगसे) उठनेकी प्रतीक्षा करते, जीवनभर सेवा करनी चाहिये।

शिष्यका व्रत समाप्त।

(२) उपाध्यायके कर्त्तव्य

उपाध्यायको शिष्यसे अच्छा वर्ताव करना चाहिये। वह बर्ताव यह है—उपाध्यायको शिष्य पर अनुग्रह करना चाहिये, (शिष्यके लिये) उपदेश देना चाहिये । पात्र देना चाहिये । यदि उपाध्यायको चीवर है, शिष्यको नही। चीवर देना चाहिये, या शिष्यको चीवर दिलानेके लिये उत्सुक होना चाहिये—परिष्कार[1] देना चाहिये। । यदि शिष्य[1] रोगी हो, तो समयसे उठकर दातुवन , मुखोदक देना चाहिये। आसन बिछाना चाहिये। यदि खिचळी हो, तो पात्र धोकर देना चाहिये। पानी देकर, पात्र ले विना घिसे धोकर रख देना चाहिये। शिष्यके उठ जानेपर, आसन उठा लेना चाहिये। यदि वह स्थान मैला है, तो झाळू देना चाहिये। यदि शिष्य गाँव मे जाना चाहता है, तो वस्त्र थमाना चाहिये०।०यदि पाखानेकी मटकीमे जल न हो०। सेवा करनी चाहिये।

उस समय शिष्य उपाध्यायके चले जानेपर, विचार-परिवर्तन कर लेनेपर (या) मर जाने पर विना आचार्यके हो, उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे, विना ठीकसे (चीवर) पहने विना ठीकसे ढँके बेसहूरीसे भिक्षाके लिये जाते थे०। भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आचार्य (करने)की।"4

(३) हटाने और न हटाने योग्य शिष्य

१—(क) उस समय शिष्य उपाध्यायोके साथ अच्छी तरह न वर्तते थे इससे जो निर्लोभी, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोची, शिक्षा चाहनेवाले भिक्षु थे वह हैरान होते, धिक्कारते और दु खी होते थे—"क्यो शिष्य उपाध्यायोके साथ ठीकसे नही वर्तते!"

तव उन भिक्षुओने भगवान्‌से इस बातको कहा।

"भिक्षुओ! सचमुच शिष्य उपाध्यायोके साथ ठीकसे नही वर्तते?"

"सचमुच, भगवान्!"

भगवान्‌ने धिक्कारा "भिक्षुओ! उन नालायकोका (यह करना) अनुचित है, अ-योग्य है, साधुओके आचारके विरुद्ध है, अ-भव्य है, अ-करणीय है। भिक्षुओ! कैसे वह नालायक उपाध्यायके साथ अच्छी तरह नही वर्तते? भिक्षुओ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नही है और न प्रसन्नोको अधिक प्रसन्न करनेके लिये, वल्कि अप्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके

---

[1] रोगी होनेपर उपाध्यायको शिष्यकी वह सभी सेवायें करनी होगी, जो शिष्यके कर्त्तव्यमें (पृष्ठ १०१-२) आ चुकी है।

लिये तथा प्रसन्नोमेसे भी किसी किसीको उलटा देनेके लिये है।"

तव भगवान्ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर सबोधित किया—

"भिक्षुओ! शिष्योको उपाध्यायके साथ बेठीक वर्ताव नही करना चाहिये। जो बेठीक बर्ताव करे उसे दु क्क ट (=दु ष्कृ त)का दोष हो।"5

(ख) (तब भी) ठीकसे नही वर्तते थे। (भिक्षुओने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! बेठीक बर्ताव करनेवाले (शिष्यको) हटा देनेकी अनुमति देता हूँ।"6

"और इस प्रकार भिक्षुओ! हटाना चाहिये।—'तुझे हटाता हूँ', 'मत फिर तू यहाँ आना', या 'ले जा अपना पात्र-चीवर', या 'मत तू मेरी सुश्रूषा करना'—इस प्रकार शरीरसे या वचनसे सूचित करनेपर वह शिष्य हटा समझा जाता है। (यदि) न कायासे, न वचनसे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शिष्य हटाया नही समझा जाता।"

२—उस समय शिष्य हटाये जानेपर क्षमा-याचना नही करते थे। भगवान्से इस बातको (भिक्षुओने) कहा। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! क्षमा करानेकी अनुमति देता हूँ।"7

(तो भी) नही क्षमा कराते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! हटाये हुए (शिष्यको) न क्षमा कराना योग्य नही, जो न क्षमा कराये उसे दु क्क ट का दोष हो।"8

३—(क) उस समय क्षमा करानेपर भी उ पा ध्या य क्षमा नही करते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! क्षमा करनेकी अनुमति देता हूँ।"9

(ख) तो भी नही क्षमा करते थे, (जिससे) शिष्य चले जाते थे, या गृहस्थ हो जाते थे, या अन्य मतवालोके पास चले जाते थे। भगवानसे यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! क्षमा माँगनेपर न क्षमा करना उचित नही। जो न क्षमा करे उसको दु क्क ट का दोष हो।"10

४—उस समय उपाध्याय ठीकसे बर्ताव करनेवाले (शिष्य)को हटाते थे और बेठीकसे वर्ताव करनेवालेको नही हटाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

(क) "भिक्षुओ! ठीकसे बर्ताव करनेवालेको नही हटाना चाहिये। जो हटावे उसको दुक्कटका दोष हो। और भिक्षुओ! बेठीकसे वर्ताव करनेवालेको न हटाना योग्य नही, जो न हटावे उसे दु क्क ट का दोष हो।"11

(ख) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम नही रखता, (२) उपाध्यायमे अधिक श्रद्धा नही रखता, (३) अधिक लज्जाशील (=लज्जी) नही होता, (४) अधिक गौरव नही करता और (५) अधिक (ध्यान आदिकी) भावना नही करता। भिक्षुओ! इन पाँच बातोसे युक्त शिष्यको हटाना चाहिये।"12

(ग) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्यको नही हटाना चाहिये—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम रखता है, (२) उपाध्यायमे अधिक श्रद्धा रखता है, (३) अधिक लज्जाशील होता है, (४) अधिक गौरव करता है, और (५) अधिक (ध्यान आदिकी) भावना करता है। भिक्षुओ! इन पाँच बातोसे युक्त शिष्यको नही हटाना चाहिये।"13

(घ) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्य हटाने योग्य है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम

नही रखता, ० (५) अधिक भावना नही करता०। 14

(ङ) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्य हटाने योग्य नही है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम रखता है, ० (५) अधिक भावना करता है०। 15

(च) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्यको न हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है, और हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम नही रखता, ० (५) अधिक भावना नही करता है०।16

(छ) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है और न हटानेपर निर्दोष होता है—(१) उपाध्यायमे अधिक प्रेम रखता है, ० (५) अधिक भावना करता है०।"17

(४) तीन शरणासे प्रव्रज्या

उस समय ब्राह्मण रा ध ने भिक्षुओके पास साधु बनना चाहा। भिक्षुओने (उसे) साधु न बनाना चाहा। वह प्रव्रज्या न पानेसे दुर्बल, रूखा, दुर्वर्ण, पीला हाळ-हाळ-निकला होगया। . । भगवान्ने उस ब्राह्मणको देख भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! इस ब्राह्मणका उपकार किसी को याद है?"

ऐसे कहनेपर आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भगवान्से कहा—"भन्ते! मै इस ब्राह्मणका उपकार स्मरण करता हूँ।"

"सारिपुत्र! इस ब्राह्मणका क्या उपकार तू स्मरण करता है?"

"भन्ते! मुझे रा ज गृ ह मे भिक्षाके लिये घूमते समय, इस ब्राह्मणने कलछीभर भात दिलवाया था। भन्ते मै इस ब्राह्मणका यह उपकार स्मरण करता हूँ।"

"साधु! साधु! सारिपुत्र! सत्पुरुष कृतज्ञ=कृतवेदी (होते है)। तो सारिपुत्र! तू (ही) इस ब्राह्मणको प्रव्रजित कर, उपसम्पादित कर।"

"भन्ते! कैसे इस ब्राह्मणको प्रव्रजित करूँ, (कैसे) उपसम्पादित करूँ?"

तब भगवान्ने इसी सम्बन्धमे=इसी प्रकरणमे धर्मसम्बन्धी कथा कह भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ! मैने जो तीन शरण-गमनसे उपसम्पदाकी अनुमति दी थी, आजसे उसे मन्सूख करता हूँ। (आजसे ती न अ नु श्रा व णो और) चौथी ज्ञ प्ति वाले क र्म के साथ उपसम्पदाकी अनुमति देता हूँ।18

इस तरह उपसम्पदा करनी चाहिये—योग्य समर्थ भिक्षु सघको ज्ञापित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते! सघ मुझे सुने, [1]अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उम्मेदवार (=उपसपदापेक्षी) है। यदि सघ उचित समझे, तो सघ अमुक नामकको, अमुक नामकके उपाध्यायत्वमे उपसम्पन्न करे।—यह ज्ञप्ति है।

ख अ नु श्रा व ण (१) "भन्ते! सघ मुझे सुने, अमुक नामक, अमुक नामके आयुष्मान्का उपसम्पदापेक्षी है। सघ अमुक नामकको अमुक नामकके उपाध्यायत्वमे उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्को अमुक नामककी उपसपदा अमुक नामकके उपाध्यायत्वमे स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

---

[1] यहाँ नाम लेना चाहिये।

(२) दूसरी वार भी इसी वातको बोलता हूँ—"भन्ते! सघ सुने, यह अमुक नामक, अमुक नामक आयुष्मान्‌का उपसम्पदापेक्षी[1] है०। जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

(३) तीसरी वार भी इसी वातको बोलता हूँ—"भन्ते! सघ सुने०।"

ग धा र णा—"सघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।"

(५) उपसम्पदा कर्म

१—उस समय कोई भिक्षु उपसम्पन्न होनेके बाद ही उलटा आचरण करता था। भिक्षुओने उससे यह कहा—"आवुस! मत ऐसा कर, यह युक्त नही है।" उसने उत्तर दिया—"मैंने आयुष्मानो से या च ना (=प्रार्थना) नही की कि मुझे उपसम्पन्न (=भिक्षु) वनाओ। क्यो मुझे विना याचना किये तुमने उपसम्पन्न बनाया?"

भगवान्‌से यह वात कही। (भगवान्‌ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! विना याचना किये उपसम्पन्न नही वनाना चाहिये। जो उपसम्पन्न करे उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ! याचना करनेपर उपसम्पन्न करनेकी अनुमति देता हूँ। 19

२—उ प स म्प दा या च ना—"और भिक्षुओ! इस प्रकार या च ना करनी चाहिये—वह उ प स म्प दा पे क्षी (=भिक्षु होनेकी इच्छावाला) सघके पास जाकर (दाहिने कधेको खोल) एक कधेपर उ त्त रा स घ (=उपरना)को करके भिक्षुओके चरणोमे वदनाकर, उकळूँ वैठ, हाथ जोळकर ऐसा कहे—'भन्ते! सघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ, भन्ते! सघ दया करके मेरा उद्धार करे।' दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी 'भन्ते! सघसे उ प स म्प दा (पाने)की याचना करता हूँ, भन्ते! सघ दया करके मेरा उद्धार करे।'

[1]"(तव भिक्षुओ!) योग्य, समर्थ भिक्षु सघको ज्ञापित करे—

क ज्ञ प्ति—'(१) भन्ते! सघ मेरी सुने—अमुक[2] नामवाले (भिक्षुको) उपाध्याय वना, अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का (शिष्य), अमुक नामवाला यह (पुरुप) उ प स म्प दा चाहता है। यदि सघ उचित समझे तो सघ अमुक नामकको, अमुक नामके उपाध्यायके उपाध्यायत्त्वमे उपसम्पदा करे।—यह ज्ञ प्ति (=सूचना है।)

ख अ नु श्रा व ण—'(१) भन्ते! सघ मेरी सुने—अमुक नामवाला, यह अमुक नामवाले आयुष्मान्‌का उपसम्पदा चाहनेवाला (शिष्य) है। सघ अमुक नामवालेको अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्त्वमे उपसम्पन्न करता है। जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामवालेकी उपसम्पदा, अमुक नामवाले (भिक्षु) के उपाध्यायत्त्वमे स्वीकार है, वह चुप रहे, जिसको स्वीकार न हो, वह बोले।

'(२) "दूसरी वार भी इसी वातको बोलता हूँ—पूज्य सघ मेरी सुने०।

'(३) तीसरी वार भी इसी वातको वोलता हूँ—पूज्य सघ मेरी सुने०।

ग धा र णा—"सघको स्वीकार है, इसीलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।"

(६) भिक्षु-पनके चार निश्रय

उस समय रा ज गृ ह में उत्तम भोजोका सिलसिला चल रहा था। तव एक ब्राह्मणके मनमे ऐसा हुआ—'यह शा क्य - पु त्री य (=वौद्ध) श्र म ण (=साधु), शील और आचारमे आरामसे

---

[1] भिक्षु-पन चाहनेवाला

[2] अमुकके स्थानपर उपसम्दापेक्षीका नाम लिया जाता है, कहीं-कहीं एक काल्पनिक नाम "नाग" भी लिया जाता है।

रहने वाले है, सुदर भोजन करके शान्त शय्याओमे सोते है, क्यो न मै भी शाक्य-पुत्रीय साधुओमे साधु बनूँ।' तब उस ब्राह्मणने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्याके लिये प्रार्थना की। भिक्षुओने उसे प्र व्र ज्या और उ प स प दा दी। उसके प्रव्रजित होनेपर (वह) भोजोका सिलसिला टूट गया। भिक्षुओने (उससे) यह कहा—

"आ आवुस! भिक्षाचारके लिये चले।"

उसने उत्तर दिया—"आवुसो! मै भिक्षाचार करनेके लिये प्रव्रजित नही हुआ हूँ। यदि मुझे दोगे तो खाऊँगा, यदि न दोगे तो लौट जाऊँगा।"

"क्या आवुस! तू उदरके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"हाँ आवुस!"

(तब) जो भिक्षु निर्लोभी, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोचशील और शिक्षा चाहनेवाले थे, वह हैरान हो धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे यह भिक्षु इस प्रकारके सुदर रूपसे व्याख्यात धर्म मे पेटके लिये प्रव्रज्या देते है!' (और) यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने कहा)—

"सचमुच भिक्षु! तू पेटके लिये प्रव्रजित हुआ?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्ने निदा की—"नालायक कैसे तू पेटके लिए ऐसे सुदर रूपसे व्याख्यात धर्ममे प्रव्रजित होगा? नालायक! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

निंदा करके धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ। उपसपदा करते वक्त चार नि श्र यो (=जीविकाके जरियो)-को वतलानेकी—'(१) यह प्रव्रज्या, भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है, इसके (पालनमे) जिदगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—सघ-भोज, (तेरे) उद्देश्यसे बना भोजन, निमत्रण, श ला का भो ज न[1], पाक्षिक (भोज), उपोसथके दिनका (भोज), प्रतिपद्का (भोज)।

'(२) पळे चीथळोके बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है, इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—क्षौ म[2] (वस्त्र), कपासका (वस्त्र), कौ शे य (-रेशमी वस्त्र), कम्बल (-ऊनी वस्त्र), सन (का वस्त्र), भाँगकी (छालका वस्त्र)।

'(३) वृक्षके नीचे निवास करनेके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है, इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—विहार, आ ढ् य यो ग (=अटारी) ०, प्रासाद, हर्म्य, गुहा।

'(४) गोमूत्रकी औपधीके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अधिक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—घी, मक्खन, तेल, मधु, खॉळ। 20

उपाध्याय-व्रत पाँचवा भाणवार समाप्त ॥५॥

---

[1] कुछ परिमित व्यक्तियोके लिये भोज देते वक्त गिनकर उतनेकी सूचना सघमें भेज दी जाती थी और सघ शलाका बॉटकर उन व्यक्तियोका निश्चय करता था।

[2] अलसीकी छालका बना हुआ कपळा।

(७) उपसम्पादकके वर्ष आदिका नियम

उ प से न की क था—उस समय एक ब्राह्मण-कुमार (=माणवक)ने भिक्षुओके पास आकर प्रव्रज्या पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओने उसे तुरत ही (चारो) नि श्र य वतलाये। उसने यह कहा—

"भन्ते ! यदि प्रव्रजित होनेके बाद (इन) निश्रयोको वतलाये होते तो मैं (इन्हे) पसद करता, अब मैं नही प्रव्रजित होऊँगा। यह निश्रय मुझे नापसन्द है, प्रतिकूल है।"

भिक्षुओने यह बात भगवान्‌से कही। (भगवान्‌ने कहा)—

"भिक्षुओ ! तुरत ही निश्रय नही वतला देना चाहिये। जो वतलाये उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपसपदा हो जानेके बाद निश्रयोको वतलाने की। 21

उस समय भिक्षु दो पुरुष(=कोरम्), तीन पुरुप वाले (भिक्षु-)गण से भी उपसपदा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही। (भगवान्‌ने कहा)—"भिक्षुओ ! दससे कम वर्ग (=कोरम्)वाले गणसे उपसपदा न करानी चाहिये। जो कराये उसको दु क्क ट का दोष हो। अनुमति देता हूँ, दस या दससे अधिक पुरुपवाले गण द्वारा उपसपदा कराने की।"22

उस समय एक वर्प दो वर्पके (भिक्षु वने) भिक्षु भी शिष्योकी उपसपदा करते थे। आयुष्मान् उ प से न व ग न्त पु त्त ने भी (भिक्षु वननेके) एक वर्प वाद ही शिष्यको उपसपादित किया। (दूसरे) वर्पावासको समाप्त करलेनेपर वह दो वर्पके (भिक्षु) हो एक वर्पके (भिक्षु वने अपने) शिष्यको लेकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। आगन्तुक भिक्षुओके साथ कुशल-प्रश्न करना बुद्ध भगवानोका स्वभाव है। तव भगवान्‌ने आयुष्मान् उ प से न व ग न्त पु त्त से यह कहा—

"भिक्षु ! ठीक तो रहा, अच्छा तो रहा, रास्तेमे तकलीफ तो नही पाये ?"

"ठीक रहा भगवान् ! अच्छा रहा भगवान् ! क्लेशके विना हम रास्ते आये।"

जानते हुए भी तथागत (किसी वातको) पूछते है। जानते हुए भी नही पूछते। (पूछनेका) काल जानकर पूछते है, (न पूछनेका) काल जानकर नही पूछते। तथागत सार्थक (वात)को पूछते है, निरर्थकको नही पूछते। निरर्थक होनेपर तथागतोकी मर्यादा-भग (=सेतु-घात) होती है। बुद्ध भगवान् दो प्रकारसे भिक्षुओको पूछते है—(१) शिष्योको धर्मोपदेश करनेके लिये और (२) (शिष्योके लिये) भिक्षु-नियम (=शिक्षा-पद) वनानेके लिये।

तव भगवान्‌ने आयुष्मान् उ प से न व ग न्त पु त्र से यह कहा—

"भिक्षु ! तू कितने वर्पका (भिक्षु) है ?"

"मै दो वर्षका हूँ, भगवान् !"

"और यह भिक्षु कितने वर्पका (भिक्षु) है ?'

"एक वर्षका है, भगवान् !"

"यह भिक्षु कौन है ?"

"यह मेरा शिष्य है, भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने—"नालायक ! यह अनुचित है, अयोग्य है, साधुओके आचारके विरुद्ध है, अभव्य है, अकरणीय है। कैसे तू नालायक ! (स्वय) दूसरो द्वारा उपदेश और अनुशासन किये जाने योग्य होते दूसरेका उपदेश और अनुशासन करने वाला वनेगा ? नालायक ! तू वळी जल्दी जमातकी गठरी वाला और वटोरू वन गया। नालायक ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।" निंदा करके धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! दस वर्पसे कमवाले (भिक्षु)को उपसपदा न करानी चाहिये। जो उपसपदा कराये

उसे दुक्कट का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दस या दससे अधिक वर्षवाले (भिक्षु) द्वारा उपसपदा करनेकी।"23

उस समय भिक्षु अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते थे, और शिष्य पडित (=होशियार) देखे जाते थे तथा उपाध्याय अबूझ, उपाध्याय विद्या-रहित (=अल्प-श्रुत) देखे जाते थे और शिष्य विद्वान् (=वहुश्रुत), उपाध्याय प्रज्ञारहित देखे जाते थे और शिष्य प्रज्ञावान्। (तव) एक पहले अन्य साधु-सप्रदायमे रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-सबधी वात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सप्रदाय (=तीर्थायतन)मे चला गया। तब जो वह भिक्षु निर्लोभी, सतुप्ट ० दुखी होते थे—कैसे अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमे चले जाते है !!" तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने कहा)—

"सचमुच भिक्षुओ ! अचतुर और अजान होते हुए भी, 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच, (दूसरेकी) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमे चले जाते है ?"

"सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने निदा—

"भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक अचतुर और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा कराते है, ० उसी सप्रदायमे चले जाते है ? भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नो ० ।"

निदा करके भगवान्ने धर्म-सबधी कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अचतुर, अजान (पुरुष दूसरेकी) उपसपदा न करे। जो उपसपदा करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर और जानकार दस या दससे अधिक वर्षवाले भिक्षुको उपसपदा करने की।"24

(८) अन्तेवासीका कर्तव्य

उस समय शिष्य उपाध्यायके (भिक्षु-आश्रमसे) चले जानेपर, विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर, या दूसरे पक्षमे चले जानेपर भी विना आचार्यके ही उपदेश=अनुशासन न किये जानेसे विना ठीकसे (चीवर) पहने, बिना ठीकसे ढँके वेशहूरीके साथ भिक्षाके लिये चले जाते थे, खाते हुए मनुप्योके भोजनके ऊपर, खाद्यके ऊपर पेयके ऊपर, जूठे पात्रको बढा देते थे। स्वय दाल भी भात भी माँगते थे, खाते थे। भोजनपर वैठे हल्ला मचाते रहते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—क्यो शाक्यपुत्रीय श्रमण विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते है, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमे ? भिक्षुओने लोगोका हैरान होना, धिक्कारना और दुखी होना सुना। तव जो भिक्षु निर्लोभी, सतुप्ट, लज्जाशील, सकोचशील, सीखकी चाह वाले थे, वह हैरान हुए, धिक्कारने लगे, दुखी हुए ०। . तव उन भिक्षुओने भगवान्से इस वातको कहा। । भगवान्ने धिक्कारा

"भिक्षुओ ! उन नालायकोका यह करना अनुचित है ० अकरणीय है ० भिक्षुओ ! कैसे वह नालायक विना ठीकसे पहने ० हल्ला मचाते रहते है, जैसे कि ब्राह्मण, ब्राह्मण-भोजनमे ? भिक्षुओ ! (उनका) यह (आचरण) अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये नही है ० ।"

तव भगवान्ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे धिक्कारकर सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! मै आचार्य (करने)की अनुमति देता हूँ। 25

आचार्यको शिष्यमे पुत्र-बुद्धि रखनी चाहिये, और शिष्यको आचार्यमे पिता-बुद्धि।

आचार्य ग्रहण करनेका यह प्रकार है—उपरनेको एक कधेपर करवा चरणकी बदना

करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये। आयुष्मान्के आश्रयसे मैं रहूँगा, भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये, ० भन्ते ! मेरे आचार्य बनिये ०।' यदि (आचार्य) वचनसे 'ठीक है,' 'अच्छा है', 'युक्त है', 'उचित है', या 'सुन्दर रीतिसे करो', कहे, या कायासे सूचित करे, या काय-वचनसे सूचित करे तो वह आचार्यके तौरपर ग्रहण किया गया। यदि न कायासे सूचित करता है, न वचनसे सूचित करता है, न काय-वचनसे सूचित करता है, तो उसका आचार्यके तौरपर ग्रहण नही होगा।

"भिक्षुओ ! शिष्यको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये ०[1]।

(९) आचार्यका कर्तव्य

आचार्यको शिष्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये ०[1]।

छठाँ भाणवार (समाप्त) ॥ ६॥

(१०) निश्रय टूटनेके कारण

उस समय शिष्य आचार्यके साथ अच्छी तरह न वर्तते थे इससे जो अल्पेच्छ, सतुष्ट, लज्जा-शील, सकोची, शिक्षा चाहने वाले ०।[1] पाँच बातोसे युक्त शिष्यको हटानेपर उपाध्याय दोषी होता है, और न हटानेपर निर्दोष होता है ०।

उस समय भिक्षु अचतुर, और अजान होते हुए भी 'हम दस वर्षके है' ऐसा सोच (दूसरेकी) उपसपदा करते थे और शिष्य पडित देखे जाते थे और आचार्य अबूझ ०।[1]

उस समय शिष्य आचार्य और उपाध्यायके चले जानेपर, विचार-परिवर्तन करलेनेपर या मर जानेपर या दूसरे पक्षमे चले जानेपर भी नि श्र य (=शिष्यता)के खतम होनेकी बातको नही जानते थे। (भिक्षुओने) यह बात भगवान्से कही। भगवान्ने कहा।—

१—"भिक्षुओ ! यह पाँच बाते है जिनसे उपाध्यायसे नि श्र य टूट जाता है—(१) उपाध्याय (भिक्षु आश्रमसे) चला गया हो, (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो, (३) मर गया हो (४) दूसरे पक्षमे चला गया हो, (५) स्वीकृति दे गया हो। भिक्षुओ ! यह पाँच बाते है जिनसे उपाध्यायसे निश्रय टूट जाता है। 26

२—"भिक्षुओ ! यह छ बाते है जिनसे आचार्यसे निश्रय टूट जाता है—(१) आचार्य आश्रमसे चला गया हो, (२) विचार-परिवर्तन करलिये हो, (३) मर गया हो, (४)) दूसरे पक्षमे चला गया हो, (५) स्वीकृति दे गया हो, (६) उपाध्यायने समाधान कर दिया हो। भिक्षुओ ! यह छ ०। 27

§३—उपसम्पदा और प्रव्रज्या

(१) उपसम्पदा देने और न देने योग्य गुरु

१—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसपदा करानी चाहिये, न निश्रय देना चाहिये, न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) सपूर्ण शील (=सदाचार)—पुजसे युक्त होता है, (२) न सपूर्ण समाधि-पुजसे युक्त होता है, (३) न सपूर्ण प्रज्ञा-पुजसे सयुक्त होता है, (४) न सपूर्ण विमुक्ति (=राग द्वेषादिका परित्याग)-पुजसे युक्त होता है, (५) न सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे ०।28

---

[1] देखो पृष्ठ १०३-४।

२—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) सपूर्ण शील (=सदाचार)-पुजसे युक्त होता है ०, (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार-पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे ०। 29

३—"और भी भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) न उपसपदा करनी चाहिये, न निश्रय देना चाहिये, न श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) न (वह) स्वय सपूर्ण शीलपुजसे युक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण शील-पुजकी ओर प्रेरित करनेवाला होता है, (२) न स्वय सपूर्ण समाधि-पुजसे सयुक्त होता है, और न दूसरेको सपूर्ण समाधि-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (३) न स्वय सपूर्ण प्रज्ञापुजसे सयुक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण प्रज्ञा-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (४) न स्वय सपूर्ण वि मु क्ति-पुजसे युक्त होता है, और न दूसरेको सपूर्ण विमुक्ति-पुजकी ओर प्रेरित करता है, (५) न स्वय सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे युक्त होता है, न दूसरेको सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजकी ओर प्रेरित करता है। 30

४—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको (दूसरेकी) उपसपदा करनी चाहिये, निश्रय देना चाहिये, श्रामणेर बनाकर रखना चाहिये—(१) (वह) सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है ०, (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे ०। 31

५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) अश्रद्धालु होता है, (२) लज्जा-रहित होता है, (३) सकोच-रहित होता है, (४) आलसी होता है, (५) भूल जानेवाला होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त। 32

६—"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) श्रद्धालु होता है, (२) लज्जालु होता है, (३) सकोचशील होता है, (४) उद्योगी होता है, (५) याद रखने वाला होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 33

७—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन होता है, (२) आचारसे हीन होता है, (३) बुरी धारणावाला होता है, (४) विद्या-हीन होता है, (५) प्रज्ञाहीन होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 34

८—"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुकी उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) शीलसे हीन नही होता, (२) आचारसे हीन नही होता, (३) बुरी धारणावाला नही होता, (४) विद्यावान् होता है, (५) प्रज्ञावान् होता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 35

९—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमे समर्थ नही होता, (२) (मनके) उचाटको हटाने या हटवानेमे समर्थ (नही) होता, (३) (मनके) उत्पन्न खटकेको दूर करने करानेमे (नही) समर्थ होता, (४) दोष (=अपराध)को नही जानता, (५) दोषसे शुद्ध होनेको नही जानता। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 36

१०—"भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) बीमार शिष्य या अन्तेवासीकी सेवा करने या करानेमे समर्थ होता है ० (५) दोषसे शुद्ध होना जानता है। भिक्षुओ ! इन पाँच बातोसे युक्त ०। 37

११—"और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—नही समर्थ होता (१) शिष्य या अन्तेवासीको आचार विषयक सीख सिखलानेमे, (२) शुद्ध ब्रह्मचर्यकी शिक्षामे ले जानेमे, (३) ध र्म की ओर (=अ भि ध म्मे) ले जानेमे, (४) वि न य की ओर (=

अ भि वि न यें) ले जानेमे, (५) उत्पन्न धारणाओके विपयमे धर्मानुसार विवेचन करनेमे। भिक्षुओ! इन पाँच वातोसे युक्त ०। 38

१२—"भिक्षुओ! पाॅच वातोसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—समर्थ होता है (१) शिप्य या अन्तेवासीको आचार विपयक सीख सिखलानेमे ० (५) उत्पन्न धारणाओके विपयमे धर्मानुसार विवेचन करनेमे। भिक्षुओ! इन पाॅच वातोसे युवत ०। 39

१३—"और भी भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) न दोपको जानता है, (२) न निर्दोपताको जानता है, (३) न छोटे दोपको जानता है, (४) न बळे दोप (=आपत्ति)को जानता है, (५) और (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोके प्रा ति मो क्षो को विस्तारके साथ नही हृद्गत किये रहता, सू क्त (=बुद्धोपदेश) और प्र मा ण से (प्रातिमोक्षको) न सुविभाजित किये रहता, न सुप्रवर्तित, न सुनिर्णीत किये रहता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोसे युक्त ०। 40

१४—"भिक्षुओ! पाॅच वातोसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) दोपको जानता है, ० (५) प्रा ति मो क्षो को विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है ०। भिक्षुओ! इन पाँच वातोसे युक्त ०।

१५—"और भी भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) न दोषको जानता है, (२) न निर्दोपताको जानता है, (३) न छोटे दोपको जानता है, (४) न बळे दोपको जानता है, (५) दस वर्पसे कमका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोसे युक्त ०। 41

१६—"भिक्षुओ! पाॅच वातोसे युवत भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) दोपको जानता है ० (५) दस वर्पसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाॅच वातोसे युक्त ०।" 42

पचकोसे उपसपदा करणीय समाप्त।

१—"भिक्षुओ! इन छ वातोसे युक्त भिक्षुको न उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) न सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है, (२) न सपूर्ण समाधि-पुजसे ०, (३) न सपूर्ण प्रज्ञा-पुजसे ०, (४) न सपूर्ण विमुक्ति-पुजसे ० (५) न सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कारके पुजसे ०, (६) न दस वर्पसे अधिकका भिक्षु होता है। भिक्षुओ! इन पाँच वातोसे सयुवत ०। 43

२—"भिक्षुओ! इन छ वातोसे युक्त भिक्षुको उपसपदा करनी चाहिये ०—(१) सपूर्ण शील-पुजसे होता है ० (६) दस वर्पसे अधिकका (भिक्षु) होता है। भिक्षुओ! इन छ वातो से युक्त ०। 44

३—०[1]। 45–58

छक्कोसे उपसपदा करणीय समाप्त।

(२) अन्य संप्रदायी व्यक्तियोंके साथ

(क) लौटे व्यक्ति की उपसम्पदा

उस समय जो वह एक (पुरुप)[2] दूमरे साधु-सप्रदाय (=अन्यतीर्थ)मे (शिष्य) रहा, उपाध्यायके धर्म-सबधी बात करनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सप्रदायमे चला गया, उसने फिर आकर, भिक्षुओके पास उपसपदा पानेकी प्रार्थना की। भिक्षुओने भगवान्से इस वातको कहा। (भगवान्ने कहा)—

---

[1] तीनसे सोलहवें तकके नियम पिछले पचकके प्रकरणके तीसरेसे सोलहवेंकी तरह पाँच पाँच बातें, और छठवी बातें, दस वर्षसे कम या अधिकका भिक्षु होना समझो।

[2] देखो पृष्ठ १०९

"भिक्षुओ ! जो वह पहले दूसरे साधु-सप्रदायमे रहा (शिष्य) उपाध्यायके धर्म-सबधी बात कहनेपर उपाध्यायके साथ विवाद करके उसी सप्रदायमे चला गया फिर आनेपर उसकी उपसपदा न करनी चाहिये, और भिक्षुओ ! जो कोई ऐसा पहले दूसरे साधु-सप्रदायमे रहा (पुरुष) इस धर्मंमे प्रव्रज्या या उपसपदा पानेकी प्रार्थना करता है, उसे चार महीनेका प रि वा स देना चाहिये। 59

"भिक्षुओ ! (परिवास) इस प्रकार देना चाहिये—पहिले दाढी, मूँछ मुळवाकर, काषाय वस्त्र पहना एक कधेपर उत्तरासघको करवा भिक्षुओके चरणोकी वदना करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा 'ऐसा कहो' कहना चाहिये—बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ'। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी—'बुद्धकी शरण जाताहूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ।'

"भिक्षुओ ! उस पहले दूसरे सप्रदायमे रहे (पुरुष)को सघके पास जाकर एक कधेपर उपरना रख भिक्षुओके चरणोकी वदनाकर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसे याचना करानी चाहिये—

या च ना—'भन्ते ! मै (इस नामवाला) पहले दूसरे साधु-सप्रदायमे रहा (अब) इस धर्मंमे उपसपदा पाना चाहता हूँ, सो मै भन्ते ! सघके पास चार महीनोका प रि वा स चाहता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—'भन्ते ! मै (इस नामवाला) पहले अन्य साधु-सप्रदायमे रहा (अब) इस धर्मंमे उपसपदा पाना चाहता हूँ, सो मै भन्ते ! सघके पास चार महीनोका परिवास चाहता हूँ।'

"(तब) योग्य, समर्थ भिक्षु सघको ज्ञापित करे—

(क) ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने ! यह अमुक नामवाला, पहले अन्य साधु-सप्रदाय मे रहा (अब) इस धर्मंमे उपसपदा पाना चाहता है, और सघसे चार मासका परिवास चाहता है०।

ख अ नु श्रा व ण—(१) ० सघ इस नामवाले पहिले दूसरे साधु-सप्रदायमे रहे (इस पुरुष) को चार मासका परिवास देता है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले पहले अन्य साधु-सप्रदायमे रहे, (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दिया जाना स्वीकार है वह चुप रहे जिसको स्वीकार न हो वह बोले। (२) (दूसरी बार भी०)। (३) (तीसरी बार भी०)।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाले पहिले अन्य साधु-सप्रदायमे रहे (इस पुरुष)को चार मासका परिवास दे दिया, सघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा समझता हूँ।'

(ख) ठीक न होने लायक

"भिक्षुओ ! इस प्रकारसे पहिले अन्य साधु-सप्रदायमे रहा (पुरुष) साध्य होता है, और इस प्रकार असाध्य।"

क कैसे भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधुसप्रदायमे रहा (पुरुष) अनाराधक होता है ?—

(१) "भिक्षुओ ! जो पहिले-दूसरे-साधु-सप्रदायमे रहा (पुरुष) अतिकालमे गाँवमे जाता है, और बहुत दिन बिताकर निकलता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! पहिले-दूसरे-साधु-सप्रदायमे रहा (=अन्य-तीर्थिक-पूर्व) अनाराधक होता है।

(२) "और फिर भिक्षुओ ! वेश्याकी-आँख-पळेवाला होता है, विधवाकी-आँखपळेवाला होता है, बळी-उम्रकी-कुमारिकाकी आँख-पळेवाला होता है, नपुसककी-आँख-पळेवाला होता है, भिक्षुणीकी-आँख-पळेवाला होता है। इस प्रकार भी भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पूर्व, अनाराधक(=असाध्य)।

(३) "और फिर भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व, गुरु-भाइयोके छोटे-बळे जो काम है, उनके करनेमे दक्ष, आलसरहित नहीं होता। उनके विषयमे उपाय और सोच नहीं करता, न करनेमे समर्थ, न ठीकसे विधान करनेमे समर्थ होता है। ऐसे भी भिक्षुओ०।

(४) "और फिर भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व, शील, चित्त और प्रज्ञाके सबधमें पाठ करने तथा पूछनेमे तीव्र इच्छावाला नही होता। ऐसे भी भिक्षुओ ! ०।

(५) "और फिर भिक्षुओ ! अन्य-तीर्थिक-पूर्व जिस सप्रदायसे (पहिले) सलग्न होता है उसके शास्ता (=उपदेष्टा), उसके वा द, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि, उसके दानके सबधमे अप्रशसा करनेपर कुपित होता है, असतुष्ट होता है, नाराज होता है, और बु द्ध या ध र्म या स घ की अप्रशसा करते वक्त सतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है। अथवा जिस सप्रदायसे (पहिले) सलग्न था उसके शास्ता उसके वाद, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि, उसके दानके सबधमे अप्रशसा करनेपर सतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है।

भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व के असाध्य होनेमे यह सघसे सवद्ध (वात) है। इस प्रकार भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व अनाराधक होता है। "भिक्षुओ ! इस प्रकारके अनाराधक (=असाध्य) अ न्य ती र्थि क पू र्व के आनेपर उपसपदा न करनी चाहिये। 60

(ग) ठीक होने लायक

"कैसे भिक्षुओ ! अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक (=साध्य) होता है?—

(१) "भिक्षुओ ! जो अ न्य ती र्थि क पू र्व अतिकालमे ग्राममे प्रवेश नही करता, न वहुत दिन विताकर निकलता है, (वह पहिले-दूसरे-साधु-सप्रदायमे रहा) आ रा ध क होता है।

(२) "और फिर भिक्षुओ ! वेश्याकी-आँख-न-पळेवाला, विधवाकी-आँख-न-पळेवाला, वळी-उम्रकी-कुमारिकाकी-आँख-न-पळेवाला, नपुसककी-आँख-न-पळेवाला, भिक्षुणीकी-आँख-न-पळेवाला अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक होता है।

(३) "और फिर भिक्षुओ ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व, गुरु-भाइयोके छोटे-वळे जो काम है, उनके करनेमे दक्ष, आलस-रहित होता है, उनके विपयमे उपाय और सोच करता है, करनेमे तथा ठीकसे विधान करनेमे समर्थ होता है, (वह) आ रा ध क होता है।

(४) "और फिर भिक्षुओ ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व शील, चित्त और प्रज्ञाके सबधमे पाठ करने तथा पूछनेमे तीव्र इच्छावाला होता है, (वह) आ रा ध क होता है।

(५) "और फिर भिक्षुओ ! (जो) अ न्य ती र्थि क पू र्व जिस सप्रदायसे (पहिले) सलग्न था, उसके शास्ता, उसके वाद, उसकी स्वीकृति, उसकी रुचि उसके दानके सवधमे अप्रशसा करनेपर सतुष्ट होता है, प्रसन्न होता है, हृष्ट होता है, और बु द्ध या ध र्म या स घ की अप्रशसा करते वक्त कुपित होता है, असतुष्ट होता है, नाराज होता है। अथवा जिस सप्रदायसे (पहिले) सलग्न था उसके शास्ता०की प्रशसा करने पर कुपित० होता है, और बु द्ध, ध र्म, या स घ की प्रशसा करनेपर सतुष्ट० होता है, भिक्षुओ ! (उस) अ न्य ती र्थि क पू र्व के साध्य होनेमे यह सघसे सवद्ध (वात) है। इस प्रकार भिक्षुओ ! (वह) अ न्य ती र्थि क पू र्व आराधक होता है। "भिक्षुओ ! इस प्रकारके आराधक अ न्य ती र्थि क पू र्व के आनेपर उसे उपसपदा देनी चाहिये। 61

(३) वाणप्रस्थियोंके लिये विशेष ख्याल

"यदि भिक्षुओ ! अन्यतीर्थिकपूर्व नगा आवे, तो उपाध्यायका चीवर उसे ओढाना चाहिये। यदि बिना कटे केशोवाला आए, तो मुडन-कर्मके लिये सघसे पूछना चाहिये। भिक्षुओ ! जो वह अग्नि-होत्री, जटाधारी (=जटिलक=वाणप्रस्थी) हो, तो आतेही उनकी उपसपदा करनी चाहिये, उन्हे परिवास न देना चाहिये। सो क्यो? भिक्षुओ ! वह कर्मवादी (=कर्मके फलको माननेवाले), और क्रिया-वादी होते है। 62

"भिक्षुओ ! यदि शा क्य-जा ति का अ न्य ती र्थि क पू र्व आवे तो आते ही उसकी उपसपदा

करनी चाहिये, उसे परिवास न देना चाहिये। भिक्षुओ! यह मैं (अपने) जातिवालोको परपरा तकके लिये उपहार देता हूँ।" 63

सप्तम भाणवार समाप्त ॥७॥

(४) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय म ग ध मे, कुष्ठ, फोळा, चर्म-रोग, सूजन और मृगी—यह पाँच बीमारियाँ उत्पन्न हुई थी। पाँचो बीमारियोसे पीळितहो लोग जी व क कौ मा र भृ त्य के पास आकर ऐसा कहते थे—"अच्छा हो आचार्य! हमारी चिकित्सा करो।"

"आर्यो! मुझे बहुत काम है, बहुत करणीय है। मगधराज सेनिय बि म्बि सा र की सेवामे जाना पळता है। रनिवास और बु द्ध प्र मु ख[1] भिक्षु-सघकी भी (सेवा करनी होती है)। मै (आप लोगोकी) चिकित्सा करनेमे असमर्थ हूँ।"

तब उन मनुष्योके मनमे यह हुआ—यह शा क्य पु त्री य श्र म ण (=बौद्ध भिक्षु) आराम-पसन्द (=सुखशील) और सु ख स मा चा र (=आरामवाले काम करनेवाले) है। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासो और शय्याओमे सोते है। क्यो न हम भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोमे (जाकर) भिक्षु बन जायँ। तब भिक्षु भी सेवा करेगे और जी व क कौ मा र भृ त्य भी चिकित्सा करेगा।

तब उन मनुष्योने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्या (=सन्यास) माँगी। भिक्षुओने उन्हे प्रव्रज्या दी, उपसपदा दी। तब भिक्षु भी उनकी सेवा करते थे और जी व क कौ मा र भृ त्य भी उनकी चिकित्सा करता था।

उस समय बहुतसे रोगी भिक्षुओकी सेवा करते हुए बहुत याचना, माँगना किया करते थे—'रोगीके लिये पथ्य दीजिये, रोगीके सेवक के लिये भोजन दीजिये, रोगीके लिये ओषध दीजिये।' जी व क कौ मा र भृ त्य भी बहुतसे रोगी भिक्षुओकी चिकित्सामे लगे रहनेसे किसी राज-कार्यको छोळ बैठा। कोई पुरुष पाँच रोगोसे पीळित हो जीवक कौमारभृत्यके पास आकर ऐसा बोला—"अच्छा हो आचार्य! मेरी चिकित्सा करे।

"आर्य! मेरे बहुतसे काम है, बहुत करणीय है। मगधराज सेनिय बि म्बि सा र की सेवामें जाना पळता है। रनिवास और बु द्ध प्र मु ख[1] भिक्षु-सघकी भी (सेवा करनी होती है)। मै (आपकी) सेवा करनेमे असमर्थ हूँ।"

"आचार्य! मेरा सारा धन तुम्हारा होगा और मै तुम्हारा दास हूँगा। अच्छा हो आचार्य मेरी चिकित्सा करे।"

"आर्य मेरे बहुतसे काम है०।"

तब उस मनुष्यके (मनमे) ऐसा हुआ—यह शा क्य पु त्री य श्र म ण आराम-पसन्द (=सुख-शील) और सु ख-स मा चा र (=आरामवाले काम करनेवाले) है। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासो ओर शय्याओमे सोते है। क्यो न मै भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोमे (जाकर) भिक्षु बन जाऊँ। तब भिक्षु भी सेवा करेगे और जीवक कौमारभृत्य भी चिकित्सा करेगा और नीरोग होनेपर मै भिक्षु-आश्रम छोळ चला जाऊँगा।"

तब उस मनुष्यने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्या (=सन्यास) माँगी। भिक्षुओने उसे प्रव्रज्या दी, उपसम्पदा दी। तब भिक्षु भी उसकी सेवा करते थे और जीवक कौमारभृत्य भी उसकी चिकित्सा करते थे।

---

[1] जिसमें बुद्ध प्रमुख है।

नीरोग होनेपर वह भिक्षुपन छोळ चला गया। जी व क कौमारभृत्यने भिक्षु-आश्रम छोळकर चले गये उस आदमीको देखा। देखकर उस पुरुषसे पूछा—"क्यो आर्य ! तुम तो भिक्षु बने थे ?"

"हाँ आचार्य !"

"तो आर्य ! तुमने क्यो ऐसा किया ?"

तब उस पुरुषने जीवक कौमारभृत्यसे सब बात बतला दी। (उसे सुनकर) जीवक कौमारभृत्य हैरान होता, धिक्कारता और दुखी होता था—कैसे भदन्त (लोग) पाँच रोगोसे पीळित (पुरुष को) प्रव्रज्या देते है ! तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्के पास गया। जाकर भगवान्की बन्दनाकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्से यह कहा—"अच्छा हो भन्ते ! आर्य (=भिक्षु) लोग पाँच रोगोसे पीळितको प्रव्रज्या न दे।"

तब भगवान्ने जी व क कौमारभृत्यको धार्मिक कथा कह समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित हो आसनसे उठकर भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कहकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (कुष्ठ आदि) पाँच रोगोसे पीळितको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दु क्क ट का दोप हो।"64

२—उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र के सीमान्तमे विद्रोह हो गया था। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने (अपने) सेना-नायक महामात्योको आज्ञा दी—"जाओ रे ! सीमान्तको ठीक करो।"

"अच्छा देव !"—(कह) सेना-नायक महामात्योने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया।

तब अच्छे अच्छे योधाओके (मनमे) ऐसा हुआ—'हम युद्धको पसन्द करके, जाकर पाप करेगे और बहुत अ-पुण्य पैदा करेगे। क्या उपाय है जिससे कि हम पापसे बचे, अ-पुण्यको न पैदा करे ?' तब उन योधाओके (मनमें) ऐसा हुआ—'यह शा क्य पु त्री य श्र म ण धर्मचारी उत्तमाचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान् धर्मात्मा है। यदि हम शा क्य पु त्री य श्र म णो के पास (जाकर) प्रव्रजित हो जाये तो हम पापसे बच जायँगे, अ-पुण्यको पैदा न करेगे।'

तब उन योधाओने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी, और भिक्षुओने उन्हे प्रव्रज्या और उपसपदा दी। सेना-नायक महामात्योने उन राजसैनिकोसे पूछा—

"क्यो रे ! इस इस नामवाले योधा नही दिखाई देते ?"

"स्वामी ! इस इस नामवाले योधा भिक्षुओके पास प्रव्रजित हो गये।"

तब वह सेना-नायक महामात्य हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे शा क्य पु त्री य श्र म ण राजसैनिकोको प्रव्रज्या देते है !' तब सेना-नायक महामात्योने यह बात मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे कही। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने व्या व हा रि क म हा मा त्यो (=न्यायाधीशो)से पूछा—

"क्यो जी ! जो राज-सैनिकको प्रव्रज्या दे उसको क्या होना चाहिये ?"

"देव ! उस (=उपाध्याय) का सिर काटना चाहिये, अ नु शा स क (=उपदेश करने वाले)की जीभ निकालनी चाहिये, और (=सन्यास देनेवाले) ग णकी पसली तोळ देनी चाहिये।"

तब मगधराज सेनिय बि म्बि सा र, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! (बुद्ध धर्मके प्रति) श्रद्धा-भक्ति न रखनेवाले राजा भी है। वह थोळी बातके लिये

भी भिक्षुओको पीळा दे सकते हैं। अच्छा हो भन्ते ! आर्य (=भिक्षु) लोग राजसैनिकको प्रव्रज्या न दे।"

तब भगवान्ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह सप्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्की धार्मिक कथासे सप्रहर्षित हो, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! राजसैनिकोको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 65

३—उस समय अ गु लि मा ल डाकू (आकर) भिक्षु बना था। लोग (उसे) देखकर उद्विग्न होते, त्रास खाते और भागते, दूसरी ओर चले जाते, दूसरी ओर मुँह कर लेते और दरवाजा बन्द कर लेते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण ध्व ज ब न्ध (=ध्वजा उळाकर डाका डालनेवाले) डाकूको प्रव्रज्या देगे !"

भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! ध्वजबन्ध डाकूको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोप हो।" 66

४—उस समय मगधराज सेनिय बि म्बि सा र ने आज्ञा कर दी थी—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास जाकर प्रव्रजित होगे उनको (दड आदि) कुछ नही किया जा सकता। (भगवान्का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दु खके अच्छी प्रकार अन्त करनेके लिये (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करे।'

उस समय कोई पुरुष चोरी करके जेल (=कारा)मे पळा था। वह जेलको तोळ भाग, कर भिक्षुओके पास प्रव्रजित हो गया। लोग (उसे) देखकर ऐसा कहते थे—'यह वह जेल तोळनेवाला चोर है। अहो ! इसे ले चले।' कोई कोई ऐसा कहते थे—'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—'जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास जाकर प्रव्रजित होगे उनको (दड आदि) कुछ नही किया जा सकता। (भगवान्का) धर्म सुन्दर प्रकारसे कहा गया है, (लोग) दु खके अच्छीप्रकार अन्त करनेके लिए (जाकर) ब्रह्मचर्य पालन करे।' (इससे) लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अभय चाहनेवाले हैं। इनका कुछ नही किया जा सकता। कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जेल तोळनेवाले चोरको प्रव्रज्या देगे !'

भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! जेल तोळनेवाले चोरको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये। जो दे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 67

५—उस समय कोई पुरुष चोरी करके भागकर भिक्षु बन गया था। वह राजाके अन्त पुर (=कचहरी)मे लि खि त था—'(यह) जहाँ देखा जाय, वही मारा जाय।' लोग उसे देखकर ऐसा कहते थे—'यह वही लि खि त क चोर है। अहो इसे मार दे।' कोई कोई ऐसा कहते थे 'आर्यो ! मत ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे दी है—जो शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास०।' (भगवान् ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! लि खि त क चोरको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये०।"68

६—उस समय कोळा मारनेका दड पाया हुआ एक पुरुष भिक्षुओके पास प्रव्रजित हुआ था। लोग हैरान होते०। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ ! कोळा मारनेका दड पाये हुएको नही प्रव्रजित करना चाहिये०।"69

७—उस समय एक पुरुष (राज-)दडसे लक्षणाहत (=आगमे लाल किये लोहे आदिसे दागा)

हो भिक्षुओमे आकर प्रव्रजित हुआ था। ०। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! (राज-)दडसे लक्षणाहतको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 70

८—उस समय एक ऋणी पुरुष भागकर भिक्षुओके पास प्रव्रजित हुआ था। धनियो (=ऋण देनेवालो)ने देखकर यह कहा—'यह हमारा ऋणी है। अहो! इसको ले चले।' दूसरोने ऐसा कहा—'मत आर्यो! ऐसा कहो। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आज्ञा दे रखी है०।' (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! ऋणीको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 71

९—उस समय एक दास (=गुलाम) भागकर भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ था। मालिकोने देखकर ऐसा कहा—'यह वह हमारा दास है। अहो! इसे ले चले०। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! दासको नही प्रव्रज्या देनी चाहिये०।" 72

(५) मुंडनके लिये संघको सम्मति

उस समय एक स्वर्णकार (=कम्मार)का पुत्र माता-पिताके साथ झगळाकर आरामम जा भिक्षुओके साथ प्रव्रजित हो गया। तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताने उसे खोजते हुए आराममे जा भिक्षुओसे पूछा—'क्या भन्ते! इस प्रकारके लळकेको देखा है?' न जाननेके कारण भिक्षुओने कहा—'हम नही जानते।' न देखनेके कारण कहा—'हमने नही देखा।' तब उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिता खोज करके उसे भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ देख हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण निर्लज्ज, दुशील, झूठ बोलनेवाले है जिन्होने जानते हुए कहा, हम नही जानते, देखते हुए कहा, हमने नही देखा। यह लळका तो यहाँ भिक्षुओके पास प्रव्रजित हुआ है।' भिक्षुओने उस स्वर्णकार-पुत्रके माता-पिताके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन्होने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मुडन-कर्म करनेके लिये सघकी अनुमति लेनेकी आज्ञा देता हूँ।" 73

(६) बीस वर्षसे कमकी उपसम्पदा नही

उस समय रा ज गृ ह मे स प्त द श व र्गी य (=जिस समुदायमे सत्रह आदमी हो) लडके एक दूसरेके मित्र थे। उ पा लि लळका उनका मुखिया था। तब उपालिके माता-पिताके (मनमे) ऐसा हुआ—'किस उपायसे हमारे मरनेके बाद उ पा लि सुखसे रह सकेगा, दुख नही पायेगा?' तब उ पा लि के माता-पिताके (मनमे) ऐसा हुआ—'यदि उ पा लि लेखा सीखे तो वह हमारे मरनेके बाद सुखसे रह सकेगा, दुख नही पायेगा।' तब उपालि के माता-पिताके (मनमे) ऐसा हुआ—'यदि उपालि लेखा सीखेगा तो उसकी अँगुलियाँ दुखेगी। हाँ यदि उपालि ग ण ना (=हिसाव) सीखे तो हमारे मरनेके बाद०।' तब उ पा लि के माता-पिताके (मनमे) ऐसा हुआ—'यदि उपालि ग ण ना सीखेगा तो उसकी जाँघ दुखेगी। हाँ यदि उपालि रू प (=सराफी) सीखे तो हमारे मरनेके बाद०।' तब उपालि के माता-पिताके (मनमे) ऐसा हुआ—'यदि उपालि रू प को सीखेगा तो उसकी आँखे दुखेगी। हाँ यह शाक्यपुत्रीय श्रमण सुखशील और सुख-समाचार है। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासो और शय्याओमे सोते है। क्यो न उपालि भी शाक्यपुत्रीय श्रमणोमे जाकर भिक्षु बन जाय। इस प्रकार उपालि हमारे मरनेके बाद०।'

उपालि लळकेने (अपने) माता-पिताके इस कथा-सलापको सुना। तब उपालि लळका जहाँ उसके (साथी) लळके थे वहाँ गया। जाकर उन लळकोसे बोला—'आओ आर्यो! हम सब शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास जाकर प्रव्रजित हो।' तब उन लळकोने अपने अपने माँ-बापके पास जाकर यह कहा—'हमे घरसे-बेघर हो प्रव्रज्या लेनेकी आज्ञा दे।' तब उन लळकोके माता-पिताने एक सी रुचि रखनेवाले लळकोके अभिप्रायको सुदर जान अनुमति दे दी। उन्होने भिक्षुओके पास आकर प्रव्रज्या

माँगी। भिक्षुओने उन्हे प्रव्रज्या और उपसपदा दी। तब रातके भिनसारको उठकर वह (यह कह) रोते थे—'खिचळी दो! भात दो! खाना दो!'

भिक्षु ऐसा कहते थे—'ठहरो आवुसो! जब तक कि बिहान हो जाता है, यदि य वा गू (=पतली खिचळी) होगा तो पीना, यदि भात होगा तो खाना, यदि खाना होगा तो भोजन करना। यदि खिचळी, भात या खाना न होगा तो भिक्षा करके खाना।'

भिक्षुओके ऐसा कहनेपर भी वह रोते ही रहते थे—खिचळी दो! ०।' और बिस्तरेपर लोटते-पोटते रहते थे। भगवान्ने रातके अन्तिम पहरमे उठकर बच्चोके शब्दको सुनकर आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"आनन्द! कैसा यह बच्चोका शब्द है?"

आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से सब बात बतलाई। (भगवान्ने उन भिक्षुओसे पूछा)—

"भिक्षुओ! सचमुच जानबूझकर भिक्षु बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है?"

"सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्ने—"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुष (=निकम्मे आदमी) जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसपदा देते है? भिक्षुओ! बीस वर्षसे कमका पुरुष सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मच्छर-मक्खी, धूप-हवा, सरीसृप (=साँप, बिच्छू आदि रेगनेवाले जीव)की पीळाके सहनेमे असमर्थ होता है। कठोर, दुरागतके वचनो (के सहनेमे), और दुखमय, तीव्र, खरी, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय प्राण हरनेवाली उत्पन्न हुई शारीरिक पीळाओको न स्वीकार करनेवाला होता है, भिक्षुओ! बीस वर्ष वाला पुरुष सर्दी-गर्मी ० के सहनेमे समर्थ होता है। ० स्वीकार करनेवाला होता है। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोके प्रसन्न करनेके लिये है०।[1] निन्दा करके भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जानते हुए बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको नही उ प स प दा देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे धर्मानुसार (प्रतिकार) करना चाहिये।" 74

(७) पन्द्रह वर्षसे कमका श्रामणेर नही

१—उस समय एक खान्दान महामारीके रोगसे मर गया। उसमे पिता-पुत्र (दोही) बच रहे। वह भिक्षुओके पास जा प्रव्रजित हो एक साथही भिक्षाके लिये जाते थे। जब पिताको कोई भिक्षा देता था तो वह बच्चा दौळकर यह कहता था—'तात! मुझे भी दो, तात! मुझे भी दो।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'शाक्यपुत्रीय श्रमण अ-ब्रह्मचारी होते है। यह बच्चा भिक्षुणीसे उत्पन्न हुआ है।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने०। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! पन्द्रह वर्षसे कमके बच्चेको नही श्रामणेर बनाना (=प्रव्रज्या देना) चाहिये। जो श्रामणेर बनाये उसे दु क्क ट का दोष हो।" 75

२—उस समय आयुष्मान् आ न न्द का एक श्रद्धालु=प्रसन्न, सेवक-कुल महामारीसे मर गया। सिर्फ दो बच्चे बच रहे। वह (अपने घरकी) परिपाटीके अनुसार भिक्षुओको देखकर दौळकर पास आते थे। भिक्षु उन्हे फटकार देते थे। उन भिक्षुओके फटकारनेसे वह रोने लगते थे। तब आयुष्मान् आनन्दके मनमे ऐसा हुआ—'भगवान्की आज्ञा है कि पन्द्रह वर्षसे कमके बच्चेको श्रामणेर नही बनाना चाहिये, और यह बच्चे पन्द्रह वर्षसे कमके ही है। किस उपायसे यह बच्चे विनष्ट होनेमे बचाये जा सकते है।' तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

---

[1] देखो पृष्ठ १०३ [(३) १ क]।

"आनन्द ! क्या वह वच्चे कौवा उळाने लायक है ?"

"हाँ है, भगवान् !"

तब भगवान्ने इसी सवधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! कौवा उळानेमे समर्थ पन्द्रह वर्षसे कम उम्रके वच्चेको श्रामणेर वनानेकी अनुमति देता हूँ।" 76

(८) श्रामणेर शिष्योकी संख्या

३—उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्रके पास क ट क और म ह क दो श्रामणेर थे। वह एक दूसरेको दुर्वचन कहते थे। भिक्षु (यह देख) हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारका अत्याचार करेगे !' उन्होने भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! एक (भिक्षु)के दो श्रामणेर नही रखना चाहिये। जो रखे उसे दु क्क ट का दोप हो।"77

(९) निश्रयकी अवधि

उस समय भगवान्ने रा ज गृ ह मे ही वर्षा, हेमन्त और ग्रीष्मको विताया। लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'शा क्य पु त्री य श्रमणोके लिये दिशाएँ अन्धकारमय है, शून्य है। इन्हे दिशाएँ जान नही पळती।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने, धिक्कारने और दुखी होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही। तव भगवान्ने आयुष्मान् आनदको सवोधित किया—"जा आनन्द ! जलछक्का (=अवापुरण) ले एक ओरसे भिक्षुओको कह—'आवुसो ! भगवान् द क्षि णा- गि रि मे चारिका करनेके लिये जाना चाहते है। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये।'

"अच्छा भन्ते !" (कह) भगवान्को उत्तर दे आयुष्मान् आनन्दने जल छक्का ले एक ओरसे भिक्षुओको कहा—'आवुसो ! भगवान् दक्षिणागिरिमे चारिका करनेके लिये जाना चाहते है। जिस आयुष्मान्की इच्छा हो आये।' भिक्षुओने यह कहा—'आवुस आनद ! भगवान्ने आज्ञा दी है, दस वर्ष तक नि श्र य लेकर वसनेकी, दस वर्ष (के भिक्षु)को निश्रय देनेकी। उसके लिये हमे जाना होगा और निश्रय ग्रहण करना होगा। थोळे दिनका निवास होगा और फिर लौटकर आना होगा, और फिर दो-बारा निश्रय ग्रहण करना होगा। इसलिये यदि हमारे आचार्य और उपाध्याय चलेगे तो हम भी चलेगे। न चलेगे तो हम भी नही चलेगे। (अन्यथा) आवुस आनन्द ! हमारे चित्तका ओछापन समझा जायगा।' तब भगवान् छोटेसे भिक्षु-सघके साथ द क्षि णा गि रि मे विचरनेके लिये चले गये। तव भगवान् दक्षिणा-गिरिमे इच्छानुसार विहारकर राजगृहमे लौट आये। तव भगवान्ने आयुष्मान् आनदसे पूछा—

"क्या था आनद ! जो तथागत छोटेसे भिक्षु-सघके साथ दक्षिणागिरिमे विचरनेके लिये गये ?"

तव आयुष्मान् आनदने भगवान्को वह सब वात वतलाई। भगवान्ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चतुर और समर्थ भिक्षुको पाँच वर्ष तक निश्रय लेकर वसने की, और अ-चतुरको जीवन भर तक (निश्रय लेकर बसने की)। 78

(१०) किसके लिये निश्रय आवश्यक है और किसके लिये नही है

क—भिक्षुओ ! पाँच वातोमे युक्त भिक्षुको नि श्र य के विना वास नही करना चाहिये—(१) न वह सपूर्णशील-पुँजसे युक्त होता है, ०[१] (५) न सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार-पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना वास नही करना चाहिये। 79

ख—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना वास करना चाहिये—(१) वह सपूर्णशील-पुजसे युक्त होता है, ०[१] (५) सपूर्ण विमुक्तियोके ज्ञानके साक्षात्कार पुजसे सयुक्त होता है। भिक्षु इन पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना वास करना चाहिये। 80

ग—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना वास नही करना चाहिये—(१) अ-श्रद्धालु होता है, (२) लज्जा रहित होता है, (३) सकोच-रहित होता है, (४) आलसी होता है, (५) भूल जाने वाला होता है। ०। 81

घ—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना वास करना चाहिये—। (१) श्रद्धालु होता है ०। (५) याद रखने वाला होता है। ०। 82

ङ—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना नही रहना चाहिये—(१) शीलके विपयमे शील-हीन होता है, (२) आचारके विषयमे आचार-हीन होता है, (३) धारणाके विपयमे बुरी धारणावाला होता है, (४) विद्याहीन होता है, (५) प्रज्ञाहीन होता है। ०। 83

च—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नही होता, (२) आचारहीन नही होता, (३) धारणाके विषयमे बुरी धारणावाला नही होता, (४) विद्यावान् होता है, (५) प्रज्ञावान् होता है। ०। 84

छ—और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके बिना नही रहना चाहिये—(१) दोपको नही जानता, (२) न निर्दोपताको जानता है, (३) न छोटे दोपको जानता है, (४) न वळे दोपको जानता है, और (४) भिक्षु-भिक्षुणी दोनोके प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृद्गत किये रहता। सूक्त (=वुद्धोपदेश)से और प्रमाणसे प्रातिमोक्षको न सुविभाजित किये रहता, न सुप्रवर्तित, न सु-निर्णीत किये रहता है। ०। 85

ज—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको नि श्र य के विना रहना चाहिये—(१) दोपको जानता है, ० (५) प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ हृद्गत किये रहता है। ०। 86

झ—और भी भिक्षुओ। पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको नि श्र य के विना नही रहना चाहिये—(१) न दोपको जानता है, (२) न निर्दोषताको जानता है, (३) न छोटे दोषको जानता है, (४) न वळे दोपको जानता है, (५) और पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ०। 87

ञ—भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) दोपको जानता है, (२) निर्दोपताको जानता है, (३) छोटे दोषको जानता है, (४) वळे दोपको जानता है, (५) पाँच वर्पसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 88

ट—भिक्षुओ ! इन छ वातोसे युक्त भिक्षुको निश्रयके विना नही रहना चाहिये—(१) न सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है, ०[२] (६) न पाँच वर्पसे अधिकका भिक्षु होता है। ०। 89

ठ—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) सपूर्ण शील-पुजसे युक्त होता है, ० (६) पाँच

---

[१] देखो पृष्ठ ११२-१३

[२] ड से द तक पिछले पचकके प्रकरणके ग से ञ तक की तरह पाँच पाच वातें और छठी बात पाँच वर्षमे कम या अधिक का भिक्षु होना समझो।

वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ० ।90

ड—० निश्रयके विना नही रहना चाहिये—(१) अ-श्रद्धालु होता है, (२) लज्जा-रहित होता है, (३) सकोच-रहित होता है, (४) आलसी होता है, (५) भूल जानेवाला होता है, (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ० ।91

ढ—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) श्रद्धालु होता है, (२) लज्जालु होता हे, (३) सकोच-शील होता है, (४) उद्योगी होता है, (५) याद रखने वाला होता है, (६) पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ० ।92

ण—० निश्रयके विना नही रहना चाहिये—(१) शीलहीन होता है, (२) आचारहीन होता है, (३) धारणाके विपयमे बुरी धारणावाला होता है, (४) विद्याहीन होता है, (५) प्रज्ञाहीन होता है, (६) पाँच वर्षसे कमका भिक्षु होता है। ० ।93

त—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) शीलहीन नही ०, (६) पाँच वर्षसे अधिक का भिक्षु होता है। ० । 94

थ—० निश्रयके विना नही रहना चाहिये—(१) न दोपको जानता है, (२) न निर्दोपताको जानता है, (३) न छोटे दोषको जानता हे, (४) न बळे दोषको जानता है, (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनोके प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृद्गत किये रहता, सू क्त (=बुद्धोपदेश) और प्र मा ण से प्रातिमोक्षको न सु-विभाजित किये रहता, न सु-प्रवर्तित, न सु-निर्णीत किये रहता, (६) पाँचवर्षसे कमका भिक्षु होता है। ० ।95

द—० निश्रयके विना रहना चाहिये—(१) दोपको जानता है, ० (६) पाँच वर्षसे अधिकका भिक्षु होता है। ० ।96

अष्टम भाणवार समाप्त ॥८॥

६—कपिलवस्तु

(११) प्रव्रज्याके लिये माता-पिताकी आज्ञा

(क) रा हु ल की प्र व्र ज्या—तव भगवान् राजगृहमे इच्छानुसार विहार करके कपिलवस्तुकी ओर विचरण करनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरण करते जहाँ कपिलवस्तु है वहाँ पहुँचे। और भगवान् वहाँ शा क्य(-देश)मे क पि ल व स्तु के न्य ग्रो धा रा म मे विहार करते थे।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ शु द्धो द न शाक्यका घर था, वहाँ गये। जाकर विछाये आसनपर बैठे। तव रा हु ल-माता-देवीने रा हु ल-कुमारको यो कहा—"राहुल! यह तेरे पिता है, जा दायज (=वरासत) माँग।"

तव राहुल-कुमार जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के सामने खळा हो कहने लगा—"श्रमण! तेरी छाया सुखमय है।" तव भगवान् आसनसे उठकर चल दिये। राहुलकुमार भी भगवान्‌के पीछे पीछे लगा—

"श्रमण! मुझे दायज दे, श्रमण! मुझे दायज दे।"

तव भगवान्‌ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे कहा

"तो सा रि पु त्र! राहुल-कुमारको प्रव्रजित करो।"

'भन्ते! किस प्रकार राहुल-कुमारको प्रव्रजित करूँ?"

इसी मौकेपर इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कहकर, भगवान्‌ने भिक्षुओको सवोधित किया—

(ख) श्रा म णे र व ना ने की वि धि—"भिक्षुओ! तीन शरण-गमनसे श्रामणेर-प्रव्रज्या-

की अनुज्ञा देता हूँ। इस प्रकार प्रव्रजित करना चाहिये। पहिले शिर-दाढी मुँळवा कापाय-वस्त्र पहिना, एक कधेपर उपरना करवा, भिक्षुओकी पाद-वन्दना करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा ऐसा कहो वोलना चाहिये—"बुद्धकी शरण जाता हूँ, धर्मकी शरण जाता हूँ, सघकी शरण जाता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी बुद्धकी शरण०।" 97

तव आयुष्मान् सारिपुत्रने राहुल-कुमारको प्रव्रजित किया। तव शु द्धो द न शाक्य जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया, और भगवान्को अभिवादन कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुए शुद्धोदन शाक्यने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान्से मै एक वर चाहता हूँ।"

"गौतम! तथागत वरसे दूरहो चुके है।"

"भन्ते! जो उचित है, दोप-रहित है।"

"वोलो गौतम!"

"भगवान्के प्रव्रजित होनेपर मुझे वहुत दु ख हुआ था, वैसेही न न्द (के प्रव्रजित) होनेपर भी। रा हु ल के (प्रव्रजित) होनेपर अत्यधिक। भन्ते! पुत्र-प्रेम मेरी छाल छेद रहा है। छाल छेदकर०। चमडेको छेदकर मासको छेद रहा है। मासको छेदकर नसको छेद रहा है। नसको छेदकर हड्डीको छेद रहा है। हड्डीको छेदकर घायल कर दिया है। अच्छा हो, भन्ते! आर्य (=भिक्षुलोग) माता पिताकी अनुमतिके विना (किसीको) प्रव्रजित न करे।"

(ग) मा ता - पि ता की आ ज्ञा से प्र व्र ज्या—भगवान्ने शुद्धोदन शाक्यसे धार्मिक कथा कही। तव शुद्धोदन शाक्य आसनसे उठ अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। भगवान्ने इसी मौकेपर, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सवोधित किया—"भिक्षुओ! माता पिताकी अनुमतिके विना, पुत्रको प्रव्रजित न करना चाहिये। जो प्रव्रजित करे, उसे दुक्कटका दोप है।" 98

(१२) श्रामणेरोके विपयमे नियम

(क) श्रा म णे रो की स ख्या—तव भगवान् क पि ल व स्तु मे इच्छानुसार विहारकर श्रावस्तीमे विचरणके लिये चल दिये। क्रमश विचरण करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे और भगवान् वहाँ श्रावस्तीमे अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रके सेवक एक खान्दानने आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास (अपने) बच्चेको (यह कहकर) भेजा—'इस वच्चेको स्थविर प्रव्रज्या दे।' तव आयुष्मान् सारिपुत्रके (मनमे) ऐसा हुआ—भगवान्ने आज्ञा दी है कि एक (भिक्षु)को दो श्रामणेर न रखने चाहिये और मेरे पास यह राहुल श्रामणेर है ही। मुझे क्या करना चाहिये?'

उन्होने भगवान्से वात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चतुर और समर्थ एक भिक्षुको भी दो श्रामणेर रखनेकी, या जितनोको वह उपदेश और अनुशासन कर सके उतनोके रखनेकी।" 99

(ख) श्रा म णे रो के शि क्षा प द—तव श्रामणेरोके (मनमें) यह हुआ—'हम लोगोके कितने शि क्षा - प द (=आचार-नियम) है, हमे क्या क्या सीखना चाहिये।' (भिक्षुओने) भगवान्से यह वात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोको दस शि क्षा - प दो की, जिन्हे श्रामणेर सीखे—(१) प्राण-हिंसासे वाज आना, (२) चोरी करनेसे वाज आना, (३) अ-ब्रह्मचर्यसे वाज आना, (४) झूठ वोलनेसे वाज आना, (५) मद्य, कच्ची शराव (आदि) वुद्धि-भ्रष्ट करने वाली (चीजो)से वाज आना, (६) दो पहर वाद भोजन करनेसे वाज़ आना, (७) नाच, गीत, वाजा, और चित्तको चचल

करनेवाले तमाशोसे बाज आना, (८) माला, गध और उवटनेके धारण, मडन, विभूषणकी बातसे बाज आना। (९) ऊँची शय्या और महार्घ शय्यासे बाज आना, (१०) सोना-चाँदीको ग्रहण करनेसे बाज आना। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोको (इन) दस शि क्षा - प दो की जिन्हे श्रामणेर सीखे।"100

(१३) दडनीय श्रामणेरोको दड

(क) द ड नी य—उस समय श्रामणेर भिक्षुओके साथ गौरव और प्रतिष्ठा न रखते हुए उल्टी वृत्तिके हो रहे थे। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर भिक्षुओके साथ गौरव ओर प्रतिष्ठा न रखते हुए उल्टी वृत्तिके हो रहे है?' उन्होने यह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त श्रामणेरको दड करनेकी—(१) भिक्षुओके अ-लाभकी कोशिश करता है, (२) भिक्षुओके अनर्थकी कोशिश करता है, (३) भिक्षुओके वास न पानेकी कोशिश करता है, (४) भिक्षुओकी निन्दा, शिकायत करता है, (५) भिक्षुओमे परस्पर विगाळ कराता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (इन) पाँच बातोसे युक्त श्रामणेरको दड करनेकी।"101

(ख) द ड—तब भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—'क्या दड करना चाहिये?'

उन्होने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, आवरण (=घरके भीतर आनेसे रोकना) करनेको।" 102

(ग) द ड मे नि य म—(a) उस समय भिक्षु श्रामणेरोके लिये सारे सघारामका आ व र ण करते थे जिससे श्रामणेर आरामके भीतर प्रवेश न पानेसे चले जाते, गृहस्थाश्रममे लौट जाते या तीर्थिको-के मतमे चले जाते थे। उन्होने भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! सारे सघारामका आवरण नही करना चाहिये। जो करे उसे दु क्क ट का दोष होता है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ वह बसता हो या घूमता हो वहाँ आ व र ण करनेकी।" 103

(b) उस समय भिक्षु श्रामणेरोके मुखके आहारका आ व र ण (=रोक) करते थे। लोग खिचळी, पान, और सघ-भोजन तैयार करते वक्त श्रामणेरोसे यह कहते थे—'आओ भन्ते! खिचळी पिओ, आओ भन्ते! भात खाओ।' श्रामणेर ऐसा उत्तर देते थे—'आवुसो! वैसा नही कर सकते। भिक्षुओने हमारा आवरण किया है।' लोग हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे भदन्त लोग श्रामणेरोके मुखके आहारका आवरण करेंगे!' लोगोने भगवान्से यह बात कही। (भगवानने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मुखके आहारका आवरण नही करना चाहिये। जो करे उसको दुक्कटका दोष होता है।" 104

दड करनेका वर्णन समाप्त।

(c) उस समय प ड् व र्गी य[1] (=छ पुरुषोवाला समुदाय) भिक्षु उपाध्यायोसे बिना पूछे ही श्रामणेरोका आवरण करते थे। उपाध्याय खोजते थे—हमारे श्रामणेर क्यो नही दिखलाई पळ रहे हैं! (दूसरे) भिक्षुओने यह कहा—'आवुसो! ष ड् व र्गी य भिक्षुओने आवरण कर दिया है।' उन श्रामणेरोके (उपाध्याय) हैरान होते, धिक्कारते और दुखी होते थे—'कैसे पड्वर्गीय भिक्षु बिना हमसे पूछे ही हमारे श्रामणेरोका आवरण करेंगे!' (उन्होने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपाध्यायोसे बिना पूछे आ व र ण नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 105

---

[1]षड्वर्गीयोके बारेमें देखो पा ति मो क्ख पृष्ठ १४ टि०।

(d) उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु स्थविर भिक्षुओके श्रामणेरोको फुसला ले जाते थे। स्थविर लोग अपने ही दतौन और मुख धोनेके जलको लेते तकलीफ पाते थे। (लोगोने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! दूसरेकी परिषद् (=अनुचरगण)को नही फुसलाना चाहिये। जो फुसलाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्य-पुत्रके श्रामणेर क ट क ने क ट की नामक भिक्षुणीको दू षि त किया। भिक्षु हैरान होते, धिक्कारते, दुखी होते थे—'कैसे श्रामणेर इस प्रकारके अनाचारको करेंगे !' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

घ नि का ल ने का द ड—"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दस बातोसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी—(१) प्राणि-हिंसका दोषी होता है, (२) चोर होता है, (३) अ-ब्रह्मचारी होता है, (४) झूठ बोलने वाला होता है, (५) शराब पीनेवाला होता है, (६) बुद्धकी निंदा करता है, (७) धर्मकी निंदा करता है, , (८) सघकी निंदा करता है, (९) झूठी धारणावाला होता है, (१०) भिक्षुणी-दूषक होता है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, (इन) दस बातोसे युक्त श्रामणेरको निकाल देनेकी।" 107

(१४) उपसंपदाके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय एक प ड क (=हिजळा) भिक्षुओके पास आकर प्रब्रजित हुआ था। वह जवान-जवान भिक्षुओके पास आकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो ! मुझे दू षि त करो।' भिक्षु फटकारते थे—'भाग जा प ड क, हट जा पडक, तुझसे क्या मतलब है ?' भिक्षुओके फटकारनेपर वह बडे बडे स्थूल शरीर वाले श्रामणेरोके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आयुष्मानो ! मुझे दू षि त करो।' श्रामणेर फटकारते थे—'भाग जा पडक, हट जा पडक, तुझसे क्या मतलब है ?' श्रामणेरोके फटकारनेपर हाथीवानो और साईसोके पास जाकर ऐसा कहता था—'आओ आवुसो ! मुझे दू षि त करो।' हाथीवानो और साईसोने दूषित किया और वह हैरान होते, धिक्कारते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पडक है। जो इनमे पडक नही है वह पडकोको दूषित करते है। इस प्रकार यह सभी अब्रह्म-चारी है।' उन हाथीवानो और साईसोके हैरान होने, धिक्कारने को भिक्षुओने सुना। (उन्होंने) भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! उपसपदा न पाये पडकको उपसपदा नही देनी चाहिये, और उपसपदा पायेको निकाल देना चाहिये।" 108

२—उस समय कुलीनतासे च्युत एक पुराने खान्दानका सुकुमार लळका था। तब उस कुली-नतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार लळके के (मनमे) यह हुआ—मै सुकुमार हूँ (इसलिये) अप्राप्त भोगको न प्राप्त करनेमे समर्थ हूँ, न प्राप्त भोगके प्रतिकार करनेमे (समर्थ हूँ)। किस उपायसे मैं सुखसे जी सकता हूँ, कष्टको न प्राप्त हो सकता हूँ ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खानदानके सुकुमार पुत्रके (मनमे) यह हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण सु ख शी ल और सु ख-आ चा र है। ये अच्छा भोजन करके (अच्छे) निवासो और शय्याओमे सोते है। क्यो न मै स्वय पा त्र - ची व र सपादितकर दाढी-मूँछ मुंळा, काषाय वस्त्र पहन आराममे जाकर भिक्षुओके साथ वास करूँ ?' तब उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लळकेने स्वय पा त्र - ची व र सपादितकर केश दाढी मुळा, काषाय वस्त्र पहन आ रा म (=भिक्षु-निवास)मे जा भिक्षुओका अभिवादन किया। भिक्षुओने पूछा—

"आवुस ! कितने वर्षके (भिक्षु) हो ?"

"आवुसो ! कितने वर्षके होनेका क्या मतलब ?"

"आवुस ! कौन तेरा उपाध्याय है ?"

"आवुसो ! उपाध्याय क्या चीज है ?"

तब भिक्षुओने आयुष्मान् उपालिसे यह कहा—

"आवुस उ पा लि इस प्रव्रजित (=साधु)की पूछताछ करो।"

तब आयुष्मान् उ पा लि द्वारा पूछताछ करनेपर उस कुलीनतासे च्युत पुराने खान्दानके लळकेने सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने वह बात भिक्षुओसे कह दी। भिक्षुओने वह बात भगवान्से कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ ! चोरीसे वस्त्र पहने उपसपदा-रहित (पुरुप)को नही उपसपदा देनी चाहिये। उपसपदा प्राप्त कर लिये हो तो उसे निकाल देना चाहिये। भिक्षुओ ! तीर्थिको (=अन्य पन्थके अनुयायियो)के पास चले गये उपसपदा-रहित (पुरुप)को उपसपदा न देनी चाहिये। यदि उपसपदा पा गया हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 109

३—उस समय एक नाग (अपनी) नाग-योनिसे घृणा करता, दिक होता, जुगुप्सा करता था। तब उस नागके (मनमे) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मै नाग-योनिसे मुक्त होऊँ और जल्दी मनुष्यत्वको पाऊँ ?' तब उस नागके (मनमे) ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान् और पुण्यात्मा है। यदि मै शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास प्रव्रज्या पा सकूँ, तो इस प्रकार नागयोनिसे मुक्त हो सकता हूँ, और शीघ्र ही मनुष्यत्वको प्राप्त हो सकता हूँ।' तब उस नाग ने तरुण ब्राह्मण (=माणवक)का रूप धारणकर भिक्षुओके पास जा प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओने उसे प्रव्रज्या और उपसपदा प्रदानकी। उस समय वह नाग एक भिक्षुके साथ सीमान्तके विहारमे निवास करता था। एक दिन वह भिक्षु रातके भिनसारको उठकर टहलने लगा। तब वह नाग उस भिक्षुके वाहर निकलनेपर बेफिक्र हो सोने लगा और सारा विहार सापसे भर गया, तथा खिळकियोसे फण निकल रहे थे। तब उस भिक्षुने विहारमे प्रवेश करनेके लिये किवाळको खोलते वक्त देखा कि सारा विहार साँपसे भर गया है और खिळकियोसे फण निकल रहे है। देखकर भयभीत हो चिल्ला उठा। (दूसरे) भिक्षु दौळ आ उस भिक्षुसे बोले—आवुस ! किसलिये तू चिल्ला उठा ?'

"आवुसो ! यह सारा विहार साँपसे भरा है, और खिळकियोसे फण निकल रहे है।"

तब वह नाग उस शब्दके कारण सिमिटकर अपने आसनपर बैठ गया। भिक्षुओने उससे यह कहा—

"आवुस ! तू कौन है ?"

"भन्ते ! मै नाग हूँ।"

"आवुस ! तूने क्यो ऐसा किया ?"

तब उस नागने भिक्षुओसे वह सब वात कह दी। भिक्षुओने उस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको जमाकर उस नागसे यह कहा—

"तुम इस ध र्म वि न य के योग्य नही क्योकि तुम नागहो। जाओ नाग ! वही अपने (लोकमे)। चतुर्दशी पूर्णमासी, और अष्टमी, और पक्षके उपोसथको उपवास करो। इस प्रकार तुम नागयोनिसे मुक्त हो जाओगे और जल्दी मनुष्यत्वको प्राप्त करोगे।"

तब वह नाग—'मै इस धर्मके योग्य नही हूँ—' (सोच) दुखी (=दुर्मना) आँसू बहाते हुए चीत्कार कर चला गया। तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! नागके स्वभावको प्रगट करनेके दो सयय है—(१) जब अपने स्वजातीय स्त्रीसे मैथुन करता है, (२) और जब निधडक हो निद्रा लेता है। भिक्षुओ ! यह दो नागके स्वभावको प्रगट करनेके समय है। भिक्षुओ ! तिर्यक् योनिवाले प्राणीको विना उपसपदाके होनेपर उपसपदा न देनी

चाहिये और उपसपदा पाया हुआ होनेपर उसे निकाल देना चाहिये।" 110

४—उस समय एक ब्राह्मण-पुत्र (=माणवकने) माताको जानसे मार डाला। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमे) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मै इस बुरे कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके मनमे ऐसा हुआ—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तम-धर्मवाले है। यदि मै शाक्यपुत्रीय श्रमणोके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार मै इस बुरे कामसे मुक्त हो जाऊँ। तब उस माणवकने भिक्षुओके पास जा प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओने आयुष्मान् उपालिसे यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछ-ताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालि के पूछताछ करनेपर यह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओसे वह बात कही। भिक्षुओने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसपदा-रहित माताके हत्यारेको नही उपसपदा देनी चाहिये, और उपसपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 111

५—उस समय एक माणवकने पिताको मार डाला था। उस समय वह उस बुरे कर्मसे पश्चात्ताप करता, हैरान होता और जुगुप्सा करता था। तब उस ब्राह्मण-पुत्रके (मनमे) ऐसा हुआ—'किस उपायसे मै इस बुरे कर्मसे निकल सकता हूँ?' तब उस माणवकके (मनमे) ऐसा हुआ—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण धर्मचारी, समचारी, ब्रह्मचारी, सत्यवादी, शीलवान्, उत्तमधर्मवाले है। यदि मै शाक्य-पुत्रीय श्रमणोके पास प्रव्रज्या पाऊँ तो इस प्रकार मै इस बुरे काममे मुक्ति पाऊँ।' तब उस माणवकने भिक्षुओके पास जा प्रव्रज्या माँगी।

भिक्षुओने आयुष्मान् उ पा लि से यह बात कही—'आवुस उपालि! पहले भी एक नाग ब्राह्मण-पुत्रका रूप धारणकर भिक्षुओमे प्रव्रजित हुआ था। अच्छा हो आवुस उपालि! इस माणवककी पूछताछ करो।' तब उस माणवकने आयुष्मान् उपालिके पूछताछ करनेपर वह सब बात कह दी। आयुष्मान् उपालिने भिक्षुओसे वह बात कही। भिक्षुओने भगवान्से वह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! उपसपदा-रहित पिताके हत्यारेको नही उपमपदा देनी चाहिये, और उपमपदा पाये हुए हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 112

६—उस समय सा के त (=अयोध्या)से श्रावस्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसे भिक्षु जा रहे थे। मार्गके बीचमे चोरोने निकलकर किन्ही किन्ही भिक्षुओको लूटा और किन्ही किन्हीको मार डाला। श्रावस्तीसे निकलकर राजसैनिकोने भी किन्ही किन्ही चोरोको पकळ लिया और कोई कोई चोर भाग गये। वह भागे हुए चोर भिक्षुओके पाम जाकर प्रव्रजित हो गये। जो पकळे गये थे वे वधके लिये ले जाये जाने लगे। उन प्रव्रजित (चोरो)ने उन चोरोको वधके लिये ले जाते देखा। देखकर उन्होने यह कहा—'अच्छा हुआ जो हम भाग गये। यदि पकळे जाते तो हम भी इमी प्रकार मारे जाते।' उन भिक्षुओने यह पूछा—'क्यो आवुसो! तुम क्या कहते हो?'

तब उन प्रव्रजितोने भिक्षुओमे वह मव बात कह दी। भिक्षुओने भगवान्मे यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! यह भिक्षु (लोग) अर्हत् है। भिक्षुओ! अर्हत्-घातकको यदि उपसपदा न मिली हो तो उपसपदा न देनी चाहिये, और उपमपदा मिली हो तो उसे निकाल देना चाहिये।" 113

७—उस समय सा के त से श्रा व स्ती जानेवाले मार्गपर बहुतसी भिक्षुणियाँ जा रही थी।

२३—उस समय भिक्षु पात्र-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा देते थे। वह पात्रके विना हाथोमे ही भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, धिक्कारते थे—'कैसे यह पात्रके विना हाथोमे ही भीख माँगते है जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने कहा)—

"भिक्षुओ! पात्र-रहितको उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कटका दोप हो।" 128

२४—उस समय भिक्षु चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा देते थे और वह नगेही भिक्षाटन करते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे ये नगेही भिक्षाटन करते है जैसे कि तीर्थिक! भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कट का दोप हो।" 129

२५—उस समय भिक्षु पात्र-चीवर-रहित (व्यक्ति)को उपसपदा देते थे। वह नगे ही हाथोमे ही भिक्षा माँगते थे०—

"भिक्षुओ! पात्र-चीवर-रहितको उपसपदा न देनी चाहिये, ०।" 130

२६—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्रके साथ उपसपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर पात्र ले लिया जाता था और वह हाथोमे भिक्षा माँगते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्रके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोप हो।" 131

२७—उस समय भिक्षु मँगनीके चीवरके साथ उपसपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर चीवर ले लिया जाता था, और वह नगेही भिक्षाटन करते थे। ०—

"भिक्षुओ! मँगनीके चीवरके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो उपसपदा दे उसे दुक्कटका दोप हो।" 132

२८—उस समय भिक्षु मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसपदा देते थे। उपसपदा हो जानेपर पात्र-चीवर ले लिया जाता था और वह नगे हो हाथोमे भिक्षा माँगते थे। लोग हैरान होते, दुखी होते, धिक्कारते थे—'(कैसे यह नगे हो हाथोमे भिक्षा माँगते है) जैसे कि तीर्थिक।' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! मँगनीके पात्र-चीवरके साथ उपसपदा न देनी चाहिये। जो दे उसे दुक्कटका दोप हो।" 133

(१९) प्रव्रज्याके लिये अयोग्य व्यक्ति

१—उस समय भिक्षु कटे हाथवालेको प्रव्रज्या देते (=श्रामणेर बनाते) थे। मनुष्य देखकर हैरान होते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! कटे हाथवालेको प्रव्रज्या न देनी चाहिये। जो प्रव्रज्या दे उसे दुक्कटका दोप हो।" 134

२—०—कटे पैरवालेको०। 135

३—०—कटे हाथ-पैरवालेको०। 136

४—०—कटे कानवालेको०। 137

५—०—कटी नाकवालेको०। 138

६—०—कटे नाक-कानवालेको०। 139

७—०—कटी अँगुलियोवालेको०। 140

२—उस समय भिक्षु लज्जाहीनोका निश्रय लेकर वास करते थे, और वह भी जल्दी ही लज्जाहीन बुरे भिक्षु हो जाते थे। भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! लज्जाहीनोका निश्रय लेकर वास नही करना चाहिये। जो वास करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 167

३—तब भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि लज्जाहीनोको न निश्रय देना चाहिये न लज्जाहीनोका निश्रय ले वास करना चाहिये, लेकिन लज्जाशील (=लज्जी), लज्जाहीन (=अलज्जी)को कैसे हम जानेगे?' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चार पाँच दिन तक प्रतीक्षा करनेकी जितनेमे कि भिक्षुके स्वभाव को जान जाय।" 168

४—उस समय एक भिक्षु को स ल देशमे रास्तेमे जा रहा था। उस समय उस भिक्षुके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये और मै निश्रय लेने योग्य होते हुए रास्तेमे हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रास्तेमे जाते हुए भिक्षुको, निश्रय न पानेपर विना निश्रयहीके रहनेकी।" 169

५—उस समय दो भिक्षु को स ल देशमे रास्तेमे जा रहे थे। वह एक वास-स्थानमे गये। वहाँ एक भिक्षु बीमार पळ गया। तव उस बीमार भिक्षुके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये, मै निश्रय लेने योग्य होते हुए रोगी हूँ। कैसे मुझे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको निश्रय न पानेपर विना निश्रयहीके रहनेकी।" 170

६—तब उस बीमारके परिचारक भिक्षुके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये और मै निश्रय लेने योग्य हूँ और यह भिक्षु रोगी है, मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बीमारके परिचारक भिक्षुको इच्छा रखते भी निश्रय न पाने पर विना निश्रयके रहनेकी।" 171

७—उस समय एक भिक्षु जगलमे रहता था। उस निवास-स्थानपर उसे अच्छा था। तब उस भिक्षुके (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने आज्ञा दी है कि निश्रयके विना नही रहना चाहिये, और मै निश्रय लेने योग्य होते हुये जगलमे हूँ, तथा मुझे इस वास-स्थानपर अच्छा है। मुझे कैसा करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जगलमे रहनेवाले भिक्षुको निवास अनुकूल मालूम होनेपर, निश्रयके न मिलनेपर विना निश्रयके ही रहनेकी, (यह सोचकर) जब अनुकूल निश्रयदायक आयेगा तो उसका निश्रय लेकर वास करूँगा।" 172

(२) बळोको गोत्रके नामसे पुकारना

उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प के पास एक उपसपदा चाहनेवाला था। तव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दके पास (यह कहकर) दूत भेजा—'आनन्द! आओ और इस पुरुषके लिये अ नु श्रा व ण[1] करो।'

---

[1] उपसपदा देने (भिक्षु बनाने)के समय उपसपदा देनेकी स्वीकृति तथा उपाध्याय और आचार्यके नाम सघके सामने ऊँचे स्वरसे लिये जाते थे। इसीको अनुश्रावण कहते है।

आयुष्मान् आनदने ऐसा कहा—'स्थविर (महाकाश्यप)का नाम भी लेनेमे मै असमर्थ हूँ। स्थविर मेरे गुरु है।'

—भगवान्से यह बात कही। (भगवानने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, गोत्र (के नाम)से पुकारनेकी।" 173

(३) अनुश्रावणके नियम

१—उस समय आयुष्मान् महाकाश्यपके पास दो उपसपदा चाहनेवाले थे। 'मै पहले उपसपदा लूँगा, मै पहले उपसपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक साथ दोके अ नु श्रा व ण की।" 174

२—उस समय बहुतसे स्थविरोके पास उपसपदा चाहनेवाले थे। 'मै पहले उपसपदा लूँगा, मै पहले उपसपदा लूँगा' कहकर वे विवाद करते थे। तब स्थविरोने कहा—'आवुसो! (आओ) हम सब एकही अ नु श्रा व ण करे।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो तीनके लिये एक अनुश्रावण करनेकी। लेकिन यदि उनका उपाध्याय एक हो, अनेक न हो।" 175

(४) गर्भसे बीस वर्षकी उपसम्पदा

उस समय आयुष्मान् कु मा र का श्य प ने गर्भसे बीस वर्ष गिनकर उपसपदा पाई थी तब आयुष्मान् कु मा र का श्य प को (मनमे) ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि बीस वर्षसे कमके व्यक्तिको उपसपदा न देनी चाहिये और मैने गर्भसे (आने)से लेकर बीस वर्ष जोळ उपसपदा पाई। क्या मेरी उपसपदा ठीक है?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! जब माताकी कोखमे पहले पहल चि त्त उत्पन्न होता है, पहले पहल वि ज्ञा न प्रादुर्भूत होता है तबसे लेकर जन्म माननेकी है। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गर्भसे बीस (वर्षवाले)को उपसपदा देनेकी।" 176

(५) उपसम्पदाके बाधक शारीरिक दोष

उस समय कोढी भी, फोळेवाले भी (बुरे) चर्म-रोगवाले भी, शोथवाले भी, मृगीवाले भी उपसपदा पाये देखे जाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उपसपदा करते वक्त तेरह प्रकारके (उपसपदामे) अ न्त रा यि क (=बाधक) बातोके पूछनेकी। और भिक्षुओ! इस प्रकार पूछना चाहिये—'क्या तुझे ऐसी बीमारी (जैसेकि) (१) कोढ, (२) गड (=एक प्रकारका बुरा फोळा), (३) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म-रोग), (४) शोथ, (५) मृगी, (६) तू मनुष्य है, (७) तू पुरुष है? (८) तू स्वतत्र (अदास) है? (९) तू उऋण है? (१०) तू राज-सैनिक तो नही है? (११) तुझे माता पिताने (भिक्षु बननेकी) अनुमति दी है? (१२) तू पूरे बीस वर्षका है? (१३) तेरे पास पात्र-चीवर (सख्यामे) पूर्ण है? तेरा क्या नाम है? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है?'" 177

(६) उपसम्पदा कर्म

(क) १—अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसपदा-चाहनेवालेसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोको पूछते थे। उपसपदा चाहनेवाले चुप हो जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर नही दे सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोके पूछनेकी।" 178

२—(भिक्षु लोग) वही सघके बीचमे अ नु शा स न करते थे। उपसपदा चाहनेवाले (फिर) उसी तरह चुप रह जाते थे, मूक हो जाते थे, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोके अ नु शा स न करनेकी, और सघके बीचमे पूछनेकी। भिक्षुओ ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये। उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—यह तेरा पात्र है, यह स घा टी, यह उ त्त रा स घ, यह अ न्त र वा स क। जा उस स्थानमे खडा हो।" 179

३—(उस समय) मूर्ख, अजान, अनुशासन करते थे। ठीकसे अनुशासन न होनेके कारण उपसपदा चाहनेवाले चुप रह जाते, मूक हो जाते, उत्तर न दे सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मूर्ख, अजान अनुशासन न करे। जो अनुशासन करे तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चतुर समर्थ भिक्षुको अनुशासन करनेकी।" 180

(ख) अ नु शा स क का चु ना व—उस समय सम्मतिके विना ही अनुशासन करते थे। भगवान्से यह बात कही।—भिक्षुओ ! सम्मतिके विना अनुशासन नही करना चाहिये। जो अनुशासन करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सम्मति प्राप्तको अनुशासन करनेकी। 181

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार सम्मत्रण करना चाहिये—अपने ही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये या दूसरे को दूसरेके लिये सम्मत्रण करना चाहिये। कैसे अपने ही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये ?—चतुर, समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

भन्ते ! सघ मेरी (बात) सुने, यह अमुक नामवाला अमुक नामवाले आयुष्मान्का उपसपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि सघ उचित समझे तो मै अमुक नामवाले (इस पुरुष)को अनुशासन करूँ।—इस प्रकार अपनेही अपने लिये सम्मत्रण करना चाहिये।

"कैसे दूसरेके लिये सम्मत्रण करना चाहिये ?—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—भन्ते ! सघ मेरी (बात) सुने। यह इस नामवाला इस नामवाले आयुष्मान्का उपसपदा चाहनेवाला (शिष्य) है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले (उपसपदा चाहनेवाले)को अनुशासन करे।—इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मत्रणा करनी चाहिये।

तब उस सम्मति प्राप्त भिक्षुको उपसपदा चाहनेवालेके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये—

ख अ नु शा स न—"अमुक नामवाले ! सुनते हो ? यह तुम्हारा सत्यका काल (=भूतका काल) है। जो जानता है सघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" कहना चाहिये, 'नही' होनेपर नही कहना चाहिये। चुप मत हो जाना, मूक मत हो जाना, (सघमें) इस प्रकार तुझसे पूछेंगे—क्या तुझे ऐसी बीमारी है (जैसे कि) कोढ, गड, किलास, शोथ, मृगी ? क्या तू मनुष्य है, पुरुष है, स्वतत्र है, उऋण है, राजसैनिक तो नही है, तुझे माता-पिताने (भिक्षु बनानेकी) अनुमति दी है, तू पूरे बीस वर्षका है, तेरे पास पात्र-चीवर (पूर्ण सख्यामे) है ? तेरा क्या नाम है ? तेरे उपाध्यायका क्या नाम है ?"

(उस समय अनुशासक और उपसपदा चाहनेवाले दोनो) एक साथ (सघमे) आते थे। (भगवान्से यह बात कही)—

"भिक्षुओ ! एक साथ नही आना चाहिये।" 182

ग <u>उपसपदामे ज्ञप्ति, अनुश्रावण और धारणा</u>—अनुशासक पहले आकर सघको सूचित करे—

भन्ते ! सघ मेरी (बात) सुने ! यह इस नामका इस नामवाले आयुष्मान्का उपसपदा चाहनेवाला शिष्य है। मैंने उसको अनुशासन किया है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (उपसपदा चाहनेवाला) आवे। 'आओ !' कहना चाहिये। (फिर) एक कधेपर उ त्त रा स घ को करवाकर भिक्षुओके चरणोमे वदना करवा, उकळूँ बैठवा, हाथ जुळवा, उपसपदाके लिये याचना करवानी चाहिये।

(७) पंद्रह वर्षसे कमका श्रामणेर

उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया मापनी चाहिये, ऋतुका प्रमाण बतलाना चाहिये, दिनका भाग बतलाना चाहिये, सं गी ति[1] बतलानी चाहिये। चारों नि श्र य[2] बतलाने चाहिये—(१) यह प्रव्रज्या भिक्षा माँगे भोजनके निश्रयसे है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर तुझे उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—संघ-भोज, तेरे उद्देश्यसे बना भोजन निमन्त्रण, श ला का भो ज न, पाक्षिक (भोज) उपोसथके दिनका (भोज), प्रतिपद्का (भोज)। (२) फटे चीथड़ोंके बनाये चीवरके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है, इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना

[1] छाया ऋतु और दिनका भाग—इन तीनोंके इकट्ठा करनेको सं गी ति कहते हैं।

[2] देखो पृष्ठ १२१–२२ भी।

चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)— क्षौम (अलसीकी छालका वस्त्र), कपासका (वस्त्र), कौशेय (=रेशमी वस्त्र), कम्बल (=ऊनी वस्त्र), सनका (वस्त्र), भाँगकी (छालका वस्त्र)। (३) वृक्षके नीचे निवासके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमे) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—विहार, आढ्ययोग, प्रासाद, हर्म्य, गुहा। (४) गोमूत्रकी ओपधिके निश्रयसे यह प्रव्रज्या है। इसके (पालनमें) जिन्दगी भर उद्योग करना चाहिये। हाँ (यह) अतिरेक लाभ (भी तेरे लिये विहित है)—घी, मक्खन, तेल, मधु, खाळ।" 183

चार निश्रय समाप्त

(८) श्रामणेर शिष्योकी सख्या

उस समय (कुछ) भिक्षु एक भिक्षुको उपसपदा दे, अकेले ही छोळ चले गये। पीछे अकेले ही चलते वक्त रास्तेमे उसे अपनी पहलेकी स्त्री मिली। उसने पूछा—

"क्या इस वक्त प्रव्रजित हो गये हो?"

"हाँ प्रव्रजित हो गया हूँ।"

"प्रव्रजितोके लिये स्त्री-समागम वहुत दुर्लभ है। आओ! मैथुन-सेवन करो।"

वह उसके साथ मैथुन कर, देरसे गया। भिक्षुओने पूछा—

"आवुस! क्यो तूने इतनी देर लगाई?"

तव उसने भिक्षुओसे वह सव बात कह दी। भिक्षुओन भगवान्से वह सव बात कही। (भगवान्ने यह कहा)—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपसपदा करके एक दूसरे (भिक्षुको साथी) देनेकी और चार अकरणीयोके वतलानेकी—

"(१) उपसम्पन्न भिक्षुको अन्तत पशुसे भी मैथुन नही करना चाहिये। जो भिक्षु मैथुन करे वह अश्रमण होता हे, अशाक्य-पुत्रीय होता हे। जैसे शिर-कटा-पुरुप उस शरीरसे जीनेमे असमर्थ होता हे ऐसे ही भिक्षु मैथुन करके अश्रमण होता है, अशाक्यपुत्रीय होता हे। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय हे।

"(२) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको चोरी समझे जाने वाली (किसी वस्तुको) चाहे वह तृणकी शलाका ही क्यो न हो न लेना चाहिये। जो भिक्षु पाद[1] या पादके मूल्य या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय होता है। जैसे ढेपसे छूटा पीला पत्ता फिर हरा होनेके अयोग्य हे, ऐसेही भिक्षु पाद या पादके मूल्यके या पादसे अधिककी चोरी समझी जानेवाली (चीज)को ग्रहण करे वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(३) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको जान बूझकर प्राण न मारना चाहिये चाहे वह चीटा माटा ही क्यो न हो। जो भिक्षु जान वूझकर मनुष्यके प्राणको मारता है या अन्तत गर्भपात भी कराता है वह अश्रमण, अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे कोई मोटी शिला दो टक हो जानेपर फिर जोळने लायक नही रहती ऐसेही भिक्षु जान बूझकर मनुष्यको प्राणसे मारनेसे अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।

"(४) उपसम्पदा प्राप्त भिक्षुको (अपने) दिव्य शक्ति (=उत्तरमनुष्यधर्म)को न कहना चाहिये। अन्तत शून्यागारमे मैं रमण करता हूँ, इतना भर भी (नही कहना चाहिये)। जो बुरी नीयत-

---

[1] पाँच माषक (=मासा)=१ पाद, ४ पाद=१ कार्षापण, (देखो पृष्ठ ८,९ भी)।

वाला लोभके वशमे पळा भिक्षु अविद्यमान, असत्य—दिव्य-शक्ति, ध्यान, विमोक्ष, समाधि, समापत्ति, मार्ग या फल—को (अपनेमे) वतलाता है वह अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। जैसे शिर कटा ताळ फिर बढनेके योग्य नही होता, ऐसे ही बुरी नीयतवाला लोभके वशमे पळा भिक्षु अविद्यमान, असत्य—दिव्य-शक्ति (अपनेमे) वतलाकर अश्रमण अशाक्यपुत्रीय होता है। यह तेरे लिये जीवन भर अकरणीय है।" 184

चार अकरणीय समाप्त

(९) निश्चयकी अवधि

उस समय एक भिक्षु (दोषको करके) दोषको न देखनेसे उत्क्षिप्त होनेपर धर्म छोळकर चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओसे उपसपदा माँगी। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु दोष (=आपत्ति)के न देखनेसे उत्क्षिप्त हो निकल जाता है और वह फिर आकर उपसपदा माँगता है तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'क्या तुम उस दोषको देखते हो?'—यदि वह कहे—'मैं देखता हूँ' तो उसे प्रव्रज्या देनी चाहिये। यदि कहे 'नही देखता हूँ' तो प्रव्रज्या नही देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उपसपदा देनी चाहिये। यदि कहे 'नही देखता हूँ' तो उपसपदा नही देनी चाहिये।' उपसपदा देकर पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे 'मैं देखता हूँ' तो उसका ओसारण[1] करना चाहिये, यदि कहे 'नही देखता हूँ' तो उसका ओसारण नही करना चाहिये। ओसारण करके पूछना चाहिये—'क्या तुम उस आपत्तिको देखते हो?' यदि कहे कि 'देखता हूँ'—तो अच्छा है। यदि कहे 'नही देखता' तो एकमत होनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। यदि एकमत न मिलता हो तो साथके भोजन और निवासमे दोष नही। यदि भिक्षुओ! आपत्तिके न प्रतिकारसे भिक्षु उत्क्षिप्त होनेपर चला जाये और वह फिर आकर भिक्षुओसे उपसपदा माँगे तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'क्या उस दोषका तुम प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो प्रव्रज्या देनी चाहिये, यदि कहे 'प्रतिकार नही करूँगा' तो प्रव्रज्या नही देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस दोषका प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो उपसपदा देनी चाहिये, यदि कहे 'प्रतिकार नही करूँगा' तो उपसम्पदा नही देनी चाहिये। उपसपदा देकर पूछना चाहिये 'क्या तुम उस आपत्तिका प्रतिकार करोगे?' यदि कहे 'प्रतिकार करूँगा' तो ओसारण करना चाहिये। यदि कहे 'प्रतिकार नही करूँगा' तो ओसारण नही करना चाहिये। ओसारण करके पूछना चाहिये 'क्या उस दोषका प्रतिकार करते हो?' यदि वह प्रतिकार करे तो ठीक, यदि प्रतिकार न करे तो एकमत होनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। यदि एकमत न प्राप्त हो तो साथके भोजन और निवासमे दोष नही। 185

"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु बुरी दृष्टिके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त होकर चला गया हो और वह फिर आकर भिक्षुओसे उपसपदा माँगे तो उससे पूछना चाहिये—'क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे?' यदि कहे कि—छोळूँगा—तो प्रव्रज्या देनी चाहिये, यदि कहेकि—नही छोळूँगा—तो प्रव्रज्या नही देनी चाहिये। प्रव्रज्या देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे?—यदि कहे कि—छोळूँगा—तो उपसम्पदा देनी चाहिये, यदि कहेकि—नही छोळूँगा—तो उपसम्पदा नही देनी चाहिये। उपसपदा देकर पूछना चाहिये—क्या तुम उस बुरी धारणाको छोळोगे—यदि कहे—छोळूँगा—तो

---

[1]अपराध होनेपर सघकी ओरसे उत्क्षिप्त करनेका दंड होता है। उस दडको हटा लेना ओसारण कहा जाता है।

ओ सा र ण करना चाहिये, यदि कहे—नही छोळूँगा—तो ओसारण नही करना चाहिये। ओसारण करके कहना चाहिये—उस बुरी धारणाको छोळो!—यदि छोळता है तो अच्छा है। यदि नही छोळता तो एकमत मिलनेपर फिर उत्क्षिप्त करना चाहिये। एकमत न मिलनेपर साथ भोजन और निवासमे दोष नही। 186

प्रथम महाक्खन्धक (समाप्त) ॥१॥

२—उपोसथ-स्कन्धक

१—उपोसथका विधान और प्रातिमोक्षकी आवृत्ति। २—उपोसथ-केन्द्रकी सीमा और उपोसथोकी सख्या। ३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और उसके पूर्वके कृत्य। ४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ। ५—कुछ भिक्षुओकी अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ। ६—उपोसथमें काल, स्थान और व्यक्ति संबधी नियम।

§ १—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति

१—राजगृह

(१) उपोसथका विधान

उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहके गृध्रकूट पर्वतपर रहते थे। उस समय दूसरे मतवाले (परिव्राजक) चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते थे। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते थे,(जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते थे, और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारको एकान्तमे विचार करते वक्त चित्तमे ऐसा ख्याल पैदा हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते है। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते है,(जिससे कि) वह दूसरे मतवाले परिव्राजकोके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते है, और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते है। क्यो न आर्य (=बौद्ध-भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो?' तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने भगवान्से यह कहा—"भन्ते! मुझे एकान्तमे बैठे विचार करते चित्तमे ऐसा ख्याल हुआ—'इस समय दूसरे मतवाले परिव्राजक चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा होकर धर्मोपदेश करते है। उनके पास लोग धर्म सुननेके लिये जाया करते है, (जिससे कि) वह दूसरे मत वाले परिव्राजकोके प्रति प्रेम और श्रद्धा करते है और दूसरे मतवाले परिव्राजक (अपने लिये) अनुयायी पाते है। क्यो न आर्य (=भिक्षु) लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो?' अच्छा हो भन्ते! आर्य लोग भी चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको इकट्ठा हो।"

तब भगवान्ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा कह समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार भगवान्की धार्मिक कथासे समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी।"1

(२) उपोसथके दिन धर्मोपदेश

उस समय (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित होनेकी आज्ञा दी है। भिक्षु लोग चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते थे। जो मनुष्य धर्मोपदेश सुननेके लिये आते थे वह (यह देख) हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो चुपचाप बैठते हैं, जैसे कि गूगे भेळ! एकत्रित होकर तो धर्मोपदेश करना चाहिये था न।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से इस बातको कहा, और भगवान्‌ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चतुर्दशी, पूर्णमासी और पक्षकी अष्टमीको एकत्रित हो धर्मोपदेश करनेकी।" 2

(३) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमे नियम

१—एक समय एकान्तमे स्थित विचारमग्न भगवान्‌के चित्तमे विचार उत्पन्न हुआ—'क्यो न, जिन शिक्षा-पदो (=भिक्षु-नियमो)को मैंने भिक्षुओके लिये विधान किया है उन्हे लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ। यही उनका उ पो स थ क र्म हो।' तब भगवान्‌ने सायकाल एकान्त चिन्तनसे उठ इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमे स्थित विचारमग्न मेरे चित्तमे विचार उत्पन्न हुआ—क्यो न, जिन शिक्षा-पदोको मैंने भिक्षुओके लिये विधान किया है उन्हे लेकर प्रा ति मो क्ष की आवृत्तिकी अनुमति दूँ।3

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्षकी आवृत्तिकी।

"और भिक्षुओ! इस प्रकार आवृत्ति करनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

ज्ञ प्ति—भन्ते! सघ मेरी (वात) सुने। यदि सघ ठीक समझे तो उपोसथ करे और प्रा ति मो क्ष की आवृत्ति करे—'सघका क्या है पूर्व कृत्य? आयुष्मानो! (अपनी आचार-)शुद्धिको कहो, ०[1] प्रकट करना उसके लिये अच्छा होता है।" 4

प्रा ति मो क्ष (=पातिमोक्ख), प्राति=आदि, मुख=प्रमुख (=प्रधान)। यह भलाइयोमे प्रमुख है, इसलिये प्रा ति मौ ख्य[2] कहा जाता है।

(४) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमे दिन-नियम

२—उस समय भिक्षु लोग (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने प्रातिमोक्ष-आवृत्तिकी अनुमति दी है, प्रतिदिन प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करने लगे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! प्रतिदिन प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नही करनी चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथके दिन प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करनेकी।" 5

उस समय भिक्षुलोग (यह सोचकर कि) भगवान्‌ने प्रातिमोक्ष-आवृत्तिकी अनुमति दी है चतु-र्दशी, पचदशी और अष्टमी, पक्षमे तीन तीन वार प्रातिमोक्षकी आवृत्ति करते थे। भगवान्‌से यह वात कही—

---

[1] देखो पृष्ठ ७ भी।

[2] पालीमें पा ति मो क्ख के संस्कृत करनेमें मो क्ख का मो क्ष किया जाता है किन्तु प्राचीन कालमें मो क्ख को मो क्ष के अर्थमें न लेकर मौ ख्य या प्रधानताके अर्थमें लेते थे।

"भिक्षुओ! पक्षमे तीन तीन बार प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नही करनी चाहिये। जो करे उसे दुक्कट-का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्षमे एक बार चतुर्दशी या पचदशीको प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करने की।" 6

(५) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमे समग्र होनेका नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु परिषद्के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! परिषद्के अनुसार अपनी-अपनी परिषद्के लिये प्रातिमोक्ष-आवृत्ति नही करनी चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स म ग्र (=सभी एकत्रित भिक्षु-मडली)को उ पो स थ क र्म की।" 7

तब भिक्षुओके मनमे यह हुआ—"भगवान्‌ने स म ग्र (=सभी एकत्रित भिक्षु-मडली)के लिये उ पो स थ क र्म का विधान किया है, यह समग्रता क्या चीज है? क्या एक निवास-स्थानमे रहने वाले सभी, या सारी पृथ्वी (के भिक्षुओको समग्र कहेगे)?" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक निवास-स्थानमे जितने (भिक्षु) है उन्हीको समग्र माननेकी।"8

२—उस समय आयुष्मान् म हा क प्पि न रा ज गृ ह के म द्द कु च्छि (=मद्रकुक्षि) मृ ग दा व-मे रहते थे। तब आयुष्मान् महाकप्पिनको एकान्तमे विचारमग्न होते समय ऐसा चित्तमे विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ मे मै जाऊँ या नही जाऊँ? क्या स घ क र्म मे मै जाऊँ या न जाऊँ? मै तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ।' तब भगवान्‌ने आयुष्मान् महाकप्पिनके मनके विचारको अपने मनसे जानकर,जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको (बिना प्रयास) पसारे या पसारी बाँहको (बिना प्रयास) समेटे, वैसे ही गृध्रकूट पर्वतपर अन्तर्ध्यान हो म द्र कु क्षि मृ ग दा व मे आयुष्मान् महाकप्पिनके सामने प्रकट हुए। भगवान् बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् महाकप्पिन भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् महाकप्पिनसे भगवान्‌ने यह कहा—

"क्या कप्पिन! एकान्तमे विचार मग्न होते समय तुम्हे ऐसा चित्तमे विचार उत्पन्न हुआ—'क्या उ पो स थ मे मै जाऊँ या नही जाऊँ? क्या सघकर्ममे मै जाऊँ या नही जाऊँ? मै तो अत्यन्त ही विशुद्ध हूँ'?"

"हाँ भन्ते!"

"यदि तुम (जैसे) ब्राह्मण उपोसथका सत्कार=गुरुकार नही करेगे, मान=पूजा नही करेगे तो कौन उपोसथका सत्कार=गुरुकार, मान=पूजा करेगा? ब्राह्मण! उपोसथमे तुम्हे जाना चाहिये, न जाना नही चाहिये, सघ-कर्ममे तुम्हे जाना चाहिये, न-जाना नही चाहिये।"

"अच्छा भन्ते!" (कह) आयुष्मान् महाकप्पिनने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् महाकप्पिनको धार्मिक कथा कह समुत्तेजितकर जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे या पसारी बाँहको समेटे ऐसे ही म द्र कु क्षि मृ ग दा व मे आयुष्मान् महा-कप्पिनके सम्मुख अन्तर्धान हो गृध्रकूट पर्वत पर प्रकट हुए।

§२—उपोसथ केन्द्रकी सीमा और उपोसथोंकी संख्या

(१) सीमा बाँधना

१—तब भिक्षुओके मनमें यह हुआ—'भगवान्‌ने एक निवास-स्थानमे जितने (भिक्षु) हो उतनो को समग्र कहा, किन्तु एक निवास- स्थान कितनेका होता है?' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सीमाके निर्णय करनेकी।" 9

"भिक्षुओ! इस प्रकार सीमाका निर्णय करना चाहिये, पहले चिह्न—पर्वत-चिह्न, पाषाण-चिह्न, वन-चिह्न, वृक्ष-चिह्न, मार्ग-चिह्न, बल्मीक (=दीमककी घरकी मिट्टी)-चिह्न, नदी-चिह्न, उदक-चिह्न—बतलाना चाहिये। चिह्नोको बतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते! सघ मेरी (बात) सुने। चारो ओरके जितने चिह्न है वे बतला दिये गये। यदि सघ उचित समझे तो इन चिह्नोवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते! सघ मेरी (बात) सुने। जितने चारो ओरके चिह्न बतलाये गये है, सघ इन चिह्नोवाली सीमाको एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान स्वीकार करता है। जिस आयुष्मान्को इन चिह्नोवाली सीमाका एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान मानना पसद है वह चुप रहे, जिसको पसद नही है वह बोले। ।

ग धा र णा—"सघको यह चिह्न एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमाके लिये स्वीकार है, इसलिये चुप है—ऐसा इसे मै समझता हूँ।"

२—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्ने सीमा निर्णय करनेकी अनुमति दी है, बडी भारी चार योजन, पाँच योजन, छ योजनकी सीमानिश्चित करते थे। दूर होनेसे भिक्षु लोग उ पो स थ के लिये प्रातिमोक्षका पाठ करते वक्त भी आते थे। पाठ हो चुकनेपर भी आते थे। बीचमे भी रह जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! चार योजन, पाँच योजन, या छ योजनकी बहुत भारी सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अधिकसे अधिक तीन योजनकी सीमा निश्चित करनेकी।" 10

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नदीके परले पार तककी सीमा निश्चित करते थे। उपोसथके लिये आते वक्त भिक्षु बह जाते थे, (उनके) पात्र-चीवर भी बह जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नदीके पार सीमा नही निश्चित करनी चाहिये। जो निश्चित करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, ऐसी जगह नदीके पार भी सीमा निश्चित करनेकी जहाँ हमेशा रहनेवाली नाव, या हमेशा रहनेवाला पुल हो।" 11

(२) उपोसथागार निश्चित करना

१—उस समय भिक्षु लोग बारी-बारीसे प रि वे णो मे[1] बिना सूचना दिये प्रातिमोक्ष-पाठ करते थे। नये आये भिक्षु नही जानते थे कि कहाँ आज उ पो स थ होगा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बारी-बारीसे परिवेणमे बिना सूचना दिये प्रातिमोक्ष-पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ विहार, अटारी, प्रासाद, ह र्म्य या गुहा जिस किसीको सघ चाहे उ पो स था गा र[2]के लिए सम्मति लेकर उसमे उ पो स थ करनेकी। 12

"भिक्षुओ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते! सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार दे—यह सूचना है।"

---

[1] आँगन।

[2] उपोसथ करनेका शाल।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने, सघ इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार देता है, जिस आयुष्मान्को इस नामवाले विहारका उपोसथागार करार देना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको न पसन्द हो बोले। ।

ग धा र णा—"सघको इस नामवाले विहारको उपोसथागार करार देना स्वीकृत है, इसलिये चुप है—इसे मै ऐसा समझता हूँ।"

२—उस समय एक (भिक्षु-)आश्रममे दो उपोसथागार करार दिये गये थे। यह समझकर कि यहाँ उपोसथ होगा भिक्षु दोनो जगह एकत्रित होते थे। भगवान्से यह बात कही —

"भिक्षुओ ! एक आवास (=आश्रम)मे दो उपोसथागार नही करार देना चाहिये। जो करार दे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, एकको हटाकर दूसरेमे उपोसथ करनेकी। 13

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार त्याग करना चाहिये, चतुर, समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाले उपोसथागारको त्याग दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने। सघ इस नामवाले उपोसथागारको त्यागता है। जिस आयुष्मान्को इस नामवाले उपोसथागारका त्याग पसन्द हो वह चुप रहे, जिसको पसन्द न हो वह बोले।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाले उपोसथागारको त्याग दिया। सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

३—उस समय एक आवासमे वहुत छोटा उपोसथागार करार दिया गया था। एक उपोसथ (के दिन) बडा भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ। भिक्षुओने न करार दी हुई भूमिमे बैठकर प्रातिमोक्ष को सुना। तव उन भिक्षुओको ऐसा हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि उपोसथागारके लिये सम्मति लेकर उसमे उपोसथ करना चाहिये और हमने न करार दी हुई भूमिमे बैठकर प्रातिमोक्षको सुना। क्या हमारा उपोसथ करना ठीक हुआ या बेठीक ?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! चाहे करार दी हुई भूमिमे, चाहे करार न दी हुई भूमिमे प्रातिमोक्षको सुने, उपोसथका करना ठीक ही होता है। इसलिये भिक्षुओ ! सघ जितने बडे उपोसथके बरामदेको चाहे उतने वडे उपोसथके वरामदेको करार दे। 14

"और भिक्षुओ ! करार इस प्रकार देना चाहिये—पहले चिह्नोको बतलाना चाहिये। चिह्नो को वतलाकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। चारो ओर जिन चिह्नोकी सीमा वतलाई गई है उन चिह्नोसे घिरे उपोसथके बरामदेको यदि सघ उचित समझे तो करार दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने—चारो ओर जिन चिह्नोकी सीमा बतलाई गई है उन चिह्नोसे घिरे उपोसथके बरामदेको सघ करार देता है । इन चिह्नोसे घिरे वरामदेका उपोसथ करार देना जिस आयुष्मान्को पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह वोले।

ग धा र णा—"इन चिह्नोसे घिरे (स्थानका) उपोसथका वरामदा करार देना सघको स्वीकार है, इसलिये चुप है—इसे ऐसा मै समझता हूँ।"

४—उस समय एक आवासमे उपोसथके दिन नये नये भिक्षु सवसे पहिले ही एकत्रित हो, स्थविर भिक्षु नही आ रहे है, यह सोच चले गये और उपोसथ अपूर्ण हो गया। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन सवसे पहिले स्थविर भिक्षुओके एकत्रित होनेकी।" 15

(३) एक आवासमे उपोसथागारको संख्या और स्थान

१—उस समय रा ज गृ ह मे बहुतसे आवासोकी एक सीमा थी, जिसके लिये भिक्षु विवाद करते थे—हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय । भयवान्से यह बात कही—

"यदि भिक्षुओ ! बहुतसे आवासोकी एक सीमा हो जिससे भिक्षु हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय, हमारे आवासमे उपोसथ किया जाय, कहकर विवाद करे, तो भिक्षुओ ! उन सभी भिक्षुओको एक जगह एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये । और जहाँ स्थविर भिक्षु रहते है वहाँ एकत्रित हो उपोसथ करना चाहिये । (अलग) वर्ग बाँधकर सघको उपोसथ नही करना चाहिये । जो करे उसे दुक्कट का दोष हो ।" 16

२—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प अ ध क विं द से रा ज गृ ह उपोसथके लिये आते हुए नदी पार करते वक्त गिर गये और उनके चीवर भीग गये । भिक्षुओने आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछा—

"आवुस ! किसलिये तुम्हारे चीवर भीगे है ?"

"आवुसो ! आज मै अ ध क विं द से राजगृह उपोसथके लिये आ रहा था । रास्तेमे नदी पार करते गिर गया इसलिये मेरे चीवर भीगे है । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी जो सीमा सघने करार दी है सघ उस सीमाको तीन चीवरोका नियम न रखकर करार दे । 17

और भिक्षुओ ! इस प्रकार करार देना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने । सघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है, यदि सघ उचित समझे तो वह उस सीमाको तीन चीवरका नियम न रखकर करार दे—यह सूचना है ।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने । सघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है उस सीमाको सघ तीन चीवरका नियम न रखकर करार देता है । जिस आयुष्मान्को इस सीमामे तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो बोले ।

ग धा र णा—"सघको उस सीमाका तीन चीवरका नियम न रहनेका करार देना स्वीकृत है इसलिये चुप है—इसे मै ऐसा समझता हूँ ।"

(४) उपोसथमे आनेमे चीवरोका नियम

१—उस समय भिक्षु यह सोच कि भगवान्ने तीन चीवरके नियम न होनेके करार देनेकी अनुमति दी है, (गृहस्थोके) घरमे चीवरोको डाल आते थे और वह चीवर खो भी जाते थे, चूहोसे खा भी लिये जाते थे और भिक्षु कम कपडेवाले या रूखे चीवरोवाले हो जाते थे । (जब दूसरे) भिक्षु ऐसा पूछते—आवुसो ! क्यो तुम कम कपळेवाले रूखे चीवरो वाले हो ?"

"आवुसो ! हमने (यह सोचा कि) भगवान्ने तीन चीवरोके नियम न होनेके करार देनेकी अनुमति दी है, (गृहस्थोके) घरमे चीवरोको डाल आये थे और वे चीवर खो गये, जल गये, चूहोसे खा भी लिये गये, इसी कारण हम कम कपळेवाले या रूखे चीवरोवाले हो गये है । भगवान् से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सघने जो वह एक उपोसथवाले, एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी है सघ उस सीमाको ग्राम और ग्रामके टोलेके अपवादके साथ तीन चीवरका नियम न होनेका करार दे । 18

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करार देना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। सघने जो एक उपोसथवाले एक निवासस्थानकी सीमा करार दी है यदि सघ उचित समझे तो गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाको तीन चीवरोका नियम लागू न होना करार दें'—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! सघ मेरी सुनें—सघने जो एक उपोसथवाले एक निवास-स्थानकी सीमा करार दी थी गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ सघ उस सीमामे तीन चीवरोका नियम न होना करार देता है। जिस आयुष्मान्को गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ इस सीमामे तीन चीवरका नियम न होना, करार देना पसद हो वह चुप रहे, जिसे पसद न हो वह बोले। ।

ग धा र णा—"सघको गाँव और गाँवके टोलेके अपवादके साथ उस सीमाका तीन चीवरोका नियम न रखना करार देना पसन्द है, इसीलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(५) सीमा और चीवरके नियम

१—"भिक्षुओ ! सीमाके करार देते वक्त पहिले एक निवासकी सीमा करार देनी चाहिये। फिर तीन चीवरके नियम न रहनेको करार देना चाहिये। भिक्षुओ ! सीमाका त्याग करते वक्त पहले तीन चीवरके नियम न रहनेको त्यागना चाहिये, पीछे (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये। 19

"और भिक्षुओ ! तीन चीवरके नियम न रहनेको इस प्रकार त्यागना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। जो वह सघने तीन चीवरके नियम न रहनेको करार दिया था, यदि सघ उचित समझे तो उसे त्याग दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। जो वह सघने तीन चीवरके नियम न होनेको करार दिया था सघ उसे त्यागता है। जिस आयुष्मान्को यह तीन चीवरोके नियम न रहनेका त्याग पसद है वह चुप रहे, जिसको पसद नही है वह बोले।

ग धा र णा—"सघको पसद है, इसलिये चुप है—इसे मै ऐसा समझता हूँ।"

२—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (एक निवास-स्थानकी) सीमाको त्यागना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। सघने जो एक उपोसथवाले निवास-स्थानकी सीमा करार दी थी, यदि सघ उचित समझे तो सघ उस सीमाको त्याग दे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! सघ मेरी सुने। सघने जो वह एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा करार दी थी, सघ उस सीमाको त्यागता है। जिस आयुष्मान्को इस सीमाका त्याग पसद है वह चुप रहे, जिसको पसद नही है वह बोले। ।

ग धा र णा—"सघने उस सीमाको त्याग दिया, सघको यह पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

३—"भिक्षुओ ! सीमाके न करार देनेपर, न स्थापित किये जानेपर (भिक्षु) जिस गाँव या कस्बेका आश्रय लेकर रहता है उस गाँव या कस्बेकी जो सीमा है वही एक उपोसथवाला एक निवास-स्थान है। गाँव न होनेपर भिक्षुओ ! जगलके चारो ओर जो सात अवकाश है वही वहाँ एक उपोसथ वाले एक निवास-स्थानकी सीमा है। भिक्षुओ ! सभी नदियाँ असीम है, सभी समुद्र असीम है, सभी स्वाभाविक सरोवर असीम है। भिक्षुओ ! नदी, समुद्र, या स्वाभाविक सरोवरमे मझोले (कदके) पुरुषके चारो ओर जो पानीका घिराव होता है वही वहाँ एक उपोसथवाले एक निवास-स्थान की सीमा है।" 20

(६) सीमाके भीतर दूसरी सीमा नही

१—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु सीमाके भीतर सीमा डालते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई है उनका वह काम धर्मानुसार अटूट और यथार्थ है। भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पीछे करार दी गई है उनका वह काम धर्म-विरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ ! सीमाके भीतर सीमा न डालनी चाहिये। जो डाले उसे दु क्क ट का दोप हो।" 21

२—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु सीमामे सीमा लगाते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! जिनकी सीमा पहले करार दी गई हे उनका काम धर्मानुकूल, अटूट, यथार्थ है। जिनकी सीमा पीछे करार दी गई उनका काम धर्मविरुद्ध, टूटने लायक, अयथार्थ है। भिक्षुओ ! सीमामे सीमा नही लगानी चाहिये। जो लगाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सीमाको करार देते वक्त बीचमे फासिला रखकर मीमा करार देनेकी।" 22

(७) उपोसथोकी संख्या

१—उस समय भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—कितने उपोसथ है ? भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! चतुर्दशी, पचदशी (=पूर्णमासी)के यह दो उपोसथ है, । 23

२—भिक्षुओके (मनमे) यह हुआ—'कितने उपोसथ कर्म है ?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह चार उपोसथ कर्म है (१) (सघके कुछ) भागका धर्म-विरुद्ध (=नियम विरुद्ध) उपोसथ कर्म करना, (२) समग्र (सघ)का धर्म-विरुद्ध उपोसथ कर्म करना, (३) भागका धर्मानुकूल उपोसथ करना, (४) समग्रका धर्मानुकूल उपोसथ कर्म करना। इनमे भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध (कुछ) भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारका उपोसथ कर्म नही करना चाहिये। भिक्षुओ ! मैने इस प्रकारके उपोसथकर्म (करने)की अनुमति नही दी है। और भिक्षुओ ! जो यह धर्म-विरुद्ध समग्रका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नही करना चाहिये। मैने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नही दी है। ओर भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुकूल भागका उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको नही करना चाहिये। मैने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति नही दी। उनमे भिक्षुओ ! जो यह धर्मानुकूल समग्र(सघ)का उपोसथ कर्म है, भिक्षुओ ! इस प्रकारके उपोसथ कर्मको करना चाहिये। मैने इस प्रकारके उपोसथ कर्मकी अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! जो वह धर्मानुकूल समग्रका उपोसथ कर्म है उसे करूँगा—ऐसा भिक्षुओ ! तुम्हे सीखना चाहिये।"24

§ ३—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति और पूर्वके कृत्य

(१) आवृत्तिमे क्रम

१—तब भिक्षुओके (मनमे) ऐसा हुआ—'कितने प्रातिमोक्षके पाठ है ?' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यह पॉच प्रा ति मो क्ष के पाठ है—(१) नि दा न का पाठ करके बाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये—यह प्रथम प्रातिमोक्षका पाठ है, (२) निदानका पाठ करके चार पाराजिकोका पाठ करना चाहिये। शेपको स्मृतिसे सुनाना चाहिये, यह दूसरा प्रातिमोक्षका पाठ है,

(३) निदानका पाठ करके और चार पा रा जि को का पाठ करके और तेरह स घा दि से सो का पाठ करके बाकीको स्मृतिसे सुनाना चाहिये, यह तीसरा प्रातिमोक्षका पाठ है, (४) निदानका पाठ करके, चार पाराजिकोका पाठ करके, तेरह सघादिसेसोका पाठ करके, दो अ नि य तो का पाठ करके बाकीको सुने अनुसार सुनाना चाहिये, यह चौथा प्रातिमोक्षका पाठ है। (५) और विस्तारके साथ पाँचवाँ। भिक्षुओ ! यह पाँच प्रातिमोक्षके पाठ है ।" 25

उस समय भगवान्‌ने प्रातिमोक्षके पाठको सक्षेपसे कहनेकी अनुमति दी थी, इसलिये (भिक्षु) सर्वदा सक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दु क्क ट का दोष हो ।" 26

(२) आपत्कालमें सक्षिप्त आवृत्ति

१—उस समय को स ल देशके एक आवासमे उपोसथके दिन शवरो (के उपद्रव)का भय था (इसलिये) भिक्षु विस्तारके साथ प्रातिमोक्षका पाठ नही कर सके। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ अनुमति देता हूँ विघ्न होनेपर सक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी ।" 27

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बाधा न होनेपर भी सक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भगवान् से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! बाधा न होनेपर सक्षेपसे प्रातिमोक्षका पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बाधा होनेपर सक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठ करनेकी। वह बाधाएँ यह है—(१) राज-बाधा, (२) चोर-बाधा, (३) अग्नि-बाधा, (४) उदक-बाधा, (५) मनुष्य-बाधा, (६) अमनुष्य-बाधा, (७) हिसक-जतु-बाधा, (८) सरीसृप-बाधा, (९) जीवनकी बाधा, (१०) ब्रह्मचर्यकी बाधा,—भिक्षुओ ! ऐसे विघ्नोके होनेपर सक्षेपसे प्रातिमोक्षके पाठकी अनुमति देता हूँ, और बाधा न होनेपर विस्तारसे ।" 28

(३) याचना करनेपर उपदेश देना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सघके मध्यमे विना याचना किये ही धर्मोपदेश करते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! याचना किये बिना सघके बीचमे धर्मोपदेश नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको स्वय उपदेश करनेकी या दूसरेको (इसके लिये) प्रार्थना करनेकी ।" 29

(४) सम्मति होनेपर विनय पूछना

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु विना सम्मतिके सघके बीचमे विनय पूछते थे। भगवान्‌से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! बिना सम्मतिके सघके बीचमे विनयको नही पूछना चाहिये। जो पूछे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सम्मति पाये (भिक्षु)को सघके बीच विनय पूछनेकी । 30

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार सम्मति लेनी चाहिये—स्वय अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे स्वय अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये ?—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—भन्ते ! सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो मैं इस नाम

वाले भिक्षुसे विनय पूछूँ। इस प्रकार स्वय अपने लिये सम्मति लेनी चाहिये। कैसे दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये? चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे। भन्ते! सघ मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु), इस नामवाले (भिक्षु)से विनय पूछे। इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये सम्मति लेनी चाहिये।"

२—उस समय अच्छे भिक्षु (सघकी) सम्मतिसे सघके बीचमे विनय पूछते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओको प्रतिकूलता होती थी, नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सघके बीचमे (उसकी) सम्मतिसे परिषद्‌को देखकर व्यक्तिकी तुलना करके विनय पूछनेकी।" 31

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सघके बीचमे सम्मतिके बिना ही विनयका उत्तर देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! सम्मति न पाया सघके बीचमे विनयका उत्तर न देदे। जो उत्तर दे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सम्मति-प्राप्तको सघके बीचमे विनयका उत्तर देनेकी।" 32

"और भिक्षुओ! इस प्रकार समत्रणा करनी चाहिये—स्वय अपने लिये समत्रणा करनी चाहिये या दूसरेको दूसरेके लिये मत्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ! स्वय अपने लिये समत्रणा करनी चाहिये? चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—पूज्य सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो मै इस नामवाले (भिक्षु) द्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दूँ। इस प्रकार स्वय अपने लिये समत्रणा करनी चाहिये। कैसे भिक्षुओ! दूसरेको दूसरेके लिये समत्रणा करनी चाहिये?—'चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—पूज्य सघ मेरी सुने। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाला (भिक्षु) इस नामवाले भिक्षुद्वारा विनय पूछनेपर उत्तर दे।' इस प्रकार दूसरेको दूसरेके लिये समत्रणा करनी चाहिये।"

४—उस समय भले भिक्षु सम्मति पाकर सघके बीचमे विनयका उत्तर देते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओ-को प्रतिकूलता और नाराजगी होती थी, (और वह) वध करनेका डर दिखलाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सघके बीचमे सम्मति-प्राप्त द्वारा परिषद्‌की देख भालकर व्यक्ति-की तुलनाकर विनयके उत्तर देनेकी।"33

(५) अवकाश लेकर दोषारोप करना

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु मौका न दिये ही भिक्षुओपर दोष लगाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बिना अवकाश दिये भिक्षुको दोष नही लगाना चाहिये। जो दोष लगाये उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अवकाश कराके दोष लगानेकी। आयुष्मान् मेरे लिये अवकाश करे, मै तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ।" 34

२—उस समय भले भिक्षुओसे ष ड् व र्गी य भिक्षु अवकाश कराकर दोष लगाते थे। षड्वर्गीय भिक्षुओको डाह नाराजगी थी, और वह वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अवकाश करनेपर भी तुलना करके व्यक्तिको दोष लगानेकी।"

३—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु, भले भिक्षु हमसे पहले अवकाश कराते है (यह सोच) पहिले ही आपत्ति-रहित शुद्ध भिक्षुओको व्यर्थ, अकारण, अवकाश कराते थे। भगवान्‌से यह बात कही। 35

"भिक्षुओ! आपत्ति-रहित शुद्ध भिक्षुओको व्यर्थ अकारण अवकाश (Point of order)

नही करना चाहिये, जो कराये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ व्यक्तिको तोलकर अवकाश करानेकी।"36

(६) नियम-विरुद्ध कामके लिये फटकार

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सघके बीचमे अधर्मका (=सभाके नियमके विरुद्ध) काम करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधर्मका काम नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।"37

तिसपर भी अधर्मका काम करते ही थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधर्मका काम करनेपर धिक्कारनेकी।" 38

२—उस समय भले भिक्षु षड्वर्गीय भिक्षुओको अधर्मके काम करनेपर धिक्कारते थे । षड्-वर्गीय भिक्षु द्रोह करते नाराज होते थे और वध करनेकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ देखेको प्रगट करनेकी।" 39

३—उन्ही षड्वर्गीय (भिक्षुओ)के पास देखेको प्रकट करते थे (इसपर) षड्वर्गीय भिक्षु द्रोह करते, नाराज होते और वधकी धमकी देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार पाँच (व्यक्तियो) द्वारा धिक्कारनेकी और दो तीन द्वारा देखेको प्रकट करनेकी, और एकको 'यह मुझे पसन्द नही है' ऐसा अधिष्ठान करनेकी।" 40

(७) प्रातिमोक्षको ध्यानसे सुनाना

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सघके बीचमे प्रातिमोक्षका पाठ करते हुए जानबूझकर नही सुनाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष पाठ करनेवालेको जानबूझकर-न-सुनाना नही करना चाहिये । जो न सुनाये उसे दुक्कटका दोष होता है।" 41

(८) प्रातिमोक्षकी आवृत्तिमे स्वर-नियम

उस समय आयुष्मान् उ दा यि सघके प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवाले थे। उनका स्वर कौवे जैसा था। तब आयुष्मान् उ दा यि को ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है प्रातिमोक्ष-पाठ करने वालेको (जोरसे) सुनानेका, और मै काक जैसे स्वरवाला हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, प्रातिमोक्ष-पाठ करनेवालेको (जोरसे) सुनानेके लिये कोशिश करनेकी, कोशिश करनेवालेको दोष नही ।" 42

(९) कहाँ और कब प्रातिमोक्षकी आवृत्ति निषिद्ध है

१—उस समय देवदत्त गृहस्थोसे युक्त परिषद्‌मे प्रातिमोक्ष-पाठ करता था । भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ-युक्त परिषद्‌मे प्रातिमोक्ष-पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 43

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना कहे ही सघके बीचमे प्रातिमोक्षका पाठ करते थे। भग-वान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! बिना प्रार्थना किये सघके बीचमे प्रातिमोक्ष-पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्थविरके आश्रयसे प्रातिमोक्षकी।" 44

अन्यतीर्थिक भाणवार समाप्त ॥१॥

२—चोदनावत्थु

तव भगवान् राजगृहमे इच्छानुसार विहार करके चोदनावत्थुकी ओर विचरनेके लिये चल पळे। क्रमश विचरते जहाँ चोदनावत्थु था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् चोदनावत्थु (=चोदना-वस्तु)मे विहार करते थे।

(१०) प्रातिमोक्षकी आवृत्ति कैसा भिक्षु करे

१—उस समय एक आवासमे वहुतसे भिक्षु रहते थे। वहाँका स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु मूर्ख अजान था। वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानता था। तव उन भिक्षुओ(के मनमे) यह हुआ—'भगवान्‌ने स्थविर (=वृद्ध)के आश्रयसे प्रातिमोक्षका विधान किया है। और यह हमारा स्थविर मूर्ख, अजान है। यह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्राति-मोक्ष-पाठको नही जानता। हमे कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, वहाँ जो भिक्षु चतुर, समर्थ हो, उसके आश्रयमे प्रातिमोक्ष हो।"45

२—उस समय उपोसथ के दिन एक आवासमे वहुतसे मूर्ख, अजान भिक्षु रहते थे, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते थे। उन्होने स्थविरसे प्रार्थना की—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करे।' उसने उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नही है।' दूसरे स्थविरसे प्रार्थना की—०। तीसरे स्थविरसे प्रार्थना की—"भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करे।' उसने भी उत्तर दिया—'आवुसो! मेरे लिये (यह) नही है।' इसी प्रकारसे सघके (सवसे) नये (भिक्षु)तकसे प्रार्थना-की— 'आयुष्मान् प्रातिमोक्ष-पाठ करे।' उसने भी उत्तर दिया—'भन्ते! मेरे लिये (यह) नही है।' भगवान्‌से यह वात कही—

'यदि भिक्षुओ! एक आवासमे वहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपो-सथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वह स्थविर (=भिक्षु)से प्रार्थना करते है—'भन्ते! स्थविर प्रातिमोक्ष-पाठ करे' और वह ऐसा कहे—'मेरे लिये यह करना नही है।' ० इसी प्रकार सघके (सवसे) नये (भिक्षु)से प्रार्थना करते है—'आयुष्मान्! प्रातिमोक्षका पाठ करे।' वह भी ऐसा कहे—'यह मेरे लिये करना नही है।' तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको एक भिक्षु यह कहकर चारो ओर आवासमे भेजना चाहिये—जा आवुस! सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको याद करके आजा।"

तव भिक्षुओको ऐसा हुआ 'किसके द्वारा भेजना चाहिये?' भगवान्‌से कहा।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 46

३—स्थविरके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नही जाते थे। भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ! स्थविरके आज्ञा देनेपर नीरोग (भिक्षु)को जानेसे इनकार नही करना चाहिये। जो जानेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

३—राजगृह

(११) काल और अकको विद्या सीखनी चाहिये

१—तव भगवान् चोदनावत्थुमे इच्छानुसार विहार करके फिर राजगृह चले आये। उस समय भिक्षाटन करते भिक्षुओसे लोग पूछते थे—'भन्ते! पक्षकी (आज) कौन (तिथि) है?' भिक्षु ऐसा वोलते थे—'आवुसो! हमे मालूम नही।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण पक्ष-की गणना मात्रको भी नही जानते। यह और भली वात क्या जानेगे!' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पक्षकी गणना सीखनेकी।" 48

तव भिक्षुओके (मनमे) यह हुआ—'किनको पक्ष-गणना सीखनी चाहिये?' भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सवको ही पक्ष-गणना सीखनेकी।"49

२—उस समय लोग भिक्षाटन करते भिक्षुओसे पूछते थे—'भन्ते ! भिक्षु कितने है ?' भिक्षु ऐसा बोलते थे—'आवुसो ! हमे मालुम नही।' लोग हैरान होते थे—'यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण एक दूसरेको भी नही जानते और यह क्या किसी भली बातको जानेगे !' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओके गिननेकी।" 50

३—तब भिक्षुओके (मनमे) यह हुआ—'भिक्षुओकी गणना अब करनी चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथके दिन नाम लेकर या शलाका बाँटकर गिन्ती करनेकी।" 51

(१२) उपोसथके समयकी पूर्वसे सूचना

१—उस समय आज उपोसथ है—यह न जानकर दूरके गाँवको भिक्षाटनके लिये चले जाते थे और वह (उपोसथमे) प्रातिमोक्षके पाठ करते वक्त भी पहुँचते थे, पाठके समाप्त हो जानेपर भी पहुँचते थे।—भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, आज उपोसथ है, इसको बतलानेकी।" 52

२—तब भिक्षुओके (मनमे) यह हुआ—'किसको कहना चाहिये ?'—भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अधिक बूढे स्थविर भिक्षुको बतलानेकी।" 53

३—उस समय एक अधिक वृद्ध स्थविर याद नही रखता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, भोजनके वक्त बतलानेकी।" 54

४—भोजनके समय भी नही याद रखता। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जिस समय याद हो उसी समय बतलानेकी।" 55

(१३) उपोसथागारकी सफाई आदि

१—(क) उस समय एक आवासमे उपोसथागार मलिन रहता था। नये आनेवाले भिक्षु हैरान होते थे—'क्यो भिक्षु उपोसथागारमे झाळू नही देते !' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उपोसथागारमे झाळू देनेकी।" 56

(ख) तब भिक्षुओको ऐसा हुआ—'किसे उपोसथागारमे झाळू देना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 57

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नये भिक्षु नही झाळू देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते झाळू देनेसे इनकार नही करना चाहिये। जो झाळू देनेसे इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 58

२—(क) उस समय उपोसथागारमे आसन बिछा नही होता था। भिक्षु भूमिपर ही बैठ जाते थे, जिससे शरीर भी, चीवर भी मैले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमे आसन बिछानेकी।" 59

(ख) तब भिक्षुओको ऐसा हुआ—'उपोसथागारमे किसे आसन बिछाना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, स्थविर भिक्षुको नये भिक्षुके लिये आज्ञा देनेकी।" 60

(ग) स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर भी नये भिक्षु नही मानते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! स्थविर भिक्षुके आज्ञा देनेपर नीरोग होते इनकार नही करना चाहिये। जो इनकार करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 61

३—(क) उस समय उपोसथागारमे दीपक नही होता था। भिक्षु अधकारमे शरीरको भी चहल देते थे, चीवरको भी चहल देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उपोसथागारमे दीपक जलानेकी।" [१] । 62

§४—असाधारण अवस्थामें उपोसथ

(१) लम्बी यात्राके लिये आज्ञा

उस समय बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षुओने लबी यात्राको जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यहाँ बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु लम्बी यात्रा जाते वक्त आचार्य उपाध्यायसे नही पूछते। भिक्षुओ! उन्हे आचार्य उपाध्यायसे पूछना चाहिये कि वह कहाँ जायँगे किसके साथ जायँगे। भिक्षुओ! यदि वह मूर्ख अजान भिक्षु दूसरे मूर्ख अज्ञान भिक्षुओको साथी बतलाये तो आचार्य उपाध्यायोको अनुमति नही देनी चाहिये। यदि अनुमति दे तो दुक्कटका दोप हो, और यदि भिक्षुओ! वह मूर्ख अजान भिक्षु आचार्य उपाध्यायकी अनुमति विना ही चले जायँ तो उन्हे दुक्कटका दोष हो।" 63

(२) प्रातिमोक्ष जाननेवाला भिक्षु न होनेपर आवासमे नही रहना चाहिये

"(क) यदि भिक्षुओ! एक आवासमे बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते हे और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, वहाँ दूसरे बहुश्रुत (=विद्वान्), आ ग म (=बुद्ध उपदेश)को जाननेवाले है, ध र्म ध र (=बुद्धके सुत्तोको जाननेवाले), विनयधर (=भिक्षु नियमोको याद रखनेवाले), मा त्रि का ध र (=सुत्तोमे आई दर्शन-सबधी पक्तियोको याद रखनेवाले), पडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, सकोची और सीख चाहनेवाले भिक्षु आवे तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको उस भिक्षुका सग्रह करना चाहिये=अनुग्रह करना चाहिये, (आवश्यक वस्तुएँ) प्रदान करनी चाहिए। (स्नान) चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेके पानीसे सेवा करनी चाहिये। यदि सग्रह=अनुग्रह, (आवश्यक वस्तु) प्रदान, चूर्ण, मिट्टी, दतौन, मुँह धोनेका पानी द्वारा सेवा न करे तो दुक्कटका दोप हो। (ख) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु रहते है और वह उपोसथ या उपोसथ कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठको नही जानते तो भिक्षुओ उन भिक्षुओको आवासके चारो ओर (यह कहकर) एक भिक्षुको भेजना चाहिये—आवुस! जा सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख कर चला आ। इस प्रकार यदि हो जाय तो अच्छा नही तो उन सभी भिक्षुओको, जहाँ उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ जाननेवाले रहते है उस आवासमे चला जाना चाहिये, यदि न चले जायँ तो दुक्कटका दोष हो। (ग) यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे मूर्ख अजान भिक्षु वर्षावास करते है, वह उपोसथ या उपोसथ-कर्म, प्रातिमोक्ष या प्रातिमोक्ष-पाठ नही जानते, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको (अपनेमेसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आवासके चारो ओर भेजना चाहिये—जा आवुस, सक्षेप या विस्तारसे प्रातिमोक्षको सीख आ। इस प्रकार यदि मिले तो अच्छा, नही तो भिक्षुओ! उन्हे उस आवासमे वर्षावास नही करना चाहिये, यदि वर्षावास करे तो उन्हे दुक्कटका दोप हो।" 64

---

[१] आसन और झाळू देनेके प्रकरणके समानही यहाँ भी पाठ है।

(३) उपोसथ या संघकर्ममे अनुपस्थित व्यक्तिका कर्तव्य

१—तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (सब लोग) जमा हो जाओ, सघ उपोसथ करेगा।"

ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! एक भिक्षु रोगी है। वह नही आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको (अपनी) शुद्धि (की बात) भेजनेकी।" 65

"और भिक्षुओ ! (शुद्धिकी बात) इस प्रकार भेजनी चाहिये—उस रोगीको एक भिक्षुके पास जाकर उ त्त रा स ग को एक कधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—'शुद्धि देता हूँ, मेरी शुद्धिको ले जाओ, मेरी शुद्धिको (सघमे जाकर) कहना।' इस प्रकार कायासे सूचित करे, वचनसे सूचित करे, काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई (समझी) जाती है। यदि न कायासे सूचित करे, न वचनमे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे तो शुद्धि भेजी गई नही होती। इस प्रकार यदि कर सके तो ठीक, यदि न कर सके तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु चारपाई, या चौकीपर (बैठाकर) सघके बीचमे लाया जाय, और उपोसथ करे। यदि भिक्षुओ ! रोगीके परिचारक भिक्षुओको ऐसा हो—'यदि हम रोगीको उसकी जगहसे हटायेंगे तो रोग वढ जायगा या मृत्यु होगी', तो भिक्षुओ ! रोगीको उस जगहसे नही हटाना चाहिये। (वल्कि) सघको वहाँ जाकर उपोसथ करना चाहिये, किन्तु सघके एक भागको उपोसथ नही करना चाहिये, यदि करे तो दु क्क ट का दोष हो।

"यदि भिक्षुओ ! शुद्धि (की वात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला वहाँसे चला जाय तो शुद्धि दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि (की वात कह) देनेपर शुद्धि ले जानेवाला (भिक्षु-पनसे) निकल जाये या मर जाये या श्रामणेर वन जाये, या भिक्षु-नियमको त्याग दे, या अन्तिम अपराध (= पा रा जि क)का अपराधी हो जाये, या पागल विक्षिप्त-चित्त, मूर्छित हो जाये, या दोप न स्वीकार करनेसे उ त्क्षि प्त क हो जाये, या दोष या दोपके कामसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या वुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे, पडक माना जाने लगे, चोरीसे भिक्षु-वस्त्र पहननेवाला माना जाने लगे, या तीथिकोमे चला गया हो, या तिर्यक् योनिमे चलागया माना जाने लगे, मातृघातक ०, पितघातक०, अर्हत्-घातक०, भिक्षुणी-दूपक०, सघमे फूट डालनेवाला०, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला०, (स्त्री-पुरुप) दोनोके लिगवाला माना जाने लगे, तो दूसरेको शुद्धि-प्रदान करनी चाहिये। भिक्षुओ ! यदि शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके वाद चला जाये तो शुद्धि नही ले जाई गई समझनी चाहिये। भिक्षुओ ! यदि शुद्धि ले जाने वाला शुद्धिके दे देनेके वाद रास्तेमे ही (भिक्षु आश्रमसे) निकल जाय०[1] (स्त्री-पुरुप) दोनोके लिंगवाला माना जाने लगे तो शुद्धि ले जाई गई समझनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धि दे देनेके वाद सघमे जाकर सो जानेसे नही वतलाता, प्रमाद करनेसे नही बोलता, (अपराध) करनेसे नही वोलता तो शुद्धि ले जाई गई होती है। और शुद्धि ले जानेवालेको दोप नही। यदि भिक्षुओ ! शुद्धि ले जानेवाला शुद्धिके दे देनेके वाद सघमे पहुँचकर जान बूझकर नही वतलाता, तो भी शुद्धि ले जाई गई होती है, और शुद्धि ले जानेवालेको दुक्कटका दोष होता है।" 66

२—तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया। "भिक्षुओ ! जमा हो। सघ (विवाद-निर्णय आदि) कर्मको करेगा।"

ऐसा कहने पर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—"भन्ते ! एक भिक्षु रोगी है, नही आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको (अपना) छद (=सम्मति, vote) भेजने की।" 67

---

[1] पहलेहीकी तरह दुहराना चाहिये।

"और भिक्षुओ ! छ द इस प्रकार भेजना चाहिये—०[1]। छ द ले जानेवाला छ द के दे देनेके बाद सघमे पहुँचकर जान बूझकर नही वतलाता, तो भी छ द ले जाया गया होता है, और छद ले जानेवालेको दु क्क ट का दोष होता है। भिक्षुओ ! अनमति देता हूँ उपोसथके दिन शुद्धि देते वक्त छदके भी देनेकी, यदि सघको कुछ करणीय हो।"

३—उस समय एक भिक्षुको उपोसथके दिन उसके खान्दानवालोने पकळ लिया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको उसके खान्दानवाले पकळ ले तो (दूसरे) भिक्षुओ-को खान्दानवालोसे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा हो आयुष्मानो ! तुम मुहूर्त भर इस भिक्षुको छोळ दो जितनेमे कि यह भिक्षु उपोसथ करले।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षुओको खान्दानवालोसे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मानो ! मुहूर्त भरके लिये जरा एक ओर हो जाओ, जितनेमे कि यह भिक्षु अपनी शुद्धि दे दे।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भिक्षु खान्दान वालोसे ऐसा कहे—'आयुष्मानो ! तुम लोग मुहूर्त भरके लिये इस भिक्षुको सीमाके वाहर ले जाओ जितनेमे कि सघ उपोसथ करले।' इस प्रकार यदि हो सके तो अच्छा, यदि न हो सके तो भी सघके एक भागको उपोसथ नही करना चाहिये, यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।" 68

४— "भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको राजा पकळे, ०। 69

५—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको चोर पकळे, ०। 70

६—" ० वदमाश पकळे, ०। 71

७—"०भिक्षुके शत्रु पकळे, ०। 72

(४) पागलके लिये सघकी स्वीकृति

८—तब भगवान्ने भिक्षुओको सवोधित किया—"भिक्षुओ ! जमा हो। सघको करणीय (काम) है।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! एक ग र्ग नामवाला भिक्षु उन्मत्त है। वह नही आया।"

"भिक्षुओ ! यह दो प्रकारके उन्मत्त होते है—(१) भिक्षु उन्मत्त है और उपोसथको याद भी रखता है नही भी रखता है, (२) भिक्षु उन्मत्त है और सघ कर्मको याद भी रखता है, नही भी रखता है, है लेकिन (उपोसथ) नही याद रखता, उपोसथमे आता भी है नही भी आता, सघ-कर्ममे आता भी है नही भी आता, है किन्तु नही आता। "भिक्षुओ ! उनमे जो वह उन्मत्त-पागल, उपोसथको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, सघ-कर्मको याद भी रखता है नही भी याद रखता, उपोसथमे आता भी है, नही भी आता, सघ-कर्ममे आता भी है, नही भी आता, भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे उन्मत्तके लिये उन्मत्त होनेके ठहराव करनेकी। 73

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने, ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है, वह उपोसथको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, सघ-कर्मको याद भी रखता है, नही भी याद रखता, उपोसथमें आता भी है, नही भी आता, सघ-कर्ममे आता भी है, नही भी आता। यदि सघ उचित समझे तो वह ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करे। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे, सघ-कर्मको याद रखे

[1] शुद्धि भेजनेकी तरह ही सभी वाते यहाँ भी दुहरानी चाहिए।

या न रखे, उपोसथमे आये या न आये, सघ-कर्ममे आये या न आये, सघ ग र्ग भिक्षुके साथ या उसके विना उपोसथ करे, सघ-कर्म करे—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण—(१) "भन्ते ! सघ मेरी सुने—ग र्ग भिक्षु उन्मत्त है। वह उपोसथको याद भी रखता है नही भी रखता० सघ ग र्ग भिक्षुके उन्मत्त होनेका ठहराव करता है। ग र्ग भिक्षु चाहे उपोसथको याद रखे या न रखे, सघ-कर्मको याद रखे या न रखे, उपोसथमे आये या न आये, सघ-कर्ममे आये या न आये। सघ ग र्ग भिक्षुके विना उपोसथ करेगा, सघ-कर्म करेगा। जिस आयुष्मान्को ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव०, पसन्द है वह चुप रहे, जिसको पसद नही है वह बोले। ।

ग धा र णा—"सघने ग र्ग भिक्षुके लिये उन्मत्त होनेका ठहराव स्वीकार किया० सघ ग र्ग भिक्षुके साथ या गर्ग भिक्षुके विना उपोसथ करेगा, सघ-कर्म करेगा। यह सघको पसद है, इसलिये चुप है—इसे मै ऐसा समझता हूँ।"

(५) उपोसथके लिये अपेक्षित वर्ग-सख्या

उस समय एक आवासमे उपोसथके दिन चार भिक्षु रहते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने उपोसथ करनेका विधान किया है ओर हम चार ही जने है, कैसे हमे उपोसथ करना चाहिये।' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चार (भिक्षुओ)के प्रातिमोक्ष-पाठकी।" 74

(६) शुद्धिवाला उपोसथ

१—उस समय एक आवासमे उपोसथके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने चार भिक्षुओके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और हम तीन ही जने है। कैसे हमे उपोसथ करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, तीनको शुद्धिवाले उपोसथके करनेकी।" 75

"और इस प्रकार करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—'आयुष्मानो ! मेरी सुनो, आज उपोसथ है। यदि आयुष्मानोको पसद हो तो हम एक दूसरेके साथ शुद्धि वाला उपोसथ करे।' (तव) स्थविर भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासगकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुसो ! मै दोषोसे शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो, आवुसो ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो, आवुसो मै शुद्ध हूँ मुझे शुद्ध समझो !' नये भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासगकर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे, भन्ते ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे, भन्ते ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे।' "

२—उस समय एक आवासमे उपोसथके दिन दो भिक्षु रहते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने चारके प्रातिमोक्ष-पाठकी अनुमति दी है और तीनको शुद्धिवाले उपोसथको करनेकी किन्तु हम दो ही जने है, कैसे हमे उपोसथ करना चाहिये?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी।" 76

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये—(पहले) स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको उत्तरासग एक कधेपर कर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, नये भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो, आवुस ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो, आवुस ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझो।' (फिर) नये भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासगकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ, स्थविर भिक्षुसे कहना चाहिये—'भन्ते ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे, भन्ते ! मे शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे, भन्ते ! मै शुद्ध हूँ, मुझे शुद्ध समझे।' "

३—उस समय उस आवासमे उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है चारको प्रातिमोक्ष-पाठ करनेकी, तीनको शुद्धिवाला उपोसथ, दोको शुद्धिवाला उपोसथ करनेकी, किन्तु मै अकेला हूँ, मुझे कैसे उपोसथ करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे उपोसथके दिन एक भिक्षु रहता है तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला (=चौपाल), मडप, वृक्ष-छायामे भिक्षु आया करते है, उस स्थानको झाळू दे, पीने और इस्तेमाल करनेके पानीको रख, आसन बिछा, दीपक जला बैठना चाहिये। यदि दूसरे भिक्षु आवे तो उनके साथ उपोसथ करना चाहिये। यदि न आये तो, आज मेरा उपोसथ है, ऐसा दृढ सकल्प (=अधिष्ठान) करना चाहिये। यदि अ धि ष्ठा न न करे तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! जहाँ पर चार भिक्षु रहे, वहाँ एककी शुद्धि लाकर तीनको प्रा ति मो क्ष-पाठ नही करना चाहिये। यदि पाठ करे तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! जहाँपर तीन भिक्षु है, वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बाकी) दोको शुद्धिवाला उपोसथ नही करना चाहिये। यदि करे तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ ! जहाँपर दो भिक्षु है वहाँ एककी शुद्धि लाकर (बचे एकको) अ धि ष्ठा न न करना चाहिये। यदि अधिष्ठान करे तो दुक्कटका दोष हो।" 77

(७) उपोसथके दिन दोषोंका प्रतिकार

उस समय उपोसथके दिन एक भिक्षुसे दोप (=अपराध) हो गया। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्ने विधान किया है कि सदोप (भिक्षु)को उपोसथ नही करना चाहिये, और मै सदोष हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

१—"भिक्षुओ ! यदि उपोसथके दिन किसी भिक्षुको दोप याद आया हो, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षु को एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासग एक कधेपर कर उकळू बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोलना चाहिये—'आवुस ! मुझसे ऐसा दोष हुआ है। उसकी मै प्र ति दे श ना (=अपराध-स्वीकार, Confession) करता हूँ' (और) उस (दूसरे भिक्षु)को कहना चाहिये—'क्या तुम देखते हो (अपने दोषको) ?"

'हाँ देखता हूँ।'

'आगेके लिये बचाव करना।' 78

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुको उपोसथके दिन दोप (किया या नही किया इसमे) सदेह हो तो उस भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर उत्तरासग एक कधेपर कर उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—

'आवुस ! मै इस नामवाले दोषके विपयमे सदेहमे पळा हूँ। जब सदेह-रहित होऊँगा तो उस दोषका प्रतिकार करूँगा'—इस प्रकार कह वह उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष सुने। उसके लिए उपोसथ मे रुकावट नही करनी चाहिये।" 79

(८) दोपका प्रतिकार कैसे और किसके सामने

१—(क) उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अधूरे दोपकी दे श ना (=अपराध-स्वीकार) करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधूरे दोषकी दे श ना नही करनी चाहिये। जो (अधूरी) देशना करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 80

(ख) उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु अधूरे दोप (की दे श ना करनेपर उस)को ग्रहण करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को नही ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे दु क्क ट का दोष हो ।" 81

२—उस समय एक भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आया। तब उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि सदोष (भिक्षु)को उ पो स थ नही करना चाहिये, और मै सदोष हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि किसी भिक्षुको प्रातिमोक्ष-पाठके समय दोष याद आये तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको अपने पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! मैने इस नामवाले दोषको किया है। यहाँसे उठकर मै उस दोषका प्रतिकार करूँगा ।' (यह) कह उ पो स थ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये, उसके लिये उपोसथमे रुकावट न डालनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष-पाठके समय किसी भिक्षुको दोषके विषयमे सदेह हो तो उस भिक्षुको पासके भिक्षुसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! मुझे इस नामवाले दोषके विषयमे सदेह है। जब सदेह-रहित हूँगा तब उस दोषका प्रतिकार करूँगा।' (यह) कह उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष सुनना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोळना नही चाहिये।" 82

३—(क) उस समय एक आवासमे उपोसथके दिन सभी सघमे अधूरा दोष हुआ था। तब उन भिक्षुओको ऐसा हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि अधूरे दोषकी प्र ति दे श ना नही करनी चाहिये, न अधूरे दोष(की प्र ति दे श ना)को ग्रहण करना चाहिये। और इस सारे सघसे अधूरा दोष हुआ है। हमे कैसा करना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! यदि किसी आवासमे उपोसथके दिन सारे सघसे अधूरा (=सभाग) दोष हुआ हो, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको (अपनेमेसे) एक भिक्षुको पासवाले आवासोमे (यह कहकर) भेजना चाहिये—'आवुस ! जा, इस दोषका प्रतिकार कर चला आ। फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेगे।' यदि ऐसा हो सके तो अच्छा, न हो सके तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने—इस सारे सघसे अधूरा दोष हुआ है (सघ) जब दूसरे दोष-रहित शुद्ध भिक्षुको देखेगा तो उसके पास उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह उपोसथ करना चाहिये, प्रातिमोक्ष पढना चाहिये। उसके लिये उपोसथको छोळ नही देना चाहिये। 83

(ख) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे उपोसथके दिन सारे सघको सभाग दोषके होनेमे सन्देह हो गया हो तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—भन्ते ! सघ मेरी सुने। इस सारे सघको सभाग दोषके विषयमे सदेह है। जब वह सदेह-रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह उपोसथ करे। प्रातिमोक्षका पाठ करे उसके लिये उपोसथको छोळ नही देना चाहिये। 84

(ग) "यदि भिक्षुओ ! एक आवासमे वर्षावास करते सघसे सभाग दोष हो गया हो तो उन भिक्षुओको (अपनेमेसे) एक भिक्षुको (यह कहकर) आस-पासके आवासमे भेजना चाहिये—'जा आवुस ! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ, (फिर) हम तेरे पास उस दोषका प्रतिकार करेगे।' यदि यह हो सके तो अच्छा है, न हो सके तो एक भिक्षुको सप्ताह भरके लिये (यह कहकर) भेजना चाहिये—'जा आवुस ! उस दोषका प्रतिकार कर चला आ, फिर हम तेरे पास दोषका प्रतिकार करेगे।' " 85

४—उस समय एक आवासमे सारे सघसे सभाग दोष हुआ था और वह उस दोषके नाम-गोत्रको नही जानता था। तब वहाँ एक दूसरा बहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मात्रिका-धर, पडित, चतुर, मेधावी, लज्जा-शील, सकोची और सीखनेकी चाहवाला भिक्षु आया। तब उसके पास एक भिक्षु गया। जाकर उस भिक्षुसे यह बोला—

"आवुस ! जो ऐसा ऐसा काम करे वह किस दोषका भागी होता है?"

उसने जवाब दिया—"आवुस ! जो ऐसा ऐसा करे वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुस ! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

उसने कहा—"आवुस ! मै अकेलाही इस दोषका भागी नही हूँ। इस सारे सघसे यह दोष हुआ है।"

दूसरेने कहा—"आवुस ! दूसरेके सदोप या निर्दोष होनेसे तुम्हे क्या? आवुस ! तू अपने दोषको हटा।"

तब उस भिक्षने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार कर जहाँ उसके साथी दूसरे भिक्षु थे वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओसे यह बोला—

"आवुस ! जो ऐसे ऐसे (काम)को करता है, वह इस नामवाले दोषका भागी होता है। आवुसो ! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।"

परन्तु उन भिक्षुओने उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करना नही चाहा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि किसी आवासमे सारे सघसे सभाग दोष हुआ हो०[1] आवुसो ! तुम इस नामवाले दोषके भागी हो, सो उस दोषका प्रतिकार करो।' यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु, उस भिक्षुके वचनसे उस दोषका प्रतिकार करे तो ठीक, यदि प्रतिकार न करे तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको उस भिक्षुसे अनिच्छुक नही रहना चाहिये।" 86

चोदनावस्तु भाणवार समाप्त ॥२॥

§५–कुछ भिक्षुओंको अनुपस्थितिमें किये गये नियम-विरुद्ध उपोसथ

(१) अन्य आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिमे आश्रमवासियोका उपोसथ

क. (a) अन्य आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिको जानकर दोषरहित उपोसथ

उस समय एक आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु, उपोसथके दिन एकत्रित हुए। उन्होने नही जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। उन्होने धर्म समझ, विनय समझ (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ किया, प्रातिमोक्ष-पाठ किया। उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक थे, आ गये। भगवान्से यह बात कही।—

१—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे न जाने कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये, वे धर्म समझ, विनय समझ, (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है आजायँ तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (फिरसे) पाठ करनेवालोको दोप नही। 87

(२) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-

---

[1] देखो ऊपर।

वासी भिक्षु एकत्रित होते है, वह नही जानते कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये है। वे धर्म समझ, विनय समझ, (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो सख्यामे समान हो—आजायँ तो जो पाठ हो चुका वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दोष नही। 88

(३) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हो और वे न जाने कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वे धर्म समझ, विनय समझ, (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम है० तो जो पाठ हो चुका वह ठीक, बाकीको वह भी सुने। पाठ करनेवालोको दोष नही। 89

२—(४) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षपाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दोप नही। 90

(५) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान है, आजायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका मो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओको) शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दोष नही। 91

(६) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु—जो सख्यामे उनसे कम है—आजायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक। उनके पास (आये भिक्षुओको) शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दोष नही। 92

३—(७) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है आजायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, (पहले) पाठ करनेवालोको दोष नही। 93

(८) "यदि भिक्षुओ! किमी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हो० और प्रातिमोक्ष-पाठकर चुकने किन्तु परिपद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रम-वासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान है, आजायँ तो भिक्षुओ होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दोप नही। 94

(९) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रम-वासी भिक्षु एकत्रित हो०और प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर भी दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम है, आजायँ, तो भिक्षुओ! होगया पाठ ठीक। उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दोष नही। 95

४—(१०) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। (पहले) पाठ करनेवालोको दोप नही। 96

(११) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी

भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी जो सख्यामे उनके समान हो आजायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शु द्धि बतलानी चाहिये । पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोप नही । 97

(१२) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आजायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोष नही। 98

५—(१३) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)को दोष नही। 99

(१४) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारे परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)का दोप नही। 100

(१५) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे उपोसथके दिन बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हो० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथासारी परिषद्के उठ जाने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ,तो भिक्षुओ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले (भिक्षुओ)का दोष नही।" 101

पन्द्रह अदोषता समाप्त ।

(b) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिको जानकर किया गया दोषयुक्त उपोसथ

६—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे वहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वे धर्म समझ, विनय समझ, (सघका एक) भाग होते भी (अपनेको) समग्र समझ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है, आजायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 102

(२) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो० और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवामी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ होगया वह ठीक, वाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 103

(३) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ होगया वह ठीक, वाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 104

७—(४) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक है, आजायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको

फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 105

(५) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने०और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 106

(६) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 107

८—(७) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 108

(८) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ होगया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 109

(९) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठने पर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करने वालोको दुक्कटका दोष है। 110

९—(१०) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 111

(११) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओको दुक्कटका दोष है। 112

(१२) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जानें० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओको दुक्कटका दोष है। 113

१०—(१३) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 114

(१४) "यदि० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने० और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओको

दु क्क ट का दोष है। 115

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० और उनके प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ, तो भिक्षुओ ! पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवाले भिक्षुओ-को दु क्क ट का दोष है।" 116

पन्द्रह वर्ग-अवर्गके ज्ञान समाप्त

(c) अन्य आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिमे सन्देहके साथ किया गया दोष-युक्त-उपोसथ

११—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक-आश्रमवासी भिक्षु उ पो स थ के दिन एकत्रित हो और वे जाने कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वह—हमे उपोसथ करना युक्त है या नही—इसमे सन्देह युक्त होते उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे, और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जाये, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और (पहले) पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 117

(२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ०, सन्देह युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जाये, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने, पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 118

(३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वे जाने ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्राति-मोक्ष-पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ जाये, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, 'बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 119

१२—(४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजाये, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये, और पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 120

(५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ०, सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आजाये, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 121

(६) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने पर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आजाये तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोष है। 122

१३—(७) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजाये, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 123

(८) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आजाये, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये। पाठ करनेवालो को दु क्क ट का दोष है। 124

(९) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ०

प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिपद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ-जाये, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 125

१४—(१०) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजाये, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 126

(११) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ कर ० प्रातमोक्षका पाठ कर चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आजाये तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 127

(१२) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आजाये तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वत-लानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 128

१५—(१३) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिपद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजाये तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करने-वालोको दुक्कटका दोप है। 129

(१४) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजाये तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 130

(१५) "यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने ० सन्देह-युक्त होते उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजाये तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है।" 131

पन्द्रह सदेहयुक्त समाप्त

(d) अन्य आवासिकोकी अनुपस्थितिमे सकोचके साथ किया गया दोषयुक्त उपोसथ

१६—(१) "यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे वहुतसे—चार या अधिक आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो, और वे जाने कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। वह—हमे उपोसथ करना युक्त ही है, अयुक्त नही है—ऐसे सकोचके साथ उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे, और उनके प्रातिमोक्ष पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजाये, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 132

(२) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आजायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो गया वह ठीक, वाकीको वह भी सुने। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोष है। 133

(३) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० भिक्षु जो सख्याम उनसे कम हो आ जायँ, तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको वह भी सुने। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 134

१७—(४) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आजायँ, तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 135

(५) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ, तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 136

(६) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आजायें, तो पाठ होगया वह ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 137

१८—(७) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर ० किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आजायँ तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 138

(८) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आजायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 139

(९) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्या मे उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 140

१९—(१०) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ, तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 141

(११) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कटका दोप है। 142

(१२) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर किन्तु परिपद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि वतलानी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 143

२०—(१३) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आ जायँ, तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्षका पाठ करना चाहिये। (और पहिले) पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोष है। 144

(१४) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जायँ, तो जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोको दुक्कट का दोप है। 145

(१५) "यदि ० सकोचके साथ उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ हो चुकनेपर तथा सारी

परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ जायँ, तो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि करनी चाहिये। पाठ करनेवालोको दु क्क ट का दोप है।" 146

पन्द्रह सकोच-सहित समाप्त

(e) अन्य आश्रमवासियोंकी अनुपस्थितिमें कटूक्ति-पूर्वक किया गया दोपयुक्त उपोसथ

२१—(१) "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे जाने कि कुछ दूसरे आश्रमवासी भिक्षु नही आये, फिर—वह विनष्ट हो जायँ, वह विनष्ट हो जायँ, उनसे क्या मतलव!—ऐसे कटूक्ति पूर्वक उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका पाठ करे और उनके प्रातिमोक्ष-पाठ करते समय दूसरे आश्रमवासी भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आ जायँ तो भिक्षुओ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और (पहले) पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य (= स्थूल-अत्यय = बळा अपराध) का दोप है। 147

(२) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करने-वालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 148

(३) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ करते समय ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो आ जायँ तो भिक्षुओ! जो पाठ हो गया वह ठीक, बाकीको (वह भी) सुने। पाठ करनेवालो-को थु ल्ल च्च य का दोप है। 149

२२—(४) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 150

(५) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आ जायँ तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालेको थु ल्ल च्च य का दोष है। 151

(६) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो गया वह ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालेको थु ल्ल च्च य का दोप है। 152

२३—(७) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ तो उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोको थू ल्ल च्च य का[1] दोष है। 153

(८) "यदि कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो, आ जायँ तो पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है। 154

(९) "यदि० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के अभी न उठनेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ तो पाठ हो गया सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोप है। 155

---

[1] थुल्लच्चय (=स्थूल-अत्यय) एकके भूलोकी देशना करता है और जो उसे नही ग्रहण करता उसके समान दोष (अत्यय) नही इसलिये यह वैसा कहा जाता है। (—अट्ठ कथा)।

२४—(१०) "यदि० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो आ जायँ तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष पाठ करना चाहिये। (पहिले) पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है । 156

(११) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनके समान हो आ जायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है। 157

(१२) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्ष-पाठ कर चुकने किन्तु परिषद्के कुछ लोगोके रहते तथा कुछ लोगोके उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे कम हो, आ जायँ तो भिक्षुओ ! पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है । 158

२५—(१३) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामे उनसे अधिक हो, आ जायँ, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको फिरसे प्रातिमोक्ष-पाठ करना चाहिये और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है। 159

(१४) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्यामें उनके समान हो आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है । 160

(१५) "यदि ० कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे ० प्रातिमोक्षका पाठ कर चुकने तथा सारी परिषद्के उठ जानेपर ० भिक्षु जो सख्या मे उनसे कम हो आ जायँ, तो भिक्षुओ ! जो पाठ हो चुका सो ठीक, उनके पास शुद्धि बतलानी चाहिये, और पाठ करनेवालोको थु ल्ल च्च य का दोष है ।" 161

पन्द्रह कटूक्ति-पूर्वक समाप्त

पचीसी समाप्त

ख. अन्य आवासिकोकी अनुपस्थितिको जाने बिना किया गया उपोसथ

२६–५०—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही जाने कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे है। ०[1] । 162–186

५१–७५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही जा न ते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये है। ०[1] ।" 187–212

ग. अन्य आवासिकोकी अनुपस्थितिको देखे बिना किया गया उपोसथ

७६–१००—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही दे ख ते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे है। ०[1] । 213–237

---

[1] पिछली पचीसीकी तरह इसे भी उ पो स थ करते, उ पो स थ कर चुकने, परिषद्के बैठे रहने परिषद्में कुछके उठजाने तथा कुछके बैठे रहने और सारी परिषद्के उठ जाने, इन पाँचोको न जानने, जानने, सदेहयुक्त, सकोचयुक्त और कटूक्ति-पूर्वकके साथ पढनेपर पच्चीस भेद होगे ।

१०१–१२५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही देखते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये है। ०[1]। 238–262

घ. अन्य आवासिकोकी अनुपस्थितिको सुने बिना किया गया उपोसथ

१२६–१५०—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही सुनते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ रहे है। ०[1]। 263–287

१५१–१७५—"यदि ० उपोसथके दिन एकत्रित हो, वह नही सुनते कि कुछ अन्य आश्रमवासी भिक्षु सीमाके भीतर आ गये है। ०[2]।" 288–312

(२) कुछ नवागन्तुकोकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोका किया उपोसथ

१७६–३५०—"यदि० भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—आश्रमवासी भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे न जाने कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नही आये०[3]।"313–487

(३) कुछ आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिको जानकर या जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोका किया उपोसथ

३५१–५२५—"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे न जाने कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये ०[4]।"488–662

(४) कुछ नवागन्तुकोकी अनुपस्थितिको जाने, देखे, सुने बिना नवागन्तुकोका किया उपोसथ

५२६–७००—[3] "यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे—चार या अधिक—नवागन्तुक भिक्षु उपोसथके दिन एकत्रित हो और वे न जाने कि कुछ नवागन्तुक भिक्षु नही आये ०[4]।" 663–837

§६–उपोसथके काल, स्थान और व्यक्तिके नियम

(१) उपोसथकी दो तिथियोमे एक स्वीकार

१—"जब भिक्षुओ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) चतुर्दशीका हो और नवागन्तुकोका पचदशीका, तो यदि आश्रमवासी (सख्यामे) अधिक हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोका अनुसरण करना चाहिये। यदि (दोनो) बराबर हो तो (भी) नवागन्तुकोको आश्रमवासियोका अनुसरण करना चाहिये। यदि नवागन्तुक (सख्यामे) अधिक हो तो आश्रमवासियोको नवागन्तुकोका अनुसरण करना चाहिये। 838

---

[1] "आश्रमवासी भिक्षु नही आये",को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[2] 'आश्रमवासी भिक्षु नही आये'को लेकर जैसे ऊपर १७५ प्रकारसे कहा गया है वैसेही यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[3] सद्धर्मप्रकाशप्रेसके (अलुतगम बेन्तोता, लका १९११ ई०) 'महावग्ग'में 'सत्ततिक सतानि' (=सत्तर सौ) छपा है जिसमें 'तिक' यह दो अधिक अक्षर प्रमादसे छपे मालूम होते है, क्योकि उपर्युक्त क्रमसे गिनती ७०० (=सत्त सतानि) ही होनी चाहिये।

[4] ऊपर जैसाही यहाँ भी समझो।

२—"जव भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) पचदशीका हो और नवागन्तुकोका चतुर्दशीका, तो यदि (सख्यामे) आश्रमवासी अधिक हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोका अनुसरण करना चाहिये ०[1] । 839

३—"जव भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) प्रतिपद्का हो और नवागन्तुकोका पचदशीका तो यदि (सख्यामे) आश्रमवासी अधिक हो तो आश्रमवासियोको इच्छा विना (अपनेको देकर) नवागन्तुकोके (सघ)की पूर्णता नही करनी चाहिये, नवागन्तुकोको सीमासे वाहर जाकर उपोसथ करना चाहिये। यदि (दोनो सख्यामे) वरावर हो तो आश्रमवासियोको इच्छा विना (अपनेको देकर) नवागन्तुको(के सघ)की पूर्णता नही करनी चाहिये। यदि (सख्यामे) नवागन्तुक अधिक हो तो आश्रमवासियोको आगन्तुको(के सघ)की या तो सपूर्णता करनी चाहिये या सीमासे वाहर जाना चाहिये। 840

४—"जव भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षुओका (उपोसथ) पचदशीका हो और नवागन्तुकोका प्रतिपद्का तो यदि सख्यामे आश्रमवासी अधिक हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोके सघकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे वाहर जाना चाहिये, यदि वरावर हो तो नवागन्तुकोको आश्रमवासियोकी पूर्णता करनी चाहिये या सीमासे वाहर जाना चाहिये, यदि सख्यामे नवागन्तुक अधिक हो तो नवागन्तुकोको, इच्छा विना, आश्रमवासियोकी सपूर्णता नही करनी चाहिये, वल्कि आश्रमवासियोको सीमाके वाहर जाकर उपोसथ करना चाहिय ।" 841

(२) आवासिको और नवागन्तुकोका अलग उपोसथ नही

१—"जव भिक्षुओ ! नवागन्तुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग = निमित्त, उद्देश्य, और अच्छी तरहसे विछी चारपाई, चौकी, तकिया-विछौना पीने धोनेके पानी, तथा अच्छी तरह साफ-वाफ आँगन देखे। और देखकर सदेहमे पळे—क्या आश्रमवासी भिक्षु है या नही। सदेहमे पळकर वह खोज न करे। और विना खोजे उपोसथ करे, तो दु क्क ट का दोप है। यदि सदेहमे पळकर वह खोज करे, खोज कर न देखे और विना देखे उपोसथ करे तो दोप नही। सदेहमे पळकर वह अलग उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोष है। सदेहमे पळे वे खोजे, खोजनेपर देखे, देखनेपर 'नष्ट हो ये, विनष्ट हो ये, इनसे क्या मतलव ?'—इस कटूक्ति-पूर्वक उपोसथ करे तो थु ल्ल च्च य का दोप है। 842

२—"जव भिक्षुओ ! नवागतुक भिक्षु आश्रमवासी भिक्षुओकी आश्रमवासिताके आकार, लिंग, उद्देश्य, टहलनेमे पैरका शब्द, पाठका शब्द, खाँसनेका शब्द और थूकनेका शब्द सुने। और सुनकर सदेहमे पळे०[2] थुल्लच्चयका दोप होता है। 843

३—"जव भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओकी नवागतुकताके आकार लिग =निमित्त, उद्देश्य, अपरिचित पात्र, अपरिचित चीवर, अपरिचित आसन, पाँवोका धोना, पानीका सीचना देखे, देखकर सदेहमे पळे—क्या नवागतुक है, या नही है ?—सदेहमे पळकर वह खोज न करे०[2] थुल्लच्चयका दोप है। 844

४—"जव भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु नवागतुक भिक्षुओकी नवागतुकताके आकार लिंग -निमित्त, उद्देश्य, आते वक्त पैरका शब्द, जूताके फटफटानेका शब्द, खाँसनेका शब्द, थूकनेका शब्द सुनते है। सुनकर सदेहमे पळते है—क्या नवागतुक है, या नही है ?—सदेहमे पळकर खोज न करे०[3]

---

[1] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढो। [2] ऊपरहीकी तरह इसे भी पढो।
[3] ऊपरहीकी तरह पढो।

थु ल्ल च्च य का दोप होता हे । 845

५—"जब भिक्षुओ ! नवागतुक भिक्षु नाना प्रकारके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओको देखते है तो उन्हे एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आता है। एक प्रकारके सहनिवासका ख्याल आनेपर वह दर्याफ्त नही करते । दर्याफ्त किये बिना यदि अकेले उपोसथ करे तो दोष नही । वह पूछे । पूछकर निश्चय न करे, निश्चय किये बिना यदि अकेले उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोप है। वे पूछे, पूछकर निश्चय न करे, निश्चय किये बिना अलग उपोसथ करे तो दोष नही। 846

६—"जब भिक्षुओ ! नवागतुक भिक्षु एक तरहके सहनिवासवाले आश्रमवासी भिक्षुओको देखे और वह भिन्न सहनिवासवाले है का ख्याल करले, भिन्न सहनिवासका ख्याल करके दर्याफ्त न करे, दर्याफ्त किये बिना अकेले उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोप है । यदि वह पूछे, पूछकर निश्चय करे, निश्चय करनेके बाद अलग उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोष है । वे पूछे, पूछनेके बाद निश्चय करे, निश्चय करके अलग उपोसथ करे तो दोष नही । 847

७—" जब भिक्षुओ ! आश्रमवासी भिक्षु, नवागतुकोको नाना प्रकारके वस्त्र पहने देखे और वे एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करे, एक प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करे (=न पूछे), पूछे बिना अकेले उपोसथ करे तो दोप नही। वे पूछे, पूछकर निश्चय न करे और निश्चय किये बिना अकेले उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोष है । वे पूछे, पूछकर निश्चय न करे, निश्चय किये बिना अलग उपोसथ करे तो दोष नही । 848

८—"जब भिक्षुओ ! आश्रमवासो भिक्षु नवागतुक भिक्षुओको एक प्रकारके वस्त्रवाला देखे, वे नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करे, नाना प्रकारके वस्त्रवाला होनेका ख्याल करके दर्याफ्त न करे, दर्याफ्त किये बिना निश्चय करे, निश्चय करके अलग उपोसथ करे तो दु क्क ट का दोप है । वे पूछे, पूछकर निश्चय करे, निश्चय करके एक साथ उपोसथ करे तो दोष नही ।" 849

(३) उपोसथके दिन आवासके त्यागमे नियम

१—"भिक्षुओ ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रमको छोळ, भिक्षु रहित आश्रममे न जाना चाहिये । 850

२—"भिक्षुओ सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमको छोळ जो आश्रम भी नही है और जहॉ भिक्षु भी नही है वहॉ नही जाना चाहिये । 851

३—"भिक्षुओ ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु वाले आश्रमसे न भिक्षु रहित आश्रममे जाना चाहिये और न वहॉ ही जाना चाहिये जो आश्रम नही है । 852

४—"भिक्षुओ ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु) आश्रम नही है किन्तु वहॉ भिक्षु रहते है, ऐसे स्थानसे भिक्षु-रहित आश्रममे नही जाना चाहिये । 853

५—"भिक्षुओ ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन ऐसे स्थान से जो (भिक्षु) आश्रम नही है किन्तु जहॉ भिक्षु रहते है ऐसे स्थानसे उस स्थानको नही जाना चाहिये जो न (भिक्षु-) आश्रम है और न जहॉ भिक्षु रहते है। 854

६—"भिक्षुओ ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन जो (भिक्षु–) आश्रम नही है किन्तु जहॉ भिक्षु है, ऐसे स्थानसे उन स्थानोको नही जाना चाहिये जो

भिक्षु-रहित (भिक्षु–) आश्रम है। या जो भिक्षु-रहित अन्-आश्रम है। 855

७—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमको छोळ अन्-आश्रम या भिक्षु-रहित आश्रममे न जाना चाहिये। 856

८—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमको छोळकर भिक्षु-रहित अन्-आश्रममे नही जाना चाहिये। 857

९—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षु-रहित आश्रम या अनाश्रममे नही जाना चाहिये। 858

१०—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले आश्रममे जाना चाहिये जहाँपर कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो।

११—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे उस भिक्षुवाले अनाश्रममे नही जाना चाहिये जहॉ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 859

१२—"भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्ना-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रममे नही जाना चाहिये जहाँपर नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 860

१३—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रममे नही जाना चाहिये, जहॉ नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 861

१४—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रममे नही जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 862

१५—" भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममे नही जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 863

१६—"भिक्षुओ! सघका साथ होने या विघ्न-बाधा होनेके अतिरिक्त उपोसथके दिन भिक्षु-वाले आश्रम या अन्-आश्रममे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अन्-आश्रम मे नही जाना चाहिये जहाँ कि नाना सहनिवासवाले भिक्षु हो। 864

१७—" भिक्षुओ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले आश्रममे जाना चाहिये जहाँपर एक प्रकारके सहनिवासवाले भिक्षु हो, और जहाँपर जानेके लिये वह उसी दिन पहुँच जा सके। 865

१८—" भिक्षुओ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममे जाना चाहिये ०। 866

१९—" भिक्षुओ! उपोमथके दिन भिक्षुवाले आश्रमसे भिक्षुवाले ऐमे आश्रम या अन्-आश्रममे जाना चाहिये जहाँपर कि एक सहनिवासवाले भिक्षु हो और जहाँपरके लिये वह समझे कि उसी दिन पहुँच सकता है। 867

२०—" भिक्षुओ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले अनावाससे ऐसे भिक्षुवाले आवासमें जाना चाहिये ०। 868

२१—" ० भिक्षुवाले अनाश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममे जाना चाहिये ०। 869

२२—" ० भिक्षुवाले अन्-आश्रम भिक्षुवाले ऐसे आश्रमसे या अन्-आश्रममें जाना चाहिये ०। 870

२३—"० भिक्षुवाले आश्रम या अन्-आश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रममे जाना चाहिये०। 871

२४—" ० भिक्षुवाले आश्रमसे ऐसे भिक्षुवाले अन्-आश्रममे जाना चाहिये ०। 872

२५—" ० भिक्षुओ! उपोसथके दिन भिक्षुवाले आश्रम या अनाश्रमसे भिक्षुवाले ऐसे आश्रम या अनाश्रममे जाना चाहिये जहॉपर एक जैसे सहनिवासवाले भिक्षु हो, और जहाँपरके लिय वह जानता हो कि उसी दिन पहुँच सकेगा।" 873

(४) प्रातिमोक्ष-आवृत्तिके लिये अयोग्य सभा

१—" भिक्षुओ! जिस परिषद्मे भिक्षुणी बैठी हो उसमे प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कटका दोष हो। 874

२—" ० शिक्षमाणा बठी हो ०। 875

३—" ० श्रामणेर बैठा हो ०। 876

४—" ० श्रामणेरी बेठी हो ०। 877

५—" ० (भिक्षु) नियमोका प्रत्याख्यान करनेवाला बैठा हो ०। 878

६—" ० अन्तिम दोष (=पाराजिक)का दोषी बेठा हो ०। 879

७—" ० दोषके न देखनेसे उत्क्षिप्त हुआ (पुरुष) बैठा हो उसमे प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे धर्मानुसार (दड) करवाना चाहिये। 880

८—" ० दोषके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो ०। 881

९—" ० बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्त हुआ पुरुष बैठा हो ०। 882

१०—" ० पडक बैठा हो उसमे प्रातिमोक्ष पाठ नही करना चाहिये। जो पाठ करे उसे दुक्कट का दोष हो। 883

११—" ० चोरीसे (=अपने आप) चीवर पहन लेनेवाला (पुरुष) बैठा हो ०। 884

१२—" ० तीर्थिकोके पास चला गया बैठा हो ०। 885

१३—" ० तिर्यग् योनिवाला (=नाग आदि) बैठा हो ०। 886

१४—" ० मातृ-घातक बैठा हो ०। 887

१५—" ० पितृ-घातक बैठा हो ०। 888

१६—" ० अर्हद्-घातक बैठा हो ०। 889

१७—" ० भिक्षुणी-दूषक बैठा हो ०। 890

१८—" ० सघमे फूट डालनेवाला बैठा हो ०। 891

१९—" ० (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाला बैठा हो ०। 892

२०—" ० (स्त्री-पुरुष) दोनो लिगोवाला बैठा हो ०। 893

२१—" ० भिक्षुओ! परिषद्के न उठी होनेके सिवाय परिवास सबधी शुद्धि देकर उपोसथ नही करना चाहिये।" 894

(५) उपोसथके दिन ही उपोसथ

"भिक्षुओ! सघकी समग्रताके अतिरिक्त उपोसथसे भिन्न दिनको उपोसथ नही करना चाहिये।" 895

तृतीय भाणवार समाप्त ॥३॥

उपोसथ-क्खन्धक समाप्त ॥२॥

३—वर्षोपनायिका-स्कंधक

१—वर्षावासका विधान और उसका काल । २—बीचमें सप्ताह भरके लिये वर्षावासका तोळना
३—वर्षावास करनेके स्थान । ४—स्थान-परिवर्तनमें सदोषता और निर्दोषता ।

§ १—वर्षावासका विधान और काल

१—राजगृह

(१) वर्षावासका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क ल द क नि वा प मे विहार करते थे उस समय तक भगवान्ने वर्षावास करने का विधान नही किया था और भिक्षु हेमन्तमे, भी ग्रीष्ममे भी, वर्षामे भी विचरण करते थे । लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोको मर्दन करते एक इन्द्रियवाले जीव (=वृक्ष-वनस्पति)को पीळा देते बहुतसे छोटे छोटे प्राणि समुदायोको मारते हेमन्तमे भी, ग्रीष्ममे भी, वर्षामे भी विचरण करते है ! यह दूसरे तीर्थ (=मत) वाले जिनका धर्म अच्छी तरह व्याख्यान नही किया गया है वह भी वर्षावासमे लीन होते है, एक जगह रहते है यह चिळियाँ वृक्षोके ऊपर घोसले बनाकर वर्षावासमे लीन होती है, एक जगह रहती है किन्तु ये शाक्य-पुत्रीय श्रमण हरे तृणोको मर्दन करते० विचरण करते है ।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना । तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही । भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास करनेकी ।" 1

(२) वर्षावासका आरम्भ

१—तब भिक्षुओको यह हुआ—'कबसे वर्षावास करना चाहिये ?'

भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षा (ऋतु) मे वर्षावास करनेकी ।" 2

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या है व स्सू प ना यि का (=वर्षोपनायिका=जो तिथि वर्षा को ले आती है) ?'

भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! पहिली और पिछली यह दो वर्षोपनायिका है । आषाढ पूर्णिमाके दूसरे दिनसे पहला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये, या आषाढ पूर्णिमाके मास भर बाद पिछला (वर्षावास) आरम्भ करना चाहिये । भिक्षुओ ! यह दो (श्रावण कृष्ण-प्रतिपद् और भाद्र कृष्ण-प्रतिपद्) व र्षो-प ना यि का है ।" 3

(३) वर्षावासके बीच यात्रा नही

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास बसकर वर्षाकालके बीचहीमे विचरण करनेके लिये चल देते थे। लोग उसी प्रकार हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण हरे तृणोको मर्दन करते० विचरण करते हैं !'

भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने को सुना। तब जो अल्पेच्छ (=लोभ रहित) भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास आरम्भ करके वर्षाकालके भीतर ही विचरण करने चले जाते हैं !' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने इसी प्रकरणमे इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! वर्षावास आरभ करके पहले तीन मास (श्रावण, भाद्र, आश्विन) या पिछले तीन (भाद्र, आश्विन, कार्तिक) विना एक जगह बसे विचरणके लिये नही जाना चाहिये। जो जाये उसे दुक्कट का दोष हो।"4

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावासके लिये (एक जगह) रहना नही चाहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वर्षावासके लिये (एक जगह) न-रहना, नही करना चाहिये। जो (वर्षावासके लिये) न रहे उसे दुक्कटका दोष हो।"5

(४) वर्षोपनायिकाको आवास नही छोळना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वर्षावास न रखनेकी इच्छासे वर्षोपनायिका के दिन ही जान बूझकर आश्रम छोळ देते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वर्षावास न रखनेकी इच्छासे वर्षोपनायिकाके दिन जान बूझकर आश्रमको नही छोळना चाहिये। जो छोळे उसको दुक्कटका दोष हो।"6

(५) राजकीय अधिकमासका स्वीकार

उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार ने वर्षमे (अधिकमास) जोळनेकी इच्छासे भिक्षुओ के पास सदेश भेजा—'क्यो न आर्य लोग आनेवाली पूर्णिमासे वर्षावास आरम्भ करे।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (अधिक मासके विषय मे) राजाओका अनुसरण करनेकी।" 7

§२–बीचमें सप्ताह भरके लिये वर्षावासका तोळना

२—*श्रावस्ती*

(१) संदेश मिलनेपर सात दिनके लिये बाहर जाना

तब भगवान् राजगृह मे इच्छानुसार विहार करके श्रावस्ती मे विचरण करने चल दिये। क्रमश विचरण करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे और वहाँ भगवान् श्रावस्ती मे अनाथपिंडिक के आराम जेतवन मे विहार करते थे। उस समय कोसल देशमे उदयन उपासकने सघके लिये विहार (=निवास-स्थान=आश्रम) बनवाये थे। उसने भिक्षुओके पास सदेश भेजा—'भदन्त लोग आवे। मै दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, और भिक्षुओका दर्शन करना चाहता हूँ।' भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुस ! भगवान्ने विधान किया है कि वर्षावास आरभ

करके पहले तीन मास या पिछले तीन मास बिना बसे विचरण करनेके लिये नही चल देना चाहिये। उदयन उपासक तब तक प्रतीक्षा करे, जब तक कि भिक्षु वर्षावास करते है। वर्षावास समाप्त करके वे आयेगे। यदि उसको काम करनेकी शीघ्रताहो तो वही आश्रम-वासी भिक्षुओके पास विहार की प्रतिष्ठा करानी चाहिये।'

(यह सुन कर) उदयन उपासक हैरान होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे सदेश भेजनेपर नही आते! मै (दान-)दायक, (कर्म-)कारक, और सघका सेवक हूँ।' भिक्षुओने उदयन उपासक के हैरान होनेको सुना। तब उन्होने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने उसी सबधमे उसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

१—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सात (व्यक्तियो)के सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु बिना सदेश भेजे नही—(१) भिक्षुका (काम हो), (२) भिक्षुणीका (काम हो), (३) शिक्षमाणाका (कामहो), (४) श्रामणेरका (काम हो), (५) श्रामणेरीका (काम हो), (६) उपासकका (काम हो), (७) उपासिकाका (काम हो), भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, इन सातोका सप्ताह भरका काम होनेपर सदेश भेजनेपर जानेकी, किन्तु बिना सदेश भेजे नही। सप्ताह भर रहकर फिर लौट आना चाहिये। 8

२—(क)। "जब भिक्षुओ! (किसी) उपासकने सघके लिये विहार बनवाया हो और यदि वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आवे, मै दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, और भिक्षुओका दर्शन करना चाहता हूँ", तो भिक्षुओ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये, किन्तु सदेश न भेजनेपर नही (जाना चाहिये) और सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये। 9

(ख) 'यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने सघके लिये अटारी (अड्ढयोग) बनवाई हो, प्रासाद, हर्म्य, गुहा, परिवेण (=ऑगनदार घर), कोठरी, उपस्थान-शाला (=चौपाल), अग्नि-शाला, कप्पियकुटी (=भडार), पाखाना, (=बच्च-कुटी), चक्रम (=टहलनेकी जगह), चक्रमन-शाला (=टहलनेकी शाला), उदपान (=प्याव), उदपान-शाला, जन्ताघर (=स्नानगृह), जन्ताघर-शाला, पुष्करिणी, मडप, आराम (=बाग), और आराम-वस्तु (=बागके भीतरके घर) बनवाये हो, और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आये, मै दान देना चाहता हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहता हूँ, भिक्षुओका दर्शन करना चाहता हूँ,।'—तो भिक्षुओ! सदेश मिलनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये, बिना सदेश भेजे नही (जाना चाहिये), सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये। 10

(ग) "यदि भिक्षुओ! (एक) उपासकने बहुतसे भिक्षुओके लिये अटारी० सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये। 11

(घ) "० एक भिक्षुके लिये०। 12

(ङ) "० भिक्षुणी-सघके लिये०। 13

(च) "० बहुतसी भिक्षुणियोके लिये०। 14

(छ) "० एक भिक्षुणीके लिये०। 15

(ज) "० बहुतसी शिक्षमाणाओके लिये०। 16

(झ) "० एक शिक्षमाणाके लिये०। 17

(ञ) "० बहुतसे श्रामणेरोके लिये०। 18

(ट) "० एक श्रामणेरके लिये०। 19

(ठ) " ० बहुतसी श्रामणेरियोके लिये० । 20

(ड) " ० एक श्रामणेरीके लिये० । 21

(ढ) " यदि भिक्षुओ ! उपासकने अपने लिये घर, शयनीय-घर, उ द्दो सि त (=रातके रहनेका घर), अटारी, मा ल (=पर्णकुटी), दूकान (=आपण), आपणशाला, प्रासाद, हर्म्य, गुहा, परिवेण, कोठरी, उपस्थान-शाला, अग्नि-शाला, र स व ती (रसोईघर), पाखाना, चक्रम, चक्रमनशाला, प्याव, प्यावशाला (पौसला), स्नान-गृह (=जन्ताघर), जन्ताघर-शाला पुष्करिणी, मडप, आराम, आरामवस्तु, वनवाये हो, और वह पुत्रका व्याह करनेवाला हो, या कन्याका व्याह करनेवाला हो, या रोगी हो, या उत्तम सु त्त न्तो (=बुद्धोपदेश)का पाठ करता हो, और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'भदन्त लोग आये०,—सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये । 22

३—(क) "यदि भिक्षुओ ! (किसी) उपासिकाने सघके लिये विहार वनवाया हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'आर्य लोग आये, मै दान देना चाहती हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, भिक्षुओका दर्शन करना चाहती हूँ' तो—सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये, विना सदेश भेजे नही, और सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये । 23

(ख) "यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने सघके लिये अड्ढयोग (=अटारी)० सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये । 24

(ग) " यदि भिक्षुओ ! किसी उपासिकाने वहुतसे भिक्षुओके लिये० । 25

(घ) " ० एक भिक्षुके लिये० । 26

(ङ) ' ० भिक्षुणीसघके लिये० । 27

(च) " ० वहुतसी भिक्षुणियोके लिये० । 28

(छ) " ० एक भिक्षुणीके लिये० । 29

(ज) " ० वहुतसी शिक्षमाणाओके लिये० । 30

(झ) " ० एक शिक्षमाणाके लिये० । 31

(ञ) " ० वहुतसे श्रामणेरोके लिये० । 32

(ट) " ० एक श्रामणेरके लिये० । 33

(ठ) " ० वहुतसी श्रामणेरियोके लिये० । 34

(ड) " ० एक श्रामणेरीके लिये ० । 35

(ढ) " ० अपने लिये निवास घर—शयनीय घर ० । 36

(ण) " ० पुत्रका व्याह करनेवाली, या कन्याका व्याह करनेवाली हो, या रोगी हो, या उत्तम सुत्तन्तोका पाठ करती हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—आर्य लोग आये, इस सुत्तन्तको सीखे, कही ऐसा न हो कि यह सु त्त न्त (याद करनेवालेके विना) नष्ट हो जाय', या उसका और कोई कृत्य करणीय हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'आर्य लोग आवे, मै दान देना चाहती हूँ, धर्मोपदेश सुनना चाहती हूँ, भिक्षुओका दर्शन करना चाहती हूँ'—तो भिक्षुओ ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके लिये जाना चाहिये, न सदेश भेजनेपर नही, और सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये । 37

४—(क) " यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने सघके लिये ० । 38

(ख) " ० यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने वहुतसे भिक्षुओके लिये ० । 39

(ग) " ० एक भिक्षुके लिये ० । 40

(घ) " ० भिक्षुणी-सघके लिये ० । 41

(ड) " ० वहुत सी भिक्षुणियोके लिये ० । 42

(च) " ० एक भिक्षुणीके लिये ० । 43

(छ) " ० एक भिक्षुणीके लिये ० । 44

(ज) " ० बहुतसे शिक्षमाणाओके लिये ० । 45

(झ) " ० एक शिक्षमाणाके लिये ० । 46

(ञ) " ० वहुतसे श्रामणेरोके लिये ० । 47

(ट) " ० एक श्रामणेरके लिये ० । 48

(ठ) " ० बहुतसी श्रामणेरियो के लिये ० । 49

(ड) " ० एक श्रामणेरीके लिये ० । 50

(ढ) " ० अपने लिये ० । 51

५—(क) " यदि भिक्षुओ ! भिक्षुणीने सघके लिये ० ।52 ०[1] (ढ) अपने लिये ०'। 65

६—(क) " यदि भिक्षुओ ! शिक्षमाणाने ० । ० ।[1]66 (ढ) ० अपने लिये । 79

७—(क) " यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरने ० । ०[1]80 (ढ) ० अपने लिये ० । 93

८—(क) " यदि भिक्षुओ ! श्रामणेरीने ० । ०[1] 94 (ढ) ० अपने लिये ० ।" 107

(२) सदेशके बिना भी सात दिनके लिये बाहर जाना

उस समय एक भिक्षु रोगी था। उसने भिक्षुओके पास सदेश भेजा—'मै रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवे। भिक्षुओके आगमनको चाहता हूँ।' भगवान्से यह बात कही।

१—"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच (व्यक्तियो)के सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजे बिना भी जानेकी। सदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या—भिक्षुके, (कामके लिये), भिक्षुणीके, शिक्षमाणाके, श्रामणेरके और श्रामणेरीके। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँचोके सप्ताह भरके कामके लिये बिना सदेश भेजे भी जानेकी। सदेश भेजनेपरकी तो बात ही क्या। सप्ताहमे लौटना चाहिये। 108

२—(क) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु रोगी हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'मै रोगी हूँ, भिक्षु लोग आवे, मै भिक्षुओका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! सप्ताह भरके कामके लिये बिना सदेश भेजे भी जाना चाहिये, सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। रोगीके पथ्यका प्रबध करूँगा, रोगीके सुश्रूषकका प्रवध करूँगा, रोगीके लिये ओषधका प्रबध करूँगा, देखभाल करूँगा या सुश्रूषा करूँगा—(इस विचारसे जाना चाहिये) सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 109

(ख) " यदि भिक्षुओ ! भिक्षुका मन (सन्याससे) उचट गया हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'मेरा मन उचट गया है, भिक्षु लोग आवे, भिक्षुओका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ ! बिना सदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। (यह सोचकर कि) उचाटको दूर करूँगा या दूर करवाऊँगा, या धार्मिक कथा कहूँगा, सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 110

(ग) " यदि भिक्षुओ ! (किसी) भिक्षुको सदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे, मुझे सदेह (=कौकृत्य) उत्पन्न हुआ है ० (यह सोचकर कि) सदेहको

---

[1]ऊपरकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

हटाऊँगा या हटवाऊँगा, या धर्मकी बात सुनाऊँगा ०। 111

(घ) "यदि भिक्षुओ! भिक्षुको बुरी धारणा उत्पन्न हुई हो (यह सोचकर कि) बुरी धारणाको दूर करूँगा या कराऊँगा, या उसे धर्मकी बात सुनाऊँगा ०। 112

(ङ) "यदि भिक्षुओ! भिक्षुने प रि वा स देने योग्य बळा दोष किया हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—मैने परिवासके योग्य वळा दोष किया है ० (यह सोचकर कि) परिवास देनेका यत्न करूँगा या सुनाऊँगा, या गणके सामने होऊँगा ०। 113

(च) "यदि भिक्षुओ! भिक्षु मू ल प्र ति कर्ष ण (दड)के योग्य हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—मै मूल प्रतिकर्षणार्ह हूँ ० (यह सोचकर कि) मूल प्रतिकर्षणके लिये प्रयत्न करूँगा या सुनाऊँगा या गणके सम्मुख होऊँगा ०। 114

(छ) "यदि भिक्षुओ! (कोई) भिक्षु मा न त्वा र्ह (=मानत्व दड देनेके योग्य)हो।० 115

(ज) "यदि भिक्षुओ! (कोई) भिक्षु अ भ्भा न (=आह्वान) के योग्य हो ०। 116

(झ) "यदि भिक्षुओ! सघ किसी भिक्षुका (दड) कर्म—त र्ज नी य, नि य स्स, प्र व्रा ज-नीय, प्र ति सा र णी य, उ त्क्षे प णी य—करना चाहे और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—सघ मेरा (दड-)[1] कर्म करना चाहता है ० (यह विचारकर कि) सघ (दड-)कर्म न करे या हल्का (दड) करे। और सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 117

(ञ) "यदि भिक्षुओ! सघने भिक्षुको त र्ज नी य ० (दड-)कर्म कर दिया हो, और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'सघने मुझे (दड-)कर्म कर दिया। भिक्षु लोग आवे। मै भिक्षुओका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ! बिना सदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। ऐसा (प्रयत्न) करनेके लिये कि (वह भिक्षु) अच्छी तरह बर्ताव करे, रोवॉ गिरावे, निस्तारके लिये बर्ताव करे, (जिसमे कि) सघ उस दडको उठा ले। सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 118

३—(क) यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षुणी रोगिणी हो ०[1]। 128

४—(क) "यदि भिक्षुओ! शिक्षमाणा रोगिणी हो ०।[1] (ङ) शिक्षमाणाकी शिक्षा टूट गई हो ० (यह सोचकर कि) उसे शिक्षा (=आचार-नियम)के ग्रहण करानेका प्रयत्न करूँगा ०। (च) यदि भिक्षुओ! शिक्षमाणा उपसपदा ग्रहण करना (= भिक्षुणी बनना) चाहती है और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'मै उपसपदा ग्रहण करना चाहती हूँ, आर्य लोग आये। मै आर्योका आगमन चाहती हूँ' तो भिक्षुओ! विना सदेश भेजे भी सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। सदेश भेजने-पर तो बात ही क्या। (यह सोचकर कि) उपसपदा ग्रहणमे उत्सुकता पैदा करूँगा, सुनाऊँगा, या गणके सामने होऊँगा, सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 133

५—(क) "यदि भिक्षुओ! श्रामणेर रोगी हो ०[1] (ङ)० श्रामणेर वर्ष पूछना चाहे और वह भिक्षुओके पास दूत भेजे ० (यह सोचकर कि) उससे पूछूँगा, या उसे बतलाऊँगा ०। या श्रामणेर उपसपदा ग्रहण करना चाहता है ०। 138

७—"यदि भिक्षुओ! श्रामणेरी हो ०[2]।"[3]

८—उस समय किसी भिक्षुकी माता रोगिणी थी। उसने पुत्रके पास सदेश भेजा—मै रोगिणी

---

[1] ऊपर भिक्षुके लिये आई हुई (ञ) तक सभी बातें यहॉ भी दुहरानी चाहिए।

[2] भिक्षुके लिये ऊपर (घ) तक आई हुई सभी बातें यहॉ भी दुहरानी चाहिए।

[3] श्रामणेरकी तरह यहॉ भी दुहराना चाहिये।

हूँ, मेरा पुत्र आये, मै पुत्रका आगमन चाहती हूँ। तब उस भिक्षुको हुआ—'भगवान्ने विधान किया है सदेश भेजनेपर सात जनोके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको। सदेश न भेजनेपर नही, और सन्देश भेजे बिना भी पॉच जनोके सप्ताह भरके कामके लिये जानेको, सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। और यह मेरी माता रोगिणी है, किन्तु वह उपासिका (=बौद्ध स्त्री) नही है। मुझे कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही —

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सात जनोके सप्ताह भरके कामके लिये, बिना सदेश भेजे भी जानेकी। सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या—'भिक्षु, भिक्षुणी, शिक्षमाणा, श्रामणेर, श्रामणेरी, माता और पिता (के कामके लिये)। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इन सातोके सप्ताह भरके कामके लिये बिना सदेश भेजे भी जानेकी, सदेश भेजनेपर तो बात ही क्या। सप्ताह मे लौट आना चाहिये।139

९—"यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुकी माता रोगिणी हो, और वह पुत्रके पास सदेश भेजे—'मै रोगिणी हूँ, मेरा पुत्र आवे, मै पुत्रका आगमन चाहती हूँ,' तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये बिना सदेश पाये भी जाना चाहिये, सदेश पानेकी तो बात ही क्या। (इस विचारसे कि) पथ्यका प्रबध करूँगा, रोगिणीकी सुश्रूषाका प्रबन्ध करूँगा, ओषधिका प्रबध करूँगा, देखभाल करूँगा या सेवा करूँगा। सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 140

१०—"यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुका पिता रोगी हो ०[1]।" 141

(३) संदेश मिलनेपर सात दिनके लिये बाहर जाना

१—"यदि भिक्षुओ! भिक्षुका भाई बीमार हो और वह भाईके पास सदेश भेजे—'मै रोगी हूँ, मेरा भाई आये, मै भाईका आगमन चाहता हूँ, तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जाना चाहिये, बिना सदेशके नही, और सप्ताह भरमे लौट आना चाहिये। 142

२—" यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुका जाति-भाई बीमार हो और वह भिक्षुके पास सदेश भेजे—'मै बीमार हूँ, भदन्त आये, मै भदतका आगमन चाहता हूँ' तो भिक्षुओ! सप्ताह भरके कामके लिये सदेश भेजनेपर जाना चाहिये सदेश न भेजनेपर नही। और सप्ताहमे लौट आना चाहिये। 143

३—" यदि भिक्षुओ! भिक्षुका भृतिक (=विहारका नौकर) बीमार हो और वह भिक्षुओके पास सदेश भेजे—'मै बीमार हूँ, भदन्त लोग आये, मै भदन्तोका आगमन चहता हूँ,' तो भिक्षुओ! सदेश भेजनेपर सप्ताह भरके कामके लिये जाना चाहिये। सदेश न भेजनेपर नही। सप्ताहमे लौट आना चाहिये।" 144

४—उस समय सघका (बळा) विहार टूट रहा था। एक उपासकने जगलमे (लकळी) सामान कटवाया था। उसने भिक्षुओके पास सन्देश भेजा—'यदि भदन्त लोग इस सामानको ले जा सके तो मै इसे उन्हे देता हूँ,' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सघके कामसे जानेको (किन्तु) सप्ताहमे लौट आना चाहिये।" 145

वर्षावास भाणवार समाप्त

---

[1] माताकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

§३–वर्षावास करनेके स्थान

(१) विशेष परिस्थितिमे स्थान-त्याग

उस समय को स ल देशके एक (भिक्षु)आश्रममे वर्षावास करनेवाले भिक्षुओको जगली जानवरो (=व्यालो)ने उत्पीळित किया, पकळा, और मारा भी। भगवान्‌से यह बात कही।—

१—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करते भिक्षुओको जगली जानवर पीळित करते, पकळते और मारते है तो इस विघ्न-बाधाके कारण, वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही (करना चाहिये)। 146

२—यदि भिक्षुओ! वर्षावास करते भिक्षुओको सरीसृप (=साँप-बिच्छू) पीळित करे, डसे और मारे तो इस विघ्न-बाधाके कारण, वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही (करना चाहिये)। 147

३—"० चोर ०।" 148

४—"० पिशाच ०। 149

५—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुओका ग्राम आगसे जल जाये और भिक्षुओको भिक्षाकी तकलीफ हो तो इस विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही (करना चाहिये)। 150

६—"० भिक्षुओका आसन और निवास आगसे जल गया हो और भिक्षु आसन और निवासके बिना तकलीफ पाते हो ०। 151

७—"० भिक्षुओका गाँव जलसे डूब गया हो और भिक्षुओको भिक्षाकी तकलीफ हो ०। 152

८—"० भिक्षुओका आसन और निवास पानीसे डूब गया हो, और भिक्षु आश्रम और निवासके बिना तकलीफ पातेहो ०।" 153

(२) गाँव उजळनेपर गाँववालोके साथ

१—उस समय एक (भिक्षु) आवासमे वर्षावास करते समय भिक्षुओका गाँव चोरोने उठा दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ वह गाँव गया वहाँ जानेकी।" 154

२—० गाँव दो टुकळे हो गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जिधर अधिक सख्या है, उधर जानेकी।" 155

३—अधिक सख्यावाले श्रद्धा-रहित, प्रसन्नता-रहित थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जिधर श्रद्धावान्, प्रसन्नतावान् है उधर जानेकी।" 156

(३) स्थानकी प्रतिकूलतासे ग्राम त्याग

१—उस समय को स ल देशके एक (भिक्षु-)आवासमे वर्षावास करते भिक्षुओको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नही मिला। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि वर्षावास करनेवाले भिक्षुओको आवश्यकतानुसार रूखा-अच्छा भोजन भी पूरा नही मिलता तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही। 157

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षु आवश्यकतानुसार अच्छा या बुरा भोजन पूरा पाते हैं किन्तु वह भोजन अनुकूल नही है तो इसी विघ्न-बाधाके कारण वहाँसे चल देना चाहिये, वर्षावास टूटनेका डर नही । 158

३—"० भोजन पूरा पाते है और वह भोजन अनुकूल भी होता है, किन्तु अनुकूल ओपध नही पाते तो इसी विघ्न-बाधा ० । 159

४—"० अनुकूल ओपध भी पाते है लेकिन अनुकूल उपस्थाक (=अन्न, भोजन देनेवाला गृहस्थ) नही पाते तो इसी विघ्न-बाधा० ।" 160

(४) व्यक्तिको प्रतिकूलतासे स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाले भिक्षुको स्त्री बुलाती है—'आओ, भन्ते ! तुम्हे हिरण्य (=अशर्फी) दूँगी, तुम्हे सुवर्ण दूँगी, तुम्हे खेत, मकान, बैल, गाय, दास, दासी, भार्या बनानेके लिये कन्या दूँगी या मै तुम्हारी हूँगी या तुम्हारे लिये दूसरी भार्या लाऊँगी,' तब यदि भिक्षुके (मनमे) ऐसा हो—'भगवान्‌ने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जाने मेरे ब्रह्म चर्यमे विघ्न हो' तो वहाँसे चल देना चाहिये, वर्षावासके टूटनेका डर नही । 161

२—" ० भिक्षुको वेश्या बुलाती है ०[1] । 162

३—" ० भिक्षुको स्थूलकुमारी (=अधिक अवस्थावाली अविवाहिता स्त्री) बुलाती है ०[1] । 163

४—" ० भिक्षुको पडक (हिंजळा) बुलाता है ०[1] । 164

५—" ० भिक्षुको जातिवाले बुलाते है ०[1] । 165

६—" ० भिक्षुको राजा बुलाते है ०[1] । 166

७—" ० भिक्षुको चोर बुलाते है ०[1] । 167

८—" ० भिक्षुको बदमाश बुलाते है ०[1] । 168

९—" ० यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु जिसका स्वामी नही, ऐसे खजानेको देखे । तब भिक्षुको ऐसा हो—'भगवानने चित्तको जल्दी बदल जानेवाला कहा है, क्या जाने मेरे ब्रह्मचर्यमे विघ्न हो ।' तो वहाँसे चल देना चाहिये , वर्षावासके टूटनेका डर नही ।" 169

(५) सघ-भेद रोकनेके लिये स्थान-त्याग

१—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु बहुतसे भिक्षुओको सघमे फूट डालनेकी कोशिश करते देखे और वहाँ भिक्षुको ऐसा हो—'सघ मे फूट डालनेको भगवान्‌ने भारी (दोप) कहा है, मेरे सामनेहो सघमे कही फूट न पळ जाय,' (यह सोच) वहाँसे चल देना चाहिये । वर्षावास टूटनेका डर नही । 170

२—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावास करता भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमे बहुतसे भिक्षु सघमे फूट डालनेकी कोशिश कर रहे है ० । 171

३—" ० भिक्षु सुनता है कि अमुक (भिक्षु-)आवासमे बहुतसे भिक्षु सघमे फूट डालनेकी कोशिश कर रहे है, और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र है । यदि मै इनको कहूँ कि आवुसो ! भगवान्‌ने सघमे फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है, मत आप आयुष्मान् सघमे

---

[1] ऊपर 'स्त्री' हीकी तरह यहाँ भी पढना चाहिये ।

फूट डालनेकी इच्छा करे,' तो वह मेरी वातको करेंगे, कान देकर सुनेंगे, ध्यान देंगे, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही। 172

४—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने कि अमुक (भिक्षु-)आवासमे बहुतसे भिक्षु सघमे फूट डालनेकी कोशिश कर रहे है, और यदि भिक्षुको ऐसा हो—'वे भिक्षु मेरे मित्र नही है, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र है। यदि मै उनके मित्रोसे कहूँगा तो वे इन्हे कहेंगे—'आवुसो! भगवान्‌ने सघमे फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है, मत आप आयुष्मान् सघमे फूट डालनेकी इच्छा करे,' तो वह उनकी वातको करेंगे, कान देकर सुनेंगे, ध्यान देंगे, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही। 173

५—"यदि भिक्षुओ! वर्षावास करनेवाला भिक्षु सुने—'अमुक (भिक्षु-)आवासमे बहुतसे भिक्षुओने सघमे फूट डाल दी। यदि भिक्षुको ऐसा हो—'यह भिक्षु मेरे मित्र है ०[1]। 174

६—" ० भिक्षु सुने ०। यदि भिक्षुको ऐसा हो—'वे भिक्षु मेरे मित्र नही है किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र ०[1]। 175

७—' ० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमे बहुतसी भिक्षुणियाँ सघमे फूट डालनेकी कोशिश कर रही है। यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र हे। यदि मै उनसे कहूँगा—भगिनियो! भगवानने सघमे फूट डालनेको भारी (अपराध) कहा है० ध्यान देगी, तो वहाँ चला जाना चाहिये। वर्षावास टूटनेका डर नही। 176

८—"० वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नही है, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र हैं। यदि मै उनके मित्रोसे कहूँगा तो वे इन्हे कहेगें ० ध्यान देगी०। 177

९—"० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमे बहुतसी भिक्षुणियोने सघमे फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र है०। 178

१०—"० भिक्षु सुने—अमुक (भिक्षुणी-)आवासमे बहुतसी भिक्षुणियोने सघमे फूट डाल दी है और यदि भिक्षुको ऐसा हो—वे भिक्षुणियाँ मेरी मित्र नही हैं, किन्तु उनके मित्र मेरे मित्र है०।" 179

(६) घुमन्तू गृहस्थोके साथ-साथ वर्षावास

१—(क) उस समय एक भिक्षु व्रज (=गायोके रेवळ)मे वर्षावास करना चाहता था। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ व्रजमे व्रर्षावास करनेकी।" 180

(ख) व्रज उठकर वहाँसे चला गया। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, जहाँ व्रज उठकर जाए वहाँ जानेकी।" 181

२—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर सार्थ (=कारवाँ)के साथ जाना चाहता था। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सार्थके साथ वर्षावास करनेकी।" 182

३—उस समय एक भिक्षु वर्षोपनायिकाके समीप आनेपर नावमे जाना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नावपर वर्षावास करनेकी।" 183

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ दुहराओ।

(७) वर्षावासके लिए अयोग्य स्थान

१—उस समय भिक्षु वृक्षोके कोटरमे वर्षावास करते थे। लोग देखकर हैरान होते थे—कैसे (यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण वृक्षोके कोटरमे वर्षावास करते है) जैसे कि पिशाच !' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वृक्षके कोटरमे वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसको दुक्कट का दोष हो।" 184

२—उस समय भिक्षु वृक्ष-वाटिकामे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण वृक्ष-वाटिकामे वर्षावास करते है) जैसेकि शिकारी ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! वृक्ष-वाटिकामे वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष है।" 185

३—उस समय भिक्षु चौळेमे वर्षावास करते थे। वर्षा आनेपर वृक्षके नीचेकी ओर भी भागते थे, नीमके झुरमुटकी ओर भी भागते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चौळेमे वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 186

४—उस समय भिक्षु विना घर-मकान के वर्षावास करते थे और सर्दीसे भी तकलीफ पाते थे गर्मीसे भी तकलीफ पाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! विना घर-मकानके वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 187

५—उस समय भिक्षु मुर्दो (के रखने)की कुटियोमे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे यह शाक्यपुत्रीय श्रमण मुर्दोकी कुटियोमे वर्षावास करते है) जैसेकि मुर्दा जलानेवाले शवदाहक ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! मुर्दोकी कुटियोमे वर्षावास नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 188

६—उस समय भिक्षु छप्परोमे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसेकि चरवाहे ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! छप्परोमे वर्षावास नही करना चाहिये। जो करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 189

७—उस समय भिक्षु चाटी (=अनाज रखनेका मिट्टीका वडा कुडा जिसे कही-कही छोळ भी कहते है)मे वर्षावास करते थे। लोग हैरान होते थे ० जैसे तीर्थिक[1] ! भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! चाटी मे वर्षावास नही करना चाहिये ० दुक्कट०।" 190

(८) वर्षावासमे प्रव्रज्या

१—उस समय श्रावस्ती मे संघने प्रतिज्ञा (=कतिका) की थी—'वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नही देगे।' विशाखा मृगारमाता के नातीने भिक्षुओके पास जाकर प्रव्रज्या माँगी। भिक्षुओने कहा—'आवुस ! संघने प्रतिज्ञा की है कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या न देगे। आवुस तव तक प्रतीक्षा करो, जव तक कि भिक्षु वर्षावास कर लेते है। वर्षा समाप्त होनेपर वे प्रव्रज्या देगे।' तव भिक्षुओने वर्षावास करके विशाखा मृगारमाताके नातीसे कहा—'अव आओ आवुस ! प्रव्रज्या लो।' उसने

---

[1] बुद्धके समयके आजीवक, निर्ग्रन्थ (=जैन) आदि साधु-सम्प्रदाय।

कहा—'भन्ते ! यदि मै पहले प्रव्रजित हुआ होता तो (भिक्षु जीवनमे) रमण करता, किन्तु अव मै नही प्रव्रजित होऊँगा।' विशाखा मृगारमाता हैरान होती थी—कैसे आर्य लोग ऐसी प्रतिज्ञा करते है कि वर्षाके भीतर प्रव्रज्या नही देगे ! कौन काल ऐसा है कि जिसमे धर्माचरण नही किया जाय ?' भिक्षुओने विशाखा मृगारमाताके हैरान होनेको सुना। तव उन्होने यह बात भगवानसे कही।—

"भिक्षुओ ! ऐसी प्रतिज्ञा नही करनी चाहिये कि वर्षाके भीतर हम प्रव्रज्या नही देगे। जो करे उसे दुक्कटका दोप हो।" 191

§४—स्थान-परिवर्तनमें सदोषता और निर्दोषता

(१) पहिली वर्पोपनायिकामे वचन दे वर्पावासमे व्यतिक्रम निपिद्ध

१—उस समय आयुष्मान् उपनद शाक्यपुत्रने राजा प्रसेनजित् कोसलसे पहिली वर्षोपनायिका मे वर्षावास करनेका वचन दिया था। और उन्होने उस आवास (भिक्षु-आश्रम)में जाते वक्त रास्तेमे वहुत चीवरोवाला एक आवास देखा। तव उनको हुआ—क्यो न मै दोनो आवासोमे वर्षावास करूँ ? इस प्रकार मुझे वहुत चीवर मिलेगा। तव वह दोनो आवासोमे वर्षावास करने लगे। राजा प्र से न जि त् को स ल हैरान होता था—'कैसे आर्य उ प न द शाक्यपुत्र हमे वर्षावासका वचन देकर झूठ करते है। भगवान्ने अनेक प्रकारसे झूठ वोलनेकी निदा की है, और झूठ वोलनेके त्यागको प्रशसा है।' भिक्षुओने राजा प्रसेनजित् कोसलके हैरान होनेको सुना। तव जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठ करते है ! भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे झूठ वोलनेकी निदा की है और झूठ वोलनेके त्यागको प्रशसा है।' तव उन भिक्षुओने यह वात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रित कर आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्रसे पूछा—

"सचमुच उ प न द ! तूने राजा प्र से न जि त् कोसलको वर्पावासका वचन दे झूठ किया ?"

"हाँ सच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—'कैसे तू निकम्मा आदमी राजा प्रसेनजित् कोसलको वर्षावासका वचन दे झूठा करेगा ? मोघ-पुरुप ! मैने तो अनेक प्रकारसे झूठ वोलनेकी निंदा की है और झूठ वोलनेके त्यागको प्रशसा है। मोघ-पुरुप ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।' फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने (भिक्षुओको) सवोधित किया—

"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु (किसीको) पहिली व र्षो प ना यि का से वर्पावास करनेका वचन दे और उस आवासमे जाते वक्त रास्तेमे एक वहुत चीवरोवाला आवास देखे। तव उसको हो—क्यो न मै दोनो आवासोमे वर्पावास करूँ ? इस प्रकार मुझे वहुत चीवर मिलेगा'। तव वह दोनो आवासोमे वर्षावास करने लगे। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिली (वर्पोपनायिका) न मालूम हो, तोभी तुरत उसको दुक्कटका दोप हो।" 192

(२) पहिली वर्पोपनायिकासे वचन दे आवाससे जाने-लौटनेके नियम

१—(दोप)—क "यदि भिक्षुओ ! किसी भिक्षुने पहिली व र्पो प ना यि का से वर्पावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमे जाते वक्त वह वाहर उपोसथ करे पीछे विहारमे जाये, आसन-वासन विछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमे झाळू दे, और करने लायक कामके न रहने

पर उसी दिन चला जाये। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरत उसको दुक्कटका दोष हो। 193

ख "यदि भिक्षुओ ! किसी भिक्षुने पहिली वर्षोपनायिकासे वर्षावास करनेका वचन दिया हो और उस आवासमे जाते वक्त वह वाहर उपोसथ करे, पीछे विहारमे जाये, आसन-वासन विछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमे झाळूदे, और करने लायक कामके वाकी रहतेही उसी दिन चला जाये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिली वर्षोपनायिका न मालूम हो, तो भी तुरन्त उसको दुक्कटका दोष हो। 194

ग "आँगनमे झाळूदे और करने लायक कामके वाकी न रहनेपर दो-तीन दिन विताकर चला जाय, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 195

घ "आँगनमे झाळू दे और करने लायक कामके वाकी रहते ही दो-तीन दिन विताकर चला जाये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोषहो। 196

ङ "० आँगनमे झाळू दे और सप्ताहभरके करने लायक कामके रहते दो-तीन दिन विताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहको वाहर वितावे, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कटका दोष हो।" 197

(३) कब आना-जाना और कब नही

२—(दोष नही)—क "० आँगनमे झाळू दे और सप्ताह भरके करने लायक कामके रहते दो-तीन दिन विताकर चला जाय, और वह उस सप्ताहके भीतरही लौट आये, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको दोष नही। 198

ख "० आँगनमे झाळू दे और वह प्रवारणाके[१] आनेके एक सप्ताह पहले करने लायक कामको वाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! वह भिक्षु चाहे उस आवासमे आये या न आये, उस भिक्षुको० दोष नही। 199

३—(दोष) ८ "० आँगनमे झाळू दे और वह करने लायक काम वाकी न रखकर उसी दिन चला जाता है। भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 200

ख '० आँगनमे झाळू दे और वह करने लायक कामको वाकी रखकर उसी दिन चला जाता है० दुक्कट हो। 201

ग "० आँगनमे झाळूदे और करने लायक कामको न छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 202

घ "० आँगनमे झाळू दे और करने लायक कामको वाकी रख दो-तीन दिन रहकर चला जाता है ०। 203

ङ १२ "० आँगनमे झाळू दे और सप्ताह भरके लायक कामको छोळ दो-तीन दिन रहकर चला जाता है और वह सप्ताह भर वाहर विताता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 204

च "० आँगनमे झाळू दे और वह दो-तीन दिन वसकर सप्ताहभर करने लायक कामको छोळकर चला जाता है और उसी सप्ताहमे लौट आता है, उस भिक्षुको० दुक्कट हो। 205

४—(दोष नही) "० आँगनमे झाळू दे और प्रवारणाके एक सप्ताह पहिले करने लायक कामको वाकी रखकर चला जाता है, तो भिक्षुओ चाहे वह उस आवासमे आये या न आये उस भिक्षुको० दोष नही।" 206

---

[१] वर्षावास समाप्तिपर पळनेवाली (आश्विन) पूर्णिमाको प्रवारणा कहते हैं।

(४) पिछली वर्षोपनायिकासे वचन दे आवाससे जाने-लौटनेमे नियम

१—(दोप)—क "यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने पिछली (वर्षोपनायिका)से वर्षावास करनेका वचन दिया हो और वह उस आवासको जाते वक्त बाहर उपोसथ करे, पीछे विहार मे जाय, आसन-वासन बिछाये, धोने-पीनेका पानी रखे, आँगनमे झाळू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रखकर चला जाय, भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पिछली वर्षोपनायिका न मालूम हो तो भी तुरत उसको दुक्कटका दोप हो। 207

ख "० आँगनमे झाळू दे और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी रखकरचला जाय ० दुक्कटका दोप हो। 208

ग "० आँगनमे झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको न बाकी रखकर चला जाता है ० दुक्कटका दोप हो। 209

घ "० आँगनमे झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक काम बाकी रखकर चला जाता है ० दुक्कटका दोप हो। 210

ङ "० आँगनमे झाळू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताहभर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है, और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है ० दुक्कटका दोप हो। 211

२—(दोप नही)—क "० आँगनमे झाळू देता है और दो-तीन दिन रह सप्ताह भर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है और उस सप्ताहके भीतर ही लौट आता है ० दोप नही। 212

ख "० आँगनमे झाळू देता है और वह चातुर्मासी कौमुदी (=शरद पूनो=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमे आवे या न आवे उस भिक्षुको० दोप नही। 213

३—(दोष)—क "० आँगनमे झाळू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी न रख चला जाता है ० दुक्कटका दोष हो। 214

ख "० आँगनमे झाळू देता है और वह उसी दिन करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है ०। 215

ग "० आँगनमे झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाकी न रखकर चला जाता है ०। 216

घ "० आँगनमे झाळू देता है और दो-तीन दिन रहकर करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है ०। 217

ङ "० आँगनमे झाळू देता है और दो तीन दिन रहकर सप्ताह भरके करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है और वह उस सप्ताहको बाहर बिताता है उस भिक्षुको ० दुक्कटका दोष हो। 218

४—(दोप नही)—क "० आँगनमे झाळू देता है, और दो-तीन दिन रह सप्ताह भरके कामको बाकी रखकर चला जाता है और उसी सप्ताहके भीतर लौट आता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको० दोष नही। 219

ख "० आँगनमे झाळू देता है, और वह चातुर्मासी कौमुदी (=आश्विन पूर्णिमा)के एक सप्ताह पूर्व करने लायक कामको बाकी रखकर चला जाता है, तो भिक्षुओ ! चाहे वह भिक्षु उस आवासमे आये या न आये उस भिक्षुको० दोष नही। 220

वस्सूपनायिकक्खन्धक समाप्त ॥३॥

४—प्रवारणा-स्कंधक

१—प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति-सबंधी नियम। २—कुछ भिक्षुओकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा। ३—असाधारण प्रवारणा। ४—प्रवारणा स्थगित करना। ५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढाना।

§१—प्रवारणामें स्थान, काल और व्यक्ति सम्बन्धी नियम

१—*श्रावस्ती*

(१) मौन व्रतका निषेध

१—उस समय बुद्धभगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। उस समय बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु को स ल देशके एक भिक्षु-आश्रममे वर्षावास करते थे। तब उन भिक्षुओ को यह हुआ—'किस उपायसे हम एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त, अच्छी तरह वर्षावास करे, और भोजनसे न दुख पाये।' तब उन भिक्षुओ को यह हुआ—'यदि हम एक दूसरेसे आलाप-सलाप न करे, जो भिक्षा करके गॉवसे पहले आये वह आसन बिछावे, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढा, पैर रगळनेकी कठली, रक्खे, कूळेकी थालीको धोकर रक्खे, धोने-पीनेके पानीको रक्खे, भिक्षा करके गॉवसे पीछे आये, तो जो कुछ खाकर बचा हुआ हो यदि चाहे तो उसे खाय, न चाहे तो तृण-रहित स्थानमे छोळदे या प्राणी-रहित पानीमे डाल दे, ओर वह आसनको उठाये, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढा, पैर रगळनेकी कठली समेटे, कूळेकी थालीको धोकर रखदे, धोने-पीनेका पानी उठावे, और चौकेको साफ करे। जो पीनेवाले पानीके घळे, इस्तेमाल करनेवाले पानीके घळे, या पाखानेके घळेको रिक्त, खाली देखे तो उसे भरके रखदे। यदि उससे न होसके तो हाथके इशारेसे बुलाकर हाथके सकेतसे रखवा दे। उसके कारण दुर्वचन न बोले। इस प्रकार हम एकमत, विवाद रहित हो मोदयुक्त, अच्छी तरह वर्षावास कर सकेगे और भोजनसे भी न दुख पायेगे।

तब उन भिक्षुओने एक दूसरेसे आलाप-सलाप नही किया ० उसके कारण दुर्ववचन नही बोले। यह नियम था कि वर्षाके बाद वर्षावास करके भिक्षु भगवान्‌के दर्शनके लिये जाते थे। तब वर्षावास समाप्त कर तीन महीनेके बाद आसन-वासन समेट, पात्र-चीवर ले वह भिक्षु श्रा व स्ती की ओर चल पळे। क्रमश जहॉ श्रावस्तीमे अ ना थ पि डि क का आराम जे त व न था और जहॉ भगवान् थे वहॉ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोका यह नियम है कि वह आये भिक्षुओसे कुशल-प्रश्न पूछते है। तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भिक्षुओ! अच्छा तो रहा, यापन करने योग्य तो रहा? तुम लोगोने एकमत, विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास तो किया? भोजनके लिये तुम्हे तकलीफ तो नही हुई?"

"हाँ भगवान् ! अच्छा रहा, यापन करने योग्य रहा, हमने एक मत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया, भोजनके लिये हमें तकलीफ नही हुई।"

जानते हुए भी (किसी किसी वातको) तथागत पूछते है, जानते हुए भी (किसी किसी वातको) नही पूछते। काल जानकर पूछते हैं, (न पूछने का) काल जानकर नही पूछते। तथागत सार्थक (वात) को पूछते है, व्यर्थकी (वातको) नही (पूछते)। व्यर्थकी (वातका पूछना) तथागतकी मर्यादासे परे है। बुद्ध भगवान दो कारणोसे भिक्षुओंसे पूछते है—(१) धर्म उपदेश करनेके लिए, (२) या शिष्योके लिए शि क्षा पा द (= नियम) विधान करनेके लिए। तव भगवान्ने उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! कैसे तुमने एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया और तुम्हे भोजनके लिये तकलीफ नही हुई।"

"भन्ते ! हम वहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु कोसल देशके एक भिक्षु-आश्रममे वर्षावास करने लगे। तव हम भिक्षुओको यह हुआ—किस उपायसे०[1] उसके कारण दुर्वचन न वोले। इस प्रकार भन्ते ! हमने एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त अच्छी तरह वर्षावास किया, और भोजनके लिये तकलीफ नही हुई।"

तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! न-अच्छी-तरहसे ही इन मोघ-पुरुषो (= निकम्मे आदमियो)ने वर्षावास किया तो भी यह समझते है कि इन्होने अच्छी तरहसे वर्षावास किया। भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोने पशुओकी तरह ही एक साथ वास किया, तो भी यह समझते है कि इन्होने अच्छी तरह वर्षावास किया भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोने भेळोकी तरह ही एक साथ वास किया, तो भी०। भिक्षुओ ! इन मोघ-पुरुषोने पक्षियोकी तरहही एक साथ वास किया, तो भी०। भिक्षुओ ! कैसे इन मोघ-पुरुषोने ती र्थि को के मूक व्रतको ग्रहण किया ! भिक्षुओ ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिए है०।"

फटकार कर धर्म-सबधी कथा कह, भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! मूक व्रतको, जिसको कि तीर्थिक लोग ग्रहण करते हैं—नही ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसको दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास समाप्त किये भिक्षुओको देखे, सुने और सन्देह वाले इन तीन तरह (के अपराधो या दोपो)की प्र वा र णा (=वारणा=मार्जन) करनेकी और वह तुम्हे एक दूसरेके लिये अनुकूल, दोप हटाने वाली, विनय-अनुमोदित होगी।" I

"और भिक्षुओ ! प्र वा र णा इस प्रकार करनी चाहिये—चतुर, समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे–'भन्ते ! सघ मेरी सुने। आज प्रवारणा (=पवारणा) है। यदि सघ उचित समझे तो वह प वा-र णा करे।' तव स्थविर (=वृद्ध) भिक्षु एक कधेपर उत्तरासग रख उकळूँ वैठ, हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस ! सघके पास देखे, सुने और सदेह वाले इन तीन प्रकारके (अपने अपराधोकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और सदेह वाले अपराधोको बतलावे। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी०।' (फिर) नये भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासघ करके उकळूँ वैठ, हाथ जोळकर ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! सघके पास (देखे, सुने और सदेहवाले इन तीन प्रकार अपराधोकी) मैं प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और सदेहवाले अपराधोको वतलावे। देखनेपर मैं उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी बार भी०। तीसरी वार भी०'।"

---

[1] देखो पृष्ठ १८५ (१)।

(२) वृद्धोंके सामने बैठनेमे नियम

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनोपर ही बैठे रहते थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे षडवर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त अपने आसनोपर ही बैठे रहते है ।' तब उन भिक्षुओ ने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ । षड्वर्गीय भिक्षु स्थविर भिक्षुओके उकळूँ बैठ प्र वा र णा करते वक्त आसनोपर ही बैठे रहते है ?"

"(हॉ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ । वे मोघपुरुप स्थविर भिक्षुओके उकळूँ बैठे प्रवारणा करते वक्त आसनपर ही बैठे रहते है ? भिक्षुओ । न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

—फटकार करके धर्म सबधी कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ । स्थविर भिक्षुओके उकळूँ बैठ प्रवारणा करते वक्त आसनपर नही बैठना चाहिये । जो बैठे उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ । अनुमति देता हूँ, सभीको उकळूँ बैठ प्र वा र णा करने की ।"2

२—उस समय बुढापेसे अतिदुर्बल एक स्थविर सबके प्रवारणा कर लेनेकी प्रतीक्षामे उकळूँ बैठे मूर्छित होकर गिर पळे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ । अनुमति देता हूँ तब तक उकळूँ बैठने की जब तक कि उसके पासवाला प्रवारणा करे और (अनुमति देता हूँ) प्रवारणा कर लेनेपर आसनपर बैठने की ।"3

(३) प्रवारणाकी तिथियाँ

तब भिक्षुओको एसा हुआ—'कितनी प्रवारणाएँ है ।' भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ । चतुर्दशीकी और पचदशीकी, यह दो प्रवारणाएँ है ।"4

(४) प्रवारणाके चार कर्म

तब भिक्षुओको ऐसा हुआ—"कितने प्रवारणाके कर्म है ?" भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ । यह चार प्रवारणाके कर्म है—(१) धर्म-विरुद्ध वर्ग (=अपूर्ण सघ)का प्रवारणा कर्म, (२) धर्म-विरुद्ध सपूर्ण (सघ)का प्रवारणा कर्म, (३) धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म, (४) धर्मानुसार सपूर्ण (सघ)का प्रवारणा कर्म। भिक्षुओ । जो यह धर्म-विरुद्ध वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्मको नही करना चाहिये, और मैंने इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी अनुमति नही दी है। भिक्षुओ । जो यह धर्म-विरुद्ध समग्र (सघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्र वा र णा कर्मको नही करना चाहिये, और मैंने ऐसे प्रवारणा कर्मकी अनुमति नही दी है। भिक्षुओ । जो यह धर्मानुसार वर्गका प्रवारणा कर्म है, ऐसे प्रवारणा कर्म को नही करना चाहिये, और ऐसे प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति नही दी है। भिक्षुओ । जो यह धर्मानुसार समग्र (सघ)का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको करना चाहिये। इस प्रकारके प्रवारणा कर्मकी मैंने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ । तुम्हे यह सीखना चाहिये कि जो यह धर्मानुसार समग्र (सघ) का प्रवारणा कर्म है ऐसे प्रवारणा कर्मको मै करूँगा ।" 5

(५) अनुपस्थितकी प्रवारणा

१—तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एकत्रित हो जाओ, संघ प्रवारणा करेगा।" ऐसा कहनेपर एक भिक्षुने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! एक भिक्षु बीमार है, वह नहीं आया है।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ—रोगी भिक्षुकी प्र वा र णा (को दूसरे द्वारा भेज) देने की।" 6

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्रवारणा) देनी चाहिये—उस रोगी भिक्षुको एक भिक्षुके पास जाकर एक कंधेपर उत्तरासंग रख, उकड़ूं बैठ, हाथ जोळकर ऐसे कहना चाहिये—'मैं प्रवारणा देता हूँ। मेरी प्रवारणाको लेजाओ ! मेरे लिये प्रवारणा करना।' इस प्रकार कायासे सूचित करे, वचनसे सूचित करे, या काय-वचनसे सूचित करे तो प्रवारणा देदी गई होती है। यदि न कायासे सूचित करे, न वचनसे सूचित करे, न काय-वचनसे सूचित करे, तो प्रवारणा दी गई नही होती। इस प्रकार यदि प्रवारणा मिल सके तो ठीक नहीं और यदि नहीं तो भिक्षुओ ! उस रोगी भिक्षुको चारपाई या चौकीपर उठाकर ले आकर प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! रोगीके परिचारक भिक्षुओंको ऐसा हो—यदि हम रोगीको इस जगहसे हटायेंगे तो रोग बढ़जायगा और उसकी मृत्यु होगी—तो भिक्षुओ रोगीको उस जगहसे नहीं हटाना चाहिये बल्कि संघको वहाँ जाकर प्रवारणा करनी चाहिये। किन्तु संघके एक भागको प्रवारणा नही करनी चाहिये, यदि करे तो दुक्कटका दोष हो।

२—"यदि भिक्षुओ प्रवारणा देनेपर प्रवारणा ले जाने वाला वहाँसे चला जाये तो प्रवारणा दूसरेको देनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणा देनेपर प्रवारणा लेजानेवाला (भिक्षुपनसे) निकल जाये या मर जाये या श्रामणेर बनजाय या भिक्षुनियमको त्यागदे या अन्तिम अपराध (-पाराजिक) का अपराधी हो जाय, या पागल, विक्षिप्त-चित्त, या मूर्च्छित हो जाये या दोष न स्वीकार करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये, या दोष या दोषके काममे उत्क्षिप्तक हो जाये, या बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माना जाने लगे, पंडक माना जाने लगे, चोरीसे भिक्षुवस्त्र पहिनने वाला माना जाने लगे, मातृघातक०, पितृघातक०, अर्हद्-घातक०, भिक्षुणीदूषक०, संघमें फूटडालने वाला०, बुद्धके शरीरसे लोहू निकालने वाला०, (स्त्री-पुरुष) दोनोंके लिंगवाला माना जाने लगे, तो दूसरेको प्रवारणा प्रदान करनी चाहिये ०[1]।"

(६) प्रवारणामे अपेक्षित भिक्षु-संख्या

४—[2]उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन पाँच भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—भगवान्‌ने संघको प्रवारणा करनेका विधान किया है और हम पाँचही जने है। कैसे हमें प्रवारणा करनी चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (कमसे कम) पाँच (भिक्षुओ)के संघको प्रवारणा करने की।"7

(७) अन्यान्य-प्रवारणामे नियम

१—उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन चार भिक्षु रहते थे। तब उन भिक्षुओको यह

---

[1] देखो उपोसथ-स्कंधक २§२।३ (२-४) (पृष्ठ १५२-५३, 67-69) 'शुद्धि' और 'उपोसथ' की जगह 'प्रवारणा' पढना चाहिये।

[2] १, २, ३ स्तंभके लिये उपोसथ-स्कंधक २§२।३ (२-४) (पृष्ठ १५२-५३,67-69) देखना चाहिये।

हुआ—भगवान्ने पाँच भिक्षुओके सघको प्रवारणा करनेकी अनुमति दी है और हम चार ही जने है। हमे कैसे प्रवारणा करनी चाहिये ?, यह वात भगवान्से कही —

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार (भिक्षुओ)को एक दूसरेके साथ (=अन्योन्य) प्रवारणा करनेकी। 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—'चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—'आयुष्मानो ! मेरी सुनो, आज प्रवारणा है। यदि आयुष्मानोको पसद हो तो हम एक दूसरेके साथ प्रवारणा करे।' (तव) स्थविर भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासग कर उकळूँ वैठ, हाथ जोळ, उन भिक्षुओसे ऐसा कहना चाहिये—आवुसो ! मै आयुष्मानोके पास प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मानो ! कृपा करके मुझे (मेरे) देखे, सुने और सदेहवाले अपराधोको वतलावे। देखनेपर मै उनका प्रतिकार करूँगा। इसके वाद भी०। तीसरी वार भी०।' (फिर) नये भिक्षुको एक कधेपर उत्तरासग करके, उकळूँ वैठ, हाथ जोळकर उन भिक्षुओसे ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! आयुष्मानोके पास देखे, सुने मै प्रवारणा करता हूँ। आयुष्मान् कृपा करके (मेरे) देखे, सुने, सदेहवाले अपराधोको वतलावे। देखनेपर मै उनका प्रतिकार करूँगा। दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी०।'"

२—उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन तीन भिक्षु रहते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है, पॉचके सघको प्रवारणा करनेकी। चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम तीनही जने है, कैसे हमे प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देताहूँ तीन (भिक्षुओ)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी। 9

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[1]।"

३—उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन दो भिक्षु रहते थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है, पॉचके सघको प्रवारणा करनेको और चारको एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, और तोन को (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करनेकी, किन्तु हम दोही जने है, कैसे हमे प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दो (भिक्षुओ)को एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की। 10

"और भिक्षुओ इस प्रकार प्रवारणा करनी चाहिये—०[1]।"

(८) एक भिक्षुकी प्रवारणा

उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता था। उस भिक्षुको ऐसा हुआ—'भगवान्ने अनुमति दी है ०[2] और दोको (भी) एक दूसरेके साथ प्रवारणा करने की, किन्तु मै अकेला हूँ, मुझे कैसी प्रवारणा करनी चाहिये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन एक भिक्षु रहता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको जिस उपस्थान-शाला(=चौपाल) ०[2] उसके लिये उपोसथमें रुकावट नही करनी चाहिये।" 11

[1] चार भिक्षुओ वाली प्रवारणाकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[2] देखो २§४।६ (३) (पृष्ठ १५५-77)—'उपोसथ' और 'शुद्धि'की जगहपर 'प्रवारणा' पढ़ना चाहिये।

(९) प्रवारणामें दोष-प्रतिकार कैसे और किसके सामने

[1]उस समय एक भिक्षुको प्रवारणा करते समय दोष याद आया। "०[2] जब वह सदेह रहित होगा तो उस दोषका प्रतिकार करेगा।' (यह) कह प्रवारणा करे। इसके लिये प्रवारणाको छोळ नही देना चाहिये"। 12-13

प्रथम भाणवार समाप्त

§२—कुछ भिक्षुओंकी अनुपस्थितिमें की गई नियम-विरुद्ध प्रवारणा

क (क) अन्य आश्रमवासियोकी अनुपस्थितिको जानकर की गई दोषरहित प्रवारणा

उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन वहुतसे—पाँच या अधिक आश्रमवासी भिक्षु एकत्रित हुए। उन्होने नही जाना कि कुछ आश्रमवासी भिक्षु नही आये। ०[3] और भिक्षुओ! सघकी समग्रताके अतिरिक्त प्रवारणासे भिन्न दिनको प्रवारणा नही करनी चाहिये।"821

द्वितीय भाणवार समाप्त

§३—असाधारण प्रवारणा

(१) विशेष अवस्थाओंमे संक्षिप्त प्रवारणा

१—(क) उस समय कोसल देशमे एक आवासमे प्रवारणाके दिन शवरोका भय होगया। भिक्षु तीन वचनसे[4] प्रवारणा नही कर सके। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो वचनसे प्रवारणा करनेकी।" 822

(ख) और अधिक शवरोका भय हुआ जिससे भिक्षु दो वचनसे भी प्रवारणा नही कर सके। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ एक वचनसे प्रवारणा करनेकी। 823

(ग) और भी अधिक शवरोका भय हुआ। भिक्षु एक वचनसे भी प्रवारणा नही कर सके।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उसी वर्षमे प्रवारणा करनेकी।" 824

२—उस समय एक आवासमे प्रवारणाके दिन लोग दान देते थे, जिससे बहुत अधिक रात वीत जाती थी। तव उन भिक्षुओको हुआ—'लोग दान देते है जिससे अधिक रात बीत गई, यदि सघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और बिहान होजायगा। हमे कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह वात कही।—

---

[1] इसके लिये २§४।७ (पृष्ठ १५५,78,79)को देखना चाहिये।

[2] देखो २§४।८ (१,२) (पृष्ठ १५५-५६) 'प्रातिमोक्ष'की जगह 'प्रवारणा' पढना चाहिये

[3] देखो वर्षोपनायिक-स्कधक ३§३-४ (पृष्ठ १७८–८४) चार भिक्षुके स्थानपर पाँच भिक्षु और 'उपोसथ'के स्थानपर 'प्रवारणा' पढना चाहिये।

[4] संघके सामने निवेदन करते समय 'दूसरी बार भी', 'तीसरी बार भी' कहकर जो वही वाक्यावली दो बार, तीन बार, दुहराई जाती है उसीको 'दो वचन', 'तीन वचन' कहते है।

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन लोग दान दे जिससे वहुत अधिक रात वीत जाये और भिक्षुओको ऐसा हो—'लोग दान देते है जिससे अधिक रात वीत गई, यदि सघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान होजयागा,' तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, लोगोके दान देनेमे आज वहुत रात वीत गई यदि सघ तीन वचनसे प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान होजायगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी-वर्ष-वाली प्रवारणा करे।' 825

३—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन भिक्षुओके धर्म (=सुत्तत=वुद्धोपदेश)का पाठ करते, सुत्त पाठियोके सुत्तका सगायन करते विनयधर्मके विनयका निर्णय करते, धर्मकथिको (=धर्मोपदेशको)के धर्मकी परीक्षा करते, भिक्षुओके कलह करते, अधिक रात वीत जाये और तव भिक्षुओको ऐसा हो—० भिक्षुओके कलह करते आज वहुत अधिक रात चली गई, यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही पूरी होगी और विहान हो जायगा', तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'० भिक्षुओके कलह करते (आज) वहुत अधिक रात वीत गई। यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी नही होगी और विहान होजायगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली, या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।'" 826

४—उस समय कोसल देशके एक आवासमे प्रवारणाके दिन वहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ था। वहाँ वर्षासे वचनेका स्थान कम था और वहुत भारी मेघ उठा हुआ था। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'यह वहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे वचनेका स्थान कम है और वहुत भारी मेघ उठा हुआ है यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ वरसने लगेगा। (इस वक्त) हमें कैसे करना चाहिये ?' भगवान्से ०।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन वहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ हो, वहाँ वर्षासे वचनेका स्थान कम हो, और वहुत भारी मेघ उठा हुआ हो, और उस वक्त भिक्षुओको ऐसा हो—'यह वहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है। यहाँ वर्षासे वचनेका स्थान कम है, और वहुत भारी मेघ उठा हुआ है। यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और यह मेघ वरसने लगेगा', तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह वहुत भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ है ० यह मेघ वरसने लगेगा। यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन-वाली या उसी वर्ष वाली प्रवारणा करे।" 827

५—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे प्रवारणाके दिन राजाकी तरफ से विघ्न हो ०। 828

६—"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमें प्रवारणाके दिन चोरका विघ्न हो ०। 829

७—" ० अग्निका विघ्न हो ०। 830

८—" ० पानीका विघ्न हो ०। 831

९—"० मनुष्यका विघ्न हो ०। 832

१०—"० अमनुष्यका विघ्न हो ०। 833

११—"० हिंसक जन्तुओका भय हो ०। 834

१२—"० सरीसृपोका भय हो ०। 835

१२—"० जीवनका भय हो ०। 836

१४—"० ब्रह्मचर्यमे विघ्न हो और वहाँ भिक्षुओको ऐसा हो—'यह ब्रह्मचर्यका विघ्न उपस्थित है, यदि सघ तीन-वचन-वाली प्रवारणा करेगा तो सघकी प्रवारणा भी पूरी न होगी और ब्रह्मचर्यका विघ्न भी होजायगा,' तो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह ब्रह्मचर्यका विघ्न (उपस्थित) है ०, यदि सघ उचित समझे तो वह दो-वचन-वाली, एक-वचन वाली या उसी वर्षवाली प्रवारणा करे।' "837

(२) दोषयुक्त व्यक्तिकी प्रवारणाका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दोषयुक्त होते प्रवारणा करते थे। भगवान्‌ने यह बात कही।

"भिक्षुओ ! दोषयुक्त हो प्रवारणा नही करनी चाहिये। जो प्रवारणा करे उसे दुक्कटका दोष है। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जो दोषयुक्त होते प्रवारणा करे उसे अवकाश करा दोषारोपण करनेकी।" 838

§४—प्रवारणाका स्थगित करना

(१) अवकाश न करनेपर स्थगित

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अवकाश करवाते वक्त अवकाश करना नही चाहते थे। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अवकाश न करनेवालेकी प्रवारणाको स्थगित करनेकी। 839

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पचदशीकी उस प्रवारणा को उस व्यक्तिके साथ होनेपर सघके बीचमे बोलना चाहिये—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, अमुक नाम वाला व्यक्ति दोष-युक्त है। उसकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। सामने होनेपर भी उसकी प्रवारणा नही करनी चाहिये', इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है।"

(२) अनुचित स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (यह सोच) कि अच्छे भिक्षुके मुखपर हमारी प्रवारणा स्थगित करते हैं, ईर्ष्यासे दोष-रहित शुद्ध भिक्षुओकी प्रवारणाको भी झूठ-मूठ विना कारण स्थगित करते थे, और जिनकी प्रवारणा होगई उनकी प्रवारणाको भी स्थगित करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! दोषरहित शुद्ध भिक्षुओकी प्रवारणाको विना कारण झूठ-मूठ स्थगित न करना चाहिये। जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है। और भिक्षुओ ! जिनकी प्रवारणा हो चुकी उनकी प्रवारणाको स्थगित नही करना चाहिये, जो स्थगित करे उसको दुक्कटका दोष है।" 840

(३) स्थगित करनेका प्रकार

"भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रवारणा स्थगित होती है और इस प्रकार अ-स्थगित।

१—"कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा अस्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे प्रवारणाको भाषण कर, कह कर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे, तो वह प्रवारणा अ-स्थगित होती है। भिक्षुओ ! यदि दो वचनसे ०। भिक्षुओ ! यदि एक वचनसे ०। भिक्षुओ ! यदि उसी वर्ष वाली प्रवारणाको भाषणकर, कहकर समाप्त की गई प्रवारणाको स्थगित करे तो वह प्रवारणा अ-स्थगित (ही) है—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा अ-स्थगित होती है।

२—"कैसे भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ? यदि भिक्षुओ ! तीन वचनसे भाषणकी गई, कही गई प्रवारणाके समाप्त न होते उसे (कोई) स्थगित करता है तो वह प्रवारणा स्थगित होती है ।० दो वचनवाली ०।० एक वचनवाली ०।० उसी वर्षवाली ०।—इस प्रकार भिक्षुओ ! प्रवारणा स्थगित होती है ।"

(४) फटकार करके प्रवारणा पूरा करना

१—"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक भिक्षु (दूसरे) भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, और उस भिक्षुको दूसरे भिक्षु जानते हैं—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध नही, वाचिक आचार शुद्ध नही, आजीविका शुद्ध नही, यह मूर्ख अजान है। प्रेरित करनेपर ऐसा कहनेमे समर्थ नही है—वस भिक्षु मत भडन-कलह, विग्रह, विवाद कर—इस प्रकार फटकार करके सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 841

२—"जव भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन, एक भिक्षु दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता है, उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते है—इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार अशुद्ध है, आजीविका अशुद्ध है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरणा करनेपर भी अनियोग देने मे समर्थ नही, तो—मत भिक्षु भडन=कलह, विग्रह, विवाद कर,—यह कह फटकार सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 842

३—"जव भिक्षुओ ! प्रवारणाके दिन एक दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे । उस भिक्षुको यदि दूसरे भिक्षु जानते है—इस आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है (किन्तु) आजीविका शुद्ध नही है, यह अज्ञ मूर्ख है, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमे समर्थ नही है, तो—मत भिक्षु ! भडन=कलह, विग्रह, विवाद कर—(कह) फटकार कर सघको प्रवारणा करनी चाहिये । 843

४—"जव भिक्षुओ ! ० इन आयुष्मान्‌का कायिक आचार शुद्ध है, वाचिक आचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है (किन्तु) यह मूर्ख अज्ञ है, प्रेरित करनेपर भी अनियोग देनेमे समर्थ नही है, तो—मत भिक्षु ! ० विवाद कर—(कह) फटकार कर सघको प्रवारणा करनी चाहिये ।" 844

(५) दड करके प्रवारणा करना

१—"जव भिक्षुओ ! ० दूसरे भिक्षु जानते है—इन आयुष्मान्‌का कायिक समाचार, वाचिक समाचार शुद्ध है, आजीविका शुद्ध है, यह पडित चतुर है, प्रेरित करनेपर अनियोग देनेमे समर्थ है, तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! जो तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगितकी सो किस लिये स्थगित की ? क्या शील-सवधी दोपसे स्थगितकी, या आचार-सवधी दोपसे स्थगित की, या दृष्टि (धारणा)-सवधी दोपसे स्थगितकी ? यदि वह ऐसा कहे—'शील-सवधी दोपसे स्थगित करता हूँ, या आचार-सवधी दोपसे स्थगित करता हूँ, या दृष्टि-सवधी दोपसे स्थगित करता हूँ ।' तो उससे ऐसे पूछना चाहिये—क्या आयुष्मान् शील-सवधी दोपको जानते है ? आचार-सवधी दोपको जानते है ? या धारणा (=दृष्टि)-सवधी दोपको जानते है ?' यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मै शील-सवधी दोपको जानता हूँ, आचार-सवधी दोषको जानता हूँ, धारणा-सवधी दोपको जानता हूँ', तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! क्या है शील-सवधी दोप, क्या है आचार-सवधी दोप, क्या है धारणा-सवधी दोप ?' यदि वह ऐसा कहे—'चार पा रा जि क, तेरह स घा दि से स, यह शील-सवधी दोप है, थु ल्ल च्च य, पा चि त्ति य, पा टि दे स नि य, दु क्क ट, दु र्भा ष ण यह आचार-सवधी दोप है, मिथ्या-दृष्टि, अन्त-ग्राहिका दृष्टि,[1] यह दृष्टि-सवधी दोप है, तो उसे यह कहना चाहिये—आवुस ! जो तुमने

[1] आत्माको नित्य या सतति-रहित मानना ।

इस भिक्षुकी प्रवारणा स्थगित की है वह क्या देखेसे स्थगित की है, सुनेसे स्थगित की है, या शकाके कारण स्थगित की है ? यदि वह कहे—'देखेसे मैंने स्थगित की है, या सुनेसे मैंने स्थगित की है, या सदेहसे मैंने स्थगित की है, तो उसको ऐसा कहना चाहिये—आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणा देखे (दोष)के कारण स्थगित कर दी तो क्या तुमने देखा, कैसे देखा, कव तुमने देखा, कहाँ तुमने देखा कि उसने पाराजिकका अपराध किया स घा दि से स का अपराध किया, थु ल्ल च्च य, पा चि त्ति य, पा टि दे स नि य, दु क्क ट, दु र्भा ष ण का अपराध किया ? (उस वक्त) कहाँ तुम थे और कहाँ यह भिक्षु था। क्या तुम करते थे और क्या यह भिक्षु करता था ? यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मै इस भिक्षुकी प्रवारणाको देखे (अपराध)से स्थगित नही करता, वल्कि सुने (अपराध)से स्थगित करता हूँ।' तो उसको कहना चाहिये—'आवुस ! जोकि तुमने इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने (अपराध)से स्थगित किया, तो तुमने क्या सुना, कव सुना, कहाँ सुना, कि इसने पा रा जि क० दु र्भा ष ण का अपराध किया ? भिक्षुसे सुना या भिक्षुणीसे सुना, या शिक्षमाणासे सुना या श्रामणेरसे सुना या श्रामणेरीसे सुना, या उपासकसे सुना, या उपासिकासे सुना, या राजासे सुना, या राजाके महामात्यसे सुना, या तीर्थिकोसे सुना या तीर्थिकोके अनुयायियोसे सुना ?' यदि वह ऐसा कहे—'आवुसो ! मै इस भिक्षुकी प्रवारणाको सुने अपराधसे स्थगित नही करता वल्कि सदेहसे स्थगित करता हूँ', तो उससे ऐसा पूछना चाहिये—'आवुस ! जो तूने इस भिक्षुकी प्रवारणाको सदेहसे स्थगित किया है, तो तू क्या सदेह करता है, कैसे सदेह करता है, कब सदेह करता है, कहाँ सदेह करता है, कि इसने पा रा जि क० दु र्भा ष ण का अपराध किया ? भिक्षुसे सुनकर सदेह करता है ० या तीर्थिकोके अनुयायियोसे सुनकर सदेह करता है ?' यदि वह ऐसा कहे—आवुसो ! मैं इस भिक्षुकी प्रवारणाको सदेहसे नही स्थगित करता बल्कि मै नही जानता कि मैं क्यो इस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करता हूँ। यदि भिक्षुओ ! वह दोषारोपण करनेवाला (=चो द क) भिक्षु प्रत्युत्तर (=अनुयोग)से जानकार गुरुभाइयो (=स-ब्रह्मचारियो) के चित्तको सतुष्ट न कर सके तो कहना चाहिये कि उसका दोषारोपण ठीक नही। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु प्रत्युत्तरसे स-ब्रह्मचारियोके चित्तको सतुष्ट कर सके तो कहना चाहिये उसका दोषारोपण ठीक है। यदि भिक्षुओ ! दोषारोपण करनेवाला भिक्षु विना जळके पा रा जि क (दोष) लगानेको स्वीकार करे तो उसपर स घा दि से स (दोष)का आरोप कर सघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि वह दोषारोपण करनेवाला भिक्षु विना जळके स घा दि से स दोष लगानेको स्वीकार करे तो उसपर धर्मानुसार (दड) करवाके सघको प्रवारणा करनी चाहिये।० विना जळके थु ल्ल च्च य० दुर्भाषण (दोष) लगानेको स्वीकार करे तो धर्मानुसार (दड) करवाके सघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है, (अपनेको) पा रा जि क का दोषी स्वीकार करता है तो उसे (हमेशाके लिये सघसे) निकालकर सघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु जिसपर दोषारोपण किया गया है, स घा दि से स का दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो उसपर स घा दि से स दोष लगाकर सघको प्रवारणा करनी चाहिये। यदि० थु ल्ल च्च य० दु र्भा ष ण का दोषी (अपनेको) स्वीकार करता है तो, धर्मानुसार (दड) करवाके सघको प्रवारणा करनी चाहिये। 845

२—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्र वा र णा के दिन थु ल्ल च्च य दोष किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोषको) थु ल्ल च्च य समझते हो, और कोई कोई सघादिसेस, तो जो भिक्षु थुल्लच्चय समझनेवाले है वह उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दड) करवाकर सघमें

आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोप किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया। यदि सघ उचित समझे तो प्र वा र णा करे। 846

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन थु ल्ल च्च य का दोप किया हो ओर, कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोपको) थु ल्ल च्च य मानते हो, और कोई कोई पा चि त्ति य, कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हो और कोई कोई पा टि दे स नि य, कोई कोई थु ल्ल च्च य मानते हो और कोई कोई दु क्क ट, कोई कोई थुल्लच्चय मानते हो और कोई कोई दु र्भा ष ण, तो भिक्षुओ ! जो थु ल्ल च्च य समझनेवाले है वह उस भिक्षुको एक ओर ले जाकर धर्मानुसार (दड) करवाकर सघमे आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोप किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर लिया। यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।" 847

४—"यदि भिक्षुओ ! ० पा चि त्ति य दोष किया हो ०। 848

५—"०पा टि दे स नि य (दोप) किया हो ०। 849

६—"०दु क्क ट (का दोप) किया ०। 850

७—"०दुर्भाषण (दोप) किया हो ओर कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोपको) दु र्भा प ण मानते हो और कोई कोई स घा दि से स, तो भिक्षुओ ! जो वह दुर्भापण समझनेवाले है उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर धर्मानुसार (दड) करवाकर सघमे आ ऐसा कहे—'आवुसो ! इस भिक्षुने जो दोष किया था उसका इसने धर्मानुसार प्रतिकार कर दिया। यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।' यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने प्रवारणाके दिन दुर्भाषण (दोष) किया हो और कोई कोई भिक्षु (उस भिक्षुके दोपको) दु र्भा प ण मानते हो और कोई कोई थु ल्ल च्च य, कोई कोई दु र्भा ष ण मानते हो और कोई कोई पा चि त्ति य, कोई कोई दु र्भा प ण मानते हो और कोई कोई पा टि दे स नि य, कोई कोई दु र्भा प ण मानते हो और कोई कोई दु क्क ट, तो भिक्षुओ! जो भिक्षु दु र्भा प ण माननेवाले है, उस भिक्षुको एक ओर लेजाकर० यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणा करे।" 851

(६) वस्तु या व्यक्तिको स्थगित करना

१—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन सघमे कहे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह वस्तु (=दोप) जान पळती है किन्तु व्यक्ति नही जान पळता, यदि सघ उचित समझे तो वस्तुको स्थगित कर प्रवारणा करे,' तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्‌ने शुद्ध (भिक्षुओ)को प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि वस्तु जान पळती हे और व्यक्ति नही तो उसे इसी वक्त कहो।" 852

२—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन सघके वीचमे ऐसा कहे—'भन्ते! सघ मेरी सुने, यहाँ व्यक्ति जान पळता है किन्तु वस्तु नही, यदि सघ उचित समझे तो व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे,' तो उसको ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्‌ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओ)के (सघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि व्यक्ति जान पळता है वस्तु नही तो उस (वस्तु)को इसी वक्त कहो।" 853

३—"यदि भिक्षुओ ! कोई भिक्षु प्रवारणाके दिन सघमे ऐसा कहे—'भन्ते ! सघ ! मेरी सुने, यह वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी, यदि सघ उचित समझे तो वस्तु और व्यक्तिको स्थगितकर प्रवारणा करे, तो उसे ऐसा कहना चाहिये—'आवुस ! भगवान्‌ने शुद्ध और समग्र (भिक्षुओ)के (सघको) प्रवारणा करनेका विधान किया है। यदि वस्तु भी जान पळती है व्यक्ति भी तो उसको इसी वक्त कहो।" 854

"यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले वस्तु (=दोष) जान पळे और पीछे व्यक्ति (=अपराधी, दोषी), तो (दोषका) बतलाना उचित है। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणाके पहले व्यक्ति जान पळे ओर पीछे वस्तु, तो (दोषका) बतलाना उचित है। यदि भिक्षुओ ! प्रवारणासे पहले वस्तु भी जान पळे और व्यक्ति भी और उसका आरोप (=उत्कोटन) प्रवारणा कर चुकनेपर कहे, तो (आरोपीको) उत्कोटनक पाचित्तिय होता है।" 855

(७) झगळालुओसे बचनेका ढंग

उस समय कोसल देशके एक आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध और सभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके आसपास दूसरे भडन (=कलह), विवाद, और शोर करनेवाले तथा सघमे झगळा (=मुकदमा) लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास करने गये—'उन भिक्षुओके वर्षावास कर लेनेपर प्रवारणाके दिन हम उनकी प्रवारणाको स्थगित करेंगे।' उन भिक्षुओने सुना कि हमारे पासमे दूसरे० झगळा लगानेवाले भिक्षु (यह सोचकर) वर्षावास कर रहे हैं—०'कैसे हमे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! किसी आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु वर्षावास करते हो और उनके पासमे० प्रवारणाको स्थगित करेगे, तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, उन भिक्षुओको दो-तीन चतुर्दशीके उपोसथ करनेकी जिसमे कि वे उन भिक्षुओसे पहिले ही प्रवारणा कर सके। यदि भिक्षुओ! वे ० सघमे झगळा लगानेवाले भिक्ष उस आवासमे आते हैं, तो उन आवासमे रहनेवाले भिक्षुओको जल्दी जल्दी एकत्रित हो प्रवारणा कर लेनी चाहिये, और प्रवारणा करके कहना चाहिये—'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली। आयुष्मानोको जैसा जान पळे वैसा करे।' भिक्षुओ ! यदि वे ० सघमे झगळा डालने वाले भिक्षु बिना प्रबध किये उस आवासमे आवे तो आवासमे रहनेवाले भिक्षुओको आसन बिछाना चाहिये, पैर धोनेका जल, पैर धोनेका पीढा, पैर रगळनेकी कठली रख देनी चाहिये, और अगवानी करके (उनके) पात्र, चीवरको ग्रहण करना चाहिये। पानीके लिये पूछना चाहिये और उनको कहकर सीमाके बाहर जाकर प्रवारणा करनी चाहिये। प्रवारणा करके कहना चाहिये—'आवुसो ! हमने प्रवारणा कर ली। आयुष्मानोको जैसा जान पळे वैसा करे।' यदि ऐसा हो सके तो ठीक, न हो सके तो एक चतुर समर्थ आश्रम-निवासी भिक्षु दूसरे आश्रम-निवासी भिक्षुओको सूचित करे—'आवासके-रहनेवाले-आयुष्मानो ! मेरी सुनो, यदि आयुष्मान् उचित समझे तो इस वक्त हम उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और आगामी अमावस्यामे प्रवारणा करेगे।' यदि भिक्षुओ ! वे ० सघमे झगळा लगानेवाले भिक्षु ऐसे कहे—'अच्छा हो आवुसो ! कि हम अभी प्रवारणा करे।' तो उन्हे इस प्रकार कहना, चाहिये—'आवुसो ! हमारी प्रवारणामे तुम्हे अधिकार नही। हम (अभी) प्रवारणा नही करेगे।' यदि भिक्षुओ ० वे सघमे झगळा डालनेवाले भिक्षु उस अमावस्या तक (भी) रहे तो एक चतुर समर्थ आश्रमवासी भिक्षुओको सूचित करे—आवासके रहनेवाले आयुष्मानो ! मेरी सुनो। यदि आयुष्मान् उचित समझे तो इस वक्त हम उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और आगामी पूर्णिमामे प्रवारणा करेगे।' यदि भिक्षुओ ! ० वे सघमे झगळा लगानेवाले भिक्षु ऐसा कहे०। यदि भिक्षुओ ! ० वे सघमे झगळा लगाने वाले भिक्षु उस पूर्णिमा तक रहे तो भिक्षुओ ! उन सभी भिक्षुओको आगामी चातुर्मासी कौमुदी (आश्विन) पूर्णिमाको इच्छा न रहनेपर भी प्रवारणा करनी चाहिये। 856

"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे नीरोगी (=भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे ऐसा कहना चाहिये—आयुष्मान् ! रोगी है और रोगीको भगवान्ने दोषारोपण (=अनुयोग) करनेके लिये अयोग्य कहा है। आवुस ! तब तक प्रतीक्षा करो

जव तक कि नीरोग हो जाओ। नीरोग हो चुकनेपर इच्छा हो तो दोषारोपण करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह (दोष-)आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पाचित्तिय है।" 857

(८) प्रवारणा स्थगित करनेके अनधिकारी

१—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक नीरोग (भिक्षु) दूसरे रोगी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो उससे कहना चाहिये—'आवुस! यह भिक्षु रोगी है। रोगीको भगवान्‌ने आरोप न लगाने योग्य कहा है। आवुस! प्रतीक्षा करो जब तक कि यह नीरोग हो जाय। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दोष लगाना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सबधी पा चि त्ति य है। 858

२—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक रोगी (भिक्षु) दूसरे रोगी (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो उन्हे ऐसा कहना चाहिये—'(आप दोनो) आयुष्मान् रोगी है। रोगीको भगवान्‌ने आरोपण करनेके अयोग्य कहा है। आवुसो! प्रतीक्षा करो जव तक कि तुम दोनो नीरोग हो जाओ। नीरोग हो जानेपर यदि इच्छा हो तो दूसरे नीरोग (भिक्षु)पर आरोप करना।' ऐसा कहनेपर भी यदि वह आरोप करे तो उसे अनादर-सवधी पा चि त्ति य है। 859

३—"यदि भिक्षुओ! उन भिक्षुओके प्रवारणा करते समय एक (भिक्षु) दूसरे (भिक्षु)की प्रवारणाको स्थगित करे, तो सघको दोनोसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दड) करवा सघको प्रवारणा करनी चाहिये।" 860

§५—प्रवारणाकी तिथिको आगे बढ़ाना

(१) ध्यान आदिकी अनुकूलताके लिये

उस समय कोसल देशके एक आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु वर्षावास कर रहे थे। उनके एकमत, विवाद-रहित हो मोदयुक्त (वहाँ) रहते एक अच्छा वि हा र (=ध्यान समाधि आदि) प्राप्त हुआ। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'हमे एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमे एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम इसी वक्त प्रवारणा करेंगे तो हो सकता है कि प्रवारणा करके भिक्षु विचरनेके लिये चले जायँ और इस प्रकार हम इस उत्तम वि हा र से बाहर हो जायँगे, हमे कैसे करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! किसी आवासमे बहुतसे प्रसिद्ध सभ्रान्त भिक्षु० इस प्रकार हम इस उत्तम विहारसे बाहर हो जायँगे,' तो भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रवारणाके सग्रह करनें की। 861

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (सग्रह) करना चाहिये—सबको एक जगह एकत्रित होना चाहिये। एकत्रित होनेके बाद चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—भन्ते! सघ मेरी सुने, हमे एकमत विवाद-रहित हो मोदयुक्त रहनेमे एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है, यदि हम० बाहर हो जायँगे। यदि सघ उचित समझे तो प्रवारणाका सग्रह (=रोक रखना) करे इस वक्त उपोसथ करे, प्रातिमोक्ष-पाठ करे और चातुर्मासी कौमुदी—पूर्णिमा को प्रवारणा करेगा—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—(१) भन्ते! सघ मेरी सुने, हमे एकमत विवाद-रहित हो मोद-युक्त रहने में एक अच्छा विहार प्राप्त हुआ है। यदि हम ० और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा करेगा। जिस आयुष्मान्‌को पसद है प्रवारणाका स ग्र ह किया जाय और इस समय उपोसथ किया

जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय वह चुप रहे और जिसको पसद नही है वह बोले ।'

ग धारणा—'सघने स्वीकार किया कि प्रवारणाका सग्रह किया जाय । इस समय उपोसथ किया जाय तथा प्रातिमोक्षका पाठ किया जाय और आगामी चातुर्मासी कौमुदी पूर्णिमाको प्रवारणा की जाय सघको पसद है, इसलिये चुप है—इसे मै ऐसा समझता हूँ ।'

(२) प्रवारणाको बढ़ा देनेपर जानेवालेके लिये गुजाइश

"यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओके प्रवारणा-सग्रह कर लेनेपर एक भिक्षु ऐसा बोले—आवुसो ! मै देशमे विचरण करने जाना चाहता हूँ । देशमे मेरा कुछ काम है ।' तो उससे ऐसा कहना चाहिये—'अच्छा आवुस ! प्रवारणा करके चले जाना ।' यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु प्रवारणा करते समय दूसरे भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—आवुस ! मेरी प्रवारणामे तुम्हे अधिकार नही । मेरी प्रवारणा तुम्हारे साथ न होगी ।' यदि भिक्षुओ ! प्रवारणा करते वक्त उस भिक्षुकी प्रवारणाको दूसरा भिक्षु स्थगित करे तो सघको दोनोसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दड) करना चाहिये । 862

"यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु देशमे उस कामको भुगताकर उस चातुर्मासी कौमुदी (पूर्णिमा) के भीतर फिर आवासमे लौट आये तो उन भिक्षुओके प्रवारणा करते वक्त यदि कोई भिक्षु उस भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो वह उससे ऐसा कहे—'आवुस मेरी प्रवारणामे तुम्हारा अधिकार नही है । मेरी प्रवारणा हो चुकी है ।' यदि उन भिक्षुओके प्रवारणा करते वक्त वह भिक्षु किसी भिक्षुकी प्रवारणाको स्थगित करे तो सघको दोनोसे जिरह करके, बात करके, पता लगा करके, धर्मानुसार (दड) करके प्रवारणा करनी चाहिये ।' 863

इस खधकमें ४६ वस्तु है

पवारणाक्खन्धक समाप्त ॥४॥

५—चर्म-स्कंधक

१—जूते सबधी नियम । २—सवारी, चारपाई, चौकीके नियम ।
३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम ।

§१—जूते संबंधी नियम

१—राजगृह

(१) सोण कोटिबिशकी प्रव्रज्या

१—उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमे गृध्रकूट पर्वतपर विहार करते थे। उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार अस्सी हजार गाँवोका स्वामी हो राज्य करता था। उस समय चपामे सोण कोटिवीस (=वीस करोडका धनी) नामक सुकुमार श्रेष्ठिपुत्र रहता था। उसके पैरके तलवोमे रोएँ उगे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हजार गाँवो (के मुखियो) को किसी कामके लिये जमाकर सोण कोटिवीस के पास दूत भेजा—'सोणका आगमन चाहता हूँ।' तब सोण कोटिवीसके माता-पिताने सोणसे यह कहा—'तात सोण ! राजा तेरे पैरोको देखना चाहता है। सो तात सोण ! तू राजाकी ओर पैर न फैलाना। राजाके सामने पल्थी मारकर बैठना। पल्थी मारकर बैठनेपर राजा तेरे पैरोको देख लेगा।'

तब सोण कोटिबीसके लिये पालकी लाई गई। सोण कोटिबीस जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ गया। जाकर मगधराज सेनिय बिम्बिसार को प्रणाम कर पल्थी मारकर बैठा। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने सोण कोटिवीसके पैरके तलवोमे उत्पन्न रोमोको देखा। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोको इस जन्मके हितकी बातका उपदेश कर प्रेरित किया—'भणे[1] ! मैंने तुम्हे इस जन्मके हितकी बातके लिये उपदेश किया। जाओ ! उन भगवान्की सेवामे। वह भगवान् तुम्हे जन्मान्तरके हितकी बातके लिये उपदेश करेंगे।'

तब वह अस्सीहजार गाँवोके मुखिया जहाँ गृध्रकूट पर्वत था वहाँ गये। उस समय आयुष्मान् स्वागत भगवान्के उपस्थाक (=निरतर सेवक) थे। तब उन अस्सी हजार गाँव (के-मुखियो)ने आयुष्मान् स्वागत के पास जाकर यह पूछा—"भन्ते ! यह अस्सी हजार गाँवोके (मुखिया) भगवान्के दर्शनको यहाँ आये है। अच्छा हो भन्ते ! हम भगवान्का दर्शन पाये।"

"तो तुम आयुष्मानो ! मुहूर्त भर यहीं रहो, जब तक कि मै भगवान्से निवेदन करूँ।"

तब आयुष्मान् स्वागत ने उन अस्सी हजार गाँवो (के मुखियो)के सामने देखते-देखते पटिया (=अर्धचन्द्रपाषाण)मे डूबकर (=अन्तर्धान हो) भगवान्के सामने प्रकट हो यह

---

[1] अपनेसे छोटेको सबोधन करनेमें इस शब्दका व्यवहार होता था।

कहा—"भन्ते ! यह अस्सी हजार गाँवोके मुखिया भगवान्के दर्शनको यहाँ आये हैं, सो अब जिसका भगवान् काल समझे (वैसा वह करे)।"

"तो स्वागत ! विहारकी छायामे आसन विछा।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् स्वागतने भगवान्को उत्तर दे, चौकी ले, भगवान्के सामने अन्तर्धान हो उन अस्सी हजार गाँवोके देखते-देखते उनके सामने प टि या से प्रकटहो विहारकी छायामे आसन विछाया। तव भगवान् विहार (=रहनेकी कोठरी)से निकलकर विहारकी छायामे विछे आसनपर वैठे। तव वह अस्सी हजार गाँवोके मुखिया जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। तव वह अस्सी हजार गाँवोके मुखिया आयुष्मान् स्वागत की ओर ही निहारते थे, भगवान्की ओर नही। तव भगवान्ने उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोके मनकी वातको जानकर आयुष्मान् स्वागतको सवोधित किया—

"तो, स्वागत ! और भी प्रसन्नताके लिये तू दिव्य-शक्ति ऋद्धि-प्रा ति हा र्य (=ऋद्धियोका दिखाना) को दिखा।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) आयुष्मान् स्वा ग त भगवान्को उत्तर दे आकाशमे जाकर टहलते भी थे, खळे भी होते थे, वैठते भी थे, लेटते भी थे, धुआँ भी देते थे, प्रज्ज्वलित भी होते थे, अन्तर्धान भी होते थे। तव आयुष्मान् स्वा ग त ने आकाशमे अनेक प्रकारकी दिव्य-शक्ति ऋ द्धि-प्रा ति हा र्य को दिखा भगवान्के पैरोमे सिरसे वदनाकर भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता (-गुरु) है और मै श्रावक (=शिष्य) हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता है और मै श्रावक हूँ। भन्ते ! भगवान् मेरे शास्ता है और मै श्रावक हूँ।"

तव उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोने—'आश्चर्य है हो ! अद्भुत है हो !! जो कि शिष्य ऐसा दिव्य-शक्तिधारी है। ऐसा महा ऋद्धिवाला है !! अहो ! शास्ता कैसे होगे !'—(कह) भगवान्की ओरही निहारते थे, आयुष्मान् स्वागतकी ओर नही।

तव भगवान्ने उन अस्सी हजार गाँवो (के मुखियो) के मनकी वातको जानकर दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा और काम-भोगोके दुष्परिणाम, अपकार, मालिन्य और काम-भोगसे रहित होनेके गुणको प्रकट किया। जब भगवान्ने उन्हे भव्य-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, आह्लादित-चित्त, प्रसन्न-चित्त देखा, तव जो वुद्धोका उठानेवाला उपदेश है—दु ख, दु खका कारण, दु खका नाश, और दु खके नाशका उपाय—उसे प्रकाशित किया। जैसे कालिमा रहित श्वेत वस्त्र अच्छी तरह रगको पकळता है, इसी प्रकार उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोको उसी आसनपर—'जो कु छ उ त्प न्न हो ने वा ला है, व ह ना श हो ने वा ला है, यह बिरज=निर्मल धर्मकी आँख उत्पन्न हुई। तव उन्होने दृष्ट-धर्म (=धर्मका साक्षात्कार करनेवाला), प्राप्त-धर्म, विदित-धर्म, पर्यवगाढ-धर्म (अच्छी तरह धर्मका अवगाहन करनेवाला), सदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित और विशारदताको प्राप्त हो भगवान्के धर्ममे अत्यन्त निष्ठावान् हो भगवान्से यह कहा—'आश्चर्य ! भन्ते !! अद्भुत ! भन्ते !! जैसे औंधेको सीधा करदे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतलाये, अँधेरेमे तेलका दीपक रखदे, जिससे कि आँखवाले देखे। ऐसेही भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। यह हम भगवान्की शरण जाते है, धर्म और भिक्षु सघकी भी। आजसे भगवान् हमे अजलिबद्ध शरणागत उ पा स क स्वीकार करे'।'

२—तव सो ण को टि वी स को ऐसा हुआ—'मै भगवान्के उपदेशे धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पळता है कि) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध, खरादे-शखसा उज्ज्वल ब्रह्मचर्य, घरमे रहकर सुकर नही है। क्यो न मै शिर-दाढी मुँळा, काषाय वस्त्र पहिन घरसे वेघर

हो प्रव्रजित हो जाऊँ ?'

तब वह अस्सी हजार गाँवोके मुखिया भगवान्‌के भाषणका अभिनदनकर अनुमोदनकर आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये। तब सो ण को टि वी स उन अस्सी हजार गाँवोके मुखियोके चले जानेके थोळीही देर बाद जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सो ण कोटिवीसने भगवान्‌से यह कहा—

"मै भगवान्‌के उपदेश धर्मको जिस प्रकार समझ रहा हूँ (उससे जान पळता है कि) यह० ब्रह्मचर्य घरमे रहकर सुकर नही। भन्ते! मै शिर-दाढी मुँळा, काषाय वस्त्र पहिन, घर-से-बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ। भन्ते! भगवान् मुझे प्रव्रज्या दे।"

सो ण कोटिवीसने भगवान्‌के पास प्रव्रज्या पाई, उपसम्पदा पाई। उपसम्पदा पानेके थोळे ही समय बादसे आयुष्मान् सो ण, सी त व न मे विहार करते थे। उनके बहुत उद्योग-परायण हो टहलते वक्त पैर फट गये और टहलनेकी जगह खूनसे वैसे ही भर गई जैसे कि गाय मारनेकी जगह। तब एकान्त मे विचारमग्न हो बैठे आयुष्मान् सोणके मनमे यह विचार उत्पन्न हुआ—"भगवान्‌के जितने उद्योग-परायण हो विहरनेवाले शिष्य है मै उनमेसे एक हूँ, तो भी मेरा मन आस्रवो (=चित्तमलो)को छोळ कर मुक्त नही हो रहा है। मेरे घरमे भोग-सामग्री है। वहाँ रहते मै भोगोको भी भोग सकता हूँ और पुण्य भी कर सकता हूँ। क्यो न मै लौटकर गृहस्थ हो भोगोका उपभोग करूँ और पुण्य भी करूँ।"

३—तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके चित्तके विचारको अपने मनसे जानकर, जैसे बलवान् पुरुष (बिना प्रयास)समेटी बाँहको फैलाये और फैलाई बाँहको समेटे वैसे, ही गृ ध्र कू ट पर्वतपर अन्तर्धान हो (भगवान्) सी त व न मे प्रकट हुए। तब भगवान् बहुतसे भिक्षुओके साथ आश्रममे टहलते, जहाँ आयुष्मान् सो ण के टहलनेका स्थान था, वहाँ गये। भगवान्‌ने आयुष्मान् सो ण के टहलनेकी जगह खूनसे भरी देखी। देखकर भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! यह किसका टहलनेका स्थान खूनसे भरा है जैसे कि गाय मारनेका स्थान?"

"भन्ते! बहुत उद्योग-परायण हो टहलते हुए आयुष्मान् सो ण के पैर फट गये। उन्हीकी टहलनेकी जगह है जो खूनसे भरी है जैसे कि गाय मारनेका स्थान।"

(२) अत्यन्त परिश्रम भी ठीक नही

तब भगवान् जहाँ आयुष्मान् सो ण का बिहार (=रहनेकी कोठरी) था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। आयुष्मान् सो ण भी भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सो ण से भगवान्‌ने यह कहा—

"क्या सो ण! एकान्तमे विचारमग्न हो बैठे तेरे मनमे यह विचार उत्पन्न हुआ—० पुण्य भी करूँ?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! क्या तू पहले गृहस्थ होते समय वी णा बजानेमे चतुर था?"

"हाँ, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वी णा के तार बहुत जोरसे खिचे होते थे तो क्या उस समय तेरी वी णा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नही, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण! जब तेरी वीणाके तार अत्यन्त ढीले होते थे, क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी?"

"नहीं, भन्ते!"

"तो क्या मानता है सो ण ! जब तेरी वीणाके तार न बहुत जोरसे खिचे होते थे, न अत्यन्त ढीले होते थे, क्या उस समय तेरी वीणा स्वरवाली होती थी, काम लायक होती थी ?"

"हाँ, भन्ते !"

"इसी प्रकार सोण ! अत्यधिक उद्योग-परायणता औ द्ध त्य को उत्पन्न करती है, अत्यन्त शिथिलता कौ सी द्य (=शारीरिक आलस्य) उत्पन्न करती है, इसलिये सो ण उद्योग करनेमे समता को ग्रहणकर, इन्द्रियोके सबधमे समता ग्रहण कर, और वहाँ कारणको ग्रहण कर।"

"अच्छा भन्ते ! "—(कह) आयुष्मान् सोणने भगवान्‌को उत्तर दिया।

तब भगवान् आयुष्मान् सो ण को यह उपदेशकर जैसे बलवान् पुरुष० वैसेही सीतवनमे आयुष्मान् सो ण के सामने अन्तर्धान हो गृध्रकूटमे जा प्रकट हुए। तब आयुष्मान् सो ण ने दूसरे समय उद्योग करनेमे समताको ग्रहण किया, इन्द्रियोके सबधमे समताको ग्रहण किया, और वहाँ कारणको ग्रहण किया, और आयुष्मान् सो ण एकान्तमे प्रमादरहित, उद्योगयुक्त, आत्मनिग्रही हो विहरते अचिर मे ही, जिसके लिये कुलपुत्र घरसे बेघर हो प्रव्रजित होते है उस अनुपम ब्रह्मचर्यके अन्त (=निर्वाण) को, इसी जन्ममे स्वय जानकर, साक्षात्कार कर, प्राप्त कर विहरने लगे। 'जन्म क्षय हो गया, ब्रह्मचर्य-वास पूरा होगया, करना था सो कर लिया और यहाँ कुछ करनेको नही'—यह जान लिया। और आयुष्मान् सोण अर्हतो (=जीवन्मुक्त) मेसे एक हुए।

(३) अर्हत्वका वर्णन

तब अर्हत्व प्राप्त कर लेनेपर आयुष्मान् सो ण को यह हुआ—'क्यो न मै भगवान्‌के पास (अपने) अर्हत्व-प्राप्तिको बखानूँ।' तब आयुष्मान् सो ण जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् सो ण ने भगवानसे यह कहा—

"भन्ते ! जो क्षीण मलवाला (ब्रह्मचर्य)वासको पूरा कर चुका, करणीयको कर चुका, भार-मुक्त, निर्वाण-प्राप्त, भव-बधन-क्षीण, ठीक तरहसे ज्ञानसे विमुक्त अर्हत् होता है वह छ बातोके कारण मुक्त होता है—(१) निष्कामतासे मुक्त होता है, (२) प्रविवेक (=एकान्त चिन्तन) मे मुक्त होता है, (३) द्रोह-रहित होनेसे मुक्त होता है, (४) (विषयोके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है, (५) तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है, (६) मोहके नाशसे मुक्त होता है। भन्ते ! शायद यहाँ किसी आयुष्मान को ऐसा हो कि यह आयुष्मान् (अर्हत्) सिर्फ श्रद्धामात्रसे निष्कामताके कारण मुक्त है, किन्तु भन्ते ! ऐसा नही देखना चाहिये। भन्ते ! जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है, जिसने ब्रह्मचर्य (-वास) पूरा कर लिया, जो करने लायक कामको कर चुका है, वह करने लायक सभी कामोको न देखते हुए, किये हुए कामोके सचयको न देखनेसे और रागके नाशसे वीतराग होनेसे निष्कामताके कारण मुक्त होता है, द्वेषके क्षय होनेसे, दोषरहित हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है, मोहके क्षयसे मोहरहित हो निष्कामताके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते ! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयुष्मान् लाभ-सत्कार और प्रशसाकी इच्छासे एकान्त-सेवन करके मुक्त हुए, किन्तु भन्ते ! ऐसा नही देखना चाहिये। जिसका चित्त-मल क्षीण होगया है, जिसने ब्रह्मचर्य पूरा कर लिया है, जो करने लायक कामको कर चुका है, वह करने लायक सभी कामोको न देखते हुए, किये हुए कामोके सचयको न देखने से और रागके नाशसे वीतराग होनेसे वि वे क (=एकान्तचिन्तन)के कारण मुक्त होता है, द्वेषके क्षय होनेसे, दोष-रहित हो विवेकके कारण मुक्त होता है। मोहके क्षय होनेसे मोह-रहित हो विवेक के कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते ! यहाँ किसी आयुष्मान्‌को ऐसा हो—'यह आयुष्मान् ! शी ल-व्र त प रा म र्श (=शील और व्रतके अभिमान)को सारके तौरपर मान, द्रोह-रहित (=पायदा-

रहित) हो मुक्त हुए,' किन्तु भन्ते ! ऐसा नही देखना चाहिये०[1] मोह-रहित हो द्रोहरहित होनेके कारण मुक्त होता है। शायद भन्ते ! ० (विषयोंके) ग्रहण (=उपादान)के क्षयसे मुक्त हुए है ।०[2] मोहरहित हो (विषयोंके) ग्रहणके क्षयसे मुक्त होता है। (५) शायद भन्ते ! ० तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त हुए है०[3] मोहरहित हो तृष्णाके क्षयके कारण मुक्त होता है। (६) शायद भन्ते ! ० मोहके नाशसे मुक्त हुए है०[4] मोहरहित हो मोहके नाशसे मुक्त होता है।

"भन्ते ! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया हे, ऐसे भिक्षुके सामने यदि आँख द्वारा जानने योग्य रूप बार-बार भी आएँ तो भी उसके चित्तमे नही लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चचलही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।० यदि कान द्वारा जानने योग्य शब्द ० बार बार भी आवे०।० यदि नाक द्वारा जानने योग्य गध बार बार भी आवे०।०यदि जिह्वा द्वारा जानने योग्य रस बार बार भी आवे० यदि काया द्वारा जानने योग्य (शीत उष्ण आदिवाले) स्पर्श बार बार भी आवे०।० यदि मनद्वारा जानने योग्य धर्म बार बार भी आवे तो भी उसके चित्तमे नही लिपट सकते। उसका चित्त निर्लेप ही रहेगा। स्थिर और अ-चचल ही रहेगा और वह उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा। जैसे भन्ते ! छिद्र-रहित, दरार-रहित, ठोस पथरीला पर्वत हो, तो चाहे (उसकी) पूर्व दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित, सम्प्रकम्पित =सम्प्रवेपित नही कर सकता, पश्चिम दिशासे भी०, उत्तर दिशासे भी०, दक्षिण दिशासे भी बार बार आँधी-पानी आये किन्तु उसे कम्पित० नही कर सकता। ऐसेही भन्ते ! इस प्रकार अच्छी तरहसे जिसका चित्त मुक्त होगया है० उसके व्यय (=विनाश)को देखेगा।—

निष्कामतासे मुक्त, विवेक-युक्त चित्तवाले,
अद्रोहसे मुक्त और उपादान-क्षयवाले,
तृष्णाके क्षयसे मुक्त, सम्मोह-रहित-चित्तवाले (पुरुष)का,
चित्त आयतनोकी उत्पत्तिको देखकर मुक्त होता है।
उस अच्छी तरहसे मुक्त, शान्त चित्तवाले भिक्षुको,
किये (कामो)का सचय नही, न कुछ करणीय शेष है।
जैसे ठोस पहाळ हवासे कपायमान नही होता,
इसी प्रकार प्रिय रूप, रस, शब्द, गध, और स्पर्श,
(यह) पदार्थ अनित्य है और वह अर्हत्को कपित नही करते।
वह विनाशको देखता है और उसका चित्त सुमुक्त हो स्थित होता है।

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! इस प्रकार कुलपुत्र लोग अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते है, (जिसमे कि) बात भी कह दी जाती है और आत्म-श्लाघा भी नही होती, किन्तु कोई कोई मोघ-पुरुष तो मानो परिहास करते अर्हत्व-प्राप्तिको बखानते है, वह पीछे विनाशको प्राप्त होते है।"

फिर भगवान्ने आयुष्मान् सोण को सबोधित किया—

---

[1] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर 'द्रोहरहित' शब्दको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[2] ऊपर 'निष्कामता'की जगहपर, 'विषयोके ग्रहणके क्षय' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये ।

[3] ऊपर 'निष्कामता'की जगह 'तृष्णाके क्षय'वाक्यको रख, बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

[4] ऊपर 'निष्कामता'की जगह' 'मोहके नाशसे' वाक्यको रख बाकी उसी तरह समझना चाहिये।

"सो ण तू सुकुमार है, सो ण ! अनुमति देता हूँ तेरे लिये एक तल्लेके जूतेकी।"

"भन्ते ! मै अस्सी गाळी हिरण्य (=अशर्फी) और हाथियोके सात अ नी क[1]को छोळ घरसे बेघर हो प्रव्रजित हुआ। मेरे लिये (लोग) कहनेवाले होगे सो ण कोटिवीस अस्सी गाळी अशर्फी और हाथियोके सात अनीकको छोळकर प्रव्रजित हुआ, सो वह अव एक-तल्ले जूतेमे आसक्त हुआ है। यदि भगवान् भिक्षु-सघके लिये अनुमति दे तो मै भी इस्तेमाल करूँगा। यदि भगवान् भिक्षु-सघके लिये अनुमति नही देगे तो मै भी इस्तेमाल नही करूँगा।"

(४) एक तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ एक तल्लेवाले जूते की। भिक्षुओ ! दो तल्लेवाले जूतेको नही धारण करना चाहिये, न तीन तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये, न अधिक तल्लेवाले जूतेको धारण करना चाहिये जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो।"1

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सारे नीले रगके जूतेको धारण करते थे,० सारे पीले०, ० सारे लाल०, ०सारे मजीठिया (रगके)०, ०सारे काले०, ०सारे महारग-से-रँगे०, ०सारे महानाम-(रग) से-रँगे जूतोको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—(कैसे षड्वर्गीय भिक्षु सारे नीले रगके जूते को० धारण करते है) जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ !' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! सारे नीले० सारे महानाम-(रग)से-रँगे जूतोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।"2

(५) जूतोके रंग और भेद

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नीलीपत्तीवाले जूतोको धारण करते थे,० पीली पत्तीवाले०, ०लाल पत्तीवाले०, ०मजीठिया रगकी पत्तीवाले०, ०काली पत्तीवाले०,०महारगसे रँगी पत्तीवाले०, ०महानाम (रग)से रगी पत्तीवाले जूतोको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे(०) जैसे कि काम-भोगी गृही। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! नीली पत्तीवाले० महानाम (रग)से रँगी पत्तीवाले जूतेको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो।"3

२—उस समय षड्वर्गीय लोग एँळी ढकनेवाले जूतोको धारण करते थे, पु ट-ब द्ध[2] जूतेको धारण करते थे, प ळि गु ठि म[3] जूतेको धारण करते थे, रुईदार जूतेको धारण करते थे, तीतरके पखो जैसे जूतोको धारण करते थे, भेळेकी सीग बँधे हुए जूतोको धारण करते थे, बकरेकी सीग बँधे जूतोको धारण करते थे, बिच्छूके डककी तरह नोकवाले जूते धारण करते थे, मोर-पख-सिये जूतोको धारण करते थे, चित्र-जूतेको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृही। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! एँडी ढँकनेवाले० चित्र-जूतेको न धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।"4

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सिह-चर्मसे बने जूतेको धारण करते थे, व्याघ्रके चर्म०, ०चीते

---

[1] छ हाथी और एक हथिनीका अनीक होता है।

[2] यूनानी लोगोके जूतो जैसे (—अट्ठकथा)।

[3] आजकलके 'बूट' की तरह सारे पैरको ढाँकने वाला जूता।

के चर्म०, ०हरिनके चर्म०, ० ऊदविलावके चर्म ०, ०विल्लीके चर्म०, ० काळक-चर्म०, ०उल्लूके चर्मसे परिष्कृत जूतोको धारण करते थे। ० भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! सिंह-चर्मसे बने० जूतोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 5

(६) पुराने बहुत तल्लेके जूतेका विधान

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहन, पात्र-चीवर ले एक भिक्षुको अनुगामी बना रा ज-गृ ह मे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। बहुत तल्लेवाले जूतेको पहने एक उपासकने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। देखकर जूतेको छोळ जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर जहाँ, वह भिक्षु था, वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादनकर यह बोला—

"भन्ते! किस लिये पैर खुजला रहे है?" "पैर फूट गये है।"

"तो, भन्ते! यह जूता है।"

"नही, आवुस! भगवान्ने बहुत तल्लेके जूतेका निषेध किया है।"

(भगवान्ने कहा—) "भिक्षु! लेले इस जूतेको।"

तब भगवानने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (पहिनकर) छोळे हुए बहुत तल्लेके जूतेकी। भिक्षुओ! नया बहुत तल्ले-वाला जूता नही पहनना चाहिये। जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो।" 6

(७) गुरुजनोके नंगे-पैर होनेपर जूतेका निषेध

उस समय भगवान् चौळेमे विना जूतेहीके टहल रहे थे। 'शास्ता विना जूतेके टहल रहे है' यह (देख) स्थविर भिक्षु भी विना जूतेहीके टहल रहे थे। प ड् व र्गी य भिक्षु शास्ताको विना जूतेके टहलते और स्थविर भिक्षुओको भी विना जूतेके टहलते (देखकर) भी जूता पहने टहलते थे। (यह देख) जो अल्पेच्छ भिक्षु थे, वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको विना जूतेके टहलते (देख) और स्थविर भिक्षुओको भी विना जूतेके (देख) जूता पहने टहलते है!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"क्या सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु शास्ताको विना जूतेके टहलते (देख)० जूता पहन कर टहलते है?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

बुद्धभगवान्ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! यह मोघ-पुरुष, शास्ताको विना जूता पहने टहलते (देख) ० जूता पहने टहलते है? भिक्षुओ! यह काम-भोगी श्वेत वस्त्र पहननेवाले गृही भी अपनी जीविकाके हुनर (=शिल्प) के लिये, (अपने) आचार्य्यमे गौरवयुक्त, आदरयुक्त, एक तरहकी वृत्तिवाले हो रहते है। भिक्षुओ! यह कैसे शोभा देगा कि तुम इस प्रकारके सुन्दर तौरसे व्याख्यात धर्ममे प्रव्रजित होकर आचार्योमे, और आचार्यतुल्योमे, उपाध्यायोमे ओर उपाध्यायतुल्योमे, गौरव रहित, आदररहित, असमान वृत्तिके हो बरतोगे? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

भगवान्ने फटकारकर धार्मिककथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आचार्य या आचार्यतुल्योको, उपाध्याय या उपाध्याय तुल्योको विना जूतेके

[१] एक प्रकारका पैरका रोग जिसमें काँटे लगाना जरूर होता है।

टहलते देख जूता पहिनकर नही टहलना चाहिये, जो टहले उसे दु क्क ट का दोष हो । भिक्षुओ! आराममे जूता नही पहनना चाहिये, जो पहने उसे दुक्कटका दोष हो।" 7

(८) विशेष अवस्थामे आराममे भी जूता पहिनना

१—उस समय एक भिक्षुको पा द की ल रोग[1] था। भिक्षु पकळकर उसे पाखानेके लिये और पिशाब कराने ले जाते थे। भगवान्ने विहार देखनेके लिये घूमते वक्त उन भिक्षुओको उस भिक्षुको पकळकर पाखानेके लिये भी पेशाबके लिये भी ले जाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह कहा—"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या बीमारी है?"

"भन्ते! इस आयुष्मान्को पा द की ल रोग है। इनको हम पकळकर पाखानेके लिये भी, पेशाव के लिये भी ले जाते हैं।"

तब भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उसे जूता धारण करनेकी जिसके कि पैरमे पीळा हो, पैर फटे हो या पादकील रोग हो।" 8

२—उस समय भिक्षु विना पैर धोये चारपाईपर भी चढते थे, चौकीपर भी चढते थे। उससे चीवर भी मैला होता था और निवास-स्थान भी। भगवान्से यह बात कही०—

"भिक्षुओ! जूता धारण करनेकी अनुमति देता हूँ। यदि उसी समय चारपाई या चौकीपर चढना हो।" 9

(९) आराममे जूता, मसाल, दीपक और दड रखनेका विधान

उस समय भिक्षु रातके वक्त उपोसथके स्थानमे भी, बैठनेके स्थानमे भी जाते हुए अन्धकारमे खाॅळ (=गळहे)मे भी, काँटेमे भी चले जाते थे और पैरोको पीळा होती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आराममे भी जूता, मसाल, दीपक और क त्त र द ड (=डडा)-को धारण करनेकी।" 10

(१०) खळाऊँका निषेध

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु रात्रिके भिनसारको उठकर खळाऊँपर चढ ऊँचे शब्द, महाशब्द, खटखट शब्द करते टहलते थे और अनेक प्रकारकी ति र च्छा न क था (=फजूलकी बात) जैसे कि—राज-कथा, चोर-कथा, महामात्य-कथा, सेना-कथा, भय-कथा, युद्ध-कथा, अन्न-कथा, पान-कथा, वस्त्र-कथा, शयन-कथा, माला-कथा, गध-कथा, ज्ञाति-कथा, यान-कथा, ग्राम-कथा, कस्बेकी कथा, नगर-कथा, देश-कथा, स्त्री-कथा, पुरुष-कथा, शूर-कथा, चौरस्तेकी कथा, पनघटकी कथा, पहले मरोकी कथा, मानत्वकी कथा, लोक-आख्यायिका, समुद्र-आख्यायिका—ऐसी भव और अभवकी कथा कहते थे और इस प्रकार कीळोको भी आक्रान्त करते थे, मारते थे और भिक्षुओको भी समाधिसे च्युत कर देते थे। तब जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु रातके विहानको ० भिक्षुओको भी समाधिसे च्युत कर देते हैं!' भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! षड्वर्गीय भिक्षु ० समाधिसे च्युत करते है?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! काटकी खळाऊँको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको दुक्कटका दोष हो।" 11

---

[1] एक प्रकारका पैरका रोग, जिसमें काँटे लगा सा जख्म होता है।

२—वाराणसी

(११) निषिद्ध पादुकायें

१—तब भगवान् रा ज गृ ह में इच्छानुसार विहारकर जहाँ वा रा ण सी है उधर विचरनेको चल दिये। क्रमशः विचरते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे और वहाँ वाराणसीमें भगवान् ऋ षि प त न मृ ग दा व में विहार करते थे। उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने काठकी खड़ाऊँका निषेध किया है सोच, ताड़के पौधोंको कटवा तालके पत्तोंकी पादुका (जूता) धारण करते थे। (पत्तोंके) काटनेसे वह तालके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान. . .होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण तालके पौधेको कटवा कर तालके पत्तेकी पादुका धारण करते हैं, और कटे हुए वह तालके पौधे सूख जाते हैं! शाक्यपुत्रीय श्रमण एकेन्द्रिय जीव (=वृक्ष)की हिंसा करते हैं।' भिक्षुओंने उन मनुष्योंके हैरान. .होनेको सुना। उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! पड्वर्गीय भिक्षु ० तालके पौधे सूख जाते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ० तालके पौधे सूखते हैं? भिक्षुओ! (कितने ही) मनुष्य वृक्षोंमें जीवका ख्याल रखते हैं। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ! तालके पत्रकी पादुका नहीं धारण करनी चाहिये०। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 12

२—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु—भगवान्ने तालके पत्रकी पादुकाका निषेध किया है—यह सोच बाँसके पौधोंको कटवाकर बाँसके पौधोंकी पादुका धारण करते थे। कटजानेसे वे बेंतके पौधे सूख जाते थे। लोग हैरान .होते थे—० एकेन्द्रिय जीवकी हिंसा करते हैं।' भिक्षुओंने ० सुना। तब उन भिक्षुओंने यह बात भगवान्से कही ०।—

"भिक्षुओ! बाँसके पौधोंकी पादुका नहीं धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 13

३—तब भगवान् वा रा ण सी में इच्छानुसार विहार कर जिधर भ द्दि या[1] (=भद्रिका) है उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमशः विचरते, जहाँ भ द्दि या है, वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ भ द्दि या में जा ति या वनमें विहार करते थे। उस समय भद्दियावाले भिक्षु अनेक प्रकारकी पादुकाके मंडनमें लगे रहते थे—तृण-पादुका भी बनाते बनवाते थे, मूँजकी पादुका भी बनाते बनवाते थे, ब ब्ब ज (=बल्बज घास)की पादुका०, हिंतालकी पादुका०, कमल-पादुका०, कम्बल-पादुका०, भी बनाते बनवाते थे; और शील, चित्त तथा प्रज्ञाके विषयमें पाठ और पूँछताछ करना छोड़े हुए थे। (इससे) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान. . . होते थे ०। तब उन भिक्षुओंने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! भद्दियाके भिक्षु अनेक प्रकारके पादुकाके मंडनमें लगे रहते हैं ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! कैसे वह मोघ पुरुष ०? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

[1]सम्भवतः वर्तमान मुंगेर (बिहार)।

फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ! तृण, मूँज०, वल्वज०, हिंताल०, कमल०, कम्बल०,की पादुकाएँ नही धारण करनी चाहिएँ, और न सुवर्णमयी, न रौप्यमयी०, न मणिमयी०, न वैदूर्यमयी०, न स्फटिकमयी०, न काँसमयी०, न काँचमयी०, न राँगेकी०, न सीसेकी०, न ताँबे (=ताम्र। लोह)की पादुकाएँ धारण करनी चाहिएँ। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। और भिक्षुओ! काची (=घुट्ठी ?) तक पहुँचनेवाली पादुकाको नही धारण करनी चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, नित्य रहनेकी जगहपर तीन प्रकारकी पादुकाओके, इस्तेमाल करनेकी—न चलनेकी, और पेशाव पाखानेकी, और आचमन (के वक्त)की।" 14

४—श्रावस्ती

(१२) गाय बछळोको पकळने मारने आदिका निपेध

तव भगवान् भद्दियामे अच्छी तरह विहार कर जिधर श्रावस्ती है, उधर विचरनेके लिये चल दिये। क्रमश विचरते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। भगवान् वहाँ श्रावस्तीमे अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अचिरवती (=राप्ती) नदीमे तैरती गायोकी सीगोको भी पकळते थे, कानो०, गर्दन०, पूँछको भी पकळते थे, पीठपर भी चढते थे। राग-युक्त चित्तसे लिगको भी छूते थे, वछियोको भी अवगाहन कर मारते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण ० तैरती गायोको ० मारते हैं, जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ। भिक्षुओने सुना।' ० भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! गायोकी सीग०, कान०, गर्दन०, पूँछ नही पकळनी चाहिये और न पीठपर चढना चाहिये। जो चढे उसे दुक्कटका दोप हो। और भिक्षुओ! न राग-युक्त चित्तसे लिगको छूना चाहिये। जो छूवे उसे थुल्लच्चयका दोष हो। न वछियोको मारना चाहिये, जो मारे उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 15

§२—सवारी, चारपाई चौकीके नियम

(१) सवारीका निपेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु पराये पुरुपके साथवाली स्त्रीसे युक्त, पराई स्त्रीके साथवाले पुरुपसे युक्त यानसे जाते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसे गगाके मेलेको।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यानसे नही जाना चाहिये। जो जाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 16

(२) रोगमे सवारीका विधान

१—उस समय एक भिक्षु कोसल देशमे भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाते वक्त रास्तेमे बीमार हो गया। तब वह भिक्षु रास्तेसे हटकर एक वृक्षके नीचे बैठा। लोगोने उस भिक्षुको देखकर यह कहा—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायँगे?"

"आवुस! मै भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।"

"आइये भन्ते ! चले।"

"आवुस ! मै नही चल सकता। बीमार हूँ ।"

"आइये भन्ते ! यानपर चढिये।"

"नही आवुस ! भगवान्‌ने यानका निषेध किया है।"

इस प्रकार सकोच करके नही चढा। तब उस भिक्षुने श्रा व स्ती जाकर भिक्षुओसे यह बात कही। भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगीको यानकी।" 17

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या नर-जोते (यान), या मादा-जोते (यान) (से जाना चाहिये) ? ।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, नरजोते ह त्थ व ट्ट क[1]की।" 18

(३) विहित सवारियाँ

उस समय एक भिक्षुको यानकी चोटसे वहुत भारी पीळा हुई। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, शिविका, पालकी (=पा ट की)की।" 19

(४) महार्घ शय्याका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु उ च्चा श य न, म हा श य न जैसे कि कुर्सी (=आसदी), पलग, गोळक, चित्रक, पटिक [2](=गलीचा), पटलिक, [3]तूलिक (=तोशक), विकतिक, [4]उद्दलोमी एकन्तलोमी, कटिस्स, कौशेय, कुत्तक ऊनी विछौना, हाथीका झूल, घोळेका झूल, रथका झूल, मृग-छाला, समूरी मृगका सुन्दर बिछौना, ऊपरकी चादर, (सिरहाने, पैरहाने) दोनो ओर लाल तकियोको धारण करते थे। विहारमे घूमते वक्त लोग देखकर हैरान होते थे—(०) जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! उ च्चा श य न, म हा श य न, जैसे कि—० दोनो ओर लाल तकियोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 20

(५) सिंह आदिके चमळोका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—'भगवान्‌ने उ च्चा श य न, म हा श य न का निषेध किया है—(यह सोच) सिंह-चर्म, व्याघ्र-चर्म, चीतेका चर्म इन (तीन) महा-चर्मोको धारण करते थे और उन्हे चारपाईके प्रमाणसे भी काट रखते थे, चौकीके प्रमाणसे भी काट रखते थे। चारपाईके भीतर भी विछा रखते थे, वाहर भी विछा रखते थे। चौकीके भीतर भी०, बाहर भी विछा रखते थे। विहार घूमते वक्त लोग देखकर हैरान होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! महाचर्मो—सिंह, व्याघ्र, चीतेके चर्मको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो।" 21

(६) प्राणिहिंसाकी प्रेरणा और चर्मधारणका निषेध

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, भगवान्‌ने महाचर्मोका निषेध किया है, (यह सोच) गायके चाम-

---

[1] एक तरहकी सवारी।

[2] किनारीदार बिछानेका कम्बल।

[3] एक ओर किनारीवाला बिछानेका कम्बल।

[4] बिछानेका जळाऊ रेशमी कपळा।

को धारण करते थे और उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काटकर रखते थे ० चौकीके बाहर भी बिछा रखते थे।

उस समय एक दुराचारी भिक्षु, एक दुराचारी उपासकके घरमे आने जानेवाला था। तब वह दुराचारी भिक्षु पूर्वाह्णके समय (वस्त्र) पहनकर, पात्र-चीवरले, जहॉ उस दुराचारी उपासकका घर था वहॉ गया। जाकर बिछे आसनपर बैठा। तब वह दुराचारी उपासक जहॉ वह दुराचारी भिक्षु था वहॉ गया। जाकर उसे अभिवादनकर एक ओर बैठा। उस समय उस दुराचारी उपासकके पास एक तरुण सुन्दर दर्शनीय (चित्तको) प्रसन्न करनेवाला, चीतेके बच्चेकी तरहका चितकबरा बछळा था। तब वह पापी भिक्षु उस बछळेको बळे चावसे निहारता था। तब उस पापी उपासकने उस पापी भिक्षुसे यह कहा—

"भन्ते! आर्य क्यो मेरे बछळेको इतनी चावसे निहार रहे है?"

"आवुस! मुझे इस बछळेके चमळेका काम है।"

तब उस पापी उपासकने उस बछळेको मारकर चमळेको धून कर उस पापी भिक्षुको दिया। तब वह पापी भिक्षु उस चमळेको (लेकर) सघाटीसे ढॉककर चला गया। तब उस बछळेपर स्नेह रखनेवाली गायने उस पापी भिक्षुका पीछा किया। भिक्षुओने पूछा—

"आवुस! क्यो यह गाय तेरा पीछा कर रही है?"

"आवुसो! मै भी नही जानता कि क्यो यह गाय मेरा पीछा कर रही है।"

उस समय उस पापी भिक्षुकी सघाटी खूनसे सनी हुई थी। भिक्षुओने यह कहा—

"किन्तु आवुस यह तेरी सघाटीको क्या हुआ?"

तब उस पापी भिक्षुने भिक्षुओसे वह बात कह दी।

"क्या आवुस! तूने प्राण हिसाकी प्रेरणाकी?"

"हॉ आवुस!"

तब वह जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—

"कैसे भिक्षु प्राण-हिसाकी प्रेरणा करेगा? भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिसाकी निदा की है, और प्राण-हिसाके त्यागको प्रशसा है।"

तब उन भिक्षुओ ने भगवान्से यह बात कही।—

तब भगवान्ने इसी प्रकरणमे, इसी सबधमे भिक्षु-सघको एकत्रित करवा उस पापी भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच भिक्षु तूने प्राण-हिसाके लिये प्रेरणाकी?"

"(हॉ) सचमुच भगवान्!"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"मोघ पुरुष (=निकम्मे आदमी)! कैसे तूने प्राणहिसाकी प्रेरणा की? मोघपुरुष! मैने तो अनेक प्रकारसे प्राण-हिसाकी निदा की है और प्राण-हिसाके त्यागको प्रशसा है। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! प्राण-हिसाकी प्रेरणा नही करनी चाहिये। जो प्रेरणा करे उसका धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। भिक्षुओ! गायका चाम नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो। भिक्षुओ! कोई भी चर्म नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कट का दोष हो।" 22

(७) चमळे मढ़ी चारपाई आदिपर बैठा जा सकता है

१—उस समय लोगोकी चारपाइयॉ भी, चौकियॉ भी, चमळेसे मढी होती थी, चमळेसे बँधी

होती थी, भिक्षु सकोच करके उनपर नही बैठते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"अनुमति देता हूँ भिक्षुओ! गृहस्थोके बिस्तरेपर बैठने की, किन्तु लेटनेकी नही।" 23

२—उस समय विहार चमळेके टुकळोसे बिछे थे। भिक्षु सकोचके मारे नही बैठते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सिर्फ बधन भर पर बैठनेकी।" 24

(८) जूता पहिने गाँवमे जानेका निषेध

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जूता पहने गाँवमे प्रवेश करते थे। लोग हैरान होते थे (०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! जूता पहने गाँवमे प्रवेश नही करना चाहिये। जो प्रवेश करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 25

२—उस समय एक भिक्षु बीमार था और वह जूता पहने विना गाँवमे प्रवेश करनेमे असमर्थ था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ बीमार भिक्षुको जूता पहनकर गाँवमे प्रवेश करनेकी।" 26

§३—मध्यदेशसे बाहर विशेष नियम

(१) सोण-कुटिकण्णकी प्रव्रज्या

उस समय आयुष्मान् म हा का त्या य न अ व न्ती[1] (देश)मे कु र र घर के प्र पा त प र्व त पर वास करते थे। उस समय सो ण कु टि क ण्ण उनका उपस्थाक था—एकान्तमे स्थित, विचारमे डूबे सोण-कुटिकण्ण उपासकके मनमे ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—

"जैसे जैसे आर्य महाकात्यायन धर्म उपदेश करते है, (उससे) यह सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध शखसा धुला ब्रह्मचर्य, गृहमे बसते पालन करना, सुकर नही है। क्यो न मैं० प्रव्रजित हो जाऊँ।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासक, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ गया जाकर . अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोला—

"भते! एकान्तमे स्थित हो विचारमे डूबे मेरे मनमे ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। भते! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करे।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण०से यह कहा—

"सोण! जीवनभर एकाहार, एक शय्यावाला ब्रह्मचर्य दुष्कर है। अच्छा है, सोण! तू गृहस्थ रहते ही बुद्धोके शासन (उपदेश)का अनुगमन कर, और काल-युक्त (=पर्व-दिनोमे) एक-आहार, एक-शय्या (=अकेला रहना) रख।"

तब सोण-कुटिकण्ण उपासकका प्रव्रज्याका उछाह ठडा पळ गया।

दूसरी बार भी० मनमे ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—०। ० तीसरी बार भी०। "० भते! आर्य महाकात्यायन मुझे प्रव्रजित करे।"

तब आयुष्मान् महाकात्यायनने सोण-कुटिकण्ण उपासकको प्रव्रजित किया (=श्रामणेर बनाया)। उस समय अ व न्ति द क्षि णा प थ मे वहुत थोळे भिक्षु थे। तब आयुष्मान् म हा का त्या

---

[1] वर्तमान मालवा।

य न ने तीन वर्ष बीतनेपर बहुत कठिनाईसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग (=दशभिक्षुओका) भिक्षु-सघ एकत्रित कर, आयुष्मान् सोणको उपसपन्न किया (=भिक्षु बनाया)। वर्षावास वस, एकान्तमे स्थित, विचार मे डूबे आयुष्मान् सोणके चित्तमे ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ—'मैने उन भगवान्‌को सामने से नही देखा, बल्कि मैने सुनाही है,—वह भगवान् ऐसे है, ऐसे है। यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दे, तो मै भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ।'

तब आयुष्मान् सोण सायकाल ध्यानसे उठ, जहाँ आयुष्मान् महाकात्यायन थे, वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् महाकात्यायनसे कहा—

"भते! एकातमे विचारमे डूबे मेरे चित्तमे एक ऐसा वितर्क उत्पन्न हुआ है—यदि उपाध्याय मुझे आज्ञा दे, तो मै भगवान्०के दर्शनके लिये जाऊँ।"

"साधु! साधु! सोण! जाओ सोण० भगवान्‌के चरणोमे वन्दना करना[1]—'भन्ते! मेरे *उपाध्याय भगवान्‌के चरणोमे सिरसे वन्दना करते है। और यह भी कहना*—'भन्ते अ व न्ति-द क्षि णा प थ मे बहुत कम भिक्षु है। तीन वर्ष व्यतीत कर बळी मुश्किलसे जहाँ तहाँसे दशवर्ग भिक्षुसघ एकत्रितकर मुझे उपसपदा मिली। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा-पथमे (१) अल्पतर गण (=कम कोरम् की जमायत)से उपसपदाकी अनुज्ञा दे। अवन्ति-दक्षिणा पथमे भन्ते! भूमि काली (=कण्हुत्तरा) कडी, गोखरू (=गोकटको)से भरी है। अच्छा हो भगवान् अवन्ति-दक्षिणा-पथमे (२) (भिक्षु) गणको गण-वाले उपानह (=पनहीं)की अनुज्ञा दे। अवन्ति-दक्षिणपथमे भन्ते! मनुष्य स्नानके प्रेमी, उदकसे शुद्धि मानने वाले है, अच्छा हो भन्ते! अवन्ति-दक्षिणा-पथमे (३) नित्य-स्नानकी अनुज्ञा दे। अवन्ति-दक्षिणापथमे भन्ते! चर्ममय आस्तरण (=बिछौने) होते है, जैसे मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म। ० (४) चर्ममय आस्तरणकी अनुज्ञा दे। भन्ते! इस समय सीमासे बाहर गये भिक्षुओको (मनुष्य) चीवर देते है—'यह चीवर अमुक नामकको दो।' वह आकर कहते है—'आवुस! इस नामवाले मनुष्यने तुझे चीवर दिया है।' वह (विधि-निषेध) सन्देहमे पळ (सेवन नही करते, फिर कही उन्हे) निस्सर्गीय (=छोळनेका प्रायश्चित) न होजाय। अच्छा हो भगवान् (५) चीवर-पर्याय कर दे।"

"अच्छा भन्ते!" कह सो ण कु टि क ण्ण . आयुष्मान् महाकात्यायनको अभि-वादनकर प्रदक्षिणाकर जहाँ श्रा व स्ती थी वहाँको चले।

क्रमश विचरते जहाँ श्रावस्ती मे अनाथ-पिडिक था, जहाँ भगवान् थे, वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द! इस नवागत भिक्षुको वास दो।"

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ—"भगवान् जिसके लिये कहते है—'आनन्द! इस नवागत भिक्षुको वास दो।' उसे भगवान् एक ही विहारमे साथ रखना चाहते है। यह सोच जिस विहार मे भगवान् रहते थे, उसीमे आयुष्मान् सोणका आसन लगवा दिया।

भगवान्‌ने बहुत रात खुले स्थानमे बिताकर प्रवेश किया। तब रातको भिनसारमें उठकर भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणको कहा—

"भिक्षु! ध र्म का पाठ कर सकते हो।"

"हाँ भन्ते!" (कह) आयुष्मान् सोणने सभी सोलह अ ट्ट क व ग्गि क को[1]को स्वर-सहित

---

[1]सुत्तनिपात पारायणवग्ग ५।

पाठ किया ।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् सोणके स्वरयुक्त पाठके खतम हो जानेपर उनका अनुमोदन किया ।—

"साधु, साधु भिक्षु ! तूने सोलह अट्ठकवग्गिक्को को अच्छी तरह ग्रहण किया है, अच्छी तरह मनमे किया है, अच्छी तरह धारण किया है । सुन्दर स्पष्ट सरल अर्थ द्योतक वाणीसे युक्त है । भिक्षु ! तू कितने वर्षका (भिक्षु) है ?

"भन्ते ! मै एक वर्षका हूँ ।—

"भिक्षु ! तूने इतनी देर क्यो लगाई ।"

"भन्ते ! देरसे कामोके दुष्परिणामको देख पाया । और गृहवास बहु-कार्य=बहु-करणीय सबाध (=बाधायुक्त) होता है ।"

भगवान्‌ने इस अर्थको जानकर उसी समय इस उदानको कहा—

"लोकके दुष्परिणामको देख और उपधि-रहित धर्मको जानकर, आर्य पापमें नही रमता, शुचि (=पवित्रात्मा) पापमे नही रमता ।"

तब आयुष्मान् सोणने—'भगवान् मेरा अनुमोदन कर रहे है, यही इसका समय है' (सोच) आसनसे उठ, उत्तरासग एक कन्धेपर कर भगवान्‌के चरणोपर सिरसे पळकर, भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! मेरे उपाध्याय आयुष्मान् महाकात्यायन भगवान्‌के चरणोमे सिरसे वन्दना करते है, और यह कहते है—

"भन्ते ! अवन्ति-दक्षिणा-पथमे बहुत कम भिक्षु है ०, अच्छा हो भगवान् चीवर-पर्याय (=विकल्प) कर दे ?"

(२) सीमान्त देशोमे विशेष नियम

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमे धार्मिक-कथा कहकर भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! अवन्ति-दक्षिणापथमे बहुत कम भिक्षु है । भिक्षुओ ! सभी प्रत्यन्त जनपदो (=सीमान्त देशो)मे विनयधरको लेकर पाँच, (कोरम वाले) भिक्षुओके गणसे उपसपदा (करने)की अनुमति देता हूँ ।" 27

यहाँ यह प्रत्यन्त (सीमान्त) जनपद है—पूर्व दिशामे कजगल[1] नामक निगम (=कसबा) है, उसके बाद बळे साखू (के जगल) है, उसके परे 'इधरसे बीचमे' प्रत्यन्त जनपद है । पूर्व-दक्षिण दिशामे सललवती[2] नामक नदी है, उससे परे, इधरसे बीचमे (=ओरतो मज्झे) प्रत्यन्त जनपद है । दक्षिण दिशामे सेतकण्णिक[3] नामक निगम है ० । पश्चिम दिशामे थूण[4] नामक ब्राह्मण-ग्राम ० । उत्तर दिशामे उसीरध्वज नामक[5] पर्वत, उससे परे ० प्रत्यन्त जनपद है ।

"भिक्षुओ ! इस प्रकारके प्रत्यन्त जनपदोमे अनुज्ञादेता हूँ—विनयधर सहित पाँच भिक्षुओ के गणसे उपसपदा करने की ।   28

"सब सीमान्त-देशोमे   गणवाले उपानह ० । 29

---

[1] वर्तमान कंकजोल (जिला-संथाल परगना, बिहार) ।

[2] वर्तमान सिलई नदी (जिला हजारीबाग और बीरभूम) ।

[3] हजारीबाग जिलेमें कोई स्थान था ।

[4] आधुनिक थानेश्वर ।   [5] हरिद्वारके समीप ।

"० नित्य-स्नान ०।30

० सब चर्म—मेष-चर्म, अज-चर्म मृग-चर्म जैसे भिक्षुओ ! मध्य देशो (=युक्त प्रान्त, बिहार)में एरगू मोरगू, मज्जारू जन्तु हैं ऐसेही भिक्षुओ ! अवन्ती दक्षिणापथमे मेष-चर्म, अज-चर्म, मृग-चर्म (आदि) चर्मके बिछौने है ०।31

अनुज्ञा देता हूँ (चीवर) उपभोग करनेकी, वह तब तक (तीन चीवरमे) न गिनाजाय, जब तक कि हाथमे न आजाय।" 32

चम्मक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—भैषज्य-स्कंधक

१—औषध और उसके बनानेके साधन। २—स्वेदकर्म तथा चीर-फाळ आदि की चिकित्सा। ३—आराममें चीजोंको रखना सँभालना आदि। ४—अभक्ष्य मांस। ५—संघाराममें चीजोंके रखनेके स्थान। ६—गोरस और फलरस आदिका विधान।

§१—औषध और उसके बनानेके साधन

१—श्रावस्ती

(१) पाँच भैषज्योंका विधान

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे।

उस समय भिक्षु शरदकी बीमारी (=जाळा बुखार) से उठे थे, उनका पिया यवागू (=खिचळी) भी वमन होजाता था, खाया भात भी वमन होजाता था, इसके कारण वह कृश, रूक्ष और दुर्वर्ण पीले पीले नसोमे-सटे-शरीर वाले हो गये थे। भगवान्‌ने उन भिक्षुओको कृश० नसोमे-सटे-शरीरवाला देखा। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द! क्यो आजकल भिक्षु कृश० नसोमे-सटे-शरीर वाले है?"

"इस समय भन्ते! भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है, उनका पिया यवागू भी वमन हो जाता है० नसोमे-सटे-शरीर वाले हो गये है।"

तब एकान्तमे स्थित हो विचार मग्न होते समय भगवान्‌के मनमे ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है० नसोमे-सटे-शरीर वाले हो गये है। क्यो न मै भिक्षुओको (ऐसे) भै प ज्य (=औषध) की अनुमति दूँ, जिसको लोग भैपज्य मानते हो जो आहारका काम भी कर सके, किन्तु स्थूल-आहार न समझा जाये।' तब भगवान्‌को यह हुआ—यह पाँच भैषज्य है जैसे कि—घी, मक्खन, तेल, मधु और खाँड—इन्हे लोग भैपज्य भी मानते है, और यह आहारका काम भी कर सकते है, किन्तु स्थूल-आहार नही समझे जाते। क्यो न मै इन भिक्षुओको इन पाँच भैषज्योको समयसे लेकर समयपर उपयोग करनेकी अनुमति दूँ।'

तब भगवान्‌ने सायकालको एकान्त चिन्तनसे उठकर इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! आज एकान्तमे स्थित हो विचार-मग्न होते समय मेरे मनमे ख्याल पैदा हुआ—'इस समय भिक्षु शरदकी बीमारीसे उठे है० क्यो न मै भिक्षुओको (ऐसे) भैपज्यकी अनुमति दूँ।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच भैषज्योकी पूर्वाह्णमे लेकर पूर्वाह्णमे सेवन करनेकी।"1

२—उस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योको पूर्वाह्णमे लेकर पूर्वाह्णमे सेवन करते थे। उनको

जो वह रूखे भोजन थे वह भी अच्छे न लगते थे। चिकने (भोजनो)की तो बात ही क्या ? और वह शरद्‌की बीमारीसे उठनेपर उससे और भोजनके अच्छे न लगने इन दोनो कारणोसे और भी अधिक कृश० नसोमे-सटे-शरीर वाले थे। भगवान्‌ने उन भिक्षुओको और भी अधिक कृश० देखा।। देखकर आयुष्मान् आनन्दसे पूछा—

"आनन्द ! क्यो आजकल भिक्षु और भी अधिक कृश० है ?"

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उन पाँच भैषज्योको पूर्वाह्णमें लेकर पूर्वाह्णमे सेवन करते है। उनको जो वह रूखे भोजन है वह भी अच्छे नही लगते० नसोमे सटेशरीरवाले है।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमें, इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन पाँच भैषज्योको ग्रहणकर पूर्वाह्ण (=काल)मे भी अपराह्ण (=विकाल)मे भी सेवन करनेकी।" 2

(२) चर्बीवाली दवा

उस समय रोगी भिक्षुओको चर्बीकी दवाईका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देताहूँ चर्बीकी दवाईकी, (जैसेकि) रीछकी चर्बी, मछलीकी चर्बी, सोसकी चर्बी, सुअरकी चर्बी, गदहेकी चर्बी, काल(पूर्वाह्ण)मे लेकर कालसे पका कालसे, तेलके साथ मिलाकर सेवन करनेकी। भिक्षुओ ! यदि विकालसे ग्रहण की गई हो, विकालसे पकाई और विकालसे खिलाई गई हो (और) भिक्षुओ ! उनका सेवन करे तो तीनो दुक्कटोका दोष हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे लेकर विकालसे पका, विकालसे मिला उनका सेवन करे तो दो दुक्कटोका दोष हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे लेकर कालसे पका, विकालसे उनका सेवन करे (तो) एक दुक्कटका दोष हो। यदि भिक्षुओ ! कालसे ले कालसे पका कालसे मिला उनका सेवन करे तो दोष नही।" 3

(३) मूलकी दवाइयाँ

१—उस समय रोगी भिक्षुओको जड वाली दवाओका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

" भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जळवाली दवाओकी (जैसेकि),—हल्दी, अदरक, बच, बचस्थ (=वच), अतीस, खस भद्रमुक्ता (=नागरमोथा), और जो कोई दूसरी भी जळवाली दवाइयाँ है, जोकि न खाद्य है, न खानेके काम आती है, न भोज्य है न भोजनके काम आती है, उन्हे लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी, प्रभोजन न होनेपर सेवन करने वाले को दुक्कटका दोष हो।" 4

२—उस समय रोगी भिक्षुओको पिसी हुई जळवाली दवाइयोका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

'भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ खरल-बट्टेकी।" 5

(४) कषायकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओको कषायकी दवाईका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कषायवाली दवाइयोकी (जैसा कि)—नीमका कषाय, कुटज (=कूट)का कषाय, पटोल (=परवल)का कषाय, पग्गव[1] का कषाय, नक्तमाल का कषाय और जो कोई दूसरी भी कषायकी दवाइयाँ है जो न खाद्य है न खानेके काम आती है, न भोज्य है, न भोजनके

---

[1] कळवे फलवाली एक बूटी।

काम आती हैं, उन्हे लेकर जीवन भर रखनेकी। प्रयोजन होनेपर सेवन करनेकी। प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 6

(५) पत्तेकी दवाइयाँ

उस (समय) रोगी भिक्षुओको पत्तेकी दवाइयोका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पत्तेकी दवाइयोकी, (जैसे कि) नीमका पत्ता, कुटजका पत्ता, पटोलका पत्ता, तुलसीका पत्ता, कपासीका पत्ता, और जो कोई दूसरी भी पत्तेकी दवाइयाँ हैं, ० प्रयोजन न होनेपर सेवन करनेवालेको दुक्कटका दोष हो।" 7

(६) फलकी दवाइयाँ

उस समय रोगी भिक्षुओको फलकी दवाइयोका काम था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ फलकी दवाइयोकी (जैसे कि)—विडग, पिप्पली, मिर्च, हर्रा, बहेरा, आँवला, गोष्ठफल और जो कोई दूसरी भी फलकी दवाइयाँ हैं०। 8

(७) गोदकी दवाइयाँ

० गोदवाली दवाइयोका काम था। ०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ गोदवाली दवाइयोकी (जैसे कि)—हीग, हीगकी गोद, हीगकी सिपाटिका, तक, तक पत्ती, तक पर्णी, सज्जुकी गोद, और जो कोई दूसरी भी गोदवाली दवाइयाँ हैं०।" 9

(८) लवणकी दवाइयाँ

० लवणवाली दवाइयोका काम था०।—

'भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लवणवाली दवाइयोकी (जैसे कि)—सामुद्रिक (नमक), काला नमक, सेधा नमक, वानस्पतिक (नमक), विळाल[1] और जो कोई दूसरी भी नमककी दवाइयाँ हैं०।" 10

(९) चूर्णकी दवाइयाँ और ओखल-मूसल-चलनी

१—उस समय आयुष्मान् आ न द के उपाध्याय आयुष्मान् वे ल ट्ठ सी स को दादकी बीमारी थी। उसके लासेसे चीवर शरीरमे चिपक जाता था। उसको भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। भगवान्‌ने विहार घूमते वक्त भिक्षुओको पानीसे भिगो भिगोकर चीवरको छुळाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह पूछा।—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इन आयुष्मान्‌को स्थू ल क क्ष (=काछका मोटा हो जाना, दाद)का रोग है। उसके लासेसे चीवर शरीरमे चिपक जाता है। उसीको हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे है।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमे इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

भिक्षुओ! जिसको खुजली, फोळा (=पिळका), आस्राव (=बहनेवाला फोळा) स्थूलकक्ष (हो) या शरीरसे दुर्गंध आता हो उसे चूर्णवाली दवाइयोकी अनुमति देता हूँ। नीरोगको छकन (=गोवर), मिट्टी, पके रग (का चूर्ण)। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ओखल और मूसलकी।" 11

२—उस समय भिक्षुओको चूर्णवाली दवाइयोको चालनेकी ज़रूरत थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] एक प्रकारका नमक।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आटेकी चलनीकी।"

सूक्ष्म (=चलनी)की आवश्यकता थी।—

भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कपळेकी चलनीकी।" 12

(१०) कच्चे मांस और कच्चे खूनकी दवा

उस समय एक भिक्षुको अ-म नु ष्य (-भूत-प्रेत)का रोग था। आचार्य उपाध्याय उसकी सेवा करते करते नीरोग नही कर सके। सूअर मारनेके स्थानपर जाकर उसने कच्चे मासको खाया, कच्चे खून को पिया, और उसका वह अ-म नु ष्य वाला रोग शान्त होगया। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अ-मनुष्यवाले रोगमे कच्चे मास और कच्चे खूनकी।" 13

(११) अंजन, अंजनदानी सलाई आदि

१—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था। उसे भिक्षु पकळकर पिशाव-पाखानेके लिये ले जाते थे। विहार घूमते वक्त भगवान्ने पकळकर उस भिक्षुको पिशाव-पाखानेके लिये ले जाये जाते देखा। देखकर जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह पूछा—

"भिक्षुओ! इस भिक्षुको क्या रोग है?"

"भन्ते! इस आयुष्मान्को आँखका रोग है। इन्हे हम पकळकर पिशाव-पाखानेके लिये ले जाते है। तब भगवान्ने इसी सबधमे० भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजनकी (जैसे कि)—काला अजन, रस-अजन, स्रोत(=नदी की धारमे मिला) अजन, गेरू, काजल।" 14

२—अजनके साथ पीसनेके सामानकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ चदन, तगर, कालानुसारी, तालिस, भद्रमुक्ताकी।" 15

३—उस समय भिक्षु पीसे हुए अजनको कटोरेमे रख छोळते थे, पुरवोमे रख छोळते थे, और उसमे तिनका, धूल आदि पळ जाता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजनदानीकी।" 16

४—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सुनहली, रुपहली, नाना प्रकारकी अजनदानियोको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—(०) जैसे काम-भोगी गृहस्थ। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी अजनदानियोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी, (हाथी) दाँतकी, सीगकी, नरकटकी बाँसकी, काठकी, लाखकी, फलकी, ताँबे (=लोह)की, शखकी (अजनदानियोके रखनेकी)।" 17

५—उस समय अजन-दानियाँ खुली होती थी जिससे तिनका, धूल पळ जाती थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी।" 18

६—ढक्कन गिर जाते थे।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सूतसे बाँधकर अजनदानियोके बाँधनेकी।" 19

७—अजनदानियाँ फट जाती थी।—

"० अनुमति देता हूँ सूतसे मढनेकी।" 20

८—उस समय भिक्षु उँगलीसे आँजते थे और आँखे दुखती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ आँजनेकी सलाईकी।" 21

९—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपेकी नाना प्रकारकी सलाइयाँ रखते थे। लोग हैरान होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी आँजनेकी सलाइयोको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीकी०, शखकी० (सलाईकी)।" 22

१०—उस समय आँजनेकी सलाइयाँ जमीनपर गिर पळती थी और रूखळ हो जाती थी। भगवान् से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सलाईदानीकी।" 23

११—उस समय भिक्षु अजनदानीको भी, आँजनेकी सलाईको भी हाथमे रखते थे। भगवान् से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजनदानीके बटुएका।" 24

१२—उस समय कधेका बटुआ (=असवट्टक) न था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ कधेके बटुएकी, बाँधनेके सूतकी।" 25

(१२) सिरका तेल

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को सिर-दर्द था। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सिरपर तेलकी।" 26

(१३) नस और नसकरनी आदि

१—ठीक नही हुआ। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नस लेनेकी।" 27

२—नस गल जाती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ न स क र नी (=नाकमे नस डालनेकी नली)की।" 28

३—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु सोने-रूपे नाना प्रकारकी नसकरनीको धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—०। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारकी नसकरनीको नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ शख ० की।"

४—नस बराबर नही पळती थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ जोळी नसकरनी की।" 29

(१४) धूम-बत्तीका विधान

१—(नससे भी) अच्छा न होता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (दवाईके) धुएँके पीनेकी।" 30

२—उसी बत्तीको लीपकर पीते थे। उससे कठ जलता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धू म ने त्र की (=फोफी)।" 31

३—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु नाना प्रकारके सोने-रूपेके धू म्र ने त्र धारण करते थे। लोग हैरान होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारके धूम्रनेत्र नही धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डीके० शखके धूम्रनेत्रकी।" 32

४—उस समय धूम्रनेत्र बिना ढके रहते थे और उनमे कीळे चले जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ढक्कनकी।"

५—उस समय भिक्षु धू म्र ने त्र हाथमे रखते थे।०।—

"० अनुमति देता हूँ धू म्र ने त्र के थैलेकी।" 33

६—एक ओर घिस-जाते थे। ०—

"० अनुमति देता हूँ दोहरी थैलीकी। ०। कन्धेके वटुएकी, बाँधनेके सूतकी।" 34

(१५) वातका तेल

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को वातका रोग था । वैद्य तेल पकानेको कहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल पकानेकी।" 35

(१६) दवामे मद्य मिलाना

१—उस समय तेलमे शराब (=मद्य) डालनी थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तेल-पाकमे मद्य डालनेकी।" 36

२—उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु बहुत मद्य डालकर तेल पकाते थे और उन्हे पीकर मतवाले होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! बहुत मद्य डाले हुए तेलको नही पीना चाहिये। जो पीये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, उस तेलके पीनेकी जिसमे मद्यका रग, गन्ध और रस न जान पळे।" 37

३—उस समय भिक्षुओके पास अधिक मद्य डालकर पकाया हुआ बहुतसा तेल था। तव उन भिक्षुओको यह हुआ कि अधिक मद्य डालकर पकाये हुए तेलके साथ हमे क्या करना चाहिये। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अभ्यजन (=मालिश करनेकी)।" 38

(१७) तेलका बर्तन

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के पास बहुतसा तेल पका था लेकिन तेलका वर्तन मौजूद न था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तीन तुम्बोकी—लोह(=ताँबा)के तूँबेकी, काठके तूँबेकी, फलके तूँबेकी।" 39

§२—स्वेदकर्म और चीर-फाळ आदि

(१) स्वेदकर्म

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ के शरीरमे वात (का रोग) था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स्वे द क र्म (=पसीना निकालनेकी चिकित्सा)की।" 40

२—नही अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ स म्भा र-स्वे द की[1]।" 41

३—नही अच्छा होता था।—

---

[1] अनेक प्रकारके पसीना लानेवाले पत्तोके वीच सोना।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ म हा स्वे द[1]की।" 42

(२) सीगसे खून निकालना

४—नही अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भ गो द क[2] की।" 43

५—नही अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ उ द क को प्ट क की[3]।" 44

१—उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको गठिया (=पर्ववात)का रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खून निकालनेकी।" 45

२—नही अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सीगसे खून निकालनेकी।" 46

(३) पैरमे मालिस और दवा

१—उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि वच्छके पैर फटे थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरमे मालिश करनेकी।" 47

२—नही अच्छा होता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पैरके लिये (दवा) बनानेकी।" 48

(४) चीर फाळ

उस समय एक भिक्षुको फोळेका रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ श स्त्र-क र्म (=चीर-फाळ)की।" 49

(५) मलहम-पट्टी

१—काढेके पानीकी जरूरत थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ काढेके पानीकी।" 50

२—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ तिलकल्क (=खली)की।" 51

३—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ क व ळि का (=मलहम का फाहा)की।" 52

४—०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ घाव बाँधनेकी पट्टीकी।" 53

५—घाव खुजलाते थे।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सरसोके लोथेमे सहलानेकी।" 54

६—घाव पन्छाता था।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ धुँआस करनेकी।" 55

७—बढा मास उठ आता था।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ नमककी ककरीसे काटनेकी।" 56

---

[1] पोरसा भर गढ़ा खोदकर उसे अंगारसे भरकर मिट्टी बालूसे मूदकर वहाँ नाना प्रकारके वात रोग दूर करनेवाले पत्तोको बिछाकर, शरीरमें तेल लगा उसपर लेटकर पसीना निकालना (—अट्ठकथा)।

[2] पत्तोके काढेसे शरीरको सींच सींचकर पसीना निकालना।

[3] गर्म पानी भरे बरतन जिस कोठरीमें रखे है, उसमें बैठकर पसीना निकालना।

८—घाव नही भरता था।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ घावके तेलकी।" 57

९—तेल गिर जाता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ विकासिक (=पतली पट्टी) सभी घावकी चिकित्सा की।" 58

(६) सर्प-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुको साँपने काटा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार म हा वि क टो के (खिला) देनेकी। जैसे कि पाखाना, पेशाव, राख और मिट्टी।" 59

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वय ले लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कल्प्यकारक (=ग्रहणकरानेवाले)के होनेपर दिया लेनेकी और कल्प्यकारकके न होनेपर स्वय लेकर सेवन करनेकी।" 60

(७) विष-चिकित्सा

१—उस समय एक भिक्षुने विप खा लिया था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाखाना पिलानेकी।" 61

२—तब भिक्षुओको यह हुआ—क्या (दूसरेके) देनेपर (लेना चाहिये) या स्वय लेना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जैसा करनेसे वह ग्रहण करे वही ग्रहणका ढग है। (काम होजानेपर) फिर नही ग्रहण कराना चाहिये।" 62

(८) घरदिन्नक रोगकी चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको घ र दि न्न क[1] रोग था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हराई (=सीता)की मिट्टी पिलानेकी।" 63

(९) भूत-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको दु ष्ट ग्र ह (=भूत)ने पकळा था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आ मि पो द क (=अनाज जलाकर बनाया सीरा) पिलानेकी।" 64

(१०) पांडुरोग-चिकित्सा

उस समय एक भिक्षुको पाण्डु रोग था। ०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ (गो)-मूत्रकी हर्रे पिलानेकी।" 65

(११) छुलपित्ती आदिकी चिकित्सा

१—० छुलपित्ती (=छ वि दो ष) हो आई थी। ०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गधकके लेप करनेकी।" 66

२—० शरीर सुन्न हो गया था। ०।—

" ० अनुमति देता हूँ जुलाव पीनेकी।" 67

---

[1] स्वाभाविक अस्वाभाविक दोनो प्रकारका।

३—० अ च्छ क जी (=कॉजी)की जरूरत थी। ०।—

"० अनुमति देता हूँ अ च्छ क जी की।" 68

४—० अ क ट जू स (=स्वाभाविक जूस)की जरूरत थी। ०।—

५—"० अनुमति देता हूँ अ क ट जू स की।" 69

६—० क टा क ट[1]की जरूरत थी। ०।—

७—"० अनुमति देता हूँ क टा क ट की।" 70

८—० प्र ति च्छा द न (=ढाँकनेकी वस्तु)की जरूरत थी। ०।—

"० अनुमति देता हूँ प्र ति च्छा द न की।" 71

§३—आराममें चीजोंका रखना सँभालना आदि

(१) पिलिन्दि वच्छका राजगृहमे लेण बनवाना

उस समय आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ राजगृहमे ले ण (=गुहा) बनवानेके लिये पहाळ साफ करवा रहे थे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ से यह कहा—

"भन्ते ! स्थविर क्या करा रहे है ?"

"महाराज ! ले ण बनवानेके लिये पहाळ (=पब्भार) साफ करा रहा हूँ।"

"क्या भन्ते ! आर्यको आरामिक (=आराममे काम करनेवाले)की आवश्यकता है ?"

"महाराज ! भगवान्ने आरामिक (रखने)की अनुमति नही दी है।"

"तो भन्ते ! भगवान्से पूछकर मुझसे कहना।"

"अच्छा महाराज," (कह) आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दिया। तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर चला गया। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने भगवान्के पास (यह सदेश दे) दूत भेजा—

"भन्ते ! मगधराज सेनिय वि म्बि सा र आरामिक देना चाहता है। कैसा करना चाहिये ?"

(२) आराममे सेवक रखना

भगवान्ने इसी प्रकरणमे इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आरामिककी।" 72

दूसरी वार भी मगधराज सेनिय बिम्बिसार जहाँ आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ थे वहाँ गया ० आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छसे यह पूछा—

"क्या भन्ते ! भगवान्ने आरामिककी अनुमति दी ?"

"हाँ महाराज !"

"तो भन्ते ! आर्यको आरामिक देता हूँ।"

तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ को आरामिक देनेका वचन दे

---

[1] वशीकरण मत्र किये पेयके पीनेसे उत्पन्न होनेवाला रोग।

भूल कर देरके बाद याद-करके-एक सर्वार्थक महामात्य (=प्राइवेट सेक्रेटरी)को सबोधित किया—

"भणे ! जो मैंने आर्यके लिये आरामिक देनेको कहा था, क्या वह दे दिया गया ?"

"नही देव ! आर्यको आरामिक (नही) दिया गया।"

"भणे ! कितना समय उसको हो गया ?"

तब उस महामात्यने रातोको गिनकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे यह कहा—

"देव ! पाँच सौ राते।"

"तो भणे ! आर्यको पाँच सौ आरामिक दो।"

"अच्छा देव" (कह) उस महामात्यने मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छको पाँच सौ आरामिक दिये, जिनका कि एक गाँव बस गया। जिसे कि (पीछे लोग) आरामिकग्राम भी कहते थे, पिलिन्दिग्राम भी कहते थे।

(३) पिलिन्दि वच्छका चमत्कार

उस समय आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ उस ग्रामके भिक्षाटक (=कुलूपग) थे। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पूर्वाह्णके समय पहनकर पात्र-चीवर ले पिलिन्दिग्राममे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुए। उस उमय उस गाँवमे उत्सव था। लळके अलकृत हो माला पहने खेलते थे। तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पिलिन्दिगाँवमे बिना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ एक आरामिकका घर था वहाँ पहुँचे। जाकर बिछे आसनपर बैठे। उस समय उस आरामिककी लळकी दूसरे लळकोको अलकृत, मालाकृत देख रोती थी—'माला मुझे दो ! अलकार मुझे दो !' तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने आरामिककी स्त्रीसे कहा—"क्यो यह बच्ची रो रही है ?"

"भन्ते ! यह लळकी दूसरे लळकोको अलकृत मालाकृत देखकर रो रही है 'माला मुझे दो ! अलकार मुझे दो !', हम गरीबोके पास कहाँ माला है, कहाँ अलकार है ?"

तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ एक तिनकेके टुकळेको उठाकर आरामिककी स्त्रीसे बोले—अच्छा ! तो इस तिनकेके टुकळेको लळकीके सिरपर रख दे।"

तब उस आरामिककी स्त्रीने उस तिनकेके टुकळेको लेकर उस लळकीके सिरपर रख दिया, और वह सुवर्णमाला-वाली अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिक हो गई। वैसी सुवर्णमाला तो राजाके अन्त पुरमे भी नही थी। लोगोने मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे कहा—

"देव ! अमुक आरामिकके घर ऐसी सुवर्णमाला अभिरूपा—दर्शनीया—प्रासादिका है जैसी सुवर्णमाला कि देवके अन्त पुरमे भी नही है। कहाँसे उस दरिद्रके (घरमे ऐसी हो सकती है), निस्सशय चोरीसे लाई गई है।"

तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने उस आरामिकके कुटुम्बको बाँध दिया। दूसरी बार भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पूर्वाह्णमे पहन पात्र-चीवर ले भिक्षाके लिये पिलिन्दिग्राममे प्रविष्ट हुए। पिलिन्दिग्राममे बिना ठहरे भिक्षाचार करते जहाँ उस आरामिकका घर था वहाँ गये। जाकर पळोसियोसे पूछा—

"इस आरामिकका कुटुम्ब कहाँ चला गया ?"

"भन्ते ! उस सुवर्णमालाके कारण राजाने बँधवा दिया।"

तब आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसारका घर था वहाँ गये। जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसार, जहाँ आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ थे, वहाँ गया।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मगधराज सेनिय बिम्बिसारको आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छने यह कहा—

"महाराज ! क्यो (तुमने) उस आरामिकके कुटुम्बको बँधवाया है ?"

"भन्ते ! उस आरामिकके घरमे ऐसी सु व र्ण मा ला ० थी जैसी हमारे अन्त पुरमे भी नही। निस्सशय चोरीसे लाई गई है।"

तब आयुष्मान् पि लि न्दि व च्छ ने मगधराज सेनिय बिम्बिसारका प्रासाद सोनेका हो जाय—यह सकल्प किया, और वह सारा सुवर्णका हो गया।—

"महाराज ! यह बहुत सा सुवर्ण कहाँसे (आया) ?"

"जान गया, भन्ते ! आर्यकी ऋद्धिके बलसे वह आरामिक कुटुम्ब (वैसो हो गया था)।" और उस आरामिकके कुटुम्बको छुळवा दिया।

(४) भैषज्य सप्ताहभर रक्खे जासकते है

लोग (यह देखकर) सन्तुष्ट, अत्यन्त प्रसन्न हुए कि आर्य पि लि न्दि व च्छ ने राजा सहित सारी परिषद्को दिव्यशक्ति—ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखलाया, और वे आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छके पास घी, मक्खन, तेल, मधु, खाँळ इन पाँच भैषज्योको ले जाने लगे। साधारण तौरसे भी आयुष्मान् पिलिन्दिवच्छ पाँच भैषज्योके पानेवाले थे। पाने पर परिषद् (=जमात)को दे देते थे, और उनकी परिषद् बटोरू हो गई। लेकर वे कुडेमे भी, घरमे भी रखते थे। ज ल छ क्के और थैलियोमे भी भरकर जँगलोमे भी टाँग देते थे। और वह तितर बितर पळे रहते थे और विहार चूहोसे भर गया था। लोग विहार मे घूमते वक्त (वह सब) देख हैरान होते थे। 'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण कोष्टागारवाले हो गये है जैसे कि मगधराज सेनिय बिम्बिसार।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होनेको सुना और जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेतावेगे !'

तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! भिक्षु इस प्रकारके बटोरू होनेके लिये चेताते है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकार करके धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जो वह रोगी भिक्षुओके खाने लायक भैषज्य है, जैसे कि घी, मक्खन, मधु, तेल, खाँळ उन्हे अधिकसे अधिक सप्ताह भर पास रखकर सेवन करना चाहिये, इसका अतिक्रमण करनेपर धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 73

२—राजगृह

(५) गुळ खानेका विधान

तब भगवान् श्रा व स्ती मे इच्छानुसार विहारकर जिधर रा ज गृ ह है उधर चारिका (=विचरण)के लिये चल पळे। आयुष्मान् क खा रे व त ने रास्तेमे गुळ बनाते वक्त उसमे आटा भी, राख भी, डालते देखा। देखकर अन्नयुक्त गुळ है। यह अविहित है। अपराह्णमे भोजन करने लायक नही है—(सोच) सदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित गुळ नही खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह भी गुळ नही खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! किस लिये गुळमें आटा भी राख भी, डालते है ?"

"बाँधनेके लिये भगवान् !"

"यदि भिक्षुओ! बाँधनेके लिये गुळमे आटा भी राख भी, डालते है तो वह भी तो गुळ ही कहा जाता है।"

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ इच्छानुसार गुळ खानेकी।" 74

(६) मूँगका विधान

आयुष्मान् क खा रे व त ने पकी भी मूँग उगी देखी। देखकर मूँग निषिद्ध है, पकी भी मूँग उत्पन्न होती है—(सोच) सदेह-युक्त हो (वे) अपनी परिषद् सहित मूँग नही खाते थे। जो उनके श्रोता थे वह भी मूँग नही खाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! पकी भी मूँगे उत्पन्न होती है तो अनुमति देता हूँ इच्छानुसार मूँग खानेकी।" 75

(७) छाछका विधान

उस समय एक भिक्षुको पेटमे वायगोलेकी बीमारी थी। उसने नमकीन सो वी र क (=छाछ) को पिया। वह वायगोलेका रोग शान्त हो गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (इस) रोगमे सो वी र क (=छाछ)की, और नीरोगके लिये पानी मिलेको पेयके तौरपर सेवन करनेकी।" 76

(८) आरामके भीतर रखे, पकाये, और स्वयं पकायेका खाना निषिद्ध

१—तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचे और वहाँ भगवान् रा ज-गृ ह के वे णु व न क ल न्द क निवापमे विहार करते थे। उस समय भगवान्‌को पेटमे वायुकी पीळा हुई। तब आयुष्मान् आनन्दने—पहले भी भगवान्‌के पेटमे वायुकी पीळा होनेसे त्रिकटुक यवागू (=खिचळी) लाभ देती थी—(यह सोच) स्वय तिल तदुल और मूँगको माँगकर भीतर डालके (आरामके) भीतर स्वय पकाकर भगवान्‌के पास उपस्थित किया—

"भगवान् त्रिकटुक यवागूको पिये!"

जानते हुए भी तथागत पूछते है ०[1]।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—

"आनन्द! कहाँसे यह यवागू (आई) है?"

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से सब बात कह दी। बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"आनद! अनुचित है, अयुक्त है, श्रमणके आचारके विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे आनद तू! इस प्रकारके बटोरूपनके लिये चेताता है? आनन्द! जो कुछ भीतर रखा गया है वह भी निषिद्ध है, जो कुछ भीतर पकाया गया है वह भी निषिद्ध है, जो स्वय पका है वह भी निषिद्ध है। आनद! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ! (आरामके) भीतर रखे, भीतर पकाये और स्वय पकायेको नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 77

२—"भिक्षुओ! भीतर रखे, भीतर पकाये, स्वय पकायेका जो सेवन करे उसे तीनो दु क्क टो का दोष हो।" 78

"यदि भिक्षुओ! भीतर रखे, भीतर पके और दूसरे द्वारा पकायेका सेवन करे तो दो दु क्क टो-का दोष हो।" 79

---

[1] देखो पृष्ठ १०८।

"भिक्षुओ ! यदि भीतर रखे, वाहर पकाये, स्वय पकायेका सेवन करे तो दो दुक्कटोका दोष हो।" 80

"यदि भिक्षुओ ! वाहर रखे, भीतर पकाये स्वय पकेका सेवन करे तो दो दुक्कटो का दोष हो। 81

"यदि भिक्षुओ ! भीतर रखे, वाहर पकाये (किन्तु) दूसरे द्वारा पकायेको भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 82

"यदि भिक्षुओ ! वाहर रखे, भीतर पकाये (किन्तु) दूसरो द्वारा पकायेका भोजन करे तो एक दुक्कटका दोप हो । 83

"यदि भिक्षुओ ! वाहर रखे, वाहर पकाये और अपने (हाथसे) पकायेका भोजन करे तो (एक) दुक्कटका दोष हो। 84

"यदि भिक्षुओ ! वाहर रखे वाहर पकाये किन्तु दूसरो द्वारा पकायेका भोजन करे तो दोष नही।"

३—उस समय भिक्षु (यह सोचकर कि) भगवान्ने स्वय पाकका निषेध किया है दोवारा पकानेमे सदेहमे पळे थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ फिर पाक करनेकी।" 85

(९) दुर्भिक्षमे आराममे रखे, पकाये तथा स्वयं पकायेका खाना विहित

१—उस समय रा ज गृ ह मे दुर्भिक्ष था। लोग नमक भी, तेल भी, तडुल भी खाद्य भी आराममे लाते थे। उन्हे भिक्षु वाहर रखवा देते थे और उन्हे चूहे बिल्लियाँ आदि भी खाती थी। चोर भी ले जाते थे, जूठा खानेवाले (=दमक) भी ले जाते थे। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर रखवानकी।" 86

२—भीतर रखवाकर वाहर पकाते थे और जूठा खानेवाले घेर लेते थे। भिक्षु विश्वास पूर्वक खा नही सकते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर पकानेकी।" 87

३—दुर्भिक्षमे कल्प्यकारक (=भिक्षुओके काम करनेवाले) वहुत भागको ले जाते थे और थोळासा भिक्षुओको देते थे। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्वय पकानेकी—भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भीतर रक्खे, भीतर पकाये, और (अपने) हाथसे पकायेकी।" 88

(१०) निर्जन वन स्थानमे स्वयं फल आदिका ग्रहण करना

उस समय वहुतसे भिक्षुओने का शी (देश)मे वर्षावास कर भगवान्के दर्शनको रा ज गृ ह जाते समय रास्तेमे रूखा या अच्छा कोई भोजन आवश्यकतानुसार भरपूर नही पाया। खाने लायक फल वहुत था किन्तु कोई क ल्प्य का र क[1] नही था। तव वह भिक्षु तकलीफ पाते, जहाँ रा ज गृ ह मे वे णु व न क ल न्द क नि वा प था और जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठे। वुद्ध भगवानोका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओंसे कुशल-समाचार पूछे। तव भगवान्ने भिक्षुओंसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! अच्छा तो रहा ? यापन करने योग्य तो रहा ? रास्तेमें विना तकलीफके तो आये ? और भिक्षुओ ! कहाँसे तुम आये ?"

---

[1] भोजन आदि जिन चीजोको स्वयं उठाकर भिक्षु नहीं खा सकते उसको उठाकर देनेवाला कल्प्यकारक कहलाता है।

"अच्छा रहा भगवान् ! यापन योग्य रहा भगवान् ! भन्ते ! हम काशी (देशमे) वर्षावास कर ० मार्गमे तकलीफ पाते आये।"

तब भगवान्‌ने उसी सबधमे उसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ जहाँपर खाने योग्य फलको देखो और कल्प्यकारक न हो तो स्वय ले जाकर कल्प्यकारकको देख भूमिमे रख फिर उससे ग्रहण कर खानेकी। भिक्षुओ ! लेने देनेकी अनुमति देता हूँ।" 89

(११) भोजनोपरान्त लाये भक्ष्यकी अनुमति

१—उस समय एक ब्राह्मणके पास नये तिल और नई मधु उत्पन्न हुई थी। तब उस ब्राह्मणको यह हुआ—'अच्छा हो मै इन नये तिलो और नई मधुको बुद्ध सहित भिक्षु-सघको प्रदान करूँ।' तब वह ब्राह्मण जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। भगवान्‌के साथ कुशल-प्रश्न पूछा एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"आप गौतम भिक्षु-सघके साथ कलके मेरे भोजनको स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

तब वह ब्राह्मण भगवान्‌की स्वीकृतिको जान चला गया। तब उस ब्राह्मणने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा भगवान्‌को कालकी सूचना दी—

"भो गौतम ! भोजनका समय है। भोजन तैयार है।" तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ उस ब्राह्मणका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब वह ब्राह्मण बुद्ध प्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित—सम्प्रवारित कर भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस ब्राह्मणको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठ चले गये। भगवान्‌के चले जानेके थोळी ही देर बाद उस ब्राह्मणको यह हुआ—"जिनके लिये मैने बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमन्त्रित किया था, उन्ही नये तिलो और नये मधुको देना मै भूल गया। क्यो न मै नये तिलो और नये मधुको कूँळो और घळोमे भर आराममे लिवा ले चलूँ।"

तब वह ब्राह्मण नये तिलो और नये मधुको कूँळो और घळोमे भरकर आराममे लिवा, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे उस ब्राह्मणने भगवान्‌से यह कहा—

"भो गौतम ! जिनके लिये मैने बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमन्त्रित किया था, उन्ही नये तिलो और नये मधुको देना मै भूल गया। आप गौतम उन नये तिलो और नये मधुको स्वीकार करे।"

"तो ब्राह्मण ! भिक्षुओको दे"।

२—उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोळेसे भी बस कर देते थे। जानकर भी इनकार कर देते थे और सारा सघ पूर्ण कह देता था। भिक्षु सदेहमे पळ नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो। भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वहाँसे लाये हुएको भोजन पूर्त्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 90

३—उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्य-पुत्रके सेवक कुटुम्बने सघके लिये खानेकी चीज भेजी और कहा—'यह खानेकी चीज आर्य उपनदको दिखलाकर सघको देना।' उस समय आयुष्मान् उपनद शाक्यपुत्र गाँवमे भिक्षाके लिये गये थे। तब आदमियोने आराममे जाकर भिक्षुओसे पूछा—"आर्य उ प न द कहाँ है?"

"आवुसो ! आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र गाँवमे भिक्षाके लिये गये है।"

"भन्ते ! इस खानेकी चीजको आर्य उ प न द को दिखला सघको देना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! लेकर रख छोळो जब तक कि उ प न द आता है।" 91

४—तब आयुष्मान् उपनद शाक्यपुत्र भात (खाने)से पहले (गृहस्थ) कुटुम्बोमे वैठकीकर दिन के (मध्य)मे आते थे। उस समय भिक्षु दुर्भिक्ष होनेसे थोळेसे भी ० भिक्षु सदेहमे पळ नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ भातके पहिले लियेको, भोजन पूर्त्ति हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 92

३—श्रावस्ती

५—तब भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमश चारिका करते जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् सारिपुत्रको काय-डाह (=शरीर जलने)का रोग था। तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जहाँ आयुष्मान् सा रि पु त्र थे वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"आवुस ! सारिपुत्र पहले जब तुम्हे कायडाह रोग होता था तो कैसे अच्छा होता था ?"

"आवुस ! भ सी ळ (=कमलकी जळ) और कमल-नालसे।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जैसे बलवान् पुरुष समेटी बाँहको पसारे, पसारी बाँहको समेटे वैसे ही (अप्रयास) जेतवनमे अन्तर्धान हो म दा कि नी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुए। एक ना ग ने आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको दूरसे ही आते देखा। देख कर यह कहा—

"आइये भन्ते ! आर्य महामौद्गल्यायन, भन्ते ! स्वागत है आर्य महामौद्गल्यायनका। भन्ते ! आर्यको किस चीजकी जरूरत है ? क्या दूँ ?"

"आवुस ! मुझे भसीळकी जरूरत है और कमल-नालकी।"

तब उस नागने दूसरे नागको आज्ञा दी—'तो भणे ! आर्यको जितनी आवश्यकता हो उतनी भसीळ और कमल-नाल दो।'

तब वह नाग मदाकिनी पुष्करिणीमे घुसकर सूँळसे भसीळ और कमल-नालको निकाल अच्छी तरह धोकर गठरी बाँध जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे वहाँ गया।

तब आयुष्मान् म हा मौ द् ग ल्या य न जे त व न मे जा प्रकट हुए । और वह नाग भी मदाकिनी पुष्करिणीके तीर अन्तर्धान हो जे त व न मे जा प्रकट हुआ। तब वह नाग आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको भसीळ ओर कमल-नाल दे जेतवनमें अन्तर्धान हो मदाकिनी पुष्करिणीके तीर जा प्रकट हुआ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने आयुष्मान् सा रि पु त्र को भसीळ और कमल-नाल दिया। तब भसीळ और कमल-नालके खानेसे आयुष्मान् सारिपुत्रकी काय-दाहकी पीळा शान्त हो गई, और बहुत-सी भसीळ और कमल-नाल बच रही। उस समय दुर्भिक्ष होनेसे भिक्षु सदेहमे पळ नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ ! स्वीकार करो, भोजन करो।"

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वनकी और पुष्करिणीकी वस्तुको भोजन पूरा हो जानेपर भी अतिरिक्त न हो तो उसे भोजन करनेकी।" 93

(१२) स्वयं लेकर फल खाना

उस समय श्रा व स्ती मे वहुतसा खाने लायक फल उत्पन्न हुआ था लेकिन कोई क ल्प्य का र क न था। भिक्षु सदेहमे पळकर फल न खाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ विना वीजवाले तथा (वीजवाले) फलके वीजको निकालकर कल्प्य न करनेपर भी खानेकी।" 94

४—राजगृह

(१३) गुप्त स्थानमे चीरफाळ वस्तिकर्मका निषेध

१—तव भगवान् श्रा व स्ती मे इच्छानुसार विहारकर ० रा ज गृ ह के वे णु व न क ल द क नि वा प मे विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुको भ ग द र का रोग था। आ का श गो त्र वैद्य शस्त्रकर्म (=चीर फाळ) करता था। तव भगवान् विहारमे घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार (=कोठरी) था वहाँ गये। आ का श गो त्र वैद्यने भगवान्को दूरसे ही आते देखा। देखकर भगवान्से यह वोला—

"आइये आप गौतम ! इस भिक्षुके मल-मार्गको देखे। जैसे कि गोहका मुख है।"

तव भगवान्ने—'यह मोघपुरुष मुझसे ही मजाक कर रहा है'—(सोच) वहीसे लौटकर इसी सम्वन्धमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"भिक्षुओ ! क्या अमुक विहारमे रोगी भिक्षु है ?"

"है भगवान् !"

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! उस आयुष्मान्को भगदरका रोग है और आ का श गो त्र वैद्य शस्त्र-कर्म कर रहा है।"

वुद्ध भगवान्ने निदा की—

"भिक्षुओ ! अयुक्त है, उस मोघ पुरुषके लिये अनुचित है। अयोग्य है। अप्रतिरूप है। श्रमणोके आचारके विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ ! वह मोघ पुरुष गुह्य-स्थानमे शस्त्र-कर्म कराता है ! भिक्षुओ ! (उस) गुह्य-स्थानमे चमळा कोमल होता है। घाव मुश्किलसे भरता है। शस्त्र चलाना कठिन है। भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

निदा करके धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सवोधित किया—

"भिक्षुओ ! गुह्य-स्थानमे शस्त्र-कर्म नही करना चाहिये। जो कराये उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 95

२—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्ने शस्त्र-कर्मका निषेध किया है (यह सोच) व स्ति क र्म कराते थे। जो वह अ ल्पे च्छ भिक्षु थे हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु वस्ति-कर्म कराते है !' तव उन लोगोने यह वात भगवान्से कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

निदा कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गुह्य-स्थानके चारो ओर दो अगुल तक शस्त्रकर्म या वस्तिकर्म नही कराना चाहिये। जो कराये उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो।" 96

§ ४–अभक्ष्य मांस

५—वाराणसी

(१) सुप्रियाका अपना मांस देना

तब भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चले। क्रमश चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व मे विहार करते थे। उस समय वाराणसीमे सुप्रिय (नामक) उपासक और सुप्रिया (नामक) उपासिका, दोनो श्रद्धालु थे। वह दाता काम करनेवाले और सघके सेवक थे। तब सुप्रिया उपासिका एक दिन आराममे जा एक विहार(=भिक्षुओके रहनेकी कोठरी)से दूसरे विहार, एक प रि वे ण [१] से दूसरे परिवेणमे जा भिक्षुओसे पूछती थी—

"भन्ते! कौन रोगी है? किसके लिये क्या लाना चाहिये?"

उस समय एक भिक्षुने जुलाब लिया था। तब उस भिक्षुने सुप्रिया उपासिकासे यह कहा—

"भगिनी! मैंने जुलाब लिया है। मुझे प्रतिच्छादनीय (=पथ्य)की आवश्यकता है।"

"अच्छा आर्य! लाया जायेगा।"—(कह) घर जा नौकरको आज्ञा दी—

"जा भणे! तैयार मास खोज ला।"

"अच्छा आर्ये!"—(कह) उस पुरुषने सु प्रि या उपासिकाको उत्तर दे सारी वा रा ण सी को खोज डालनेपर भी तैयार मास न देखा। तब वह जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह बोला—

"आर्ये! तैयार मास नही है। आज मारा नही गया।"

तब सुप्रिया उपासिकाको यह हुआ—'उस रोगी भिक्षुको प्र ति च्छा द नी य न मिलनेसे रोग बढेगा, या मौत होगी। मेरे लिये यह उचित नही कि वचन देकर न पहुँचवाऊँ।'—(यह सोच) पोत्थनिका (=मास काटनेका हथियार) ले जाँघके मासको काटकर (यह कह) दासीको दे दिया—

'हन्त! जे! इस मासको तैयारकर अमुक विहारमे रोगी भिक्षु है उसको दे आ। यदि मेरे बारेमे पूछे तो कहना बीमार है।' और चादरसे जाँघको बाँधकर कोठरीमे जा चारपाईपर लेट गई। तब सु प्रि य उपासकने घरमे जा दासीसे पूछा—"सुप्रिया कहाँ है?"

"आर्य! यह कोठरीमे लेटी हुई है।"

तब सु प्रि य उपासक जहाँ सुप्रिया उपासिका थी वहाँ गया। जाकर सुप्रिया उपासिकासे यह बोला—

"कैसे लेटी हो?"

"बीमार हूँ।"

"तुम्हे क्या बीमारी है?"

तब सुप्रिया उपासिकाने सुप्रिय उपासकसे वह सब बात कह दी। तब सुप्रिय उपासकने—"आश्चर्य है! अद्भुत है! कितनी श्रद्धालु, (=प्रसन्न) सुप्रिया है जो कि उसने अपने मासको भी दे दिया। इसके लिये और क्या अदेय हो सकता है?"—(कह) हर्षित=उदग्र हो जहाँ भगवान् थे वहाँ

---

[१] उस समय आजकलके युक्त-प्रान्त और बिहारके देहातोके मिट्टीके घरोकी तरह बीचमें आँगन रख चारो ओर कोठरियाँ बनाई जाती थी। ऐसे आँगनवाले घरको प रि वे ण कहते थे।

गया। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे सु प्रि य उपासकने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भिक्षु-सघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया। तब सु प्रि य उपासक भगवान्‌की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्‌की प्रदक्षिणाकर चला गया। तब सुप्रिय उपासकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा समयकी सूचना दी—"भन्ते! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्णके समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सुप्रिय उपासकका घर था वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब सुप्रिय उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे सुप्रिय उपासकसे भगवान्‌ने यह कहा—"कहाँ है सुप्रिया?"

"बीमार है भगवान्!"

"तो आवे।"

"भगवान्! नही आसकती।"

"तो पकळकर ले आओ!"

तब सुप्रिय उपासक सु प्रि या उपासिकाको धरकर ले आया। भगवान्‌के दर्शन मात्रसे (उसी समय) उसका बळा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया। तब सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाने—"आश्चर्य है हे! अद्‌भुत है हे! तथागतकी महा दिव्यशक्ति, और महानु-भावताको, जो कि भगवान्‌के दर्शन मात्रसे बळा घाव भर गया। चाम ठीक हो गया और लोम भी जम गया"—(कह) हर्षित=उदग्र हो अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा बुद्ध सहित भिक्षु-सघको सतर्पित किया। भगवान्‌के भोजनकर हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गये। तब भगवान् सुप्रिय उपासक और सुप्रिया उपासिकाको धार्मिक कथासे समुत्तेजित सम्प्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"भिक्षुओ! किसने सुप्रिया उपासिकासे मास माँगा?"—ऐसा कहनेपर उस भिक्षुने भग-वान्से यह कहा—

"भन्ते! मैंने सुप्रिया उपासिकासे मास माँगा।"

"लाया गया भिक्षु?"

"(हाँ) लाया गया भगवान्।"

"खाया तूने भिक्षु?"

"(हाँ) खाया मैंने भगवान्।"

"समझा बूझा तूने भिक्षु?"

"नही भगवान्! मैंने (नही) स म झा बू झा।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"कैसे तूने मोघपुरुष! बिना समझे बूझे मासको खाया? मोघ-पुरुष! तूने मनुष्यके मासको खाया। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।

(२) मनुष्य, हाथी आदिके मांस अभक्ष्य

१—फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! ऐसे श्रद्धालु—प्रसन्न मनुष्य है जो अपने मास तकको दे देते है।

"भिक्षुओ! मनुष्य-मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको थुल्लच्चयका दोष हो।" 97

२—उस समय राजाके हाथी मरते थे। दुर्भिक्षके कारण लोग हाथीका मास खाते थे।

भिक्षाके लिये जानेपर भिक्षुओको भी हाथीका मास देते थे, और भिक्षु हाथीका मास खाते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे शा क्य पु त्री य श्रमण हाथीका मास खाते है ! हाथी राजाका अग है। यदि राजा जाने तो उनसे असतुष्ट होगा।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! हाथीके मासको नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 98

३—उस समय राजाके घोळे मरते थे ०[1]।—

"भिक्षुओ ! घोळेका मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 99

४—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग कुत्तेका मास खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! कुत्तेका मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 100

५—उस समय दुर्भिक्षके कारण लोग साँपका मास खाते थे ०[2]। कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण साँपका मास खाते है। साँप घृणित और प्रतिकूल होता है। सु फ स्स (=सुस्पर्श) नागराज भी जहाँ भगवान् थे वहाँ आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे सुफस्स नागराजने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! श्रद्धा-हीन प्रसन्नता-रहित नाग भी है। वह थोळीसी बातके लिये भी भिक्षुओको तकलीफ दे सकते है। अच्छा हो भन्ते ! आर्य लोग साँपका मास न खाये।" तब भगवान्ने सु फ स्स नागराजको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित किया। तब सुफस्स नागराज भगवान्की धार्मिक कथासे समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया

"भिक्षुओ ! साँपका मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 101

६—उस समय शिकारी सिंहको मारकर सिंहका मास खाते थे। भिक्षुओके भिक्षाचार करते वक्त (उन्हे) सिंहका मास देते थे। भिक्षु सिहका मास खाकर जगलमे रहते थे। सिह-मासके गधसे भिक्षुओको मारते थे। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! सिंहके मासको नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 102

७—उस समय शिकारी बाघको मारकर बाघका मास खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! बाघका मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 103

८—उस समय शिकारी चीते (=द्वी पी)को मारकर चीतेका मास खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! चीतेका मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 104

९—उस समय शिकारी भालूको मारकर भालूका मास खाते थे ०[2]।—

"भिक्षुओ ! भालू (=अ च्छ)का मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 105

१०—उस समय शिकारी त ळ क(=तरक्षु, लकळबग्घा)को मारकर तळकका मास खाते थे०[2]।

"भिक्षुओ ! त ळ क का मास नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 106

सुप्रिय भाणवार समाप्त ॥२॥

---

[1] हाथीकी तरह [६§४ । २ (२)] यहाँ भी दोहराना चाहिये ।

[2] हाथीकी तरह [६§४ । २ (२)] यहाँ भी दोहराना चाहिये ।

५—अधकविन्द

(३) खिचळी और लड्डूका विधान

१—तव भगवान् वा रा ण सी मे इच्छानुसार विहारकर साढे वारह सौ भिक्षुओके महान् भिक्षु-सघके साथ जिधर अ ध क वि द है उधर चारिकाके-लिये चले। उस समय देहात (=जनपद) के लोग बहुत सा नमक, तेल, तदुल और खानेकी चीजे गाळियोपर रख,—'जव हमारी वारी आयेगी तव भोजन करायेगें'—यह सोच वुद्ध सहित भिक्षु-सघके पीछे पीछे चलते थे। और पाँच सौ जूठा खाने-वाले भी पीछे-पीछे चल रहे थे। तव भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ अ ध क वि द था वहाँ पहुँचे। तव एक ब्राह्मणको वारी न मिलनेसे ऐसा हुआ—'बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके पीछे-पीछे (यह सोचकर) चलते हुए दो महीनेसे अधिक हो गए कि जव वारी मिलेगी तव भोजन कराऊँगा, और मुझे वारी नही मिल रही है। मै अकेला हूँ, मेरा घरका वहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यो न मै भोजन पर-सनेको देखूँ। जो परसनेमे न हो उसको मै दूँ।'

तव ब्राह्मणने भोजन परसनेको देखते वक्त य वा गू खिचळी और लड्डू (=मधुगोलक)को न देखा। तव वह ब्राह्मण जहाँ आयुष्मान् आनद थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनदसे यह बोला—

"भो आनन्द! मुझे वारी न मिलनेसे ऐसा हो—'बुद्ध-सहित सघके पीछेपीछे (यह सोचकर) चलते दो महीनेसे अधिक हो गये कि जव वारी मिलेगी तव भोजन कराऊँगा, और मुझे वारी नही मिल रही है। और मै अकेला हूँ। मेरा घरका वहुत सा काम नुकसान हो रहा है। क्यो न मै भोजन परसनेको देखूँ। जो परसनेमे न हो उसको मं दूँ।' (फिर) भोजन परसनेको देखते वक्त यवागू और लड्डू मैंने नही देखा। सो भो आनन्द! यदि मै यवागू और लड्डूको तैयार कराऊँ तो क्या आप गौतम उसे स्वीकार करेगे ?"

"तो ब्राह्मण! मै इसे भगवान्से पूछूँगा।"

तव आयुष्मान् आनदने भगवान्से यह वात कही।

"तो आनद! (वह ब्राह्मण) तैयार करे।"

"तो ब्राह्मण! तैयार करो।"

तव वह ब्राह्मण उस रातके वीत जानेपर वहुत सा यवागू ओर लड्डू तैयार करा भगवान्के पास ले गया।—

"आप गौतम मेरे यवागू और लड्डूको स्वीकार करे।"

तव भिक्षु आगा-पीछा करते नही स्वीकार करते थे।

"भिक्षुओ! ग्रहण करो! भोजन करो!"

तव ब्राह्मण बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे वहुतसे यवागू और लड्डूसे सर्तापत=सम्प्रवारित कर भगवान्के हाथ धो (खानेसे) हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर वैठे उस ब्राह्मणसे भगवान्ने यह कहा—

२—"ब्राह्मण खिचळी यवागूके यह दस गुण (=आनृसश) है—(१) यवागू देनेवाला आयुका दाता होता है, (२) वर्ण (=रूप)का दाता होता हे, (३) सुखका दाता होता है, (४) वलका दाता होता है, (५) प्रतिभाका दाता होता है, (६) (उसकी दी खिचळी) पीनेपर क्षुधाको दूर करता है, (७) प्यासको दूर करता हे, (८) वायुको अनुकूल करता है, (९) पेटको साफ करता है, (१०) न पचेको पचाता है। ब्राह्मण! खिचळीके ये दस गुण है।"

जो सयमी, (और) दूसरेके-दिये-भोजन-करने-वालोको—

समयपर सत्कार पूर्वक यवागू (=खिचळी) देता है,

उसको दस बातें मिलती हैं ।
आयु, वर्ण, सुख, बल,—
प्रतिभा उसको उत्पन्न होती है, फिर
(यवागू) क्षुधा, पिपासा, (और) वायुको दूर करती है,
पेटको शोधती है, खायेको पचाती है ।
बुद्धने इसे दवा बतलाया है ।
इसलिये सुख चाहनेवाले मनुष्यको,
तथा दिव्य सुखको चाहनेवाले,
या मनुष्योमे सुन्दर भाग्यकी इच्छा रखनेवालेको,
नित्य यवागूका दाता होना ठीक है ।

तब भगवान् उस ब्राह्मण (के दान)को इन गाथाओसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये । तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरण मे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ यवागू और मधुगोलक की ।"107

(४) निमत्रणके स्थानसे भिन्न खिचळी निषिद्ध

लोगोने सुना कि भगवान्ने भिक्षुओको यवागू और मधुगोलककी अनुमति दी है तब वह सबेरे ही खानेके लायक यवागू और मधुगोलकको तैयार कराते थे । भिक्षु सबेरे ही यवागू और मधुगोलकको खानेसे भोजनके समय मनसे नही खाते थे । उस समय एक श्रद्धालु नौजवान महामात्यने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमत्रित किया था । तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको यह हुआ—'क्यो न मै साढे बारहसौ भिक्षुओके लिये साढे बारहसौ मासकी थालियाँ तैयार कराऊँ, और एक एक भिक्षुके लिये एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ ?' तब उस श्रद्धालु तरुण महामात्यने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य-भोज्य और साढे बारहसौ मासकी थालियोको तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते ! भोजनका काल है, भात तैयार है ।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ उस श्रद्धालु तरुण महामात्यका घर था वहाँ गये । जाकर भिक्षु-सघ सहित बिछे आसनपर बैठे । तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य चौकेमे भिक्षुओको परोसने लगा । भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुस ! थोळा दो ! आवुस ! थोळा दो ।'

"भन्ते ! 'यह श्रद्धालु महामात्य तरुण है'—यह सोच थोळा-थोळा मत लीजिये । मैंने बहुत खाद्य-भोज्य तैयार किया है, साढे बारह सौ मासकी थालियाँ (तैयार की हैं जिसमे कि) एक एक भिक्षुको एक एक मासकी थाली प्रदान करूँ । भन्ते ! खूब इच्छा-पूर्वक ग्रहण कीजिये ।"

"आवुस ! हम इस कारणसे थोळा-थोळा नही ले रहे है, बल्कि हमने सबेरे ही भोज्य यवागू और मधुगोलक खा लिया है, इसलिये थोळा-थोळा ले रहे हैं ।"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य हैरान होता था—'कैसे भदन्त लोग मेरे घर निमत्रित होनेपर दूसरेके भोज्य यवागू और मधुगोलकको खायेंगे । क्या मै इच्छानुसार (भोजन) नही देसकता था ?'—(यह कह) कुपित, असतुष्ट हो चिढानेकी इच्छासे भिक्षुओके पात्रोको (यह कह) भरता चला गया—"खाओ ! या ले जाओ ! खाओ ! या ले जाओ !"

तब वह श्रद्धालु तरुण महामात्य बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यद्वारा सतर्पित=सम्प्रवारित करके भगवान्के भोजन कर हाथ खीच लेनेपर एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको भगवान् धार्मिक कथाद्वारा . समुत्तेजित सप्रहर्षितकर आसनसे

उठकर चले गये। तब भगवान्‌के चलेजानेके थोळीही देर बाद उस श्रद्धालु तरुण महामात्यको पछतावा होने लगा। उदासी होने लगी—"मुझे अलाभ है रे! मुझे दुर्लभ मिला है रे! मुझे सुलाभ नही हुआ है रे! जोकि मै ने कुपित असतुष्ट हो चिढानेकी इच्छासे भिक्षुओके पात्रोको भर दिया—'खाओ! या लेजाओ!'—क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य ?"

तव वह श्रद्धालु तरुण महामात्य जहाँ भगवान् थे वहा गया। जाकर जहाँ भगवान् थे एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे उस महामात्यने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्‌के चले आनेके थोळीही देर बाद मुझे पछतावा होने लगा० क्या मैंने पुण्य अधिक कमाया या अपुण्य ?"

"आवुस! जोकि तूने दूसरे दिनके लिये बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको निमत्रित किया इससे तूने बहुत पुण्य उपार्जित किया। जोकि तेरे यहाँ एक एक भिक्षुने एक एक दान ग्रहण किया इस बात से तूने बहुत पुण्य कमाया। स्वर्गका आराधन किया।"

तव वह महामात्य—'लाभ है मुझे, सुलाभ हुआ मुझे, मैंने बहुत पुण्य कमाया, स्वर्ग का आराधन किया—' यह सोच हर्षित=उदग्र हो, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चला गया।

तव भगवान्‌ने इसी सवधमें, इसी प्रकरणमे भिक्षुओको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"भिक्षुओ! सचमुच भिक्षु दूसरेके यहाँ निमत्रितहो, दूसरेके भोज्य खिचळीको ग्रहण करते है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ! वे निकम्मे आदमी दूसरी जगह निमत्रित हो, दूसरेके भोज्य यवागूको ग्रहण करते है ? भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! दूसरी जगह निमत्रितहो दूसरेके भोज्य यवागूको नही ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे उसे धर्मानुसार (दड) देना चाहिये।" 108

६—राजगृह

(५) वेलट्ठ कात्यायनका गुळका व्यापार

तव भगवान् अ ध क वि द मे इच्छानुसार विहारकर साढे बारहसौ भिक्षुओके महान् भिक्षु सघके साथ जिधर रा ज गृ ह है उधर चारिकाकेलिये चले। उस समय वे ल ट्ठ क च्चान (=कात्यायन) सभी गुळके घळोसे भरी पाँचसौ गाळियोके साथ रा ज गृ ह से अ ध क विं द जाने वाले रास्तेमे जा रहा था। भगवान्‌ने दूरसे ही वे ल ट्ठ क च्चा न को आते देखा। देखकर मार्गसे हट एक वृक्षके नीचे (भगवान्) बैठ गये। तब वे ल ट्ठ क च्चान जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे वे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌से यह कहा—

"भते! मै एक एक भिक्षुको एक एक गुळका घळा देना चाहता हूँ।"

"तो कच्चान! तू एक ही गुळके घळेको ला।"

"अच्छा भते!" (कह) वे ल ट्ठ क च्चा न एक ही गुळके घळेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से बोला—

"भते! मै गुळके घळेको लाया हूँ। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो कच्चान! तू भिक्षुओको गुळ दे।"

"अच्छा भते !" (कह) बे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओको गुळ दे यह कहा—

"भते ! मैंने भिक्षुओंको गुळ दे दिया, और यह बहुतसा गुळ बाकी है। भते मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो कच्चान ! भिक्षुओको गुळसे सर्तापित कर।"

"अच्छा भते !" (कह) बे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे, भिक्षुओको गुळोसे (=भेलियोसे) सर्तापित किया। किन्ही किन्ही भिक्षुओने पात्रोको भर लिया, किन्हीने ज ल छ क्को को, किन्हीने थैलोको भर लिया। तब बे ल ट्ठ क च्चा न ने भिक्षुओको गुळोसे सर्तापितकर भगवान् से यह कहा—

"भन्ते ! मैंने भिक्षुओको गुळोसे सर्तापित कर दिया और बहुतसा गुळ बाकी है। भते ! मै (इनका) क्या करूँ ?"

"तो कच्चान ! तू गुळको शेष-भोजी (=विघासाद)को यथेच्छ दे दे।"

"अच्छा भते !" (कह) बे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे गुळ को यथेच्छ वि घा सा- दा न दे भगवान्‌से यह कहा—

"भते ! गुळका यथेच्छ विघासादान मैंने दे दिया और वहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तो क च्चा न ! जूठ खाने वालोको इन गुळोसे सर्तापित कर।"

"अच्छा भते !" (कह) बे ल ट्ठ क च्चा न ने भगवान्‌को उत्तर दे जूठ खाने वालोको गुळोसे सर्तापित किया। किन्ही किन्ही जूठ खाने वालोने कुडोको भी घळोको भी भर लिया, पिटारियो और उछगोको भी भर लिया। तव बे ल ट्ठ क च्चा न ने जूठ खाने वालोको गुळोसे सर्तापितकर भगवान् से यह कहा—

"भते ! मैंने जूठ खाने वालोको गुळोसे सर्तापित कर दिया और वहुतसा यह गुळ बचा हुआ है। मुझे क्या करना चाहिये ?"

"कच्चान ! देवो-सहित मार-सहित ब्रह्मा-सहित (सारे) लोकमे, श्रमण-ब्राह्मण-सहित देव-मनुष्य सयुक्त (सारी) प्रजामे, सिवाय तथागत या तथागतके श्रावकके ऐसे (व्यक्ति)को मै नही देखता जिसके खानेपर यह गुळ अच्छी तरह हजम हो सके। इसलिये कच्चान ! तू इस गुळको तृण-रहित भूमिमे छोळ दे, या प्राणी-रहित जलमे डालदे।"

"अच्छा भते !" (कह) बे ल ट्ठ क च्चा न ने उस गुळको प्राणि-रहित जलमे डाल दिया। तव पानीमें डाला वह गुळ चिटचिटाता था, धुँधुआता था, बहुत धुँधुआता था, जैसेकि दिनकी धूपमे छोळा थाल पानीमे डालनेमे चिटचिटाता है, धुँधुआता है, बहुत धुँधुआता है, इसी प्रकार वह गुळ०।

तव बे ल ट्ठ क च्चा न घवराया हुआ रोमाचित हो जहाँ भगवान्‌थे वहाँ आया। आकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर वैठा। एक ओर वैठे बे ल ट्ठ क च्चा न को भगवान्‌ने आ नु पू र्वी क था जैसेकि दानकथा०[1] तव वेलट्ठकच्चान विदित धर्म०[2] हो भगवान्‌से यह वोला—

"आश्चर्य भते ! अद्भुत भते ! ०[2] यह मै भते ! भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे अजलिवद्ध शरणागत उपासक स्वीकार करे।"

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

(६) रोगीको गुळ और नीरोगको गुळका रस

तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहके वेणुवन कलदकनिवापमे विहार करते थे। उस समय राजगृहमें गुळ बहुत था। भिक्षु हिचकिचा रहे थे कि भगवान्ने गुळकी अनुमति रोगीके लिये दी है या नीरोगके लिये, और गुळको न खाते थे। भगवान्से यह बात कही।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगीको गुळकी, और नीरोगीको गुळके रसकी।" 109

७—*पाटलिग्राम*

(७) पाटलिग्राममे नगर-निर्माण

तब भगवान् राजगृहमे इच्छानुसार विहारकर साढे बारह सौ भिक्षुओके महान् भिक्षु-सघ के साथ जिधर पाटलिग्राम है उधर चारिकाके लिये चल दिये। तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ पाटलिग्राम है वहाँ पहुँचे।

पाटलिग्रामके उपासकोने सुना कि भगवान् पाटलिग्राम आये है। तब .उपासक जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये उपासकोने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् हमारे आवसथागार[1] (=अतिथिशाला)को स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब उपासक भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर जहाँ आवसथागार था, वहाँ गये०। जाकर चारो ओर बिछौना बिछे आवसथागारको बिछवाकर, आसनोको लगवाकर, पानीकी चाटियोको रखवाकर तथा तेल-प्रदीप जलवा जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळे हो गये। एक ओर खळे हुए पाटली-ग्रामके उपासकोने भगवान्से यह कहा—

(भन्ते! आवसथागारमे सब बिछौने बिछ गये है, आसन लग गये है, पानीकी मटकियाँ रख दी गई है, तेल-प्रदीप जल गये है। भन्ते! भगवान् अब जिसका समय समझे) तब भगवान् पहनकर पात्र-चीवर ले भिक्षुसघके साथ जहाँ आवसथागार था वहाँ गये। जाकर पैरोको धो आवसथागारमे प्रविष्ट हो बीचके खभेके पास पूर्वाभिमुख बैठे। भिक्षु-सघ भी पाँवोको धोकर आवसथागारमे प्रविष्ट हो पश्चिम की दीवारके पास पूर्वाभिमुख बैठे। पाटली ग्रामके उपासक भी पाँवोको धोकर आवसथागारमे प्रविष्ट हो पूर्वकी दीवालके पास पश्चिमाभिमुख हो, जिधर भगवान् थे उधर ही मुँह करके बैठे। तब भगवान्ने पाटली ग्रामके उपासकोको आमन्त्रित किया—

---

[1] उदान अ क ८ ६ "भगवान् कब पाटलीग्राममें गये ? .श्रावस्ती में धर्म-सेनापति (=सारिपुत्र)का चैत्य बनवा, वहाँसे निकलकर राजगृहमें वास किया। वहाँ आयुष्मान महामौद्गल्यायनका चैत्य बनवाकर, वहाँसे निकलकर अबलट्ठिकामें वास किया। फिर अ-त्वरित-चारिकासे जनपद-चारिका करते, वहाँ वहाँ एक रात वास करते, लोकानुग्रह करते, क्रमश पाटलिग्राम पहुँचे। । पाटलिग्राममें अजातशत्रु और लिच्छवी राजाओके आदमी समय समयपर, आकर घरके मालिकोको घरसे निकालकर, मास भी आधामास भी बस रहते थे। इससे पाटलिग्राम-वासियोने नित्य पीडित हो—उनके आनेपर यह (हमारा) वास-स्थान होगा—(सोचकर) . नगरके बीचमें महाशाला बनवाई उसीका नाम था 'आवसथागार'। वह उसी दिन समाप्त हुआ था।"

"गृहपतियो ! दुराचार, दुःशील (=दुराचारी)के ये पाँच दुष्परिणाम हैं। कौनसे पाँच ? गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी (मनुष्य) आलस्यके कारण अपनी भोग सम्पत्तिको बहुत हानि करता है, दुःशीलताका तथा दुराचारका यह पहला दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! और फिर दुःशील, दुराचारीकी बदनामी होती है। दुःशीलता तथा दुराचारका यह दूसरा दुष्परिणाम है।

०और गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी जिस किसी सभामे जाता है—चाहे वह क्षत्रियोकी सभा हो, चाहे ब्राह्मणोकी सभा हो, चाहे वैश्योकी सभा हो, चाहे श्रमणोकी सभा हो—उसमे अविशारद हो झेपा हुआ जाता है। दुःशील, दुराचारका यह तीसरा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! और फिर दुराचारी अत्यन्त मूढताको प्राप्त हो मरता है। दुःशील दुराचारीका यह चौथा दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! दुःशील, दुराचारी शरीर छोळनेपर, मरनेपर नरकमे=दुर्गतिमे =निरय मे उत्पन्न होता है। दुःशील दुराचारीका यह पाँचवाँ दुष्परिणाम है। दुःशील=दुराचारके ये पाँच दुष्परिणाम है।

"गृहपतियो ! सदाचारीके ये पाँच सुपरिणाम है। कौनसे पाँच ?

"गृहपतियो ! सदाचारी (=सदाचार-युक्त आदमी) हिम्मती होनेके कारण बहुत सी धन-सम्पत्ति प्राप्त करता है। सदाचारी (=सदाचार युक्तका) यह पहला सुपरिणाम है।

"और फिर, गृहपतियो ! सदाचारी सदाचार युक्तकी नेकनामी होती है। सदाचारी सदाचार-युक्तका यह दूसरा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी सदाचार-युक्त जिस जिस सभामें जाता है—चाहे क्षत्रियो की सभा हो, चाहे ब्राह्मणोकी सभा हो, चाहे वैश्योकी सभा हो, चाहे श्रमणोकी सभा हो—उस सभामे वह विशारद हो निःसकोच जाता है। सदाचारी=सदाचार-युक्तका यह तीसरा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी (=सदाचार-युक्त) मनुष्य विना मूढताको प्राप्त हुए मरता है। सदाचारीके सदाचारका यह चौथा सुपरिणाम है।

"और फिर गृहपतियो ! सदाचारी=सदाचार-युक्त शरीर छोळनेपर, मरनेपर सुगति=स्वर्ग-लोकमे उत्पन्न होता है। सदाचारीके सदाचारका यह पाँचवाँ सुपरिणाम है। गृहपतियो ! सदाचारीके सदाचारके यह पाँच सुपरिणाम है।"

तब भगवान्‌ने बहुत रात तक उपासकोको धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित कर उद्योजित किया—

"गृहपतियो ! रात बीत गई, जिसका तुम समय समझते हो (वैसा करो)।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) पाटलिगाम-वासी उपासक आसनसे उठकर भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये। तब पाटलिग्रामिक उपासकोके चले जानेके थोळीही देर बाद भगवान् शून्यआगारमे चले गये।

उस समय सु नी थ (=सुनीथ) और व र्ष का र म ग ध के महामात्य पा ट लि ग्रा म मे वज्जियो को रोकनेके लिये नगर बसाते थे। । भगवान्‌ने रातके प्रत्यूष-समय (=भिनसार)को उठकर आयुष्मान् आनन्दको आमन्त्रित किया—

"आनन्द ! पाटलिग्राममे कौन नगर बना रहा है ?"

"भन्ते ! सुनीथ और वर्षकार मगध-महामात्य, वज्जियोके रोकनेके लिये नगर बसा रहे है।"

"आनन्द ! जैसे त्रयस्त्रिशके देवताओके साथ मत्रणा करके मगधके महामात्य सुनीथ, वर्ष-

कार, वज्जियोके रोकनेके लिये नगर बना रहे है। यहाँ आनन्द ! मैने दिव्य अमानुप नेत्रसे देखा— कई हजार देवता यहाँ पाटलि-ग्राममे वास्तु (=घर, निवास) ग्रहण कर रहे हैं। जिस प्रदेशमे महा-शक्ति-शाली (=महेसक्ख) देवता वास ग्रहण कर रहे है, वहाँ महा-शक्ति-शाली राजाओ और राज-महामात्योका चित्त, घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमे मध्यम देवता वास ग्रहण कर रहे है, वहाँ मध्यम राजाओ और राज-महामात्योका चित्त घर बनानेको लगेगा। जिस प्रदेशमे नीच देवता०, वहाँ नीच राजाओ०। आनन्द ! जितने भी आर्य-आयतन (=आर्योके निवास) है, जितने (भी) वणिक्-पथ (=व्यापार-मार्ग) है। (उनमे) यह पा ट लि-पु त्र पुट-भेदन (=मालकी गाँठ जहाँ तोळी जाय) अग्र (=प्रधान)-नगर होगा। पाटलि-पुत्रके तीन अन्तराय (=विघ्न) होग, आग, पानी, और आपसकी फूट।"

तब मगध-महामात्य सु नी थ और व र्ष का र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्के साथ समोदनकर एक ओर खळे हुए भगवान्से बोले—

"भिक्षु-सघके साथ आप गौतम हमारा आजका भात स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब० सुनीथ और वर्षकारने भगवान्की स्वीकृति जानकर, जहाँ उनका आवसथ (=डेरा) था, वहाँ गये। जाकर अपने आवसथमे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा (उन्होने) भगवान्को समयकी सूचना दी ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले भिक्षुसघके साथ जहाँ मगध-महामात्य सुनीथ, और वर्षकारका आवसथ था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बैठे। तब सुनीथ, वर्षकारने बुद्ध-सहित भिक्षुसघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पित-सप्रवारित किया। तब० सुनीथ वर्षकार, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, दूसरा नीचा आसन लेकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुये मगध-महामात्य सुनीथ, वर्षकारको भगवान्ने इन गाथाओसे (दान-) अनु-मोदन किया—

"जिस प्रदेश (में) पडित पुरुष, शीलवान्, सयमी।
ब्रह्मचारियोको भोजन कराकर वास करता है ॥ १ ॥
वहाँ जो देवता है, उन्हे दक्षिणा (दान=)-भाग देनी चाहिये।
यह देवता पूजित हो पूजा करती है। मानित हो मानती है ॥ २ ॥
तब (वह) औरस पुत्रकी भाँति उसपर अनुकम्पा करती हैं।
देवताओसे अनुकम्पित हो पुरुष सदा मगल देखता है ॥ ३ ॥"

तब भगवान्०सुनीथ और वर्षकारको इन गाथाओसे अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

उस समय०सुनीथ, वर्षकार भगवान्के पीछे पीछे चल रहे थे—'श्रमण गौतम आज जिस द्वारसे निकलेगा, वह गौ त म द्वा र होगा। जिस तीर्थ (=घाट)से गगानदी पार होगा, वह गौ त म ती र्थ होगा। तब भगवान् जिस द्वारसे निकले, वह गौतम द्वार हुआ।

भगवान् जहाँ गगा-नदी है, वहाँ गये। उस समय गगा करारो तक भरी, करारपर बैठे कौवेके पीने योग्य थी। कोई आदमी नाव खोजते थे, कोई० बेळा (=उलुम्प) खोजते थे, कोई० कूला (=कुल्ल) बाँधते थे। तब भगवान्, जैसे कि बलवान् पुरुप समेटी बाँहको (सहज ही) फैला दे, फैलाई बाँहको समेट ले, ऐसे ही भिक्षुसघके साथ गगानदीके इस पारसे अन्तर्धान हो, परले तीरपर जा खळे हुए। भगवान्ने उन मनुष्योको देखा, कोई कोई नाव खोज रहे थे०। तब भगवान्ने इस

अर्थको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"(पडित) छोटे जलाशयोको छोळ समुद्र और नदियोको सेतुसे तरते है।
(जवतक) लोग कूला वाँधते रहते है, (तवतक) मेधावी जन पार हो गये रहते है।"

८—कोटिग्राम

तव भगवान् जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। वहाँ भगवान् को टि ग्रा म मे विहार करते थे। भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ! चारो आर्य-सत्योके अनुवोध (=वोध)=प्रतिवोध न होनेसे इस प्रकार दीर्घ-कालसे यह दौळना=ससरण (=आवागमन) 'मेरा और तुम्हारा' होरहा है। कौनसे चारो? भिक्षुओ! दुख आर्य-सत्यके बोध=प्रतिवोध न होनेसे०दुख-समुदय०। दुख-निरोध०। दुख-निरोध-गामिनी प्रतिपद्०। भिक्षुओ! सो मैंने इस दुख आर्य-सत्यको अनुबोध=प्रतिवोध किया०, (तो) भव तृष्णा उच्छिन्न होगई, भवनेत्री (=तृष्णा) क्षीण होगई अव पुनर्जन्म नही है।

"चारो आर्य-सत्योको ठीकसे न देखनेसे दीर्घकालसे आवागमनमे पळा उन उन जातियोमे (जन्मता है)। सो मैंने उनको देख लिया, तृष्णा क्षीण होगई, दुखकी जळ कट गई अव पुन-र्जन्म नही है।"

अ म्व पा ली गणिकाने सुना—भगवान् कोटिग्राममे आ गये। अम्वपाली गणिका सुन्दर सुन्दर (=भद्र) यानोको जुळवाकर, सुन्दर यानपर चढ, सुन्दर यानोके साथ वै शा ली से निकली, और जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ चली। जितनी यानकी भूमि थी, उतनी यानसे जाकर, यानसे उतर पैदल ही जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गई। एक ओर वैठी अम्वपाली गणिकाको भगवान्ने धार्मिक-कथासे सदर्शित समुत्तेजित किया। तव अम्वपाली गणिका भगवान्से यह वोली—

"भन्ते! भिक्षु सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तव अम्वपाली गणिका, भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

वे शा ली के लि च्छ वि यो ने सुना—'भगवान् वैशालीमे आये है०'। तव वह लिच्छवी ० सुन्दर यानोपर आरूढ हो ० वैशालीसे निकले। उनमे कोई कोई लिच्छवि नीले=नील-वर्ण नील-वस्त्र नील-अलकारवाले थे। कोई कोई लिच्छवि पीले=पीतवर्ण ० थे। ० लोहित (=लाल) ०। ० अवदात (=सफेद) ०। अम्वपाली गणिकाने तरुण तरुण लिच्छवियोके धुरोसे धुरा, चक्कोसे चक्का, जूयेसे जूआ टकराया। उन लिच्छवियोने अम्वपाली गणिकासे कहा—

"जे! अम्वपाली! क्यो तरुण तरुण (=दहर) लिच्छवियोके धुरोसे धुरा टकराती है। ०"

"आर्यपुत्रो! क्योकि मैंने भिक्षुसघके साथ भगवान्को कलके भोजनके लिये निमन्त्रित किया है।"

"जे अम्वपाली! सौ हजारसे भी इस भात (=भोजन)को (हमारे लिये) दे दे।"

"आर्यपुत्रो! यदि वैशाली देश (=जनपद) भी दो, तो भी इस महान् भातको न दूँगी।"

तव उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे! हमें अ म्वि का ने जीत लिया, अरे! हमें अम्विकाने वचित कर दिया।"

तव वह लिच्छवी जहाँ कोटिग्राम था, वहाँ गये। भगवान्ने दूरसे ही लिच्छवियोको आते देखा। देखकर भिक्षुओको आमन्त्रित किया—

"अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियोकी परिषद्को । अवलोकन करो भिक्षुओ ! लिच्छवियो की परिपद्को । भिक्षुओ ! लिच्छवि परिपद्को त्रा य स्त्रिश (देव)-परिपद् समझो (=उप-सहरथ) ।"

तव वह लिच्छवी० रथसे उतरकर पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे लिच्छवियोको भगवान्ने धार्मिक-कथासे० समुत्तेजित० किया । तव वह लिच्छवी० भगवान्से बोले—

"भन्ते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् कलका हमारा भोजन स्वीकार करे ।"

"लिच्छवियो ! कलके लिये तो मैंने अम्बपाली गणिकाका भोजन स्वीकार कर लिया है ।"

तव उन लिच्छवियोने अँगुलियाँ फोळी—

"अरे ! हमे अम्बिकाने जीत लिया । अरे ! हमे अम्बिकाने वञ्चित कर लिया ।"

तव वह लिच्छवी भगवान्के भापणको अभिनन्दितकर अनुमोदितकर, आसनसे उटकर भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चले गये ।

अम्बपाली गणिकाने उस रातके वीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयारकर, भगवान्को समय सूचित किया । भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले भिक्षु-सघके साथ जहाँ अम्बपाली का परोसनेका स्थान था, वहाँ गये । जाकर प्रज्ञप्त (=विछे) आसनपर बैठे । तव अ म्ब पा ली गणिकाने बुद्ध-सहित भिक्षुसघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सर्तापित=सप्रवारित किया । तव अम्बपाली गणिका भगवान्के भोजनकर० लेनेपर, एक नीचा आसन लेकर एक ओर बैठी । एक ओर बैठी अम्बपाली गणिका भगवानसे बोली—

"भन्ते ! मैं इस आरामको बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको देती हूँ ।"

भगवान्ने आरामको स्वीकार किया । तव भगवान् अम्बपाली०को धार्मिक कथासे० समुत्तेजित०कर, आसनसे उठकर चले गये ।

९—वैशाली

तव भगवान् कोटिग्राममे इच्छानुसार विहारकर जहाँ वैशाली है, जहाँ म हा व न है वहाँ गये । वहाँ भगवान् वैशालीमे म हा व न की कूटागार शालामे विहार करते थे ।

लिच्छवी भाणवार (समाप्त) ॥ ३ ॥

(८) सिंह सेनापतिकी दीक्षा

उस समय वहुतसे प्रतिष्ठित लि च्छ वी, स स्था गा र (=प्रजातन्त्र-सभागृह)मे बैठे थे, एकत्रित हो, बुद्धका गुण वखानते थे, धर्मका०, सघका गुण वखानते थे । उस समय नि ग ठो (=जैनो)का श्रावक सि ह से ना प ति उस सभामे बैठा था । तव सिह सेनापतिके चित्तमे हुआ— 'निसशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध होगे, तव तो यह बहुतसे प्रतिष्ठित लिच्छवि०वखान रहे है । क्यो न मै उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्धके दर्शनके लिये चलूँ ।'

तव सिह सेनापति जहाँ नि ग ठ ना थ पुत्त थे, वहाँ गया । जाकर निगठनाथपुत्तसे बोला—

"भते ! मै श्रमण गौतमको देखनेके लिये जाना चाहता हूँ ।"

"सिह ! क्रि या वा दी होते हुये, तू क्या अ क्रिया (=अकर्म) वा दी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा । सिह ! श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है, श्रावकोको अक्रिया-वादका उपदेश करता है ।"

तव सिह सेनापतिको भगवान्के दर्शनके लिये जानेकी जो इच्छा थी, वह शात होगई ।

दूसरी वार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । तव सिह सेनापति जहाँ निगठ-नाथपुत्त थे, वहाँ गया० कहा० ।

"क्या तू सिंह ! क्रियावादी होकर, अक्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जायेगा० ।"

दूसरी बार भी सिंह सेनापतिकी० इच्छा० शांत होगई ।

तीसरी बार भी बहुतसे प्रतिष्ठित प्रतिष्ठित लिच्छवी० । 'पूछूँ या न पूछूँ, निगंठनाथपुत्त मेरा क्या करेगा ? क्यों न निगंठनाथपुत्तको बिना पूछे ही, मैं उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाऊँ ?'

तब सिंह सेनापति पाँच सौ रथोंके साथ, दिन-ही-दिन (=दो पहर)को भगवान्के दर्शनके लिये, वैशालीसे निकला । जितना यान (=रथ)का रास्ता था, उतना यानमें जाकर, यानसे उतर, पैदल ही आराममें प्रविष्ट हुआ । सिंह सेनापति जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया । एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिने भगवान्से यह कहा—

"भंते ! मैंने सुना है कि—श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है । अक्रियाके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीकी ओर शिष्योंको ले जाता है । भंते ! जो ऐसा कहता है—'श्रमण गौतम अक्रिया-वादी है० ।' क्या वह भगवान्के बारेमें ठीक कहता है ? झूठसे भगवानकी निन्दा तो नहीं करता ? धर्मानुसार ही धर्मको कहता है ? कोई सह-धार्मिक वादानुवाद तो निंदित नहीं होता ? भंते ! हम भगवान्की निंदा करना नहीं चाहते ।"

"सिंह ! ऐसा कारण है, जिस कारणसे ठीक ठीक कहते हुये मुझे कहा जा सकता है—श्रमण गौतम [1]अक्रिया-वादी है० ।"

"सिंह ! क्या कारण है, '०श्रमण गौतम अ क्रि या-वा दी है०' सिंह ! मैं कायदुश्चरित, वचन-दुश्चरित, मन-दुश्चरितको, तथा अनेक प्रकारके पाप बुराइयोंको अ-क्रिया कहता हूँ० ।०

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे०—'श्रमण गौतम क्रिया-वादी है, क्रियाके लिये धर्म उपदेश करता है, उसीसे श्रावकोंको ले जाता है० । सिंह ! मैं का य सु च रि त (=अ-हिंसा, चोरी न करना, अ-व्यभिचार), वा क्-सु च रि त (=सच बोलना, चुगली न करना, मीठा वचन, बकवाद न करना), म न सु च रि त (=अ-लोभ, अ-द्रोह, सम्यक्-दृष्टि) अनेक प्रकारके कु श ल (=उत्तम) धर्मोंको क्रिया कहता हूँ । सिंह ! यह कारण है, जिस कारणसे० मुझे 'श्रमण गौतम क्रियावादी' है०।०

"०[1] उ च्छे द वा दी० । ०जु गु प्सु० । ०वै न यि क० । ०त प स्वी० । अ प ग र्भ० ।

"सिंह ! क्या कारण है जिस कारणसे ठीक ठीक कहनेवाला मुझे कह सकता है—'श्रमण गौतम अ स्स स त (=आश्वसत) है, आश्वासके लिये धर्म-उपदेश करता है, उसीके द्वारा श्रावकोंको ले जाता है' । सिंह ! मैं परम आश्वाससे आश्वासित हूँ, आश्वासके लिये धर्म उपदेश करता हूँ, आश्वास (के मार्ग)से ही श्रावकोंको ले जाता हूँ । यह कारण० ।"

ऐसा कहनेपर सिंह सेनापतिने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भंते आश्चर्य ! भंते ! ० उपासक मुझे स्वीकार करें ।"

"सिंह ! सोच समझकर करो० । तुम्हारे जैसे सभ्रांत मनुष्योंका सोच समझकर (निश्चय) करना ही अच्छा है ।"

"भंते ! भगवान्के इस कथनसे मैं और भी संतुष्ट हुआ । भंते ! दूसरे तैर्थिक मुझ जैसा शिष्य पाकर, सारी वै शा ली में पताका उड़ाते—सिंह सेनापति हमारा शिष्य (=श्रा व क)हो गया । लेकिन भगवान् मुझे कहते हैं—सोच समझकर सिंह ! करो० । यह मैं भंते ! दूसरी बार भगवान्की

---

[1] अक्रियावादी, उच्छेदवादी, जुगुप्सु, तपस्वी, अप-गर्भकी व्याख्या वेरञ्जसुत्त (अ० नि०) में ।

शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी० ।"

"सिह ! तुम्हारा घर दीर्घकालसे नि ग ठो के लिये प्याउकी तरह रहा है, उनके जानेपर 'पिड न देना (चाहिये)' ऐसा मत समझना ।"

"भते ! इससे मै और भी प्रसन्न-मन, सतुष्ट, और अभिरत हुआ । ० । मैने सुना था भते ! कि श्रमण गौतम ऐसा कहता है—'मुझे ही दान देना चाहिये, दूसरोको दान न देना चाहिये०[1] । भते ! भगवान् तो मुझे निगठोको भी दान देनेको कहते है । हम भी भते ! इसे युक्त समझेगे । यह भते ! मै तीसरी वार भगवानकी शरण जाता हूँ । ० ।

तव भगवान्ने सिह सेनापति को आ नु पू र्वी क था कही, जैसे—दान-कथा, शील-कथा, स्वर्ग-कथा, कामभोगोके दोष, अपकार और क्लेश, और निष्कामताका माहात्म्य प्रकाशित किया। जब भगवान्ने सिह सेनापतिको अरोग-चित्त, मृदु-चित्त, अनाच्छादित-चित्त, उदग्र-चित्त, प्रसन्न-चित्त जाना । तव वह जो बुद्धोकी स्वय उठानेवाली धर्म-देशना है, उसे प्रकाशित किया—दु ख, समुदय, निरोध और मार्ग । जैसे कालिमा-रहित शुद्ध वस्त्र अच्छी प्रकार रग पकळता है । इसी प्रकार सिह सेनापतिको उसी आसनपर वि-मल, वि-रज, धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—

'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह सब निरोध-धर्म है'।

सिह सेनापति दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=परि-अवगाढ-धर्म, सदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, विशारदता-प्राप्त, शास्ताके शासनमे स्वतत्र हो और भगवान्से यह वोला—

"भते ! भिक्षु-सघके साथ भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे ।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया । तव सिह सेनापति भगवान्की स्वीकृतिको जान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया ।

तव सिह सेनापतिने एक आदमीसे कहा—

"हे आदमी ! जा तू तैयार मासको देख तो ।"

तव सिह सेनापतिने उस रातके वीतनेपर अपने घरमे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दी । भगवान् पूर्वाह्ण समय (चीवर) पहनकर पात्र-चीवर ले जहाँ सिह सेनापतिका घर था, वहाँ गये । जाकर भिक्षुसघके साथ विछे आसनपर वैठे । उस समय वहुतसे नि ग ठ (=जैनसाधु) वैशालीमे एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर, बाँह उठाकर चिल्लाते थे—'आज सिह सेनापतिने मोटे पशुको मार कर, श्रमण गौतमके लिये भोजन पकाया, श्रमण गौतम जान बूझकर (अपनेही) उद्देश्यसे किये, उस (मास) को खाता है । ।

तव कोई पुरुप जहाँ सिह सेनापति था, वहाँ गया । जाकर सिह सेनापतिके कानमे वोला—

"भते ! जानते है, बहुतसे निगठ वैशालीमे एक सळकसे दूसरी सळकपर० बाँह उठाकर चिल्ला रहे है—आज० ।"

"जाने दो आर्यो (=अय्या) ! चिरकालसे यह आयुष्मान् (=निगठ) बुद्ध० धर्म० सघकी निदा चाहने वाले है । यह आयुष्मान् भगवान्की असत्, तुच्छ, मिथ्या=अ-भूत निंदा करते नही शरमाते । हम तो (अपने) प्राणके लिये भी जान वूझकर प्राण न मारेगे ।"

तव सिह सेनापतिने वुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पित (कर), परिपूर्ण किया । भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ खीच लेनेपर, सिह सेनापति एक ओर

---

[1] देखो उपालि-सुत्त (मज्झिमनिकाय पृष्ठ २२२)।

बैठ गया। एक ओर बैठे हुये सिंह सेनापतिको भगवान्, धार्मिक कथासे सदर्शन करा ,आसनसे उठकर चल दिये।

(९) अपने लिये मारे मांसको जान बूझकर खाना निषिद्ध

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक-कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जान बूझकर (अपने) उद्देश्यसे बने मासको नही खाना चाहिये। जो खाये उसे दु क्क ट का दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ (अपने लिये मारे को) देखे, सुने, सदेह-युक्त—इन तीन बातोसे शुद्ध मछली और मास (के खाने) की।" 110

§५—संघाराममें चीज़ोंके रखनेके स्थान

(१) दुर्भिक्षके समयके विधान सुभिक्षमे निषिद्ध

उस समय वै शा ली सुभिक्ष थी। सुदर शस्योवाली थी। वहाँ भिक्षा पाना सुलभ था। [1]उछसे भी यापन करना सुकर था। तब भगवान्‌को एकातमे स्थितहो विचार-मग्न होते समय भगवान्‌के दिलमे यह ख्याल पैदा हुआ—जो मैंने दुर्भिक्ष=दु शस्यके समय (जबकि) भिक्षा मिलनी मुश्किल है भिक्षुओके लिये—भीतर रक्खे भीतर पकाये[2] और अपने हाथसे पकाये, लेन-देन, वहाँसे लाये, भोजनसे पहिलेका लिया, वनका, पुष्करिणीका—की अनुमति दी है भिक्षु आजभी क्या उनका सेवन करते है?' तब भगवान्‌ने सायकाल एकान्त-चिंतनसे उठ आयुष्मान् आ न द को सबोधन किया—

"आनद! जो मैंने भिक्षुओको दुर्भिक्षमे अनुमति दी—०, क्या आजभी भिक्षु उनका सेवन करते है?"

"(हाँ) सेवन करते है भन्ते!"

तब भगवान्‌ने इसी सबध मे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! जो मैंने दुर्भिक्ष ० मे अनुमति दी—भीतर रक्खे ० के सेवन करनेकी, उन्हे मैं आजसे निषिद्ध करता हूँ। भिक्षुओ! भीतर रक्खे ० को नही सेवन करना चाहिये। जो सेवन करे उसको दुक्कटका दोप हो। और भिक्षुओ! 'वहाँसे लाये', ० और पुष्करिणीके भोजनको कर लेनेपर ० नही भोजन करना चाहिये। जो भोजन करे उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 111

(२) चीजोके रखनेका स्थान (=कल्प्यभूमि) चुनना

उस समय देहातके लोग बहुतसा नमक, तेल, तडुल और खाद्य (-सामग्री)को गाळियोमे रख आरामसे बाहरके हातेमे शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे रहते थे कि जब बारी मिलेगी तो भोज देंगे। और (उस समय) महामेघ उठा हुआ था। तब वह लोग जहाँ आयुष्मान् आ न द थे। वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् आनदसे बोले—

"भन्ते आनन्द! हम बहुत सा नमक, तेल, तडुल और खाद्य (सामग्री)को गाळियोमे रख आरामसे बाहरके हातेमे शकटको उलटकर (यह सोचकर) ठहरे है कि जब बारी मिलेगी तो भोज देंगे। और (इस समय) महामेघ उठा हुआ है। भन्ते आनन्द! हमे कैसा करना चाहिये?"

तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] कण चुनचुनकर खाना। [2] देखो (६§३।९) पृष्ठ २२७।

"तो आनन्द ! सघ आखिर वाले विहारको कल्प्य भूमि[1] होनेका ठहराव करके वहाँ रखवावे। सघ जिस विहार या अड्ढयोग (=अटारी), प्रासाद या हर्म्य या गुहा को चाहे (उसे कल्प्यभूमि वनावे)।" 112

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाले विहारको कल्प्यभूमि होनेका ठहराव करे—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—"भन्ते ! सघ मेरी सुने, सघ इस नाम वाले विहारको कल्प्यभूमि होने का ठहराव करता है। जिस आयुष्मान्को इस नाम वाले विहारके कल्प्यभूमि होनेका ठहराव स्वीकार है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है वह बोले ०। सघको इस नाम वाले विहारका कल्प्यभूमि होना स्वीकार है।

ग धारणा—"सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।"

(३) कल्प्य-भूमिमे भोजन नही पकाना

उस समय उसी ठहरावकी हुई कल्प्यभूमिमे यवागू पकाते थे, भात पकाते थे, सूप तैयार करते थे, मास कूटते थे, काठ फाळते थे। रातके भिनसारको उठकर भगवान्ने (उस) ऊँचे शब्द, महाशब्द, कौवोके रवके शब्दोको सुना। सुनकर आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"आनन्द ! क्या है यह ऊँचा शब्द, महाशब्द ०?"

"भन्ते ! इस समय लोग उसी ठहराव की हुई कल्प्यभूमिमे यवागू पका रहे है। उसीका भगवान् यह ऊँचा शब्द ० है।"

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! ठहरावकी गई कल्प्यभूमिमे भोजन नही वनाना चाहिये। जो भोजन करे उसे दुक्कट का दोप हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीन कल्प्य-भूमियो की—खभोपर उठाई, गाय वैठनेकी, गृहस्थोकी।" 113

(४) चार प्रकारकी कल्प्य भूमियाँ

उस समय आयुष्मान् यशोज बीमार थे। उनके लिये दवाइयाँ लाई गई थी। उन्हे भिक्षु बाहर ही रखते थे ओर चूहे आदि भी उन्हे खा डालते थे, चोर भी चुरा ले जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ठहराव की हुई कल्प्यभूमिके उपयोगकी। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चार प्रकारकी कल्प्यभूमियोकी—खभोपर उठाई, गाय बैठनेकी, गृहस्थोकी और ठहराव-की गई।" 114

सिंह भाणवार समाप्त ॥४॥

§६–गोरस और फल-रसका विधान

(१) मेडक श्रेष्ठी और उसके परिवारकी दिव्यविभूतियाँ

१—उस समय भद्दिय (=भद्रिका) नगरमे मेडक (नामक) गृहपति (=वैश्य) रहता

---

[1] सामान रखनेका स्थान, भंडार।

था। उसका ऐसा दिव्यबल था—सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा (जब वह) द्वार पर बैठता था तो आकाशसे अनाजकी धारा गिरकर अनाजके घर (=धान्यागार)को भर देती थी। और (उसकी) भार्याका यह दिव्यबल था कि एक ही आ ढ क[1] भर (चावलकी) हाँळी पका और एक बर्तन भर सूप (=दाल) पका दास, काम करनेवाले (सभी) पुरुषोको भोजन परस देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह खतम नही होता था। (उसके) पुत्रका यह दिव्यबल था कि एक ही हजार (मुद्रा)की थैलीको लेकर दास और नौकर (सभी) पुरुषोके छ मासके वेतनको देता था और वह जब तक उसके हाथमे रहती खतम न होती थी। (उसकी) पतोहूका यह दिव्यबल था कि एक ही चार द्रो ण[1] भरके एक टोकरेको लेकर दास और नौकर(सभी)पुरुषोके छ मासके भोजनको दे देती थी और जब तक वह न उठती तब तक वह खतम न होता। (उसके) दासका इस प्रकारका दिव्यबल था कि एक हलसे जोतते वक्त सात हराइयाँ (सीताएँ) उत्पन्न होती थी।

(२) बिम्बिसार द्वारा परीक्षा

मगधराज सेनिय वि म्बि सा र ने सुना कि हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमे मे ड क गृहपति रहता है। उसका ऐसा दिव्यबल है ० सात हराइयाँ उत्पन्न होती है। तब मगधराज सेनिय बिम्बिसारने एक स र्वा र्थ क म हा मा त्य (प्राइवेट सेक्रेटरी)को संबोधित किया—

"भणे! हमारे राजके भ द्दि य नगरमे मेडक गृहपति रहता है ०। जाओ भणे! पता लगाओ तो तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है।"

"अच्छा देव!"—(कह) वह महामात्य मगधराज सेनिय बिम्बिसारको उत्तर दे चतुरंगिनी सेनाके साथ जिधर भद्दिया नगर है उधरको चला। क्रमश जहाँ भ द्दि या थी और जहाँ मेडक गृहपति था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मेडक गृहपतिसे यह बोला—

"गृहपति! मुझे राजाने आज्ञा दी है कि 'भणे! हमारे राज्यके भ द्दि य नगरमे मे ड क गृहपति रहता है ० तुम्हारा देखा मेरा अपने देखा जैसा है'। गृहपति तुम्हारे दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेडक गृहपति सिरसे नहाकर अनाजके घरको सम्मार्जित करवा द्वारपर बैठा तो आकाशसे अनाजकी धाराने गिरकर अनाजके घरको भर दिया।

"गृहपति! तेरे दिव्यबलको देख लिया। तेरी भार्याके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेडक गृहपतिने भार्याको आज्ञा दी—

"तो तू इस चतुरंगिनी सेनाको भोजन परोस।"

तब मे ड क गृहपतिकी भार्याने एकही आढक भर (चावलकी) हाँळी और एक बर्तन भर सूप (दाल) पका, चतुरंगिनी सेनाको भोजन परस दिया और जब तक वह न उठी तब तक वह खतम न हुआ।

"गृहपति तेरी भार्याके दिव्यबलको देख लिया, (अब) तेरे पुत्रके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

तब मेडक गृहपतिने पुत्रको आज्ञा दी—

"तो तू चतुरंगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे।"

तब मेडक गृहपतिके पुत्रने एक ही हजारके तोळेको लेकर चतुरंगिनी सेनाको छ मासका वेतन दे दिया और वह जब तक उसके हाथमे रहा खतम न हुआ।

---

[1] ४ कुडव=१ प्रस्थ, ४ प्रस्थ=१ आढक, ४ आढक=१ द्रोण, ४ द्रोण=१ माणी, ४ माणी=१ खारी (—अभिधानप्पदीपिका)।

"गृहपति ! तेरे पुत्रका बल देख लिया। (अब) तेरी पतोहूके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"
तब मेंडक गृहपतिने पतोहूको आज्ञा दी।—

"तो तू (इस) चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन (=रसद) दे।"

तब मेंडक गृहपतिकी पतोहूने एक ही चार द्रोणके टोकरेको लेकर चतुरंगिनी सेनाको छ मासका भोजन दे दिया और जब तक न उठी तब तक वह ख़तम न हुआ।

"गृहपति तेरी पतोहूका दिव्यबल देख लिया। अब तेरे दासके दिव्यबलको देखना चाहता हूँ।"

"स्वामिन् ! मेरे दासके दिव्यबलको खेतमें देखना चाहिये।"

"गृहपति रहने दे ! देख लिया तेरे दासके दिव्यबलको भी।"—(कह) चतुरंगिनी सेनाके साथ फिर राजगृहको लौट गया और जहाँ मगधराज सेनिय बिम्बिसार था वहाँ पहुँचा। पहुँचकर मगधराज सेनिय बिम्बिसारसे सारी बात कह दी।

१०—भद्दिया

(३) पाँच गो रसोंका विधान

तब भगवान् वैशालीमें इच्छानुसार विहारकर साढ़े बारहसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसंघके साथ, जिधर भद्दिया[1] थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमशः चारिका करते जहाँ भद्दिया थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भद्दिया (=भद्रिका)में जातिया(=जातिका)-वनमें विहार करते थे। मेंडक गृहपतिने सुना कि—'शाक्य-कुलसे प्रव्रजित शाक्य-पुत्र श्रमण गौतम भद्दियामें आए हैं, जातिया वनमें विहार करते हैं। उन भगवान् गौतमका ऐसा कल्याण (=मंगल) कीर्ति-शब्द फैला हुआ है—'वह भगवान् अर्हत्, सम्यक्-संबुद्ध, विद्या=आचरण-संयुक्त, सुगत, लोक-विद्, अनुत्तर (=सर्वश्रेष्ठ) पुरुषोंके दम्य-सारथी (=चाबुक-सवार), देव-मनुष्योंके उपदेशक (=शास्ता), बुद्ध भगवान् हैं। वह देव-मार-ब्रह्मा सहित इस लोकको, श्रमण ब्राह्मणों सहित, देव-मनुष्यों सहित-(इस) प्रजा (=जनता)को, स्वयं (परम-तत्त्वको) जानकर साक्षात्कार कर जतलाते हैं। वह आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, अवसान(अन्तमें)-कल्याण, अर्थ-सहित=व्यंजनसहित, धर्मको उपदेशते हैं, और केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यका प्रकाश करते हैं। इस प्रकारके अर्हतोंका दर्शन उत्तम होता है।'

तब मेंडक गृहपति भद्र (=उत्तम) भद्र यानोंको जुळवाकर, भद्र यानपर आरूढ हो, भद्र भद्र यानोंके साथ, भगवान्के दर्शनके लिये भद्रिका (=भद्दिया)से निकला। बहुतसे तीर्थिकों (=पथाइयों)ने दूरसे ही मेंडक-गृहपतिको आते हुए देखा। देखकर मेंडक-गृहपतिसे कहा—

"गृहपति ! तू कहाँ जाता है?"

"भन्ते ! मैं श्रमण गौतमके दर्शनके लिये जाता हूँ।"

"क्यों गृहपति ! तू क्रियावादी होकर अ-क्रियावादी श्रमण गौतमके दर्शनको जाता है? गृहपति ! श्रमण गौतम अ-क्रियावादी है, अ-क्रियाके लिये धर्म-शिष्योंको उपदेश करता है, उसी (रास्ते)से श्रावकों को भी ले जाता है।"

तब मेंडक गृहपतिको हुआ—

"निःसंशय वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध होंगे, जिसलिये कि यह तीर्थिक निंदा करते हैं।"

(और) जितना रास्ता यानका था, उतना यानसे जाकर (फिर) यानसे उतर, पैदल ही जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेंडक

---

[1] मुंगेर (बिहार)।

श्रेष्ठीको भगवान्‌ने आनुपूर्विककथा[1] कही ०।० मेडक गृहपतिको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ समुदय-धर्म है, वह निरोध-धर्म है।०। तब दृष्टधर्म० मेडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! जैसे कि भन्ते !०[2] मैं भगवान्‌की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे भगवान् मुझे साजलि शरणागत उपासक जाने। भन्ते ! भिक्षु-सघ-सहित भगवान् मेरा कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

मेडक गृहपति भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रद-क्षिणाकर चला गया।

तब मेडक गृहपतिने उस रातके बीतनेपर उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, जहाँ मेडक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये। जाकर भिक्षुसघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेडक गृहपतिकी भार्या, पुत्र, पुत्र-वधु (=सुणिसा) और दास जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। उनको भग-वान्‌ने आनुपूर्विक[1] कथा कही०। उनको उसी आसनपर विमल विरज धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ०। तब दृष्ट-धर्म० उन्होने भगवान्‌को कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते !! आश्चर्य ! भन्ते !! ० हम भन्ते ! भगवान्‌की शरण जाते है, धर्म और भिक्षु-सघकी भी। आजसे हमे भन्ते ! ० उपासक जाने !"

तब मेडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रसे हाथ हटा लेनेपर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेडक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"जब तक भन्ते ! भगवान् भद्दियामे विहार करते है, तब तक मैं बुद्ध-सहित भिक्षु-सघकी ध्रुव-भक्त (=सर्वदाके भोजन)से (सेवा करूँगा)।"

तब भगवान् मेडक गृहपतिको धार्मिक कथा (कह) आसनसे उठकर चल दिये।

तब भ द्दि या मे इच्छानुसार विहारकर, मेडक गृहपतिको बिना पूछेही, साढे बारह सौके महान् भिक्षु-सघके साथ, भगवान् जहाँ अ गु त्त रा प[3] था, वहाँ चारिकाके लिये चल दिये। मेडक गृहपतिने सुना, कि भगवान्० अगुत्तरापको चारिकाके लिये चले गये। तब मेडक गृहपतिने दासो और कमकरोको आज्ञा दी—

"तो भणे ! बहुतसा लोन, तेल, मधु, तडुल और खाद्य गाळियोपर लादकर आओ। साढे बारह सौ ग्वाले भी, साढे बारह सौ धेनु (=दूध देनेवाली) गायोको लेकर आवे। जहाँ हम भगवान्‌को देखेगे, वहाँ गर्मधारवाले दूधके साथ भोजन करायेगे।"

तब मेडक गृहपतिने रास्तेमे एक जगल (=कातार)मे भगवान्‌को पाया। जहाँ भगवान् थे वहाँ गया, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए, मेडक श्रेष्ठीने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते ! भिक्षु-सघ-सहित भगवान् कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्‌ने मौनसे स्वीकार किया।

---

[1] देखो पृष्ठ ८४। [2] देखो पृष्ठ ८५।

[3] मुगेर और भागलपुर जिलोका गगाके उत्तरवाला भाग।

तब मेडक श्रेष्ठी भगवान्‌की स्वीकृतिको जान, भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

मेडक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर, उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्‌को काल सूचित कराया०। तब भगवान् पूर्वाह्ण समय, पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ मेडक गृहपतिका परोसना था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघ-सहित बिछे आसनपर बैठे। तब मेडक गृहपतिने साढे बारह सो गोपालोको आज्ञा दी—

"तो भणे! एक एक गाय ले, एक एक भिक्षुके पास खळे हो जाओ, गर्मधारवाले दूधसे भोजन करायेगे।" तब मेडक गृहपतिने अपने हाथसे बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको उत्तम खाद्य-भोज्यसे सतर्पित किया, पूर्ण किया। गर्मधारके दूधसे आनाकानी करते, भिक्षु (उसे) ग्रहण न करते थे।

(तब भगवान्‌ने कहा)—"ग्रहण करो, परिभोग करो, भिक्षुओ!"

मेडक गृहपति बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको उत्तम खाद्य-भोज्य तथा धार-उष्ण दूधसे, अपने हाथ से सतर्पितकर पूर्णकर० एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मेडक गृहपतिने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! जल-रहित, खाद्य-रहित, कातार (=बीरान) मार्ग भी है, बिना पाथेयके (उनसे) जाना सुकर नही। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् पाथेयकी अनुज्ञा दे।"

तब भगवान् मेडक श्रेष्ठीको धर्म-उपदेश (कर) आसनसे उठकर चल दिये। भगवान्‌ने इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको आमत्रित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच गोरस—दूध, दही, तक्र (=छाछ), नवनीत(=मक्खन) और घी (=सर्पिप्) की।" 115

(४) पाथेयका विधान

"भिक्षुओ! (कोई कोई) जल-रहित, खाद्य-रहित, कातार-मार्ग है, (जिनसे) बिना पाथेयके जाना सुकर नही। अनुज्ञा देता हूँ, भिक्षुओ! तडुलार्थी (=तडुल चाहनेवाला) तडुलका, मूँग-चाहनेवाला मूँगका, उळद चाहनेवाला उडदका, लोन चाहनेवाला लोनका, गुळ चाहनेवाला गुळका, तेल चाहनेवाला तेलका, घी चाहनेवाला घीका पाथेय ढूँढे।" 116

(५) सोने चाँदीका निषेध

"भिक्षुओ! (कोई कोई) श्रद्धालु और प्रसन्न मनुष्य होते है। वह कप्पियकारक (=भिक्षुका गृहस्थ अनुचर)के हाथमे हिरण्य (=सोनेका सिक्का) देते है—'इससे आर्यको जो विहित है, वह ले देना।'

"भिक्षुओ! उससे जो विहित हो, उसे उपभोग करनेकी अनुज्ञा देता हूँ। किन्तु, भिक्षुओ! जातरूप (=सोना)—रजत (=चाँदी)का उपभोग करना या सग्रह करना, मै किसी भी हालतमें नही कहता।" 117

१२—आपण

क्रमश चारिका करते हुए भगवान् जहाँ आपण था, वहाँ पहुँचे।

(६) आठ पानों और सभी फल-रसोंकी विकालमे भी अनुमति

केणिय जटिलने सुना—शाक्यकुलसे प्रव्रजित, शाक्यपुत्र श्रमण गौतम आपणमे आये है। उन भगवान् गौतमका ऐसा मगलकीर्ति शब्द फैला हुआ है—[1]० इस प्रकारके अर्हतोका दर्शन उत्तम है।

---

[1] देखो पृष्ठ ९७।

तव के णि य जटिलको हुआ—मै श्रमण गौतमके लिए क्या लिवा चलूँ। फिर केणिय जटिलको हुआ—'जो कि वह ब्राह्मणोके पूर्वके ऋषि, मन्त्रोको रचनेवाले (=कर्त्ता), मन्त्रोका प्रवचन (=वाचन) करनेवाले थे,—जिनके पुराने मन्त्र-पदको, गीतको, कथितको, समीहितको, आजकल ब्राह्मण अनुगान करते है, अनु-भाषण करते है, भापितको ही अनु-भाषण करते है, बाँचेको ही अनु-वाचन करते है,—जैसेकि—अट्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, यमदग्नि, अगिरा, भारद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप, भृगु। (वह) रातको (भोजनसे) उपरत थे, विकाल—(मध्याह्नोत्तर) भोजनसे विरत थे। वह इस प्रकारके पान (पीनेकी चीज) पीते थे । श्रमण गौतम भी रातको उपरत=विकाल-भोजनसे विरत है। श्रमण गौतम भी इस प्रकारके पान पी सकते है।' (यह सोच) वहुतसा पान तैयार करा, वँहगी (=काज)से उठवाकर, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्के साथ समोदन किया (और) एक ओर खळा हो गया। एक ओर खळे हुए केणिय जटिलने भगवान्से कहा—

"भगवान् (=आप) ! गौतम यह मेरा पान ग्रहण करे।"

"केणिय ! तो भिक्षुओको दो।"

भिक्षु आगा-पीछा करते ग्रहण नही करते थे।

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो और खाओ।"

तव केणिय जटिल वुद्ध-सहित सघको अपने हाथसे बहुतसे पान द्वारा सतर्पित=सप्रवारित कर भगवान्के हाथ घो पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर वैठ गया । एक ओर बैठे केणिय जटिलको भगवान् ने धार्मिक कथा द्वारा सदर्शित=समादपित=समुत्तेजित=सप्रहर्षित किया।

भगवान्के धर्मोपदेश द्वारा० सप्रहर्षित (=हर्षित) हो केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—

"आप गौतम ! भिक्षुसघ सहित कलका भोजन स्वीकार करे।" ऐसा कहनेपर भगवान्ने केणिय जटिलसे यह कहा—"केणिय ! भिक्षुसघ बळा है। साढे बारह सौ भिक्षु है, और तुम ब्राह्मणोमे प्रसन्न (=श्रद्धालु) हो।" दूसरी बार भी केणिय जटिलने भगवान्से यह कहा—"क्या हुआ, भो गौतम ! जो भिक्षुसघ बळा है, साढे वारह सौ भिक्षु है, और मै ब्राह्मणोमे प्रसन्न हूँ ? आप गौतम भिक्षुसघ सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने०। तीसरी बार भी०।०।

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब केणिय जटिल भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ कर चला गया।

तव भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे, धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, आठ पानो (=पेय वस्तुओ)की—आम्रपान, जम्बूपान, चोच-पान, मोच(=केला)-पान, मधु-पान, अगूरका पान, सालूक (=कोईंकी जळ)-पान, और फारुसक (=फाल्सा)-पान। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, अनाजके फलके रसको छोळ, सभी फलोके रसकी,० एक ढाकके रसको छोळ सभी पत्तोके रसकी,० एक महुएके फूलके रसको छोळ, सभी फूलोके रसकी। अनुज्ञा देता हूँ, ऊखके रसकी।" 118

तव केणिय जटिलने उस रातके वीतनेपर अपने आश्रममे उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई—"भो गौतम ! (भोजनका) काल है, भोजन तय्यार है।"

तव भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले जहाँ केणिय जटिलका आश्रम था, वहाँ गये। जाकर भिक्षु-सघके साथ विछे आसनपर वैठे। तव केणिय जटिलने वुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथसे उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित =सप्रवारित किया। भगवान्के खाकर हाथ उठा लेनेपर

एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे केणिय जटिलके दानका भगवान्‌ने इन गाथाओद्वारा (भोजन-दानका) अनुमोदन किया—

"यज्ञोमे मुख है अग्निहोत्र, छन्दोमे मुख (=मुख्य) है सा वि त्री। मनुष्योमे मुख है राजा, नदियोमे मुख है सागर॥
नक्षत्रोमे मुख है तारा, तपन करनेवालोमे मुख है सूर्य।
पुण्य चाहनेवाले यज्ञकर्त्ताओके लिये सघ मुख है॥"

तब भगवान् केणिय जटिलके दानका इन गाथाओ द्वारा अनुमोदनकर, आसनसे उठकर चले गये।

१२—कुसीनारा

(७) रोजमल्लका सत्कार

तब आ प ण मे इच्छानुसार विहारकर भगवान् साढे बारह सौ भिक्षुओके भिक्षु-सघ-सहित जहाँ कु सी ना रा[1] थी। उधर चारिकाके लिये चल दिये। कुसीनाराके मल्लोने सुना—साढे बारह सौ भिक्षुओके महासघके साथ भगवान् कुसीनारा आ रहे है। उन्होने नियम किया—'जो भगवान्‌की अगवानीको नही जाये, उसको पाँच सौ दड।' उस समय रो ज नामक मल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। भगवान् क्रमश. चारिका करते जहाँ कुसीनारा थी, वहाँ पहुँचे। कुसीनाराके मल्लोने भगवान्‌की अगवानी की। रोजमल्ल भी भगवान्‌की अगवानीकर, जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळा हो गया,। एक ओर खळे हुए रोजमल्लसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस रोज! यह तेरा (कृत्य) बहुत सुन्दर (=उदार) है, जो तूने भगवान्‌की अगवानी की।"

"भन्ते! आनन्द! मैने बुद्ध, धर्म, सघका सन्मान नही किया, बल्कि भन्ते! आनन्द! ज्ञातिके दण्डके भयसे ही मैने भगवान्‌की अगवानी की।"

तब आयुष्मान् आनन्द अ-सन्तुष्ट हुए—"कैसे रोजमल्ल ऐसा कहता है?"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए, आयुष्मान् आनन्दने भगवान्‌से कहा—

"भन्ते! रोजमल्ल विभव-सम्पन्न अभिज्ञात=प्रसिद्ध मनुष्य है। इस प्रकारके ज्ञात मनुष्यो की इस धर्ममे श्रद्धा होनी अच्छी है। अच्छा हो, भन्ते! भगवान् वैसा करे, जिसमे रोजमल्ल इस (बुद्ध) धर्ममे प्रसन्न होवे।" तब भगवान् रोजमल्लके प्रति मित्रता-पूर्ण (=मैत्र) चित्त उत्पन्न कर, आसनसे उठ विहारमे प्रविष्ट हुए। रोजमल्ल भगवान्‌के मैत्र-चित्तके स्पर्शसे, छोटे बछळेवाली गायकी भाँति, एक विहारसे दूसरे विहार, एक परिवेणसे दूसरे परिवेणमे जाकर भिक्षुओमे पूछता था—

"भन्ते! इस वक्त वह भगवान् अर्हत् सम्यक्-सबुद्ध कहाँ विहार कर रहे है, हम उन भगवान् अर्हत् सम्यक् सम्बुद्धका दर्शन करना चाहते है?"

"आवुस, रोज! यह बन्द दर्वाजेवाला विहार है। नि शब्द हो धीरे धीरे वहाँ जाकर आलिन्द (=ड्योढी)मे प्रवेशकर खाँसकर जजीरको खटखटाओ, भगवान् तुम्हारे लिये द्वार खोल देगे।"

---

[1] कसया (जि० गोरखपुर)।

तब रो ज म ल्ल ने जहाँ वह वन्द-द्वार विहार था, वहाँ नि शब्द हो धीरे धीरे जाकर, आलिन्द-में घुसकर, खाँसकर जजीर खटखटाई। भगवान्‌ने द्वार खोल दिया। तब रोजमल्ल विहारमे प्रवेशकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये रोजमल्लको भगवान्‌ने आनुपूर्वी कथा०[1]—० रोजमल्लको उसी आसनपर विरज विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—'जो कुछ उत्पन्न होनेवाला है, वह सब विनाश होनेवाला है।' तब रोज मल्लने दृष्टधर्म हो० भगवान् से कहा—

" अच्छा हो, भन्ते ! अय्या (=आर्य-भिक्षु लोग) मेरा ही चीवर, पिंड-पात (=भिक्षा), शयनासन (=आसन), ग्लान-प्रत्यय-भेपज्य-परिष्कार (=दवा-पथ्य) ग्रहण करे, औरोका नही।"

"रोज तेरी तरह जिन्होने अपूर्णज्ञान और अपूर्ण-दर्शनसे धर्मको देखा है, उनको ऐसा ही होता है—'क्या ही अच्छा हो, अय्या मेरा ही० ग्रहण करे, औरोका नही। तो रोज ! तेरा भी ग्रहण करेगे, और दूसरोका भी।"

उस समय कु सी ना रा मे उत्तम भोजोका ताँता लग गया था। तब बारी न मिलनेसे रोज मल्लको यह हुआ—'क्यो न मं परोसनेको देखूँ, जो वहाँ न हो उसे तैयार कराऊँ।' तब परोसनेको देखते समय रोजमल्लने दो चीजोको नही देखा—डाक (=शाक) और खाद्य पीणको। तब रोजमल्ल जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् आनदसे यह बोला—

"भन्ते ! बारी न मिलनेसे मुझे यह हुआ—०। तब परोसनेको देखते समय मैंने दो चीजोको नही देखा—०। यदि, भन्ते ! आनन्द ! मै डाक और खाद्य पीणको तैयार कराऊँ, तो क्या भगवान् उसे स्वीकार करेंगे ?"

"तो रोज ! भगवान्‌से यह पूछूँगा।"

तब आयुष्मान् आनदने भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो आनन्द ! (रोज) तैयार करावे।"

"तो रोज ! तैयार कराओ।"

तब रोजमल्ल उस रातके बीत जानेपर, बहुत परिमाणमे डाक और खाद्य पीण तैयार करा, भगवान्‌के पास ले गया।—

"भन्ते ! भगवान् डाक और खाद्य पीणको स्वीकार करे।"

"तो रोज ! भिक्षुओको दे।"

भिक्षु लेनेमे हिचकिचा रहे थे, और न लेते थे।

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, और खाओ।"

तब रोजमल्ल बुद्ध (-सहित) भिक्षु-सघको अपने हाथसे बहुतसे डाक और खाद्य पीण द्वारा सत-र्पित=सप्रवारितकर, भगवान्‌के हाथ धो (पात्रसे) हाथ खीच लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे रोजमल्लको भगवान् धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सप्रहर्षितकर आसनसे उठ चल दिये।

(८) डाक और पीणकी अनुमति

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सभी डाको और सभी खाद्य पीण (के खाने)की।" 119

(९) भूत पूर्व हजाम भिक्षुको हजामतका सामान लेना निषिद्ध

तब भगवान् कु सी ना रा मे इच्छानुसार विहारकर०, जहाँ आ तु मा थी, वहाँ चारिकाके लिये

---

[1] देखो पृष्ठ ८४।

चल दिये। उस समय आतुमामे बुढापेमे प्रव्रजित हुआ, भूत-पूर्व हजाम (=नहापित) एक भिक्षु निवास करता था। उसके दो पुत्र थे, (जो) अपनी पडिताई और कर्ममे सुन्दर, प्रतिभाशाली, दक्ष, शिल्पमे परिशुद्ध थे। उस वृद्ध-प्रव्रजित (=बुढापेमे प्रव्रजित)ने सुना कि, भगवान्० आतुमा आ रहे है। तब उस वृद्ध-प्रव्रजितने दोनो पुत्रोसे कहा—

"तातो! भगवान्० आतुमामे आ रहे है। तातो! हजामतका सामान लेकर नाली, झोलीके साथ घर घरमे फेरा लगाओ, (और) लोन, तेल, तडुल और खाद्य (पदार्थ) सग्रह करो। आनेपर भगवान्को यवागू (=खिचळी) दान देगे।"

"अच्छा तात!" वृद्ध-प्रव्रजितको कह, पुत्र हजामतका सामान ले० लोन, तेल, तडुल, खाद्य सग्रह करते घूमने लगे। उन लळकोको सुन्दर, प्रतिभा-सपन्न देखकर, जिनको (क्षौर) न कराना था, वह भी कराते थे, और अधिक देते थे। तब उन लळकोने बहुत सा लोन भी, तेल भी, तडुल भी, खाद्य भी सग्रह किया। भगवान् क्रमश चारिका करते, जहाँ आतुमा थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ आ तु मा में भगवान् भु सा गा र मे विहार करते थे। तब वह वृद्ध-प्रव्रजित उस रातके बीत जानेपर, बहुत सा यवागू तैयार करा, भगवान्के पास ले गया—"भन्ते! भगवान् मेरी खिचळी स्वीकार करे"। । भगवान्ने उस वृद्ध-प्रव्रजितसे पूछा—"कहाँसे भिक्षु! यह खिचळी है?"

उस वृद्ध प्रव्रजितने भगवान्से (सब) बात कह दी। भगवान्ने धिक्कारा।

"मोघ-पुरुप (=नालायक)! (यह तेरा कहना) अनुचित=अन्-अनुलोम=अ-प्रतिरूप, श्रमण-कर्तव्यके विरुद्ध, अविहित अ-कप्पिय (=अ-करणीय) है। कैसे तू मोघ-पुरुप! अविहित (चीज)के (जमा करनेके लिये) कहेगा? "

भिक्षुओको आमत्रित किया—

"भिक्षुओ! भिक्षुको निपिद्ध (=अ-कप्पिय)के लिये आज्ञा (=समादपन) नही देनी चाहिये। जो आज्ञा दे, उसको 'दुष्कृत (=दुक्कट्ट)की आपत्ति। और भिक्षुओ! भूत-पूर्व हजामको हजामतका सामान न ग्रहण करना चाहिये। जो ग्रहण करे, उसे दुक्कट्टकी आपत्ति।" 120

१४—श्रावस्ती

तब भगवान् आ तु मा मे इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रावस्ती थी, उधर चारिकाके लिये चल दिये। क्रमश चारिका करते, जहाँ श्रा व स्ती थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमे भगवान् अनाथपिडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय श्रावस्तीमे बहुत सा खाद्य फल था। भिक्षुओने. भगवान्से यह बात कही। "अनुमति देता हूँ, सब खाद्य फलोके लिये।" 121

(१०) सांघिक खेत बीज आदिमे नियम

उस समय सघके बीजको व्यक्तिके (=पौद्गलिक) खेतमे रोपते थे, पौद्गलिक बीजको सघके खेतमे रोपते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"सघके बीजको यदि पौद्गलिक खेतमे बोया जाय, तो (दसवाँ) भाग[1] देकर भोग करना चाहिये। पौद्गलिक बीजको यदि सघके खेतमे बोया जाये, तो भाग देकर परिभोग करना चाहिये।" 122

(११) विधान या निषेध न कियेके बारेमे निश्चय

"जो मैने भिक्षुओ! 'यह नही विहित है' (कहकर) निपिद्ध नही किया, यदि वह

---

[1] "दसवॉ भाग देना यह जम्बूद्वीप (=भारत)में पुराना रवाज (=पोराण-चारित्त) है। इसलिये दस भागमें एक भाग भूमिके मालिकोको देना चाहिये।" (—अट्ठकथा)

निषिद्ध (=अ-कप्पिय=हराम)के अनुलोम हो, और विहित (=कप्पिय=हलाल)का विरोधी, (तो) वह तुम्हे हलाल नही है। भिक्षुओ ! जिसे मैने 'यह विहित नही है' (कह कर) निषिद्ध नही किया यदि वह विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, (तो) वह तुम्हे विहित है। भिक्षुओ ! जिसे मैने 'यह कप्पिय है' (कहकर) अनुज्ञा नही दी, वह यदि अविहितका अ-विरोधी है, और विहितका विरोधी, तो वह तुम्हे विहित नही है। भिक्षुओ ! जिसे मैने 'यह विहित है' (कहकर) अनुज्ञा नही दी, वह यदि विहितके अनुलोम है, और अविहितका विरोधी, तो वह तुम्हे विहित है।" 123

(१२) किस कालका लिया भोजन किस काल तक विहित

तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या उतने कालवालेसे याम भर कालवाला विहित है, या नही ? उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला विहित है, या नही ? उतने कालवालेसे जीवन भर वाला विहित है या नही ? याम (=पहर) भर कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला० ? यामभर कालवालेसे जीवन भर वाला० ? सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला० ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उतने कालवालेसे, उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमे विहित है, अपराह्णमे नही। भिक्षुओ ! उतने कालवालेसे सप्ताह भर कालवाला उसी दिन ग्रहण किया पूर्वाह्णमे विहित है, अपराह्ण-मे नही। भिक्षुओ ! उतने कालवाले (=यावत्कालिक)से जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होने पर पहर भर विहित है, पहर बीत जानेपर नही। भिक्षुओ ! सप्ताह भर कालवालेसे जीवन भर वाला उसी दिन ग्रहण किया होनेपर सप्ताह भर विहित है, सप्ताह बीत जानेपर नही विहित है।" 124

भेसज्जक्खन्धक समाप्त ॥६॥

७–कठिन स्कंधक

१––कठिन चीवरके नियम । २––कठिन चीवरका उद्धार । ३––कठिन चीवरके अ-विघ्न ।

§१–कठिन चीवरके नियम

१––श्रावस्ती

(१) कठिन चीवरका विधान

१––उस समय भगवान् बुद्ध श्रा व स्ती मे अनाथपिडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय पा ठे य्य क (पाठा[1]के रहनेवाले) तीस भिक्षु जो सभी अरण्यवासी, भिक्षान्नभोजी, फेंके चीथळोके पहननेवाले, तीनही चीवर धारण करनेवाले थे, भगवान्के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाते वक्त व र्षो प ना यि का (=असाढ-पूर्णिमा)के नजदीक होनेमे वर्षोपनायिकाको श्रावस्ती न पहुँच सके, और उन्होने मार्गमे सा के त (=अयोध्या) मे वर्षावास किया, और (श्रावस्ती जाने)की उत्कठाके साथ वर्षावास किया––भगवान् यहाँसे पासहीमे छ योजनपर विहार करते हैं और हमे भगवान्का दर्शन नही होरहा है ।' तव वह भिक्षु तीनमास बाद वर्षावास समाप्तकर प्र वा र णा के होचुकनेपर वर्षा बरसते पानीके जमाव और पानीके कीचळ होते समय ही भीगे चीवरोसे जहाँ श्रावस्तीमे अ ना थ-पि डि क का आराम जेतवन था और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे । पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे ।

बुद्ध भगवानोका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओके साथ कुशल समाचार पूछे । तव भगवान्ने भिक्षुओसे यह कहा––

"भिक्षुओ ! अच्छा तो रहा ? यापन करने योग्य तो रहा ? एक मत हो प्रेमके साथ विवाद-रहितहो अच्छी तरह वर्षावास तो किया ? भोजनका कष्ट तो नही हुआ ?"

"भन्ते ! हम पा ठे य्य क (पाठाके रहने वाले) तीस भिक्षु० भीगे चीवरोसे रास्ता आये।"

तव भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया––

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ वर्षावास कर चुके भिक्षुओको क ठि न[2] पहिनने की ।" 1

(२) कठिनवाले भिक्षुके लिये विधान

"कठिनके पहिन चुकनेपर भिक्षुओ ! तुम्हे पाँच बाते विहित होगी––(१) विना आमत्रणके

---

[1] कोसल देशके पश्चिम ओर एक राष्ट्र था (––अट्ठकथा) ।

[2] वर्षावासकी समाप्तिपर सारे सघकी सम्मतिसे सम्मान प्रदर्शनके लिये किसी भिक्षुको जो चीवर दिया जाता है, उसे "कठिन" चीवर कहते हैं।

विचरना, (२) बिना (तीनो चीवरोको) लिये विचरण करना, (३) गणके साथ भोजन (करना), (४) इच्छानुसार चीवर (लेना), (५) और जो वहाँ चीवर मिलते वक्त होगा वह उसका होगा। कठिनके लिये एकत्रित होजानेपर भिक्षुओ ! यह पाँच बाते तुम्हे विहित होगी। 2

और भिक्षुओ ! कठिनके लिये इस तरह सम्मत्रण (=ठहराव) करना चाहिये, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने। यह सघके लिये क ठि न (बनाने)का कपळा प्राप्त हुआ है। यदि सघ उचित समझे तो इस कठिनके कपळेको इस नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये दे'—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—'(१)भन्ते ! सघ मेरी सुने। सघको यह क ठि न का कपळा मिला है। सघ इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेके लिये दे रहा है। जिस आयुष्मान्‌को सघका इस क ठि न के कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहिननेके लिये देना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह बोले। (२) दूसरी बार भी०। (३) तीसरी बार भी०।

ग धारणा 'सघने इस कठिनके कपळेको अमुक नामवाले भिक्षुको पहननेको दे दिया। सघको पसद है इसलिये चप है'—ऐसा मै इसे समझताहूँ।

(३) कठिनका प्रसारण और न प्रसारण

"भिक्षुओ ! इस प्रकार क ठि न का प्रसारण होता है। कैसे भिक्षुओ ! क ठि न का प्रसारण नही होता ? उपछने मात्रसे नही क ठि न का आच्छादन होता। धोने मात्रसे नही०, चीवरके फैलाने मात्र से नही०, छेदन मात्रसे नही०, बधन मात्रसे नही०, लपेटने मात्रसे नही० क डू स (=कुदी) करने मात्रसे नही०, हवाके रुखकी ओर करने मात्रसे नही०, परिभड (=आळ) करने मात्रसे नही०, चौपेता करने मात्रसे नही०, कम्बलके मर्दन मात्रसे नही०, चिन्ह कर चुकनेसे ही नही०, (उसके सबधकी)कथा करनेसे ही नही०, कुक्कू (=कुछ समयका) किये होनेपर ही नही०, जमा किये होनेपर नही०, छोळने लायक होनेपर नही, अ क ल्प्य (=अ-विहित) कियेपर नही०, सघाटीसे अलग होनेपर नही०, न उत्तरासगसे अलग होनेपर०, न अन्तरवासकसे अलग होनेपर०, न पाँच या पाँच के अधिकसे अलग होनेपर, उसी दिन कटा होनेसे तथा मडलिकायुक्त होनेसे०, न व्यक्तिका पहना होनेसे अलग०, ठीक तरहसे क ठि न पहना गया हो और यदि उसे सीमासे बाहर स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिनका आच्छादन नही होता। भिक्षुओ ! इस प्रकार कठिनका अ-प्रसारण होता है।

"भिक्षुओ ! किस प्रकार कठिनका प्रसारण होता है ? बिना पहने क ठि न का प्रसारण होता है। बिना पहने वस्त्रमे०, वस्त्रमे०, रास्तेके चीथळेमे०, दुकानपर पळे पुराने कपळेमे०, न लाछन कियेमे०, जिसके बारेमे बात न चलाई गई हो वैसेमे०, न कुक्कू (=कुछ समयका) कियेमे०, न एकत्रित कियेमे०, न छोळे हुएमे०, न क ल्प्य (=विहित) कियेमे०, सघाटीसे क ठि न आच्छादित होता है, उत्तरासगसे०, अन्तरवासकसे०, पाँचो या पाँचके अतिरिक्तसे उसी दिन कटे तथा मडलिका युक्त कियेसे क ठि न आच्छादित होता है, व्यक्तिके आच्छादित करनेसे क ठि न आच्छादित होता है, कठिन अच्छी तरहसे आच्छादित हो ओर उसे सीमामे स्थित हो अनुमोदन करे तो इस प्रकार भी कठिन आच्छादित होता है। भिक्षुओ ! इस प्रकार कठिन प्रसारित (=आस्थत) होता है।"

§२–कठिन चीवरका उद्धार (=उत्पत्ति)

(१) कठिनकी उत्पत्ति

"भिक्षुओ ! कैसे कठिन उत्पन्न होता है ? भिक्षुओ ! क ठि न की उत्पत्तिमें यह आठ मातृका (=उत्पादिका) है, प्र क्र म णा न्ति का, निष्ठानान्तिका, सन्निष्ठानान्तिका, नाशनान्तिका, सवनान्तिका, आसावच्छेदिका, सीमातिक्कन्तिका, उत्पत्तिके साथ।"

(२) सात आदाय

(१) भिक्षुओ ! कठिनके आस्थत (=प्रसारित) हो जानेपर बने चीवरको ले चल देता है फिर नही लौटता। ऐसे भिक्षुको प्र क्र म णा न्ति क (=चला जाना अन्त है जिसका) नामक क ठि न का उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरले चला जाता है किन्तु सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है 'यही इस चीवरको वनाऊँ फिर न लौटूँगा।' और वह उस चीवरको बनवाता है। ऐसे भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क (=बनवा चुकना अन्त है जिसका) नामक कठिन-उद्धार होता है।' (३) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको ले चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँगा न फिर लौटूँगा।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना-न्ति क (=जिसका समाप्त करना बाकी है, यह अन्त है जिसका) कठिन–उद्धार होता है। (४)० चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है और बनवाते वक्त उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुका नाशनान्तिक (=नाश हो जाना ही अन्त है जिसका) कठिन-उद्धार होता है। (५)० चीवरको लेकर चल देता है (यह सोचकर कि) लौटूँगा। सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर वह सुनता है कि उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ। उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क (=सुनना है अन्त जिसका) कठिन उद्धार होता है। (६) ० चीवरको लेकर —'फिर लौटूँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर जाकर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा' 'फिर आऊँगा'—(सोचते) बाहर ही कठिनके उद्धारके समयको बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्क न्ति क (=सीमा अतिक्रमण कर दिया गया है जिसमे) कठिन-उद्धार होता है० (७) चीवरको लेकर—'फिर आऊँगा' (सोच) चल देता है और सीमाके बाहर उस चीवरको बनवाता है। वह—चीवर बन जानेपर 'फिर आऊँगा फिर आऊँगा' '(सोचते) कठिन उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओके साथ कठिन उद्धार होता है।"

आदाय सप्तक समाप्त

(३) सात समादाय सप्तक

(१) भिक्षु ! कठिनके आस्थत हो जानेपर बने चीवरको ठीकसे ले चल देता है०[1]।

समादाय सप्तक समाप्त

(४) छ आदाय

"(१) भिक्षु ! कठिनके आस्थत हो जानेपर न बने चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' और वह उस चीवरको

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी सातो पाठ है, सिर्फ ऊपरके 'ले चल देता है' की जगह 'ठीकसे लेकर चल देता है' कहना चाहिये।

बनवाये उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क नामक कठिन-उद्धार होता है।०[1]

आदाय षट्क समाप्त

(५) छ समादाय

(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर न बने चीवरहीको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही चीवर बनवाऊँ और फिर न लौटूँ' और वह उस चीवरको बनवाये। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक नामक कठिन-उद्धार होता है।०[2]।

समादाय षट्क समाप्त

(६) आदाय कठिन-उद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय) चला जाता है और सीमासे बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यही बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ, न फिर आऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।० चीवर को लेकर चल देता है और सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न आऊँ' और वह उस चीवरको बनवाये। बनवाते वक्त ही उसका वह चीवर नष्ट हो जाय। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

२—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय)—फिर नही आऊँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ।' और वह उस चीवरको बनवाता है, उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—'फिर न आऊँगा'—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर इसको ऐसा होता है—'इस चीवरको यही बनवाऊँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन उद्धार होता है।० चीवरको लेकर—फिर न लौटूँगा—(सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ'—और वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय ही वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है।

३—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको लेकर (=आदाय), विना अधिष्ठान किये चल देता है उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता हे—०उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिन-उद्धार होता है।० और न यही होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० स न्नि ष्ठा ना-न्ति क कठिन- उद्धार होता है।०और न यही होता है कि फिर आऊँगा,० और न यही होता है कि फिर न आऊँगा० नाशनान्तिक कठिन-उद्धार होता है।

४—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है सीमासे बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न आऊँ', उस चीवरको बनवाता है, उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क

---

[1] ऊपर आदाय सप्तकमे प्रक्रमणान्तिकको छोळ तथा 'बने चीवर'के स्थानपर 'न बने चीवर'के पाठके साथ दुहराना चाहिये।

[2] आदाय षट्ककी तरह यहाँ भी पाठ है सिर्फ 'आदाय'की जगह 'समादाय' पाठ रखना चाहिये।

कठिन उद्धार होता है ।०ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है। सीमाके बाहर जानेपर वह चीवरको बनवाता है। चीवरके बन जानेपर वह सुनता है—'उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है,' उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चला जाता है और सीमाके बाहर जा चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) बाहर ही कठिन-उद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्क न्ति क कठिन-उद्धार होता है। भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर—'फिर आऊँगा' (सोच) चीवरको लेकर चल देता है, और सीमाके बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँ लौटूँ' (कह) कठिन-उद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुको (दूसरे) भिक्षुओके साथ कठिन-उद्धार होता है।"

(७) समादाय कठिन-उद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[1]।

२—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[2]।

३—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[3]।

४—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरको ठीकसे लेकर (=समादाय) चला जाता है०[4]।

आदाय भाणवार समाप्त

(८) अनाशापूर्वक कठिनोद्धार

१—"भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है और आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवर की आशासे चल देता है और सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, और आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (३)० और आशा होनेपर नही पाता।० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ।' वह उसी चीवरकी आशाका सेवन करता है (किन्तु) उसकी वह चीवराशा

---

[1] ऊपरके स्तभ (६)१ जैसा ही पाठ है, सिर्फ 'आदाय'की जगह 'समादाय' है।

[2] ऊपरके दूसरे स्तभ(६)२ जैसा ही पाठ है, सिर्फ आदायका समादाय होजाता है।

[3] ऊपरके तीसरे स्तभ(६)३की तरह 'आदाय'का 'समादाय' बदलकर पाठ है।

[4] ऊपरके चौथे स्तभ(६)४ की तरह पाठ है, सिर्फ 'आदाय'को 'समादाय'में परिवर्तन करदेना चाहिये।

टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क (=आशा टूट जाये जिसमे) कठिन-उद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे 'लौटकर न आऊँगा' (यह सोच) चल देता है। सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानान्तिक कठिनोद्धार होता है। (२)० 'लौटकर न आऊँगा'० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'लौटकर न आऊँगा'० ना श-ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'लौटकर न आऊँगा'० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरकी आशासे अधिष्ठान बिनाही चलदेता है। उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा। उस सीमाके बाहर जा उस चीवराशाका सेवन करता है। आशा न होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० उसको न यह होता है कि फिर लौटूँगा, न यही होता है कि फिर न लौटूँगा।०० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।"

अनाशा द्वादशक समाप्त

(९) आशापूर्वक कठिनोद्धार

१—" (१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ', और वह वही उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर नही पाता है० स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होने पर पाता है० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। सीमासे बाहर जाकर वह सुनता है—उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूकि उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ। और वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ' और वह उस चीवरको बन-वाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)० सुनता है० आशा होनेपर पाता है० स न्नि ष्ठा ना न्ति क०। (३)० सुनता है० आशा होने पर पाता है० ना श ना न्ति क०। (४)० सुनता है—उस आवासमे कठिन उत्पन्न हुआ है। उसको ऐसा होता है—'चूकि उस आवास मे कठिन उत्पन्न हुआ है इसलिये यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर लौटकर न जाऊँ', और वह उस चीवरकी आशासे सेवन करता है। उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेसे 'फिर लौटूँगा' (सोच) चीवरकी आशासे चल देता है। वह सीमाके बाहर जा उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है न आशा होने पर नही पाता। वह उस चीवरको बनवाता है चीवर बन जानेपर सुनता है—'उस आवासमे कठिन उत्पन्न (? रखा) है।' उस भिक्षुको श्र व णा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२)०[1] 'फिर लौटूँगा'० यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ।० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'फिर लौटूँगा'० सीमाके बाहर जाकर उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। आशा होनेपर पाता है, न आशा होनेपर नही पाता। चीवर बन जानेपर—'लौटूँगा, लौटूँगा' (कहता) बाहर ही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा-ति क्रा न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४)० 'फिर लौटूँगा'० आशा होनेपर पाता है० वह उस चीवर को बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँगा लौटूँगा' कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुका (दूसरे) भिक्षुओके सा थ कठिनोद्धार होता है।"

आशा द्वादशक समाप्त

(१०) करणीय-पूर्वक कठिनोद्धार

१—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर किसी काम (=करणीय)से चला जाता है। सीमासे बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता है। उसको ऐसा होता है—यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (२) ० करणीयसे चला जाता है। ० सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको बनवाऊँ, न फिर लौटूँ,' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है। (३) ० करणीयसे चला जाता है। ० आशा होनें पर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (४) ० करणीयसे चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। उसको ऐसा होता है—यही इस चीवरकी आशाका सेवन करूँ और फिर न लौटूँ। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। और उसकी वह चीवरकी आशा टूट जाती है। उस भिक्षुको आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर किसी काम (=करणीय)से 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है। सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवर की आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको बनवाऊँ'। वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० करणीयसे फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है ० आशा होनेपर नही पाता ०। स न्नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है। (३)० करणीयसे फिर न लौटूँगा (कह) चला जाता है ० आशा होनेपर नही पाता ० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) ० करणीयसे 'फिर न लौटूँगा' (कह) चला जाता है० सीमाके बाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा

---

[1] सन्निष्ठानातिककी तरह यहाँ भी समझो।

उत्पन्न होती है। ० आ शो प च्छे दि क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर अधिष्ठानके विनाही किसी काम (=करणीय) से चला जाता है। उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके वाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाका सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनाता है। उस भिक्षुका नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० करणीयसे अधिष्ठान विनाही चला जाता है। उसको न यह होता है कि फिर आऊँगा, और न यही होता है कि फिर न आऊँगा। सीमाके वाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है। वह उस चीवरकी आशाको सेवन करता है। न आशा होनेपर पाता है, आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'न इस चीवरको वनवाऊँगा न फिर लौटूँगा'। उस भिक्षुका स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ०[1] आशा होनेपर नही पाता। उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ और फिर न लौटूँ। ० ना श ना न्ति क कठिन-उद्धार होता है। (४) ० सीमासे वाहर जानेपर उसे चीवरकी आशा उत्पन्न होती है ० आशोपच्छेदिक कठिनोद्धार होता है।"

करणीय द्वादशक समाप्त

(११) अप-विनय-पूर्वक कठिनोद्धार

१—"(१) भिक्षु कठिनके आस्थत होनेपर चीवरके (अपनें हिस्सेको) अ प वि न य (=हक छोळना) करके दिशामे जानेके लिये चल देता। दिशामे चले जानेपर भिक्षु उससे पूछते है—'आवुस! तुमने वर्षावास कहाँ किया, और कहाँ है तुम्हारा चीवरका हिस्सा?' वह ऐसा कहता है—'अमुक आवासमे मैंने वर्षावास किया और वही मेरा चीवरका हिस्सा है।' वह ऐसा कहते है—'जाओ आवुस! उस चीवरको ले आओ! तुम्हारे लिये हम यहाँ चीवर बनायेंगे।' वह उस आवासमे जाकर भिक्षुओसे पूछता है—'आवुस! कहाँ है मेरा चीवरका हिस्सा?' वह ऐसा कहते है—आवुस! यह है तुम्हारा चोवरका हिस्सा। (अव) तुम कहाँ जाओगे? वह ऐसा वोलता है—'मै अमुक आवासमे जाऊँगा। वहाँ भिक्षु मेरे लिये चीवर वनायेंगे।' वे ऐसा वोलते है—'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर वना देंगे।' उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊं और (वहाँ) न लौटूँ।' वह उस चीवरको वनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है। (२)० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर वना देंगे।' उसको ऐसा होता है—०[1] स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३)० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर वना देंगे।' उसको ऐसा होता है ०[1] ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है।

२—"(१) ० अ प वि न य करके दिशामे जानेके लिये चल देता। ० 'नही आवुस! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यही चीवर वना देंगे।' उसको ऐसा होता है—'यही इस चीवरको वनवाऊँ और (वहाँ) न लौटूँ।' और वह उस चीवरको वनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ० वह उस आवासमे जाकर भिक्षुओसे पूछता है—'आवुसो! कहाँ है, मेरा चीवरका भाग?' वे ऐसा वोलते है—'आवुस! यह है तेरा चीवरका भाग।' वह उस चीवरको लेकर उस आवासमे जाता है। उसे रास्तेमे भिक्षु लोग पूछते है—'आवुस कहाँ जाओगे?' वह ऐसा कहता

[1] देखो ७§१।६ (३) पृष्ठ २५९।

है—'अमुक आवासमे जाऊँगा। वहाँ भिक्षु मेरे लिये चीवर वना देंगे।' वह ऐसा बोलते है—'नहीं आवुस ! मत जाओ। हम तुम्हारे लिये यहाँ चीवर बना देंगे' उसको ऐसा होता है—'न इस चीवर को बनवाऊँ, न फिर लौटूँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना न्ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ० उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ, फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका चीवर नष्ट (=गुम) हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना ति क कठिनोद्धार होता है।

३—"(१) ० अ प वि न य करते दिशामे जानेके लिये चल देता।० वह उस चीवरको लेकर उसी आवासमे जाता है। उस आवासमे जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ। फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (२) ०उसको ऐसा होता है—न इस चीवरको बनवाऊँ न फिर लौटूँ।' उस भिक्षुको स न्नि ष्ठा ना ति क कठिनोद्धार होता है। (३) ० उस भिक्षुको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना न्ति क कठिनोद्धार होता है।"

नव अपविनय समाप्त

(१२) सुख-पूर्वक विहारवाला कठिनोद्धार

"१—भिक्षु कठिनके आस्थत हो जानेपर सुख विहार (=प्राशुविहार)के लिये चीवर ले चला जाता है—अमुक आवासमे जाऊँगा। वहाँ मेरा सुखपूर्वक विहार होगा, वहाँ मैं बसूँगा। यदि मुझे प्रा शु (=अच्छा) न होगा तो अमुक आवासमे जाऊँगा। वहाँ मुझे प्रा शु होगा, और बसूँगा। यदि मुझे प्रा शु न होगा तो अमुक आवासमे जाऊँगा। वहाँ मुझे प्राशु होगा, बसूँगा। यदि मुझे प्राशु न होगा तो लौट आऊँगा।' सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँ और फिर न लौटूँ।' वह उस चीवरको बनवाता है। उस भिक्षुको निष्ठानांतिक कठिनोद्धार होता है।

"२—० यदि मुझे प्राशु (=अनुकूल) न होगा तो लौट आऊँगा। सीमाके बाहर जानेपर उसे ऐसा होता है, न इस चीवरको बनवाऊँगा और न लौटूँगा। उस भिक्षुको स नि ष्ठा ना ति क कठिन-उद्धार होता है।

"३—० 'यदि प्राशु न होगा तो लौट आऊँगा।' सीमाके बाहर जानेपर उसको ऐसा होता है—'यहीं इस चीवरको बनवाऊँगा। फिर न लौटूँगा।' वह उस चीवरको बनवाता है। बनवाते समय उसका वह चीवर नष्ट हो जाता है। उस भिक्षुको ना श ना ति क कठिनोद्धार होता है।

"४—० 'नहीं प्राशु होगा तो लौट आऊँगा।' वह सीमासे बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवरके बन जानेपर 'लौटूँगा लौटूँगा' कहता बाहरही कठिनोद्धार (के समय)को बिता देता है। उस भिक्षुको सी मा ति क्रा ति क कठिनोद्धार होता है।

"५—० 'यदि न प्राशु होगा तो लौट आऊँगा।' वह सीमासे बाहर जा उस चीवरको बनवाता है। चीवर बन जानेपर 'लौटूँगा, लौटूँगा' कह कठिनोद्धारकी प्रतीक्षा करता है। उस भिक्षुको (दूसरे) भि क्षु ओ के सा थ कठिन-उद्धार होता है।"

पाँच प्राशु-विहार समाप्त

§३—कठिन चीवरके विघ्न और अ-विघ्न

"भिक्षुओ ! कठिनके दो विघ्न हैं, और दो अविघ्न।—कौनसे भिक्षुओ ! क ठि न के दो विघ्न है ?—आवासका विघ्न और चीवरका विघ्न।

१—"भिक्षुओ ! कैसे आवासका विघ्न होता है ? जब भिक्षुओ ! एक भिक्षु उस आवासमे वास करता है या फिर लौटूँगा यह इच्छा रख चल देता है, भिक्षुओ ! इस प्रकार आवासका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! किस प्रकार चीवरका विघ्न होता है ?—भिक्षुओ ! जब भिक्षुका चीवर नही बना होता या बेठीकसे बना होता है, या चीवरकी आशा टूट नही गई रहती, इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका विघ्न होता है। भिक्षुओ ! ये दो कठिनके विघ्न है।

२—"भिक्षुओ ! कौनसे दो कठिनके अविघ्न है ?—आवासका अविघ्न और चीवरका अविघ्न। भिक्षुओ ! कैसे आवासका अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षु फिर न लौटूँगा (सोच) इच्छा-रहित हो उस आवासको त्यागकर वमनकर छोळकर चल देता है, इस प्रकार भिक्षुओ ! आवासका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! कैसे चीवरसे अविघ्न होता है ?—जब भिक्षुओ ! भिक्षुका चीवर बन गया होता है, या नष्ट (=गुम)हो गया होता है, या विनष्ट (=खतम) होगया होता है, या जल गया होता है, या चीवरकी आशा टूट गई होती है,— इस प्रकार भिक्षुओ ! चीवरका अविघ्न होता है। भिक्षुओ ! यह दो क ठि न के अविघ्न है।"

कठिनक्खन्धकसमाप्त ॥७॥

८—चीवर-स्कंधक

§ १—विहित चीवर और उनके भेद

१—राजगृह

(१) जीवक-चरित

उस समय बुद्ध भगवान् राजगृहमे वेणुवन कलन्दक-निवापमे विहार करते थे।

उस समय वै शा ली ऋद्ध=स्फीत (=समृद्धिशाली), बहुत जनो=मनुष्योसे आकीर्ण, सुभिक्षा (=अन्नपान-सपन्न) थी। उसमे ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम, ७७७७ पुष्करिणियाँ थी। गणिका अ म्ब पा ली अभिरूप=दर्शनीय=प्रासादिक, परमरूपवती, नाच, गीत और वाद्यमे चतुर थी। चाहनेवाले मनुष्योके पास पचास कार्षापण रातपर जाया करती थी। उससे वैशाली और भी प्रसन्न शोभित थी। तब राजगृहका नै ग म किसी कामसे वैशाली गया। रा ज गृ ह के नैगमने वैशालीको देखा—ऋद्ध०। राजगृहका नै ग म वैशालीमे उस कामको खतम कर, फिर राजगृह लौट गया। लौटकर जहाँ राजा मागध श्रेणिक बि म्बि सा र था, वहाँ गया। जाकर राजा० बिम्बिसारसे बोला—

"देव! वैशाली ऋद्ध=स्फीत० और० भी शोभित है। अच्छा हो देव! हम भी गणिका रक्खे ?"

"तो भणे! वैसी कुमारी ढूँढो, जिसको तुम गणिका रख सको।"

उस समय राजगृहमे सा ल व ती नामक कुमारी अभिरूप दर्शनीय० थी। तब राजगृहके नैगमने सा ल व ती कुमारीको गणिका खडी की। सालवती गणिका थोळे कालमे ही नाच, गीत और वाद्यमे चतुर हो गई। चाहनेवाले मनुष्योके पास सौ (कार्षापण)मे रातभर जाया करती थी। तब वह गणिका अचिरमे ही गर्भवती हो गई। तब सालवती गणिकाको यह हुआ—गर्भिणी स्त्री पुरुषोको नापसद (=अमनाप) होती है, यदि मुझे कोई जानेगा—सालवती गणिका गर्भिणी है, तो मेरा सब सत्कार चला जायेगा। क्यो न मै बीमार बन जाऊँ। तब सालवती गणिकाने दौवारिक (=दर्बान)को आज्ञा दी —

"भणे! दौवारिक!! कोई पुरुष आवे और मुझे पूछे, तो कह देना—बीमार है।"

"अच्छा आर्ये! (=अय्ये!)" उस दौवारिकने सालवती गणिकासे कहा।

"सालवती गणिकाने उस गर्भके परिपक्व होनेपर एक पुत्र जना। तब सालवती ने दासीको हुकुम दिया —

"हन्द! जे! इस बच्चेको कचरेके सूपमे रखकर कूडेके ऊपर छोळ आ।"

दासी सालवती गणिकाको "अच्छा आर्ये!" कह, उस बच्चेको कचरेके सूपमे रख, ले जाकर कूळेके ऊपर रख आई।

उस समय अ भ य - रा ज कु मा र ने सकालमे ही राजाकी हाजिरीको जाते (समय), कौओसे घिरे उस बच्चेको देखा। देखकर मनुष्योसे पूछा —

"भणे! (=रे!) यह कौओसे घिरा क्या है।" "देव! बच्चा है।"

"भणे जीता है ?" "देव जीता है।"

"तो भणे! इस वच्चेको ले जाकर, हमारे अन्त पुरमे दासियोको पोसनेके लिये दे आओ।"

"अच्छा देव!" उस वच्चेको अभय-राजकुमारके अन्त पुरमे दासियोको पोसनेके लिये दे आये। 'जीता है (जीवित), करके उसका नाम भी जी व क रक्खा। कुमारने पोसा था, इसलिये कौ मा र-भृत्य नाम हुआ। जीवक कौमार-भृत्य अचिरहीमे विज्ञ हो गया। तव जीवक कौमार-भृत्य जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया, जाकर अभय-राजकुमारसे वोला—

"देव! मेरी माता कौन है, मेरा पिता कौन है ?"

"भणे जीवक! मै तेरी माँको नही जानता, और मै तेरा पिता हूँ, मैने तुझे पोसा है।"

तव जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजकुल (—राजदर्वार) मानी होता है, विना शिल्पके जीविका करना मुश्किल है। क्यो न मै शिल्प सीखूँ।"

उस समय त क्ष शि ला मे (एक) दिशा-प्रमुख (=दिगत-प्रसिद्ध) वैद्य रहता था। तव जीवक अभय राजकुमारसे बिना पूछे, जिधर तक्ष-शिला[1] थी, उधर चला। क्रमश जहाँ तक्ष-शिला थी, जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया। जाकर उस वैद्यसे वोला—

"आचार्य! मै शिल्प सीखना चाहता हूँ।"

"तो भणे[2] जीवक! सीखो।"

जीवक कौमार-भृत्य वहुत पढता था, जल्दी धारण कर लेता था, अच्छी तरह समझता था, पढा हुआ इसको भूलता न था। सात वर्ष वीतनेपर जीवक०को यह हुआ—'वहुत पढता हूँ०, पढते हुए सात वर्ष हो गये, लेकिन इस शिल्पका अन्त नही मालूम होता, कव इस शिल्पका अन्त जान पडेगा ?' तव जीवक० जहाँ वह वैद्य था, वहाँ गया, जाकर उस वैद्यसे वोला—

"आचार्य! मै वहुत पढता हूँ०। कव इस शिल्पका अन्त जान पडेगा ?"

"तो भणे जीवक! खनती (=खनित्र) लेकर त क्ष शि ला के योजन-योजन चारो ओर घूमकर जो अ-भैषज्य (=दवाके अयोग्य) देखो उसे ले आओ।"

"अच्छा आचार्य!" जीवक ने कुछभी अ-भैषज्य न देखा, (और) आकर उस वैद्यको कहा—

"आचार्य! तक्ष-शिलाके योजन-योजन चारो ओर मै घूम आया, (किन्तु) मैने कुछ भी अ-भैपज्य नही देखा।"

"सीख चुके, भणे जीवक! यह तुम्हारी जीविकाके लिये पर्याप्त है।" (कह) उसने जीवक कौमार-भृत्यको थोळा पाथेय दिया। तव जीवक उस स्वल्प-पाथेय (=राहखर्च)को ले, जिधर राजगृह था, उधर चला। जीवक०का वह स्वल्प पाथेय रास्तेमे सा के त (=अयोध्या)मे खतम होगया। तव जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—'अन्न-पान-रहित जगली रास्ते है, विना पाथेयके जाना सुकर नही है, क्यो न मै पाथेय ढूढूँ।"

उस समय साकेतमे श्रेष्ठि (=नगर-सेठ)की भार्याको सात वर्पसे शिर-दर्द था। वहुतसे वळे वळे दिगत-विख्यात वैद्य आकर नही अ-रोग कर सके, (और) वहुत हिरण्य (=अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तव जीवकने साकेतमे प्रवेशकर आदमियोमे पूछा—

"भणे! कोई रोगी है, जिसकी मै चिकित्सा करूँ ?"

---

[1] वर्तमान शाहजीदी ढेरी, जि० रावलपिंडी। [2] छोटेके लिये सम्बोधन।

"आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्याको सात वर्षका शिर-दर्द है, आचार्य ! जाओ श्रेष्ठिभार्याकी चिकित्सा करो।"

तब जीवक०ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपतिका मकान था, वहाँ जाकर दौवारिकको हुकुम दिया—

"भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि भार्याको कह—'आर्य्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हे देखना चाहता है।"

"अच्छा आर्य !' कह दौवारिक जाकर श्रेष्ठि-भार्यासे वोला—

"आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हे देखना चाहता है।"

"भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?"

"आर्ये ! तरुण (=दहरक) है ?"

"बस भणे दौवारिक ! तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत बळे वळे दिगन्त-विख्यात वैद्य ०।"

तब वह दौवारिक जहाँ जीवक कौमार-भृत्य था, वहाँ गया। जाकर . वोला—

"आचार्य ! श्रेष्ठि-भार्या (=सेठानी) ऐसे कहती है—बस भणे दौवारिक ! ०।

"जा भणे दौवारिक ! सेठानीको कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अर्ये ! पहिले कुछ मत दो, जब अरोग हो जाना, तो जो चाहना सो देना।"

"अच्छा आचार्य !" दौवारिकने श्रेष्ठि-भार्यासे कहा—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है ०।"

"तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।"

"अच्छा अय्या !" जीवकको कहा—"आचार्य ! सेठानी तुम्हे वुलाती है।"

जीवक० सेठानीके पास जाकर, रोगको पहिचान, सेठानीसे बोला—

"अय्या ! मुझे पसर भर घी चाहिये।"

सेठानीने जीवक०को पसर भर घी दिलवाया। जीवक०ने उस पसर भर घीको नाना दवाइयोंसे पकाकर, सेठानीको चारपाईपर उतान लेटवाकर नथनोमे दे दिया। नाकसे दिया वह घी मुखसे निकल पळा। सेठानीने पीकदानमे थूककर, दासीको हुक्म दिया—

"हन्द जे ! इस घीको वर्तनमे रख ले।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको हुआ—'आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घीको वर्तनमे रखवाती है। मेरे वहुतसे महार्घ औषध इसमें पळे है , इसके लिये यह क्या देगी ?' तब सेठानीने जीवक०के भावको ताळकर, जीवक०को कहा —

"आचार्य ! तू किसलिये उदास है।"

"मुझे ऐसा हुआ—आश्चर्य ! ०।"

"आचार्य ! हम गृहस्थिने (-आगारिका) है, इस सयमको जानती है। यह घी दासो कमकरोके पैरमे मलने, और दीपकमें डालनेको अच्छा है। आचार्य तुम उदास मत होओ। तुम्हे जो देना है, उसमे कमी नही होगी।"

तव जीवकने सेठानीके सात वर्षके शिर-दर्दको, एक ही नाससे निकाल दिया। सेठानीने अरोग हो जीवकको० चार हजार दिया। पुत्रने 'मेरी माताको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। वहूने 'मेरी सासको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार दिया। श्रेष्ठि गृहपतिने 'मेरी भार्याको निरोग कर दिया' (सोच) चार हजार, एक दास, एक दासी, और एक घोडेका रथ दिया। तव जीवक उन सोलह हजार, दास, दासी और अश्वरथको ले जहाँ रा ज गृ ह था, उधर चला। क्रमश जहाँ राजगृह, जहाँ अभय-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर अ भ य - राजकुमारसे वोला—

"देव ! यह—सोलह हजार, दास, दासी और अश्व-रथ मेरे प्रथम कामका फल है। इसे देव ! पोसाई (=पोसावनिक)मे स्वीकार करें।"

"नही, भणे जीवक, (यह) तेरा ही रहे। हमारे ही अन्त पुर (=हवेलीकी सीमा)मे मकान वनवा।"

"अच्छा देव!" कह जीवक ने अभय-राजकुमारके अन्त पुरमे मकान वनवाया।"

उस समय राजा मागध श्रेणिक वि बि सा र को भगदरका रोग था। धोतियाँ (=साटक) खूनसे सन जाती थी। देवियाँ देखकर परिहास करती थी—'इस समय देव ऋतुमती है, देवको फूल उत्पन्न हुआ है, जल्दी ही देव प्रसव करेगे।' इससे राजा मूक होता था। तव राजा विविसारने अभय-राजकुमारसे कहा—

"भणे अभय! मुझे ऐसा रोग है, जिससे धोतियाँ खूनसे सन जाती है। देवियाँ देखकर परिहास करती है०। तो भणे अभय! ऐसे वैद्यको ढूँढो, जो मेरी चिकित्सा करे।"

"देव! यह हमारा तरुण वैद्य जी व क अच्छा है, वह देवकी चिकित्सा करेगा।"

"तो भणे अभय! जीवक वैद्यको आज्ञा दो, वह मेरी चिकित्सा करे।"

तव अभय-राजकुमारने जीवकको हुकुम दिया—

"भणे जीवक! जा राजाकी चिकित्सा कर।"

"अच्छा देव!" कह जीवक कौमार-भृत्य नखमे दवा ले जहाँ राजा विविसार था, वहाँ गया। जाकर राजा विविसारसे वोला—

"देव! रोगको देखे।"

तव जीवकने राजा विविसारके भगदर रोगको एक ही लेपसे निकाल दिया। तव राजा विविसारने निरोग हो, पाँच सौ स्त्रियोको सव अलकारोसे अलकृत भूषितकर, (फिर उस आभूषण-को) छोळवा पुज वनवा, जीवक को कहा—

"भणे! जीवक! यह पाँच सौ स्त्रियोका आभूषण तुम्हारा है।"

"यही वस है कि देव मेरे उपकारको स्मरण करे।"

"तो भणे जीवक! मेरा उपस्थान (=सेवा चिकित्सा द्वारा) करो, रनवास और बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघका भी (उपस्थान करो)।"

"अच्छा, देव!" (कह) जीवकने राजा विविसारको उत्तर दिया।

उस समय रा ज गृ ह के श्रेष्ठीको सात वर्षका शिर दर्द था। वहुतसे वळे वळे दिगन्त-विख्यात (=दिसा-पामोक्ख) वैद्य आकर निरोग न कर सके, (और) वहुत सा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। वैद्योने उसे (दवा करनेसे) जवाव दे दिया था। किन्ही वैद्यो ने कहा—पाँचवे दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा। किन्ही वैद्योने कहा—सातवे दिन०। तव राजगृहके नैगमको यह हुआ—'यह श्रेष्ठी गृहपति राजाका और नैगमका भी वहुत काम करनेवाला है, लेकिन वैद्योने इसे जवाव देदिया है०। यह राजाका तरुण वैद्य जीवक अच्छा है। क्यो न हम श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये राजासे जीवक वैद्यको माँगे। तव राजगृहके नैगमने राजा विविसारके पास जा कहा—

"देव! यह श्रेष्ठी गृहपति देवका भी, नैगमका भी, वहुत काम करने वाला है। लेकिन वैद्योने जवाव दे दिया है०। अच्छा हो, देव जीवक वैद्यको श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्साके लिये आज्ञा दे।"

तव राजा विम्वसारने जीवक कौमार-भृत्यको आज्ञा दी—

"जाओ, भणे जीवक! श्रेष्ठी गृहपतिकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह, जीवक श्रेष्ठी गृहपतिके विकारको पहिचानकर, श्रेष्ठी गृहपतिसे वोला—

"यदि मै गृहपति ! तुझे निरोग कर दूँ, तो मुझे क्या दोगे ?"

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा हो, और मै तुम्हारा दास।"

"क्यो गृहपति ! तुम एक करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य ! मै एक करवटसे सातमास लेटा रह सकता हूँ।"

"क्या गृहपति ! तुम दूसरी करवटसे सात मास लेटे रह सकते हो ?"

"आचार्य ! सकता हूँ।"

"क्या उतान सात मास लेटे रह सकते हो ?" "आचार्य ! सकता हूँ।"

तब जीवकने श्रेष्ठी गृहपतिको चारपाईपर लिटाकर, चारपाईसे बाँधकर, शिरके चमळेको फाळकर खोपळी खोल, दो जन्तु निकाल लोगोको दिखलाये—

"देखो यह दो जन्तु है—एक बळा है, एक छोटा। जो वह आचार्य यह कहते थे—पाँचवे दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होने इस बळे जन्तुको देखा था, पाँच दिनमे यह श्रेष्ठी गृहपतिकी गुद्दी चाट लेता, गुद्दीके चाट लेनेपर श्रेष्ठी गृहपति मर जाता। उन आचार्योने ठीक देखा था। जो वह आचार्य यह कहते थे—सातवे दिन श्रेष्ठी गृहपति मरेगा, उन्होने इस छोटे जन्तुको देखा था०।"

खोपळी (=सिब्बनी) जोळकर, शिरके चमळेको सीकर, लेप कर दिया। तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

"आचार्य ! मै, एक करवटसे सात मास नही लेट सकता।"

"गृहपति ! तुमने मुझे क्यो कहा था—० सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मै एक करवटसे सात मास लेटा नही रह सकता।"

"तो गृहपति ! दूसरी करवट सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतनेपर जीवक से कहा—

"आचार्य! मै दूसरी करवटसे सातमास नही लेट सकता।"०।०

"तो गृहपति! उतान सात मास लेटो।"

तब श्रेष्ठी गृहपतिने सप्ताह बीतने पर कहा—

"आचार्य ! मै उतान सात मास नही लेट सकता।"

"गृहपति! तुमने मुझे क्यो कहा था—'०सकता हूँ।"

"आचार्य ! यदि मैने कहा था, तो मर भले ही जाऊँ, किंतु मै उतान सात मास लेटा नही रह सकता।"

"गृहपति ! यदि मैने यह न कहा होता, तो इतना भी तू न लेटता। मै तो जानता था, तीन सप्ताहोमे श्रेष्ठी गृहपति निरोग हो जायेगा। उठो गृहपति ! निरोग हो गये। जानते हो, मुझे क्या देना है ?'

"आचार्य ! सब धन तुम्हारा और मै तुम्हारा दास।"

"बस गृहपति ! सब धन मेरा मत हो, और न तुम मेरे दास। राजाको सौहजार देदो और सौहजार मुझे।"

तब गृहपतिने निरोग हो सौ हजार राजाको दिया, और सौ हजार जीवक कौमार-भृत्यको।

उस समय ब ना र स के श्रेष्ठी (=नगर-सेठ)के पुत्रको मक्खचिका (=शिरके बल घुमरी काटना) खेलते अँतळीमे गाँठ पळ जानेका रोग (होगया) था, जिससे पी हुई खिचळी (=यागु=यवागु)भी अच्छी तरह नही पचती थी, खाया भात भी अच्छी तरह न पचता था। पेशाब, पाखाना भी ठीकसे न होता था। वह उससे कृश, रुक्ष=दुर्वर्ण पीला ठठरी (=धमनि-सन्थत-गत्त) भर रह गया

था। तब बनारसके श्रेष्ठीको यह हुआ—'मेरे पुत्रको वैसा रोग है, जिससे जाउर भी०। क्यो न मैं राजगृह जाकर अपने पुत्रकी चिकित्साके लिये, राजासे जीवक वैद्यको माँगूँ।' तब बनारसके श्रेष्ठीने राजगृह जाकर राजा बिबिसारसे यह कहा—

"देव! मेरे पुत्रको वैसा रोग है०। अच्छा हो यदि देव मेरे पुत्रकी चिकित्साके लिये वैद्य को आज्ञा दे।"

तब राजा बिबिसारने जीवक को आज्ञा दी—

"भणे जीवक! बनारस जाओ, और बनारसके श्रेष्ठीके पुत्रकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह बनारस जाकर, जहाँ बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र था, वहाँ गया। जाकर श्रेष्ठी-पुत्रके विकारको पहिचान, लोगोको हटाकर, कनात घेरवा, खभोको बँधवा, भार्या को सामने कर, पेटके चमळेको फाळ, आँतकी गाँठको निकाल, भार्याको दिखलाया—

"देखो अपने स्वामीका रोग, इसीसे जाउर पीना भी अच्छी तरह नही पचता था०।"

गाँठको सुलझाकर अँतळियोको (भीतर) डालकर, पेटके चमळेको सीकर, लेप लगा दिया। बनारसके श्रेष्ठीका पुत्र थोळी ही देरमे निरोग हो गया। बनारसके श्रेष्ठीने 'मेरा पुत्र निरोग कर दिया' (सोच) जीवक कौमार-भृत्यको सोलह हजार दिया। तब जीवक उन सोलह हजारको ले फिर राजगृह लौट गया।

उस समय राजा प्र द्यो त को पाडु-रोगकी बीमारी थी। बहुतसे बळे बळे दिगत-विख्यात वैद्य आकर निरोग न कर सके, बहुतसा हिरण्य (=अशर्फी) लेकर चले गये। तब राजा प्रद्योतने राजा मागध श्रेणिक बिबिसारके पास दूत भेजा—

"मुझे देव! ऐसा रोग है, अच्छा हो यदि देव जीवक-वैद्यकी आज्ञा दे, कि वह मेरी चिकित्सा करे।"

तब राजा. बिंबिसारने जीवक. को हुकुम दिया—

"जाओ भणे जीवक! उ ज्जै न (=उज्जेनी) जाकर, राजा प्रद्योतकी चिकित्सा करो।"

"अच्छा देव!" कह जीवक उज्जैन जाकर, जहाँ राजा प्रद्योत (=पज्जोत) था, वहाँ गया। जाकर राजा प्रद्योतके विकारको पहिचानकर बोला—

"देव! घी पकाता हूँ, उसे देव पीये।"

"भणे जीवक! बस, घीके विना (और) जिससे तुम निरोग कर सको, उसे करो। घीसे मुझे घृणा=प्रतिकूलता है।"

तब जीवक. को यह हुआ—'इस राजाका रोग ऐसा है, कि घीके विना आराम नही किया जा सकता, क्यो न मैं घीको कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस पकाऊँ।' तब जीवक ने नाना औषधोसे कषाय-वर्ण, कषाय-गंध, कषाय-रस घी पकाया। तब जीवक को यह हुआ—'राजाको घी पीकर पचते वक्त उबात होता जान पळेगा। यह राजा चड (क्रोधी) है, मुझे मरवा न डाले। क्यो न मैं पहिलेही ठीक कर रक्खूँ। तब जीवक. जाकर राजा प्रद्योतसे बोला—

"देव! हमलोग वैद्य हैं, वैसे वैसे (विशेष) मुहूर्त्तमे मूल उखाळते हैं, औषध सग्रह करते हैं। अच्छा हो, यदि देव वाहन-शालाओ और नगर-द्वारोपर आज्ञा देदे कि जीवक जिस वाहनसे चाहे, उस वाहनसे जावे, जिस द्वारसे चाहे, उस द्वारसे जावे, जिस समय चाहे, उस समय जावे, जिस समय चाहे, उस समय (नगरके) भीतर आवे।"

तब राजा प्र द्यो त ने वाहनागारो और द्वारोपर आज्ञा देदी—'जिस वाहनसे०।' उस समय राजा प्रद्योतकी भ द्र व ति का नामक हथिनी (दिनमे) पचास योजन (चलने)वाली थी। तब जीवक

कौमार-भृत्य राजाके पास घी ले गया—'देव ! कषाय पिये।' तव जीवक राजाको घी पिलाकर हथि-सारमे जा भद्रवतिका हथिनीपर (सवार हो), नगरसे निकल पळा। तव राजा प्रद्योतको उस पिये घीसे उवात हो गया। तव राजा प्रद्योतने मनुष्योसे कहा—

"भणे ! दुष्ट जीवकने मुझे घी पिलाया है, जीवक वैद्यको ढूँढो।"

"देव ! भद्रवतिका हथिनीपर नगरसे वाहर गया है।"

उस समय अमनुष्यसे उत्पन्न काक नामक राजा प्रद्योतका दास (दिनमे) साठ योजन (चलने) वाला था। राजा प्रद्योतने काक दासको हुकुम दिया—

"भणे काक ! जा जीवक वैद्यको लौटा ला—'आचार्य ! राजा तुम्हे लौटाना चाहते है।' भणे काक ! यह वैद्य लोग वळे मायावी होते है, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

तव काकने जीवक कौमार-भृत्यको मार्गमे कौशाम्बीमे कलेवा करते देखा। दास काकने जीवक . से कहा—

"आचार्य ! राजा तुम्हे लौटवाते है।"

"ठहरो भणे काक ! जब तक खा लूँ। हन्त भणे काक ! (तुम भी) खाओ।"

"वस आचार्य ! राजाने आज्ञा दी है—'यह वैद्य लोग मायावी होते है, उस(के हाथ)का कुछ मत लेना।"

उस समय जीवक कौमार-भृत्य नखसे दवा लगा ऑवला खाकर, पानी पीता था। तव जीवक . ने काक से कहा—

"तो भणे काक ! आँवला खाओ, और पानी पियो।"

तव काक दासने (सोचा) 'यह वैद्य ऑवला खा रहा है, पानी पी रहा है, (इसमे) कुछ भी अनिष्ट नही हो सकता'—(और) आधा ऑवला खाया, और पानी पिया। उसका खाया वह आधा ऑवला वही (वमन हो) निकल गया। तव काक (दास) जीवक कौमार-भृत्यसे वोला—

"आचार्य ! क्या मुझे जीना है?"

"भणे काक ! डर मत, तू भी निरोग होगा, राजा भी। वह राजा चड है, मुझे मरवा न डाले, इसलिये मै नही लौटूँगा।" (—कह) भद्रवतिका हथिनी काकको दे, जहाँ राजगृह था, वहाँको चला। क्रमश जहाँ राजगृह था, जहाँ राजा विंविसार था, वहाँ पहुँचा। पहुँचकर राजा . विंविसारसे वह (सव) वात कह डाली।

"भणे जीवक ! अच्छा किया, जो नही लौटा। वह राजा चड है, तुझे मरवा भी डालता।"

तव राजा प्रद्योतने निरोग हो, जीवक कौमार-भृत्यके पास दूत भेजा—'जीवक आवे, वर (=इनाम) दूँगा' 'वस आर्य ! देव मेरा उपकार (=अधिकार) याद रक्खे।' उस समय राजा प्रद्योतको वहुत सौ हजार दुशालेके जोळोमे अग्र=श्रेप्ठ=मुख्य=उत्तम=प्रवर शिवि (देश) के दुशालोका एक जोडा प्राप्त हुआ था। राजा प्रद्योतने उस शिविके दुशालेको, जीवकके लिये भेजा। तव जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

"राजा प्रद्योतने मुझे० यह शिविका दुशाला जोळा भेजा है। उन भगवान् अर्हत् सम्यक् संवुद्धके विना या राजा मागध श्रेणिक विंविसारके बिना, दूसरा कोई इसके योग्य नही है।"

उस समय भगवान्का शरीर दोप-ग्रस्त था। तव भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको संवोधित किया—

"आनन्द तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, तथागत जुलाव (=विरेचन) लेना चाहते है।"

आयुष्मान् आनन्द जहाँ जीवक .था, वहाँ जाकर वोले—

"आवुस जीवक ! तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, जुलाव लेना चाहते है।"

"तो भन्ते ! आनन्द ! भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्निग्ध करे (=चिकना करे)।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के शरीरको कुछ दिन स्नेहित कर जाकर जीवक को बोले—

"आवुस जीवक ! तथागतका शरीर अब स्निग्ध है, अब जिसका समय समझो (वैसा करो)।"

तब जीवक कौमार-भृत्यको यह हुआ—

'यह मेरे लिये योग्य नही, कि मै भगवान्‌को मामूली जुलाब दूँ।' (इसलिये) तीन=उत्पल-हस्तको नाना औषधोसे भावितकर, जाकर भगवान्‌को एक उत्पलहस्त (=चम्मच) दिया—

"भन्ते ! इस पहिले उत्पलहस्तको भगवान् सूँघे, यह भगवान्‌को दस वार जुलाब लगायेगा। इस दूसरे उत्पलहस्तको ०सूँघे०। इस तीसरे उत्पलहस्तको भगवान् सूँघे०। इस प्रकार भगवान्‌को तीस जुलाब होगे।"

जीवक भगवान्‌को तीस जुलावके लिये औषध दे, अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चल दिया। तब जीवकको वळे दर्वाजेसे निकलनेपर यह हुआ—'मैने भगवान्‌को तीस जुलाब दिया। तथागतका शरीर दोष-ग्रस्त है, भगवान्‌को तीस जुलाब न होगा, एक कम तीस जुलाब होगा। जब भगवान् जुलाब हो जानेपर नहायेगे, तब भगवान्‌को एक और विरेचन होगा।' तब भगवान्‌ने जीवकके चित्तके वितर्कको जानकर, आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आनन्द ! जीवकको वळे दर्वाजेसे निकलनेपर०। इसलिये आनन्द ! गर्म जल तैयार करो।"

"अच्छा भन्ते !" कह आयुष्मान् आनन्दने जल तैयार किया। तब जीवक जाकर भगवान्‌से बोला—

"मुझे भन्ते ! बळे दर्वाजेसे निकलनेपर०। भन्ते ! स्नान करे सुगत ! स्नान करे।"

तब भगवान्‌ने गर्म जलसे स्नान किया। नहानेपर भगवान्‌को एक (और) विरेचन हुआ। इस प्रकार भगवान्‌को पूरे तीस विरेचन हुए। तब जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"जब तक भन्ते ! भगवान्‌का शरीर स्वस्थ नही होता, तब तक मै जूस पिंड-पात (दूँगा)।"

भगवान्‌का शरीर थोळे समयमे ही स्वस्थ हो गया। तब जीवक उस शिवि[1]के दुशाले को ले, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक ने भगवान्‌से यह कहा—

"मै भन्ते ! भगवान्‌से एक वर माँगता हूँ।"

"जीवक ! तथागत वरके परे हो गये है।"

"भन्ते ! जो युक्त है, जो निर्दोष है।"

"बोलो, जीवक !"

"भन्ते ! भगवान् पांसुकूलिक[2] (=लत्ताधारी) है, और भिक्षु-संघ भी। भन्ते ० मुझे यह शिविका दुशाला जोळा, राजा प्रद्योतने भेजा है। भन्ते ! भगवान् मेरे इस शिवि(=देश)के दुशाले

[1] वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तानके आस पासका प्रदेश) या शोरकोट (पंजाब) के आस पासका प्रदेश।

[2] अ क "भगवान्‌के बुद्धत्व-प्राप्तिसे बीस वर्ष तक किसी (भिक्षु) ने गृह-पति-चीवर धारण नही किया। सब पांसुकूलिक ही रहे।" (—अट्ठकथा)।

जोळेको स्वीकार करे, और भिक्षु-सघको गृहस्थोके दिये चीवर (=गृहपति-चीवर)की आज्ञा दे।"

भगवान्‌ने शिविके दुशाले को स्वीकार किया। भिक्षुसघको आमत्रित किया—

(२) नये वस्त्रके चीवरका विधान

"भिक्षुओ ! गृहपति-चीवर (के उपयोगकी) अनुज्ञा देता हूँ। जो चाहे पासुकूलिक रहे, जो चाहे गृहपति-चीवर धारण करे। (दोनोमे) किसीसे भी मैं सतुष्टि कहता हूँ" 1

(३) ओढ़नेकी अनुमति

१—रा ज गृ ह के लोगोने सुना कि भगवान्‌ने भिक्षुओके लिये गृ ह प ति (=गृहस्थोके दिये नये) चीवरकी अनुमति दे दी है । तव वह लोग हर्षित=उदग्र हुए—'अब हम दान देंगे, पुण्य करेंगे, क्योकि भगवान्‌ने भिक्षुओके लिये गृ ह प ति चीवरकी अनुमति दे दी है।' और एकही दिनमे रा ज-गृ ह मे कई हजार चीवर मिल गये । देहातके (=जानपद) मनुष्योने सुना कि भगवान्‌ने भिक्षुओके लिये गृहपति चीवरकी अनुमति दे दी है। (और) देहातमे भी एकही दिनमे कई हजार चीवर मिल गये।

२—उस समय सघको ओढना (=प्रावार) मिला था। भगवान्‌से यह बात कही—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ओढनेकी ।" 2

कौशेय (=कीडेसे पैदा सभी प्रकारके वस्त्र)का प्रा वा र मिला था।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कौ शे य-प्रा वा र की।" 3

को ज व (=लम्बे बालोवाला कम्बल) मिला था।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ को ज व की।" 4

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(४) कम्बलकी अनुमति

उस समय का शि रा ज[1] ने जी व क कौमार-भृत्यके पास पॉचसौका क्षौ म (=अलसीकी छालका बना हुआ कपळा)-मिश्रित कम्बल भेजा था। तब जी व क कौमार-भृत्य उस पॉचसौका कम्बल लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जी व क कौ मा र भृ त्य ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! मुझे का शि रा ज ने यह पॉचसौका क्षौ म मिश्रित कम्बल भेजा है। भन्ते ! भगवान् इस मेरे कम्बलको ग्रहण करे, स्वीकार करे, जिसमे कि यह चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

भगवान्‌ने कम्बलको स्वीकार किया। तब भगवान्‌ने जी व क कौमार-भृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तव जी व क कौ मा र-भृ त्य भगवान्‌की धार्मिक कथाद्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो, आसनसे उठ भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया । तव भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कम्बलकी।" 5

(५) छ प्रकारके चीवरका विधान

उस समय सघको नाना प्रकारके चीवर (=वस्त्र) मिले। तब भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्

---

[1] कोसलराज प्र से न जि त् का सगा भाई (—अट्ठकथा)।

ने किस चीवरकी अनुमति दी है, और किसकी नही ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छ तरहके चीवरोकी—क्षौ म, कपासवाले, कौशेय, कम्बल (-ऊनी), साण (=सनका), और भ ग[1] ।" 6

(६) नये चीवरके साथ पांसुकूल भी

१—उस समय जो भिक्षु गृहस्थो(के दिये नये) चीवरको धारण करते थे वह हिचकिचाते हुए पा सु कू ल (=फेके हुए चीथळो)को नही धारण करते थे—'भगवान्ने एकही तरहके चीवरकी अनुमति दी है, दो की नही।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोके नये चीवर धारण करनेवालोको पासुकूल धारण करने की भी। मै उन दोनोहीसे भिक्षुओ ! सतुष्टि (=त्यागीपन) वतलाता हूँ।" 7

२—उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमे रास्तेसे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फे के चीथ ळे के लिये स्मशान मे गये और किन्ही किन्ही भिक्षुओने प्रतीक्षा न की । जो भिक्षु स्मशानमे गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तव न प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो ! हमे भी हिस्सा दो !' दूसरेने कहा—'आवुसो ! हम तुम्हे नही देगे। तुम क्यो नही आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, इच्छा न होनेपर न प्रतीक्षा करनेवालोको भाग न देनेकी।" 8

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमे जा रहे थे। (उनमेंसे) कोई कोई भिक्षु फेके चीथळोके लिये स्मशानमे गये। और किन्ही किन्हीने प्रतीक्षा की। जो भिक्षु स्मशानमे गये थे उन्हे पा सु कू ल मिले। तव प्रतीक्षा करनेवाले भिक्षुओने ऐसा कहा—'आवुसो ! हमे भी हिस्सा दो !' दूसरोने कहा—आवुसो ! हम तुम्हे नही देगे। तुम क्यो नही आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इच्छा न होनेपर भी प्रतीक्षा करनेवालोको भाग देनेकी।"9

उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमे रास्तेसे जा रहे थे। कोई कोई भिक्षु पासुकूलके लिये पहिले स्मशानमे गये और कोई कोई पीछे। जो भिक्षु पासुकूलके लिये पहले स्मशानमे गये उनको पा सु कू ल मिला। जो पीछे गये उन्हे पा सु कू ल नही मिला। उन्होने ऐसे कहा—'आवुसो ! हमे भी भाग दो !' दूसरोने उत्तर दिया—'आवुसो ! हम तुम्हे नही देगे ! तुम क्यो पीछे आये ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पीछे आनेवालोको इच्छा न रहनेपर भाग न देनेकी।" 10

§२—संघके कर्म-चारियोंका चुनाव

(१) चीवरका बँटवारा

१—उस समय वहुतसे भिक्षु को स ल देशमे रास्तेसे जा रहे थे। वह एक साथही पासुकूलके लिये स्मशानमे गये। उनमेंसे किन्ही किन्ही भिक्षुओने पासुकूल पाया, किन्ही किन्हीने नही पाया। न पानेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो ! हमें भी भाग दो।'—दूसरेने उत्तर दिया—'आवुसो ! हम तुम्हे भाग न देगे। तुमने क्यो नही प्राप्त किया ?' भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ साथ रहनेवालोको इच्छा न रहते भी भाग देने की।" 11

---

[1] भांगकी छालका बना, अथवा उक्त पांचो प्रकारके मिश्रणसे बना हुआ कपळा।

२—उस समय बहुतसे भिक्षु को स ल देशसे रास्तेसे जा रहे थे। वह पण करके श्मशानमे पासुकूलके लिये गये। किन्ही किन्ही भिक्षुओको पासुकूल मिला, किन्ही किन्हीने नही पाया। न पानेवाले भिक्षुओने ऐसे कहा—'आवुसो! हमे भी भाग दो!'—दूसरोने उत्तर दिया—'आवुसो! हम तुम्हे भाग न देगे। तुमने क्यो नही प्राप्त किया?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पण करके जानेपर, इच्छा न रहते हुए भी भाग देनेकी।" 12

(२) चीवर प्रतिग्राहकका चुनाव

उस समय लोग चीवर लेकर आराम जाते थे। वहाँ प्र ति ग्रा ह क (=ग्रहण करनेवाले) को न पा लौटा लाते थे, और चीवर कम मिला करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच गुणोसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुनने की।"—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो, (२) जो न द्वेषके रास्ते जानेवाला हो, (३) जो न मोहके रास्ते जानेवाला हो, (४) जो न भयके रास्ते जानेवाला हो, और (५) जो लिये-वे-लियेको जानता हो। 13

और भिक्षुओ इस प्रकार चुनाव (=समन्त्रण) करना चाहिये। पहले (वैसे) भिक्षुसे पूछ लेना चाहिये। पूछ करके चतुर समर्थ भिक्षु-सघको सूचित करे—यदि सघ 'उचित समझे तो अमुक नाम-वाले भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुने—यह सूचना है।० ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(३) चीवर-निदहकका चुनाव

उस समय चीवर प्रतिग्राहक भिक्षु चीवरको लेकर वही छोडकर चले जाते थे। चीवर गुम हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोसे युक्त भिक्षुको ची व र-नि द ह क (=चीवरोको रखनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[१]।" 14

(४) भंडार निश्चित करना

उस समय ची व र-नि द ह क भिक्षु मडपमे भी, वृक्षके नीचे भी, निम्ब-कोपमे भी चीवर रख देते थे और उन्हे चूहे और दूसरे कीडे खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ भडागार निश्चित करनेकी। सघ-विहार या अ ड्ढ यो ग (=अटारी) या प्रासाद या हर्म्य या गुहा जिसे चाहे (उसे) भडागार बनाये।" 15

"और भिक्षुओ! इस प्रकार ठहराव करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षुसघको सूचित करे—पूज्य सघ मेरी सुने। यदि सघको पसद हो तो इस नामवाले विहारको भडागार (=भडार) निश्चित करे—यह सूचना है।०।"

(५) भंडारीका चुनाव

१—उस समय सघके भडागारमे चीवर अरक्षित रहते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोसे युक्त भिक्षुको भा डा गा रि क (=भडारी) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[२]। और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये०[२]।" 16

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु भडारीको उठा देते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! भडारीको नही उठाना चाहिये। जो उठाये उसे दु क्क ट का दोष हो।" 17

---

[१] चीवर-प्रतिग्राहककी तरहही चीवर-निदहकके गुण और चुनावके बारेमें समझना चाहिये।

[२] चीवर-प्रतिग्राहककी तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

(६) जमा चीवरोंका बाँटना

उस समय सघके भडारमे चीवर जमा हो गये थे। भगवान्‌से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, सघके सामने बाँटनेकी।" 18

(७) चीवर-भाजकका चुनाव

उस समय सारा सघ (एकत्रित हो) बाँटता था, जिससे हल्ला होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच गुणोसे युक्त भिक्षुको चीवर-भाजक (=चीवर बाँटने-वाला) चुननेकी (१) जो न स्वेच्छाचारी हो०[1]। 19

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये०[1]।"

(८) चीवर बाँटनेका ढग

तब चीवर-भाजक भिक्षुओको ऐसा हुआ—'कैसे चीवर बाँटना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले चुनकर, तुलनाकर, रग-रग (को अलग)कर, भिक्षुओ-की गणनाकर, (उन्हे) वर्गमे बाँट चीवरके हिस्सेको स्थापित करनेकी।" 20

(९) भिक्षुओसे श्रामणेरोका हिस्सा

१—तब चीवर-भाजक भिक्षुओको यह हुआ कैसे श्रामणेरोको हिस्सा देना चाहिये? भग-वान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, श्रामणेरोको उपार्ध (=दोतिहाई हिस्सा) देनेकी।" 21

२—उस समय एक भिक्षु अपने हिस्सेको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ छोळनेवालेको अपने भागके दे देनेकी।" 22

३—उस समय एक भिक्षु अधिक भागको छोळ देना चाहता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अनुक्षेप (=पूर्ति) दे देनेपर अधिक भागको दे देनेकी।" 23

(१०) बुरे चीवरोपर चिट्ठी डालना

तब चीवर-भाजक भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे चीवरका हिस्सा देना चाहिये?' क्या जैसा हाथमे आवे वैसाही या पुरानेके क्रमसे?" भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ खराबको जमाकर उसपर कुश डालनेकी।" 24

§ ३—चीवरकी रँगाई आदि

(१) चीवर रंगनेके रग

उस समय भिक्षु गोबरसे भी, पीली मिट्टीसे भी, चीवरको रँगते थे। चीवर दुर्वर्ण होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[1] चीवर-प्रतिग्राहक (पृष्ठ २७६)की तरह।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छ रगोकी—(१) मूल (=जळसे निकला) रग, (२) स्कंध-रग, (३) त्वक् (=छालका)-रग, (४) पत्र (=पत्तेका) रग, (५) पुष्प-रग, (६) फल-रग।" 25

(२) रंग पकाना

१—उस समय भिक्षु कच्चे रगसे रँगते थे, और चीवर दुर्गन्धयुक्त होते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रग पकानेकी और रगके छोटे मटकेकी।" 26

२—रग उतर आता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उ त्त रा लुम्प[१] बाँधनेकी।" 27

३—उस समय भिक्षु नही जानते थे कि रग पका कि नही। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पानीमे या नखपर बूँद डाल(कर परीक्षा ले)नेकी।" 28

(३) रंगके बर्तन

१—उस समय भिक्षु रग उतारते समय हँळियाको खीचते थे जिससे हँळिया टूट जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रगके नॉदकी, और दडसहित थालकी।"

२—उस समय भिक्षुओके पास रँगनेका बर्तन न था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रगके कूँळेकी, रगके घळेकी।" 29

३—उस समय भिक्षु थालीमे भी, पत्तेपर भी, चीवरको मलते थे। चीवर लसर जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ र ज न - द्रो णी[१]।30

(४) चीवर सुखानेके सामान

१—उस समय भिक्षु ज़मीनपर चीवर फैला देते थे और चीवरमे धूल लग जाती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तृणकी सँथरीकी।" 31

२—तृणकी सँथरीको कीडे खा जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ चीवर (फैलाने)के बाँस और रस्सीकी।" 32

(५) रगाईका ढग

१—बीचमे डालते थे और रग दोनो ओरसे बह जाता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोनोके बाँधनेकी।" 33

२—कोने निर्बल हो जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कोना बाँधनेके सूतकी।" 34

३—रग एक ओरसे बहता था। ०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ बराबर उलटते हुए रगनेकी, और बूँदकी धार न टूटेमे, न हटाने की।" 35

---

[१] पकानेके बर्तनके बीचमें रखनेका सामान।

[२] पत्थर या किसी और चीज़का रंगनेका विशाल पात्र, जिसका एक पुराना नमूना साचीमें मौजूद है।

४—उस समय चीवर घना रँग जाता था ०—
" ० अनुमति देता हूँ पानी मे डालनेकी ।" 36
५—चीवर रूखा हो जाता था । ०—
" ० अनुमति देता हूँ हाथसे कूटनेकी ।" 37

§४—चीवरोंकी कटाई, संख्या और मरम्मत

(१) काटकर सिले (=छिन्नक) चीवरका विधान

उस समय भिक्षु काषाय (वस्त्र)को बिना काटे ही धारण करते थे ।

२—*दक्षिणागिरि*

तब भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जिधर द क्षि णा गि रि है उधर चारिकाके लिये चले गये । भगवान्ने म ग ध के खेतोको मेळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेळ-बँधा देखा। देखकर आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—

"आनद ! देख रहा है तू मगधके खेतोको मेळ बँधा, कतार बँधा, मर्यादा बँधा, और चौमेळ-बँधा ?"

"हाँ भन्ते !"

"आनन्द ! क्या तू भिक्षुओके लिये ऐसे चीवर बना सकता है ?"

"सकता हूँ भगवान् !"

३—*राजगृह*

तब भगवान द क्षि णा गि रि मे इच्छानुसार विहारकर फिर रा ज गृ ह चले आये । तब आयुष्मान् आनन्दने बहुतसे भिक्षुओके चीवरोको बनाकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! भगवान् मेरे बनाये चीवरोको देखे ।"

तब भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आनन्द पडित है, आनन्द महाप्रज्ञ है जो कि उसने मेरे सक्षेपसे कहेका विस्तारसे अर्थ समझ लिया। क्यारी भी बनाई, आधी क्यारी भी बनाई, मडल भी बनाया, अर्ध मडल भी बनाया विवर्त (=मडल और अर्ध मडल दोनो मिलकर) भी बनाया, अनुविवर्त भी बनाया, ग्रै वे य क (=गर्दनकी जगह चीवरको मजबूत करनेकी दोहरी पट्टी) भी बनाया, जा घे य क (=पिडलीकी जगह चीवरको मजबूत करनेकी दोहरी पट्टी) वा हु व न्त (=बाँहकी जगहका चीवरका भाग) भी बनाया । छि न्न क (=काटकर सिला चीवर), श स्त्र - रु क्ष (=मौटा-झोटा) और श्रमणोके योग्य होगा और प्र त्य र्थी (=चुरानेवालो)के कामका न होगा ।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, सघाटी, उत्तरासघ और अन्तरवासकको छि न्न क (=काट कर सिला) बनानेकी ।" 38

४—*वैशाली*

(२) चीवरोंकी सख्या

तब भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहार कर जिधर वै शा ली है उधर चले गये । भगवान्ने राजगृह और वैशालीके मार्गमे बहुतसे भिक्षुओको चीवरसे लदे देखा ।—सिरपर भी चीवरकी पोटली, कधेपर भी चीवरकी पोटली, कमरमे भी चीवरकी पोटली बाँधकर वह जा रहे थे । देखकर भगवान्को

यह हुआ—'यह मोघ पुरुष बहुत जल्दी चीवर बटोरू बनने लगे। अच्छा हो मै चीवरकी सीमा बाँध दूँ, मर्यादा स्थापित कर दूँ। तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ वैशाली है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमे गो त म क चै त्य मे विहार करते थे। उस समय भगवान् हेमन्तमे अ न्त रा ष्ट क[1] की रातोमे हिम-पातके समय रातको खुली जगहमे एक चीवर ले बैठे। भगवान्‌को सर्दी न मालूम हुई। प्रथम याम (=चार घटा)के समाप्त होनेपर भगवान्‌को सर्दी मालूम हुई। भगवान्‌ने दूसरा चीवर ओढ लिया और भगवान्‌को सर्दी न मालूम हुई। विचले याम के बीत जाने पर भगवान्‌को सर्दी मालूम हुई तब भगवान्‌ने तीसरे चीवरको पहन लिया और भगवान्‌को सर्दी न मालूम हुई। अन्तिम यामके बीत जाने पर अरुणके उगते रात्रिके न न्दि मु खी होने (=पौ फटने)के वक्त सर्दी मालूम हुई। तब भगवान्‌ने चौथा चीवर ओढ लिया। तब भगवान्‌को सर्दी न मालूम हुई। तब भगवान्‌को यह हुआ। जो कोई शी ता लु (=जिनको सर्दी ज्यादा लगती है), सर्दीसे डरनेवाला कुल-पुत्र इस धर्ममे प्रव्रजित हुए है वह भी तीन चीवरसे गुजारा कर सकते है। अच्छा हो मै भिक्षुओके लिये चीवरकी सीमा बाँधू, मर्यादा स्थापित करूँ, तीन चीवरोकी अनुमति दूँ।' तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमे, इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! रा ज गृ ह और वै शा ली के मार्गमे आते वक्त मैने बहुतसे भिक्षुओको चीवरसे लदे देखा ० (मैने सोचा) अच्छा हो मै भिक्षुओके लिये तीन चीवरोकी अनुमति दूँ।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ—(१) दोहरी स घा टी, (२) एकहरे उ त्त रा स ग (३) इकहरे अ त र वा स क, तीन चीवरोकी।" 39

(३) फालतू चीवरोंके बारेमे नियम

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु—भगवान्‌ने तीन चीवरोकी अनुमति दी है—(सोच), दूसरे तीन चीवरोसे गाँवमे जाते थे, दूसरे ही तीन चीवरोसे आराममे रहते थे और दूसरे ही तीन चीवरोसे नहाने जाते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ थे , वह हैरान होते थे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु फालतू चीवर धारण करते है।' तब उन लोगोने भगवान्‌से यह बात कही। भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया।—

"भिक्षुओ! फालतू चीवर नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसको धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 40

२—उस समय आयुष्मान् आ न द को (एक) फालतू चीवर मिला था। आयुष्मान् आनद उस चीवरको आयुष्मान् सा रि पु त्र को देना चाहते थे, और आयुष्मान् सारिपुत्र उस समय सा के त मे विहार करते थे। तब आयुष्मान् आनदको यह हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है कि फालतू चीवर नही धारण करना चाहिये और यह मुझे फालतू चीवर मिला है। मै इस चीवरको आयुष्मान् सारिपुत्रको देना चाहता हूँ, और आयुष्मान् सा रि पु त्र साकेतमे विहार कर रहे है। मुझे कैसे करना चाहिये?'

तब आयुष्मान् आनदने यह बात भगवान्‌से कही।—

"आनद! कब तक सा रि पु त्र आयेगा?"

"नवे या दसवे दिन भगवान्।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दस दिन तक फालतू चीवरको रख छोळने की।" 41

३—उस समय भिक्षुओको फालतू चीवर मिलता था। तब भिक्षुओको यह हुआ—'हमे इस

---

[1] माघकी अन्तिम चार और फागुनकी आरम्भिक चार रातें।

फालतू चीवरको क्या करना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ फालतू चीवरके वि क ल्प करनेकी ।"42

५ —*वाराणसी*

(४) पेवँद रफू करना

तब भगवान् वै शा ली मे इच्छानुसार विहारकर जिधर वा रा ण सी है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वाराणसीके ऋ षि प त न मृ ग दा व मे विहार करते थे। उस समय एक भिक्षुके अन्तरवासकमे छेद हो गया था। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्ने तीन चीवरोका विधान किया है, दोहरी स घा टी, इकहरे उ त्त रा स घ और इकहरे अ न्त र वा स क की। और इस मेरे अन्तरवासकमे छेद हो गया है। क्यो न मै पेवद लगाऊँ जिससे कि (छेदके) चारो तरफ दोहरा हो जाये और बीचमे इकहरा ?' तव उस भिक्षुने पेवद लगाया। आश्रममे घूमते वक्त भगवान्ने उस भिक्षुको पेवद लगाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उससे बोले—

"भिक्षु ! तू क्या कर रहा है ?"

"भगवान् ! पेवद लगा रहा हूँ।"

"साधु ! साधु ! भिक्षु, तू ठीक ही पेवद लगा रहा है।"

तव भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, नये या नये जैसे कपळेकी दोहरी स घा टी, इकहरे उत्तरासघ और इकहरे अन्तरवासककी, ऋतु खाये कपळेकी चौहरी, सघाटी, दोहरे उत्तरासघ और दोहरे अन्तर-वासककी, पा सु कू ल (=फेके चीथळे) होनेपर यथेच्छ। दूकानके फेके चीथळेको खोजना चाहिये। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पेवन्द, रफू, डॉळे, टाँके, और दृढी-कर्मकी।" 43

६—*श्रावस्ती*

(५) विशाखाको वर

तव भगवान् वा रा ण सी मे इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चले। फिर क्रमश विहार करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अ ना थ पिं डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा -मृगार माताको भगवान्ने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तव विशाखा मृगार माता भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित हो भगवान्से यह बोली—

"भन्ते ! भगवान् भिक्षु-सघके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तव वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्की स्वीकृति जान भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

उस समय उस रातके बीतनेपर चा तु र्द्वी पि क[1] महामेघ बरसने लगा। तव भगवान्ने भिक्षुओ-को सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! जैसे यह जे त व न मे बरस रहा है वैसे ही चारो द्वीपोमे बरस रहा है। भिक्षुओ !

---

[1] चारो द्वीपवाली सारी पृथ्वीपर जो एकही समय बरसता है।

वर्षामे शरीरको नहलाओ ! यह अन्तिम चा तु र्द्वी पि क महामेघ है ।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दे, चीवरको फेक वर्षामे शरीरको नहलाने लगे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता ने उत्तम खाद्य-भोज्य तैयार करा दासीको आज्ञा दी—

"जा रे ! आराममे जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है। भन्ते भात तैयार है ।"

"अच्छा आर्ये !" (कह) उस दासीने वि शा खा मृ गा र मा ता को उत्तर दे आराममे जा देखा कि भिक्षु चीवर फेक शरीरको वर्षामे नहला रहे है। देखकर—आराममे भिक्षु नही है । आ जी व क[1] शरीरको वर्षा खिला रहे है—(सोच) जहाँ वि शा खा मृ गा र मा ता थी वहाँ गई । जाकर यह कहा—"आर्ये आराममे भिक्षु नही है। आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे है।"

तब पडिता चतुरा मेधाविनी होनेसे वि शा खा मृ गा र मा ता को यह हुआ—

"निस्सशय आर्य लोग चीवर फेककर शरीरको वर्षा खिला रहे है, और इस मूर्खाने मान लिया कि आराममे भिक्षु नही है और आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे है ।"

फिर दासीको आज्ञा दी—

"जारे ! आराममे जाकर समयकी सूचना दे—० ।"

तब वे भिक्षु शरीरको ठढाकर शान्त शरीरवाले हो चीवरोको ले अपने अपने विहारमे चले गये। तब वह दासी आराममे जा भिक्षुओको न देख—आराममे भिक्षु नही है, आराम सूना है—(सोच) जहाँ वि शा खा मृ गा र मा ता थी वहाँ गई। जाकर वि शा खा मृ गा र मा ता से यह कहा—

"आर्ये ! आराममे भिक्षु नही है। आराम सूना है।"

तब पडिता, चतुरा, मेधाविनी होनेसे वि शा खा मृ गा र मा ता को यह हुआ—

'निस्सशय आर्य लोग शरीरको ठढाकर, शान्तकाय हो चीवरको लेकर अपने अपने विहारमे चले गये होगे, और इस मूर्खाने समझा कि आराममे भिक्षु नही है, आराम सूना है ।'

और फिर दासीको भेजा—'जारे ! ०'

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पात्र-चीवर तैयार कर लो ! भोजनका समय है ।"

अच्छा भन्ते ! (कह) उन भिक्षुओने भगवान्को उत्तर दिया—

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर, पात्र-चीवर ले, जैसे बलवान् पुरुष (अप्रयास) समेटी बाँहको पसारे और पसारी बाँहको समेटे वैसे ही जे त व न मे अन्तर्धान हो वि शा खा मृ गा र मा ता के कोठेपर प्रकट हुए और भिक्षु-सघके साथ विछे आसनपर बैठे। तब वि शा खा मृ गा र मा ता—'आश्चर्य रे ! अद्भुत रे ! तथागतकी दिव्यशक्ति=महानुभावताको जोकि जाँघ भर, कमर भर, बाढके वर्तमान होनेपर भी एक भिक्षुका भी पैर, या चीवर न भीगा !—सोच हर्पित=उदग्र हो बुद्ध सहित भिक्षु-सघको उत्तम खाद्य-भोज्य द्वारा सतर्पित कर भगवान्के भोजन कर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गई।

(६) वर्षिकशाटी आदिका विधान

एक ओर बैठी वि शा खा मृ गा र मा ता ने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! मै भगवान्से आठ वर माँगती हूँ ।"

"विशाखे ! तथागत वरोसे परे हो गये है ।"

"भन्ते ! जो विहित है, जो निर्दोष है ।"

---

[1] उस समयके नगे साधुओका एक सप्रदाय ।

"बोल विशाखे !"

"भन्ते ! (१) मै यावत्जीवन सघको वर्षाकी व र्षि क सा टि का (वरसातके लिये धोती) देना चाहती हूँ, (२) नवागन्तुकोको भोजन देना, (३) प्रस्थान करनेवालोको भोजन देना, (४) रोगीको भोजन देना, (५) रोगी परिचारकको भोजन देना, (६) रोगीको दवा देना, (७) सदा सवेरे यवागू (=खिचळी) देना, (८) भिक्षुणी-सघको उ द क सा टी[1] देना।"

"विशाखे ! क्या बात देख तूने तथागतसे आठ वर माँगे ?"

१—"भन्ते ! मैने दासीको आज आज्ञा दी—'जारे ! आराममे जाकर कालकी सूचना दे—(भोजनका) काल है, भन्ते ! भोजन तैयार है—'तब उस दासीने आराममे जाकर देखा कि भिक्षु लोग कपडे फेक शरीरको वर्षा खिला रहे है, और मेरे पास आकर कहा—'आर्ये ! आराममे भिक्षु नही है। आ जी व क शरीरको वर्षा खिला रहे है।' भन्ते ! नग्नता गदी, घृणित, बुरी चीज है। भन्ते ! यह बात देख मै सघको यावत् जीवन व र्षि क सा टि का देना चाहती हूँ।

२—"और फिर भन्ते ! नवागन्तुक भिक्षु गलीको नही जानते, रास्तेको नही जानते, थके हुए भिक्षाटन करते है। वह मेरे दिये नवागन्तुकके भोजनको खा, गली जाननेवाले, रास्ता पहिचाननेवाले हो, थकावट दूरकर भिक्षाचार करेगे। भन्ते ! इस बातको देख मै सघको यावत् जीवन नवागन्तुकको भोजन देना चाहती हूँ।

३—"और फिर भन्ते ! प्रस्थान करनेवाले भिक्षुओको अपना भोजन ढूँढते वक्त उनका कारवाँ छूट जाता है, या जहाँ वह निवास करनेको जाना चाहते है वहाँ वि का ल (=अपराह्ण)मे पहुँचेगे, थके हुए रास्ता जायँगे। मेरे प्रस्थान करनेवालोके भोजनको खाकर उनका कारवाँ न छूटेगा और जहाँ वह जाना चाहते है वहाँ कालसे पहुँचेंगे। बिना थकावटके रास्ता जायँगे। भन्ते इस बातको देख मैं चाहती हूँ सघको जीवन भर ग मि क - भोजन (प्रस्थान करनेवालोको भोजन) देनेकी।

४—"और फिर भन्ते ! रोगी भिक्षुको अनुकूल भोजन न मिलनेसे रोग बढता है या मृत्यु होती है। भन्ते ! मेरे रोगी भोजनको खाकर उनका रोग नही बढेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते ! इस बातको देख मै चाहती हूँ जीवन भर सघको रोगी-भोजन देना।

५—"और फिर भन्ते ! रोगी-परिचारक भिक्षु अपने भोजनकी खोजमे रोगीके पास चिरसे भोजन ले जायेगा या उस दिन खा न सकेगा। यदि वह रोगी-परिचारकके भोजनको खाकर रोगीके लिये कालसे भोजन ले जायेगा तो भ क्त च्छे द (=भोजन न मिलना) न होगा। भन्ते ! इस बातको देख मै चाहती हूँ सघको जीवन भर रोगि-परिचारक-भोजन देना।

६—"और फिर भन्ते ! रोगी-भिक्षुको अनुकूल भैषज्य न मिलनेपर रोग बढता है या मृत्यु होती है। मेरे रोगी-भैषज्यको ग्रहण करनेसे न उनका रोग बढेगा, न मृत्यु होगी। भन्ते इस बातको देख मैं चाहती हूँ सघको यावत् जीवन रोगी-भैषज्य देना।

७—"और फिर भन्ते ! भगवान्ने अ न्ध क विं द मे दश गुणोको देख यवागूकी अनुमति दी है। भन्ते ! उन गुणोको देख मै चाहती हूँ सघको सदा यवागू देना।

८—"भन्ते ! एक बार भिक्षुणियाँ अचिरवती (=राप्ती नदी)मे वेश्याओके साथ एक ही घाटमे नगी नहाती थी। तब भन्ते ! उन वेश्याओने भिक्षुणियोसे ताना मारा—'तुम नवयुवतियोको ब्रह्मचर्य पालन करनेमे क्या ? (पहले) तो भोगोका उपभोग करना चाहिये। जब बुड्ढी होना तब ब्रह्मचर्य करना। इस प्रकार तुम्हारा दोनो ही मतलब सिद्ध होगा।' तब भन्ते ! उन वेश्याओके ताना मारने

---

[1] स्त्रियोके मासिकधर्मके समय काममें लाया जानेवाला वस्त्र।

पर वह भिक्षुणियाँ चुप हो गई। भन्ते ! स्त्रियोकी नग्नता गदी, घृणित, बुरी (चीज) है। भन्ते ! इस बातको देख मै चाहती हूँ कि भिक्षुणी सघको यावत् जीवन उ द क सा टी देना।"

"वि शा खे ! तूने किस गुणको देख तथा गतसे आठ वर माँगे ?"

"भन्ते ! जब दिशाओमे वर्षावासकर भिक्षु श्रा व स्ती मे भगवान्‌के दर्शनके लिये आयेगे तब भगवान्‌के पास आकर पूछेगे—'भन्ते अमुक नामवाला भिक्षु मर गया। उसकी क्या गति है ? क्या परलोक है ? उसके लिये भगवान् श्रो त - आ प त्ति - फ ल, स कृ दा गा मि - फ ल, अ ना गा मि - फ ल, या अ र्ह त्व का व्या क र ण करेगे। उनके पास जाकर मै पूछूँगी—'क्या भन्ते ! वह (मृत) आर्य श्रावस्ती-मे कभी आये थे ?' यदि वह मुझसे कहेगे—'वह भिक्षु पहले श्रावस्ती आया था तो मै निश्चय कर लूँगी निस्सशय उस आर्यने ग्रहण किया होगा व र्पि क सा टि का को या न वा ग न्तु क भोजनको, या ग मि क-भोजनको या रो गि - भो ज न को, या रो गि - परिचारक भोजनको, या रो गि - भैषज्यको या सदाके यवागूको। उसको यादकर मेरे चित्तमे प्रमोद होगा, प्रमुदित होनेसे प्रीति उत्पन्न होगी, प्रीतियुक्त होने पर काया शान्त होगी, काया शान्त होनेपर सुख-अनुभव करूँगी और सुखिनी होनेपर मेरा चित्त समाधि-को प्राप्त होगा और वह होगी मेरी इ न्द्रि य-भावना, ब ल-भावना, बो ध्य ग-भावना। भन्ते ! इस गुण-को देख मैने तथागतसे आठ वर माँगे।"

"साधु ! साधु ! विशाखे, तूने इन गुणोको ठीक ही देख तथागतसे आठ वर माँगे। विशाखे ! स्वीकृति देता हूँ तुझे आठ वरोकी।"

तब भगवान्‌ने वि शा खा मृ गा र मा ता को इन गाथाओसे अनुमोदन किया—

"जो शीलवती, सुगतकी शिष्या प्रमुदित हो अन्न, पान देती है,
कृपणताको छोड शोक-हारक, सुख-दायक, स्वर्ग-प्रद दानको देती है।
वह निर्मल, निर्दोष, मार्गको या दिव्यबल और आयुको प्राप्त होगी।
पुण्यकी इच्छावाली वह सुखिनी और नीरोग हो चिरकाल तक स्वर्ग-लोकमे प्रमोद करेगी।"

तब भगवान् विशाखा मृगारमाताका इन गाथाओसे अनुमोदनकर, आसनसे उठ चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, वर्पिक-साटिकाकी, नवागतुक-भोजनकी, गमिक-भोजनकी, रोगि-भोजनकी, रोगि-परिचारक-भोजनकी, रोगि-भैषज्यकी, सदाके यवागूकी, और भिक्षुणी-सघको उदक-साटीकी।" 44

विशाखा भाणवार समाप्त

(७) काया, चीवर और आसन आदिको सँभालकर बैठना

उस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृ ति और स प्र ज न्य (=जागरूकता) रहित हो नीद लेते थे। स्मृति और सप्रजन्य रहित हो नीद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता था और आसन वासन अशुचिसे मलिन होता था। तब आयुष्मान् आनदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने, आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा। देखकर आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—"आनद क्यो ये आसन-वासन मलिन हो रहे है ?"

"भन्ते ! इस समय भिक्षु उत्तम भोजन खाकर स्मृ ति और स प्र ज न्य रहित हो नीद लेते है। स्मृति और सप्रजन्य रहित हो नीद लेनेसे उनको स्वप्नदोष होता है और आसन-वासन अशुचिसे मलिन होता है।"

"यह ऐसा ही है आनद ! यह ऐसा ही है आनद ! आनद ! स्मृ ति सप्रजन्य रहित हो निद्रा लेतेको स्वप्नदोष होता ही है। आनन्द ! जो भिक्षु स्मृ ति और स प्र ज न्य से युक्त हो निद्रा लेते है उनको

स्वप्नदोष नही होता। आनन्द ! जो वह पृ थ क् ज न (=सासारिक पुरुष) काम भोगोमे वीतराग नही है उनको भी स्वप्नदोप नही होता। यह सभव नही आनन्द ! इसकी जगह नही कि अर्हतोको स्वप्न-दोप हो।"

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! आज मैने आनदको पीछे ले आश्रम घूमते वक्त आसन-वासनको अशुचि-पूर्ण देखा ० अर्हतोको स्वप्नदोप हो।"

"भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पाँच दोप है—(१) दुखके साथ सोता है, (२) दुखके साथ जागता है, (३) बुरे स्वप्नको देखता है, (४) देवता रक्षा नही करते, (५) स्वप्नदोप होता है।—भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य रहित हो निद्रा लेनेके यह पॉच दोष है।

"भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पॉच गुण है—(१) सुखसे सोता है, (२) सुखसे जागता है, (३) बुरे स्वप्न नही देखता, (४) देवता रक्षा करते है, (५) स्वप्नदोष नही होता। भिक्षुओ ! स्मृ ति स प्र ज न्य युक्त हो निद्रा लेनेके यह पॉच गुण है।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ कायकी रक्षा करते, चीवरकी रक्षा करते, आसन-वासनकी रक्षा करते बैठनेकी।" 45

§५—कुछ और वस्त्रोंका विधान तथा चीवरोंके लिये नियम

(१) बिछौनेकी चादर

उस समय बिछौना बहुत छोटा होता था और वह सारे आसनको नही ढकता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प्र त्य स्त र ण (=आसनकी चादर) जितना बळा चाहे उतना बळा बनानेकी।" 46

(२) रोगीको कोपीन

उस समय आयुष्मान् आनन्दके उपाध्याय आयुष्मान् बे ल ट्ठ सी स को स्थूलकक्ष (=दाद) रोग था। उसके पछासे चीवर शरीरमे लिपट जाते थे। उन्हे भिक्षु पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते थे। आश्रम घूमते वक्त भगवान्‌ने उन भिक्षुओको वह चीवर पानीसे भिगो भिगोकर छुळाते देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु थे वहॉ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भिक्षुओ ! इस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! इस आयुष्मान्‌को स्थूलकक्ष रोग है और पछासे चीवर शरीरमे लिपट जाते है। उन्हे हम पानीसे भिगो भिगोकर छुळा रहे है।"

तब भगवान्‌ने इसी प्रकरणमे इसी सबधमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, जिस भिक्षुको खुजली, फोळा, आस्राव या स्थूलकक्षका रोग हो उसको क ण्डू प्र ति च्छा द न (=कोपीन)की।" 47

(३) अँगोछा (=मुख-पोछन)

तब वि शा खा मृ गा र मा ता मुख पोछनेका वस्त्र ले जहॉ भगवान् थे वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठी। एक ओर बैठी वि शा खा मृ गा र मा ता ने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् इस मेरे मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार करे जिसमे कि यह मुझे चिरकाल तक हित सुखके लिये हो।"

भगवान्ने मुख पोछनेके वस्त्रको स्वीकार किया। ० वि शा खा मृ गा र मा ता भगवान्की धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो आसनसे उठकर चली गई। तव भगवान्ने० भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ मुख पोछनेके वस्त्रकी।" 48

(४) पाँच बातोंसे युक्त व्यक्तिको विश्वसनीय समझना

उस समय रो ज म ल्ल आयुष्मान् आनन्दका मित्र था। रो ज म ल्ल ने क्षौ म (=अलसीकी छालका बना कपळा)की पि लो ति का आयुष्मान् आनन्दके हाथमे दी थी और आयुष्मान् आनन्दको क्षौम पि लो ति का की आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच बातोसे युक्त (=व्यक्ति)पर विश्वास करनेकी—(१) प्रसिद्ध हो, (२) सभ्रान्त हो, (३) बोलनेवाला हो, (४) जीता हो, (५) लेनेपर मुझसे सतुष्ट होगा यह जानता हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँच बातोसे युक्तपर विश्वास करनेकी।" 49

(५) जलछक्के आदिके लिये उपयोगी वस्त्र

उस समय भिक्षुओके तीनो चीवर पूर्ण थे किन्तु उन्हे जलछक्के और थैलेकी आवश्यकता थी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ प रि ष्का र (=कामकी वस्तुओ)के वस्त्रकी।" 50

(६) वस्त्रोंमे कुछका सदा और कुछका बारी बारीसे इस्तेमाल करना

तब भिक्षुओको यह हुआ—भगवान्ने जिन चीजोके लिये अनुमति दी है (-जैसे कि)—तीन चीवर, वर्षिक साटिका, आसन, प्रत्यस्तरण, कडूक-प्रतिच्छादन, या मुख पोछनेका वस्त्र या परिष्कार वस्त्र, उन सभीका उपयोग करना चाहिये, या उनका वि क ल्प[1] करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीनो चीवरोको उपयोग करनेकी। विकल्प करनेकी नही। वर्षिक साटिकाको वर्षाके चारो मासो तक इस्तेमाल करनेकी उसके बाद विकल्प करनेकी, आसनको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नही, प्र त्य स्त र ण को इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नही, क डू क प्र ति च्छा द न को जव तक रोग है इस्तेमाल करनेकी, इसके बाद विकल्प करनेकी, मुख पोछनेके वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नही, परिष्कार, वस्त्रको इस्तेमाल करनेकी, विकल्प करनेकी नही।" 51

(७) बारीवाले चीवरकी लम्बाई चौळाई

तब भिक्षुओको यह हुआ—'कितने पीछेके चीवरका विकल्प करना चाहिये।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, बुद्धके अगुलसे लम्बाईमे आठ अगुल, चौळाईमे चार अगुल पीछेके चीवरको विकल्प करनेकी।" 52

---

[1] जिनको एक साथ नहीं रखा जा सकता।

(८) चीवरको हल्का, नरम आदि करनेका ढग

१—उस समय आयुष्मान् म हा का श्य प का पासुकूलसे बना (चीवर) भारी था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ सू त्र रु क्ष[1] करनेकी।" 53

२—(चीवरका) कान लटका था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ लटके कानको निकालनेकी।" 54

३—सूत बिखरे रहते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, हवाके रुख ऊपर चढा लेनेकी।" 55

४—उस समय सघाटीसे पात्र टूट जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अष्टपदक[2] करनेकी।" 56

(९) कपळा कम होनेपर तीनो चीवरको छिन्नक नही बनाना

१—उस समय एक भिक्षुके लिये तीनो चीवर बनाते वक्त सारे छिन्नक (=टुकळेसिये) करके नही पूरे होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, दो चीवरके छिन्नक होनेकी और एकके अछिन्नक होनेकी।" 57

२—दो छिन्नक और एक अछिन्नक भी नही पूरे पळते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ दो अछिन्नक और एक छिन्नककी।" 58

३—दो अछिन्नक और एक छिन्नक भी नही पूरा पळता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अ न्वा धिक (=जोळ)को भी लगानेकी। किन्तु भिक्षुओ सभी (चीवर)को अछिन्नक नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 59

(१०) अधिक वस्त्र माता-पिताको दिया जा सकता है

उस समय एक भिक्षुको बहुत चीवर (=कपळा, वस्त्र) मिला था। वह उसे माता-पिताको देना चाहता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! माता-पिताके देनेको मै क्या कहूँ। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ माता-पिताको देनेकी। भिक्षुओ! श्रद्धासे दियेको नही फेकना चाहिये। जो फेके उसको दुक्कटका दोष हो।" 60

(११) एक चीवरसे गाँवमे नही जाना

उस समय एक भिक्षु अ न्ध व न मे चीवरको डालकर उसके पास जो एक और (चीवर) था उसके साथ गाँवमे भिक्षाके लिये गया। चोर उस चीवरको चुरा ले गया और वह भिक्षु खराव चीवर-वाला, मैले चीवरवाला हो गया। भिक्षुओने पूछा—"आवुस! तू क्यो खराव चीवरवाला, मैले चीवर वाला है ?"

"आवुसो! मै अन्धवनमे चीवर डालकर० भिक्षाके लिये गया। चोरोने उस चीवरको चुरा लिया। उसीसे मै खराव चीवरवाला, मैले चीवरवाला हूँ।" भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] चीवरकी कटी क्यारियोकी मेंळको दोहरा करना होता है। सू त्र रु क्ष करनेमें कपळेको दोहरा करनेके बजाय सूतकी सिलाईहीसे वह काम लिया जाता है।

[2] मुहँ सीकर बनाया हुआ ढक्कन।

"भिक्षुओ ! एकही (और) बचे चीवरसे गाँवमे नही जाना चाहिये। जो जाये उसको दुक्कट का दोष हो।" 61

(१२) चीवरोंमेंसे किसी एकको छोळ रखनेके कारण

उस समय आयुष्मान् आ न न्द (पहने चीवरको छोळ) और दूसरे चीवरके न रहते गाँवमें भिक्षाके लिये गये। भिक्षुओने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"क्यो आवुस ! आनन्द, भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमे जानेको मना किया है न? आवुस ! तुम क्यो एकही चीवर और रहते गाँवमे प्रविष्ट हुए ।"

"आवुसो ! यह है। भगवान्‌ने एकही चीवर और रहते गाँवमे जानेको मना किया है, किन्तु मै न रहनेपर प्रविष्ट हुआ हूँ।"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोसे स घा टी रख छोळी जा सकती है—(१) रोगी होता है, (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है, (३) या नदी पार गया होता है, (४) या किवाळसे रक्षित विहार होता है, (५) या क ठि न आस्थत हो गया होता है। भिक्षुओ ! सघाटी छोळ रखनेके ये चार कारण (ठीक) है। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोसे उ त्त रा स घ रख छोळा जा सकता है— (१) रोगी होता है, (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है०, (५) या क ठि न आस्थत हो गया होता है, ०। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोसे अ न्त र वा स क रख छोळा जा सकता है— (१) रोगी होता है, (२) वर्षाका लक्षण मालूम होता है०, (५) या कठिन आस्थत हो गया होता है, ०। भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोसे व र्षि क सा टि का को रख छोळा जा सकता है—(१) रोगी होता है, (२) सीमाके बाहर गया हो, (३) नदीके पार गया हो, (४) या किवाळसे रक्षित विहार हो, (५) वर्षिक साटिका न बनी या बेठीक बनी हो, भिक्षुओ ! इन पाँच कारणोसे वर्षिक साटिका रख छोळी जा सकती है।" 62

§६—चीवरोंका बँटवारा

(१) सघके लिये दिये चीवरपर अधिकार

१—उस समय एक भिक्षुने अकेलेही वर्षावास किया। वहाँ लोगोने—'सघको देते है'—(कह) चीवर दिये। तब उस भिक्षुको यह हुआ—'भगवान्‌ने विधान किया है, कमसे कम चार व्यक्तिके सघका, और मै अकेला हूँ। इन लोगोने—'सघको देते है' (कह) चीवर दिये है। क्यो न मै इन साघिक (= सघके) चीवरोको श्रा व स्ती ले चलूँ ?' तब उस भिक्षुने उन चीवरोको ले श्रावस्ती जा भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षु ! जबतक कठिन न मिल जाय वह चीवर तेरेही है। भिक्षुओ ! यदि भिक्षुने अकेला वर्षावास किया है और मनुष्योने—'सघको देते है'—(कह) चीवर दिये है। तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उन चीवरोके उसीके होनेकी, जब तक कि कठिन नही मिल जाता।" 63

२—उस समय एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योने—'सघको देते है'—(कह) चीवर दिया। ०[1] ०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सघके सामने बाँटनेकी।" 64

---

[1]ऊपरहीकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

३—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने एक ऋतुभर अकेले वास किया। वहाँ मनुष्योने—'सघको देते है'—(कह) चीवर दिया हो, तो—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ उस भिक्षुको—'यह चीवर मेरे है'—(कह) उन चीवरोको इस्तेमाल करनेकी। यदि भिक्षुओ ! उन चीवरोको इस्तेमाल करनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आ जाय तो बराबरका हिस्सा देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! उन भिक्षुओके चीवर बाँटते समय किन्तु कुश पडनेसे पहिले दूसरा भिक्षु आजाय तो उसेभी बराबरका भाग देना चाहिये। भिक्षुओ ! यदि उन भिक्षुओके चीवर बाँटते समय और कुशके डाल देनेपर दूसरा भिक्षु आवे तो इच्छा न होनेपर भाग न देना चाहिये।" 65

४—उस समय आयुष्मान् ऋ षि दा स और आयुष्मान् ऋ षि भ द्र दो भाई स्थविर वर्षावास कर एक गाँवके आवासमे गये। लोगोने—देरसे स्थविर लोग आये है—(कह) चीवर सहित भोजन तैयार किया। आवासके रहनेवाले भिक्षुओने स्थविरोसे पूछा—

"भन्ते ! स्थविरोके कारण यह साधिक चीवर मिले है। स्थविर (इनमे) भाग लेगे ?"

स्थविरोने यह कहा—"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्के उपदेशे धर्मको जानते है (उससे) जबतक क ठि न न मिले तबतक तुम्हारेही वे चीवर होते है।"

उस समय तीन भिक्षु राजगृहमे वर्षावास करते थे। वहाँ लोग—'सघको देते है'—(कह) चीवर देते थे। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'भगवान्ने कमसे कम चार व्यक्तिका सघ कहा है, और हम तीन ही जने है। यह लोग—'सघको देते है'—(कह) चीवर दे रहे है। हमे कैसे करना चाहिये ?'

५—उस समय[१] आयुष्मान् नी ल वा सी आयुष्मान् साँ ण वा सी, आयुष्मान् गो प क, आयुष्मान् भृ गु, और आयुष्मान् फलिक स दा न—बहुतसे स्थविर पा ट लि पु त्र के कु क्कु टा रा म मे विहार करते थे। तब उन भिक्षुओने पाटलिपुत्र जा उन स्थविरोसे पूछा। स्थविरोने यह कहा—

"आवुसो ! जैसा कि हम भगवान्के उपदेशे धर्मको जानते है, जब तक क ठि न न मिले तुम्हारे ही वे होते है।"

(२) वर्षावासके भिन्न स्थानके चीवरमे भाग नही

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र श्रा व स्ती मे वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमे गये। वहाँ चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

"आवुस ! यह साधिक चीवर बाँटे जा रहे है। आप इनमे हिस्सा लेगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवरमे-भाग ले दूसरे आवासमे गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह साधिक चीवर बाँटे जा रहे है। आप (इनमे) हिस्सा लेगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमे गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिए भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—"आवुस ! यह साधिक चीवर बाँटे जा रहे है। आप (इनमे) हिस्सा लेगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले दूसरे आवासमे गये। वहाँ (भी) चीवर बाँटनेके लिये भिक्षु जमा हुए थे। उन्होने यह कहा—

---

[१] यह अश बुद्ध-निर्वाणके बादका है। पा ट लि पु त्र (पाटलि गाम नहीं) नगर और कु क्कु टा रा म निर्वाणके बाद ही अस्तित्वमें आये थे।

"आवुस ! यह साघिक चीवर बाँटे जा रहे हैं। आप (इनमे) हिस्सा लेगे ?"

"हाँ आवुस ! लूँगा"—(कह) वहाँसे चीवर-भाग ले बळा भारी चीवरका गट्ठर बाँध फिर श्रा व स्ती लौट आये। भिक्षुओने यह कहा—

"आवुस उपनद ! तुम बळे पुण्यवान् हो। तुम्हे बहुत चीवर मिला है।"

"आवुसो ! कहाँसे मै पुण्यवान् हूँ ? आवुसो ! मै यहाँ श्रावस्तीमे वर्षावासकर एक ग्रामके आवासमे गया० वहाँसे भी चीवर-भाग लिया। इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिल गया।"

"क्या आवुस उपनद ! दूसरी जगह वर्षावास करके तुमने दूसरी जगह चीवर-भाग लिया ?"

"हाँ आवुस !"

तब वह जो भिक्षु अल्पेच्छ थे वह हैरान होते थे—"कैसे आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर-भाग लेगे !!" भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच उपनद ! तूने दूसरी जगह वर्षावासकर, दूसरी जगह चीवर-भाग लिया ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे तू मोघ-पुरुष ! दूसरी जगह वर्षावासकर दूसरी जगह चीवर-भाग लेगा ! मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! दूसरी जगह वर्षावास करके, दूसरी जगह चीवर-भाग नही लेना चाहिये। जो ले उसको दुक्कटका दोष हो।" 66

(३) दो स्थानमे वर्षावास करनेपर हिस्सेका आधा ही आधा

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्रने—इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा—(सोच) अकेले दो आवासोमे वर्षावास किया। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्रको चीवरमे हिस्सा देना चाहिये ?'—भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! दे दो मोघ पुरुषको एक भाग।

"यदि भिक्षुओ ! भिक्षु—'इस प्रकार मुझे बहुत चीवर मिलेगा'—सोच अकेले दो आवासोमे वर्षावास करे और यदि एक जगह आधा और दूसरी जगह आधा बसे तो एक जगहसे आधा और दूसरी जगहसे आधा चीवर-भाग देना चाहिये। या जहाँ बहुत अधिक बसा हो वहाँसे चीवर-भाग देना चाहिये।" 67

§७–रोगीकी सेवा और मृतकका दायभागी

(१) रोगीकी सेवाका भार

उस समय एक भिक्षुको पेट बिगळनेकी बीमारी थी। वह अपने मल-मूत्रमे पळा था। तब भगवान् आयुष्मान् आनदको पीछे लिये आश्रम घूमते हुए जहाँ उस भिक्षुका विहार था वहाँ पहुँचे। भगवान्‌ने उस भिक्षुको अपने मल-मूत्रमे पळा देखा। देखकर जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गये। जाकर उस भिक्षुसे यह बोले—

"भिक्षु ! तुझे क्या रोग है ?"

"पेटमे विकार है, भगवान् !"

"है तेरे पास भिक्षु ! कोई परिचारक ?"

"नही है भगवान् ।"

"क्यो भिक्षु तेरी परिचर्या नही करते ?"

"भन्ते ! मै भिक्षुओका कोई काम करनेवाला न था, इसलिये भिक्षु मेरी परिचर्या नही करते ।'

तब भगवान्ने आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—

"जा आनद ! पानी ला, इस भिक्षुको नहलायेगे ।"

"अच्छा भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् आनद भगवान्को उत्तर दे पानी लाये। भगवान्ने पानी डाला। आयुष्मान् आनदने धोया। भगवान्ने शिरसे पकळा तथा आयुष्मान् आनदने पैरसे, और उठाकर चारपाई पर लिटा दिया।

तब भगवान्ने उसी सबधमे उसी प्रकरणमे भिक्षु सघको एकत्रितकर पूछा—

"भिक्षुओ ! क्या अमुक विहारमे रोगी भिक्षु है ?"

"है, भगवान् ।"

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुको क्या रोग है ?"

"भन्ते ! उस आयुष्मान्को पेटके विकारका रोग है ।"

"है कोई, भिक्षुओ ! उस भिक्षुका परिचारक ?"

"नही है भगवान् ।"

"क्यो भिक्षु उसकी सेवा नही करते ?"

"भन्ते ! वह भिक्षु भिक्षुओका कोई काम करनेवाला नही था, इसलिये भिक्षु उसकी सेवा नही करते ।"

"भिक्षुओ ! न तुम्हारे माता है न पिता, जो कि तुम्हारी सेवा करेगे। यदि तुम एक दूसरेकी सेवा नही करोगे तो कौन सेवा करेगा ?

"भिक्षुओ ! जो मेरी सेवा करना चाहे वह रोगीकी सेवा करे। यदि उपाध्याय है तो उपाध्यायको यावत् जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि आचार्य है ०। यदि साथ विहार करनेवाला है ०। यदि शिष्य है ०। यदि एक-उपाध्याय-का शिष्य है ०। यदि एक-आचार्य-का शिष्य है तो यावत्-जीवन सेवा करनी चाहिये जब तक कि रोगी रोग-मुक्त न हो जाय। यदि नही है तो उपाध्याय, आचार्य, साथ-विहरनेवाला (=चेला), शिष्य, एक-उपाध्याय-का-शिष्य, एक-आचार्य-का-शिष्य या सघको सेवा करनी चाहिये। यदि न सेवा करे तो दुक्कटका दोप हो।" 68

(२) कैसे रोगीकी सेवा दुष्कर है

"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है—(१) (साथियोके) अनुकूल न करनेवाला होता है, (२) अनुकूलकी मात्रा नही जानता, (३) औपध सेवन नहीं करता, (४) हित चाहनेवाले रोगि-परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात नही प्रकट करता—बढते (रोग)को बढ रहा है, हटतेको हट रहा है, ठहरेको ठहरा है, (५) दु खमय, तीव्र, खर, कटु, प्रतिकूल, अप्रिय, प्राणहर, शारीरिक पीळाओका सहनेवाला नही होता। भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त रोगीकी सेवा करनी मुश्किल होती है।"

(३) कैसे रोगीकी सेवा सुकर है

"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त रोगीकी सेवा करना सुकर होता है—(१) अनुकूल करनेवाला होता है, (२) अनुकूलकी मात्रा जानता है, (३) औपध सेवन करता है; (४) हित चाहनेवाले रोगि-

परिचारकसे ठीक ठीक रोगकी बात प्रगट करता है—०, (५) दुखमय ० शारीरिक पीळाओको सहने-वाला होता है। भिक्षुओ ! इन पॉच ०।"

(४) अयोग्य रोगी परिचारक

"भिक्षुओ ! पॉच बातोसे युक्त रो गी - प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य नही होता—(१) दवा नही ठीक कर सकता, (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को नही जानता, प्रतिकूलको देता है, अनुकूलको हटाता है, (३) किसी लाभके ख्यालसे रोगीकी सेवा करता है मैत्री-पूर्ण चित्तसे नही, (४) मल-मूत्र, थूक और वमनके हटानेमे घृणा करता है, (५) रोगीको समय समय पर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित करनेमे समर्थ नही होता। भिक्षुओ ! इन पॉच ०।"

(५) योग्य रोगी परिचारक

"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त रो गी - प रि चा र क रोगीकी परिचर्या करने योग्य होता है—(१) दवा ठीक करनेमे समर्थ होता है, (२) अनुकूल-प्रतिकूल (वस्तु)को जानता है—प्रतिकूलको हटाता है, अनुकूलको देता हे, (३) किसी लाभके ख्यालसे नही, मैत्री-पूर्ण चित्तसे रोगीकी सेवा करता है, (४) मल-मूत्र, थूक और वमनके हटानेमे घृणा नही करता, (५) रोगीको समय समयपर धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित करनेमे समर्थ होता है। भिक्षुओ ! इन पॉच ०।"

(६) मरे भिक्षु या श्रामणेरकी चीजका मालिक संघ

१—उस समय दो भिक्षु को स ल ज न प द मे रास्तेसे जा रहे थे। वह एक आवासमे गये। वहाँ एक बीमार भिक्षु था। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'आवुस ! भगवान्ने रोगी-सेवाकी प्रशसा की है। आओ आवुस ! हम इस रोगीकी सेवा करे।' उन्होने उसकी सेवाकी। उनके सेवा करतेमे वह मर गया। तब उन भिक्षुओने उस भिक्षुके पात्र-चीवरको लेकर श्रावस्ती जा भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! मरे भिक्षुके पात्र-चीवरका स्वामी सघ है, यदि रो गी - प रि चा र क ने वहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सघको तीन चीवर और पात्रको रो गी - प रि चा र क को देने की। 69

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देना चाहिये, वह रो गी - परि चा र क भिक्षु सघके पास जाकर ऐसा कहे—'भन्ते ! अमुक नामवाला भिक्षु मर गया है। यह उसका त्रिचीवर और पात्र है।' फिर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—'पूज्य सघ मेरी सुने। अमुक नामका भिक्षु मर गया। यह उसका त्रि-चीवर और पात्र है। यदि सघ उचित समझे तो वह त्रिचीवर और पात्रको इस रो गी - प रि चा र क को दे। यह सूचना है ०। सघको यह पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।"

२ उस समय एक श्रामणेर मर गया। भगवान्से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! श्रामणेरके मरनेपर उसके पात्र-चीवरका स्वामी सघ है, यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ सघको तीन चीवर और पात्रको रोगी-परिचारक-को देने की। 70

०[1] ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(७) मरेकी सपत्तिमे सेवा करनेवाले भिक्षु और श्रामणेरका भाग

१—उस समय एक भिक्षु और एक श्रामणेरने एक रोगीकी सेवाकी । उनकी सेवा करतेमे वह

[1] ऊपरकी तरह यहॉ भी दुहराना चाहिये ।

मर गया। तब उस रोगी-परिचारक भिक्षुको ऐसा हुआ—'रो गी - प रि चा र क श्रामणेरको कैसे हिस्सा देना चाहिये ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, रोगी-परिचारक श्रामणेरको बराबरका भाग देने की।" 71

२—उस समय बहुत भाड-बहुत सामानवाला एक भिक्षु मर गया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! भिक्षुके मरनेपर उसके पात्र-चीवरका स्वामी सघ है। यदि रोगी-परिचारकने बहुत काम किया हो तो अनुमति देता हूँ सघको त्रिचीवर और पात्र रोगी-परिचारकको देनेकी। जो वहाँ छोटे छोटे भाड, छोटे छोटे सामान हो उन्हे सघके सामने बाँटने की, जो वहाँ बळे बळे भाड, बळे बळे सामान हो उन्हे विना दिये, विना बाँटे आगत-अनागत (=वर्तमान और भविष्यके) चातुर्दिश (=चारो दिशाओके, सारे ससारके) सघकी (सम्पत्ति) होने की।" 72

§८—चीवरोंके वस्त्र रंग आदि

(१) नगे रहनेका निषेध

उस समय एक भिक्षु नगा हो जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ! भगवान्‌ने अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता (=त्यागी जीवन) सन्तोष, तपस्या, (अव-) धूतपन, प्रासादिकता, अ-सग्रह, और उद्योगकी प्रशसा करते है। भन्ते ! यह नग्नता अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ०और उद्योगको लानेवाली है। अच्छा हो भन्ते ! भगवान् भिक्षुओको नग्न रहनेकी अनुमति दे।"

भगवान्‌ने फटकारा—

"अयुक्त हे मोघपुरुष ! अनुचित है, अप्रति रूप, श्रमणके आचरणके विरुद्ध, अविहित है, अकरणीय है। कैसे मोघपुरुष तूने तीर्थिकोके आचार इस नग्नताको ग्रहण किया ! मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! नग्नताको जो कि तीर्थिकोका आचार है नही ग्रहण करनी चाहिये। जो ग्रहण करे उसको थु ल्ल च्च य का दोष हो।" 73

(२) कुश-चीर आदिका निषेध

१—उस समय एक भिक्षु कुश-चीर (=कुशका बना कपळा)को पहनकर ० वल्कल चीर पहनकर ०, फलक (=काठ)-चीर पहनकर०, (मनुष्य) केश-कम्बल पहनकर ०, बाल-कम्बल पहनकर०, उल्लूका पख पहनकर०, मृग-छालेकी कतरनको पहनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ! भगवान् अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ० की प्रशसा करते हैं। भन्ते ! यह मृग-छालकी कतरन(का पहिनना) अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता ० और उद्योगको लानेवाला है। अच्छा हो भन्ते ! भगवान् भिक्षुओको इस मृगछालेकी कतरन (पहनने)की अनुमति दे।"

भगवान्‌ने फटकारा ०—

"भिक्षुओ ! अ जि न क्षि प (=मृग-छालेकी कतरन)को जोकि तीर्थिकोका आचार है नही धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे थु ल्ल च्च य का दोष हो।" 74

२—उस समय एक भिक्षु अ र्क - ना ल (= मँदारके नालका बना कपळा) पहनकर ० पोत्थक

(=टाट) पहनकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया ०।—[1]

"भिक्षुओ! पोत्थकको नही पहनना चाहिये। जो पहिने उसको दुक्कटका दोप हो।" 75

(३) बिल्कुल नीले पीले आदि चीवरोंका निषेध

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु सारे ही नीले चीवरोको धारण करते थे, सारे ही पीले चीवरोको धारण करते थे, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारगसे रगे०, सारे ही म हा ना म (=हल्दी)से रगे चीवरोको धारण करते थे। कटी किनारीवाले चीवरोको धारण करते थे, लबी किनारीके चीवरोको धारण करते थे, फूलदार किनारीवाले चीवरोको धारण करते थे, फन (की शकलकी) किनारीवाले चीवरोको धारण करते थे। कचुक धारण करते थे। तिरीटक (=एक छाल)को धारण करते थे। वेठन धारण करते थे। लोग हैरान होते थे—'कैसे० जैसे कि काम-भोगी गृहस्थ।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! न सारे नीले चीवरोको धारण करना चाहिये, न सारे पीले चीवरोको धारण करना चाहिये ० न वेठन धारण करना चाहिये। जो धारण करे उसे दु क्क ट का दोप हो।" 76

(४) चीवर आदिके न मिलनेपर सङ्घका कर्त्तव्य

१—उस समय वर्पावासकर भिक्षु चीवर न मिलनेसे चले जाते थे, भिक्षु-आश्रम छोळकर चले जाते थे। मर भी जाते थे। श्रामणेर बन जाते थे। (भिक्षु-) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाले हो जाते थे। अन्तिम वस्तु (=पा रा जि क)के दोपी माननेवाले भी हो जाते थे, उन्मत्त०, विक्षिप्त-चित्त०, होश न रखनेवाले०, दोप न देखनेपर भी (अपनेको) उ त्क्षि प्त क माननेवाले होते थे, दोपके प्रतिकार न करनेवाले उत्क्षिप्तक भी०, बुरी धारणाको न त्यागनेसे (अपनेको) उत्क्षिप्तक माननेवाले होते थे, पडक भी०, चोरके साथ वास करनेवाले भी०, तीर्थिकके पास चले जानेवाले भी०, तिर्यक् योनि[2]मे गये भी०, मातृघातक भी०, पितृघातक भी०, अर्हत् घातक भी०, भिक्षुणीदूपक भी०, सघमे फूट डालने-वाले भी०, (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले भी०, (स्त्री पुरुप) दोनोके लिगवाले भी (अपनेको) बतलानेवाले होते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ! वर्पावासकर भिक्षु, चीवरके न पानेसे चला जाता है तो योग्य ग्रा ह क[3] होनेपर देना चाहिये। 77

(५) चीवरोंका सङ्घ मालिक

१—"यदि भिक्षुओ! वर्पावासकर भिक्षु चीवरके न पानेसे भिक्षु-आश्रमको छोळ जाता है, मर जाता है, श्रामणेर०, (भिक्षु-)शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला०, अतिम वस्तुका दोषी अपनेको माननेवाला होता है, तो सघ मालिक है। 78

२—"यदि ० उन्मत्त० बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक मानता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये। 79

३—"यदि०, पडक०, दोनो लिगोवाला माननेवाला होता है तो सघ मालिक है।" 80

४—"यदि भिक्षुओ! वर्पावासकर चीवरके मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले चला जाता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये। 81

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी समझना चाहिये। मिलाओ चुल्लवग्ग भिक्षुणी-स्कन्धक (पृष्ठ ५१९)।

[2] पशु और प्रेत की योनि।

[3] चीवर आदि देकर सग्रह करने योग्य।

५—"यदि भिक्षुओ ! वर्षावासकर चीवर मिलनेपर (किन्तु उसके) बाँटनेसे पहले भिक्षु आश्रम छोळ चला जाता है, मर जाता है० अन्तिम वस्तुका दोपी माननेवाला होता है तो सघ स्वामी है।" 82

६—"यदि० बाँटनेसे पहिले उन्मत्त०, बुरी धारणाके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक माननेवाला होता है तो योग्य ग्राहक होनेपर देना चाहिये।" 83

७—"यदि० बाँटनेसे पहले पडक० दोनोके लिगोवाला माननेवाला होता है तो सघ मालिक है।" 84

§९—चीवर-दान और चीवर-वाहनके नियम

(१) संघ-भेद होनेपर चीवरोके सनके अनुसार बँटवारा

१—"यदि भिक्षुओ ! भिक्षुओके वर्षावास करलेनेपर चीवर मिलनेसे पहले सघमे फूट हो जाती है और लोग—सघको देते है—(कह) एक पक्षको पानी देते है और एक पक्षको चीवर देते है तो वह सघका ही है।" 85

२—"यदि भिक्षुओ ! भिक्षुओके वर्षावास कर लेनेपर सघमे फूट हो जाती है और लोग—सघको देते है—(कह) एक पक्षको (दक्षिणाका) पानी देते है और उसी पक्षको चीवर देते है, तो वह सघका ही है।" 86

३—"यदि० चीवरके मिलनेसे पहिलेही सघमे फूट हो जाती है और लोग—इस पक्षको देते है—(कह) एक पक्षको पानी देते है और दूसरे पक्षको चीवर देते है तो वह पक्षका ही है।" 87

४—"यदि० सघमे फूट हो जाती है और लोग—(इस) पक्षको देते है—(कह) एक पक्षको पानी देते है और उसी पक्षको चीवर देते है तो वह पक्षका ही है।" 88

५—"यदि भिक्षुओ ! भिक्षुओके वर्पावास करलेनेपर चीवरके मिल जानेपर (किन्तु) बाँटनेसे पहिले सघमे फूट होती है तो सबको बराबर बराबर बाँटना चाहिये।" 89

(२) दूसरेके लिये दिये चीवरोका चीवर-वाहक द्वारा उपयोग करनेमे नियम

१—उस समय आयुष्मान् रे व त ने एक भिक्षुके हाथमे—'यह चीवर स्थविरको देना'—(कह) आयुष्मान् सा रि पु त्र के पास एक चीवर भेजा। तब उस भिक्षुने रास्तेमे आयुष्मान् रे व त से (माँगनेपर पा जाने के) विश्वाससे उस चीवरको (अपने लिये) ले लिया। जब आयुष्मान् रे व त ने आयुष्मान् सारिपुत्रसे मिलनेपर पूछा—"भन्ते ! मैंने स्थविरके लिये चीवर भेजा था, मिला वह चीवर ?"

"आवुस ! मैंने उस चीवरको नही देखा।"

तब आयुष्मान् रे व त ने उस भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस ! (तुम) आयुष्मान्के हाथसे मैंने स्थविरके लिये चीवर भेजा, वह चीवर कहाँ है ?"

"भन्ते ! मैने आयुष्मान्से (माँगनेपर पाजाने के) विश्वाससे उस चीवरको (अपने लिये) ले लिया।"

भगवान्से यह वात कही—

"यदि भिक्षुओ ! (कोई) भिक्षु भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको दो—(कह) चीवर भेजे, और वह रास्तेमे भेजनेवालेका विश्वास (होनेसे अपने लिये) ले ले तो लेना ठीक है, जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे यदि लेता है तो लेना ठीक नही है।" 90

२—"यदि भिक्षुओ ! कोई (भिक्षु) भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको दो—(कह) चीवर

भेजता है, और वह रास्तेमें सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उसे मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है, तो इस्तेमाल करना ठीक है। जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे अगर लेता है, तो लेना ठीक नही।" 91

३—"यदि० वह रास्तेमे सुनता है कि जिसके लिये भेजा गया वह मर गया और उसे मरेका चीवर समझ इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नही। यदि भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक है।" 92

४—"यदि० सुनता है कि दोनो मर गये तो भेजनेवालेका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक है, जिसको भेजा गया उसका मृतक चीवर मान इस्तेमाल करे तो इस्ते-माल करना ठीक नही।" 93

५—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(कह) चीवर भेजता है, और वह रास्तेमे भेजनेवालेके विश्वाससे ले लेता है तो लेना ठीक नही, जिसको भेजा गया उसके विश्वाससे ले लेता है तो ठीक है।" 94

६—"यदि भिक्षुओ! कोई भिक्षु दूसरे भिक्षुके हाथसे—यह चीवर अमुकको देता हूँ—(कह) चीवर भेजता है, और वह रास्तेमें सुनता है कि भेजनेवाला मर गया और उसे मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक नही है, जिसके लिये भेजा गया है उसके विश्वाससे अगर लेता है तो ठीक है।" 95

७—"यदि० सुनता है जिसको भेजा गया वह मर गया और उसका मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करता है तो इस्तेमाल करना ठीक है। भेजनेवालेके विश्वाससे अगर ले लेता है तो ठीक नही है।" 96

८—"यदि० सुनता है कि दोनो मर गये, तो यदि भेजनेवालेका मृतक-चीवर (मान) इस्तेमाल करे तो इस्तेमाल करना ठीक नही, और जिसको भेजा गया उसका मृतक-चीवर मान इस्तेमाल करे तो ठीक है।" 97

(३) आठ प्रकारके चीवर-दान और उनका बँटवारा

"भिक्षुओ! यह आठ चीवरकी मातृकाएँ (=उत्पत्तिके कारण) है—(१) सीमामें देता है, (२) वचन-बद्ध होने (=कतिका)से देता है, (३) भिक्षाके स्वीकारसे देता है, (४) (अकेले भिक्षु-) सघको देता है, (५) (भिक्षु-भिक्षुणी) दोनो सघको देता है, (६) वर्षावास कर चुके सघको देता है, (७) (चीज़) कहकर देता है, (८) व्यक्तिको देता है।

(१) 'सीमामे देता है' तो सीमाके भीतर जितने भिक्षु है उनको बाँटना चाहिये। 98

(२) 'वचन-बद्ध होनेसे देता है' तो एक प्रकारके लाभवाले जितने आवास है, एक आवासको देनेपर उन सभी (आवासो)के लिये दिया होता है। 99

(३) 'भिक्षाके स्वीकारसे देता है' तो जहाँ (वह दायक) सघका काम बराबर किया करता है वहाँके लिये दिया होता है। 100

(४) '(एक) सघको देता है' तो सघके सामने बाँटना चाहिये। 101

(५) '(भिक्षु-भिक्षुणी) दोनो सघको देता है' तो चाहे भिक्षु बहुत हो और भिक्षुणी एकही हो, आधा आधा (बाँट) देना चाहिये, चाहे भिक्षुणी बहुत हो भिक्षु एकही हो आधा आधा (बाँट) देना चाहिये। 102

(६) 'वर्षावास' कर चुके सघको देता है' तो जितने भिक्षुओने उस आवासमे वर्षावास किया उन्हे बाँटना चाहिये। 103

(७) '(चीज) कहकर देता है' तो यवागू या भात या खाद्य (वस्तु) या चीवर या आसन या भैषज्य (जिसके लिये कहा, वह देना चाहिये)। 104

(८) 'व्यक्तिको देता है'=यह चीवर अमुकको देता हूँ (तो उसी व्यक्तिको देना चाहिये)।" 105

चीवरक्खन्धक समाप्त ॥८॥

९—चांपेय-स्कंधक

१—कर्म और अकर्म । २—पाँच प्रकारके सघ(के कोरम्) और उनके अधिकार ।
३—नियम-विरुद्ध और नियमानुकूल दड ।
४—नियम-विरुद्ध दड । ५—नियम-विरुद्ध दंड-हटाव । ६—नियम-विरुद्ध दडका सशोधन ।
७—नियम-विरुद्ध दड-हटावका सशोधन ।

§१—कर्म और अकर्म

१—चम्पा

(१) निर्दोषको उत्क्षिप्त करना अपराध है

१—उस समय बुद्ध भगवान् च म्पा मे ग ग्ग रा पुष्करिणीके तीर विहार करते थे। उस समय का शी देशमे वा स भ गा म नामक (गाँव) था। वहाँपर का श्य प गो त्र नामक आश्रमवासी भिक्षु रहता था। वह इसके विषयमे बराबर यत्नशील रहता था जिसमे कि न आये अच्छे भिक्षु आवें, और आये अच्छे भिक्षु सुख-पूर्वक विहार करें, और यह आवास वृद्धि=वि रू ढि और वि पु ल ता को प्राप्त हो।

उस समय बहुतसे भिक्षु का शी (देश)मे चारिका करते, जहाँ वा स भ गा म था वहाँ पहुँचे। का श्य प गो त्र भिक्षुने दूरसेही उन भिक्षुओंको आते देखा। देखकर आसन बिछाया, पादोदक, पाद-पीठ, पादकठलिक रख दिया, और अगवानीकर (उनके) पात्र-चीवरको लिया। पानी पीनेको पूछा, नहानेके लिये प्रबन्ध किया। यवागू, खाद्य (और) भोजन(की प्राप्ति)का यत्न किया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओको यह हुआ—'यह आश्रमवासी भिक्षु बहुत अच्छा है (हमारे) नहानेके लिये इसने प्रबन्ध किया, यवागू, खाद्य (और) भोजन (की प्राप्ति)का यत्न किया। आओ आवुसो ! हम इसी वा स भ गा म मे वास करे।' तब उन आगन्तुक भिक्षुओने वही वा स भ गा म मे वास किया।

तब काश्यपगोत्र भिक्षुको यह हुआ—'इन नवागन्तुक भिक्षुओको यात्राकी जो थकावट थी वह भी दूर हो गई, जो स्थानकी अजानकारी थी वह भी जान गये, यावत्जीवन दूसरोके कुटुम्बमे (=खाने-पीनेकी चीजोके लिये) यत्न करना दुष्कर है। माँगना लोगोको अप्रिय होता है। क्यो न मैं यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करना छोळ दूँ।' तब उसने यवागू, खाद्य और भातके लिये उत्सुकता करना छोळ दिया।

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओको यह हुआ—'आवुसो ! पहले यह आश्रमवासी भिक्षु नहानेके लिये प्रबन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता करता था। सो आवुसो ! अब यह आश्रमवासी भिक्षु दुष्ट हो गया। आओ आवुसो ! हम इस आश्रमवासी भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दड) करे।' तब उन नवागन्तुक भिक्षुओने एकत्रित हो का श्य प गो त्र भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस ! पहले तू नहानेके लिये प्रबन्ध करता, यवागू, खाद्य और भोजनके लिये उत्सुकता

करता था, सो तू आवुस ! अब न नहानेका प्रबन्ध करता है, न यवागू खाद्य भोजनके लिये उत्सुकता करता है, सो आवुस ! तूने अपराध किया। क्या तू उस अपराधको देखता है ?"

"आवुसो ! मैंने दोष नही किया जिसको कि मैं देखूँ।"

तब उन नवागन्तुक भिक्षुओने अ प रा ध (=आपत्ति) न देखनेके लिये का श्य प गो त्र भिक्षुका उ त्क्षे प ण (=दड) किया। तब का श्य प गो त्र भिक्षुको यह हुआ—'मै नही जानता कि यह आ प त्ति है कि अ न् आ प त्ति है। आ प त्ति (=अपराध) मैने की है, या नही की है। मै उ त्क्षि प्त[1] हूँ या उत्क्षिप्त नही हूँ। (मेरा उत्क्षेपण) धर्मानुसार है या धर्मविरुद्ध। को प्य (=अयुक्त) है या अ को प्य। कारणसे है या अकारणसे। क्यो न मै चम्पा जाकर भगवान्से यह पूछूँ।'

तब काश्यपगोत्र भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिया। क्रमश चारिका करते जहाँ च म्पा थी और जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचा। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा।

बुद्ध भगवानोका यह नियम है०[2] बिना तकलीफके रास्तेमे तो आया ? भिक्षु ! कहाँसे तू आ रहा है ?"

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफके भन्ते ! मै रास्तेमे आया। भन्ते ! का शि देशमे वा स भ गा म है वहाँका मै आश्रमनिवासी हूँ। मै इसके विषयमे बराबर यत्नशील रहता था जिसमे कि न आये अच्छे भिक्षु आये० और विपुलताको प्राप्त हो०[3] क्यो न मैं चम्पा जाकर भगवान्से यह पूछूँ। वहाँसे भगवान् मै आ रहा हूँ।"

"भिक्षुओ ! यह अन् आपत्ति है, आपत्ति नही है। तू आपत्ति-रहित है, आपत्ति सहित नही, तू अनुत्क्षिप्त है, उत्क्षिप्त नही, तेरा उत्क्षेपण अधर्मसे हुआ है, कोप्यसे हुआ है, कारण विना हुआ है, जा भिक्षु ! तू वही वा स भ गा म मे निवासकर।"

"अच्छा भन्ते !" (कह) का श्य प भिक्षु भगवान्को उत्तर दे आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। तब उन नवागन्तुक भिक्षुओको पछतावा हुआ, अफसोस हुआ— 'अलाभ है हमको, लाभ नही ! दुर्लभ हुआ हमे, सुलाभ नही हुआ जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराधी बिना, कारण बिना उत्क्षेपण किया। आओ आवुसो ! हम च म्पा मे चलकर भगवान्के पास अपराधको (कह) क्षमा करायें।'

तब वह नवागन्तुक भिक्षु आसन-वासन सँभाल, पात्र-चीवर ले चम्पाकी ओर चल दिये। क्रमश जहाँ च म्पा थी, जहाँ भगवान् थे वहाँ पहुँचे। पहुँचकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। बुद्ध भगवानोका यह आचार है०।

"ठीक है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! बिना तकलीफके भन्ते ! हम रास्तेमे आये। भन्ते ! का शि देशमे वा स भ गा म है वहाँसे हम आये है।"

"भिक्षुओ ! तुमनेही (उस) आश्रमवासी भिक्षुको उत्क्षिप्त किया था ?"

"हाँ भन्ते !"

"किस अपराधसे ? किस कारणसे ?"

"बिना अपराधके, बिना कारणके भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—

---

[1] जिसको उत्क्षेपणका दड हुआ हो। [2] देखो पृष्ठ १८५। [3] पीछेका पाठ दुहराओ।

"मोघपुरुषो ! अयोग्य है० श्रमणोके आचारके विरुद्ध है०, कैसे मोघपुरुषो ! तुम, निर्दोष शुद्ध भिक्षुको, अपराध विना, कारण विना उत्क्षिप्त करोगे ! मोघपुरुषो, न यह अप्रसन्नोंको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराध विना, कारण विना, उत्क्षिप्त नहीं करना चाहिये। जो उत्क्षिप्त करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 1

तब वह भिक्षु आसनसे उठ, उत्तरासंघको एक कंधेपर रख भगवान्‌के चरणोंमें सिरसे पळ भगवान्‌से यह बोले—

"भन्ते ! हमारा अपराध है, बालककी तरह, मूढकी तरह, अजकी तरह हमने अपराध किया जो कि हमने निर्दोष शुद्ध भिक्षुको अपराध विना, कारण विना उत्क्षिप्त किया। सो भन्ते ! भगवान् हमारे अपराधको, अपराधके तौरपर ग्रहण करें, भविष्यमें संयमके लिये।"

"सो भिक्षुओ ! तुमने अपराध किया० कारण विना उत्क्षिप्त किया। चूंकि भिक्षुओ ! तुम अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार प्रतिकार करते हो (इसलिये) हम तुम्हारे उस (अपराध क्षमापन)को ग्रहण करते हैं। भिक्षुओ ! आर्य विनयमें यह वृद्धि (की बात) है जो कि (मनुष्य) अपराधको अपराधके तौरपर देख धर्मानुसार उसका प्रतिकार करता है, और भविष्यमें संयम करनेवाला होता है।"

(२) अकर्मो (=नियम-विरुद्ध फैसलों) के भेद

उस समय चम्पा में इस प्रकारके कर्म (=दंड) करते थे—अधर्मसे वर्ग (=कुछ व्यक्तियो का) कर्म करते थे, अधर्मसे समग्र कर्म करते थे, धर्मसे वर्ग कर्म करते थे, धर्म जैसेसे वर्ग कर्म करते थे, धर्म जैसेसे समग्र कर्म करते थे। अकेला एकको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला दोको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला बहुतोंको भी उत्क्षिप्त करता था। अकेला संघको भी उत्क्षिप्त करता था। दो भी एकको०, दोको०, बहुतोंको०, ०संघको उत्क्षिप्त करते थे। बहुतसे भी एकको० दोको०, बहुतोंको०, संघको उत्क्षिप्त करते थे। (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता था। जो अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होते थे—'कैसे चम्पा मे भिक्षु ऐसे कर्म करते हैं !—०(एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करता है।' तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ ! चम्पा मे० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"भिक्षुओ ! अयुक्त है० (एक) संघ (दूसरे) संघको भी उत्क्षिप्त करे ! न यह भिक्षुओ ! अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है। उसे नही करना चाहिये। (२) धर्मसे समग्र कर्म अकर्म है उसे नही करना चाहिये। धर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है उसे नही करना चाहिये। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म अकर्म है०। (५) ०धर्म जैसेसे समग्र कर्म अकर्म है०। (६) ०एकको उत्क्षिप्त करे अकर्म है०। ०। (७) संघ संघको भी उत्क्षिप्त करे अकर्म है, इसे नही करना चाहिये। 2

(३) कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! यह चार कर्म (=दंड)है—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म, (२) अधर्मसे समग्रकर्म, (३) धर्मसे वर्ग कर्म, (४) धर्मसे समग्र कर्म। भिक्षुओ ! इनमे जो यह अधर्मसे वर्ग कर्म है वह अधर्मताके

कारण, वर्गताके कारण, कोप्य (=हटाने लायक) और अयोग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको नही करना चाहिये। मैंने इस प्रकारके कर्मकी अनुमति नही दी। भिक्षुओ ! जो यह अधर्मसे समग्र कर्म है भिक्षुओ ! यह कर्म अधर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है०। भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे वर्ग कर्म है वह कर्म धर्मताके कारण कोप्य, अयोग्य है। ०। ० भिक्षुओ ! जो यह धर्मसे समग्रकर्म है यह धर्मताके कारण, सामग्रताके कारण, अकोप्य, और योग्य है। भिक्षुओ ! ऐसे कर्मको करना चाहिये। ऐसे कर्मकी मैंने अनुमति दी है। इसलिये भिक्षुओ ! सीखना चाहिये कि जो यह धर्मसे समग्र कर्म है उसे करूँगा।"

(४) अकर्मोंके भेद

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म (=दड) करते थे—(१) अधर्मसे वर्ग कर्म करते थे, (२) अधर्मसे समग्र कर्म०, (३) धर्मसे वर्ग कर्म०, (४) धर्म जैसेसे वर्गकर्म०, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०, (६) सू च ना[1] बिना भी अ नु श्रा व ण[1] युक्त कर्म करते थे, (७) अ नु श्रा व ण विनाभी सूचना-युक्त कर्म करते थे, (८) सू च ना विनाभी, अ नु श्रा व ण विनाभी कर्म करते थे, (९) ध र्म (—बुद्धोपदेश)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१०) वि न य (—भिक्षु नियम)के विरुद्ध भी कर्म करते थे, (११) बुद्धशासनके विरुद्ध भी कर्म करते थे, (१२) प टि कु ट्ठ क ट (=दूसरेके निन्दा- वाक्यके जवाबमे किया गया) धर्म-विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे वह हैरान होतेथे—'कैसे षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करेगे०।' तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ ! षड्वर्गीय भिक्षु ऐसे कर्म करते है—० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (१) अधर्मसे वर्ग कर्म अकर्म है, उसे नही करना चाहिये। (२) अधर्मसे समग्र कर्म०। (३) धर्मसे वर्ग कर्म०। (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म०। (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म०। (६) ज्ञ प्ति विना, अ नु श्रा व ण युक्त कर्म०। (७) अनुश्रावण विना ज्ञप्तियुक्त कर्म०। (८) अनुश्रावण विना भी और ज्ञप्ति विना भी कर्म०। (९) धर्मसे विरुद्ध कर्म०। (१०) विनय-विरुद्ध कर्म०। (११) बुद्ध-शासनके विरुद्ध कर्म०। (१२) पटिकुट्ठकट धर्म विरुद्ध कोप्य और अयोग्य कर्म अकर्म्य है, उसे नही करना चाहिये। 3

(५) कर्म छ

"भिक्षुओ ! यह छ क र्म (=दड) है—(१) अधर्म कर्म, (२) वर्ग कर्म, (३) समग्र कर्म, (४) धर्म जैसेसे वर्ग कर्म, (५) धर्म जैसेसे समग्र कर्म, (६) धर्मसे समग्र कर्म।

(६) अधर्म कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! क्या है अधर्म कर्म ?

क (१) "भिक्षुओ ! ज्ञ प्ति के साथ दो (वचनोके साथ कियेजानेवाले) कर्मको केवल ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्‌को नही अ नु श्रा व ण कराता, वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्तिके साथ दो(वचनोके साथ किये जानेवाले)कर्ममे दो ज्ञप्तियोमे कर्म करता है और कर्म-वाक्‌को नही अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममे एकही कर्म-वाक्‌से कर्म करता है, और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (४) ज्ञप्ति

---

[1]देखो वोट लेनेके लिये प्रस्ताव पेश करनेका ढग।

सहित दो (वचनोके साथ किये जानेवाले) कर्ममे दो क र्म-वा क्से कर्म करता है और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता, वह अधर्म कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे एक ज्ञप्तिसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अनुश्रावण कराता वह अधर्म कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममें दो ज्ञप्तियोसे कर्म करता है और कर्म-वाक्को नही अनुश्रावण कराता तो वह अधर्म कर्म है। (३) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे तीन ज्ञप्तियोसे कर्म करता है०। (४) ० चार ज्ञप्तियोसे कर्म करता है०। (५) ० एक कर्म-वाक्से कर्म करता है और ज्ञप्ति को नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (६) ० दो कर्म-वाक्से कर्म करता है और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है। (७) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे चार कर्म-वाकोसे कर्म करता है और ज्ञप्तिको नही स्थापित करता वह अधर्म कर्म है।—भिक्षुओ ! यह कहा जाता है अ ध र्म क र्म (=नियम-विरुद्ध दड)।

(७) वर्ग कर्मके भेद

"भिक्षुओ ! क्या है व र्ग-क र्म ?—क (१) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु क र्म (=दड)को प्राप्त है वह नही आये हो, छन्द (=वोट)देनेवालो का छन्द नही आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश (=निन्दा-वचन) करे, यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षुकर्मको प्राप्त है वह आये हो, किन्तु छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्म को प्राप्त है वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द भी आया हो, किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह वर्ग कर्म है।

ख (१) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है नही आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द नही आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह वर्ग कर्म है। (२) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो, वह आये हो, किन्तु छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, और सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह वर्ग कर्म है। (३) भिक्षुओ ! ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो, वह आये हो, और छन्द देनेवालोका छन्द भी आया हो किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे तो यह वर्ग कर्म है।

(८) समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ ! समग्र-कर्म ?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनो द्वारा किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो, देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह समग्र कर्म है। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह समग्र कर्म है।—भिक्षुओ ! यह कहा जाता है समग्र कर्म।

(९) धर्माभाससे वर्ग-कर्म

"क्या है भिक्षुओ ! धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म ?—

क (१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्म वाक्को अनुश्रावण करावे, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह न आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द

नही आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म । (२) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो किन्तु छन्द देनेवालोका छन्द नही आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द भी आया हो, किन्तु सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म।

ख (१) "ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्म-वाक्को अनुश्रवण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह न आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो आये हो (किन्तु) छन्द देनेवालोका छन्द न आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग कर्म। (३) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्म-वाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द भी आया हो, (किन्तु) सम्मुख आनेपर प्रतिक्रोश करे, यह है धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे वर्ग-कर्म।

(१०) धर्माभाससे समग्र कर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्म जैसेसे समग्रकर्म ?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जाने-वाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्रकर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले कर्मवाक्को अनुश्रावण कराये, पीछे ज्ञप्ति स्थापित करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त हो वह आये हो, छन्द देने वालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्म जैसेसे समग्रकर्म।—भिक्षुओ! यह है कहा जाता, धर्म जैसेसे समग्रकर्म।

(११) धर्मसे समग्रकर्म

"क्या है भिक्षुओ! धर्मसे समग्रकर्म ?—(१) ज्ञप्ति सहित दो (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहले एक ज्ञप्तिको स्थापित करे पीछे एक कर्मवाक्से कर्म करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्रकर्म। (२) ज्ञप्ति सहित चार (वचनोसे किये जानेवाले) कर्ममे पहिले एक ज्ञप्ति स्थापित करे, पीछे तीन कर्म वाकोसे कर्म करे, जितने भिक्षु कर्मको प्राप्त है वह आये हो, छन्द देनेवालोका छन्द आया हो, सम्मुख होनेपर प्रतिक्रोश न करे, यह है धर्मसे समग्रकर्म।—भिक्षुओ! यह है धर्मसे समग्रकर्म।

§२–पाँच प्रकारके संघ और उनके अधिकार

(१) वर्ग (कोरम्) द्वारा संघोके प्रकार

"संघ पांच है—(१) चतुर्वर्ग (=चार व्यक्तियोका) भिक्षु-संघ, (२) पंचवर्ग (=पाँच व्यक्तियोका)० (३) दशवर्ग (=दस आदमियोका)०, (४) विंशतिवर्ग (=बीस आदमियोका)०, (५) अतिरेक विंशतिवर्ग (=बीससे अधिक व्यक्तियोका)०।

(२) संघोके अधिकार

"क (१) वहाँ भिक्षुओ ! जो यह चतुर्वर्ग भिक्षु-सघ है वह—उ प स प दा, प्र वा र णा आ ह्वा न,—इन तीन कर्मोको छोळ धर्मसे-समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 4

"(२) वहाँ भिक्षुओ ! जो प च व र्ग भि क्षु-स घ है वह—आह्वान और मध्यम जनपदो[1] (=युक्तप्रान्त और विहार)मे उपसम्पदा इन दो कर्मोको छोळ धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 5

"(३) वहाँ भिक्षुओ ! जो यह दशवर्ग भिक्षु-सघ है वह—आह्वान—एक कर्मको छोड०।6

"(४) वहाँ भिक्षुओ ! जो वि श ति व र्ग भि क्षु स घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है। 7

वहाँ भिक्षुओ ! जो यह अतिरेक वि श ति व र्ग भि क्षु स घ है वह धर्मसे समग्र हो सभी कर्मोके करने योग्य है । 8

(३) वर्ग (=कोरम्) पूरा करनेका उपाय

१—"भिक्षुओ ! यदि चतुर्वर्गसे करने लायक कर्म हो तो चौथी भिक्षुणीसे (सख्या पूरी करके) कर्मको करे, किन्तु अ क र्म (=अयुक्त रीतिसे कर्म) न करे। भिक्षुओ ! यदि चतुर्वर्गसे किया जानेवाला कर्म हो तो चौथी शिक्षमाणासे (सख्या पूरी करके) कर्मको करे, किन्तु अकर्मको न करे। ० चौथे श्रामणेर० । ० चौथी श्रामणेरी० । ० चौथे (भिक्षु-)शिक्षाको प्रत्याख्यान करनेवाले० । ० चौथे अन्तिम वस्तु (=पा रा जि क)के दोषी० । ० चौथे आपत्ति (=दोष) के न देखनेसे उत्क्षिप्तक० । ० चौथे आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्तक० । ० चौथे बुरी धारणाके न त्यागनेसे उत्क्षिप्तक० । ० चौथे पडक० । ० चौथे चोरके साथ सह-वास करनेवाले० । ० चौथे तीर्थिकोके पास चले गये० । ० चौथे तिर्यक (=नाग आदि) योनिमे गये० । ० चौथे मातृघातक० । ०चौथे पितृघातक ०। ०चौथे अर्हत्घातक० ।० चौथे भिक्षुणीदूषक० । ०चौथे सघमे फूट डालनेवाले० । ० चौथे (बुद्धके शरीरसे) लोहू निकालनेवाले ० । यदि भिक्षुओ ! च तु र्व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो चौथे (स्त्री-पुरुष) दोनो लिगवालेसे (सख्या पूरी करके) कर्मको करे किन्तु अकर्मको न करे। ० चौथे भिन्न सवासवाले० । ० चौथे भिन्न सीमामे रहनेवाले० । ० चौथे ऋद्धिसे आकाशमे खळे० । ० सघ जिसका कर्म (=इन्साफ)कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे ।" 9

(इति) चतुर्वर्गकरण

२—"यदि भिक्षुओ ! प च व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो पाँचवी भिक्षुणीसे (सख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे। ० ।[2] ० सघ जिसका क र्म (=इन्साफ) कर रहा है उसे चौथा कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 10

(इति) पंचवर्गकरण

३—"यदि भिक्षुओ ! द श व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो दसवी भिक्षुणीसे (सख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे ० ।[2] सघ जिसका क र्म कर रहा है उसे दसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे ।" 11

(इति) दशवर्गकरण

---

[1]मध्यम जनपदोकी सीमाके लिये देखो ५§३।२ पृष्ठ २१३ ।

[2]चतुर्वर्गकीही तरह यहाँ भी समझना चाहिये ।

४—"यदि भिक्षुओ! वि श ति व र्ग से किया जानेवाला कर्म हो तो बीसवी भिक्षुणीसे (सख्या पूरी करके) कर्म करे, अकर्म न करे ०[1]। सघ जिसका क र्म कर रहा है उसे बीसवाँ कर कर्म करे किन्तु अकर्म न करे।" 12

(इति) विंशतिवर्गकरण

५—"(१) चाहे भिक्षुओ! पा रि वा सि क[2] को चौथा बना परिवास दे, मू ल से प्र ति क - र्ष ण करे, मा न त्व दे, बीसवाँ वना आह्वान करे, किन्तु अकर्म न करे। 13

(२) चाहे भिक्षुओ! मूलसे प्र ति क र्ष ण करने योग्यको चौथा बना०।

(३) चाहे भिक्षुओ! मा न त्व देने योग्यको चौथा वना०।

(४) चाहे भिक्षुओ! मा न त्व चा रि क को चौथा बना०।

(५) चाहे भिक्षुओ! आह्वान करने योग्यको चौथा वना०।" 14

(४) सघके वीच फटकारना किसके लिये लाभदायक और किसके लिये नही

१—"भिक्षुओ! किसी किसीको सघके बीच प्र ति क्रो श न (=डॉटना) लाभदायक है और किसी किसीको सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है। भिक्षुओ! किसीको सघके बीच प्रति-क्रोशन लाभदायक नही है?—भिक्षुणीको भिक्षुओ! सघके वीच प्र ति क्रो श न करना लाभदायक नही है। शिक्षमाणाको०। श्रामणेरको०। श्रामणेरीको०। शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवालेको०। अन्तिम वस्तुके दोषीको०। उन्मत्तको०। विक्षिप्तचित्तको०। होश न रखनेवालेको०। आ प त्ति के न देखनेसे उ त्क्षि प्त क को०। आ प त्ति के अप्रतिकार करनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। बुरी धारणा को न त्यागनेसे उत्क्षिप्त किये गयेको०। पडकको०। चोरके साथ रहनेवालेको०। तीर्थिकोके पास चले गयेको०। ति र्य क योनिमे गयेको०। मातृघातकको०। पितृघातकको०। अर्हत्घातकको०। भिक्षुणीदूषकको०। सघमे फूट डालनेवालेको०। ०लोहू निकालनेवालेको०। (स्त्री पुरुष) दोनो लिग वालेको०। भिन्न सहवासवालेको०। भिन्न सीमामे रहनेवालेको०। ऋद्धिसे आकाशम खडेको०। जिसका सघ कर्म कर रहा हो, उसको भी भिक्षुओ! सघके वीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही। भिक्षुओ! इनका सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक नही है।

२—"भिक्षुओ! किसका सघके वीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है?—एक साथ रहनेवाले, एक सीमामे ठहरनेवाले प्रकृतिस्थ भिक्षुको, कमसे कम अपने पास वैठनेवाले भिक्षुको सूचित करते सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक होता है। भिक्षुओ! इसको सघके बीच प्रतिक्रोशन लाभदायक है।"

(५) ठीक और बेठीक निस्सारण

"भिक्षुओ! यह दो निस्सारणा है—कोई व्यक्ति नि स्सा र ण (=निकालने) (के दोष) को प्राप्त होता है और उसे सघ निकालता है, (तो उनमेसे) कोई सु नि स्सा रि त होता है और कोई दु नि स्सा रि त।

१—"भिक्षुओ! कौनसा व्यक्ति नि स्सा र ण (के दोषको अप्राप्त है और उसे सघ निकालता है, (इसलिये) दु र्नि स्सा रि त है? जब भिक्षुओ! एक भिक्षु निर्दोष, शुद्ध, होता है और उसे सघ निका-लता है (इसलिये) दु र्नि स्सा रि त है। भिक्षुओ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है (कि वह) निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है, और उसे सघने निकाला, (अत)दु र्नि स्सा रि त है। 15

---

[1] चतुर्वर्गकी ही तरह यहाँ भी समझना चाहिये।

[2] चुल्ल २§१।२ (पृष्ठ ३६७)।

२—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त है और सघ उसे निकालता है (तो भी वह) सुनिस्सारित है ?—भिक्षुओ ! जो भिक्षु मूर्ख, नासमझ, बारबार कसूर करनेवाला, अ प दा न-(=चरित्र)-रहित, गृहस्थोके साथ अत्यन्त ससर्ग रखकर गृहस्थोके प्रतिकूल ससर्गसे युक्त हो विहार करता है और उसे यदि सघ निकालता है तो वह सु नि स्सा रि त है। भिक्षुओ ! इस व्यक्तिके लिये कहा जाता है कि वह निस्सारण (के दोष)को अप्राप्त था (किन्तु) सघने उसे निकाला (और वह) सुनिस्सारित है।" 16

(६) ठीक और बेठीक अवसारण (=ले लेना)

"भिक्षुओ ! यह दो ओसारणा है—भिक्षुओ ! कोई व्यक्ति ओ सा र ण की (योग्यता कर्म) को अप्राप्त होता है और उसे सघ ओसारता (=अपनेमे मिलाता) है (तो उनमेसे) कोई सु-ओसारित होता है और कोई दुर्-ओसारित भी। 17

१—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति ओसारण(की योग्यता कर्म)को अप्राप्त है और उसे सघ ओसारता है, (इसलिये) दुर्-ओसारित है ? भिक्षुओ ! पडक ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि सघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। चोरके साथ रहनेवाला०। तीर्थिकके पास चला गया०। तिर्यक् योनिमे चला गया०। मातृघातक०। पितृघातक०। अर्हत्घातक०। भिक्षुणीदूषक०। सघमे फूट डालनेवाला०। ०लोहू निकालनेवाला०। (स्त्री-पुरुष) दोनो लिंगोवाला ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है। यदि सघ उसे ओसारण करे तो वह दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ ! यह कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और उसे सघ ओसारता है, (इसलिये) दुर्-ओसारित है। भिक्षुओ ! ये व्यक्ति कहे जाते है ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है और उन्हे सघ ओसारता है (इसलिये) दुर्-ओसारित है। 18

२—"भिक्षुओ ! कौनसा व्यक्ति ओसारणकी योग्यताको अप्राप्त है और उसे सघ ओसारता है तो भी वह सु-ओसारित है ? हथ-कटा, भिक्षुओ ! ओसारणाकी योग्यताको अप्राप्त है। यदि उसे सघ ओसारण करे तो सु-ओसारित है। पैर-कटा०। हाथ-पैर-कटा०। कन-कटा०। नकटा०। नाक-कान-कटा०। अँगुली-कटा०। अल (=अङग ?) कटा०। कधा-कटा०। झर गई अँगुलियो के हाथवाला०। कुवळा०। बौना०। घेघेवाला०। ल क्ष णा ह त[1]०। कोळा खाये हुआ०। लि खि-त क[2] (Out-law) ०। सी पा टि क[3]०। भयकर रोगोवाला ०। परिषद्को बिगाळनेवाला०। काना०। लूला०। लँगळा०। पक्षाघातवाला० टूटे ऐ र्या पि थ (=शारीरिक आचार) वाला०। बुढापेसे दुर्बल०। अन्धा०। गूँगा०। वहरा०। अन्धा-गूँगा०। अन्धा-बहरा०। गूँगा-बहरा०। अन्धा-गूँगा-बहरा, भिक्षुओ ! ओसारणा(की योग्यता)को अप्राप्त है, और यदि उसे सघ ओसारता है तो यह सु-ओसारित है। भिक्षुओ ! इन्हे कहा जाता है कि व्यक्ति ओसारणा (की योग्यता)को अप्राप्त थे और यदि सघ उन्हे ओसारता है तो वे सु-ओसारित है।" 19

(इति) वा स भ गा म भाणवार प्रथम ॥१॥

(७) अधर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति (=अपराध) नही हुआ होता और उसे

---

[1] जिसे पैसा लाल करके दागनेका दंड मिला है।

[2] जिसके दडके लिये राजाके यहाँ लिखा रहता है कि जो इसे पावे मार डाले।

[3] फील-पाँव रोगवाला।

सघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, क्या तू उस आपत्तिको देख रहा है।' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति (=दोप) नही है जिसे कि मै देखूँ।' सघ आपत्तिके न देखनेके कारण उसका उ त्क्षे प ण करता है (तो यह) अधर्म कर्म है। 20

"(२) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको कोई आपत्ति प्रतिकारके करनेके लिये नही रहती, उसे सघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, तू उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! ' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' तव सघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके कारण उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 21

"(३) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको वुरी धारणा नही होती। उसे सघ या वहुतसे भिक्षु या (एक) भिक्षु प्रेरित करता है—'आवुस ! तेरी धारणा वुरी है। उस बुरी धारणाको छोळ दे ! ' वह ऐसा कहता है—'आवुस ! मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि मै छोळूँ।' यदि सघ उसका, वुरी धारणाके न छोळनेके लिये उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 22

"(४) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति नही होती, प्रतिकार करने लायक आपत्ति नही होती। उसको सघ, वहुतसे या एक भिक्षु प्रेरित करते है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। उस आ प त्ति को देखता है ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! '—वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसको कि मै देखूँ, मुझे आपत्ति नही है जिसका कि मे प्रतिकार करूँ।' सघ उसका, न देखने या प्रतिकार न करनेके कारण यदि उ त्क्षे प ण करता है तो यह अधर्म कर्म है। 23

"(५) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आ प त्ति नही होती, और न छोळनेके लिये वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—"आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू आपत्तिको ?' तुझे वुरी धारणा है। छोळ ! उस वुरी धारणाको।' वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आ प त्ति नही हे जिसको देखूँ, मेरे पास वुरी धारणा नही है जिसे छोळूँ।' तव सघ न देखने या न छोळनेके कारण उसका उत्क्षेपण करे तो यह अ ध र्म क र्म (=अन्याय, बेइसाफी) है। 24

"(६) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको प्रतिकार न करने लायक आपत्ति होती है, न छोळने लायक वुरी धारणा होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है, उस आपत्तिका प्रतिकार कर। तुझे वुरी धारणा है उसको छोळ ! ' वह ऐसा बोलता है—'आवुस ! मुझे आपत्ति नही है जिसका कि प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि छोळूँ।' तब सघ यदि आपत्ति का प्रतिकार न करने या वुरी धारणाके न छोळनेके कारण, उसका उत्क्षेपण करता है, तो यह अधर्म कर्म है। 25

"(७) भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखनेके लिये आपत्ति नही होती न प्रतिकार करनेके लिये आपत्ति होती है, न छोळनेके लिये बुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है, देखता है उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तेरे पास वुरी धारणा है उस अपनी वुरी धारणाको छोळ ! ' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नही जिसको कि देखूँ, जिसका प्रतिकार करूँ। मुझे वुरी धारणा नही जिसको कि छोळूँ।' सघ न देखने, न प्रतिकार करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है तो यह अ ध र्म कर्म है। 26

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, उसको सघ या वहुतसे (भिक्षु) या एक (भिक्षु) प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे आपत्ति है। देखता है उस आपत्तिको ?' वह ऐसा बोलता है—'हाँ आवुस ! देखता हूँ।' उसका सघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करता है, (यह) अ ध र्म कर्म है। 27

"(२) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती हे। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आ प त्ति (=अपराध) हुई है। उस आपत्तिका प्रतिकार कर।' वह ऐसा

कहता है—'हाँ आवुस ! प्रतिकार करूँगा।' तव उसका सघ प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ ध र्म क र्म है। 28

"(३) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको छोळने लायक बुरी धारणा होती है। उसे सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझे वुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह यह कहता है—'हाँ आवुसो ! छोळूँगा।' उसका सघ बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपण करता है। (यह) अ ध र्म क र्म है। 29

"(४) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है०। 30

"(५) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक बुरी धारणा होती है०। 31

"(६) ० एक भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक वुरी धारणा होती है०। 32

"(७) ० एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक वुरी धारणा होती है। उसे सघ ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है उस आपत्ति को ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे बुरी धारणा है। उस बुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! देखता हूँ। हाँ, प्रतिकार करूँगा, हाँ छोळूँगा।' उसे सघ न देखनेके लिये, प्रतिकार न करनेके लिये, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) अधर्म कर्म है।" 33

(८) धर्मसे उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) "भिक्षुओ ! एक भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है। उसको [illegible] या वहुतसे (भिक्षु) या एक व्यक्ति प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझसे आपत्ति नही हुई है जिसे कि मै देखूँ।' सघ आपत्तिको न देखनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म है। 34

"(२) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नही हे जिसका कि मै प्रतिकार करूँ।' सघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म (=न्याय) है। 35

"(३) ० भिक्षुको छोळने लायक वुरी धारणा होती है०। ०। वह ऐसा बोलता है—'आवुसो ! मुझे वुरी धारणा नही है जिसको कि मै छोळूँ।' सघ वुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करता है। (यह) ध र्म - क र्म है। 36

"(४) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति और प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है। ०।[1] 37

"(५) ० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है और छोळने लायक वुरी धारणा होती है।०।[1] 38

"(६) ० भिक्षुको प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है, छोळने लायक वुरी धारणा होती है।०।[1] 39

"७—० भिक्षुको देखने लायक आपत्ति होती है, प्रतिकार करने लायक आपत्ति होती है, और छोळने लायक वुरी धारणा होती है। उसको सघ० प्रेरित करता है—'आवुस ! तुझसे आपत्ति हुई है। देखता है तू उस आपत्तिको ? उस आपत्तिका प्रतिकार कर ! तुझे वुरी धारणा है, उस वुरी धारणाको छोळ।' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे आपत्ति नही है जिसको कि मै देखूँ। मुझे आपत्ति नहीं है

---

[1] ऊपरकी तरह यहाँ भी मिलाकर पढना चाहिये।

जिसका कि मैं प्रतिकार करूँ। मुझे बुरी धारणा नही है जिसको कि मै छोळूँ।' सघ न देखने, प्रतिकार न करने, न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपण करे (यह) ध र्म - क र्म है।" 40

§३—कुछ अधर्म और धर्म-कर्म

(१) अधर्म कर्म

१—तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालि ने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! समग्र सघके सामने करने लायक कर्मको जो बे-सामने करता है तो भन्ते! क्या वह ध र्म - क र्म है ? वि न य - क र्म है ?"

"उ पा लि! वह अ ध र्म क र्म है, अ् - वि न य कर्म है।"

२—"भन्ते! समग्र सघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो बिना पूछे करे, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको विना प्रतिज्ञाके करे, स्मृति-विनय देने लायकको अ मू ढ वि न य दे, अमूढ विनयके लायकको त त्पा पी य सि क कर्म करे, त त्पा पी य सि क कर्मके लायकका त र्ज नी य कर्म करे, तर्जनीय कर्म लायकका नि य स्स कर्म करे, नियस्स कर्म लायकका प्र व्रा ज नी य कर्म करे, प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे, प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे, उत्क्षेपणीय कर्म लायकको प रि वा स दे, परिवास देने लायकको मूलमे प्रतिकर्पण करे, मूलसे प्रतिकर्षण करने लायकको मा न त्व दे, मानत्व देने लायकका आह्वान करे, आह्वान लायकका उ प स म्पा द न करे, भन्ते! क्या यह ध र्म - क र्म है। वि न य - क र्म है ?"

"उपालि! वह अ ध र्म क र्म है, अविनय कर्म है जो कि वह उ पा लि! समग्र सघके सामने करने लायक कर्मको वेसामने करता है। उ पा लि! इस प्रकार अ ध र्म क र्म होता है, अ - वि न य - क र्म होता है, और इस प्रकार सघ सा ति सा र (=अतिकी धारणावाला) होता है। उ पा लि! समग्र सघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो विना पूछे करता है ० आह्वान् लायकका उपसम्पादन करता है। उपालि! इस प्रकार अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है, ओर इस प्रकार सघ सा ति सा र होता है।"

(२) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र सघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है, भन्ते! क्या वह ध र्म - क र्म है, विनय-कर्म है ?"

"उ पा लि! वह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है।"

२—"भन्ते! समग्र सघसे पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको प्रतिज्ञा करके करता है, स्मृति-विनयके लायकको स्मृ ति - वि न य देता है, अ मू ढ - वि न य ०, त त्पा पी य सि क - क र्म०, त र्ज नी य - क र्म०, नि य स्स क र्म०, प्र व्रा ज नी य क र्म०, प्र ति सा र णी य कर्म०, उ त्क्षे प णी य कर्म०, प रि वा स ०, मूलमे प्रतिकर्पण०, मा न त्व०, आह्वान०, उपसम्पदाके लायकको उपसम्पादन करता हे, भन्ते! क्या यह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है ?"

"उपालि! वह ध र्म - क र्म है, वि न य - क र्म है। उ पा लि! समग्र सघके सामने करने लायक कर्मको जो सामने करता है इस प्रकार उ पा लि! ध र्म - क र्म, वि न य - क र्म होता है और इस प्रकार सघ अ ति सा र-रहित होता है। उपालि! समग्र सघको पूछकर करने लायक कर्मको जो पूछकर करता है, प्रतिज्ञा करके करने लायक कर्मको०, स्मृति-विनय०, अमूढ-विनय०; तत्पापीयसिक-कर्म०,

तर्जनीय कर्म०, नियस्स कर्म०, प्रव्राजनीय कर्म०, प्रतिसारणीय कर्म०, उत्क्षेपणीय कर्म०, परिवास०, मूलसे-प्रतिकर्पण०, मानत्व०, आह्वान्०, उपसम्पदाके लायकको उपसम्पदा देता है, इस प्रकार उपालि! धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार सघ अतिसार रहित होता है।"

(३) अधर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र सघ स्मृति-विनयके लायकको यदि अमूढ-विनय दे, अमूढ-विनयके लायकको स्मृति-विनय दे तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म, विनय-कर्म है?"

"उपालि! वह अधर्म कर्म है, अ-विनय कर्म है।"

२—"यदि भन्ते! समग्र सघ अमूढ विनयके लायक का तत्पापीयसिक कर्म करे, और तत्पापीयसिक कर्म लायकको अमूढ-विनय दे, तत्पापीयसिक कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे, तर्जनीय कर्म लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे, तर्जनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे, नियस्स-कर्म लायकका तर्जनीय कर्म करे, नियस्स कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे, प्रव्राजनीय कर्म लायकका नियस्स कर्म करे, प्रव्राजनीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे, प्रतिसारणीय कर्म लायकका प्रव्राजनीय कर्म करे, प्रतिसारणीय कर्म लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे, उत्क्षेपणीय कर्म लायकका प्रतिसारणीय कर्म करे, उत्क्षेपणीय कर्म लायकको परिवास दे, परिवास लायकका उत्क्षेपणीय कर्म करे, परिवास लायकका मूलसे प्रतिकर्पण करे, मूलसे प्रतिकर्पण लायकको परिवास दे, मूलसे प्रतिकर्षण लायकको मानत्व दे, मानत्व लायकका मूलसे प्रतिकर्षण करे, मानत्व लायकका आह्वान् करे, आह्वान् लायकको मानत्व दे, आह्वान् लायकको उपसम्पादन करे, उपसम्पदा लायकका आह्वान् करे, भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म हे, विनय-कर्म है?"

"उपालि वह अ-धर्म-कर्म है, अ-विनय-कर्म है। उपालि! यदि समग्र सघ, स्मृति-विनयके लायकको अमूढ-विनय दे, अमूढ-विनय लायकको स्मृति-विनय दे, तो उपालि यह अधर्म-कर्म, अ-विनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार युक्त होता है। ०[१]। आह्वान लायकको उपसम्पदा दे, उपसम्पदा लायकका आह्वान करे, उपालि यह अधर्म कर्म अ-विनय कर्म होता है और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है।"

(४) धर्म कर्म

१—"भन्ते! समग्र सघ यदि स्मृति-विनय लायकको स्मृति-विनय दे, अमूढ-विनय लायकको अमढ-विनय दे तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है?"

"उपालि! यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है।"

२—"भन्ते! यदि समग्र सघ अमूढ विनय लायकको अमूढ विनय दे, तत्पापीयसिक कर्म०, तर्जनीय कर्म०, नियस्स कर्म०, प्रव्राजनीय कर्म०, प्रतिसारणीय कर्म०, उत्क्षेपणीयकर्म०, परिवास०, मूलसे प्रतिकर्पण०; मानत्व०, आह्वान०, उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे, तो भन्ते! क्या यह धर्म-कर्म है! विनय-कर्म है?"

"उपालि! यह धर्म-कर्म है, विनय-कर्म है। यदि उपालि समग्र सघ स्मृति-विनय लायकको स्मृति-विनय दे, ० [२]उपसम्पदा लायकको उपसम्पदा दे, तो उपालि! यह धर्म-कर्म, विनय-कर्म होता है और इस प्रकार सघ अतिसार रहित होता है।"

---

[१] ऐसेही आगे भी उपालिके प्रश्नमें आये वाक्योको दुहराना चाहिये।

[२] उपालिके प्रश्नमें आये वाक्योको फिर यहाँ दुहराना चाहिये।

(५) अधर्म कर्मका रूप

तव भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

१—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ स्मृति-विनय लायकको अमूढ विनय दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। ० स्मृति-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे, स्मृति-विनय लायकका तर्जनीय कर्म करे, ० नियम्स कर्म करे, ० प्रव्राजनीय कर्म करे, ० प्रतिसारणीय कर्म करे, ० उत्क्षेपणीय कर्म करे०, परिवास दे, ० मूलसे प्रतिकर्पण करे, ० मानत्त्व दे, ० आह्वान करे, स्मृति-विनय लायकको उपसम्पदा दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है।

२—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ अमूढ-विनय लायकका तत्पापीयसिक कर्म करे, ०[1] अमूढ-विनय लायकको उपसम्पदा दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म, अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। 41

३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ , तत्पापीयसिक कर्म लायकको०[2]। 42

४—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ तर्जनीय कर्म लायकको०[2]। 43

५—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ नियस्स कर्म लायकको०[2]। 44

६—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ प्रव्राजनीय कर्म लायकको०[2]। 45

७—" ० प्रतिसारणीय कर्म लायकको०[2]। 46

८—" ० उत्क्षेपणीय कर्म लायकको०[2]। 47

९—" ० परिवास लायकको०[2]। 48

१०—" ० मूलसे प्रतिकर्पण लायकको[2]। 49

११—" ० मानत्त्व लायकको०[2]। 50

१२—" ० आह्वान लायकको०[2]। 51

१३—"भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसम्पदा लायक को स्मृति विनय दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म कर्म, अविनय-कर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युक्त होता है। भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसपदा लायकको अमूढ-विनय दे ०। ० तत्पापीयसिक कर्म करे०। ० तर्जनीय कर्म०। ० नियस्स कर्म ०।० प्रव्राजनीय कर्म ०।० प्रतिसारणीय कर्म ०।० उत्क्षेपणीय कर्म ०।० परिवास ०।० मूलसे प्रतिकर्षण ०।० मानत्त्व ०। भिक्षुओ ! यदि समग्र सघ उपसपदा लायकको आह्वान दे, (तो) भिक्षुओ ! यह अधर्म-कर्म अविन-यकर्म होता है, और इस प्रकार सघ अतिसार-युवत है।" 52

उपालि भाणवार द्वितीय ॥२॥

§४—अधर्म कर्म

(१) तर्जनीय कर्म

"भिक्षुओ ! यहा एक भिक्षु झगळालू , कलह-कारक, विवाद-कारक वकवादी, सघमे (सदा) मुकदमा करनेवाला होता है।

१—यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा हो—'आवुसो ! यह भिक्षु झगळालू ० है, आओ हम इसका

---

[1] अमूढ-विनयके साथ वाकी सब वाक्योको रखकर पढना चाहिये।

[2] ऊपरकी भाँति आवृत्ति।

तर्जनीय कर्म करे।' वह अ ध र्म से व र्ग[1] द्वारा उसका त र्ज नी य क र्म (=डाँटनेका दड) करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 53

२—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका अधर्मसे वर्ग द्वारा सघने तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह उसका अ ध र्म से स म ग्र द्वारा तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 54

३—"वहाँ भिक्षुओको यह होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका सघने अधर्मसे समग्र द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह धर्मसे वर्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 55

४—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका सघने धर्मसे वर्ग द्वारा तर्जनीयकर्म किया है। आओ।, हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह उस भिक्षुका ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 56

५—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! इस भिक्षुका सघने ध र्मा भा स व र्ग द्वारा तर्जनीय कर्म किया है। आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह ध र्मा भा स स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 57

६—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू ० होता है। यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा हो—यह भिक्षु झगळालू ० है, आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह अधर्मसे समग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 58

७—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'०। वह ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 59

८—"वह उस आवासको छोळ कर दूसरे आवासमे चला जाता है। वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 60

९—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स से स म ग्र द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 61

१०—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से व र्ग द्वारा उसका तर्जनीय कर्म करते है। 62

११—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू ० होता है। यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा हो—'आवुसो! यह भिक्षु झगळालू ० है। आओ, हम इसका तर्जनीय कर्म करे।' वह धर्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 63

१२—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है— ०। वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 64

१३—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। 65

"वह ध र्मा भा स से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 66

१४—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय धर्म करते है।०। 67

१५—"वहाँ भी भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। 68

---

[1] नियम-विरुद्ध पार्टी।

"१६—भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। ०। वह ध र्मा भा स व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 69

१७—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—०। वह ध र्मा भा स स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 70

१८—"० वह अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है। ०। 71

१९—"० वह अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते हैं। ०। 72

२०—"० वह ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है। ० 73

२१—"० वह ध र्मा भा स से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 74

२२—"० अ ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है। ०। 75

२३—"० वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।०। 76

२४—"० वह ध र्म से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है। ०। 77

२५—"० वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका तर्जनीय कर्म करते है।" 78

(२) नियस्स कर्म

१—भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु मूर्ख, अजान, बहुत आ प त्ति (=अपराध) करनेवाला, अपदान (=आचार)-रहित, गृहस्थोसे (अत्यधिक) ससर्ग रखनेवाला, प्रतिकूल गृहस्थ ससर्गसे युक्त होता है। यदि वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो ! यह भिक्षु मूर्ख० प्रतिकूल गृहस्थ ससर्गसे युक्त हैं, आओ ! हम इसका नि य स्स क र्म करे।' वह अ ध्र र्म से व र्ग हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 79

२—वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो ! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका नियस्स कर्म किया है। आओ हम इसका नियस्स कर्म करे।' वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसका नियस्स कर्म करते हैं। वह उस आवाससे चला जाता है। 80

३—० ध र्म से व र्ग हो ०। 81

४—ध र्मा भा स से व र्ग हो ०। 82

५—ध र्मा भा स से स म ग्र हो ०। ०[1]। 83

२५—० वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका नि य स्स क र्म करते है। 84

(३) प्रव्राजनीय कर्म

१—यहाँ एक भिक्षु कुल दूपक (और) दुराचारी होता है। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—'यह भिक्षु कुल दूपक और दुराचारी है। आओ, हम इसका प्र व्रा ज नी य क र्म (=वहाँसे हटा देनेका दड) करे।' वह अ ध र्म मे व र्ग हो उसका प्रव्राजनीय कर्म करते है । वह दूसरे आवासमे चला जाता है। 85

२—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो ! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया है। आओ, हम इसका प्रव्राजनीय कर्म करे।' वह उसका अधर्मसे समग्र हो प्रव्राजनीय कर्म करते है। 86

३—० धर्मसे वर्ग हो ०। 87

४—"धर्माभाससे वर्ग हो ०। 88

---

[1]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक (पृष्ठ ३११-१३) दुहराना चाहिये।

५—"धर्माभाससे समग्र हो ०। ०[1]। 89

२५—"० वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका प्र व्रा ज नी य क र्म करते है। 109

(४) प्रतिसारणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु गृहस्थोका आक्रोश (=गाली-गलौज), परिभास (=बकवाद) करता है। वहाँ भिक्षुओको यदि ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु गृहस्थोको आक्रोश प रि भा स करता है, आओ, हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 110

२—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! सघने अधर्मसे वर्ग हो इस भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म किया है। आओ, हम इसका प्रतिसारणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे समग्र हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 111

३—"० ध र्म से व र्ग हो०। 112

४—"० ध र्मा भा स से वर्ग हो०। 113

५—"० ध र्मा भा स से स म ग्र हो०। ०[2]। 114

२५—"० वह ध र्मा भा स से व र्ग हो उसका प्र ति सा र णी य कर्म करते है।" 134

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति (=अपराध) करके उस आपित्तको देखना (Realisation) नही चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति करके उसको देखना नही चाहता। आपत्तिके न देखनेसे आओ, हम इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 135

"(२) वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! सघने आपत्तिके न देखनेसे इस भिक्षुका अ ध र्म से व र्ग हो उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ, हम आपत्तिके न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे समग्र हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह उस आवास से चला जाता है। 136

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 137

"(४) ० ध र्मा भा स से वर्ग हो०। 138

"(५) ० ध र्मा भा स से स म ग्र हो०। ०[2]। 139

"(२५) ० ध र्मा भा स से व र्ग हो आपत्तिके न देखनेसे उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते हैं।" 159

ख "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिको प्रतिकार नही करना चाहता। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु आपत्ति (=दोष) करके आपत्तिका प्रतिकार नही करना चाहता, आओ, हम आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 160

"(२) वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! सघने अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार

---

[1]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।

[2]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस तक दुहराना चाहिये।

न करनेके लिये इस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ हम आपत्तिके न प्रतिकारके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करें।' वह अ ध र्म से स म ग्र हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह उस आवासमे दूसरे आवासमे चला जाता है। 161

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 162

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 163

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[1]। 164

"(२५) ० ध र्मा भा स से व र्ग हो आपत्तिके प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है।" 184

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नही चाहता। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! यह भिक्षु बुरी धारणाको नही छोळना चाहता। आओ, हम बुरी धारणाके न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 185

"(२) वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणाके न छोळनेके लिये इस भिक्षुका उत्क्षेपणीय कर्म किया है। आओ, हम इसका बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे। वह अ ध र्म से स म ग्र हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 186

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो ०। 187

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो ०। 188

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो ०। ०[1] । 189

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिऐ उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है।" 209

§५—नियम-विरुद्ध दंडकी माफी

(१) तर्जनीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! उस भिक्षुका संघने तर्जनीय कर्म किया है। अब यह ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है, (और) तर्जनीय कर्मकी माफी चाहता है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ करे (=हटा दे)।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 210

२—"वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्मसे वर्ग हो उस भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ किया है। आओ, हम इसके तर्जनीय कर्मको माफ करे। वह अ ध र्म से स म ग्र हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते है। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे चला जाता है। 211

३—"० धर्मसे वर्ग हो०। 212

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 213

[1]तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी नम्बर पच्चीस (पृष्ठ ३११-१३) तक दुहराना चाहिये।

५—"० धर्माभाससे समग्र हो०।०[1]। 214

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते हैं।" 224

(२) नियस्स कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने नियस्स कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है, लोम गिराता है, निस्तारके लिये काम करता है और नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—० नियस्स कर्मकी माफी चाहता है। आओ, हम इसके नियस्स कर्मको माफ करदें।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमें दूसरे आवासमें जाता है।" 225

२—"वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—'आवुसो! संघने अधर्ममें वर्ग हो इस भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ किया है। आओ, हम इनके नियस्स कर्मको माफ करें।' वह अधर्मसे समग्र हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमें दूसरे आवासमें चला जाता है। 226

३—"० धर्मसे वर्ग हो ०। 227

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 228

५—"० धर्माभाससे समग्र हो०।[1] ०। 229

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके नियस्स कर्मको माफ करते हैं।" 249

(३) प्रव्राजनीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रव्राजनीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहता है०। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें चला जाता है। 250

२—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं०। 251

३—"० धर्मसे वर्ग हो०। 252

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 253

५—"० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[2]। 254

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करते हैं।" 274

(४) प्रतिसारणीय कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका संघने प्रतिसारणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० प्रतिसारणीय कर्मकी माफी चाहता है०। वह अधर्मसे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 275

२—"० वह अधर्मसे समग्र हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं०। 276

३—"० धर्मसे वर्गहो०। 277

४—"० धर्माभाससे वर्ग हो०। 278

५—"० धर्माभाससे समग्र हो०। ०[2]। 279

२५—"० धर्माभाससे वर्ग हो उसके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करते हैं। 299

---

[1] 'तर्जनीय कर्म'की तरह नम्बर पच्चीस तक यहाँ भी दुहराना चाहिये।

[2] 'तर्जनीय'की तरह यहाँ 'तर्जनीय कर्मकी माफीके लिये' दुहराना चाहिये।

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी

क "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिके न देखनेसे किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 300

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 301

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 302

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 303

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 304 [१]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है।" 324

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमे जाता है। 325

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 326

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 327

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 328

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 329 [१]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है।" 349

ग "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० बुरी धारणाके न छोळनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमे जाता है। 350

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो० । 351

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो० । 352

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो० । 353

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो० । 354 [१]

"(२५) ० धर्माभासमे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है।" 374

§६—नियम-विरुद्ध दंड-संशोधन

(१) तर्जनीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—

[१] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

(५) उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी

क "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिके न देखनेसे किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 300

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 301

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 302

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 303

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 304 [१]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न देखनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 324

ख "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवाससे दूसरे आवासमें जाता है। 325

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 326

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 327

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 328

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 329 [१]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो आपत्तिके न प्रतिकार करनेसे किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 349

ग "(१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुका संघने बुरी धारणाके न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। (तब वह) ठीकसे रहता है० बुरी धारणाके न छोळनेके लिये किये गये उत्क्षेपणीय कर्मकी माफी चाहता है० वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं। वह उस आवासमेंसे दूसरे आवासमें जाता है। 350

"(२) ० अधर्मसे समग्र हो०। 351

"(३) ० धर्मसे वर्ग हो०। 352

"(४) ० धर्माभाससे वर्ग हो०। 353

"(५) ० धर्माभाससे समग्र हो०। 354 [१]

"(२५) ० धर्माभाससे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते हैं।" 374

§६—नियम-विरुद्ध दंड-संशोधन

(१) तर्जनीय कर्म

१—"भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षु झगळालू० होता है। वहाँ भिक्षुओंको ऐसा होता है—

[१] तर्जनीय कर्मकी तरह यहाँ भी दुहराना चाहिये।

कर्म उसका प्रतिसार करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है।' (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।"०[१] 451–475

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके उस आपत्तिको देखना नही चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[२] आओ हम आपत्ति न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है'।"476 ०[२]।500

ख "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिका प्रतिकार नही करना चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[३] आओ हम आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' 501। ०[४]। 525

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नही चाहता। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—०[५] आओ हम बुरी धारणा न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' यहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है। ०[६]। 526

(२५) "० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। तब वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) (यह) अधर्मसे वर्गका कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ! वहाँ जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'अधर्मसे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नही है), (किन्तु) जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'(यह) नही किया कर्म है,० फिर करने लायक कर्म है' (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है)।" 550

§७—नियम-विरुद्ध दण्डकी माफ़ीका संशोधन

(१) तर्जनीय-कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका सघने तर्जनीय-कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है०[७] तर्जनीय-कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'०[८] आओ हम इसके तर्जनीय-कर्मको माफ करे।' अधर्मसे वर्ग हो वह उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते है। वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक,

---

[१] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफीके लिये भी दुहराना चाहिये।

[२] 'तर्जनीय कर्म'की तरह ही यहाँ भी वाक्योकी योजना समझो।

[३] देखो पृष्ठ ३१४ (ख)।

[४] 'तर्जनीय कर्मके सशोधन'की तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी नम्बर २५ तक समझना चाहिए।

[५] देखो पृष्ठ ३१४। [६] देखो पृष्ठ ३१५। [७] देखो पृष्ठ ३१५-१६।

[८] तर्जनीय कर्मके संशोधनकी तरह यहा भी नम्बर २ तक समझना चाहिये।

कर्म उसका प्रतिसार करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है।' (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।"०[1] 451-475

(५) उत्क्षेपणीय कर्म

क "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके उस आपत्तिको देखना नही चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[1] आओ हम आपत्ति न देखनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो उसका प्रतिसारणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है'।"476 ०[2]। 500

ख "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु आपत्ति करके आपत्तिका प्रतिकार नही करना चाहता। वहाँ यदि भिक्षुओको ऐसा होता है—०[3] आओ हम आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है। (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' 501। ०[4]। 525

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षु बुरी धारणाको छोळना नही चाहता। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—०[5] आओ हम बुरी धारणा न छोळनेके लिये इसका उत्क्षेपणीय कर्म करे।' वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' यहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है। ०[6]। 526

(२५) "० वह अधर्मसे वर्ग हो उसका उत्क्षेपणीय कर्म करते है। तब वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) (यह) अधर्मसे वर्गका कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक कर्म है।' भिक्षुओ! वहाँ जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'अधर्मसे वर्गका कर्म है' (वह धर्मवादी नही है), (किन्तु) जिन भिक्षुओने ऐसे कहा—'(यह) नही किया कर्म है,० फिर करने लायक कर्म है' (वहाँ ये भिक्षु धर्मवादी है)।" 550

§७—नियम-विरुद्ध दण्डकी माफ़ीका संशोधन

(१) तर्जनीय-कर्मकी माफी

१—"भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका सघने तर्जनीय-कर्म किया है, (तब वह) ठीकसे रहता है०[7] तर्जनीय-कर्मकी माफी चाहता है। वहाँ भिक्षुओको ऐसा होता है—'०[8] आओ हम इसके तर्जनीय-कर्मको माफ करे।' अधर्मसे वर्ग हो वह उसके तर्जनीय कर्मको माफ करते है। वहाँ रहनेवाला सघ विवाद करता है—'(क) अधर्मसे वर्ग कर्म है, (ख) नही किया कर्म है, बुरा किया कर्म है, फिर करने लायक,

---

[1] 'तर्जनीय कर्म'की तरह यहाँ माफीके लिये भी दुहराना चाहिये।
[2] 'तर्जनीय कर्म'की तरह ही यहाँ भी वाक्योकी योजना समझो।
[3] देखो पृष्ठ ३१४ (ख)।
[4] 'तर्जनीय कर्मके सशोधन'की तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी नम्बर २५ तक समझना चाहिए।
[5] देखो पृष्ठ ३१४। [6] देखो पृष्ठ ३१५। [7] देखो पृष्ठ ३१५-१६।
[8] तर्जनीय कर्मके संशोधनकी तरह यहा भी नम्बर २ तक समझना चाहिये।

णीय कार्य किया है । ०[1] वह अधर्मसे वर्ग हो आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है—०। c676। ०[1] 700

ग "(१) भिक्षुओ! यहाँ एक भिक्षुका सघने बुरी धारणा न छोळनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया है। [2] वह अधर्मसे वर्ग हो बुरी धारणा न छोळनेके लिये किये गये उसके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करते है। वहाँका रहनेवाला सघ विवाद करता है--०।" 700 । ०[2]। 724

चम्पेय्यक्खंधक समाप्त ॥९॥

---

[1] तर्जनीय कर्मकी माफीके सशोधनकी तरह (पृष्ठ ३१७) यहाँ भी वाक्योको योजना समझो ।

[2] देखो पृष्ठ ३१७ (ग) ।

आपत्ति-सहित (कहते है)। 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुझे (उन्होने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य, स्थानमे अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष गहण करे।" (तव) सभी जानकार सभ्रान्त भिक्षुओको पक्षमे उसने पाया। जा न प द (=दीहाती) जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओके पास भी दूत भेजा०। जनपद जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओको भी पक्षमे पाया। तव वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहाँ उ त्क्षे प क थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओसे वोले—

"यह अनापत्ति है आवुसो! आपत्ति नही। यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (-आ प न्न) नही। अनुत्क्षिप्त है उत्क्षिप्त नही। यह अ-धार्मिक० क र्म (=न्याय)से उत्क्षिप्त किया गया है।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोसे कहा—"आवुसो! यह आपत्ति है, अनापत्ति नही। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नही। यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नही। यह धार्मिक=अ को प्य=स्था नी य, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है। आयुष्मानो! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अ नु व र्त न=अनुगमन न करे।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी, उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

(२) उत्क्षिप्तकोको उपदेश

तव भगवान्—'भिक्षु-सघमे फूट हो गई, भिक्षु-सघमे फूट हो गई'—(सोच) आसनसे उठ, जहाँ वह उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर विछे आसनपर वैठे। वैठकर भगवान्ने उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओसे कहा—

"मत तुम भिक्षुओ!—'हम जानते है, हम जानते है'—(सोच) जैसा-तैसा होनेपर भी (किसी) भिक्षुका उत्क्षेपण करना चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति (=अपराध) किया हो, और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हो। यदि भिक्षुओ! वे भिक्षु उस भिक्षुके वारेमे ऐसा जानते हो—'यह आयुष्मान् वहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पडित (=व्यक्त), मेधावी, लज्जाशील, आस्थावान्, सीख (चाहने)वाले है, यदि हम इन भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेगे='इन भिक्षुके साथ हम उपोसथ न करेगे, इन भिक्षुके विना उपोसथ करेगे, तो इसके कारण सघमे झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, सघमे फूट=सघराजी-सघ-व्यवस्थान=सघका विलगाव होगा।' तो भिक्षुओ! फूटको वळा समझकर, भिक्षुओको आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्तिके तौरपर देखता हो० यदि हम इन भिक्षुका आपत्तिके न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेगे=इन भिक्षुके साथ प्रवारणा न करेगे, इन भिक्षुके विना प्रवारणा करेगे (०) इन भिक्षुओके साथ सघ कर्म न करेगे ०। इन भिक्षुके साथ आसनपर नही वैठेगे ०। इन भिक्षुओंके साथ यवागू पीने नही वैठेगे०। इन भिक्षुओके साथ भोजन करने नही वैठेगे०। इन भिक्षुओके साथ एक छतके नीचे वास नही करेगे ०। इन भिक्षुओके साथ वृद्धत्वके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, सामीचिकर्म (=कुशल समाचार पूछना) नही करेगे ०। तो इसके कारण झगळा० होगा, तो भिक्षुओ! फूटको वळा समझकर भिक्षुओको, आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये।" 1

(३) उत्क्षेपकोंको उपदेश

तव भगवान् उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओको यह वात कह आसानसे उठ, जहाँ उत्क्षिप्त

आपत्ति-सहित (कहते है)। 'उत्क्षेपण'-रहित (=अनुत्क्षिप्त) हूँ, मुझे (उन्होने) उत्क्षिप्त किया। अधार्मिक=कोप्य, स्थानमे अनुचित निर्णय (=कर्म) द्वारा उत्क्षिप्त किया गया हूँ। आयुष्मान् (लोग) धर्मके साथ विनयके साथ मेरा पक्ष गहण करे।" (तव) सभी जानकार सभ्रान्त भिक्षुओको पक्षमे उसने पाया। जा न प द (=दीहाती) जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओके पास भी दूत भेजा०। जनपद जानकार और सभ्रान्त भिक्षुओको भी पक्षमे पाया। तव वह उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवाले भिक्षु, जहाँ उ त्क्षे प क थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओसे वोले—

"यह अनापत्ति है आवुसो! आपत्ति नही। यह भिक्षु आपत्ति-रहित है, आपत्ति-सहित (-आ प न्न) नही। अनुत्क्षिप्त है उत्क्षिप्त नही। यह अ-धार्मिक० क र्म (=न्याय)से उत्क्षिप्त किया गया है।" ऐसा कहनेपर उत्क्षेपक भिक्षुओने उत्क्षिप्त भिक्षुके पक्षवालोसे कहा—"आवुसो! यह आपत्ति है, अनापत्ति नही। यह भिक्षु आपन्न है, अनापन्न नही। यह भिक्षु उत्क्षिप्त है, अनुत्क्षिप्त नही। यह धार्मिक=अ को प्य=स्था नी य, कर्म (=न्याय) द्वारा उत्क्षिप्त हुआ है। आयुष्मानो! आप लोग इस उत्क्षिप्त भिक्षुका अ नु व र्त न=अनुगमन न करे।" उत्क्षिप्तके पक्षवाले भिक्षु, उत्क्षेपक भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जानेपर भी, उत्क्षिप्त भिक्षुका वैसे ही अनुवर्तन=अनुगमन करते रहे।

(२) उत्क्षिप्तकोको उपदेश

तव भगवान्—'भिक्षु-सघमे फूट हो गई, भिक्षु-सघमे फूट हो गई'—(सोच) आसनसे उठ, जहाँ वह उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर विछे आसनपर वैठे। वैठकर भगवान्ने उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओसे कहा—

"मत तुम भिक्षुओ!—'हम जानते है, हम जानते है'—(सोच) जैसा-तैसा होनेपर भी (किसी) भिक्षुका उत्क्षेपण करना चाहो। यदि भिक्षुओ! (किसी) भिक्षुने आपत्ति (=अपराध) किया हो, और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्ति (के तौरपर) देखता हो और दूसरे भिक्षु उस आपत्तिको आपत्ति (के तौरपर) देखते हो। यदि भिक्षुओ! वे भिक्षु उस भिक्षुके वारेमे ऐसा जानते हो—'यह आयुष्मान् वहु-श्रुत, आगमज्ञ, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पडित (=व्यक्त), मेधावी, लज्जाशील, आस्थावान्, सीख (चाहने)वाले है, यदि हम इन भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेगे='इन भिक्षुके साथ हम उपोसथ न करेगे, इन भिक्षुके विना उपोसथ करेगे, तो इसके कारण सघमे झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, सघमे फूट=सघराजो-सघ-व्यवस्थान= सघका विलगाव होगा।' तो भिक्षुओ! फूटको वळा समझकर, भिक्षुओको आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये। यदि भिक्षुओ! भिक्षुने आपत्ति की हो और वह उस आपत्तिको अन्-आपत्तिके तौरपर देखता हो० यदि हम इन भिक्षुका आपत्तिके न देखनेके लिये उत्क्षेपण करेगे=इन भिक्षुके साथ प्रवारणा न करेगे, इन भिक्षुके विना प्रवारणा करेगे (०) इन भिक्षुओके साथ सघ कर्म न करेगे ०। इन भिक्षुके साथ आसनपर नही वैठेगे ०। इन भिक्षुओंके साथ यवागू पीने नही वैठेगे०। इन भिक्षुओके साथ भोजन करने नही वैठेगे०। इन भिक्षुओके साथ एक छतके नीचे वास नही करेगे ०। इन भिक्षुओके साथ वृद्धत्वके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळना, सामीचिकर्म (=कुशल समाचार पूछना) नही करेगे ०। तो इसके कारण झगळा० होगा, तो भिक्षुओ! फूटको वळा समझकर भिक्षुओको, आपत्ति न देखनेके लिये उस भिक्षुका उत्क्षेपण नही करना चाहिये।" 1

(३) उत्क्षेपकोंको उपदेश

तव भगवान् उत्क्षेपण करनेवाले भिक्षुओको यह वात कह आसानसे उठ, जहाँ उत्क्षिप्त

(५) कलहके कारण अनुचित कायिक वाचिककर्म नही करना चाहिये

उस समय भोजन करते वक्त (गृहस्थके) घरमे भिक्षुओने झगळा, कलह, विवाद किया, और अनुचित कायिक और वाचिक कर्म दिखलाया। हाथसे इशारा किया। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य पुत्रीय श्रमण भोजन करते वक्त (गृहस्थके घरमे) झगडा, कलह, विवाद करेंगे और अनुचित कायिक तथा वाचिक कर्म प्रदर्शित करेंगे, हाथका इशारा करेंगे!' भिक्षुओने उन मनुष्यो-के हैरान होने को सुना और जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे वे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु० हाथका इशारा करेंगे!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ! उन भिक्षुओने० हाथका इशारा किया?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

भगवान्ने फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! सघमे फूट होनेपर, अन्याय होनेपर सम्मोदन न करनेपर—'इतनेसे एक दूसरे-को अनुचित कायिक कर्म, वाचिक कर्म न दिखलायेगे, हाथका इशारा न करेंगे'—(सोच) आसनपर बैठे रहना चाहिये। भिक्षुओ! सघमे फूट होजानेपर, न्याय होनेपर, सम्मोदनके किये जानेपर, दूसरे आसनपर बैठना चाहिये।"4

(६) कलह करनेवालोंकी जिद

उस समय भिक्षु सघमे झगळा करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार)से बेधते फिरते थे। वह झगळेको शान्त न कर सकते थे। तब एक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे उस भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यहाँ सघमे भिक्षु झगळा करते० झगळेको शान्त नही कर सकते। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् जहाँ वह भिक्षु है वहाँ चले।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे बोले—

"बस भिक्षुओ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो।"

ऐसा कहनेपर एक अधर्मवादी भिक्षुने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! रहने दे। परवाह मत करे। भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म)के सुखके साथ विहार करे। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेगे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने उन भिक्षुओसे यह कहा—"बस०।"

दूसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते!०।"

(७) दीर्घायु जातक

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! भूतकालमे वा रा ण सी मे ब्रह्मदत्त नामक का शि रा ज था। (वह) आढ्य=महाधनी=महा भोगवान=महा सैन्य युक्त=महावाहन युक्त =महाराज्य युक्त, भरे कोष्ठागार वाला था। (उस समय) दी धि ति नामक को स ल रा जा था, जोकि दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोळे राज्यवाला, अपरिपूर्ण कोष, कोष्ठा-गारवाला था। तब भिक्षुओ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने चतुरगिनी सेना तैयारकर को स ल रा ज दी धि ति पर चढाई की। तब भिक्षुओ! कोसलराज दीधितिको ऐसा हुआ—'काशिराज ब्र ह्म द त्त

(५) कलहके कारण अनुचित कायिक वाचिककर्म नही करना चाहिये

उस समय भोजन करते वक्त (गृहस्थके) घरमे भिक्षुओने झगळा, कलह, विवाद किया, और अनुचित कायिक और वाचिक कर्म दिखलाया। हाथसे इशारा किया। लोग हैरान होते थे—'कैसे शाक्य पुत्रीय श्रमण भोजन करते वक्त (गृहस्थके घरमे) झगडा, कलह, विवाद करेगे और अनुचित कायिक तथा वाचिक कर्म प्रदर्शित करेगे, हाथका इशारा करेगे!' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान होने को सुना और जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे वे हैरान होते थे—'कैसे भिक्षु० हाथका इशारा करेगे!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही—

"सचमुच भिक्षुओ! उन भिक्षुओने० हाथका इशारा किया?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

भगवान्ने फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! सघमे फूट होनेपर, अन्याय होनेपर सम्मोदन न करनेपर—'इतनेसे एक दूसरेको अनुचित कायिक कर्म, वाचिक कर्म न दिखलायेगे, हाथका इशारा न करेगे'—(सोच) आसनपर बैठे रहना चाहिये। भिक्षुओ! सघमे फूट होजानेपर, न्याय होनेपर, सम्मोदनके किये जानेपर, दूसरे आसनपर बैठना चाहिये।"4

(६) कलह करनेवालोंकी जिद

उस समय भिक्षु सघमे झगळा करते, कलह करते, विवाद करते, एक दूसरेको मुख (रूपी) शक्ति (=हथियार)से बेधते फिरते थे। वह झगळेको शान्त न कर सकते थे। तब एक भिक्षु जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर खळा होगया। एक ओर खळे उस भिक्षुने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! यहाँ सघमे भिक्षु झगळा करते० झगळेको शान्त नही कर सकते। अच्छा हो भन्ते! यदि भगवान् जहाँ वह भिक्षु है वहाँ चले।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब भगवान् जहाँ वे भिक्षु थे वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे बोले—

"बस भिक्षुओ! मत झगळा, कलह, विग्रह, विवाद करो।"

ऐसा कहनेपर एक अधर्मवादी भिक्षुने भगवान् से यह कहा—

"भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! रहने दे। परवाह मत करे। भन्ते! भगवान्! धर्मस्वामी! दृष्ट-धर्म (=इसी जन्म)के सुखके साथ विहार करे। हम इस झगळे, कलह, विग्रह, विवादको जान लेगे।"

दूसरी बार भी भगवान्ने उन भिक्षुओसे यह कहा—"बस०।"

दूसरी बार भी उस अधर्मवादी भिक्षुने भगवान्से यह कहा—"भन्ते!०।"

(७) दीर्घायु जातक

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—"भिक्षुओ! भूतकालमे वा रा ण सी मे ब्रह्मदत्त नामक का शि रा ज था। (वह) आढ्य=महाधनी=महा भोगवान=महा सैन्य युक्त=महावाहन युक्त =महाराज्य युक्त, भरे कोष्ठागार वाला था। (उस समय) दी धि ति नामक को स ल रा जा था, जोकि दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोळे राज्यवाला, अपरिपूर्ण कोप, कोष्ठागारवाला था। तब भिक्षुओ! काशिराज ब्र ह्म द त्त ने चतुरगिनी सेना तैयारकर को स ल रा ज दी धि ति पर चढाई की। तब भिक्षुओ! कोसलराज दीधितिको ऐसा हुआ—'काशिराज ब्र ह्म द त्त

आढच ० है और मै दरिद्र हूँ । मै काशिराज ब्रह्मदत्तके साथ एक भिळन्त भी नही ले सकता । क्यो न मै पहले ही नगर से चला जाऊँ ।' तव भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति महिषी (=पटरानी)को लेकर पहिलेही नगरसे भाग गया । तव भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त कोसलराज दी घि ति की सेना, वाहन, देश, कोप, और कोष्ठागारको जीतकर अधिकारमे किया । तव भिक्षुओ ! कोसलराज दीघिति अपनी स्त्री सहित जिधर वा रा ण सी थी उधरको चला । क्रमश जहाँ वाराणसी है वहाँ पहुँचा । तव भिक्षुओ ! कोसल-रा ज दी घि ति ने अपनी स्त्री सहित वाराणसीके एक कोनेमे कुम्हारके घरमे अज्ञात वेपसे परिव्राजकका रूप धारणकर वास किया । तव भिक्षुओ कोसलराज दी घि ति की महिषी अचिरमे ही गर्भिणी हुई । उसको ऐसा दोहद (=दोहळ) हुआ—वह सूर्यके उदयके समय क्री डा-क्षेत्र (सुभूमि)मे सन्नाह और वर्म (=कवच)से युक्त चतुरगिनी सेनाको खळी देखना चाहती थी और खड्गकी धोवनको पीना चाहती थी । तव भिक्षुओ कोसलराज दी घि ति की महिषीने कोसल राज दीघितिसे यह कहा—

"देव ! मै गर्भिणी हूँ । मुझे ऐसा दो ह द उत्पन्न हुआ है—सूर्यके उदयके समय क्रीडा-क्षेत्रम सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरगिनी सेनाको खळी देखना चाहती हूँ और खड्गकी धोवनको पीना चाहती हूँ ।'

"देवि ! दुर्गतिमे पळे हम लोगोको कहाँसे हम लोगोके लिये क्रीडा क्षेत्रमे सन्नाह और वर्म मे युक्त चतुरगिनी सेना खळी (होगी), और कहाँसे खड्गकी धोवन (आयेगी) ?'

"देव ! यदि मै न पाऊँगी तो मर जाऊँगी ।'

भिक्षुओ ! उस समय काशिराज ब्रह्मदत्तका ब्राह्मण पुरोहित कोसलराज दीघितिका मित्र था । तव भिक्षुओ । कोसलराज दीघित, जहाँ काशिराज ब्र ह्म दत्तका पुरोहित था, वहाँ गया । जाकर पुरोहित ब्राह्मणसे यह बोला—

"सौम्य[1] ! तेरी स खि नी गर्भिणी है । उसको इस प्रकारका दो ह द उत्पन्न हुआ है—०और खड्गकी धोवनको पीना चाहती है ।'

"तो देव हम भी देवीको देखना चाहते है ।'

"तव भिक्षुओ ! को स ल रा ज दी घि ति की महिषी जहाँ का शि रा ज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण था वहाँ गई पुरोहित ब्राह्मणने दूरसे ही कोसलराज दी घि त की महिषीको आते देखा । देखकर आसनसे उठ एक कधेपर उत्तरासघ कर जिधर को स ल रा ज दीघितिकी महिषी थी उधर हाथ जोळ तीन वार उ दा न (चित्तोल्लासमे निकला शब्द) कहा—अहो ! कोसलराज कोखमे है ! अहो ! कोसलराज कोखमे है । कोसलराज कोखमे है (और रानीसे कहा)—देवि प्रसन्न हो, तू सूर्यके उदयके समय क्रीडा क्षेत्रमे सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरगिनी सेनाको खळी देखेगी, और खड्गकी धोवनको पीयेगी ।"

"तव भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तका पुरोहित ब्राह्मण जहाँ काशिराज ब्रह्मदत्त था वहाँ गया । जाकर यह बोला—'देव ! ऐसी साइत है इसलिये कल सूर्यके उदयके समय क्रीडास्थलमे सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरगिनी सेना खळी हो और खड्ग धोये जायँ ।'

"तव भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोको आज्ञा दी—'भणे ! जैसा पुरोहित ब्राह्मण कहता है वैसा करो ।' "

"भिक्षुओ ! (इस प्रकार) कोसलराज दीघितिकी महिषीने सूर्यके उदयके समय क्रीडास्थलमे

---

[1] मित्रके सबोधनमें इस शब्दका प्रयोग होता था ।

सन्नाह और वर्मसे युक्त चतुरंगिनी सेनाको खळी देख पाया तथा खड्गकी धोवनको पी पाया ।

"तब भिक्षुओ ! कोसल राज द्रीघितिकी महिषीने उस गर्भके पूर्ण होनेपर पुत्र प्रसव किया (माता-पिताने) उसका दी र्घा यु नाम रखा । तब भिक्षुओ ! बहुत काल न जाते जाते दीर्घायु कुमार विज्ञ हो गया । कोसलराज दीघितको वह हुआ—'यह काशिराज ब्र ह्म द त्त हमारे अनर्थका करने वाला है । इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोष, और कोष्ठागारको छीन लिया है । यदि यह जान पायेगा तो हम तीनोको मरवा डालेगा । क्यो न मैं दी र्घा यु कुमारको नगरसे बाहर वसा दूँ ।'

"तब भिक्षुओ ! कोसलराज दी घि तिने दी र्घा यु कुमारको नगरसे बाहर वसा दिया । दी र्घा यु कुमार नगरसे वाहर वसते थोडे ही समयमे सारे शिल्पोको सीख गया । उस समय कोसल राज दी घि ति का हजाम काशिराज ब्र ह्म द त्त के पास रहता था । भिक्षुओ ! एक समय कोसलराज दीधितिके हजामने कोसलराज दी घि त को स्त्री सहित वा रा ण सी के एक कोनेमे कुम्हारके घरमे अज्ञात वेषसे परिव्राजकके रूपमे वास करते देखा । देखकर जहाँ काशिराज ब्र ह्म द त्त था वहाँ गया । जाकर काशिराज ब्र ह्म द त्त से यह बोला—

"देव ! कोसलराज दी घि ति स्त्री सहित वाराणसी० परिव्राजकके रूपमे वास कर रहा है ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोको आज्ञा दी—

"तो भणे ! कोसलराज दीघितिको स्त्री सहित ले आओ !'

"अच्छा देव !' (कह) वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित ले आये ।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने आदमियोको आज्ञा दी—'तो भणे ! कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित मजबूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह करके अच्छी तरह बाँध, छुरेसे मुंळवा, जोरकी आवाजवाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा दक्खिन दरवाजेसे नगरके दक्खिन ओर चार टुकळे कर चारो दिशाओमे बलि फेंक दो ।'

"अच्छा देव !' कह वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तरदे, कोसलराज दी घि ति को स्त्री सहित ० मजबूत रस्सीसे पीछेकी ओर बाँह बाँध, छुरेसे शिर मुंळवा जोरके आवाजवाले नगाळेके साथ एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते थे। तब भिक्षुओ ! दी र्घा यु कुमारको यह हुआ—'मुझे माता-पिताका दर्शन किये देर हुई । चलो माता-पिताका दर्शन करूँ ।' तब भिक्षुओ ! दी र्घा यु कुमारने वाराणसीमें प्रवेशकर माता-पिताको मोटी रस्सीसे बाँहे पीछेकी ओर बँधे एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमाते देखा । देखकर जहाँ माता-पिता थे वहाँ गया । को स ल रा ज दी घि ति ने दूरसे ही कुमार दी र्घा यु को आते देखा । देखकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"तात दीर्घायु ! मत तुम छोटा बळा देखो । तात दीर्घायु ! वैरसे वैर शात नही होता । अवैर से ही तात दीर्घायु वैर शात होता है ।'

"ऐसा कहनेपर भिक्षुओ ! उन आदमियोने कोसलराज दी घि ति से यह कहा—'यह कोसलराज दी घि ति उन्मत्तहो वक-झक कर रहा है। दी र्घा यु इसका कौन है ? किसको यह ऐसे कह रहा है—तात दीर्घायु, मत तुम छोटा बळा देखो० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शात होता है ।'

" 'भणे ! मै उन्मत्त हो बकझक नही कर रहा हूँ बल्कि (मेरी वातको) जो विज्ञ है वह जानेगा ।'

"भिक्षुओ ! दूसरी वार भी ० । तीसरो वार भी कोसलराज दी घि ति ने कुमार दीर्घायुसे यह

कहा—'तात छोटा वळा मत देखो ० अवैरसे ही तात दीर्घायु ! वैर शात होता है ।'

"तीसरी वार भिक्षुओ ! उन आदमियोने कोसलराज दीघिति से यह कहा—'यह कोसलराज दीघिति उन्मत्त हो ० ।'

" 'भणे ! मैं उन्मत्त हो वल-झक नही कर रहा हूँ ० ।'

"तव भिक्षुओ ! वे आदमी कोसलराज दीघिति को स्त्री सहित एक सळकसे दूसरी सळकपर, एक चौरस्तेसे दूसरे चौरस्तेपर घुमा, दक्षिणद्वारसे लेजा, नगरके दक्षिण चार टुकळेकर चारो दिशाओमे वलि डाल गुल्म (=पहरेदार) रख चले गये ।

"तव भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार ने वाराणसीमे जा शराव ले पहरेदारोको पिलाया । जब वे मतवाले होकर पळ गये तव लकळी ला चिता वना, माता-पिताके शरीरको चितापर रख आगदे हाथ जोळ तीन वार चिताकी प्रदक्षिणा की ।

"उस समय भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त ऊपरके महलपर था । काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायुको तीन वार चिताकी प्रदक्षिणा करते देखा । देखकर उसको ऐसा हुआ—'निस्सशय वह आदमी कोसलराज दीघिति का जातिवाला या रक्त-सवधी है । अहो मेरे अनर्थके लिये किसीने (यह वात मुझे नही) वतलाई ।'

"तव भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार ! अरण्यमे जा पेट भर रो आँसू पोछ वाराणसीमे प्रवेशकर अन्त पुर (=राजाके रहनेके दुर्ग)के पासकी हथसारमे जा महावतसे यह बोला—'आचार्य मै (आपके) शिल्प सीखना चाहता हूँ ।'

" 'तो भणे माणवक ! (=वच्चा) सीखो ।'

"तव भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार रातके भिनसारको दीर्घायु कुमार हथसारमे मजु स्वरसे गाता ओर वीणा वजाता था । काशिराज ब्रह्मदत्त ने रातके भिनसारको उठकर हथसारमें मजु स्वरसे गीत गाते और वीणा वजाते (किसी आदमी)को सुना । सुनकर आदमियोसे पूछा—

" 'भणे ! (यह) कौन रातके भिनसारको उठकर हथसारमे मजु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था ?'

" 'देव ! अमुक महावतका शिष्य माणवक रातके भिनसारको उठकर मजुस्वरसे गाता और वीणा वजाता था ।'

" 'तो भणे ! उस माणवकको यहाँ ले आओ ।'

" 'अच्छा देव !' (कह) वे आदमी काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे दीर्घायु कुमारको ले आये ।"

"(राजाने पूछा)—'भणे माणवक! क्या तू रातके भिनसारको उठकर मजु स्वरसे गाता और वीणा बजाता था ?'

" 'हाँ देव !'

" 'तो भणे माणवक ! गावो, और वीणा वजाओ ।'

" 'अच्छा देव—(कह) दीर्घायु कुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्तको सतुष्ट करनेकी इच्छासे मजु स्वरसे गाया और वीणा वजाया ।

" 'भणे माणवक ! तू मेरी सेवामे रह ।

" 'अच्छा देव' (कह) दीर्घायु कुमार ने काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दिया ।

" "तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तका पहले उठने-वाला, पीछे-सोने-वाला, क्या-काम है—पूछनेवाला, प्रियचारी (और) प्रियवादी सेवक होगया । तब भिक्षुओ ! काशिराज

ब्रह्मदत्तने बहुत थोळेही समय बाद दीर्घायुकुमारको अपने अन्तरगके विश्वसनीय स्थानपर स्थापित किया ।

"(एक बार) काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—'तो भणे! माणवक रथ जोतो शिकारके लिये चलेंगे ।'

"'अच्छा, देव' (कह) उत्तरदे, दीर्घायु कुमारने रथ जोत, काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

"देव ! रथ जुत गया । अब जिसका काल समझतेहो (वैसा करे)

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त रथपर चढा और दीर्घायु कुमारने रथको हाँका । उसने ऐसे रथ हाँका कि सेना दूसरी ओर चली गई और रथ दूसरी ओर तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दूर जाकर दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो भणे माणवक ! रथको छोडो । थक गया हूँ लेटूँगा ।'

"'अच्छा देव !' (कह) दीर्घायु कुमार काशिराज ब्रह्मदत्तको उत्तर दे, रथ छोळ पृथ्वीपर पलथी मारकर बैठ गया । तब काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारकी गोदमे सिर रख सो गया । थका होनेसे क्षणभरमे ही उसे नीद आगई । तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज ब्रह्मदत्त हमारे बहुतसे अनर्थोका करनेवाला है । इसने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश और कोष्ठागारको छीन लिया । इसने मेरे माता-पिताको मारडाला । यह समय है जब कि मै वैर साधूँ ।'—(सोच)म्यानसे उसने तलवार निकाली । तब भिक्षुओ । दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'मरनेके समय पिताने मुझे कहा था—'तात दीर्घायु ! मत तुम छोटा बळा देखो, तात दीर्घायु, वैरसे वैर शान्त नही होता । अवैर से ही तात दीर्घायु ! वैर शान्त होता है ।' यह मेरे लिये उचित नही कि मै पिताके वचनका उल्लघन करूँ', (सोच) म्यानमे तलवार डालदी । दूसरी बार भी० । तीसरी बार भी दीर्घायु कुमारको यह हुआ—'यह काशिराज० म्यानमे तलवार डालदी ।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त, भयभीत, उद्विग्न, शकायुक्त, त्रस्त हो सहसा (जाग) उठा । तब दीर्घायु कुमारने काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—'देव ! क्यो तुम भयभीत जाग उठे ?'

"'भणे माणवक ! मुझे स्वप्नमे कोसलराज दीघितिके पुत्र दीर्घायु कुमारने खड्गसे (मार) गिराया था, इसीसे मै भयभीत० (जाग) उठा ।'

"तब भिक्षुओ ! दीर्घायु कुमारने बाएँ हाथसे काशिराज ब्रह्मदत्तके सिरको पकळ दाहिने हाथ मे खड्गले, काशिराज ब्रह्मदत्तसे यह कहा—

"'देव ! मै हूँ कोसलराज दीघितका पुत्र दीर्घायु कुमार । तुम हमारे बहुत अनर्थ करने वाले हो । तुमने हमारी सेना, वाहन, देश, कोश, और कोष्ठागारको छीन लिया । तुमने मेरे माता पिताको मार डाला यही समय है कि मै (पुराने) वैरको साधूँ ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त दीर्घायु कुमारके पैरोमे सिरसे पळ, दीर्घायु कुमारसे यह बोला—'तात दीर्घायु ! मुझे जीवन दान दो, तात दीर्घायु मुझे दान दो ।'

"'देवको जीवन दान मै दे सकता हूँ, देव भी मुझे जीवन दान दे ।'

"'तो तात दीर्घायु ! तुम मुझे जीवन दान दो, मै तुम्हे जीवन दान देता हूँ ।'

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्त और दीर्घायु कुमारने एक दूसरेको जीवन दान दिया और (एकने दूसरे का) हाथ पकळा, और द्रोह न करनेकी शपथ की ।

"तब भिक्षुओ ! काशिराज ब्रह्मदत्तने दीर्घायु कुमारसे यह कहा—

"'तो तात ! दीर्घायु ! रथ जोतो चले ।'

तब भगवान्—'यह मोघ पुरुष प रि या दि न्न रू प (=अत्यन्त लिप्त) है इनको समझाना सुकर नही'—(सोच) आश्रमसे उठ चल दिये ।

(इति) दीर्घायु भाणवार ॥ १ ॥

(८) भिक्षु-संघका परित्याग

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय (वस्त्र) पहनकर पात्र-चीवरले कौशाम्बीमे भिक्षाचारकर, भोजनकर पिंड-पातसे उठ, आसन समेट, पात्र चीवर ले, खळेही खळे इस गाथाको बोले—

"वळे शब्द करने वाले एक समान (यह) जन कोई भी अपनेको वाल (=अज्ञ) नही मानते,
सघके भग होनेपर (और) मेरे लिये मनमे नही करते ।।
मूढ, पडितसे दिखलाते, जीभपर आई वातको बोलने वाले ,
मन-चाहा मुख फैलाना चाहते है, जिस (कलह) से (अयोग्य मार्गपर)
ले जाये गये है, उसे नही जानते ।।
'मुझे निन्दा', 'मुझे मारा', 'मुझ जीता', 'मुझे त्यागा' ।
(इस तरह) जो उसको नही बाँधते, उनका वैर शात होजाता है ।।
वैरसे वैर यहाँ कभी शात नही होता ।
अ-वैरसे (ही) शात होता है, यही सनातन-धर्म है ।।
दूसरे (=अपडित) नही जानते, कि हम यहाँ मृत्युको प्राप्त होगे ।
जो वहाँ (मृत्युके पास) जाना जानते है, वे (पडित) बुद्धिगत (कलहोको) शमन करते है ।।
हड्डी तोळने वालो, प्राण हरने वालो, गाय-घोळा-धन-हरनेवालो ।
राष्ट्रको विनाश करनेवालो (तक)का भी मेल होता है ।।
यदि नम्र-साधु-विहारी (पुरुष) सहचर=सहायक (=साथी) मिले ।
तो सव झगळोको छोळ प्रसन्न हो बुद्धिमान् उसके साथ विचरे ।।
यदि नम्र साधु-विहारी धीर सहचर सहायक न मिले ।
तो राजाकी भाँति विजित राष्ट्रको छोळ, उत्तम मातग-राजकी भाँति अकेला विचरे ।
अकेला विचरना अच्छा है, वालसे मित्रता नहीं (अच्छी) ।
वे पर्वाह हो उत्तम मातग-(=नाग) राजकी भाँति अकेला विचरे, और पाप न करे ।।"

२—बालकलोणकार ग्राम

तब भगवान् खळे खळे इन गाथाओको कहकर, जहाँ वा ल क-लो ण का र ग्राम था, वहाँ गये । उस समय आयुष्यमान् भृ गु वालक-लोणकार ग्राममे वास करते थे । आयुष्मान् भृगुने दूरसे ही भगवान्को आते देखा । देखकर आसन विछाया, पैर धोनेको पानी भी (रक्खा) । भगवान् बिछाये आसनपर बैठे । बैठकर चरण धोये । आयुष्मान् भृगु भी भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् भृगुसे भगवान्ने यो कहा—"भिक्षु ! क्या खमनीय (ठीक) तो है, क्या यापनीय (=अच्छी गुजरती) तो है ? पिंड (=भिक्षा)के लिये तो तुम तकलीफ नही पाते ?"

"खमनीय है भगवान् ! यापनीय है भगवान् ! मै पिंडके लिये तकलीफ नही पाता ।"

३—प्राचीनवशदाव

तब भगवान् आयुष्मान् भृगुको धार्मिक कथासे० समुत्तेजितकर०, आसनसे उठकर, जहाँ प्रा ची न-व श-दाव है, वहाँ गये । उस समय आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न न्दि य और आयुष्मान

कि म्बि ल प्राचीन-वश-दावमे विहार करते थे। दाव-पालक (=वन-पाल)ने दूरसे ही भगवान्‌को आते देखा। देखकर भगवान्‌से कहा—

"महाश्रमण! इस दावमे प्रवेश मत करो। यहॉपर तीन कुल-पुत्र यथाकाम (=मौजसे) विहर रहे हैं उनको तकलीफ मत दो।"

आयुष्मान् अनुरुद्धने दाव-पालको भगवान्‌के साथ बात करते सुना। सुनकर दाव-पालसे यह कहा—

"आवुस! दाव-पाल! भगवान्‌को मत मना करो। हमारे शास्ता भगवान् आये है।"

तब आयुष्मान् अनुरुद्ध जहॉ आयुष्मान नन्दिय और आयु० किम्वल थे वहाँ गये। जाकर बोले —

"आयुष्मानो! चलो आयुष्मानो! हमारे शास्ता भगवान् आगये।

तब आ० अनुरुद्ध, आ० नन्दिय, आ० किम्बल भगवान्‌की अगवानीकर, एकने पात्र-चीवर ग्रहण किया, एकने आसन विछाया, एकने पादोदक रक्खा। भगवान्‌ने विछाये आसनपर बैठ पैर धोये। वे भी आयुष्मान् भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् अनुरुद्धसे भगवान्‌ने कहा—

"अनुरुद्धो! खमनीय तो है? यापनीय तो है? पिडके लिये तो तुम लोग तकलीफ नही पाते?"

"खमनीय है, भगवान्!०"

"अनुरुद्धो! क्या एकत्रित, परस्पर मोद-सहित, दूध-पानी हुए, परस्पर प्रिय-दृष्टिसे देखते, विहरते हो?"

"हाँ भन्ते! हम एकत्रित ०।"

"तो कैसे अनुरुद्धो! तुम एकत्रित०?"

"भन्ते! मुझे, यह विचार होता है—'मेरे लिये लाभ है! मेरे लिये सुलाभ प्राप्त हुआ है, जो ऐसा स-ब्रह्मचारियो (=गुरु भाइयो)के साथ विहरता हूँ। भन्ते! इन आयुष्मानोमे मेरा कायिक कर्म अन्दर और वाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है, वाचिक-कर्म अन्दर और बाहरसे मित्रता-पूर्ण होता है, मानसिककर्म अन्दर और वाहर०। तव भन्ते! मुझे यह होता है—क्यो न मैं अपना मन हटा कर, इन्ही आयुष्मानोके चित्तके अनुसार वर्तू। सो भन्ते! मै अपने चित्तको हठाकर इन्ही आयुष्मानो के चित्तोका अनुवर्तन करता हूँ। भन्ते! हमारा शरीर नाना है, किन्तु चित एक।"

आयुष्यमान् नन्दियने भी कहा—"भन्ते! मुझे यह होता है०।"

आयुष्मान् किम्बिलने भी कहा—भन्ते! मुझे यह०।

"साधु, साधु, अनुरुद्धो! अनुरुद्धो! क्या तुम प्रमाद-रहित, आलस्य-रहित, सयमी हो, विहरते हो?"

"भन्ते! हॉ! हम प्रमाद-रहित०।"

"अनुरुद्धो! तुम कैसे प्रमाद-रहित०?" "भन्ते! हमारेमे जो पहिले ग्रामसे भिक्षाचार करके लौटता है, वह आसन लगाता है, पीनेका पानी रखता है, कूळेकी थाली रखता है। जो पीछे गाँवसे पिडचार करके लौटता है, (वह) भोजन (मेसे जो) बँचा रहता है, यदि चाहता है, खाता है, (यदि) नही चाहता है, तो (ऐसे) स्थानमे, जहाँ हरियाली न हो, छोळ देता है, या जीव-रहित पानीमे छोळ देता है। आसनोको समेटता है। पीनेके पानीको समेटता है। कूडेकी थालीको धोकर समेटता है। खानेकी जगहपर झाळू देता है। पानीके घळे, पीनेके घळे, या पाखानेके घळे जिसे खाली देखता है

उसे (भरकर) रख देता है। यदि वह उससे होने लायक नही होता तो हाथके इशारेसे, हाथके सकेत (=हत्थ-विलघक)से दूसरोको बुलाकर, पानीके घळे या पीनेके घळेको (भरकर) रखवाता है। भन्ते ! हम उसके लिये वाग्-युद्ध नही करते। भन्ते ! हम पॉचवे दिन सारी रात धर्म-सम्बन्धी कथा करते बैठते है। इस प्रकार भन्ते ! हम प्रमाद-रहित०।"

"साधु, साधु, अनुरुद्धो ! अनुरुद्धो ! इस प्रकार प्रमाद-रहित, निरालस, सयमी हो विहरते, क्या तुम्हे [1]उत्तर-मनुष्य-धर्म अलमार्य-ज्ञान-दर्शन-विशेष अनुकूल-विहार प्राप्त है ?"

४—*पारिलेय्यक*

तब भगवान् आयुष्मान् अ नु रु द्ध, आयुष्मान् न दि य, और आयुष्मान् कि म्बि ल को धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षितकर, आसनसे उठ जिधर पा रि ले य्य क है उधर चारिकाके लिये चलपळे। क्रमश चारिका करते जहॉ पा रि ले य्य क है वहॉ पहुँचे। वहाँ भगवान् पा रि ले य्य क मे र क्षि त व न-खडके भ द्र शा ल (वृक्ष)के नीचे बिहार करते थे।

(९) एकान्त निवासका-आनन्द

तब एकान्तमे स्थित हो विचारमग्न होते समय भगवान्के चित्तमे यह विचार हुआ—'मै पहले उन झगळा, कलह, विवाद, बकवाद और सघमे अधिकरण (=मुकदमा) पैदा करनेवाले कौशाम्बीके भिक्षुओसे आकीर्ण (=घिरा) हो अनुकूलताके साथ नही बिहार कर सकता था। सो मैं अब उन ० कौ शा म्बी के भिक्षुओसे अलग, अकेला, अद्वितीय हो अनुकूलताके साथ विहार कर रहा हूँ। एक हस्तिनाग (=हाथीका पट्ठा) भी हाथी, हथिनी, हाथीके कलभ (=तरुण) और हाथीके छउआ (=छाप, शाव)से आकीर्ण हो विहरता था और हाथीके छउआ (=छाप=शावक)से आकीर्ण हो विहरता था। शिरकटे तृणोको खाता था। टूटी-भाँगी शाखाओ को (वह) खाता था। मैले पानीको पीता था। अवगाह (=जलाशय) उतर जानेपर हथिनियॉ उसके शरीरको रगळती चलती थी। (ऐसे) आकीर्ण (हो) (वह) दुखसे अनुकूलतासे विहार करता था। तब उस महागजको हुआ, इस वक्त मै हाथी ०, आकीर्ण ० हूँ ०। क्यो न मै गणसे अकेला ० ?

तब वह हस्ति-नाग यूथसे हटकर, जहॉ पारिलेय्यक-रक्षित वन-खड भद्र-शाल-मूल था, जहाँ भगवान् थे, वहॉ आया। वहॉ आकर वह नाग जो हरित स्थान होता था, उसे अहरित-करता था। भगवान्के लिये सूँड़से पानी ला, पीनेका (पानी) रखता था। तब एकान्तस्थ ध्यानस्थ भगवान्के मनमे यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मै पहिले भिक्षुओ ० से आकीर्ण विहरता था, अनुकूलतासे न बिहरता था। सो मै अब भिक्षुओ ० से अन्-आकीर्ण विहर रहा हूँ। अन्-आकीर्ण हो, सुखमे, अनुकूलतासे विहार कर रहा हूँ। उस हस्ति-नागको भी मनमे यह वितर्क उत्पन्न हुआ—मै पहिले हाथियो ० अन्-आकीर्ण सुखमे अनुकूलसे विहर रहा हूँ। तब भगवान्ने अपने प्र-विवेक (=एकान्त सुख) को जान, और (अपने) चित्तसे उस हस्ति-नागके चित्तके वितर्कको जानकर, उसी समय यह उदान कहा—

"हरीस जैसे दॉतवाले हस्ति-नागसे नाम (=बुद्ध) का चित्त समान है,
जो कि वनमे अकेला रमण करता है।"

५—*श्रावस्ती*

तब भगवान् पा रि ले य्य क मे इच्छानुसार विहारकर, जिधर श्रा व स्ती थी, उधर चारिकाके

---

[1] देखो पृष्ठ ९ टि०।

लिये चल दिये। क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमे विहार करते थे। तव कौ शा म्बी के उपासकोने (विचारा)—

"यह अय्या (=भिक्षु) कौ शा म्बी के भिक्षु, हमारे वळे अनर्थ करनेवाले है। इनसेही पीळित हो भगवान् चले गये। हाँ! तो अव हम अय्या कोसम्वक भिक्षुओको न अभिवादन करे, न प्रत्युत्थान करे, न हाथ जोळना=सामीची कर्म करे, न सत्कार करे, न गौरव करे, न माने, न पूजें, आनेपर भी पिड (=भिक्षा) न दे। इस प्रकार हम लोगो द्वारा अ-सकृत, अ-गुरुकृत, अ-मानित, अ-पूजित, असत्कार-वश चले जायँगे, या गृहस्थ वन जायँगे, या भगवान्को जाकर प्रसन्न करेगे।"

तव कौशाम्वी-वासी उपासक कौशाम्बी-वासी भिक्षुओको न अभिवादन करते०। तव कौशाम्वीवासी भिक्षुओने कौशाम्वीके उपासकोसे असत्कृत हो कहा—

"अच्छा आवुसो! हमलोग श्रा व स्ती मे भगवान्के पास इस झगळे (=अधिकरण) को शान्त करे।" तव कौशाम्वी-वासी भिक्षु आसन समेटकर पात्र-चीवर ले, जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ गये।

§ २–अधर्मवादी और धर्मवादी

आयुष्मान् सा रि पु त्र ने सुना—"वह भडन-कारक=कलह-कारक=विवाद-कारक, भस्स (=भष)-कारक, सघमे अधिकरण (=झगळा) कारक, कौशाम्वी=वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं।" तव आयुष्मान् सारिपुत्र जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर वैठ गये। एक ओर वैठे हुए आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्से कहा—"भन्ते! वह भडन-कारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ रहे हैं, उन भिक्षुओके साथ मै कैसे वर्तूं?"

"सारिपुत्र! तो तू धर्मके अनुसार वर्त्त।"

"भन्ते! मै धर्म (=नियमानुसार) या अधर्म कैसे जानूँ?"

(१) अधर्मवादीकी पहिचान

"सारिपुत्र! अठारह वातो (=वस्तु) से अ-धर्मवादी जानना चाहिये। 'सारि-पुत्र! भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म (=सूत्र) कहता है। (२) धर्मको अ-धर्म कहता है। (३) अ-विनयको विनय कहता है। (४) विनयको अ-विनय कहता है। (५) तथागत-द्वारा अ-भाषित=अ-लपितको, तथागत-द्वारा भाषित=लपित कहता है। (६) ०भाषित=लपितको, ०अ-भाषित=अ-लपित कहता है। (७) तथागत-द्वारा अन्-आचरितको० आचरित कहता है। (८) तथागत-द्वारा आचरितको ०अन्-आचरित कहता है। (९) तथागत-द्वारा अ-ज्ञप्त (=अ-विहित) को ०प्रज्ञप्त कहता है। (१०) ०प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त०। (११) अन्-आपत्तिको आपत्ति (=दोष) कहता है। (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है। (१३) लघु (=छोटी)-आपत्तिको गुरु (=वळी)-आपत्ति कहता है। (१४) गुरु-आपत्तिको लघु-आपत्ति कहता है। (१५) स-अवशेष (=अपूर्ण) आपत्तिको अन्-अवशेष (=पूर्ण) आपत्ति कहता है। (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति कहता है। (१७) दु स्थौल्य (=दुराचार) आपत्तिको अ-दु स्थौल्य आपत्ति कहता (=दीपित-प्रकाशित करता है)। (१८) दु स्थौल्य आपत्ति को अ-दु स्थौल्य आपत्ति कहता है। 5

(२) धर्मवादीकी पहिचान

"अठारह वस्तुओसे सारि-पुत्र धर्म-वादी जानना चाहिये।—

'सारिपुत्र! भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहता है। (२) धर्मको धर्म०। (३) अ-विनय को अ-विनय०। (४) विनयको विनय०। (५)०अ-भाषित=अ-लपित०। (६) ०भाषित =लपित

को ०भाषित-लपित० । (७) ०अन्-आचरितको ०अन्-आचरित० । (८) ०आचरितको ०आचरित० । (९) ०अ-प्रज्ञप्तको ०अ-प्रज्ञप्त० । (१०) ०प्रज्ञप्तको ०प्रज्ञप्त० । (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति० । (१२) आपत्तिको आपत्ति० । (१३) लघु-आपत्तिको लघु-आपत्ति० । (१४) गुरु-आपत्तिको गुरु-आपत्ति० । (१५) स-अवशेष आपत्तिको स-अवशेष आपत्ति० । (१६) अन्-अवशेष आपत्तिको अन्-अवशेष आपत्ति० । (१७) दुस्थौल्य आपत्तिको दुस्थौल्य आपत्ति० । (१८) अ-दुस्थौल्य आपत्तिको अ-दुस्थौल्य आपत्ति० । 6

आयुष्मान् महा मौद्गल्यायन ने सुना—'वह भडनकारक ०।०।

आयुष्मान् महा काश्यप ने ०।० महा कात्यायन ने सुना—०।० महा कोठ्ठित (=कोष्ठिल) ने सुना—०।० महा कप्पिन ने सुना—०।० महा चुन्द ०।० अनुरुद्ध ०।० रेवत ०।० उपाली ०।० आनन्द ०।० राहुल०।

महाप्रजापती गौतमी ने सुना—'वह भडन-कारक० ।' "भन्ते ! मैं उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तूं ?"

"गौतमी ! तू दोनो ओरका धर्म (=बात) सुन । दोनो ओरका धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि, शान्त, रुचि, पसन्द कर । भिक्षुनी-सघको भिक्षु-सघसे जो कुछ अपेक्षा करना है, वह सब धर्मवादीसे ही अपेक्षा करना चाहिये ।"

अनाथ-पिंडिक गृह-पतिने सुना—'वह भडनकारक० ।' "भन्ते ! मैं उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तू ?"

"गृहपति ! तू दोनो ओर दान दे । दोनो ओर दान देकर दोनो ओर धर्म सुन । दोनो ओर धर्म सुनकर, जो भिक्षु धर्म-वादी हो, उनकी दृष्टि (=सिद्धान्त) क्षाति (=औचित्य), रुचिको ले, पसन्दकर ।"

"विशाखा मृगार-माताने सुना—जो वह० । "भन्ते ! मै उन भिक्षुओके साथ कैसे वर्तू ?"

"विशाखा ! तू दोनो ओर दान दे० । ०रुचिको ले पसन्दकर ।"

तब कौशाम्बी-वासी भिक्षु क्रमश जहाँ श्रावस्ती थी, वहाँ पहुँचे । तब आयुष्मान् सारिपुत्रने जहाँ भगवान् थे, वहाँ जा० "भन्ते ! वह भडनकारक० कौशाम्बी-वासी भिक्षु श्रावस्ती आ गये । भन्ते ! उन भिक्षुओको आसन आदि कैसे देना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! अलग आसन देना चाहिये ।"

"भन्ते ! यदि अलग न हो, तो कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! तो अलग बनाकर देना चाहिये । परन्तु सारिपुत्र ! वृद्धतर भिक्षुका आसन हटाने (के लिये) मैं किसी प्रकार भी नही कहता । जो हटाये उसको 'दुष्कृति' की आपत्ति । 6

"भन्ते ! आमिष (=भोजन आदि) के (विषयमे) कैसे करना चाहिये ?"

"सारिपुत्र ! आमिष सबको समान बाँटना चाहिये ।"7

§ ३—संघ-सामग्री (=० एकता)

तब धर्म और विनयको प्रत्यवेक्षा (=मिलान, खोज) उस उत्क्षिप्त भिक्षुको (विचार) हुआ —'यह आपत्ति (=दोष) है अन्-आपत्ति नही है । मैं आपन्न (=आपत्ति-युक्त) हूँ, अन्-आपन्न नही हूँ । मैं उत्क्षिप्त (='उत्क्षेपण' दडसे दडित) हूँ, अन्-उत्क्षिप्त नही हूँ । अ-कोप्य-स्थानार्ह=धार्मिक कर्म (=न्याय)मे मैं उत्क्षिप्त हूँ ।' तब वह उत्क्षिप्त भिक्षु (अपने) अनुयायियोके पास गया, बोला—'यह आपत्ति है आवुसो ! आओ आयुष्मानो मुझे मिला दो ।०। तब वह उत्क्षिप्त

अनुयायी भिक्षु उत्क्षिप्त भिक्षुको लेकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन भिक्षुओंने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यह उत्क्षिप्तक भिक्षु कहता है—'आवुसो! यह आपत्ति है अन्-आपत्ति नही०, आओ आयुष्मानो! मुझे (सघमे) मिलाओ।' भन्ते! तो कैसे करना चाहिये?"

"भिक्षुओ! यह आपत्ति है, अन्-आपत्ति नही। यह भिक्षु आपन्न है, अन्-आपन्न नही है। उत्क्षिप्त है अन्-उत्क्षिप्त नही है। अ-कोप्य=स्थानार्ह=धार्मिक कर्मसे उत्क्षिप्त है। भिक्षुओ! चूँकि यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, और आपत्ति (=दोष) देखता है, अत इस भिक्षुको मिलालो।"7

तब उत्क्षिप्तके अनुयायी भिक्षुओंने उस उत्क्षिप्त भिक्षुको मिला (=ओ सा र ण) कर, जहाँ उत्क्षेपक भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उत्क्षेपक भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! जिस वस्तु (=बात)मे सघका भडन=कलह, विग्रह, विवाद हुआ था, सघ (फूट) भेद=स घ रा जी=स घ-व्य व स्था न=सघ-ना ना क र ण हुआ था। सो (उस विषयमे) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त है, अ व-सा रि त (=मिला लिया गया) है। हाँ तो! आवुसो! हम इस व स्तु (=मामला, बात)के उ प-श म न (=फैसला, मिटाना)के लिये सघकी सा म ग्री (=मेल) करे।"

तब वह उ त्क्षे प क (=अलग करनेवाले) भिक्षु जहाँ भगवान् थे, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्‌से बोले—

(१) सघसामग्रीका तरीका

"भन्ते! वह उत्क्षिप्त-अनुयायी भिक्षु ऐसा कहते हैं—'आवुसो! जिस वस्तुमे०सघकी सामग्री करे।' भन्ते! कैसे करना चाहिये?"

"भिक्षुओ! चूँकि वह भिक्षु आपन्न, उत्क्षिप्त, प श्यी (=दर्शी=आपत्ति देखने माननेवाला) और अव-सारित है। इसलिये भिक्षुओ! उस वस्तुके उप-शमनके लिये सघ, सघकी सामग्री करे। 8

और वह इस प्रकार करनी चाहिये—रोगी निरोगी सभीको एक जगह जमा होना चाहिये किसीको (बदला) भेजकर, छ न्द (=वोट) न देना चाहिये। जमा होकर, योग्य, समर्थ भिक्षु-द्वारा सघ को ज्ञापित (=सूचित=सबोधित) करना चाहिये—

ज्ञ प्ति—'भन्ते! सघ मुझे सुने। जिस वस्तुमे सघ मे भडन, कलह, विग्रह, विवाद० हुआ था, सो (उस विषयमे) यह भिक्षु आपन्न है, उत्क्षिप्त, (है) पश्यी, अव-सारित है। यदि सघ उचित (=पत्तकल्ल) समझे, तो सघ उस वस्तुके उपशमनके लिये सघ-सामग्री करे—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।'

ख अनुश्रावण—(१) 'भन्ते! सघ मुझे सुने—जिस वस्तुमे०अवसारित है। सघ उस वस्तु के उपशमनके लिये सघ-सामग्री कर रहा है। जिस आयुष्मान्‌को उस वस्तुके उपशमनके लिये सघ-सामग्री करना, पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नही पसन्द है, वह बोले। (२) दूसरी बार भी०। (३) तीसरी बार भी०।'

ग धारणा—सघने उस वस्तुके उपशमनके लिये स घ सा म ग्री (=फूटे सघको एक करना) की, सघ-राजी=०सघ-भेद नि ह त (=नष्ट) हो गया। 'सघको पसन्द है, इसलिये चुप है'—यह मैं समझता हूँ।

(२) नियम-विरुद्ध संघ-सामग्री

उसी समय उ पो स थ करना चाहिये और प्रा ति मो क्ष उद्देश (=प्रातिमोक्षका पाठ) करना चाहिये।

तब आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! जिस वस्तुसे सघमे झगळा, कलह, विग्रह, विवाद, सघ-भेद (=सघमे फूट)=सघ राजी=सघ-व्यवस्थान, सघका बिलगाव हो, सघ उस वस्तुको बिना विनिश्चय (=फैसला) किये अमूल (=बेजळकी बात)से मूलको पा सघ-सामग्री (=सारे सघको एक करना) करे। तो भन्ते ! क्या वह सघ-सामग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! जिस वस्तुसे सघमें० अमूलमे मूलको पा सघ-सामग्री करता है, उपालि ! वह सघ-सामग्री धर्म विरुद्ध है।" 9

(३) नियमानुसार संघ-सामग्री

"भन्ते ! जिस वस्तुसे सघमे झगळा हो, सघ उस वस्तुका विनिश्चय कर मूलसे मूलको पकळ (यदि) स घ-सा म ग्री करे, तो भन्ते ! क्या वह स घ-सा म ग्री धर्मानुसार है ?"

"उपालि ! ० वह स घ-सा म ग्री धर्मानुसार है।" 10

(४) दो प्रकारकी संघ-सामग्री

"भन्ते ! सघ-सामग्री कितनी है ?"

"उपालि ! सघ-सामग्री दो है—(१) उपालि ! (एक) सघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यजन-युक्त है, (२) उपालि (एक) सघ-सामग्री अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त है। उपालि ! कौनसी सघ-सामग्री अर्थ-रहित किन्तु व्यजन-युक्त है ? उपालि ! जिस वस्तुसे सघमे झगळा० होता है सघ उस वस्तुका विना निर्णय किये, अमूलसे मूलको पा सघ-सामग्री करता है, उपालि ! यह कही जाती है, अर्थ-रहित, व्यजन-युक्त सघ-सामग्री। उपालि ! कौनसी सामग्री , अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त है ?— उपालि ! जिस वस्तुसे सघमे झगळा० होता है, सघ उस वस्तुका निर्णय कर मूलसे मूलको पा स घ-सा म ग्री करता है, उपालि ! यह कही जाती है अर्थ-युक्त और व्यजन-युक्त (भी)।—उपालि ! यह दो सघ-सामग्री है।" 11

§४—योग्य विनयधरकी प्रशंसा

तव आयुष्मान् उपालि आसनसे उठ, एक कधेपर उत्तरासगकर जिधर भगवान् थे उधर हाथ जोळ भगवान्से गाथामे कहा—

"सघके कर्तव्यो और मन्त्रणाओ,
उत्पन्न अर्थो और विनिश्चयो (=फैसलो)के समय
किस प्रकारका पुरुष बळा उपकारक (होता है),
(और) कैसे भिक्षु विशेषत ग्रहण करने लायक होता है ?
(जो) प्रधान शीलोमे दोष-रहित,
अपेक्षित आचारवाला (और) इन्द्रियोमे सुसयमी हो,
विरोधी भी धर्मसे (जिसे) नही (दोपी) कह सकते,
उ स मे वै सी (कोई बुराई) नही होती जिसको लेकर उमे वोले ॥
वह वैसे सदाचारकी विशुद्धतामे स्थित है,
विशारद है, परास्त करके बोलता है,
सभामे जानेपर न स्तब्ध (=गुम्) होता है, न विचलित होता है,
विहितोकी गणना करले (किसी) वातको नही छोळता ॥
वैसेही सभामे प्रश्न पूछनेपर,

न सोचने लगता है न चुप होता है।
वह पडित कालसे प्राप्त उत्तर देने योग्य वचनको,
कह, विज्ञोकी सभाका रजन करता है॥
(जो) वृद्धतर भिक्षुओमे आदर-युक्त,
अपने सिद्धान्तोमे विशारद,
मीमासा करनेमे समर्थ, कथन करनेमे होशियार,
और विरोधियोके भावको जाननेवाला (होता है)॥
विरोधी जिससे निग्रह किये जाते है,
महाजन[1] (जिससे बातको) समझ पाते है,
विना हानि किये प्रश्नका उत्तर देते वह
अपने सम्प्रदाय (और) सिद्धान्तको नही त्यागता॥
(सघके) दूत-कर्ममे समर्थ, अच्छी तरह सीखा हुआ,
और सघके कृत्योमे जैसा उसको कहे,
भिक्षुगण द्वारा भेजे जानेपर (वैसा ही उस) वचनको करता है, और
'मै करता हूँ'—वह अभिमान नही करता॥
जिन जिन बातोमे आपत्ति (=अपराध)युक्त होता है,
जैसे उस आ प त्ति से मुक्ति होती है,
ये दोनो (भिक्षु-भिक्षुणी) वि भ ग[2] उसको अच्छी तरह आते है,
आपत्तिसे छूटनेके पदका कोविद (होता है)॥
जिनका आचरण करते निस्सारणको प्राप्त होता है,
और जैसे (दोषवाली) वस्तुसे निस्सारित होता है,
उस (आचरण)को करनेवाले प्राणीका (जैसे ओसारण होता है)
विभगका कोविद, इसे भी जानता है॥
वृद्धतर भिक्षुओमे आदर-युक्त,
नवो स्थविरो और मध्यमोमे (भी),
महाजनके अर्थकी रक्षामे पडित,
ऐसा भिक्षु यहाँ विशेषत ग्रहण करने लायक (है)॥"

कोसम्बकक्खन्धक समाप्त ॥१०॥

महावग्ग समाप्त ॥३॥

---

[1] सर्वसाधारण।
[2] भिक्खु-भिक्खुनी पा ति मो क्ख (पृष्ठ १-७०)का ही दूसरा नाम वि भ ग है।

४—चुल्लवग्ग

४—चुल्लवग्ग

१—कर्म-स्कंधक

१—तर्जनीय कर्म। २—नियस्सकर्म। ३—प्रव्राजनीय कर्म। ४—प्रतिसारणीय कर्म। ५—आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म। ६—आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म। ७—बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म।

§१—तर्जनीय कर्म

१—श्रावस्ती

(१) तर्जनीय-कर्मके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। उस समय प डु क और लो हि त क[1] भिक्षु स्वय झगळा, कलह, विवाद, और बकवाद, करनेवाले थे, सघमे अधिकरण (=मुकदमा) करनेवाले थे। और जो दूसरे भी झगळा० करनेवाले भिक्षु थे उनके पास जाकर ऐसा कहते थे—'आवुसो! तुम आयुष्मानोको वह हराने न पावे। जबरदस्तको जबरदस्तसे मुकाबिला करना चाहिये। तुम उससे अधिक पडित, अधिक चतुर, अधिक बहुश्रुत और अधिक समर्थ हो। मत उससे डरो। हम भी तुम्हारे पक्षवाले होगे।' इससे नित्यही अनुत्पन्न झगळे उत्पन्न होते थे, उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते थे। जो वह अल्पेच्छ, सतुष्ट, लज्जाशील, सकोची, सीख चाहनेवाले थे वे हैरान होते—'कैसे प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी सबन्धमे इसी प्रकरणमे भिक्षुसघको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"भिक्षुओ! उन मोघपुरुषो (=फजूलके आदमियोके लिये) यह अयुक्त है, अनुचित है, अप्रतिरूप हैं, श्रमणोके आचार के विरुद्ध है, अविहित है, अकरणीय है। कैसे भिक्षुओ! वे मोघपुरुष स्वय झगळा करनेवाले ० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते हैं। भिक्षुओ! न यह अप्रसन्नो-(श्रद्धा-रहितो)को प्रसन्न करनेके लिये है, या प्रसन्नोकी (श्रद्धाको) और

---

[1] षड्वर्गीय भिक्षुओमेंसे दोके नाम (—अट्ठकथा; देखो पृष्ठ १४ टिप्पणी २ भी)।

वढानेके लिये है, बल्कि भिक्षुओ ! अप्रसन्नोको अप्रसन्न करनेके लिये है, और प्रसन्नो (=श्रद्धालुओ)मेसे भी किसी किसीको उल्टा करनेवाला है ।"

तब भगवान्‌ने उन भिक्षुओको अनेक प्रकारसे फटकारकर दुर्भरता (=भरण पोषणमे कठिन) दुष्पुरुपता, म हे च्छु क ता (=बळी इच्छा) असन्तोष, स ग णि का (=जमातमे रहनेकी प्रवृत्ति) और आलस्य (=कौसीद्य)की निन्दा करके अनेक प्रकारसे सुभरता, सुपुरुषता, अल्पेच्छता, सतोष, तप, अवधूतपन, प्रासादिकता (=मानसिक स्वच्छता), त्याग, वीर्यारभ (=उद्योग परायणता)की प्रशसा करके भिक्षुओसे उसके अनुकूल, उसके योग्य, धर्म-सबधी कथा करके भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ प डु क और लो हि त क भिक्षुओका तर्जनीय कर्म करे० ।"

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये । पहले प डु क और लो हि त क भिक्षुओको प्रेरित करे, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये । स्मरण दिलाकर आपत्ति (=अपराध)का आरोप करना चाहिये । आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—"

क ज्ञप्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह प डु क और लो हि त क भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते है । यदि सघ उचित समझे तो सघ प डु क और लो हि त क भिक्षुओका तर्जनीय कर्म करे, यह सूचना है ।

अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने । यह पडुक और लोहितक भिक्षु स्वय झगळने-वाले० उत्पन्न झगळे और भी अधिक विस्तारको प्राप्त होते है । सघ पडुक और लोहितक भिक्षुओका तर्जनीय कर्म करता है । जिस आयुष्मान्‌को प डु क और लो हि त क भिक्षुओका त र्ज नी य क र्म करना पसद है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है, वह बोले ।

द्वि ती य अ नु श्रा व ण—'दूसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! सघ मेरी सुने । यह पडुक और लो हि त क भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले०[1]।

तृ ती य अ नु श्रा व ण—'तीसरी बार भी इसी बातको कहता हूँ—भन्ते ! सघ मेरी सुने । यह पडुक और लोहितक भिक्षु स्वय झगळा करनेवाले०[1]।

धा र णा —'सघने पडुक और लोहितक भिक्षुओका तर्जनीय कर्म कर दिया । सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ ।'

(३) नियम-विरुद्ध दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म, और ठीकसे न सपादित (कर्म कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है । 2

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म और ठीकसे न सपादित —(१) बिना आपत्तिके किया होता है, (२) देशना (=बुद्धोपदेश)से बाहर जानेवाली आपत्तिके लिये किया गया होता है, (३) देशित (=क्षमा कराई जा चुकी) आपत्तिके लिये किया गया होता है । 3

३—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म० होता है—(१) बिना प्रेरित किये किया गया होता है, (२) बिना स्मरण कराये किया गया होता है, (३) आपत्तिका आरोप बिना किये किया गया होता है । 4

---

[1] पहले अनुश्रावणमें आई वाक्यावली यहाँ फिर दुहरानी चाहिये ।

४—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म अधर्म कर्म० होता है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) अधर्म (=अनियम)से किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है। 5

५—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय अधर्म कर्म ० होता है—(१) विना पूछे०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे किया गया होता है । 6

६—"०—(१) विना प्रतिज्ञा करायें०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे० । 7

७—"०—(१) आपत्तिके बिना०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 8

८—"०—(१) देशना(=क्षमा कराना)के बाहरकी आपत्तिसे०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे० । 9

९—"०—(१) क्षमा करा ली गई आपत्तिके लिये०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०। 10

१०—"०—(१) प्रेरणा किये बिना० , (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे० । 11

११—"०—(१) स्मरण कराये बिना०, (२) अधर्मसे०, (३) वर्गसे०।। 12

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये बिना किया गया होता है, (२) अधर्मसे किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है । भिक्षुओ ! इन तीन बातो से युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म, और ठीकसे न सपादित होता है" । 13

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार तर्जनीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, विनय कर्म, और सुसपादित (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२)पूछ-ताछ कर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अगोसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म, विनय-कर्म, और सुसपादित (कहा जाता) है । 14

२—"और भी भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, धर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) आपत्तिसे किया गया होता है, (२) देशना (=क्षमापन) होने लायक आपत्तिके लिये किया गया होता है, (३) न देशित (=जिसके लिये क्षमा नही माँगी गई है) आपत्तिके लिये किया गया होता है।०। 15

३—"०—(१) प्रेरित करके०, (२) स्मरण दिलाकर०, (३) आपत्तिका आरोप करके०।०। 16

४—"०—(१) सामने०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०। ०। 17

५—"०—(१) पूछकर०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 18

६—"०—(१) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 19

७—"०—(१) आपत्ति (होने)से०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 20

८—"०—(१) देशना (=क्षमा-याचना) करने लायक आपत्तिके लिये०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 21

९—"०—(१) अदेशित आपत्तिके लिये०, (२) धर्मसे०, (३) समग्र हो०।०। 22

१०—"०—(१) प्रेरित करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्रसे०।०। 23

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

तब सघने पडुक और लोहितक भिक्षुओका तर्जनीय कर्म किया। वे सघके तर्जनीय कर्मसे पीडित हो ठीकसे बर्ताव करते थे, रोवाँ गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! सघद्वारा तर्जनीय कर्मसे दडित हो हम ठीकसे बर्तते है, रोवाँ गिराते है, निस्तारके लायक (काम) करते है। कैसे हमे करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ, पडुक और लोहितक भिक्षुओके तर्जनीय कर्मको माफ (=प्रतिप्रश्रब्ध= शान्त) करे। 33

(१-५) "भिक्षुओ ! पॉच बातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये— (१) उपसम्पदा[1] देता है, (२) निश्रय[2] देता है, (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है, (४) भिक्षुणियोको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है, (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश देता है। 34

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पॉच बातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है, (७) या वैसी दूसरी आपत्ति करता है, (८) या उससे अधिक बुरी आपत्ति करता है, (९) कर्म (=फैसला, की निदा करता है, (१०) कर्मिक (=फैसला करने वालो)की निदा करता है। 35

(११-१८) "भिक्षुओ ! आठ बातोसे युक्त भिक्षुका तर्जनीय कर्म न माफ करना चाहिये— (११) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित करता है, (१२) (०की) प्रवारणा स्थगित करता है, (१३) बात बोलने लायक काम करता है, (१४) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है, (१५) अवकाश कराता है, (१६) प्रेरणा कराता है, (१७) स्मरण कराता है, (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग करता है।" 36

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पॉच बातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता , (२) निश्रय नही देता, (३) श्रामणेर से सेवा नही कराता, (४) भिक्षुणियोके उपदेश देनेकी सम्मति पानेकी इच्छा नही रखता, (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश नही देता। 37

(६-१०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको माफ करना चाहिये— (६) जिस आपत्तिके लिये सघने तर्जनीय कर्म किया है उस आपत्तिको नही करता, (७) या वैसी दूसरी आपत्तिको नही करता, (८) या उससे बुरी दूसरी आपत्तिको नही करता, (९) कर्म (=न्याय) की निदा नही करता, (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालो)की निदा नही करता। 38

(११-१८) "और भी भिक्षुओ ! आठ बातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्म को माफ करना

---

[1] महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ १३२)।
[2] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)।

चाहिये—(११) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नही करता (१२) (०की) प्रवारणा स्थगित नही करता, (१३) बात बोलने लायक (काम) नही करता, (१४) अनुवादको नही प्रस्थापित करता, (१५) अवकाश नही कराता, (१६) प्रेरणा नही कराता (१७) स्मरण नही कराता, (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करता।" 39

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये।४०वे प ड ु क और लो हि त क भिक्षु सघके पास जा एक कधेपर उत्तरासगकर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमे वदनाकर, उकळूं बैठ हाथ जोळ, ऐसा बोले—'भन्ते! हम सघ द्वारा त र्ज नी य -क र्म से दडित हो ठीकसे वर्तते है, लोम गिराते है, निस्तार (के काम)को करते है, त र्ज नी य - क र्म से माफी चाहते है। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी—'भन्ते!० त र्ज नी य - क र्म से माफी चाहते है'।

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति—भन्ते! सघ! मेरी सुने, यह प ड ु क (और) लो हि त क भिक्षु सघ द्वारा त र्ज नी य - क र्म से दडित हो ठीकसे वर्तते हे,०तर्जनीय-कर्मसे माफी चाहते है। यदि सघ उचित समझे, तो सघ प ड ु क, लो हि त क भिक्षुओके तर्जनीय-कर्मको माफ करे—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) भन्ते! सघ! मेरी सुने, यह प ड ु क (और) लो हि त क भिक्षु सघ द्वारा त र्ज नी य - क र्म से दडित हो ठीकसे वर्तते है। तर्जनीय-कर्मसे माफी चाहते है। सघ प ड ु क (और) लोहितक भिक्षुओके त र्ज नी य - क र्म को माफ कर रहा है, जिस आयुष्मान्‌को प ड ु क (ओर) लो हि त क भिक्षुओके तर्जनीय-कर्मकी माफी पसद हे, वह चुप रहे, जिसको पसद नही है, वह बोले।

"(२) दूसरी बार भी इसी बात को कहता हूँ—भन्ते! मेरी सुने—०।

"(३) तीसरी बार भी इसी बात को करता हूँ—भन्ते! सघ मेरी सुने ० जिस आयुष्मान्‌को प ड ु क (और, लो हि त क भिक्षुओके तर्जनीय-कर्म की माफी पसद है, वह चुप रहे, जिसको पसद नही है, वह बोले। धा र णा ०—'सघने प ड ु क और लो हि त क भिक्षुओके तर्जनीय-कर्मको माफ कर दिया, सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

तर्जनीय-कर्म समाप्त

§२–नियस्स कर्म

(१) नियस्स दडके आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सेय्यसक (=श्रेयस्क) बाल (=मूर्ख), अचतुर, बराबर आपत्ति करनेवाले, अपदान रहित, प्रतिकूल गृहस्थ ससर्गोसे युक्त थे, और उनको भिक्षु, प्रकृतात्मक (=दोप-रहित), परिवास देते,भूलसे प्रतिकर्पण करते (थे)मानत्व देते, आह्वान (थे)। जो वह अल्पेच्छा० भिक्षु थे वे हैरान होते—'कैसे आयुष्मान् से य्य स क, बाल० होगे! और उनको भिक्षु० आह्वान करे।' तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही।०

"सचमुच भिक्षुओ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्।'"

(नि य स्स क र्म की वि धि)—बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघसे य्य स क भिक्षुका नि य स्स क र्म करे। उनका नि स्स य (=निश्रय[1]) करके रहना चाहिये।" 41

(२) दड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (निस्स=कर्म) करना चाहिये—पहिले से य्य स क भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाकर आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोपकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति–'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह से य्य स क भिक्षु वाल० आह्वान करता है, यदि सघ उचित समझे तो सघ सेय्यसक भिक्षुका, नियस्स कर्म करे उनका नि स्स य ले रहना चाहिये—यह सूचना है।'

"ख अ नु श्रा व ण—'(१)पूज्य सघ मेरी सुने,०। जिस आयुष्मान्‌को सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म करना ओर निस्सय लेकर रहना पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह बोले।

"(२) 'दूसरी वार भी०।

"(३) 'तीसरी वार भी इसी वातको कहता हूँ—पूज्यसघ मेरी सुने—०जिसको पसद न हो वह बोले।

"ग धा र णा—'सघने सेय्यसक भिक्षुका नियस्स कर्म उनका निस्सय लेकर रहना किया, सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

(३) नियम विरुद्ध नियस्स दड

(१) "भिक्षुओ ! तीन वातो से युक्त नि य स्स क र्म, अधर्म कर्म, अ वि न य, कर्म ठीक से न सपादित होता है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) विना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[2]। 42

१२—"और भी भिक्षुओ ! तीन वातो से युक्त नियस्स कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म० होता है—(१) आपत्तिका आरोप किये विना किया गया होता है, (२) अधर्मसे किया गया होता है, (३) वर्गसे किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन वातोसे युक्त तर्जनीय कर्म, अधर्म कर्म, अविनय कर्म ओर ठीक से न सपादित होता है।" 53

वारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार नियस्स दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन वातोसे युक्त नियस्स कर्म धर्मकर्मक० (कहा जाता) है। —(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। भिक्षुओ ! इन तीन अगोमे युक्त नियस्सकर्म धर्मकर्म० (कहा जाता) है। ०[3] 54

(१२)"०—(१) आपत्तिका आरोप करके०, (२) धर्मसे०, (३) समग्रसे०।०। 65

वारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1] महावग्ग १§४।७ (पृष्ठ १३४)। [2] देखो १§१।३ (पृष्ठ ३४२)।
[3] देखो पृष्ठ ३४३।

(५) नियस्स दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको, चाहनेपर (=आक्ङखमान) सघ नियस्स कर्म करे—(१) झगळा, कलह, विवाद, बकवाद करनेवाला, सघमे अधिकरण करनेवाला होता है, ०[1]। 66

६—"०—(१) अकेला वुद्धकी निंदा करता है, (२) अकेला धर्मकी निंदा करता है, (३) अकेला सघकी निंदा करता है।०।" 71

छ आकखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका नियस्सकर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसपदा न देनी चाहिये, ०[1] (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (-मिश्रण) नही करना चाहिये।" 72

अठ्ठारह नियस्स कर्मके व्रत समाप्त

(७) दण्ड माफ करने लायक व्यक्ति

तब सघने—'तुझे निस्सय लेकर रहना चाहिये—' (कह) सेय्यसक भिक्षुका नियस्सकर्म किया। वह सघके नियस्सकर्म से दडित हो अच्छे मित्रोको सेवन करते, भजन करते, उपासन करते, (उनसे) कहलवाते, (अपने) पूछते हुए बहुश्रुत, आगमन, धर्म-धर, विनय-धर, मातृका-धर, पडित, चतुर, मेधावी, लज्जाशील, सकोची, सीखको चाहनेवाले हो गये। वह ठीकसे बर्ताव करते, रोवाँ गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) करते थे। भिक्षुओके पास जाकर ऐसा कहते थे—

"आवुसो ! सघ द्वारा निस्सय कर्मसे दडित हो मै ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम) करता हूँ। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ सेय्यसक भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ करे।" 73

(माफ न करने लायक व्यक्ति)—(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुके नियस्स कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, ०[2] (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग करता है। 76

अठ्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध न करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ०[3] (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करता। 79

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दण्ड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह नियस्सका भिक्षु सघके पास जा एक कधेपर उत्तरासगकर, वृद्ध भिक्षुओके चरणोमे वदनाकर, उकळूँ बैठ ऐसा बोले—

"'भन्ते ! मै सघ द्वारा नियस्सकर्मसे दडित हो ठीकसे वर्तता हूँ० नियस्स कर्मकी माफी

---

[1] देखो पृष्ठ ३४४। [2] देखो पृष्ठ ३४५।
[3] देखो पृष्ठ ३४५-४६।

चाहता हूँ।' दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—'भन्ते ! ० नियस्स कर्मकी माफी चाहता हूँ।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[1] ।

"—'सघने से य्य स क भिक्षुके नियस्स कर्मको माफ कर दिया, सघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।" 80

नियस्स कर्म समाप्त ॥२॥

§३–प्रव्राजनीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय अ श्व जि त् और पु न र्व सु नामक (दो) भिक्षु की टा गि रि मे आवासिक (=सदा आश्रममे रहनेवाले (भिक्षु) थे। वे इस प्रकारका अनाचार करते थे—मालाके पौदेको रोपते, रोपवाते थे, सीचते-सिंचाते थे, चुनते-चुनवाते थे, गूँथते-गुँथवाते थे। इकहरी बँटी माला[2] वनाते भी थे बनवाते भी थे। दोनो ओर से वँटी माला बनाते भी थे, बनवाते भी थे, मजरिका (=मजरी) बनाते भी थे बनवाते भी थे, विधूतिका बनाते भी थे वनवाते भी थे, वटसक (=अवतसक) बनाते थे बनवाते भी थे, आवेळ (=आपीड) वनाते भी थे, बनवाते भी थे, उरच्छद वनाते भी थे। बनवाते भी थे, वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, बहुओ, दासियोके लिये एक ओरकी वटिक मालाको ले भी जाते थे, लिवा भी जाते थे, दोनो ओरकी वटिकमालाको ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे, ० उ र च्छ द ले भी जाते थे लिवा भी जाते थे। वे कुलकी स्त्रियो, दुहिताओ, कुमारियो, बहुओ और दासियोके साथ एक बर्तनमे खाते थे, एक प्यालेमे पीते थे, एक आसनमे बैठते थे, एक चारपाईपर लेटते थे, एक विस्तरेपर लेटते थे, एक ओढनेमे लेटते थे, एक ओढने बिछौनेसे लेटते थे, विकाल (=दोपहरबाद) भी खाते थे, मद्य भी पीते थे, माला, गध और उवटनको भी धारण करते थे, नाचते भी थे, गाते भी थे, बजाते भी थे, लास (=रास) भी करते थे, नाचनेवालीके साथ नाचते भी थे, नाचनेवालीके साथ गाते थे, नाचनेवालीके साथ बजाते थे, नाचनेवालीके साथ ला स करते थे। गानेवालीके साथ नाचते थे, ० गानेवालीके साथ लास करते थे, बजानेवालीके साथ नाचते थे ० बजानेवालीके साथ लास करते थे। लास करनेवालीके साथ नाचते थे ० लास करनेवालीके साथ लास करते थे। अष्टपद (=जुए) को खेलते थे, दशपद=(जुए) को खेलते थे। आकाशमे भी क्रीडा करते थे, प रि हा र प थ मे भी खेलते थे। सप्तिका भी खेलते थे, खलिका भी खेलते थे, घटिका भी खेलते थे, शलाकाहस्त[3] भी खेलते थे। अक्ष (=एक प्रकारका जुआ) से भी खेलते थे। पगचीर[3] से भी खेलते थे। वकक[3] से भी खेलते थे। मोक्खचिक्र[3] से भी खेलते थे। त्रिगुलक[3] से भी खेलते थे। प त्ता ळ् ह क से भी खेलते थे। रथक (=खिलौनेकी गाळी)-से भी खेलते थे, धनुहीसे भी खेलते थे। अक्षरिका[3] से भी खेलते थे। मनेसिका[3] से भी खेलते थे। यथा वज्जा[3] से भी खेलते थे। हाथी-(की विद्या)को भी सीखते थे, घोळे(की विद्या)को भी सीखते थे, रथ(की विद्या)को भी सीखते थे, धनुष(की विद्या)को भी सीखते थे। परशु(की विद्या)को भी सीखते थे। हाथीके आगे आगे भी दौळते थे, घोळेके आगे आगे भी दौळते थे, रथके आगे आगे भी दौळते थे। दौळकर चक्कर भी काटते थे, उस्सोळ्ह[4] भी कहते थे। अपोठ[4] भी कहते थे, निब्बुज्झ[4] भी करते थे। मुक्केवाजी भी करते थे। र ग (=थियेटर हाल)के वीचमे सघाटी फैलाकर नाचनेवाली (स्त्री)से

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६। तर्जनीय कर्मके स्थानमें 'नियस्स कर्म' कर लेना चाहिये।
[2] मालाओके नाम है। [3] जूओके नाम। [4] दौळो और व्यायामोके नाम।

यह कहते थे—'भगिनी यहाँ नाचो।' ललाटिका (एक ललाटका आभूषण)को भी लगाते थे। और नाना प्रकारके अनाचारको करते थे।

उस समय एक भिक्षु काशी (देश)मे वर्षावास कर भगवान्‌के दर्शनके लिये (श्रावस्ती) जाते (समय) जहाँ कीटागिरि है वहाँ पहुँचा। तब वह भिक्षु पूर्वाह्णमे पहनकर पात्र-चीवर ले श्रद्धा उत्पन्न करनेवाले गमन-आगमन(के ढग)से आलोकन-विलोकनसे (हाथके) समेटने-पसारनेसे नीची नजर करके ईर्यापथ[1]से मुक्त हो कीटागिरिमें प्रविष्ट हुआ। लोग उस भिक्षुको देखकर ऐसा कहने लगे—

'यह कौन निर्वल-दुर्वल जैसा, धीरे धीरे भाकुटिक (=पाखडी) भाकुटिक जैसा है? कौन आनेपर इसको भीख भी देगा? हमारे आर्य अश्वजित् और पुनर्वसु तो स्नेह युक्त सखिल (सखा-भाव युक्त) सुख-पूर्वक स=भापण करने योग्य खोजनेपर पहले जानेवाले, 'आओ! स्वागत' बोलनेवाले, भौह न चढानेवाले, खुले मुँहवाले, पहले बोलनेवाले है। उन्हे भिक्षा देनी चाहिये।'

एक उपासक उस भिक्षुको कीटागिरिमे भिक्षाटन करते देख जहाँ वह भिक्षु था वहाँ गया। जाकर उस भिक्षुको अभिवादन कर यह बोला—

"क्या भन्ते! भिक्षा मिली?"

"आवुस! भिक्षा नही मिलती।"

"आओ भन्ते! घर चले।"

तब वह उपासक उस भिक्षुको (अपने) घर लेजा, भोजन करा यह बोला—

"भन्ते! आर्य कहाँ जायँगे?"

"आवुस मै भगवान्‌के दर्शनके लिये श्रावस्ती जाऊँगा।"

"तो भन्ते! मेरे वचनसे भगवान्‌के चरणोमे शिरसे वन्दना करना और यह कहना—'भन्ते! कीटागिरिका आवास दूषित हो गया है। अश्वजित् और पुनर्वसु नामक (दो) निर्लज्ज, पापी भिक्षु कीटागिरिमे आवासिक (=सदा आश्रममे रहनेवाले भिक्षु) है। ०[1] और नाना प्रकारके अनाचार करते हैं। भन्ते! जो मनुष्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अब अश्रद्धालु—अप्रसन्न है। जो कोई पहले सघके लिये दानके रास्ते थे वे भी टूट गये। अच्छे भिक्षु छोळ जाते है। पापी भिक्षु वास करते है। अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमे (ऐसे) भिक्षु भेजे जिसमे यह आवास ठीक हो जाय'।"

"अच्छा आवुस!"—(कह) वह भिक्षु उस उपासकको उत्तर दे आसनसे उठ जिधर श्रावस्ती है उधर चल दिया। क्रमश जहाँ श्रावस्तीमे अनाथपिडिकका आराम जेतवन था, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। बुद्ध भगवानोका यह आचार है कि नवागन्तुक भिक्षुओके साथ प्रति सम्मोदन (=कुशल-प्रश्न पूछना) करे। तब भगवान्‌ने उस भिक्षुसे कहा—

"भिक्षु! अच्छा तो रहा, यापनीय तो रहा, तकलीफके विना रास्तेमे तो आया. और भिक्षु! तू कहाँसे आता है?"

"अच्छा रहा भगवान्! यापनीय रहा भगवान्! तकलीफके बिना भन्ते! मै रास्तेमे आया। भन्ते! मै काशी (देश)मे वर्षावास करते भगवान्‌के दर्शनको श्रावस्ती जाते कीटागिरिमे पहुँचा। तब मै भन्ते! पूर्वाह्ण समय पहिन कर, पात्र-चीवर ले, ० ईर्यापथसे युक्त हो कीटागिरिमे प्रविष्ट हुआ। ०[1] अच्छा हो भन्ते! भगवान् कीटागिरिमे (ऐसे) भिक्षु भेजे जिसमे यह आवास ठीक हो जाय।'

---

[1] देखो पृष्ठ ३४९।

वहाँसे मै भगवान्! आ रहा हूँ।"

तब भगवान्ने इसी संबंधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु संघको एकत्रित कर भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! अ श्व जि त् और पु न र्व सु (दो) निर्लज्ज, पापी भिक्षु ०? नाना प्रकारके अनाचारको करते है? और जो मनुष्य पहले श्रद्धालु=प्रसन्न थे वह भी अब अश्रद्धालु=अप्रसन्न है० अच्छे भिक्षु छोळ जाते है, पापी भिक्षु वास करते हैं।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—० नाना प्रकारके अनाचार करते है!! भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह सा रि पु त्र और मो ग्ग ला न को संबोधित किया—

"जाओ सा रि पु त्र! तुम (और मो ग्ग ला न)। की टा गि रि मे जा अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि से प्र व्रा ज नी य कर्म (=निकालनेका दंड) करो। वे तुम्हारे स द्धि वि हा री (=शिष्य) थे।" 81

"भन्ते! कैसे हम अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि से प्रव्रजित कर्म करे? वे भिक्षु चंड हैं, परुष (=कठोर) है।"

"तो सारिपुत्र (मोग्गलान) तुम बहुतसे भिक्षुओके साथ जाओ!"

"अच्छा भन्ते!" (कह) सारिपुत्रने भगवान्का उत्तर दिया।

(२) दण्ड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ! ऐसे प्रव्राजनीय कर्म करना चाहिये—पहले अ श्व जि त् पु न र्व सु भिक्षुओको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाकर आ प त्ति का आरोप करना चाहिये। आपत्तिका आरोप कर चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते! संघ मेरी सुने! ये अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुल-दूषक (और) पापाचारी है। इनके पापाचार देखे भी जाते है, सुने भी जाते है, और इनके द्वारा कुल दूषित हुए देखे भी जाते है, सुने भी जाते है। यदि संघ उचित समझे तो संघ—'अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओको की टा गि रि मे नही वास करना चाहिये'—(कह) अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि-से प्रव्राजनीय कर्म करे।—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते, संघ मेरी सुने! यह अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षु कुलदूषक और पापाचारी है। संघ—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओको कीटागिरिमे नही वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पु न र्व सु का प्रव्राजनीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्को ० अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओका प्रव्राजनीय कर्म करना पसंद है वह चुप रहे, जिसको ० नही पसंद है वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी ०।

"(३) 'तीसरी बार भी ०।

"ग धा र णा—संघने—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओको कीटागिरिमे नही वास करना चाहिये' (कह) अश्वजित् और पुनर्वसुका कीटागिरिसे प्रव्राजनीय कर्म कर दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।" 82

(३) नियम-विरुद्ध प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म, अधर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति)

कराये किया गया होता है। ०[१]।" 94

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रव्राजनीय दण्ड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त प्रव्राजनीय कर्म, धर्म कर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछ कर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[२]।" 106

बारह धर्म-कर्म समाप्त

(५) प्रव्राजनीय दण्ड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको, चाहनेपर (=आकखमान) सघ तर्जनीय कर्म करे—०[३]।" ४२

छ आकंखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका प्र व्रा ज नी य कर्म किया गया है उसे ठीकसे बरताव करना चाहिये, और वह ठीकसे बरताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[३]।" 113

तब सा रि पु त्र और मोग्गलानकी प्रधानतामे भिक्षु सघने कीटागिरिमे जा—'अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षुओको कीटागिरिमे नही वास करना चाहिये' (कह), अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओका की टा गि रि से प्रव्राजनीय कर्म किया। वे सघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नही करते थे, रोवॉ नही गिराते थे, निस्तारके लायक (काम) नही करते थे, भिक्षुओसे माफी नही मॉगते थे, (बल्कि भिक्षुओकी) निदा करते थे, परिहास करते थे,—भिक्षु छन्द (=स्वेच्छाचार), द्वेष, मोह, भय (के रास्तेपर) जानेवाले है, रहते भी है, चले जाते भी है। (भिक्षु-वेष) भी छोळ जाते है।' कहते थे। जो वह अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वे हैरान होते थे—कैसे अश्वजित् और पुनर्वसु भिक्षु सघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्म किये जानेपर ठीकसे बरताव नही करते, ० (भिक्षु वेष) भी छोळ जाते है!' तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हॉ) सचमुच भगवान्।"

० फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! सघ प्रव्राजनीय कर्मको माफ न करे।"

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ! पॉच बातोसे युक्त भिक्षु प्रव्राजनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, ०[४]।" 116

प्रव्राजनीय कर्ममें अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दड माफ करने लायक व्यक्ति

(१–५) "भिक्षुओ! पॉच बातोसे युक्त भिक्षुके प्रव्राजनीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१),

---

[१] देखो पृष्ठ ३४२। [२] देखो पृष्ठ ३४३। [३] देखो पृष्ठ ३४४।
[४] देखो पृष्ठ ३४५।

उपसम्पदा नही देता, ०[1]।" 119

प्रव्राजनीय कर्ममें अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—जिस भिक्षुका प्रव्राजनीय कर्म किया गया है वह सघके पास जाकर ० उकळूँ बैठ हाथ जोड ऐसा बोले—

" 'भन्ते ! हम सघ द्वारा प्रव्राजनीय कर्मसे दडित हो ठीकसे वर्तते है ० प्रव्राजनीय कर्मकी माफी चाहते है ।' दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी ० ।

"(तव) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2] ।" 120

प्रव्राजनीय कर्म समाप्त ॥३॥

§४–प्रतिसारणीय कर्म

(१) प्रव्राजनीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय आयुष्मान् सु ध र्म म च्छि का स ड[3]मे चि त्र गृहपतिके आवासिक (=आश्रम बनानेवाले) हो न व क र्मि क (=नई इमारतकेतत्वावधान करनेवाले) ध्रुव भक्तक (=सदा वही भोजन करनेवाले) थे। जब चि त्र गृहपति सघ, या गण या व्यक्तिका निमत्रण करना चाहता था तो आयुष्मान् सु ध र्म को विना पूछे नही करता था। उस समय, आयुष्मान् सा रि पु त्र आ यु ष्मा न् म हा मौ द् ग ल्या य न आयुष्मान् म हा का त्या य न, आयुष्मान् म हा को ट्ठि त (=कोष्टिल), आयुष्मान् म हा क प्पि न्, आयुष्मान् म हा चु न्द, आयुष्मान अ नु रु द्ध, आयुष्मान् रे व त, आयुष्मान् उ पा लि आयुष्मान् आ न द, और आयुष्मान रा हु ल (आदि) वहुतसे स्थविर का शी (देश)मे चारिका करते, जहाँ म च्छि का स ड था वहाँ पहुँचे।

चित्र गृहपतिने सुना कि स्थविर भिक्षु म च्छि का स ड मे पहुँचे है। तब चि त्र गृहपति जहाँ वे स्थविर भिक्षु थे वहाँ पहुँचा। पहुँच कर स्थविर भिक्षुओको अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे चित्र गृहपतिको आयुष्मान सारिपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित, सम्प्रहर्षित किया। तब आयुष्मान् सारिपुत्रकी धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सम्प्रहर्षित हो चित्र गृहपतिने स्थविर भिक्षुओसे यह कहा—

"भन्ते ! कलका नवागन्तुकका भोजन मेरा स्वीकार करे।"

स्थविर भिक्षुओने मौन रह स्वीकार किया। तव चि त्र गृहपति स्थविर भिक्षुओकी स्वीकृति जान, आसनसे उठ, स्थविर भिक्षुओको अभिवादन कर प्रदक्षिणा कर जहाँ आयुष्मान् सु ध र्म थे वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् सुधर्मको अभिवादन कर एक ओर खडा हो गया। एक ओर खळे चि त्र गृहपतिने आयुष्मान् सुधर्मसे यह कहा—

"भन्ते ! आर्य सुधर्म (भी) स्थविरोके साथ कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

---

[1] देखो पृष्ठ ३४६ ।

[2] देखो पृष्ठ ३४६, 'तर्जनीय कम'के स्थानपर 'प्रव्राजनीय कर्म' और 'पण्डुक' तथा 'लोहितक'के स्थानपर 'वह भिक्षु' करके पढना चाहिये ।

[3] सभवत· जौनपुर जिलेका 'मछली शहर' कस्वा ।

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—"० कैसे तू मोघपुरुष चित्र-गृहपति (जैसे) श्रद्धालु=प्रसन्न, दायक, कारक, सघ-सेवकको छोटी (वात)से खुनसायेगा! छोटी (वात)से नाराज करेगा। मोघ पुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है ०।"

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान्‌ने भिक्षुओको सवोधित किया—

(२) दण्ड देनेको विधि

"तो भिक्षुओ! 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) सघ सु ध र्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे। 121

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (प्रतिसारणीय कर्म) करना चाहिये, पहले सुधर्म भिक्षुको प्रेरित करना चाहिये, प्रेरित करके स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला कर आपत्तिका आरोप करना चाहिये, आपत्तिका आरोप करके चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते! सघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चित्र गृहपति जैसे श्रद्धालु०को छोटी (वात)से खुनसाया ०, यदि सघ उचित समझे तो सघ—'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो' (कह) सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करे—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! सघ मेरी सुने—इस सुधर्म भिक्षुने चि त्र गृहपति जैसे श्रद्धालु० को छोटी (वात)से खुनसाया ०, सघ 'चित्र गृहपतिसे जा क्षमा माँगो'—(कह) सु ध र्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म करता है। जिस आयुष्मान्‌को सुधर्म भिक्षुका प्र ति सा र णी य कर्म पसद है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है वह वोले।

"(२) 'दूसरी वार भी ०[1]।

"(३) 'तीसरी वार भी ०।

"ग धा र णा—'सघने सुधर्म भिक्षुका प्रतिसारणीय कर्म कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।" 122

(३) नियम विरुद्ध प्रतिसारणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, अधर्म कर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[1]।" 134

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार प्रतिसारणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोसे युक्त प्रतिसारणीय कर्म, धर्मकर्म ० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछ कर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[2]।" 146

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) प्रतिसारणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (आकखमान) प्रतिसारणीय कर्म

---

[1] देखो पृष्ठ ३४२।   [2] देखो पृष्ठ ३४३।

रहा है। जिस आयुष्मान्‌को इस नामवाले भिक्षुका अनुदूत किया जाना पसन्द हो वह चुप रहे, जिसव पसन्द न हो वह बोले।

"'दूसरी बार भी०।

"'तीसरी बार भी०।

"—'सघने इस नामवाले भिक्षुको० अनुदूत दिया, सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! सुधर्म भिक्षुको उस अनुदूतके साथ मच्छिकासडजा चित्र गृहपतिसे—'गृहपति! क्षमा करो, विनती करता हूँ' (कह) क्षमा माँगनी चाहिये। ऐसा कहनेपर यदि क्षमा क तो ठीक यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो तुमसे विनती करता है।' ऐसे कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षु कहना चाहिये—'गृहपति! इस भिक्षुको क्षमा करो, मै तुमसे विनती करता हूँ।'—ऐसा कहनेप यदि क्षमा करे तो ठीक, न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षुको कहना चाहिये—'गृहपति! सघके वचन इस भिक्षुको क्षमा करो।' ऐसा कहनेपर यदि क्षमा करे तो ठीक, यदि न क्षमा करे तो अनुदूत भिक्षु सुध भिक्षुको चित्र गृहपतिके देखने सुनने भरके स्थानमे एक कधेपर उत्तरासघ करा, उकळूँ बैठा, हा जोळवा उस आपत्ति (=अपराध)की देशना (Confession) कराये।"

तव आयुष्मान् सुधर्म ने अनुदूत भिक्षुके साथ मच्छिकासडजा चित्र गृहपतिसे (अपनेको क्षमा करवाया। (तव) वह ठीक तरहसे बरताव करते थे० भिक्षुओके पास जा ऐसा कहते थे—'आवुसो! सघ द्वारा दडित हो मै अव ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक (काम करता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये?'

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ सुधर्म भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करे।" 153

(८) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको नही माफ करन चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, ०[1]।" 158

प्रतिसारणीय कर्ममें अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५ "भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके प्रतिसारणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ।०[1]।" 173

प्रतिसारणीय कर्मसे अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(१०) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह सुधर्म भिक्षु, भिक्षु-सघके पास जा उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा वोले—०[2]।"

---

[1]देखो पृष्ठ ३४५।

[2]देखो पृष्ठ ३४६ तर्जनीय कर्मके स्थानमें, प्रतिसारणीय कर्म, तथा 'पडुक' और 'लोहितव भिक्षुके स्थानमें 'सुधर्म' भिक्षुकरके पढना चाहिये।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय कर्म

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त ०उत्क्षेपणीय कर्म, धर्मकर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति कराके किया गया होता है। ०[1]।" 199

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकखमान) सघ आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[2]।" 205

छ आकरण मान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये। और वह ठीकमे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[2] (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालो)की निन्दा नही करनी चाहिये, (११) प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुमे अभिवादन, (१२) प्रत्युत्थान, (१३) हाथ जोळना, (१४) सामीचि कर्म (=यथायोग्य वर्तना), (१५) आसन ले आना, (१६) शय्या ले आना, (१७) पादोदक, (१८) पादपीठ, (१९) पादकठलिक, (२०) पात्र-चीवर ले आना, (२१) स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो को लेना) चाहिये, (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष नही लगाना चाहिये, (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष नही लगाना चाहिये, (२४) बुरी-जीविका-होने-वालेका दोष नही लगाना चाहिये, (२५) भिक्षु-भिक्षुमे फूट नही डालनी चाहिये, (२६) न गृहस्थोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२७) न तीर्थिकोकी ध्वजा (=वेष) धारण करनी चाहिये, (२८) न तीर्थिकोका सेवन करना चाहिये, (२९) भिक्षुओका सेवन करना चाहिये, (३०) भिक्षुओकी शिक्षा (=नियम) सीखनी चाहिये, (३१) प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमे नही वास करना चाहिये, (३२) एक छतवाले अनावास (=भिक्षुओके निवास-स्थान से भिन्न घर) मे नही रहना चाहिये, (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमे नही रहना चाहिये, (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे उठ जाना चाहिये', (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या वाहरमे नाराज न करना चाहिये, (३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उपोसथको स्थगित नही करना चाहिये, (३७) प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये, (३८) वात बोलने लायक (काम) नही करना चाहिये, (३९) अनुवाद (=शिकायत)को नही प्रस्थापित करना चाहिये, (४०) अवकाश नही कराना चाहिये, (४१) प्रेरणा नही करनी चाहिये, (४२) स्मरण नही कराना चाहिये, (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नही करना चाहिये।" 206

तव सघने आपत्ति न देखनेके लिये छन्न भिक्षुका सघके साथ सहभोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह सघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोळ दूसरे आवासमे चला गया। वहाँ भिक्षुओने न उसका अभिवादन किया, न प्रत्युत्थान किया, न हाथ जोळा, न सामीचि कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना) किया, न सत्कार = गुरुकार किया, न सम्मान

[1] देखो पृष्ठ ३४३।　　[2] देखो पृष्ठ ३४४।

किया, न पूजन किया। भिक्षुओके सत्कार, गुरुकार, सम्मान, पूजा न करनेसे उस आवाससे भी दूसरे आवासमे चला गया। वहाँ भी भिक्षुओने न उसका अभिवादन किया० उस आवाससे भी दूसरे आवासमे चला गया। वहाँ भी भिक्षुओने न उसका अभिवादन किया० । भिक्षुओके सत्कार० न करने से वह फिर कौशाम्वी लौट आया। (तव) वह ठीकसे बर्तता था, रोवाँ गिराता था, निस्तारके लायक (काम) करता था, भिक्षुओके पास जाकर ऐसा वोलता था—आवुसो ! सघ द्वारा आपत्ति न देखनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्मसे दडित हो अव मै ठीकसे वर्तता हूँ, रोवाँ गिराता हूँ, निस्तारके लायक काम करता हूँ, मुझे कैसे करना चाहिये।'

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! सघ छन्न भिक्षुके आपत्ति न देखनेके लिए किये गये ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे।" 207

(७) दण्ड न माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है, (२) निश्रय देता है, (३) श्रामणेरसे उपस्थान (=सेवा) कराता है, (४) भिक्षुणियोको उपदेश देनेकी सम्मति पाना चाहता है, (५) सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणियोको उपदेश देता है। 208

६–१०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(६) जिस आपत्तिके लिये सघने उत्क्षेपणीय कर्म किया है उस आपत्तिको करता है, (७) या उस जैसी दूसरी आपत्तिको करता है, (८) या उससे अधिक बुरी आ प त्ति करता है, (९) कर्म (=फैसला)की निन्दा करता है, (१०) कर्मिक (=फैसला करनेवालो)की निन्दा करता है। 209

११–१५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(११) प्र कृ ता त्म (=दडरहित) भिक्षुओसे अभिवादन, (१२) प्र त्यु त्था न, (१३) हाथ जोळना, (१४) सामीचि-कर्म (=कुशल-प्रश्न पूछना), (१५) आसन ले आना (इन काम्मोके लेने)की इच्छा रखता है। 210

(१६–२०) "और भी भिक्षुओ ! पाँच०—प्रकृतात्म भिक्षुसे,—(१६) शय्या ले आना, (१७) पादोदक, (१८) पादपीठ, (१९) पा द-क ठ लि क, (२०) पात्र-चीवर लाना, (इन कामोके लेने)की इच्छा रखता है। 211

२१–२५—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(२१) प्रकृतात्म भिक्षुसे स्नान करते वक्त पीठ मलने (का काम लेने)की इच्छा रखता है, (२२) प्रकृतात्म भिक्षुको शील-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है, (२३) आचार-भ्रष्ट होनेका दोष लगाता है, (२४) बुरी-जीविका रखनेका दोष लगाता है, (२५) भिक्षु-भिक्षुओमे फूट डालता है। 212

२६–३०—"और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(२६) गृहस्थोकी ध्वजा (=वेष) धारण करता है, (२७) ती र्थि को की ध्वजा धारण करता है, (२८) तीर्थिकोका सेवन करता है, (२९) भिक्षुओका सेवन नही करता, (३०) भिक्षुओकी शिक्षा (=नियम) नही सीखता।

(३१–३५) "और भी भिक्षुओ ! पाँच०—(३१) प्रकृतात्म भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमे रहता है, (३२) एक छतवाले अनावासम रहता है, (३३) एक छतवाले आवास या अनावासमे रहता है, (३४) प्रकृतात्म भिक्षुको देखकर आसनसे नही उठता, (३५) प्रकृतात्म भिक्षुको भीतर या वाहरसे नाराज करता है। 213

३६–४३—"भिक्षुओ ! आठ०—(३६) प्रकृतात्म भिक्षुके उ पो स थ को स्थगित करता

है, (३७) प्र वा र णा को स्थगित करता है, (३८) वात बोलने लायक (काम) करता है, (३९) अनुवाद (=शिकायत)को प्रस्थापित करता है, (४०) अवकाश कराता है, (४१) प्रेरणा करता है, (४२) स्मरण कराता है, (४३) भिक्षुओके साथ सप्रयोग करता है। 214

तैतालिस न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

१–५—"भिक्षुओ! पाँच वातोसे युक्त भिक्षुके उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ०[1] (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करता।" 222

तैतालिस जिसका प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु-सघके पास जा० उकळूँ वैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—०[2]।" 223

आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ॥५॥

§६—आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

(१) आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय दंडके आरम्भकी कथा

उस समय बुद्ध भगवान् कौ शा म्बी के घो षि ता रा म मे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् छ न्न आपत्ति करके उस आपत्तिका प्रतिकार करना नही चाहते थे। ०[3]।

फटकारकर धार्मिक कथा कहकर भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

(२) दंड देनेकी विधि

"तो भिक्षुओ! सघ छ न्न भिक्षुका आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे, और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये०[4]। 224

"भिक्षुओ! सारे आवासोमे कह दो कि आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका सघके साथ सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन वातोसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया सघमे सहयोग न होने लायक उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता; (२) विना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[5]।" 236

बारह अधर्म कर्म समाप्त

---

[1] देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६; 'तर्जनीय कर्म'के स्थानमें 'आपत्ति न देखनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'प ण्डु क' और 'लो हि त क' भिक्षुओके स्थानमें 'छन्न' भिक्षु करके पढना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १§५।१ पृष्ठ३५८।

[4] देखो चुल्ल १§५।२ पृष्ठ ३५८।

[5] देखो चुल्ल १§५।३ पृष्ठ ३५८।

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे किया गया सघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म , धर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है; (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है । ०[१] ।" 248

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ ! तीन बातोंसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकखमान) सघ आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[२] ।" 254

छ आकखमान समाप्त

(६) दंडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीकसे वर्ताव यह है—उपसम्पदा न देनी चाहिये०[३] (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करना चाहिये ।" 297

तैंतालिस ०उत्क्षेपणीय कर्मके व्रत समाप्त

तब सघने आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे छन्न भिक्षुका सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया। वह सघ द्वारा आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर उस आवासको छोड दूसरे आवासमे चला गया। ०[४] मुझे कैसे करना चाहिये ?

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ छन्न भिक्षुके आपत्तिका प्रतिकार न करनेके लिये सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे ।"

(७) दड न माफ करने लायक व्यक्ति

१-५—"भिक्षुओ ! पाँच बातोंसे युक्त भिक्षुके ० उत्क्षेपणीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—०[५] ।" 302

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

(१-५) "भिक्षुओ ! पाँच बातोंमे युक्त भिक्षुके ० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता, ०[६], (४३) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग नही करता। " 307

तैंतालिस प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

---

[१] देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२ । [२] देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४६ । [३] देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४ । [४] बाकी २से ४२के लिये देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९ । [५] देखो चुल्ल १§५।७ पृष्ठ ३६० । [६] देखो चुल्ल १§५।८ पृष्ठ ३६१ ।

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह छन्न भिक्षु सघके पास जा० उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा बोले—० ।"[1] 308

आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त ।। ६ ।।

§७–बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म

३—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती मे अनाथपिडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय गन्धवाधि-पुब्व (=भूतपूर्व गन्धव्राधि गिद्ध मारनेवाले) अ रि ष्ट भिक्षुको ऐसी बुरी दृ ष्टि[2] (=धारणा, मत) उत्पन्न हुई थी—'मै भगवान्के उद्देश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ जैसे कि जो (निर्वाण आदिके) अन्तरायिक (=विघ्नकारक) धर्म (=कार्य) भगवान्ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय (=विघ्न) नही कर सकते।' तब वे भिक्षु जहाँ० अ रि ष्ट भिक्षु था वहाँ गये। जाकर अ रि ष्ट भिक्षुसे यह बोले—

"आवुस अरिष्ट ! सचमुच ही तुम्हे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'० अन्तराय नही कर सकते' ?"

"आवुसो ! मै भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते ।"

तब वह भिक्षु ० अरिष्ट भिक्षुको उस बुरी दृष्टिसे हटानेके लिये कहते, समझाते-बुझाते थे—"आवुस अरिष्ट ! मत ऐसा कहो ! मत आवुस अरिष्ट ! ऐसा कहो ! मत भगवान्पर झूठ लगाओ। भगवान्पर झूठ लगाना अच्छा नही है। भगवान् ऐसा नही कह सकते। अनेक प्रकारसे भगवान्ने आवुस अ रि ष्ट ! अन्तरायिक धर्मोको अन्तरायिक कहा है । 'सेवन करनेपर वे अन्तराय करते है'—कहा है। भगवान्ने कामो (=भोगो)को वहुत दु खदायक, वहुत परेशान करनेवाले कहा है। उनमे वहुत दुष्परिणाम वतलाये है। भगवान्ने कामोको अ स्थि क का ल[3] समान कहा है, मा स-पे शी समान०, तृ ण-उ ल्का समान०, अ गा र क[4] (भौर) समान०, स्व प्न-स मा न०, या चि त को प म (=मँगनीके आभूषण)के समान०, वृ क्ष-फ ल[4] समान०, अ सि सू ना समान०, श क्ति-शू ल समान०, स र्प-शि र समान कहा है। भगवान्ने कामोको वहुत दुख-दायक, वहुत परेशान करनेवाले, वहुत दुष्परिणामवाले कहा है।"

उन भिक्षुओ द्वारा ऐसा कहे जाने, समझाये वुझाये जानेपर भी० अरिष्ट भिक्षु उसी वुरी दृष्टिको दृढतासे पकळ, जिद करके (उसका) व्यवहार करता था—"मै भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ० अन्तराय नही कर सकते।"

जव वह भिक्षु० अरिष्ट भिक्षुको उस वुरी दृष्टिसे नही हटा सके तव उन्होने भगवान्के पास

---

[1] देखो चुल्ल १§५।६ पृष्ठ ३५९ ।

[2] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६; 'तर्जनीय कर्मके स्थानमें' आपत्तिका प्रतिकार न करनेसे उत्क्षेपणीय कर्म' तथा 'पडुक' और 'लोहितक' भिक्षुओके स्थानमें अमुक नाम।

[3] मिलाओ अलगद्दूपम-सुत्तन्त (मज्झिम-निकाय २२, पृष्ठ ८४) ।

[4] इन उपमाओके लिये देखो 'पोतलिय-सुत्तन्त' (मज्झिम-निकाय ५४, पृष्ठ २१६-२१८) ।

जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठ ..भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी संघमें इसी प्रकरणमें भिक्षुओंको एकत्रितकर० अरिष्ट भिक्षुसे पूछा—

"सचमुच अरिष्ट! तुझे इस प्रकारकी बुरी दृष्टि उत्पन्न हुई है—'मैं भगवान्के० अन्तराय नही कर सकते'?"

"हाँ भन्ते! मैं भगवान्के उपदेश किये धर्मको ऐसे जानता हूँ, जैसे कि जो अन्तरायिक धर्म भगवान्ने कहे है, सेवन करनेपर भी वह अन्तराय नही कर सकते।"

"मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी)! किसको मैंने ऐसा धर्म उपदेश किया जिसे तू ऐसा जानता है—'मैं भगवान्०'। क्यो मोघपुरुष! मैंने तो अनेक प्रकारसे अ न्त रा यि क ध र्मो को अन्तरायिक कहा है०[1] बहुत दुष्परिणाम बतलाये है! और तू मोघपुरुष! अपनी उल्टी धारणासे हमें झूठ लगा रहा है, अपनी भी हानि कर रहा है, बहुत अपुण्य (=पाप) कमा रहा है। मोघपुरुष! यह चिरकाल तक तेरे लिये अहित और दुःखके लिये होगा। मोघपुरुष! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओको सम्बोधित किया—

"तो भिक्षुओ! संघ अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म करे।"

(२) दंड देनेकी विधि

"और भिक्षुओ! इस प्रकार उत्क्षेपणीय कर्म करना चाहिये०।[2] 309-389

"भिक्षुओ! सारे आवासोमें कह दो कि बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये अरिष्ट भिक्षुका० उत्क्षेपणीय कर्म हुआ है।"

(३) नियम-विरुद्ध ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोंसे युक्त बुरी धारणाके लिये किया गया० उत्क्षेपणीय कर्म, अधर्म कर्म० (कहा जाता) है—(१) सामने नही किया गया होता, (२) बिना पूछे किया गया होता है, (३) बिना प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराये किया गया होता है। ०[3]।" 400

बारह अधर्म कर्म समाप्त

(४) नियमानुसार ०उत्क्षेपणीय दंड

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त बुरी धारणा न छोळनेसे किया गया संघमें सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म, धर्म कर्म (कहा जाता) है—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञा (=स्वीकृति) कराके किया गया होता है। ०[3]।" 413

बारह धर्म कर्म समाप्त

(५) ०उत्क्षेपणीय दंड देने योग्य व्यक्ति

१—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (=आकखमान) संघ बुरी धारणा

---

[1] पृष्ठ ३६३।

[2] देखो चुल्ल १§५।२ पृष्ठ ३५८, "आपत्तिको न देखने"के स्थानमें "बुरी दृष्टि न छोळनेके लिये" पढना चाहिये।

[3] देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२-४३।

न छोळनेसे० उत्क्षेपणीय कर्म करे—०[1]।" 419

छ. आकखमान समाप्त

(६) दडित व्यक्तिके कर्त्तव्य

"भिक्षुओ ! जिस भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेसे ० उत्क्षेपणीय कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीकसे वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[2] (१८) भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग (=मिश्रण) नही करना चाहिये ।" 420

तब सघने० अ रि ष्ट भिक्षुका बुरी धारणा न छोळनेके लिये, सघके साथ सहयोग न करने लायक उत्क्षेपणीय कर्म किया । सघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर वह भिक्षु-वेष छोळकर चला गया । तब जो वे अल्पेच्छ० भिक्षु थे—वे हैरान होते थे—'कैसे० अरिष्ट भिक्षु सघ द्वारा उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेप छोळकर चला जायगा !' तब उन भिक्षुओने यह वात भगवान्‌से कही । तव भगवान्‌ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रितकर भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० अरिप्ट भिक्षु सघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेप छोळ कर चला गया ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्‌ने फटकारा—

"कैसे भिक्षुओ ! वह मोघपुरुप सघ द्वारा० उत्क्षेपणीय कर्म किये जानेपर भिक्षु-वेप छोळ चला जायगा ! भिक्षुओ ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है० ।"

फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सवोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ बुरी धारणाके न छोडनेके लिये किये गये० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करे ।" 421

(७) दंड न माफ करने लायक व्यक्ति

१—५—"भिक्षुओ ! पॉच वातोसे युक्त भिक्षुके तर्जनीय कर्मको नही माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा देता है०[3] ।" 426

अट्ठारह न प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(८) दंड माफ करने लायक व्यक्ति

१—५—"भिक्षुओ ! पॉच वातोसे युक्त भिक्षुके० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ करना चाहिये—(१) उपसम्पदा नही देता०[4] ।" 431

अट्ठारह प्रतिप्रश्रब्ध करने लायक समाप्त

(९) दंड माफ करनेकी विधि

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार माफी देनी चाहिये—वह अमुक भिक्षु सघके पास जा एक कधे पर उत्तरासघकर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमे वन्दनाकर, उकळूँ बैठ, हाथ जोळ ऐसा कहे—

---

[1]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३-४४ । देखो चुल्ल १§१।५ पृष्ठ ३४४ ।
[2]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४ ।
[3]देखो चुल्ल १§१।७ पृष्ठ ३४५ ।
[4]देखो चुल्ल १§१।८ पृष्ठ ३४५-४६ ।

भन्ते ! मै सघ द्वारा० उ त्क्षे प णी य क र्म से दडित हो ठीकसे बर्तता हूँ, लोम गिराता हूँ, निस्तारके (कामको) करता हूँ, ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफी माँगता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी—भन्ते ! ० उत्क्षेपणीय कर्मसे माफी चाहता हूँ।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यह अमुक भिक्षु सघ द्वारा ० उत्क्षेपणीय-कर्मसे दडित हो ठीकसे वर्तता है० उत्क्षेपणीय-कर्मसे माफी चाहता है। यदि सघ उचित समझे तो, सघ अरिष्ट भिक्षुके ०उत्क्षेपणीय - कर्मको माफ करे—यह सू च ना है।'

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'पूज्यसघ मेरी सुने०[1] ।'

"ग धा र णा—'सघने इस नामवाले भिक्षुके बुरी धारणा न छोडनेसे किये गये० उत्क्षेपणीय कर्मको माफ कर दिया। सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।" 432

बुरी धारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म समाप्त

कम्मक्खन्धक समाप्त ॥१॥

---

[1] देखो चुल्ल १§१।९ पृष्ठ ३४६ "तर्जनीय कर्म" के स्थानमें "बुरीधारणा न छोळनेसे उत्क्षेपणीय कर्म" तथा "प डु क" और "लो हि त क" भिक्षुओके स्थानमें "अमुक" नाम वाला भिक्षु करके पढ़ना चाहिये।

२—पारिवासिक-स्कंधक

१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य । २—मूलसे-प्रतिकर्षण दंड पायेके कर्त्तव्य ।
३—मानत्त्व दड पायेके कर्त्तव्य । ४—मानत्त्व चार दड पायेके कर्त्तव्य ।
५—आह्वान पायेके कर्त्तव्य ।

§१—परिवास दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

१—श्रावस्ती

(१) पूर्व-कथा

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिंडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे । उस समय पारिवासिक (=जिनको प रि वा स का दड दिया गया है) भिक्षु प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुओके अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोडने, सामीचिकर्म (=कुशल-प्रश्न पूछने), आसन ले आना, शय्या ले आना, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक, पात्र-चीवर ले आना, स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेते थे । जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वे हैरान होते थे—कैसे ये पारिवासिक भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० को लेते है !' तब भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही ।

तब भगवान्ने इसी सवधमे, इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रित कर भिक्षुओसे पूछा ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् ।"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे पारिवासिक भिक्षु० !"

फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

(२) अदंडितके अभिवादन आदिको ग्रहण न करना चाहिये

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको अदडित भिक्षुओसे अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को नही लेना चाहिये । जो ले उसको दुक्कटका दोष हो । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको अपने भीतर वृद्धताके अनुसार अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामो)को लेनेकी । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पारिवासिक भिक्षुओको पाँच (बातो) की—वृद्धताके अनुसार (१) उपोसथ, (२) प्रवारणा, (३) वार्षिक साटिका, (४) विसर्जन (=ओणोजना) और (५) (=भोजन भात) ।'

"तो भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुओके, जैसे उन्हे वर्तना चाहिये (वह) व्रत वि धा न करता हूँ—

(३) पारिवासिकके व्रत

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये । और वे ठीकसे बर्ताव यह है—
(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, (२) नि श्र य नही देना चाहिये, (३) श्रामणेरसे उपस्थान

(=सेवा) नही करानी चाहिये, (४) भिक्षुओ ! भिक्षुणियोका उपदेशक बनानेके प्रस्तावकी सम्मति नही स्वीकार करनी चाहिये (५) सघकी सम्मति मिल जानेपर भी भिक्षुणिओको उपदेश नही देना चाहिये, (६) जिस आपत्ति (=अपराध)के लिये सघने परिवास दिया है, उस आपत्तिको नही करनी चाहिये, (७) या वैसी दूसरी (आपत्ति)को नही करना चाहिये, (८) या उससे बुरी (आपत्ति)को नही करना चाहिये, (९) कर्म=न्याय, फैसला')की निदा नही करनी चाहिये (१०) कर्मिको (=फैसला करनेवालो)की निदा नही करनी चाहिये, (११) प्रकृतात्म (=अदडित) भिक्षुके उपोसथको स्थगित नही करना चाहिये, (१२) (०) की प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये, (१३) बात बोलने लायक (काम) नही करना चाहिये, (१४) अनुवाद (=शिकायत) को नही प्रस्थापित करना चाहिये, (१५) अवकाश नही कराना चाहिये, (१६) दोषारोपण (=चोदना) नही करनी चाहिये, (१७)स्मरण नही कराना चाहिये, (१८)भिक्षुओके साथ सम्प्रयोग(=मिश्रण)नही करना चाहिये।

"भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षुको अदडित भिक्षुके सामने (१९) नही जाना चाहिये, (२०) न सामने बैठना चाहिये, (२१) सघका जो आसनका सामान, शय्याका सामान, विहारका सामान है, उसे देना चाहिये, और उसे इस्तेमाल करना चाहिये, (२२) भिक्षुओ ! पारिवासिक भिक्षु अदडित भिक्षुको आगे चलनेवाला या पीछे चलनेवाला भिक्षु बना , गृहस्थोके घरमे नही जाना चाहिये, (२३) और न आरण्यकके काम (=नियम)को लेना चाहिये, (२४) न पिडपातिक (=केवल भिक्षा माँगकर ही गुजारा करनेवाले)का ही नियम लेना चाहिये, (२५) न उसके लिये पिडपॉत (=भिक्षा) मँगवानी चाहिये, जिसमे कि वह उसके (=परिवास दिये जानेकी बातको) जान जायँ, (२६) भिक्षुओ। पारिवासिक भिक्षुको नई जगह जानेपर (अपने परिवासकी बातको) बतलाना चाहिये, (२७) नवा-गन्तुक(भिक्षु)को बतलाना चाहिये, (२८) उपोसथमे बतलाना चाहिये, (२९) प्रवारणमे बतलाना चाहिये, (३०) यदि रोगी है तो दूत-द्वारा कहलाना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! अदडित भिक्षुके साथ होने या विना होनेके अतिरिक्त (३१) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवास मे नही जाना चाहिये, (३२)० भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु-रहित अन्-आ वा स (=जो आश्रम भिक्षुओके रहनेका नही है), मे नही जाना चाहिये, (३३) ० भिक्षु सहित आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवास मे नही जाना चाहिये, (३४) ० भिक्षु सहित अनावाससे भिक्षु रहित आवासमे नही जाना चाहिये, (३५) ० भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित अन्-आवास मे नही जाना चाहिये, (३६) ० भिक्षु सहित अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमे नही जाना चाहिये, (३७) ० भिक्षुसहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु रहित आवासमे नही जाना चाहिये, (३८) ० भिक्षु सहित आवास या अन्-आवाससे भिक्षु-रहित अनावासमे नही जाना चाहिये, ० (३९)भिक्षु सहित आवास या अनावाससे भिक्षु रहित आवास या अन्-आवासमे नही जाना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! अदडित भिक्षुके साथ होने या विघ्न होनेके अतिरिक्त पारिवासिक भिक्षुको (४०) भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते है उस भिक्षु सहित आवासमे नही जाना चाहिये, (४१) ० भिक्षु सहित आवाससे जहाँ नाना आवासवाले भिक्षु रहते हैं उस अन्-आवासमे नही जाना चाहिये, (४२)० भिक्षु सहित आवाससे,०[1] भिक्षु सहित आवास या अन्-आवासमे नही जाना चाहिये, (४३) भिक्षु सहित अन्-आवाससे ० भिक्षु सहित आवासमे नही जाना चाहिये। (४४) भिक्षु सहित अन्—आवाससे ० भिक्षु सहित आवासमे भिक्षु सहित अन्-आवासमे नही जाना चाहिये, (४५)० भिक्षु

---

[1] "जहाँ नाना आवास वाले भिक्षु रहते हैं" यह इस पैरामें हर जगह जोळना चाहिये ।

सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमे नही जाना चाहिये, (४६)० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवासमे नही जाना चाहिये, (४७)० भिक्षु-सहित आवास या अन्आवाससे भिक्षु-सहित अनावासमे नही जाना चाहिये, (४८)० भिक्षु-सहित आवास या अन्आवाससे, जहाँ अनेक आवासवाले भिक्षु हो वैसे भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमे नही जाना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! (४९) पारिवासिक भिक्षुको भिक्षु-सहित आवाससे, जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हो और जिसके लिये जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकता हूँ वैसे भिक्षु-सहित आवासमे जाना चाहिये, (५०) ० भिक्षु-सहित आवाससे ०, भिक्षु-सहित अन्-आवासमे जाना चाहिये, (५१) ० भिक्षु-सहित आवाससे० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमे जाना चाहिये, (५२)० भिक्षु-सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवासमे जाना चाहिये, (५३) ० भिक्षु-सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित अन्-आवासमे जाना चाहिये, (५४) ० भिक्षु-सहित अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमे जाना चाहिये, (५५) ० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित आवासमे जाना चाहिये, (५६)० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवाससे,० भिक्षु-सहित अनावासमे जाना चाहिये, (५७)० भिक्षु-सहित आवास या अनावाससे,० भिक्षु-सहित आवास या अन्-आवासमे जाना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! (५८) पारिवासिक भिक्षुको अदडित भिक्षुके साथ, एक छतवाले आवासमे नही रहना चाहिये, (५९) ० एक छतवाले अन्-आवासमे नही रहना चाहिये, (६०)० एक छतवाले आवास या अन्-आवासमे नही रहना चाहिये, (६१) अदडित भिक्षुको देखकर आसनसे उठना चाहिये, आसनके लिये निमत्रण देना चाहिये, एक साथ एक आसनपर नही वैठना चाहिये, (६२) अदडित भिक्षुके नीचे आसनपर बैठे होनेसे ऊँचे आसनपर नही वैठना चाहिये, (०) पृथ्वीपर बैठा होनेपर आसनपर नही वैठना चाहिये, (६३) एक चक्रमण (=टहलनेकी जगह)पर नही टहलना चाहिये, (०) नीचेके चक्रमपर टहलते वक्त (स्वय) ऊँचे चक्रमपर नही टहलना चाहिये, (०) पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वय) चक्रमपर नही टहलना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! (६४) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमे नही रहना चाहिये, ० (६९) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध पारिवासिक भिक्षुके पृथ्वीपर टहलते वक्त (स्वय) चक्रमपर नही टहलना चाहिये ।

"भिक्षुओ ! (७०) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मू ल मे प्र ति क र्ष णा र्हं भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमे नही रहना चाहिये, ० ।

"भिक्षुओ ! (७६) पारिवासिक भिक्षुको अपनेमे वृद्ध मा न त्वा र्हं भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमे नही रहना चाहिये, ०[1] ।

"भिक्षुओ ! (८२) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध मा न त्व चा रि क भिक्षुके साथ एक छतवाले आवासमे नही रहना चाहिये, ० ।

"भिक्षुओ ! (८८) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आ ह्वा ना र्हं भिक्षुके साथ एक छत-वाले आवासमे नही रहना चाहिये, ०[1] (९३) पारिवासिक भिक्षुको अपनेसे वृद्ध आह्वानार्ह भिक्षुके भूमिपर टहलते वक्त (स्वय) चक्रमपर नही टहलना चाहिये ।

---

[1] इस पैरामें "जहाँ एक आवासवाले भिक्षु हो, और जिसके लिए जानता हो कि वहाँ आज ही पहुँच सकते है" सबमें दोहराना चाहिए ।

"(९४) यदि भिक्षुओ ! पारिवासिकको चौथा बना (भिक्षु-सघ) परिवास दे, मूलसे-प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे, या बीसवाँ (बना) आह्वान करे तो वह अकर्म (=अन्याय) है, करणीय नही है ।"[1]

पारिवासिकके चौरानबे व्रत समाप्त

(४) परिवासमे गिनी और न गिनी जानेवाली राते

उस समय आयुष्मान् उ पा लि जहाँ भगवान् थे वहाँ गये । एक ओर जा अभिवादन कर एक ओर बैठ आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते पारिवासिक भिक्षुकी कौनसी राते कट जाती है (=गिनतीमे नही आती) ?"

"उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी तीन राते कट जाती है—(१) साथ वास[1] करना, (२) विप्र-वास (=अकेला निवास) , (३) न बतलाना[2] —उपालि ! पारिवासिक भिक्षुकी ये तीन राते कट [2]जाती है ।"

(५) परिवासका निक्षेप (=मुल्तवी रखना)

उस समय श्रा व स्ती मे बळा भारी भिक्षु-सघ एकत्रित हुआ था (अपने पारिवासिकके कर्तव्योको पालन करके) पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नही कर सकते थे । भगवान्से यह बात कही ।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ परिवासके निक्षेप (= स्थगित) करनेकी ।"4

और भिक्षुओ ! इस प्रकार निक्षेप करना चाहिये —वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर एक कधेपर उत्तरा-सगकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

"परिवासका मै निक्षेप करता हूँ, (तो) परिवासका निक्षेप हो जाता है । 'व्रतके (कर्तव्यका) निक्षेप करता हूँ ।'—(तो) परिवासका निक्षेप होता है ।"

(६) परिवासका समादान

उस समय भिक्षु श्रावस्तीसे जहाँ तहाँ चले गये । पारिवासिक भिक्षु परिवासको शुद्ध नही कर पाते थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, परिवासके समादान (= ग्रहण) की । और भिक्षुओ ! इस प्रकार समादान करना चाहिये—वह पारिवासिक भिक्षु एक भिक्षुके पास जाकर हाथ जोळ ऐसा कहे— 'परिवासका समादान करता हूँ,' (तो) परिवासका समादान हो जाता है । व्रतका समादान करता हूँ, (तो) परिवासका समादान हो जाता है ।" 5

पारिवासिक व्रत समाप्त

§२—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मू ल से प्र ति क र्ष णा र्ह भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे ।०[3]

"भिक्षुओ ! प्रतिकर्षणार्ह भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये, और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"१—उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[3] (९४) यदि भिक्षुओ ! मूलसे प्र ति क र्ष णा र्ह

---

[1]देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७ । [2] चुल्ल २§१।३ (१) पृष्ठ ३६७-६८ "पारिवासिक"के स्थानपर "मूलसे-प्रतिकर्षणार्ह"—इस परिवर्तनके साथ । [3] देखो चुल्ल २§१ पृष्ठ ३६७-७०; "पारिवासिकके स्थानपर" मूलसे-प्रतिकर्षणार्ह," इस परिवर्तनके साथ ।

भिक्षुको चौथा बना परिवास दे , मूल से प्रतिकर्षण करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान करे, तो वह अकर्म है (=अन्याय)है, करणीय नही है ।" 6

मूलसे प्रतिकर्षणार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§३—मानत्त्व दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वार्ह (=मानत्व दड देने योग्य) भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे ।०[1] ।

"भिक्षुओ ! मानत्वार्ह भिक्षुको ठीकसे वर्तना चाहिये, और वे ठीकसे बर्ताव यह है—

"(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ० (९४) यदि भिक्षुओ ! मानत्वार्ह भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बन) आह्वान, करे, तो वह अकर्म (=न्याय-विरुद्ध) है करणीय नही है ।" 7

मानत्त्वार्हके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§४—मानत्त्वचार दण्ड पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय मानत्वचारिक (जिसको मानत्व चारका दड दिया गया हो) भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन० स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे।०[2] ।

"भिक्षुओ ! मानत्व-चारिक भिक्षुको ठीकसे बर्तना चाहिये और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"(१) उपसम्पदा देनी चाहिये,०[2] (९४) यदि भिक्षुओ ! मानत्व-चरिक भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्व-चारिक करे, मानत्वदे, या बीसवाँ बना आह्वान करे, तो वह अकर्म है, करणीय नही है ।" 8

मानत्त्वचारिकके (चौरानबे) व्रत समाप्त

§५—आह्वान पाये भिक्षुके कर्त्तव्य

उस समय आह्वानार्ह भिक्षु अदडित भिक्षुओके अभिवादन ०[3] स्नान करते वक्त पीठ मलना (इन कामोको) लेते थे। ० ।

"भिक्षुओ ! आह्वानार्ह भिक्षुको ठीकसे वरतना चाहिये और वे ठीकसे वर्ताव यह है—

"१—उपसपदा न देनी चाहिये,०[4] (९४) यदि भिक्षुओ ! आह्वानार्ह भिक्षुको चौथा बना परिवास दे, मानत्वार्ह करे, मानत्व दे या बीसवाँ (बना) आह्वान् करे, तो वह अकर्म है, करणीय नही है ।" 9

आह्वानार्हके (चौरानब) व्रत समाप्त

पारिवासिक-स्कन्धक समाप्त ॥२॥

---

[1] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७ ।

[2] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० 'पारिवासिक'के स्थानपर "मानत्व"के परिवर्तनके साथ।

[3] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७ ।

[4] देखो चुल्ल २§१।१ पृष्ठ ३६७-७० "पारिवासिक"के स्थानपर "आह्वानार्ह"के परिवर्तनके साथ ।

३—समुच्चय-स्कंधक

१—शुक्र-त्यागके दण्ड। २—परिवास-दण्ड। ३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दण्ड। ४—दण्ड भोगते समय नये अपराध करनेपर दण्ड। ५—मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धि। ६—अशुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण। ७—शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण।

§१—शुक्र-त्यागके दण्ड

१—श्रावस्ती

क—(१) छ रातका मानत्व

१—उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती में अ ना थ पि डि क के आराम जेतवनमें विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् उ दा यी ने बे-ढँका (=अ प्र ति च्छ न्न) जान बूझ कर शुक्र-त्यागका दोष (=अत्यार्त) किया था। उन्होने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने जान बूझकर शुक्र त्याग की एक बे-ढँकी आपत्ति की है। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! सघ उदायीभिक्षुको० जान बूझ कर शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये छ रातवाला मा न त्व दे।

"और भिक्षुओ! इस प्रकार देना चाहिये—उस उ दा यी भिक्षुको सघके पास जा एक कधे पर उत्तरासघ कर वृद्ध भिक्षुओंके चरणोमे वदना कर, उकळूं बैठ हाथ जोळ यह कहना चाहिये—

"भन्ते! मैंने बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आ प त्ति की है। सो भन्ते! मैं सघसे० बे-ढँकी जान बूझकर शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति के लिये छ रातवाला मानत्व माँगता हूँ। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।'

"(तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—भन्ते! सघ मेरी सुने। इस उ दा यी भिक्षुने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है०। वह सघसे ० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये छ रातका मा न त्व माँगता है। यदि सघ उचित समझे तो सघ उदायी भिक्षुको० छ रातवाला मानत्व दे—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते! सघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है।' वह सघसे० आपत्तिके लिये छ रातका मानत्व चाहता है। सघ उदायी भिक्षुको आपत्तिके लिये मानत्व देता है। जिस आयुष्मान्को उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व देना पसद है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है वह बोले०।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ०आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया । संघको पसद है इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

वह मानत्व[1] पूरा करके भिक्षुओसे बोले—

"आवुसो ! मैंने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। तब मैंने सघसे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब सघने मुझे० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। अब मैंने मानत्वको पूरा कर दिया। अब मुझे कैसे करना चाहिये ?"

क (२) मानत्त्वके बाद आह्वान

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुका आह्वान् करे।

"और भिक्षुओ ! आह्वान इस प्रकार करना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको स॰ के पास जा० ऐसा कहना चाहिये—भन्ते ! मैंने० आपत्तिकी।० तब मैंने सघसे ० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व माँगा। तब सघने मुझे ०आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। सो मै भन्ते ! मानत्वको पूराकर सघसे आह्वान माँगता हूँ। (दूसरी बार भी) भन्ते ! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान मागता हूँ। (तीसरी बार भी) भन्ते ! मैंने० आपत्ति की।० आह्वान मागता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने।० इस उदायी भिक्षुने० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी है०। वह सघसे० शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये आह्वान माँगता है। यदि सघ उचित समझे तो सघ उदायी भिक्षुको० आह्वान—यह सूचना है।"

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने। इस उदायी भिक्षुने शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की है०। वह सघसे० आपत्तिके लिये आह्वान चाहता है। सघ उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देता है। जिस आयुष्मान्को उदायी भिक्षुको० आपत्तिके लिये आह्वान देना पसद है वह चुप रहे, जिसको नही पसद है, वह बोले०।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको आह्वान कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

ख (१) एक दिनवाला परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न (=छिपा रक्खी) आपत्ति की थी। उन्होने भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो ! मैंने जान बूझ कर एक दिन शुक्र-त्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये एक दिनवाला है परिवास दे।

---

[1] मानत्व पानेवालेके कर्तव्यके विषयमें देखो चुल्ल २§३ पृष्ठ ३७१।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु सघके पास जा० ऐसा बोले—

" 'भन्ते ! मैने० एक आपत्ति की है, सो मै भन्ते ! सघसे० एक आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास चाहता हूँ । (दूसरी वार भी)०। (तीसरी बार भी)०।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु-सघको सूचित करे—०।[१]

"ग धा र णा—'सघने उदायि भिक्षुको० आपत्तिके लिये एकदिन वाला परिवास दिया। सघको पसद है इसलिये चुप है, ऐसा मै इसे समझता हूँ ।"

(२) परिवासके बाद छ रातवाला मानत्त्व

तब उन्होने परिवास पूरा करके भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो ! मैने० एक आपत्तिकी ।० सघसे० एक दिनका परिवास माँगा । सघने ० दिया । सो मैने परिवास पूरा कर लिया । अब मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही ।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उ दा यी भिक्षुको जान बूझकर एकदिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये छ रातवाला मानत्व दे ।

" 'और भिक्षुओ ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—उस उदायी भिक्षुको सघके पास जा० ।'[१]

"ग धा र णा—'सघने उ दा यी भिक्षुको० आपत्तिके लिये छ रातवाला मानत्व दिया । सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।"

(३) मानत्त्वके बाद आह्वान

वह मानत्व पूरा करके भिक्षुओसे बोले—० ।[२]

"तो भिक्षुओ ! सघ उ दा यी भिक्षुका आह्वान करे ।०[२] । 5

"ग धा र णा—'सघने उदायि भिक्षुको० आवाहन दिया । सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।"

ग (१) दो पाँच दिनके छिपायेके लिये पाँच दिनका परिवास

'१—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर दो दिन वालेप्रतिच्छन्न (=छिपाया) शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी० ।'[३]

२—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर तीन दिनवाले प्रतिच्छन्न० ।[३]

३—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर चार दिनवाले प्रतिच्छन्न० ।[३]

४—उस समय उदायी भिक्षुने जान बूझकर पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी ० ।

उन्होने भिक्षुओसे कहा—० ।[४]

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको० पाँच दिनवाला परिवास दे०[५] ।" 6

---

[१] देखो चुल्ल ३§१।क पृष्ठ ३७२-३ । [२] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३ ।
[३] देखो एक दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति चुल्ल ३§१।ख१ पृष्ठ ३७३ ।
[४] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३ । [५] देखो चुल्ल ३§१।ख पृष्ठ ३७३-४८३ ।

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सघको पसद है इसलिये चुप है— ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।"

(२) बीचमे फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उन्होने परिवासके बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की। उन्होने भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो ! मैने ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्ति की थी।० सघने० पाँच दिनवाला परिवास दिया। सो मैने परिवासके बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिकी है, मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको एक आपत्तिके बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करे । 7

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये।—वह उदायी भिक्षु सघके पास जा० यह कहे—

"'मैने भन्ते ! ० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने पाँच दिन वाला परिवास दिया। परिवासके बीचमे मैने ० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिकी। सो मै भन्ते ! सघसे एक आपत्तिके बीच जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) माँगता हूँ। (दूसरी बार भी)०। (तीसरी बार भी)०।०।

"धारणा—'सघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(३) फिर उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण

उसने परिवास समाप्त कर मानत्वके योग्य होते हुए बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। उसने भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो ! मैने० पाँच दिनवाले प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने ० पाँच दिनवाला परिवास दिया। मैने परिवासके बीचमे० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने० मूलसे-प्रतिकर्षण (दड) दिया। सो परिवास पूरा करके मा न त्व के योग्य हो बीचमे मैने जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की। मुझे कैसे करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ ! उदायी भिक्षुको बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये सघ मूलसे-प्रतिकर्षण दड करे। 8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार मू ल से प्र ति क र्ष ण (दड) करना चाहिये—०[1]

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको० एक आपत्तिके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण दड दे दिया। सघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(४) तीनो दोषोके लिये छ दिन-रातका मानत्त्व

उसने परिवास पूराकर ० भिक्षुओसे कहा—

---

[1] मानत्त्व देनेकी तरह यहाँ भी सू च ना और अ नु श्रा व ण पढना चाहिये, "छ रातका मानत्त्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढना चाहिये। चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

"आवुसो! मैंने० पाँच दिनवाले शुक्र-त्यागका एक अपराध किया।० सघने० (क) पाँच दिन का परिवास दिया।० (ख) मूलसे प्रतिकर्षण (दड) किया।० (ग) मूलसे प्रतिकर्षण (दड) किया। सो मैंने आवुसो! परिवास पूरा कर लिया। मुझे कैसा करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! उदायी भिक्षुको सघ तीनो आपत्तियोके लिये छ रात का मानत्व दे। और इस प्रकार देना चाहिये—०[1]। 9

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुको तीनो आपत्तियोके लिये छ रातवाला मानत्व दिया। सघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

(५) मानत्त्व पूरा करते फिर उसी दोषके करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षणकर छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्व पूरा करते बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।०।—

"तो भिक्षुओ! सघ उदायी भिक्षुको बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्व दे, और भिक्षुओ! इस प्रकार मूलसे-प्रतिकर्षण करे—०[2]। 10

"और भिक्षुओ! इस प्रकार छ रातवाला मानत्व देना चाहिये—०[3]।"

(६) फिर वही करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण कर छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्व पूराकर आह्वान के योग्य हो बीचमे जान बूझकर अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।०।—

"तो भिक्षुओ! सघ उदायी भिक्षुको बीचमें० अप्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षण कर, छ रातका मानत्व दे। और भिक्षुओ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्षण करे—०[2]।" 11

"और भिक्षुओ! इस प्रकार छ रातका मानत्व दे—०[3]।"

(७) दण्ड पूरा कर लेनेपर आह्वान

उन्होने मानत्व पूराकर भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो! मैंने० पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्र-त्यागकी एक आपत्ति की।० सघने० (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया।० (ख) मूलसे प्रतिकर्षण किया।० (ग) मूलसे प्रतिकर्षण किया।० (घ) मूलसे प्रतिकर्षण कर छ रातवाला मानत्व दिया। सो मैंने मानत्व पूरा कर लिया, अब मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्से यह बात कही।—

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३।

[2] याचनाके वक्त अबतककी आपत्तियोको जोळ मानत्त्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढना चाहिये। "छ रातवाला मानत्व"की जगह "मूलसे-प्रतिकर्षण" पढना चाहिये; वही पृष्ठ ३७२-३।

[3] याचनाके वक्त अवतककी आपत्तियोको जोळ मानत्त्व देनेकी तरह यहाँ भी 'सूचना' और 'अनुश्रावण' पढना चाहिए। वही पृष्ठ ३७२-३।

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुका आ ह्वा न करे। और भिक्षुओ! इस प्रकार आह्वान करना चाहिये। 12

"उस उदायी भिक्षुको संघके पास जाकर ० यह कहना चाहिये—'भन्ते! मैंने ० पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। ० संघने (क) पाँच दिनवाला परिवास दिया। ० (ख) मूलसे-प्रतिकर्पण किया। ० (ग) मूलसे-प्रतिकर्पण किया। ० (घ) मूलसे-प्रतिकर्पण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। ० (ङ) मूलसे-प्रतिकर्पण कर छ रातवाला मानत्त्व दिया। सो भन्ते! मै मानत्त्व पूरा कर संघसे आ ह्वा न की याचना करता हूँ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]

"ग धा र णा—'संघने उ दा यी भिक्षुको आह्वान दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

घ (१) पक्षभर छिपायेके लिये पक्ष भरका परिवास

उस समय आयुष्मान् उदायीने जानबूझकर शुक्रत्यागकी एक प क्ष प्र ति च्छ न्न[2] आपत्ति की। उन्होने भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो! मैंने ० शुक्रत्यागकी एक पक्ष प्रतिच्छन्न आपत्ति की है। मुझे कैसे करना चाहिये?"

भगवान्‌से यह बात कही—

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दे। 13

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—वह उदायी भिक्षु संघके पास जाकर ० ऐसा कहे—'० संघसे पक्षभरका परिवास माँगता हूँ।' तब चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[3]।

"ग धा र णा—'संघने उदायी भिक्षुको ० आपत्तिके लिये पक्षभरका परिवास दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(२) फिर पाँच दिन छिपाये उसी दोषके लिये मूलसे-प्रतिकर्पण कर समवधान-परिवास

उसने परिवास करते हुए बीचमें ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी एक आपत्ति की। भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो! मैंने शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की। ० संघने पक्षभरका परिवास दिया। परिवास करते हुए मैंने बीचमें ० पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की, अब मुझे कैसे करना चाहिये?" ०।— ।

"तो भिक्षुओ! संघ उदायी भिक्षुको पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान[4] परिवास दे। 14

"और भिक्षुओ! इस प्रकार मूलसे प्रतिकर्पण करना चाहिये—०[5]।

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। ख, पृष्ठ ३७३-७५ (याचनामें ङ् तककी बातोका समावेश करके)।

[2] दोष करके पक्ष भर छिपा रखना।

[3] सूचना और अनुश्रावणके लिये देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ("छ रातवाला मानत्व"की जगह 'पक्ष भरका परिवास' पढ़ना चाहिये)।

[4] देखो पृष्ठ ३७८, ३७९, ३८५, ३८८, ३९१, ३९२।

[5] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्व'के स्थानपर 'मूलसे-प्रतिकर्षण, रखकर)।

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास देना चाहिये—० ।"[1]

(३) फिर उसी आपत्तिके लिये मूलसे-प्रतिकषण दे समवधान-परिवास

उसने परिवास पूरा कर मानत्त्वके योग्य होनेपर वीचमे ० पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की । भिक्षुओसे कहा—

" ० सघने (क) ० पक्षभरका परिवास दिया । ० (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दिया । परिवास पूराकर मानत्त्वके योग्य होनेपर वीचमे मैंने पाँच दिनकी शुक्रत्यागकी एक प्रतिच्छन्न आपत्ति की । अव मुझे क्या करना चाहिये ?" ०।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको, वीचकी ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्तिके लिये मूलसे प्रतिकर्पणकर प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दे । और इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये—०[2] । और इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[2] ।" 15

(४) फिर वही दोषकरनेके लिये समवधान-परिवास दे˙˙˙रातका मानत्त्व

उसने मानत्त्वको पूरा करते समय वीचमे ०पाँच दिनके प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्ति की ।०।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको ० मूलसे प्रतिकर्पणकर, प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास दे, छ रातका मानत्त्व ० । 16

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्पण करना चाहिये—०[2] । ० इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[2] । ० इस प्रकार छ रातका मानत्त्व देना चाहिये—०[3] ।"

(५) फिर वही दाप न करनेके लिये मूलसे-प्रतिकर्पणकर, समवधान-परिवास दे छ रातका मानत्त्व

उसने मानत्त्व पूराकर आह्वानके योग्य होनेपर वीचमे ० पाँच दिनकी प्रतिच्छन्न शुक्रत्यागकी आपत्ति की । ० ।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुको ० मूलसे प्रतिकर्पणकर, प्रथमकी आपत्तिके लिये समवधान परिवास दे, छ रातका मानत्त्व दे । 17

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार ० मूलसे प्रतिकर्पण करना चाहिये—०[3] । ० इस प्रकार समवधान-परिवास देना चाहिये—०[3] । ० इस प्रकार छ रातका मानत्त्व देना चाहिये—०[3] ।"

उसने मानत्त्व पूराकर भिक्षुओसे कहा—

(६) मानत्त्व पूरा करनेपर आह्वान

"मैंने आवुसो ! ० एक आपत्ति की । ० सघने (क) पक्षभरका परिवास दिया । ० सघने (ख) मूलसे प्रतिकर्षणकर समवधान-परिवास दिया । ० सघने (ग) मूलसे प्रतिकर्पणकर समवधान-परिवास दिया । ० सघने (घ) मूलसे प्रतिकर्पणकर, ० समवधान-परिवास दे, ० छ रातका मानत्त्व दिया । ० सघने (ङ) मूलसे प्रतिकर्पणकर, ० समवधान-परिवास दे, ० छ रातका मानत्त्व दिया । सो मैंने मानत्त्व पूरा कर लिया, (अव) मुझे क्या करना चाहिये ?"

भगवान्से यह बात कही ।—

---

[1]देखो चुल्ल ३§१।क, पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्व'के स्थानपर 'समवधान परिवास' रखकर) ।

[2]देखो चुल्ल ३§१।क-ग, ८ पृष्ठ ३७३-७ (याचनामें पाँचो बारकी आपत्तियोको जोळकर) ।

[3]देखो ऊपर ।

"तो भिक्षुओ ! सघ उदायी भिक्षुका आह्वान करे। I8

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार आह्वान करना चाहिये—०[1] ।

"ग धा र णा—'सघने उदायी भिक्षुका ० आह्वान कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।"

शुक्र-त्याग समाप्त

§ २—परिवास दंड

(१) अनेक दिनोके छिपानेसे बहुतसे संघादिसेसके दोषोमे, छिपाये दिनके अनुसार-परिवास

क १—उस समय एक भिक्षुने स घा दि से सो की बहुतसी आपत्तियाँ की थी—(जिनमेसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, एक आपत्ति दो दिनकी०, एक आपत्ति तीन दिनकी०, एक आपत्ति चार दिनकी०, एक आपत्ति पाँच दिनकी०, एक आपत्ति छ दिनकी०, ० सात दिनकी०, ० आठ दिनकी०, ० नौ दिनकी०, (और) एक आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न थी। उसने भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो ! मैने बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है—(जिनमेसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न है, ०, (और) एक आपत्ति दस-दस दिनकी प्रतिच्छन्न है। मुझे कैसा करना चाहिये ?"

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उस भिक्षुको, उन आपत्तियोमे जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य स म व धा न - प रि वा स दे। I9

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—उस भिक्षुको सघके पास जा ० ऐसा 'कहना चाहिये—० जो आपत्ति दस दिनकी प्रतिच्छन्न है, उसके योग्य समवधान-परिवास माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]

"धा र णा—'सघने अमुक नामवाले भिक्षुको, उन आपत्तियोमे जो दस दिनकी प्रतिच्छन्न आपत्ति है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै (इसे) समझता हूँ' ।"

२—उस समय एक भिक्षुने स घा दि से सो की बहुतसी आपत्तियाँ की थी—(जिनमेसे) एक आपत्ति एक दिनकी प्रतिच्छन्न थी, दो आपत्तियाँ दो दिनकी प्रतिच्छन्न थी, तीन आपत्तियाँ तीन दिनकी०, चार आपत्तियाँ चार दिनकी०, पाँच आपत्तियाँ पाँच दिनकी०, छ आपत्तियाँ छ दिनकी०, सात आपत्तियाँ सात दिनकी०, आठ आपत्तियाँ आठ दिनकी०, नौ आपत्तियाँ नौ दिनकी०, (और) दस आपत्तियाँ दस दिनकी प्रतिच्छन्न थी। उसने भिक्षुओसे कहा—०।

भगवान्‌से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ ! सघ, दस (भिक्षुकी) आपत्तियोमे जो सबसे अधिक देर तक प्रतिच्छन्न रही है, उसके योग्य समवधान-परिवास दे। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—० समवधान-परिवास माँगता हूँ।०।० सघको सूचित करे—०[2] ।"

---

[1] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ।

[2] देखो चुल्ल ३§१। क, पृष्ठ ३७२-३ ('रातवाला मानत्त्व'की जगहपर 'समवधान-परिवास' पढना चाहिये) ।

३—उस समय एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक चुप रक्खी गई (=प्रतिच्छन्न) दो आपत्तियाँ की थी। उसको यह हुआ—'मैंने दो (तरहके) सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की है। चलूँ, सघसे, ० दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। उसने सघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगा। सघने उसे ० एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई—'मैंने ० दो आपत्तियाँ की हैं, और (पहिले) मुझे यह हुआ—० चलो सघसे दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास माँगूँ। ० सघने मुझे ० एक आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। तब परिवास करते वक्त मुझे शरम मालूम हुई। चलूँ, सघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ। उसने भिक्षुओसे कहा—०।

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! सघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे। 21

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—० दो मासका परिवास माँगता हूँ।०।० सघको सूचित करे—०[1]।

"ग धा र णा—'० सघने अमुक नामवाले भिक्षुको ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ"।

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास[2] करना चाहिये।" 22

४—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हो। ०[3]। सघने उसे ० दोनो आपत्तिके लिये दो मासका परिवास दे दिया। ०[1]। सघने उस भिक्षुको ० दूसरी आपत्ति के लिये भी दो मासका परिवास दे दिया। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 23

५—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हो। (वह उनमेसे) एक आपत्तिको जानता है, दूसरीको नही जानता। वह जिस आपत्तिको जानता है उसके लिये सघसे दो मासका परिवास माँगता है। सघ उस भिक्षुको ० दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। उसको ऐसा होता है—'मैंने ० दो आपत्तियाँ की है। (वह उनमेसे) एक आपत्तिको मैंने जाना, दूसरीको नही जाना। मैंने जिस आपत्तिको जाना, उसके लिये सघसे दो मासका परिवास माँगा। सघने मुझे ० दो मासका परिवास दे दिया। ०। परिवास करते वक्त (अब) मुझे दूसरी आपत्ति भी मालूम होती है। चलूँ, सघसे दो मास प्रतिच्छन्न दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगूँ।' वह सघसे ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास माँगता है। उसे सघ ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देता है। तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 24

६—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। (उसे उनमेसे) एक आपत्ति याद है, दूसरी याद नही है। उसे जो आपत्ति याद है, उसके लिये

---

[1]देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'की जगहपर 'दो मासका परिवास' रखकर)।

[2]परिवास पानेवाले भिक्षुके कर्तव्यके लिये देखो चुल्ल ३§१ पृष्ठ ३७२-८०।

[3]देखो चुल्ल ३§२।१ (३) पृष्ठ ३८० (३)।

सघसे दो मासका परिवास माँगता है। सघ ० दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त उसे दूसरी आपत्ति याद आती है। ०[1] । सघ उसे ० दूसरी आपत्तिके लिये भी दो मासका परिवास देता है। तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 25

७—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हैं। उसे (उनमेंसे) एकके बारेमें सन्देह नही है, दूसरेके बारेमें सन्देह है। ०[2] । ० तबसे लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 26

८—"यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास तक प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँकी हैं। (उनमेंसे) एकको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=चुप) रक्खी, दूसरीको अनजानसे। ०[2] । सघ ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत, आगमज्ञ०[2] सीख चाहनेवाला भिक्षु आवे । वह ऐसा पूछे—'आवुसो ! इस भिक्षुने क्या आपत्ति की, किसके लिये यह प रि वा स कर रहा है ? वह ऐसा कहे—'आवुस ! इस भिक्षुने ० दो आपत्तियाँ की। एकको जानबूझ-कर प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको अनजानसे। ०[2] । सघने ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास दिया है। आवुस ! उन दो आपत्तियोको इस भिक्षुने किया है उन्हीके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो ! जो आपत्ति कि जानकर प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना धा र्मि क (=न्याय युक्त) है, (किन्तु) जो आपत्ति अनजाने प्रतिच्छन्न रक्खी गई, उसके लिये परिवास देना अ-धार्मिक (=अन्याय) है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नही, आवुसो ! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्त्व देने लायक (=मानत्त्वार्ह) है। 27

९—"यदि भिक्षुओ ! ० एक आपत्ति याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खी गई, दूसरी न याद रहते। वह सघसे ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगता है। सघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०,[3] आवुसो ! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है। 28

१०—"यदि भिक्षुओ ! ० एक आपत्तिको सदेह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा, दूसरीको सदेहमें। वह सघसे ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगता है । सघ ० देता है। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आता है। ०[3] आवुसो ! यह भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है।" 29

ख १—उस समय एक भिक्षुने दो सघादिसेसोकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की थी। उसको ऐसा हुआ—० मैंने ० दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की है। चलूँ सघसे ० एक मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगूँ।' उसने सघसे ० दो मास प्रतिच्छन्न एक आपत्तिके लिये एक मासका परिवास माँगा। सघने उसे ० एक मासका परिवास दे दिया। परिवास करते वक्त उसे लज्जा आई—'०[4] । चलूँ सघसे मैं दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।' उसने भिक्षुओसे कहा—०।

भगवान्से यह बात कही ।—

"तो भिक्षुओ ! सघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनो आपत्तियोके लिये बाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। 30

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (परिवास) देना चाहिये—०[5]।

---

[1] ऊपर (४) की बात यहाँ भी समझो। [2] देखो पृष्ठ ३८०। [3] ऊपर (८) जैसा पाठ। [4] देखो ऊपर पृष्ठ ३८० (३) की तरह।
[5] देखो पृष्ठ ३७२-३ ('छ रात वाला मानत्त्व' की जगह 'एक मासका परिवास' रखकर)।

"ग धा र णा—संघने अमुक नामवाले भिक्षुको ० दूसरे मासका भी परिवास दिया। संघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको पहिले (मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये।" 31

२—"यदि भिक्षुओ! एक भिक्षुने दो संघादिसेसोकी दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की हो। उसको ऐसा हो—'० चलूँ संघमे दोनो आपत्तियोके लिये दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।—

"तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको दो मास प्रतिच्छन्न दोनो आपत्तियोके लिये वाकी दूसरे मासका भी परिवास दे। और ० भिक्षुको पहिले (परिवास दिये मास)को लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये।" 32

३—"० एक मासको जानता हो, दूसरे मासको नही ०[1]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी मालूम हो। '० चलूँ संघमे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 33

४—"० एक मासको याद रखता हो, दूसरे मासके बारेमे नही ०[2]। परिवास करते वक्त उसे दूसरा मास भी याद आये।—० चलूँ संघमे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 34

५—"० एक मासके बारेमे सन्देह हो, दूसरे मासके बारेमे नही ०।[3] परिवास करते वक्त वह दूसरे मासके बारेमे भी सन्देह-रहित हो जाये।—० चलूँ, संघमे ० दूसरे मासका भी परिवास माँगूँ।०।०।० पहिलेको लेकर दो मास तक परिवास करना चाहिये। 35

६—"० एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको अनजानमे। वह संघसे ० दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास मागे। संघ उसे दो मास प्रतिच्छन्न दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास दे। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ०[4] भिक्षु आवे। वह ऐसा पूछे—'आवुसो! इस भिक्षुने क्या आपत्ति की, किसके लिये यह परिवास कर रहा है?' वह ऐसा कहे—'आवुस! इस भिक्षुने ० दो मास प्रतिच्छन्न दो आपत्तियाँ की। इसने एक मासको जानबूझकर प्रतिच्छन्न (=छिपा) रक्खा, दूसरेको अनजान से। ०" संघने दो मासका परिवास दिया है। आवुस! उन आपत्तियोको इस भिक्षुने किया है, उन्हींके लिये यह परिवास कर रहा है।' वह ऐसा कहे—'आवुसो! जिस मासको जान कर उसने प्रतिच्छन्न किया, उसके लिये परिवास देना धार्मिक है, (किन्तु) जिस मासको अनजाने प्रतिच्छन्न किया, उसके लिये परिवास देना अधार्मिक है। अधार्मिक होनेसे (परिवास देना) उचित नही, आवुसो! (यह) भिक्षु एक मासके लिये मा न त्त्व देने लायक है।' 36

७—"० एक मासके याद रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको न याद रहनेसे। वह संघसे दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगे। ०[5]। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आवे। ०[5], आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मा न त्त्व देने लायक है। 37

८—"० एक मासको सन्देह न रहते प्रतिच्छन्न रक्खा गया हो, दूसरेको सन्देह रहते। वह संघसे दोनो आपत्तियोके लिये दो मासका परिवास माँगे। ०[6]। परिवास करते वक्त दूसरा बहुश्रुत ० भिक्षु आवे। ०[6], आवुसो! (यह) भिक्षु एक आपत्तिके लिये मानत्त्व देने लायक है।" 38

---

[1] देखो ऊपर (२) और पृष्ठ ३८० (५)।
[2] देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८०-१ (६)। [3] देखो ऊपर (३) और पृष्ठ ३८१।
[4] देखो पृष्ठ ३८१ (८)। [5] देखो ऊपर (६) और पृष्ठ ३८१ (९)।
[6] देखो ऊपर और पृष्ठ ३८१ (१०)।

(२) शुद्धान्त-परिवास

उस समय एक भिक्षुने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की थीं। वह आपत्तिके पर्यन्त (=परिमाण, संख्या)को नहीं जानता था, रातके परिमाणको नहीं जानता था। आपत्तिके परिमाणको याद न रखता था, रातके परिमाणको याद न रखता था। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता था, रातके परिमाणमें सन्देह रखता था। उसने भिक्षुओंसे कहा—

"आवुसो! मैंने बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की हैं।० आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ, रातके परिमाणमें सन्देह रखता हूँ। मुझे कैसे करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही।—

"तो भिक्षुओ! संघ उस भिक्षुको शुद्धान्त परिवास दे। 39

"और भिक्षुओ! इस प्रकार (शुद्धान्त-परिवास) देना चाहिये। वह भिक्षु संघके पास जा ०[1] ऐसा कहे—० मैं संघसे उन आपत्तियोंके लिये शुद्धान्त-परिवास माँगता हूँ। दूसरी बार भी ०। तीसरी बार भी०। (तब) चतुर समर्थ भिक्षु संघको सूचित करे—०[1]।

"ग धा र णा—'संघने अमुक नामवाले भिक्षुको उन आपत्तियोंके लिये शु द्धा न्त - प रि वा स दे दिया। संघको पसंद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ'।"

(३) शुद्धान्त-परिवास देने योग्य

"भिक्षुओ! इस प्रकार शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! किसको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये?—(१) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, (जिन रातोंमें उससे आपत्ति हुई उन) रातोंके परिमाण (=संख्या)को नहीं जानता। ० नहीं याद रखता ०। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह रखता है, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (२) आपत्तिके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको नहीं जानता। आपत्तिके परिमाणको याद रखता है, रातके परिमाणको याद नहीं रखता। आपत्तिके परिमाणमें सन्देह नहीं रखता, रातके परिमाणमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (३) आपत्तिके परिमाणको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है किसी किसीको नहीं जानता। ० नहीं याद रखता, ० किसी किसीको नहीं याद रखता। ० सन्देह रखता है, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रहित है, किसी किसीमें सन्देह रखता है। ऐसेको शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (४) आपत्तिके परिमाणको जानता है रातोंमें किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं। ० याद रखता है, ० किसी किसीको नहीं। ० सन्देह नहीं रखता, ० किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। (५) आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं जानता, रातोंमें किसी किसीको जानता है, किसी किसीको नहीं। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीको याद रखता ०। आपत्तियोंमेंसे किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता, रातोंमें किसी किसीके बारेमें सन्देह रखता है, किसी किसीके बारेमें सन्देह नहीं रखता। (ऐसेको) शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ! ऐसे शुद्धान्त-परिवास देना चाहिये।" 40

(४) परिवास देने योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ! कैसे प रि वा स देना चाहिये?—(१) आपत्तियोंके परिमाणको जानता है, रातके परिमाणको जानता है। ० याद रखता है ०।०सन्देह-रहित होता है। (२) आपत्तिके परिमाणको नहीं

---

[1] देखो चुल्ल ३§१।क पृष्ठ ३७२-३ ('छ रातवाला मानत्त्व'की जगह 'शुद्धान्त-परिवास' रखकर)।

जानता, रातके परिमाणको जानता है। ० नही याद रखता, ० याद रखता है। ० निस्सन्देह होता है, ० सन्देह-युक्त होता है। (३) आपत्तिके परिमाणमे कुछ जानता है कुछ नही जानता, रातके परिमाणको जानता है। ० कुछ नही याद रखता, ० याद रखता है। ० कुछ सन्देह रखता है, ० सन्देह नही रखता। (ऐसेको) परिवास देना चाहिये। भिक्षुओ। इस प्रकार परिवास देना चाहिये।" 41

परिवास-समाप्त

§३—दुबारा उपसम्पदा लेनेपर पहिलेके बचे परिवास आदि दंड

(१) शेष परिवास

(१) उस समय एक भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड चला गया। उसने फिर आकर भिक्षुओसे उपसम्पदा माँगी। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यदि कोई भिक्षु परिवास करते वक्त भिक्षु वेष छोड चला गया हो, और वह फिर आकर भिक्षुओंसे उपसम्पदा माँगे। भिक्षु वेष छोड गये के लिये भिक्षुओ! परिवास नही रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया, वह (भी) ठीक, बाकी (समय)के लिये परिवास करना चाहिये। 42

(२) "० परिवास करते वक्त (भिक्षुपन छोड) श्रामणेर बन जाये। श्रामणेरके लिये भिक्षुओ! परिवास नही रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये।०[1]। 43

(३) "० परिवास करते पागल हो जाये। पागलको ० परिवास नही रहता। यदि फिर उसका पागलपन हट जाये, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। ०[1]। 44

(४) "० परिवास करते विक्षिप्त हो जाये। विक्षिप्त-चित्तको परिवास नही रहता। यदि वह फिर अविक्षिप्त चित्त हो, तो उसे वही पहिला परिवास देना चाहिये। ०[1]। 45

(५) "० परिवास करते वे द न ट्ट (=वदहवास) हो जाये। ०[1]। 46

(६) "० परिवास करते आपत्तिके न देखनेसे उ त्क्षि प्त क[2] हो जाये। ०[1]।" 47

(७) "० परिवास करते आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये। ०[1]। 48

(८) "० परिवास करते बुरी दृष्टिके न छोडनेसे उत्क्षिप्तक[2] हो जाये। ०[1]।" 49

(२) मूलसे-प्रतिकर्षण

(९) भिक्षुओ! कोई भिक्षु मूलसे-प्रतिकर्षणके योग्य हो भिक्षु-वेष छोड चला जाये, और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे। भिक्षु-वेष छोडकर चले गयेको मूलसे-प्रतिकर्षण नही रहता। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसे वही परिवास देना चाहिये। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है, उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये। 50

(१०) "० श्रामणेर हो जाये, ०[3]। 51

(११) "० पागल हो जाये०[3]। 52

(१२) " विक्षिप्त-चित्त हो जाये०[3]। 53

(१३) "० वेदनट्ट हो जाये०[3]। 54

(१४) "० आपत्तिके न देखनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3]। 55

---

[1] ऊपर (१) जैसा। [2] देखो महावग्ग ९§४।५ पृष्ठ ३१४। [3] ऊपर (१) की भाँति।

(१५) "० आपत्तिके प्रतिकार न करनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] । 56

(१६) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[1] ।" 57

(३) मानत्त्व

(१७) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये और वह फिर आकर उपसम्पदा लेना चाहे ।० भिक्षु-वेष छोळ गयेको मानत्त्व नही। यदि वह फिर उपसम्पदा लेना चाहे, तो उसके लिये वही पहिला परिवास हो। पहिलेका दिया परिवास ठीक है, जितना परिवास पूरा हो गया वह (भी) ठीक है। उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 59

(२४) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[2] ।" 60

(४) मानत्त्वचरण

(२५) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु मा न त्त्व का आचरण करते भिक्षु-वेष छोळ चला जाये, ०[2] । 67

(३२) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये० ।" 68

(५) आह्वान

(३३) "भिक्षुओ ! यदि कोई भिक्षु आह्वानके योग्य हो भिक्षु-वेष छोळ चला जाये, ०[2] । 69

(४०) "० बुरी दृष्टिके न छोळनेसे उत्क्षिप्तक हो जाये०[3] ।" 76

चौवालीस समाप्त

§४—दंड भोगते समय नये अपराध करनेपर दंड

क. परिवास—

(१) मूलसे-प्रतिकर्पण

(१) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमे अ-प्रतिच्छन्न[4] परिमाण-वाली वहुतसी स घा दि से स की आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये ।" 77

(२) "० प्रतिच्छन्न (और) परिमाणवाली बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे प्रतिकर्पण करना चाहिये, प्रतिच्छन्नोके आपत्तियोके अनुसार प्रथम आपत्तिके लिये स म व धा न प रि वा स देना चाहिये । 78

(३) "० प्रतिच्छन्न या अ-प्रतिच्छन्न (किन्तु) परिमाणवाली बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्पण करना चाहिये, ०[4] । 79

(४) "० अ-प्रतिच्छन्न (और) अ-परिमाण०[5] । 80

(५) "० अपरिमाण (और) प्रतिच्छन्न०[5] । 81

(६) "० अपरिमाण, प्रतिच्छन्न भी अ-प्रतिच्छन्न भी० । 82

(७) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) अप्रतिच्छन्न०[5] । 83

(८) "० परिमाणवाली भी अ-परिमाण भी (किन्तु) प्रतिच्छन्न०[5] । 84

(९) "० परिमाणवाली भी, अ-परिमाण भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[5] ।" 85

---

[1] ऊपर (१) की भाँति । [2] ऊपर आये मूलसे-प्रतिकर्षणकी भाँति ।
[3] देखो ऊपर (३) मानत्त्व । [4] दोषको छिपाना । [5] देखो ऊपर (१) ।

(२) मानत्त्वार्ह

(१०) "यदि भिक्षुओ ! एक भिक्षु मानत्त्वके योग्य होते समय बीचमे अप्रतिच्छन्न (=प्रकट), परिमाणवाली बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करे, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये ०[1] । 99

(१६) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[1] ।" 103

(३) मानत्त्वचारिक

(१७) "० एक भिक्षु मानत्त्वका आचरण करते समय बीचमे०[1] । 112

(२८) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[2] ।" 121

(४) आह्वानार्ह

(२९) "० एक भिक्षु आह्वानके योग्य होते (=आह्वानार्ह) समय बीचमे०[2] । 130

(३७) "० परिमाणवाली भी, अपरिमाणवाली भी, प्रतिच्छन्न भी, अप्रतिच्छन्न भी०[2] ।" 139

छत्तीस समाप्त

ख मानत्त्व—

(१) गृहस्थ बन जाना

क (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु बहुतसी स घा दि से स की आपत्तियोको करके (उन्हे) न छिपा गृहस्थ बन जाता है। वह फिर उ प स म्प दा पाकर उन आपत्तियोका प्रतिच्छादन नही करता, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको मानत्त्व देना चाहिये । 140

(२) "० प्रतिच्छादन न कर भिक्षु-वेष छोळ चला जाता है । वह फिर उपसम्पदा पाकर उन आपत्तियोका प्रतिच्छादन करता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्तिसमुदायमे प्रतिच्छन्न (आपत्तियो)की भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 141

(३) "० प्रतिच्छादनकर० । ० उन आपत्तियोको नही प्रतिच्छादन करता, ० परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 142

(४) "० प्रतिच्छादन कर० । ० उन आपत्तियोको प्रतिच्छादन करता है, ० उस भिक्षुको पहिलेके भी और पीछेके भी आपत्ति-स्कधमे प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 143

(५) "० प्रतिच्छादन कर भी, अ-प्रतिच्छादन कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोका फिर प्रतिच्छादन नही करता, पहिले अ-प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोका अ-प्रतिच्छादन करता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्ति-स्कधमे प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 144

(६) "० प्रतिच्छादन कर भी, अप्रतिच्छादन कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियोका फिर प्रतिच्छादन नही करता, पहिले प्रतिच्छादित न की गई आपत्तियोका अब प्रतिच्छादन करता है, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अबके भी आपत्ति-समूहमे प्रतिच्छन्नकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 145

---

[1] परिवासकी तरह यहाँ भी समझो ।

[2] पृष्ठ ३८५ में परिवास (१-९) की भाँति यहाँ भी समझो ।

(७) "० प्रतिच्छादन कर भी, अ-प्रतिच्छानद कर भी० । पहिले प्रतिच्छादित की गई आपत्तियो का अब भी प्रतिच्छादन करता है, पहिले अ-प्रतिच्छादित आपत्तियोका अब भी प्रतिच्छादन नही करता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी और अबके भी आपत्ति-स्कधमे प्रतिच्छादनकी भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 146

(८) "० छिपाकर भी, न छिपाकर भी० । पहिले छिपाई गई आपत्तियोको भी अब छिपाता है, पहिले वे-छिपाई० को अब छिपाता है। ०[1] परिवास दे मानत्त्व देना चाहियें। 147

ख (९) "० भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। (उनमे) किन्ही किन्ही आपत्तियोको जानता है, किन्ही किन्हीको नही जानता । जिन आपत्तियोको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता, उन्हे नही छिपाता । गृहस्थ बन फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको उसने पहिले जानकर छिपाया था, उन्हे अब वह जानकर नही छिपाता, जिन आपत्तियोको पहिले न जान नही छिपाया था, उन्हे अब जानकर (भी) नही छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके दोषसमूह (=आपत्ति-स्कध)मे छिपाईकी भाँतिके लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 148

(१०) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है, उनको छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता, उनका छादन नही करता। ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छादन करता था, अब जानकर उनका छादन नही करता, जिन आपत्तियोको पहिले नही जानकर उनको नही छिपाता था, उन आपत्तियोको अब जानकर छिपाता है। तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके भी अबके भी आपत्ति-स्कधोमे प्रतिच्छन्न (=छिपाई)की भाँति परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 149

(११) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है उन्हे छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे नही छिपाता । ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हे अब (भी) जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोको पहिले नही जान नही छिपाता था, उन्हे अब जानकर नही छिपाता। ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। 150

(१२) "०[2] जिन आपत्तियोको जानता है, उन्हे छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे नही छिपाता। ०[2] फिर उपसम्पदा पा जिन आपत्तियोको पहिले जानकर छिपाता था, उन्हे अब भी जानकर छिपाता है, जिन आपत्तियोको पहिले न जानकर नही छिपाता था, उन्हे अब जानकर छिपाता है। ०[2] परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये । 151

ग (१३) "०[2] (उनमे) किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद रखता है, और किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद नही रखता। जिन आपत्तियोको याद रखता है उनका छादन करता है, जिन आपत्तियोको नही याद रखता, उनका छादन नही करता। वह भिक्षु-वेष छोळ फिर भिक्षु बन, जिन आपत्तियोको उसने पहिले यादकर छिपाया था, उन्हे अब यादकर नही छिपाता, जिन आपत्तियोको पहिले याद न होनेसे नही छिपाता था उन्हे अब यादकर भी नही छिपाता । तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको पहिलेके आपत्ति-स्कध (=आपत्ति-पुज)मे छिपाईकी भाँति के लिये परिवास दे मानत्त्व देना चाहिये। ०[2] 154

(१६) "०[3] जिन आपत्तियोको याद रखता है, उन्हे छिपाता है०[4] । 157

---

[1]ऊपर जैसा पाठ। [2]देखो ऊपर (९) ।

[3]ऊपर (१०), (११) की भाँति ("जानने"के स्थानमें "याद करवा" रखकर) ।

[4]देखो ऊपर (१२) ।

घ (१७) "०[1] उनमे किन्ही किन्ही आपत्तियोमे सन्देह नही रखता है, किन्ही किन्ही आपत्तियोमे सन्देह रखता है०[1] । 158

(२०) "०[1] जिन आपत्तियोमे सन्देह नही रखता, उन्हे छिपाता है०[1] ।" 161

(२) श्रामणेर बन जाना

क (२१) "०[2] श्रामणेर बन जाता है०[2] (४०) "०[2] जिन आपत्तियोमे सन्देह नही रखता, उन्हे छिपाता है०[2] ।" 181

(३) पागल हो जाना

क (४१) "०[2] पागल हो जाता है०[2] ।" 101

(४) विक्षिप्त-चित्त होना

क (६१) "०[2] विक्षिप्त-चित्त हो जाता है०[2] ।" 121

(५) वेदनट्ट (=बदहवास) हो जाना

क (८१) "०[2] वेदनट्ट हो जाता है०[2] । 141

(१००) "०[2] जिन आपत्तियोमे सन्देह नही रखता, उन्हे छिपाता है०[2] ।" 161

सौ मानत्त्व समाप्त

§५—मूलसे-प्रतिकर्षण दण्डमें शुद्धि

क परिवास—

(१) गृहस्थ होना

क (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमे बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियोको कर बिना छिपाये, गृहस्थ हो जाता है । वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोको नही छिपाता, तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये । 162

(२) "०[3] बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता हे । वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोको छिपाता है, तो उस भिक्षुको मूलसे प्रतिकर्षण करना चाहिये । इसकी छिपाई आपत्तियोकी भाँति पहिलेकी आपत्तिके लिये समवधान-परिवास देना चाहिये । 163

(३) "०[3] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है । वह फिर भिक्षु वन (यदि) उन आपत्तियोको नही छिपाता, तो ०[4] । 164

(४) "०[4] छिपाकर गृहस्थ हो जाता है । वह फिर भिक्षु बन (यदि) उन आपत्तियोको छिपाता है, तो०[4] । 165

ख (५) "०[5] छिपाकर भी, बिना छिपाये भी गृहस्थ हो जाता है । वह फिर भिक्षु वन, पहिले छिपाई आपत्तियोको अव नही छिपाता, पहिले नही छिपाई आपत्तियोको अब नही छिपाता, तो०[5] । 166

---

[1] ऊपर पृष्ठ ३८७ (९-१२) की भाँति "जानने न जानने" के स्थानमें "न सन्देह करना, सन्देह करना" रख । [2] देखो ऊपर पृष्ठ ३८७-८८ (१-२०) की भाँति । [3] ऊपरकी तरह पाठ । [4] देखो ऊपर (२) । [5] देखो ऊपर २ (५)।

(६) "०[1] भिक्षु बन पहिले छिपाई आपत्तियोको अब नही छिपाता, पहिले न छिपाई आपत्तियोको अब छिपाता है, तो०[2] । 167

(७) "०[1] भिक्षु बन, पहिले छिपाई आपत्तियोको अब (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई आपत्तियोको अब (भी) नही छिपाता, तो०[2]। 168

(८) "०[2] भिक्षु बन, पहिले छिपाई आपत्तियोको अब (भी) छिपाता है, पहिले न छिपाई अपात्तियोको अब छिपाता है, तो०[2] ०। 169

ग (९) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमे बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियोको करता है। (उनमें) किन्ही किन्ही आपत्तियोको जानता है किन्ही किन्ही आपत्तियोको नही जानता। जिन आपत्तियोको जानता है उन्हे छिपाता है, जिन आपत्तियोको नही जानता उन्हे छिपाता है। वह गृहस्थ बन फिर भिक्षु हो,जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था,०[3] । तो०[2]। 170

(१०) "०[3] परिवास करते समय०[4] जिन आपत्तियोको जानता है०[4] ।० फिर भिक्षु हो, जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[2] । तो०[4] । 171

(११) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोको जानता है०[4] । ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[5] । तो०५ । 172

(१२) "०[3] परिवास करते समय०[3] जिन आपत्तियोको जानता है०[5] । ० फिर भिक्षु हो जिन आपत्तियोको वह पहिले जानकर छिपाता था, ०[6] । तो० [7] । 173

घ (१३) "०[8] उनमे किन्ही किन्ही आपत्तियोको याद रखता है, ०[9] । 174

ङ (१७–२०) "०[10] उनमे किन्ही किन्ही आपत्तियोमे सन्देह नही रखता,०[10] ।" 175

(२) श्रामणेर होना

क (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु परिवास करते समय बीचमे बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियोको कर बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है, ०[10] ।" 192

(३) पागल होना

क (१–२०) "० पागल हो जाता है, ०[10] ।" 209

(४) विक्षिप्त होना

क (१–२०) "० विक्षिप्त हो जाता है, ०[10] ।" 226

(५) वेदनट्ट होना

क (१–२०) "० वेदनट्ट हो जाता है, ०[10] ।" 243

ख. मानत्त्व (१-१००)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–१००) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु मानत्त्वके योग्य हो बीचमे बहुतसी सघादि-

---

[1]देखो ऊपर पृष्ठ ३८८ (२) । [2]देखो पृष्ठ ३८२ (९) । [3]देखो पृष्ठ ३८७ (१०) । [4]देखो ऊपर (९) । [5] देखो पृष्ठ ३८७ (१०) । [6]देखो पृष्ठ ३८८ (१८) । [7]देखो पृष्ठ३८७ (१२) । [8]ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह "याद करके" रखकर) । [9]देखो ऊपर (९) । [10]ऊपर (९-१२) की भाँति ("जानने"की जगह सन्देह न करना" रखकर) ।

सेसकी आपत्तियोको कर, बिना छिपाये गृहस्थ हो जाता है। वह फिर भिक्षु बन यदि उन आपत्तियोको नही छिपाता, तो उस भिक्षुका मूलसे-प्रतिकर्षण करना चाहिये। ०[1] ।' 343

ग मानत्त्व-चारिक (१-१००)—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–२००) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु मानत्त्वका आचरण करते बीचमे०[1] ।" 443

घ आह्वानार्ह १-१००—

(१) गृहस्थ होना

(क) (१–२०) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षु आह्वानके योग्य हो बीचमे०[2] ।" 543

ङ. परिमाण, अपरिमाण—

१—(क) (१–२०) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है जिनमे परिमाणवालीको छिपा और परिमाण रहितको बिना छिपाये, एक नामवालीको बिना छिपाये, नामवालीको बिना छिपाये, सभागको बिना छिपाये, विसभाग (=अ-समना)को बिना छिपाये, व्यवस्थित (=अलगवाली)को बिना छिपाये, स म्भि न्न (=मिश्रित)को बिना छिपाये, गृहस्थ हो जाता है। ०। 643

२—(क १–२०) "०[2] श्रामणेर हो जाता है०। 743

३—(क १–२०) "० पागल हो जाता है०। 843

४—(क १–२०) "० विक्षिप्त हो जाता है०। 943

५—(क १–२०) "० वेदनट्ट हो जाता है०। 1043

च दो भिक्षुओके दोष—

(१) "दो भिक्षुओने सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघादिसेसको सघादिसेस करके देखते है। (उनमे) एक (आपत्तिको) छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है, उसे दुक्कटकी दे श ना (=Confession) करवानी चाहिये, फिर छिपायेकी भाँति परिवास दे, दोनोको मानत्त्व देना चाहिये। 1044

(२) "दो भिक्षुओने सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघादिसेसमे सन्देहयुक्त होते है। (उनमे) एक छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है, उससे दुक्कटकी देशना करवानी चाहिये, फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे, दोनोको मानत्त्व देना चाहिये। 1045

(३) "०[2] सघादिसेसमे मिश्रित (=मि श्र क) दृष्टि रखनेवाले होते है ०[2] । 1046

(४) "दो भिक्षुओने मिश्रक आपत्तियाँ की है, वह मिश्रकको सघादिसेसके तौरपर देखते है। ०। 1047

(५) "दो भिक्षुओने मिश्रक आपत्तियाँ की है। वह मिश्रकको मिश्रकके तौरपर देखते है। ०[3] । 1048

(६) "दो भिक्षुओने शु द्ध क आपत्तियाँ की है। वह शुद्धकको सघादिसेसके तौरपर देखते है। ०[4] । 1049

---

[1] ऊपर (९-१२)की भाँति ("जानने"की जगह "याद करके" रखकर)।

[2] देखो पृष्ठ ३८८-८९ (१-२०) गृहस्थ होनाकी भाँति।

[3] देखो पृष्ठ ३८८-८९ परिवासकी भाँति (१०० भेद)। [4] देखो ऊपर (१)।

(७) "दो भिक्षुओने शुद्धक आपत्तियाँ की है। वह शुद्धकके तौरपर देखते है। ०[1] दोनोको धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।। 1050

छ दो भिक्षुओकी धारणा—

(१) "दो भिक्षुओने सघादिसेसका अपराध किया है। वह (उस) सघादिसेसको सघादिसेसके तौरपर देखते है। एक कह देना चाहता है, दूसरा नही कहना चाहता। वह पहिले याम (=४ घटा)मे भी छिपाता है, दूसरे याम भी छिपाता, तीसरे याम भी छिपाता है, तो लाली (=अरुण) उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। जो छिपाता है, उससे दुक्कटकी दे श ना करवानी चाहिये, फिर छिपायेके अनुसार परिवास दे, दोनोको मानत्त्व देना चाहिये। 1051

(२) "०[2] सघादिसेसके तौरपर देखते है। वह प्रकट करनेके लिये जाते है। एकको रास्तेमे न प्रकट करनेका अमरख(=म्रक्षधर्म) उत्पन्न हो जाता है। वह पहिले याम भी छिपाता है, दूसरे याम भी०, तीसरे याम भी०। (तो) लाली उग आनेपर आपत्ति छिपाई कही जायेगी। ०[3] 1052

(३) "० सघादिसेसके तौरपर देखते है। वह दोनो पागल हो जाते है। पीछे भिक्षुपन छोळ एक (अपने अपराधको) छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। जो छिपाता है, ०[3]। 1053

(४) "० वह दोनो प्रातिमोक्ष-पाठके वक्त ऐसा कहते है—'इसी वक्त हमे मालूम हुआ, कि यह धर्म (=काम) भी सुत्त (=वुद्धोपदेश, विनय)मे आया है, सुत्तसे मिला है, प्रति आधे मास (प्रातिमोक्ष-पाठके वक्त) पाठ (=उद्देश) किया जाता है। (तव) वह सघादिसेसको सघादिसेसके तौरपर देखते है। (उनमे) एक छिपाता है, दूसरा नही छिपाता। ०[4]।" 1054

§६—अशुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

क (१) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली, अपरिमाणवाली, एक नामवाली, अनेक नामवाली भी, सभागवाली (=समान)भी वि-सभागवाली भी, व्यवस्थित (=अलगवाली)भी, सम्भिन्न (=मिलीजुली) भी वहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघसे उन आपत्तियोके लिये स म-व धा न परिवास माँगता है। सघ उसे० समवधान-परिवास देता है। वह परिवास करते समय बीचमे वहुतसी परिमाणवाली न-छिपाई सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह सघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। सघ उसे धार्मिक(=न्याययुक्त)=अ-कोप्य, स्थानके योग्य कर्म (=फैसले)से बीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण करता है, धर्म (=नियम) से समवधान-परिवास देता हे, अ-धर्म (=नियमविरुद्धसे) मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियो (=अपराधो)से शुद्ध नही है। 1055

(२) "भिक्षुओ! यदि एक भिक्षुने ०[5] वहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह सघसे उन आपत्तियोके लिये समवधान-परिवास माँगता है। ०[5] वह सघसे वीचकी (की गई) आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। सघ उसे धार्मिक=अकोप्य, स्थानके योग्य कर्मसे वीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे प्रतिकर्षण करता हे, धर्मसे समवधान-परिवास होता है, अधर्मसे मानत्त्व देता है, अधर्मसे आह्वान करता है। तो भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियोसे शुद्ध नही है। 1056

(३) "०[5] वीचमे बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी न छिपाई भी सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। ०[5]। 1057

---

[1]देखो ऊपर (१)। [2]ऊपर (१) की भाँति। [3]देखो ऊपर(१)।
[4]देखो ऊपर (७ और १)। [5]देखो ऊपर (१)।

(४) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित न छिपाई आपत्तियाँ करता है। ०[1] । 1058

(५) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई आपत्तियाँ करता है। ०[1] । 1059

(६) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई भी न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है ०[1] । 1060

(७) "०[2] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी न छिपाई आपत्तियाँ करता है०[2] । 1061

(८) "०[2] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी अ-परिमाणवाली भी, छिपाई आपत्तियाँ करता है०[2] । 1062

(९) "०[2] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई भी, न छिपाई भी आपत्तियाँ करता है। ०[2] । 1063

(क) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

ख (१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली, अपरिमाणवाली०[3] बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की है । वह संघसे उन आपत्तियोके लिये समवधान-परिवास माँगता है। संघ उसे० समवधान-परिवास देता है । वह परिवास करते बीचमे बहुतसी परिमाणवाली, न छिपाई संघादिसेस की आपत्तियाँ करता है। ०[3] । 1064

(२) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली छिपाई०। [3]1065

(३) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी, न छिपाई भी०[3]। 1066

(४) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई०[3] । 1067

(५) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई०[3] । 1068

(६) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी, न छिपाई भी,०[3] । 1069

(७) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी , परिमाण-रहित भी, न छिपाई०[3] । 1070

(८) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई०[3] । 1071

(९) "०[3] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी, छिपाई भी, न छिपाई भी०[3] ।" 1072

(ख) नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें अशुद्धियाँ समाप्त

§७–शुद्ध मूलसे-प्रतिकर्षण

(१) "भिक्षुओ ! यदि एक भिक्षुने परिमाणवाली अपरिमाणवाली०[3] बहुतसी संघादिसेसकी आपत्तियाँ की है। वह संघसे उन आपत्तियोके लिये समवधान-परिवास माँगता है । संघ उसे० समवधान-परिवास देता है, वह परिवास करते बीचमे बहुतसी परिमाणवाली न छिपाई संघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है। वह संघसे बीचकी (की गई) आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण माँगता है। संघ उसे अ ध र्म से (=नियम-विरुद्ध)=कोप्य, स्थानके अयोग्य कर्म (=फैसले)से बीचकी आपत्तियोके लिये मू ल से प्र ति क र्ष ण करता है, अधर्मसे समवधान-परिवास देता है। वह 'यह परिवास है'—जानते हुए (भी) बीचमे परिणामवाली और न छिपाई बहुतसी संघादिसेस की आपत्तियाँ

---

[1] देखो ऊपर (१) ।

[2] देखो पृष्ठ ३९१ (१ और ९) । देखो ऊपर (१) ।

[3] देखो पृष्ठ ३९१ (१ और ९) ।

करता है। वह उसी स्थिति (=भूमि)मे रहते पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोको याद करता है। वादवाली आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोको याद करता है। उसको ऐसा होता है—'मैने परिमाणवाली० बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की। ० सघने मुझे० समवधान-परिवास दिया। मैंने परिवास करते बीचमें बहुतसी परिमाणवाली० आपत्तियाँ की। ० सघने अधर्म० बीचकी आपत्तियोके लिये मूलसे-प्रतिकर्षण किया, अधर्मसे समवधान परिवास दिया। (तब) मैंने 'यह परिवास है'—जानते हुए बीचमे परिमाणवाली और न छिपाई बहुतसी सघादिसेसकी आपत्तियाँ की। सो मुझे उसी भूमिमे रहते पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियाँ याद है, वादवाली आपत्तियोके बीचकी आपत्तियाँ याद है। चलूँ सघसे पहिलेकी आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोके लिये, और वाद वाली आपत्तियोके बीचकी आपत्तियोके लिये भी, धार्मिक=अकोप्य स्थानके योग्य कर्मद्वारा मूलसे प्रतिकर्षण, धर्मसे समवधान-परिवास, धर्मसे मानत्व और धर्मसे आह्वान माँगूँ।' वह सघसे० माँगता है। सघ उसे ० देता है। भिक्षुओ! वह भिक्षु उन आपत्तियोसे शुद्ध है। 1073

(२) "०[1] बीचमे वहुतसी परिमाणवाली छिपाई सघादिसेसकी आपत्तियाँ करता है ०। । 1074

(३) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाणवाली छिपाई भी, न छिपाई भी ०[1]। 1075

(४) "०[1] बीचमे वहुतसी परिमाण-रहित, न छिपाई ०[1]। 1076

(५) "०[1] बीचमे वहुतसी परिमाण-रहित, छिपाई ०[1]। 1077

(६) "०[1] बीचमे बहुतसी परिमाण-रहित छिपाई भी न छिपाई भी ०[1]। 1078

(७) "०[1] बीचमे वहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी छिपाई ०[1]। 1079

(८) "०[1] बीचमें वहुतसी परिमाणवाली भी परिमाण-रहित भी न छिपाई भी, छिपाई भी ०[1]।" 1080

नौ मूलसे-प्रतिकर्षणमें शुद्धियाँ समाप्त

समुच्चयक्खन्धक समाप्त[2] ॥३॥

---

[1]देखो ऊपर (१)।

[2]इस स्कन्धकमें आये प्रकरणोका नाम गिनाते वक्त अन्तमें यह भी लिखा है—"ताम्रपर्णीद्वीप (=लंका)को अनुरक्त (=बौद्ध) बनानेवाले महाविहारवासी विभज्यवादी आचार्योंका सद्धर्मकी स्थितिके लिए (यह) पाठ है।"

४—शमथ-स्कन्धक

१—धर्मवाद-अधर्मवाद। २—स्मृति-विनय आदि छ विनय। ३—चार अधिकरण उनके मूल, भेद, नामकरण और शमन।

§१—धर्मवाद-अधर्मवाद

१—श्रावस्ती

(१) उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमे अनाथपिडिकके आराम जेतवनमे विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अनुपस्थित भिक्षुओका भी तर्जनीय कर्म, नियस्स कर्म, प्रव्राजनीय कर्म, प्रतिसारणीय कर्म—(यह) कर्म (=फैसला) करते थे। जो वह भिक्षु अल्पेच्छ (=निर्लोभ) ० थे, वह हैरान होते थे—०। तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

० भगवान्ने फटकार कर धर्म-सबधी कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुपस्थित भिक्षुओका तर्जनीय कर्म ०—(यह) कर्म नहीं करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।"

(२) अधर्मवादी व्यक्ति, अधर्मवादी बहुतसे व्यक्ति, अधर्मवादी सघ। धर्मवादी एक व्यक्ति, धर्मवादी बहुतसे व्यक्ति, धर्मवादी सघ।

क (१) (एक) अधर्मवादी (=नियमोसे अनभिज्ञ) व्यक्ति (दूसरे) धर्मवादी व्यक्तिको समझावे, सुझावे, प्रेम करावे, अनुप्रेम करावे, दिखलावे, फिर दिखलावें—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ता (=बुद्ध)का शासन (=उपदेश) है। इसे ग्रहण करो, इसे (दूसरोको) बतलाओ।' इस प्रकार यदि अधिकरण (=मुकदमा) शात होवे, तो वह अधर्मसे, समुखके विनयाभाससे शात होगा। 2

(२) अधर्मवादी व्यक्ति बहुतसे धर्मवादियोको समझावे ०[1]। 3

(३) अधर्मवादी व्यक्ति धर्मवादी सघको समझावे ०[1]। 4

(४) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[1]। 5

(५) बहुतसे अधर्मवादी बहुतसे धर्मवादियोको समझावे ०[1]। 6

(६) बहुतसे अधर्मवादी धर्मवादी सघको समझावे ०[1]। 7

(७) अधर्मवादी सघ धर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[1]। 8

---

[1]देखो ऊपर (१)।

(८) अधर्मवादी सघ बहुतसे धर्मवादियोको समझावे ०[1] । 9
(९) अधर्मवादी सघ धर्मवादी सघको समझावे ०[1] । 10

नौ कृष्णपक्ष समाप्त

ख (१) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[1] । इस प्रकार यदि अधिकरण शात होवे, तो वह धर्मसे, समुख विनयसे शात होगा । 11

(२) धर्मवादी व्यक्ति बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 12
(३) धर्मवादी व्यक्ति अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 13
(४) बहुतसे धर्मवादी अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[2] । 14
(५) बहुतसे धर्मवादी बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 15
(६) बहुतसे अधर्मवादी अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 16
(७) धर्मवादी सघ अधर्मवादी व्यक्तिको समझावे ०[2] । 17
(८) धर्मवादी सघ बहुतसे अधर्मवादियोको समझावे ०[2] । 18
(९) धर्मवादी सघ अधर्मवादी सघको समझावे ०[2] । 19

नौ शुक्लपक्ष समाप्त

§२—स्मृति विनय-आदि छ विनय

२—*राजगृह*

(१) स्मृति-विनय

क पूर्व क था—उस समय बुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न क ल न्द क नि वा प मे विहार करते थे। उस समय आयुष्मान् द र्भ म ल्ल पु त्र ने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)मे अर्हत्त्व प्राप्त किया था, जो कुछ (बुद्धके) श्रावक (=शिष्य)को प्राप्त करना है, सभी उन्हे मिल गया था, और कुछ करनेको न था, न कियेको मिटाना (बाकी) था ।

तब एकान्तमे स्थित हो विचार-मग्न होते समय आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके चित्तमे यह विचार उत्पन्न हुआ—मैने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)मे अर्हत्त्व प्राप्त किया है, जो कुछ श्रावकको प्राप्त करना है, सभी मुझे मिल गया। (अब) और कुछ करनेको नही है, न कियेको मिटाना (बाकी) है। मुझे सघकी क्या सेवा करनी चाहिये ?' तब आयुष्मान् द र्भ मल्लपुत्रको यह हुआ—'क्यो न मै सघके शयन-आसनका प्रबध करूँ, और भोजनका नियमन (=उद्देश) करूँ ।

तब आयुष्मान् दर्भ (=दब्ब) मल्लपुत्र सायकाल एकान्त-चिन्तनसे उठ जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! आज एकान्तमे विचार-मग्न होते समय मेरे चित्तमे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'मैने जन्मसे सात वर्ष(की अवस्था)मे अर्हत्त्व प्राप्त किया है, ० । क्यो न मै सघके शयनासनका प्रबध करूँ ० ।"

---

[1]देखो पृष्ठ ३९४ (१) । [2]देखो ऊपर (१) ।

"साधु, साधु दर्भ ! तो दर्भ ! तू सघके शयन-आसनका प्रबध कर, और भोजनका उद्देश कर।"

"अच्छा, भन्ते !"—(कह) आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने भगवान्को उत्तर दिया।

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धर्म सबधी कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ दर्भ मल्लपुत्रको सघके शयन-आयसनका प्रबधक और भोजनका नियामक (=उद्देशक) चुने। 20

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये—पहिले दर्भ मल्लपुत्रमे जाँचकर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यदि सघको पसन्द हो, तो सघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक (=प्रबधक) और भोजनका उद्देशक चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, सघ आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसनका प्रज्ञापक और भोजनका उद्देशक चुन रहा है, जिस आयुष्मान्को आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रका शयन-आसन-प्रज्ञापक चुना जाना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको पसन्द नही है वह बोले।

"(२) भन्ते ! सघ मेरी सुने ०।

"(३) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने ०।

"ग धा र णा—'सघने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको शयन-आसन-प्रज्ञापक (और) भोजन-उद्देशक चुन लिया। सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

सघ द्वारा चुन लिये जाने पर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र हिस्सा हिस्सा करके भिक्षुओका एक एक स्थानपर शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। (१) जो भिक्षु सू त्रा न्ति क (=बुद्ध द्वारा उपदिष्ट सूत्रोको कठ रखनेवाले) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेसे मिलकर सूत्रोका सगायन करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (२) जो भिक्षु वि न य - ध र (=भिक्षु नियमोको कठ रखनेवाले) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ वि न य का निश्चय करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (३) जो ध र्म क थि क (=बुद्धके उपदेशोकी कथा कहनेवाले) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके साथ ध र्म-विषयक सवाद करेंगे, उनका शयन-आसन एक जगह प्रज्ञापित करते थे। (४) जो भिक्षु ध्यानी (=योगी) थे, (यह सोचकर कि) वह एक दूसरेके (=ध्यानमे) बाधा न देंगे, ०। (५) जो भिक्षु फजूलकी बाते करनेवाले, बहुत कायिक कर्म (=दड)वाले थे, (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् रातको यहाँ रहेगे, ०। (६) जो भिक्षु विकाल (=अपराह्ण)मे आया करते थे, (यह सोचकर कि) यह आयुष्मान् यह जान विकालमे आते है, कि हम आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रकी दिव्यशक्ति (=ऋद्धिप्रातिहार्य)को देखेगे, ते जो धा तु की स मा प त्ति (=एक प्रकारका ध्यान) करके उसीके प्रकाशमे उनका भी शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे। वह आकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे कहते थे—'आवुस द्रव्य ! हमारा भी शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' उन्हे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र, यह कहते थे—'कहाँ आयुष्मान् चाहते है, कहाँ प्रज्ञापित करूँ?' वह जानबूझ कर बतलाते थे—'आवुस द्रव्य ! हमारा गृ ध्र कू ट पर शयन-आसन प्रज्ञापित करो।' '० हमारा चौ र प्र पा त पर ०।' '० हमारा ऋ षि गि रि की का ल शि ला पर ०। '० हमारा वै भा र (पर्वत)के पास सा त प र्णि गु हा मे ०'। '० हमारा सी त व न के स र्प शौं डि क प्रा ग्भा र (=सप्पसोडिक पव्हार) पर ०'। '० गौ त म-क न्द रा मे ०'। '० हमारा क पो त क न्द रा मे ०'। '० त पो दा रा म मे ०'। '० जी व क के आम्रवन-मे ०'। '० म द्र कु क्षि मृ ग दा व मे ०'। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र ते जो धा तु की स मा प त्ति मे जान, अगुलीमे आग लगी जैसे उनके आगे आगे जाते थे। वह उसी (तेजो धातुकी समापत्तिके) प्रकाशमे आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रके पीछे पीछे जाते थे। आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनका शयन-आसन

प्रज्ञापित करते थे—'यह चारपाई (=मच) है, यह चौकी (=पीठ) है, यह तकिया (=भिसि) है, यह विम्बोहन (=मसनद) है, यह पाखाना है, यह पेशाबखाना है, यह पीनेका पानी है, यह इस्तेमाल करनेका (पानी) है, यह कत्तरदड (=डडा) है, यह सघका क ति क - स न्था न (=स्थानीय रवाज) है। अमुक समय प्रवेश करना चाहिये, अमुक समय निकलना चाहिये।' आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्र इस प्रकार उनके लिये शयन-आसन प्रज्ञापित करते थे।

उस समय मे त्ति य और भु म्म ज क भिक्षु नये और भाग्यहीन थे। सघके जो खराबसे खराब शयन-आसन (=निवास-स्थान) थे, वह उन्हे मिलते थे, और वैसे ही खरावसे खराब भोजन भी। उस समय रा ज गृ ह के लोग सघको घी, तेल, उत्तरिभग (=भोजनके बादका खाद्य)=अभिसस्कार देना चाहते थे, (किन्तु) मे त्ति य और भुम्मजकको सदाका पका कणाजक (=बुरा अन्न)को विलगक (=विडग अनाज)के साथ देते थे। वह भोजन समाप्त करनेपर स्थविर भिक्षुओसे पूछते थे—'आवुसो! तुम्हारे भोजनमे आज क्या था? तुम्हारे क्या था?' कोई कोई स्थविर बोलते थे—'आवुसो! हमारे भोजनमे घी था, तेल था, उ त्त रि भ ग था।' मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु ऐसा कहते थे—'आवुसो! हमारे (भोजन)मे जैसा-तैसा पका विलगके साथ कणाजक था।'

उस समय क ल्या ण भ क्ति क गृहपति सघको नित्य चारो प्रकारका भोजन देता था। वह भोजनके समय (स्वय) पुत्र-स्त्री सहित उपस्थित हो परोसता था—कोई भातके लिये पूछता, कोई सूप (=दाल आदि)के लिये पूछता, कोई तेलके लिये पूछता, कोई उत्तरिभगके लिये पूछता।

एक समय क ल्या ण भ त्ति क गृहपतिके (घर) दूसरे दिन के भोजनके लिये मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओका नाम था। तब कल्याणभक्तिक गृहपति किसी कामसे आराममे गया। (और) वह जहाँ आयुष्मान् दर्भ म ल्ल पुत्र थे, वहाँ जा अभिवादनकर एक ओर वैठ गया। एक ओर बैठे कल्याण भक्तिक गृहपतिको आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रने धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित किया। तब कल्याण-भक्तिक गृहपतिने ० प्रहर्षित हो आयुष्मान दर्भ मल्लपुत्रसे यह कहा—

"भन्ते! किसका हमारे घर कलका भोजन है?"

"गृहपति! मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओका।"

तव कल्याण-भक्तिक गृहपति असन्तुष्ट हो गया—'कैसे पापभिक्षु (=अभागे भिक्षु) हमारे घर भोजन करेंगे!' (और) घर जा (उसने) दासीको आज्ञा दी—

"रे! जो कल भोजन करेंगे, उन्हे कोठरीमे विलग सहित कणाजक परोसना।"

"अच्छा, आर्य!"—(कह) उस दासीने कल्याण-भक्तिक गृहपतिको उत्तर दिया।

तब मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षु—'कल हमारा भोजन कल्याण भक्तिकके गृहपतिके घर वतलाया गया है। कल कल्याण-भक्तिक गृहपति पुत्र-भार्या सहित उपस्थित हो हमारे लिये (भोजन) परोसेगा। कोई भातके लिये पूछेगे, कोई सूपके लिये०, कोई तेलके लिये०, (और) कोई उत्तरिभगके लिये पूछेगे,—(सोच) इसी खुशीमे मन भरकर नही सोये।

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षु पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ कल्याण भक्तिक गृहपति-का घर था, वहाँ गये। उस दासीने मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको दूरसे ही आते देखा। देखकर उसने कोठरीमे आसन विछा मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओसे यह कहा—

"वैठिये भन्ते!"

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओको यह हुआ—"नि सशय अभी भोजन तैयार न हुआ होगा, जिसके लिये हम कोठरीमे बैठाये जा रहे है।' तव वह दासी विलगके साथ कणाजक लाई—

"भन्ते! खाइये।"

"भगिनी! हम वधान (=नित्य)के भोजनवाले है।"

"जानती हूँ, आर्य लोग वधानके भोजन वाले है, और मुझे गृहपतिने खासतौरसे आज्ञा दी है—'रे! जो कल भोजन करेगे उन्हे कोठरीमे विलग-सहित कणाजक परोसना।' खाइये भन्ते!"

तव मे त्ति य भु म्म ज क भिक्षुओने—'आवुसो! कल क ल्या ण भ क्ति क गृहपति आराममे द र्भ मल्लपुत्रके पास गया था। नि स्सं श य आवुसो! द र्भ मल्लपुत्रने हमारे प्रति गृहपतिके भीतर दुर्भाव पैदा कर दिया,' (सोच) उसी चित्त-विकारसे मन भरकर नही खाया।

तव मेत्तियभुम्मजक भिक्षु भोजन करनेके पश्चात् आराममे जा पात्र-चीवर सँभाल वाहर आरामके कोठेमे सघाटी बिछा, चुपचाप, मूक, कधागिरा, अधोमुख सोचकरते प्रतिभाहीन हो बैठे। तव मे त्ति या भिक्षुणी जहाँ मेत्तियभुम्मजक भिक्षु थे, वहाँ गई। जाकर मेत्तियभुम्मजक भिक्षुओसे यह बोली—

"आर्यो! वन्दना करती हूँ।"

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु न बोले। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी मेत्तिया भिक्षुणीने मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओसे यह कहा—

"आर्यो! वन्दना करती हूँ।"

तीसरी वार भी मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नही बोले।

"क्या मैने आर्योका अपराध किया? क्यो आर्य मुझसे नही बोल रहे है?"

"क्योकि भगिनी! दर्भ मल्लपुत्र द्वारा हमे सताये जाते देखकर भी तू पर्वाह नही करती।"

"(तो) आर्यो! मै क्या करूँ?"

"भगिनी! यदि तू चाहे, तो आज ही भगवान् दर्भ मल्लपुत्रको नष्टकर देगे (=भिक्षु सघसे निकाल देगे)।"

"आर्यो! मै क्या करूँ? मै क्या कर सकती हूँ।"

"आ, भगिनी! जहाँ भगवान् है, वहाँ जाकर भगवान्‌से यह कह—

" 'भन्ते! यह योग्य नही है, उचित नही है। भन्ते! जो दिशा पहिले ईति-रहित (=उपद्रवरहित), भय रहित, निरुपद्रव थी, वह दिशा (आज) सहसा ईति-सहित, भय-सहित, उपद्रव-सहित (हो गई), जहाँ वायु न डोलती थी, वहाँ आँधी (=प्रवात) (आ गई)। पानी जलता सा मालूम पळता है। आर्य दर्भ मल्लपुत्रने मुझे दूपित किया है'।"

"अच्छा, आर्यो!"—(कह) मेत्तिया भिक्षुणीने उत्तर दे जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर, एक ओर खळी हो भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! यह योग्य नही है, ०।"

तव भगवान्‌ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको एकत्रितकर आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रसे पूछा—

"दर्भ! इस तरहका काम करना तुझे याद है, जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है?"

"भन्ते! भगवान् जैसा मुझे जानते है।"

दूसरी वार भी, भगवान्‌ने ० पूछा—०।

तीसरी बार भी भगवान्‌ने ० पूछा—

"दर्भ! उस तरहका काम करना तुझे याद है, जैसा कि यह भिक्षुणी कहती है?"

"भन्ते! भगवान् जैसा मुझे जानते है।"

"दर्भ! दर्भ (=कुश) ऐसे नही खुला करते। यदि तूने किया हो, तो 'किया' कह, यदि तूने नही किया, तो 'नही किया' कह।"

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमे भी मैथुन-मेवन करनेको मै नही जानता, जागतेकी बात ही क्या ?"

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! मेत्तिया भिक्षुणीको नष्ट कर दो (=भिक्षुणी-वेषसे निकाल दो), और इन भिक्षुओपर अभियोग लगाओ ।" 21

—यह कह भगवान् आसनसे उठ विहारमे चले गये ।

तब उन भिक्षुओने मेत्तिया भिक्षुणीको नाश (=निकाल) दिया । तब मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओने उन भिक्षुओसे यह कहा—

"आवुसो ! मत मेत्तिया भिक्षुणीको निकालो, उसका कोई अपराध नही है ! कुपित असन्तुष्ट हो (दर्भ भिक्षुको) च्युत करानेके अभिप्रायसे हमने इसे उत्साहित किया।"

"क्या आवुसो ! तुमने आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोषको लगाया ?"

"हाँ, आवुसो ! "

जो वह भिक्षु अल्पेच्छ ० थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रपर निर्मूल ही दुराचारके दोषको लगायेगे !'

तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही ।

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—"तो भिक्षुओ ! सघ दर्भ मल्लपुत्रको स्मृतिकी विपुलताको प्राप्त होनेसे स्मृ ति - वि न य दे । 22

ख स्मृ ति - वि न य—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृतिविनय) देना चाहिये—द र्भ मल्लपुत्र सघके पास जा एक कधे पर उत्तरा सगकर वृद्ध भिक्षुओके चरणोमे वन्दनाकर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—

"'भन्ते ! यह मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु मुझे निर्मूल दुराचारका दोष लगा रहे हैं । सो मै भन्ते ! स्मृतिकी विपुलतासे युक्त (हूँ, और) सघसे स्मृ ति वि न य माँगता हूँ । दूसरी बार भी ० । तीसरी बार भी—'भन्ते ! ० सघसे स्मृति विनय माँगता हूँ ।'

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क सू च ना—'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(२) दूसरी बार भी 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(३) तीसरी वार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"ग धा र णा—'सघने विपुल स्मृतिसे युक्त आयुष्मान् दर्भ मल्लपुत्रको स्मृ ति वि न य दे दिया । सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! यह पाँच धार्मिक (=नियमानुकूल) स्मृ ति वि न य के दान है—(१) भिक्षु निर्दोष शुद्ध होता है, (२) उसके अनुवाद (=बातकी पुष्टि) करनेवाले भी होते हैं, (३) वह (स्मृति-विनय) माँगता है, (४) उसे सघ स्मृति-विनय देता है, (और) (५) ध र्म से स म ग्र[1] हो (देता है) ।" 23

---

[1]महावग्ग ९§१।११ (पृष्ठ ३०३) ।

(२) अमूढ़-विनय

क पूर्व क था—उस समय ग र्ग भिक्षु पागल हो गया था, वह विपर्यस्त (=विक्षिप्त) चित्त हो गया था । उसने पागल, चित्त विपर्यस्त हो बहुतसा श्रमणोके आचरणके विरुद्ध भाषित परिकृन्त (=चुभती बात) काम किया । भिक्षु (लोग) पागल ० हो किये गये बहुतमे श्रमण-विरुद्ध कामोके लिये ग र्ग भिक्षुपर दोषारोपण कर प्रेरित करते थे—"याद करो, आयुष्मान् इस प्रकारकी आपत्तिकी ।"

वह ऐसा बोलता—"आवुसो ! मै पागल ० हो गया था, पागल ० हो मैंने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध काम किये । मुझे वह याद नही, मैंने मूढ (=होशमे न हो) वह (काम) किये ।"

ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद करो ० ।' (तब) जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे—० । उन्होने भगवान्से यह बात कही ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्ने ० भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ अ मू ढ (=पागलपनसे छूटा) होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढविनय दे । 24

"और भिक्षुओ ! ऐसे देना चाहिये—

"या च ना—वह गर्ग भिक्षु सघके पास जा०—'मैंने भन्ते ! पागल ० हो बहुत सा श्रमण-विरुद्ध काम किया । मुझे भिक्षु चोदित करते है—याद करो ० । मै ऐसा बोलता हूँ—'आवुसो ! मै पागल ० हो गया था० कहनेपर भी चोदित करते ही है—'याद करो०, सो मै भन्ते ! अमूढ हूँ, सघसे अमूढ-विनय माँगता हूँ ।'

"दूसरी बार भी—०माँगता हूँ ।

"तीसरी बार भी—०माँगता हूँ ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु-सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(१) दूसरी बार भी 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"ख (२) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने—० ।

"(३) 'तीसरी बार भी, पूज्यसघ मेरी सुने—० ।

"ग धा र णा—'सघने अमूढ होनेसे गर्ग भिक्षुको अमूढ-विनय दे दिया । सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ ।'

"भिक्षुओ ! तीन अमूढ-विनयके दान-अधार्मिक है, और यह तीन धार्मिक ।

"भिक्षुओ ! कौनसे तीन अमूढ-विनयके दान अधार्मिक है ?—

"ख नियम-विरुद्ध अमूढ-विनय । (१) भिक्षुओ ! यहाँ एक भिक्षुने आपत्ति की होती थी । उसे सघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो, आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की ।' वह याद होनेपर भी यह कहे आवुसो ! मुझे याद नही है कि मैंने इस प्रकार की आपत्तिकी ।' उसे सघ यदि अमूढ-विनय दे, तो यह अमूढ-विनयका दान अधार्मिक है । (२) ०, वह याद होनेपर भी यह कहे—याद है मुझे आवुसो ! जैसेकि स्वप्नके बाद (स्वप्न देखनेवालेको स्वप्नकी बात याद आती है) ।' उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो यह ० दान अधार्मिक है । (३) ० वह यह बोले—'बिना पागलपनका (आदमी) पागलपनके समयमे जो करता है, मैंने भी वैसा

किया। तुम भी वैसा करो। मुझे भी यह विहित है, तुम्हे भी यह विहित है।' उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो वह ० दान अधार्मिक है। यह तीन अमूढ-विनयके दान अधार्मिक है। 25

(ग) नियमानुकूल अमूढ-विनय (१) भिक्षुओ! कौनसे अमूढ-विनयके दान धार्मिक है?—"(१) यहाँ भिक्षुओ! एक भिक्षु पागल० होता है। पागल हो० उसने बहुतसे श्रमण-विरुद्ध आचरण किये होते है। उसे सघ या बहुतसे व्यक्ति या एक व्यक्ति चोदित करता है—'याद करो आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की?' वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'आवुसो मुझे याद नही है, कि मैंने इस प्रकारकी आपत्ति की'। उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो यह अमूढ-विनय का दान धार्मिक है। (२) ० वह याद न रहनेसे ऐसा कहता है—'याद है मुझे आवुसो! जैसे कि स्वप्नके बाद। उसे संघ (यदि) अमूढ-विनय दे, तो यह दान ० धार्मिक है। (३) ० वह (कहे)—'पागल पागलपनके समय जो करता है, वही मैंने किया, तुम भी वैसा करते। मुझे भी वह विहित था, तुम्हे भी वह विहित है।' उसे सघ (यदि) अमूढ-विनय दे तो यह अमूढ-विनयका दान धार्मिक है।—यह तीन अमूढ-विनयके दान धार्मिक है।" 26

(३) प्रतिज्ञातकरण

(क) पूर्वकथा—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विना प्रतिज्ञात (=स्वीकृति) कराये भिक्षुओके तर्जनीय, नियस्स, प्रव्राजनीय, प्रतिसारणीय, उत्क्षेपणीय —कर्म (=दड) भी करते थे। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे—०। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

०फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! बिना प्रतिज्ञात कराये भिक्षुओके तर्जनीय० उत्क्षेपणीय-कर्म नही करने चाहिये, जो करे उसे दुक्कटकी आपत्ति हो।" 27

"भिक्षुओ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है, और इस प्रकार धार्मिक।

(ख) नियम विरुद्ध प्रतिज्ञातकरण—"कैसे भिक्षुओ! प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक होता है?—(क) (१) एक भिक्षुने पाराजिक अपराध किया होता है, उसे सघ, बहुतसे या एक व्यक्ति चोदित करते है—'आयुष्मान्ने पाराजिक अपराध किया है?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो! मैंने पाराजिक अपराध नही किया सघादिसेसका अपराध किया है।' उसे (यदि) सघादिसेसका (दड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है। 28

(२) "० सघादिसेस किया है०[1] । 29

(३) "० थुल्लच्चय किया है ०। 30

(४) "० पाचित्तिय किया है'०। 31

(५) "० प्रतिदेशनीय किया है'०। 32

(६) "० दुष्कृत (=दुक्कट) किया है'०। 33

(७) "० दुर्भाषित किया है'०। 34

---

[1] पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है। सम्मति उस समय रंगीन लकड़ीकी शलाकाओमें ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाका-ग्रहापक कहते थे।

२—(१) "एक भिक्षुने स घा दि से स अपराध-किया होता है, उसे सघ० चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने सघादिसेसका अपराध किया है ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मैंने० पाराजिक अपराध किया है।' उसे (यदि) सघ पाराजिकका (दड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण अधार्मिक है।०[1]।41

३—(१) "० थुल्लच्चयका अपराध किया है,०[1] । 48

४—(१) "० पाचित्तिय०[1] । 55

५—(१) "० प्रतिदेशनीय०[1] । 62

६—(१) "० दुक्कट०[1] । 69

७—(१) "० दुर्भापित०[1] । 76

"—भिक्षुओ ! इस प्रकार अधार्मिक प्रतिज्ञातकरण होता है।"

(ग) नि य मा नु सा र प्र ति ज्ञा त क र ण—कैसे भिक्षुओ ! प्र ति ज्ञा त क र ण धार्मिक होता है ?—

(क) (१) "एक भिक्षु पाराजिक अपराध किया होता है, उसे सघ० चोदित करता है—'आयुष्मान्‌ने पाराजिक अपराध किया है ?' वह ऐसा कहता है—'हाँ आवुसो ! मैंने पाराजिक अपराध किया है। उसे (यदि) सघ पाराजिकका (दड) करे, तो यह प्रतिज्ञातकरण धार्मिक है। 77

(२) "० सघादिसेस० । 78

(३) "० थुल्लच्चय० । 79

(४) "० पाचित्तिय० । 80

(५) "० प्रतिदेशनीय० । 81

(६) "० दुक्कट० । 82

(७) "० दुर्भाषित० । 83

"—भिक्षुओ ! इस प्रकार प्रतिज्ञातकरण धार्मिक होता है।"

(४) यद्भूयसिक

उस समय भिक्षु सघके बीच भडन-कलह, विवाद करते एक दूसरेको मुखरूपी शक्तिसे पीडित कर रहे थे। उस अधिकरण (=झगडे)को शान्त न कर सकते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसे अधिकरणको य द् भू य सि का (=बहुमत)से शान्त करने की।" 84

(क) श ला का ग्र हा प क की यो ग्य ता और चु ना व—"भिक्षुओ ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको श ला का ग्र हा प क[2] चुनना (=सम्मत्रण=मिलकर राय देना) चाहिये—(१) जो न छ न्द (=स्वेच्छाचार)के रास्ते जानेवाला होता है, (२) न द्वेप०, (३) न मोह०, (४) न भय०, (५) जो गृहीत-अगृहीत (=लिये-वेलिये)को जानता है । 85

"भिक्षुओ ! इस प्रकार स म्म त्र ण (=चुनाव) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुसे पूछ-कर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

---

[1]पाराजिककी भाँति यहाँ छ कोटि तक पाठ है । सम्मति उस समय रगीन लकळीकी शला-काओमें ली जाती थी । शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्रहापक कहते थे।

[2]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे, तो सघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, सघ अमुक नामवाले भिक्षुको श ला-का ग्र हा प क चुन रहा है, जिस आयुष्मान्‌को अमुक नामवाले भिक्षुके लिये शलाकाग्रहापक होनेकी सम्मति पसद है, वह चुप रहे, जिसे पसद न हो वह वोले।

"(२) दूसरी वार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने०।'

"(३) 'तीसरी वार भी, 'भन्ते ! सघ मेरी सुने०।'

"ग धा र णा—'सघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाकाग्रहापक चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

३—"भिक्षुओ ! दस अधार्मिक श ला का ग्र ह ण (=वोट देना) है, दस धार्मिक।"

(ख) न्या य वि रु द्ध स म्म ति दा ता—"कैसे दस अधार्मिक शलाकाग्राह है?—(१) अवेर-मत्तक अधिकरण (=झगळा) होता है, (२) नही गतिमे गया होता है, (३) और नही याद कराया करवाया होता है, (४) जानता है कि अधर्मवादी वहुतर (=अधिक सख्या वहुमत) है, (५) शायद अधर्मवादी वहुतर हो, (६) जानता है, सघ फूट जायेगा, (७) शायद सघ फूट जाये, (८) अ ध र्म[1]से (शलाका) ग्रहण करते है, (९) व र्ग[1]से ग्रहण करते है, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार (शलाका) ग्रहण करते है। यह दस अधार्मिक शलाकाग्राह है। 86

(ग) न्या या नु सा र स म्म ति दा न—"कौनसे दस धार्मिक शलाकाग्राह है?—(१) अधिकरण अ वे र म त्त क नही होता, (२) गतिमे गया होता राहसे है, (३) याद करा कर-वाया होता है, (४) जानता है, कि धर्मवादी वहुत है, (५) शायद धर्मवादी वहुत है, (६) जानता है, सघ नही फूटेगा, (७) शायद सघ नही फूटेगा, (८) ध र्म से (शलाका) ग्रहण करते है, (९) स म ग्र[1] हो (शलाका) ग्रहण करते है, (१०) अपनी दृष्टि (=मत)के अनुसार ग्रहण करते है।—यह दस धार्मिक शलाकाग्राह है। 87

(५) तत्पापीयसिक

(क) पू र्व क था—उस समय उ वा ळ भिक्षु सघके वीच आपत्तिके विषयमे जिरह (=उद्योग) करनेपर इन्कारकर स्वीकार करता था, स्वीकार करके इन्कार करता था। दूसरे (प्रकरण) मे दूसरी (वात) चला देता था। जानबूझकर झूठ वोलता था। जो वह अल्पेच्छ भिक्षु थे,०। उन्होने भगवान्‌से यह वात कही।०—

"तो भिक्षुओ ! सघ उ वा ळ भिक्षुका त त्पा पी य सि क कर्म (=दड) करे। 88

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार करना चाहिये—पहिले उवाळ भिक्षुको चोदित करना चाहिये, चोदितकर स्मरण दिलाना चाहिये, स्मरण दिला आपत्तिका आरोप करना चाहिये। आपत्ति आरोप-कर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]।

ग धा र णा—"सघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म कर दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।

(ख) नि य मा नु सा र—"भिक्षुओ ! तत्पापीयसिक कर्मका करना इन पाँच (प्रकार)

---

[1]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।

[2]सूचना, तीन अनुश्रावण चुल्ल ४§२१४ (ख) ऊपर जैसा।

से धार्मिक होता है—(१) (दोषी व्यक्ति) अशुचि होता है, (२) लज्जाहीन होता है, (३) अनु-वाद (=निन्दा)-सहित होता है, (४) उस व्यक्तिका तत्पापीयसिक कर्म संघ धर्मसे करता है, (५) समग्र हो करता है। ०।89

(ग) नियम-विरुद्ध—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म अधर्म कर्म, अविनय कर्म ठीकसे न सम्पादित किया (कहा जाता) है—(१) अनुपस्थितिमें (=अ-समुख) किया गया होता है, विना पूछे किया गया होता है, प्रतिज्ञा कराये विना किया गया होता है, (२) अधर्म से किया गया होता है, (और) (३) वर्ग[1]से किया गया होता है। ०[2]।90

(घ) नियमानुसार—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म, विनय-कर्म० (कहा जाता) है—(१) उपस्थितिमें०, (२) पूछकर०, (३) प्रतिज्ञा करा०।०[3]।91

(ङ) नियम-विरुद्ध—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त तत्पापीयसिक कर्म धर्मकर्म, विनय-कर्म, और सुसपादित (कहा जाता) है—

"१—(१) सामने किया गया होता है, (२) पूछताँछकर किया गया होता है, (३) प्रतिज्ञात कराकर किया गया होता है।०[4]।92

(च) दडनीय व्यक्ति—"भिक्षुओ! तीन बातोसे युक्त भिक्षुको चाहनेपर (= आकखमान) सघ तत्पापीयसिक कर्म करे।०[5]।" 93

छ आकखमान समाप्त

(छ) दडित व्यक्तिके कर्त्तव्य—"भिक्षुओ! जिस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया गया है, उसे ठीकसे वर्ताव करना चाहिये, और वह ठीक वर्ताव यह है—(१) उपसम्पदा न देनी चाहिये, ०[6] (१८) भिक्षुओके साथ सम्मिश्रण नही करना चाहिये।" 94

अट्ठारह तत्पापीयसिक कर्मके व्रत समाप्त

तव सघने उवाळ भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया।

(६) तिणवत्थारक

उस समय भडन, कलह, विवाद करते भिक्षुओने बहुतसे श्रमण-विरोधी भासितपरिकन्त (=कळी चुभती बात) अपराध किये थे। तव उन भिक्षुओको यह हुआ—'भडन० करते हमने बहुतसे श्रमण विरोधी ०अपराध किये है। यदि हम इन आपत्तियोको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद यह अधिकरण (=झगळा) और भी कठोरता, प्रबलताको प्राप्त हो और फूटका कारण वन जाये। (अव) हमें कैसे करना चाहिये ?'

भगवान्‌से यह वात कही।—

"यदि भिक्षुओ! ०विवाद करते भिक्षुओने बहुतसे श्रमणविरोधी० अपराध किये है, और यदि वहाँ भिक्षुओको यह हो—यदि हम इन आपत्तियोको एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद

[1]देखो महावग्ग ९§१ पृष्ठ २९८।
[2]तर्जनीय-कर्म महावग्ग ९§४।१ (पृष्ठ ३११) की भाँति विस्तार करना चाहिये।
[3]देखो चुल्ल १§१।३ पृष्ठ ३४२।
[4]देखो चुल्ल १§१।४ पृष्ठ ३४३।
[5]देखो चुल्ल १§१।४-६ पृष्ठ ३४३-४।
[6]देखो चुल्ल १§१।६ पृष्ठ ३४४।

यह ० और भी० फूटका कारण बन जाये, तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, ऐसे अ धि क र ण को ति ण-व त्था र क (=तृणसे ढाँकने जैसा)से शान्त करनेकी। 95

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (तिणवत्थारकसे) शान्त करना चाहिये—सबको एक जगह जमा होना चाहिये, जमा हो चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमणविरोधी० अपराध किये है,० एक दूसरेके साथ प्रतिकार करायें, तो शायद यह० और भी० फूटका कारण बन जाये। यदि सघको पसद हो, तो थु ल्ल च्च य और गृहस्थसे सबद्ध (अपराधो)को छोळ, सघ इस अधिकरणको तिणवत्थारकसे शान्त करे।'

"(फिर) एक पक्षवालोमेसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने सघको सूचित करे—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, हमने०। यदि सघको पसदहो, जो (आप) आयुष्मानोके अपराध (=आपत्ति) है, और जो मेरे अपराध है, थुल्लच्चय और गृहस्थसे सबद्धको छोळ, आयुष्मानोके लिये और अपने लिये भी सघके बीच ति ण व त्था र क से उनकी दे श ना (=confession) करूँ।'

"फिर दूसरे पक्षवालोमेसे चतुर समर्थ भिक्षु अपने सघको सूचित करे—

" 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, ०सघके बीच तिणवत्थारकसे उनकी दे श ना करूँ।'

क ज्ञ प्ति—"एक (पहिले) पक्षवालोमेसे चतुर समर्थ भिक्षु ((सारे सघको सूचित करे—

"भन्ते ! सघ मेरी सुने, ०विवाद करते हमने बहुतसे श्रमण-विरोधी० अपराध किये है०। यदि सघको पसद हो, तो थुल्लच्चय और गृहस्थसे सबद्ध (अपराधो)को छोड, जो इन आयुष्मानोके अपराध है, और जो मेरे अपराध है, इन आयुष्मानोके लिये और अपने लिये भी सघके बीच उनकी ति ण-व त्था र क से दे श ना करूँ—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१) 'भन्ते ! सघ मेरी सुने, ०। थुल्लच्चय और गृहस्थसे सबद्ध अपराधोको छोड, जो इन आयुष्मानोके अपराध है और जो मेरे अपराध है,० सघके बीच ति ण व त्था-र क से उनकी देशना कर रहा हूँ। जिस आयुष्मान्को, हमारा० इन आपत्तियोकी सघके बीच तिणव-त्थारक देशना पसद है, वह चुप रहे जिसको पसद न हो वह बोले।

"(२) 'दूसरी बार भी०।

"(३) 'तीसरी बार भी०।

"ग धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोकी सघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

"तब दूसरे पक्षवाले भिक्षुओमेसे एक चतुर समर्थ भिक्षु (सारे) सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने—०[1]

"ग धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोकी सघके बीच तिणवत्थारक देशना कर दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! इस प्रकार वह भिक्षु, थुल्लच्चय और गृहस्थसे सबद्ध आपत्तियोको छोड, उन आपत्तियोसे छूटते है।"

§३—चार अधिकरण, उनके मूल, भेद, नाम-करण और शमन

उस समय भी भिक्षु भिक्षुणियोके साथ विवाद करते थे, भिक्षुणियाँ भी भिक्षुओके साथ विवाद

---

[1] पहिले पक्षकी भाँति ही यहाँ भी सूचना (=ज्ञप्ति) और अनुश्रावण समझना चाहिए।

करती थी। छ न्न भिक्षु भिक्षुणियोकी ओर हो भिक्षुणियोके साथ विवाद करता, भिक्षुणियोका पक्ष ग्रहण करता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०।

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हॉ) सचमुच भगवान्!"

०फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

(१) अधिकरणोके भेद

"भिक्षुओ! यह चार अधिकरण है—(क) विवाद-अधिकरण, (ख) अनुवाद-अधिकरण, (ग) आपत्ति-अधिकरण, (घ) कृत्य-अधिकरण। 96

(क) वि वा द-अ धि क र ण—"क्या है विवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु यह ध र्म है या अधर्म है।' 'यह विनय है या अविनय।' 'यह तथागतका लपित=भापित है, तथागतका लपित =भापित नही है', 'तथागतने ऐसा आचरण किया है, आचरण नही किया', 'तथागतने विधान किया है, तथागतने विधान नही किया है', 'आपत्ति (=अपराध) है, आपत्ति नही है', 'लघुक (=छोटी) आपत्ति है, गुरुक (बडी) आपत्ति है', 'सावशेप (=कुछ ही) आपत्ति है, निरवशेष (=सपूर्ण) आपत्ति है', दुट्ठुल्ल (=दु स्थौल्य=पाराजिक, सघादिसेस)आपत्ति है, अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'—वहाँ जो भडन= कलह-विग्रह=विवाद, नानावाद (=विरुद्धवाद), अन्यथावाद (=उल्टावाद) नाराजगीका व्यवहार, मेधक (=कटुभापी) है, यह कहा जाता है वि वा द-अ धि क र ण। 97

(ख) अ नु वा द - अ धि क र ण—"क्या है अनुवाद-अधिकरण?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (दूसरे) भिक्षुको शीलभ्रष्ट होने, आचारभ्रष्ट होने, दृष्टि (=सिद्धान्त)-भ्रष्ट होने, बुरी आजीव (=रोजी)वाला होनेको अनुवाद (=दोपारोपण) करते है, वहाँ जो अनुवाद=अनुवदन=अनु-ल्लपन=अनुभणन, अनुसप्रवकन[1],=अभ्युत्सहनता[2], अनुवलप्रदान[3] होता है, यह कहा जाता है अ नु वा द - अ धि क र ण। 98

(ग) आ प त्ति - अ धि क र ण—"क्या कहा जाता है, आपत्ति-अधिकरण?—पाँचो आपत्ति-स्कध (=दोषोके समुदाय)) आपत्ति - अधिकरण है, सातो आपत्ति-स्कध आ प त्ति-अ धि-क र ण है। 99

(घ) कृ त्य-अ धि क र ण—"क्या है आपत्ति-अधिकरण?—जो सघके कृत्य=करणीय, अवलोकनकर्म, ज्ञ प्ति-कर्म[4], ज्ञ प्ति-द्वि ती य क र्म[5], ज्ञ प्ति-च तु र्थ क र्म[6] है, यह कहा जाता है, कृ त्य - अ धि क र ण।" 100

(२) अधिकरणोके मूल

क वि वा द-अ धि क र णो के मूल="विवाद-अधिकरणका क्या मूल है? (क) छ

[1]काय, वचन, चित्तसे उसीमें झुक रहना।

[2]दोषारोपणमें उत्साह।

[3]पहिली बातको कारण बता पिछली बातके लिये बल देना।

[4]सघकी सम्मति लेते वक्त, प्रस्तावकी सूचनाको ज्ञप्ति कहते है।

[5]किसी असाधारण परिस्थितिमें एक ज्ञप्ति और एक अनुश्रावणके बादही सघकी सम्मति लेली जाती है, उसे ज्ञप्ति-द्वितीयकर्म कहते है।

[6]साधारण परिस्थितिमें पहिले एक ज्ञप्ति फिर तीन अनुश्रावण करके सघकी सम्मति ली जाती है, इसे ज्ञप्ति-चतुर्थ कर्म कहते है।

विवाद करनेके मूल भी है, (ख) (लोभ-द्वेष-मोह=) तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल है, (ग) (=अलोभ-अद्वेष-अमोह)—तीन कुशल-मूल (=भलाइयोकी जळ) भी विवाद-अधिकरणके मूल है। 101

(क) "कौनसे छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल है?—(१) जब भिक्षुओ! भिक्षु क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु क्रोधी, उपनाही होता है, (उससे) वह शास्ता (=बुद्ध)मे श्रद्धा-सत्कार-रहित हो विहरता है, धर्ममे भी०, सघमे भी०। शिक्षा (=भिक्षुओके नियम)को भी पूर्ण करनेवाला नही होता। जो कि भिक्षुओ! वह भिक्षु शास्तामे श्रद्धा-सत्कार रहित हो विहरता है० शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नही होता, वह सघमे विवाद उत्पन्न करता है। और वह विवाद बहुत लोगोके अहित, असुखके लिये होता है, बहुतसे लोगोके अनर्थके लिये (होता है), देव-मनुष्योके अहित और दुखके लिये होता है। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके विवाद-मूलको तुम अपने भीतर या बाहर देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके प्रहाण (=विनाश, त्याग) के लिये उद्योग करना। यदि भिक्षुओ! तुम इस प्रकारके विवाद-मूलको अपने भीतर या बाहर न देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी विवाद-मूलके भविष्यमे न उत्पन्न होने देनेके लिये प्रयत्न करना। इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका विनाश होता है, इस प्रकार इस पापी विवाद-मूलका भविष्यमे न उत्पन्न होना होता है। जब भिक्षुओ! भिक्षु (२) म्रक्षी (=अमरखी), पलासी (=प्रदासी—निष्ठुर) होता है, ०। ०(३) ईर्ष्यालु, मत्सरी होता है,०। ०(४) शठ, मायावी होता है,०। (५) ०पापेच्छ (=बदनीयत), मिथ्यादृष्टि (=बुरी धारणावाला) होता है०। ०(६) सदृष्टि-परामर्शी (=वर्तमानका देखनेवाला), आधान-ग्राही (=डाह रखनेवाला), छोळनेमे मुश्किल करनेवाला होता है। जो भिक्षुओ! भिक्षु सदृष्टिपरामर्शी० होता है, वह शास्तामे भी श्रद्धा सत्कार रहित होता है०।' यह छ विवादमूल विवाद-अधिकरणके मूल है। 102

(ख) "कौनसे तीन अकुशल-मूल (=बुराइयोकी जळ) विवाद-अधिकरणके मूल है? जब भिक्षु लोभ-युक्त चित्तसे विवाद करते है, द्वेष-युक्त चित्तसे०, मोह-युक्त चित्तसे विवाद करते है—'धर्म है या अधर्म'०[1] अदुट्ठुल्ल आपत्ति है'। यह तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल है। 101

(ग) कौन से तीन कुशल-मूल विवाद-अधिकरणके मूल है?—"जब भिक्षु लोभरहित चित्तवाले हो विवाद करते है, द्वेषरहित०, मोहरहित० चित्तवाले हो विवाद करते है—'धर्म है या अधर्म',०। यह तीन कुशल-विवाद-अधिकरणके मूल है। 103

ख अनुवाद-अधिकरणके मूल—क "अनुवाद-अधिकरणका क्या मूल है?—(क) छ अनुवाद करनेके मूल भी है, (ख) तीनो अकुशल-मूल (=लोभ, द्वेष, मोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल है, (ग) तीनो कुशल-मूल (=अलोभ, अद्वेष, अमोह) अनुवाद-अधिकरणके मूल है, (घ) काया भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है, (ङ) वचन भी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 104

(क) "कौनसे अनुवाद-मूल अनुवाद-अधिकरण-मूल है?—जब भिक्षुओ! भिक्षु (१) क्रोधी, उपनाही (=पाखडी) होता है०[1] शिक्षाको भी पूर्ण करनेवाला नही होता। वह सघमे अनुवाद उत्पन्न करता है। और वह अनुवाद बहुत लोगोके अहित, असुखके लिये होता है। ०[1] (६) सदृष्टि-परामर्शी, आधानग्राही (=हठी) होता है ०[1]। भिक्षुओ! यदि इस प्रकारके अनुवादमूल-को तुम अपने भीतर या बाहर देखना, तो भिक्षुओ! तुम उस पापी अनुवाद-मूलके प्रहाणके लिये उद्योग

[1]सम्मति उस समय रगीन लकळीकी शलाकाओसे ली जाती थी। शलाका वितरण करनेवालेको शलाकाग्रहापक कहते थे।

करना।०[1]। भिक्षुओ! यह छ अनुवाद-मूल अ नु वा द-अ धि क र णके मूल हैं। 105

(ख) "कौनसे तीन अकुशल-मूल अनुवाद-अधिकरणके मूल हैं ?जब०लोभयुक्त चित्तसे०, द्वेषयुक्त चित्तसे०, मोहयुक्त चित्तसे० अनुवाद करते हैं—'धर्म[1] या अधर्म' ०। 106

(ग) "कौनसे तीन कुशल-मूल अनुवाद- अधिकरणके मूल हैं ?जब भिक्षु लोभ-रहित चित्त हो अ नु वा द करते हैं०, द्वेषरहित०, मोह-रहित०। 107

(घ) "कौनसा काम अनुवाद अधिकरण का मूल है ?—जब कोई (व्यक्ति) कुरूप, दुर्दर्शन—ओकोटिमक (=नाटा), बहुरोगी, काना, लूला, लगडा, पक्षाघात (=लकवे) वाला होता है, और उसे लेकर (दूसरे) उसका अ नु वा द करते है, ऐसी काया अनुवाद-अधिकरणका मूल होती है। 108

(ङ) "कौनसी वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है ?— जब दुर्वचन (बोलनेवाला), दुर्मन, हकलाकर बोलनेवाला, होता है, जिसे लेकर उसका अनुवाद करते है, यह वाणी अनुवाद-अधिकरणका मूल है। 109

ग "आ प त्ति-अ धि क र ण के मू ल,—क्या है आपत्ति-अधिकरण का मूल ?—आपत्तियाँ (=दोष) जिनसे उठते है वह० छ (आपत्ति-समुत्थान) आपत्ति-अधिकरणके मूल है। (१) (कोई) आपत्ति-कायासे उठती है, वचन और चित्तसे नही, (२) कोई आपत्ति वचनसे उठती है, काया और चित्तसे नही, (३) कोई आपत्ति काया और वचन (दोनो)से उठती है, चित्तसे नही, (४) कोई आपत्ति काया और चित्त (दोनो)से उठती है, वचनसे नही, (५) कोई आपत्ति चित्त और वचन (दोनो)से उठती है, कायासे नही, (६) कोई आपत्ति काय, वचन और चित्त (तीनो)से उठती है। यह छ आपत्ति-समुत्थान 'आपत्ति-अधिकरणके मूल है।' 110

घ. कृ त्य-अ धिक र ण—"कृत्य-अधिकरणका क्या मूल है ?—कृत्य-अधिकरणका एक मूल है सघ।" 111

(३) अधिकरणोंके भेद

(क) विवाद-अधिकरणके भे द—"(क्या) विवाद-अधिकरण कुशल (=अच्छा), अकुशल (=बुरा), अव्याकृत (=न अच्छा न बुरा) होता है?—विवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल भी०, (३) अव्याकृत भी हो सकता है ?

"(१) कौनसा विवाद-अधिकरण कुशल है ?—जब भिक्षुओ! भिक्षु अच्छे (=कुशल) चित्त से विवाद करते है—'धर्म है, अधर्म है'०[2] नाराजगीका व्यवहार . है। यह कहा जाता है, कुशल विवाद-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अकुशल है ?—० बुरे (=अकुशल) चित्तसे विवाद करते हैं—०।

"(३) कौनसा० अव्याकृत है ?—० अव्याकृत (न अच्छे ही न बुरे ही) चित्तसे विवाद करते है। 112

(ख) अ नु वा द अ धि क र ण के भेद—"(क्या) अनुवाद-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है ?— अनुवाद-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल भी०, (३) अव्याकृत भी हो सकता है।

---

[1] सम्मति उस समय रगीन लकळीकी शलाकाओसे ली जाती थी। शलाका वितरण करने-वालेको शलाकाग्राहापक कहते थे।

[2] देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४०६।

"(१) ०?—जब० अच्छे चित्तसे शील भ्रष्ट होने० का अनुवाद करते है। (२) ० बुरे चित्तसे०[1]। (३)० न अच्छे-न बुरे चित्तसे०। 113

(ग) आपत्ति-अधिकरणके भेद—"(क्या) आपत्ति-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—आपत्ति-अधिकरण (१) अकुशल भी हो सकता है, (२) अव्याकृत भी०, किन्तु० कुशल नही हो सकता।

"(१) कौनसा० अकुशल है?—जो जान, समझ,सोच, निश्चय करके वीतिक्कम (=व्यतिक्रम) है, यह कहा जाता है अकुशल आपत्ति-अधिकरण।

"(२) कौनसा० अव्याकृत है?—जो बिना जाने विना समझे, बिना सोचे, बिना निश्चय किये व्यति-क्रम है, यह कहा जाता है अव्याकृत आपत्ति-अधिकरण। 114

(घ) कृत्य-अधिकरण —"(क्या) कृत्य-अधिकरण कुशल, अकुशल, अव्याकृत होता है?—कृत्य-अधिकरण (१) कुशल भी हो सकता है, (२) अकुशल०, (३) अव्याकृत०।

"(१) कौनसा० कुशल है? सघ कुशल (=अच्छे) चित्तसे जो कर्म=अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति-चतुर्थ-कर्म करता है, यह कहा जाता है कुशल कृत्य-अधिकरण।

"(२)०?—सघ अकुशल चित्तसे जो कर्म० करता है,०।

"(३)०?—सघ अव्याकृत चित्तसे जो कर्म० करता है,०।" 115

(४) विवाद आदि और उनका अधिकरणसे संबंध

(क)—विवाद और अधिकरण—"(क्या) विवाद विवाद-अधिकरण, विवाद विना अधिकरण, अधिकरण विना विवाद, और अधिकरण और विवाद (दोनो) (होते है?)—(१) विवाद विवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) विवाद बिना अधिकरणके हो सकता है, (३) अधिकरण विना विवादके हो सकता है, (४) अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते है।

"(१) कौनसा विवाद विवाद-अधिकरण होता है?—जब भिक्षु विवाद करते है—'धर्म है०[2]। वहाँ जो भडन-कलह ०[3] है; यह विवाद विवाद-अधिकरण है। 116

"(२) कौनसा विवाद विना अधिकरणका है?—माताभी पुत्रके साथ विवाद करती है, पुत्र भी माताके साथ०, पिता भी पुत्रके साथ०, पुत्रभी पिताके साथ०, भाई भी भाईके साथ०, भाई भी वहिनके साथ०, वहिन भी भाईके साथ०, मित्रभी मित्रके साथ०। यह विवाद विना अधिकरणके है। 117

"(३) कौनसा अधिकरण विना विवादका है? अनुवाद-अधिकरण, आपत्ति-अधिकरण और कृत्य-अधिकरण यह अधिकरण विना विवादके हैं। 118

"(१) कौनसे अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते है?—विवाद-अधिकरणमे अधिकरण और विवाद (दोनो साथ साथ) होते है। 119

(ख)—अनुवाद और अधिकरण—"०?—(१) अनुवाद-अधिकरण हो सकता है, (२) अनुवाद विना अधिकरण०, (३) अधिकरण बिना अनुवाद०, (४) अधिकरण और अनुवाद (दोनो साथ साथ) हो सकते है।

"(१) कौनसा अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है?—जब भिक्षु (दूसरे) भिक्षुका शील भ्रष्ट ०

[1] देखो चुल्ल ४§३।२ पृष्ठ ४०६-७। [2] देखो चुल्ल ४§३।१ पृष्ठ ४०६।
[3] देखो ऊपर (विवाद-मूल ख जैसा)।

होनेका अनुवाद करते हैं। जो वहाँ अनुवाद० होता है, वह अनुवाद अनुवाद-अधिकरण है। 120

"(२)०?—माताभी पुत्रका अनुवाद (=शिकायत) करती है०। 121

"(३)०?—आपत्ति-अधिकरण, कृत्य-अधिकरण, विवाद-अधिकरण यह बिना अनुवादके अधिकरण हैं। 122

"(४)०?—अनुवाद-अधिकरणमें अधिकरण और अनुवाद (दोनो साथ साथ) होते है। 123

(ग) आपत्ति और अधिकरण के—"०?—(१) आपत्ति आपत्ति-अधिकरण हो सकती है, (२) आपत्ति बिना अधिकरण०, (३) अधिकरण बिना आपत्ति०, (४) अधिकरण और आपत्ति (दोनो साथ साथ) हो सकती हैं।

"(१) कौनसी आपत्ति आपत्ति अधिकरण है?—पांच आपत्ति स्कंध (=दोषोंके समूह) आपत्ति-अधिकरण है, सातो आपत्ति-स्कंध आपत्ति-अधिकरण है—यह आपत्ति आपत्ति-अधिकरण है। 124

"(२) ०?—स्रोत-आपत्ति, समापत्ति[1] की यह आपत्ति है, किन्तु अधिकरण नही।' 125

"(३) कौन अधिकरण बिना आपत्तिका है?—कृत्य-अधिकरण, विवाद-अधिकरण, अनुवाद-अधिकरण, यह अधिकरण है किन्तु आपत्ति नही। 126

"(४)०?—आपत्ति-अधिकरण, अधिकरण और आपत्ति (दोनो) साथ साथ है। 127

(घ) ४—कृत्य-अधिकरण—"०?—(१) कृत्य कृत्य-अधिकरण हो सकता है, (२) कृत्य बिना अधिकरण०, (३) अधिकरण बिना कृत्य०, (४) अधिकरण और कृत्य (दोनो साथ साथ) हो सकते हैं।

"(१)०?—जो संघका कृत्य करना, करणीय करना, अवलोकन कर्म, ज्ञप्ति-कर्म, ज्ञप्ति-द्वितीय-कर्म, ज्ञप्ति चतुर्थ-कर्म, यह कृत्य कृत्य-अधिकरण है। 128

"(२)०?—आचार्यका काम (=कृत्य), उपाध्यायका कृत्य, एक उपाध्यायवाले (गुरु भाई) का कृत्य, एक आचार्यवाले (गुरुभाई) का कृत्य—यह कृत्य है, (किन्तु) अधिकरण नही। 129

"(३)०?—विवाद-अधिकरण, अनुवाद अधिकरण आपत्ति-अधिकरण यह अधिकरण हैं, किन्तु कृत्य नही। 130

"(४)०?—कृत्य-अधिकरण (ही) अधिकरण और कृत्य (दोनो) साथ साथ है।" 131

(५) अधिकरणोंका शमन

१—विवाद-अधिकरण—"विवाद-अधिकरण कितने शमथो (=शांतिके उपाय मिटानेके उपाय) से शान्त होता है? विवाद-अधिकरण दो शमथोसे शांत होता है—(क)—समुख (=उपस्थितिमे)-विनयसे, और (ख) यद्भूयसिकसे भी क्या ऐसा भी। विवाद-अधिकरण हो सकता है, जो यद्भूयसिकके विना (सिर्फ) एक समुख-विनयसे ही शान्त हो ? हो सकता है—कहना चाहिये। 132

I—समुख विनयसे—"किस तरह ? जब भिक्षु (आपसमें) विवाद करते हैं—'धर्म है० [2]। यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस अधिकरणको (आपसमें) शान्त कर सकते है, तो भिक्षुओ!

---

[1] यहाँ आपत्तिका अर्थ प्राप्ति है। निर्वाणगामी स्रोतमें प्राप्त होनेको स्रोतआपत्ति कहते है। समाधिकी आपत्ति (=प्राप्ति)को समापत्ति कहते हैं।

[2] देखो चुल्ल० ४§३।१ पृष्ठ ४०६।

यह अधिकरण उपशान्त (=शान्त) कहा जाता है। किसके द्वारा उपशान्त ?—समुख-विनय द्वारा। क्या है वहाँ समुख-विनय ?—(१) सघके समुख होना, (२) धर्मके समुख होना, विनय (=नियम)के समुख होना, (३) व्यक्तिके समुख होना ।

"(१) क्या है सघके समुख होना ?—जितने भिक्षु कर्म-प्राप्त (=जिनका न्याय होनेवाला है) हैं वह आगये हो, (अनुपस्थित) छन्द (=vote) देने लायक भिक्षुओका वोट लाया गया हो, समुख (=उपस्थित) हुए (भिक्षु) प्रतिक्रोश (=कोसना) न करते हो, यह है वहाँ सघका समुख होना। (२) क्या है समुख-विनय होना ?—जिस विनय (=भिक्षु-नियम), जिस धर्म (=बुद्धके उपदेश)=जिस शास्ताके शासनसे वह अधिकरण शान्त होता है, वह विनयका समुख होना है । (३) क्या है व्यक्तिका समुख होना ?—जो विवाद करता है, और जिसके साथ विवाद करता है, दोनो अर्थी-प्रत्यर्थी (=वादी-प्रतिवादी) उपस्थित (=समुखीभूत) रहते है, यह है वहाँ व्यक्तिका समुख होना। भिक्षुओ ! इस प्रकार शान्त हो गये अधिकरणको यदि कारक (=करनेवाला कोई पुरुष) फिरसे उभाळे (=उत्कोटन करे)तो (उसे), उ त्को ट न क–पाचित्तिय (=०प्रायश्चित्तीय) हो, छन्द (=vote) देनेवाला यदि (पीछेसे) पछतावे (=खीयति), तो खी य न क-पा चि त्ति य हो। 133

२—"यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु उस अ धि क र ण (=मुकदमे)को उसी आवासमे नही शान्त कर सकते, तो . उन भिक्षुओको जिस आवास (=मठ)मे अधिक भिक्षु हो वहाँ जाना चाहिये। वह भिक्षु यदि उस आ वा स मे जाते वक्त रास्तेमे उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो भिक्षुओ ! वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त कहा जाता है ?—समुख-विनयसे। क्या है वहाँ समुख विनय ?—० तो खी य न क - पा चि त्ति य हो। 134

३—"यदि भिक्षुओ ! वह भिक्षु उस आवासमे जाते वक्त रास्तेमे उस अधिकरणको नही शान्त कर सकते, तो भिक्षुओ ! उन भिक्षुओको उस आवासमे जा आ वा सि क (=मठ-निवासी) भिक्षुओसे यह कहना चाहिये—आवुसो ! यह अधिकरण इस प्रकार पैदा हुआ, इस प्रकार उत्पन्न हुआ, अच्छा हो (आप) आयुष्मान् इस अधिकरणको ध र्म वि न य-शास्ताके शासनसे जैसे यह अधिकरण शान्त हो, वैसे इसे शान्त कर दे । यदि भिक्षुओ ! आ वा सि क भिक्षु अधिक वृद्ध हो, और नवागन्तुक (विवाद करनेवाले) भिक्षु अधिक नये, तो आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओसे यह कहना चाहिये—तब तक मुहूर्त भर (आप) आयुष्मान् एक ओर रहे, तब तक हम (आपसमें) सलाह (=मत्रणा) करे। यदि भिक्षुओ ! आवासिक भिक्षु अधिक नये हो, और नवागन्तुक भिक्षु अधिक वृद्ध, तो आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओसे यह कहना चाहिये—'तो (आप) आयुष्मान् मुहूर्तभर यहीं रहे, जब तक कि हम सलाह कर आये।' यदि भिक्षुओ ! (आपसमें) सलाह करते आवासिक भिक्षुओको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको धर्म, वि न य , शास्ताके शासन (=बुद्ध-उपदेश)के अनुसार शान्त नही कर सकते; तो भिक्षुओ ! उन आवासिक भिक्षुओको उस अधिकरणको फैसला करनेके लिये नहीं स्वीकार करना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! (आपसमे) सलाह करते आवासिक भिक्षुओको ऐसा हो—'हम इस अधिकरणको ध र्म, वि न य , शास्ताके शासनके अनुसार शान्त कर सकते है', तो भिक्षुओ ! उन आवासिक भिक्षुओको नवागन्तुक भिक्षुओसे यह कहना चाहिये—'यदि तुम आयुष्मान् यह अधिकरण कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ—यह हमसे कहो, तो हम ऐसे इस अधिकरणको ध र्म, वि न य, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त हो जायगा, ऐसा होनेपर हम इस अधिकरणको (फैसलेके लिये) स्वीकार करेंगे, यदि तुम आयुष्मान्, यह अधिकरण कैसे पैदा हुआ, कैसे उत्पन्न हुआ,—यह हमसे न कहोगे, तो हम जैसे उस अधिकरणको ध र्म, वि न य, शास्ताके शासनके अनुसार शान्त करेंगे, उससे यह अच्छी तरह शान्त न होगा। (तब)

हम इस अधिकरणको फैसला करनेके लिये, नही स्वीकार करेंगे।' भिक्षुओ ! इस प्रकार अच्छी तरह समझ, आवासिक भिक्षुओंको वह अधिकरण लेना चाहिये। भिक्षुओ ! उन नवागन्तुक भिक्षुओको आवासिक भिक्षुओसे ऐसा कहना चाहिये—'यह अधिकरण जैसे उत्पन्न हुआ, जैसे पैदा हुआ वैसे हम आयुष्मानोको वतलायँगे, यदि (आप) आयुष्मान् इतने वीचमे इस अधिकरणको धर्म०से ऐसे शान्त कर सके, कि यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त हो जाये, तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोको दे दे। यदि आयुष्मान्० नही कर सकते०, तो हम इस अधिकरणको आयुष्मानोको न देंगे, हम ही इस अधिकरणके स्वामी होगे। भिक्षुओ ! इस प्रकार अच्छी तरह समझ नवागन्तुक भिक्षुओको वह अधिकरण आवासिक भिक्षुओको देना चाहिये। भिक्षुओ ! यदि वह भिक्षु उस अधिकरणको शान्त कर सकते है, तो यह अधिकरण अच्छी तरह शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त ?—समुख-विनयसे।० खीयनकपाचित्तिय हो। 135

"भिक्षुओ ! यदि उस अधिकरणके विचार करते वक्त उन भिक्षुओमे अनर्गल वाते होने लगती है, भाषणका अर्थ नही समझ पळता, तो भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ऐसे अधिकरणको उद्वाहिका (=Select Committee)से शमन करनेकी। 136

II—उद्वाहिका, "भिक्षुओ ! दस वातोसे युक्त भिक्षुको उद्वाहिकाके लिये चुनना चाहिये—(१) सदाचारी (=शीलवान्) होता है, प्रातिमोक्ष (=भिक्षु नियमो)के सवर (=सयम)से रक्षित आचार-गोचरसे युक्त, छोटे दोषोमे भी भयखानेवाला हो विहरता है। शिक्षापदो (=आचार-नियमो)को ग्रहणकर अभ्यास करता है। (२) वहुश्रुत—श्रुतधर, (उपदेशोको अच्छी तरह सचय करनेवाला) हो, जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, और अन्त-कल्याण है सार्थक, सव्यजन केवल (=विशुद्ध)—परिपूर्ण—परिशुद्ध-ब्रह्मचर्यको वतलाते है, वह धर्म, उसने वहुत सुने है, वचनमे धारण किये मनसे परिचित, दृष्टि (=सिद्धान्त)से परीक्षित होते हैं। (३) भिक्षु-भिक्षुणी, दोनो ही प्रातिमोक्षको विस्तार-पूर्वक याद किये अच्छी तरह विभाजित (=समझे), सुप्रवन्ति (=सुव्याख्यात) सूत्र और अनुव्यजन (=विस्तार)से सुविनिश्चित =सुमीमासित होते है। (४) और दृढ हो विनयमे स्थित हो, (५) दोनो हो वादी-प्रतिवादी दोनो हीको समझाने, वुझाने, जतलाने, दिखलाने, मानने मनवानेमे समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमे चतुर जतलाने, दिखवाने, मानने मनवानेमे समर्थ हो। (६) अधिकरणकी उत्पत्तिके शान्त करनेमे चतुर हो। (७) अधिकरणको जानता हो। (८) अधिकरणके कारण (= समुदय)०। (९) अधिकरणके नाश (=०निरोध), (१०) अधिकरणके नाशकी ओर ले जानेवाले मार्ग (=प्रतिपद्)को जानता हो। भिक्षुओ ! इन दस वातोसे युक्त भिक्षुओके उद्वाहिकाके लिये चुननेकी मैं अनुमति देता हूँ। 137

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये।

"(१) याचना—पहिले उस भिक्षुसे पूछना चाहिये।

"फिर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

क ज्ञप्ति—"भन्ते ! सघ मेरी सुने—हमारे इस अधिकरणपर विचार करते समय अनर्गल वाते होने लगती है, भाषणका अर्थ नही समझ पळता, यदि सघ उचित समझे तो सघ, इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओको चुने—यह सूचना है।

ख अनुश्रावण—(१) " 'भन्ते ! सघ मेरी सुने,० सघ इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुओको चुन रहा है, जिस आयुष्मान्को पसद हो वह चुप रहे, जिसको पसद न हो वह वोले।

(२) "'दूसरी बार भी, भन्ते! सघ०।

(३) "'तीसरी बार भी, भन्ते! सं०।

ग धा र णा—"'सघने इस अधिकरणको उद्वाहिकासे शमन करनेके लिये अमुक अमुक भिक्षुको चुन लिया। सघको पसद है, इस लिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिका (=उब्बाहिका)से उस अधिकरणको शान्त कर सकते है, तो भिक्षुओ! यह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख - वि न न य से।० उक्कोटनिक-पा चि त्ति य हो। 138

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणपर विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्म-कथिक (=धर्मका व्याख्याता) हो, जिसे न सूत्र ही आता हो न सू त्र वि भ ग[1] (=सुत्तविभग विनय) ही, वह अर्थको बिना समझे व्यजन (=अक्षर)की छाया पकळ अर्थका अनर्थ करता हो, तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति—"आयुष्मानो! मेरी सुनो, यह अमुक नामवाला धर्म कथिक भिक्षु है,० अर्थका अनर्थ कर रहा है, यदि आयुष्मानोको पसद हो तो अमुक नामवाले भिक्षुको उठाकर हम बाकी इस अधिकरणको शान्त करे—यह सूचना है।०[2] 139

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख-वि न य द्वारा।०[3] उक्कोटनिक पाचित्तिय हो।

"भिक्षुओ! यदि उस अधिकरणका विचार करते समय वहाँ कोई (ऐसा) धर्मकथिक हो, जिसे सू त्र आता हो, किन्तु सू त्र-वि भ ग नही। वह अर्थको विना समझे व्यजनकी छाया पकड अर्थका अनर्थ करता हो, तो भिक्षुओ! चतुर समर्थ भिक्षु उन भिक्षुओको सूचित करे—

क ज्ञ प्ति "० आयुष्मानो! मेरी सुनो।० यदि आयुष्मानोको पसद हो, तो अमुक भिक्षुको उठ कर बाकी इस अधिकरणको शान्त करे—यह सूचना है ०।०।

"यदि भिक्षुओ! वह भिक्षु उस भिक्षुको उठाकर उस अधिकरणको शान्त कर सके, तो वह अधिकरण शान्त कहा जाता है। किसके द्वारा शान्त? स मु ख-वि न य द्वारा। ० उक्कोटनिक-पाचित्तिय हो। 140

III य द् भू य सि का से नि र्ण य—"भिक्षुओ! यदि वह भिक्षु उद्वाहिकासे उस अधिकरणको शान्त न कर सकते हो, तो भिक्षुओ! वह (उद्वाहिकावाले) भिक्षु उस अधिकरणको सघके सुपुर्द कर दे—'भन्ते! हम इस अधिकरणको उद्वाहिकासे नही शान्त कर सकते, सघ इस अधिकरणको शान्त करे।'

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ ऐसे दस प्रकारके अधिकरणको यद्भूयसिकासे शान्त करनेकी। 141

a शलाकाग्रहापकका चुनाव—"भिक्षुओ! पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको श ला का ग्र हा प क चुनना चाहिये—(१) जो न छ न्द के रास्ते जाता हो,०[4]। 142

क ज्ञ प्ति०। (अनुश्रावण)०।

ग धा र णा—"सघने अमुक नामवाले भिक्षुको शलाका-ग्रहापक चुन लिया। सघको पसद

---

[1] विनयके मूल-नियम या प्रातिमोक्ष (पृष्ठ ५–७०)।　[2] देखो चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४१२।
[3] देखो ऊपर।　[4] चुल्ल ४§२।४ (क) पृष्ठ ४०२।

है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ ! शलाकाग्रहापक भिक्षुको श ला का (=वोटदेनेकी लकडी) बाँटनी चाहिये।' वहुमतवाले धर्मवादी भिक्षु जैसा कहे, वैसे उस अधिकरणको शात करना चाहिये। भिक्षुओ ! वह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात ?—स मु ख वि न य से भी, और य द्भू य सि क से भी। क्या है वहाँ समुख० विनय ?—०[1]। (क्या है वहाँ यद्भूयसिका ?)—जो कि वहुमत (=यद्भूयसिक)से कर्म (=मुकदमे)का करना, निर्धारण करना, प्राप्त करना, स्वीकार करना, न परित्याग करना, यह वहाँ य द्भू य सि का है। भिक्षुओ ! इस प्रकार शात हो गये अधिकरणको (जो) कारकसे उभाळे उसे दु क्को ट नि क-पा चि त्ति य हो।" 143

उस समय श्रा व स्ती मे इस प्रकार उत्पन्न (एक) अधिकरण था। तब श्रावस्तीके सघके अधिकरण-शमन (=फैसले)से असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओने सुना—'अमुक आवास (=मठ)मे बहुतसे वहुश्रुत०[2] शिक्षाकाम स्थविर विहार करते हैं, यदि वह स्थविर ध र्म, वि न य, शास्ताके शासनके अनुसार इस अधिकरणको शान्त करे, तो इस प्रकार यह अधिकरण अच्छी प्रकार शात हो जायेगा। तब वह भिक्षु उस आवासमे जा उन स्थविरो (=बृद्धो)से यह बोले—

"भन्ते ! यह अधिकरण इस प्रकार उत्पन्न हुआ, अच्छा हो भन्ते ! (आप सब) स्थविर इस अधिकरणको धर्म० से ऐसे शात कर दे, जिसमे कि यह अधिकरण अच्छी प्रकार शात हो जाये।"

तब उन स्थविरोने जैसा श्रावस्तीके सघने उस अधिकरणको शात किया था, और जैसा कि अच्छी तरह फैसला होता, उसी तरह उस अधिकरणको शात किया (=फैसला दिया)।

तब श्रावस्तीके सघके फैसलेसे भी असन्तुष्ट, वहुतसे स्थविरोके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओने सुना—'अमुक आवासमे तीन वहुश्रुत० स्थविर विहार करते हैं०।०।

तब श्रावस्तीके सघ०, बहुतसे स्थविरो०, (और) तीन स्थविरोके फैसलेसे भी असन्तुष्ट हुये उन भिक्षुओने सुना—'अमुक आवासमे दो बहुश्रुत ० स्थविर विहार करते हैं। ०।

० एक वहुश्रुत ० स्थविर विहार करते है। ०।

तब श्रावस्तीके सघ०, बहुतसे स्थविरो०, तीन०, दो०, (और) एक० स्थविरके फैसलेसे भी असतुष्ट हो वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण निहत (=खतम) हो गया, शात हो गया, अच्छी प्रकार शात हो गया।

"भि क्षु ओ ! अ नु म ति दे ता हूँ उ न भि क्षु ओ की स ज प्ति (=आगाही)से ती न (त र ह की) श ला का ओ की—(१) गू ढ क (=छिपी), (२) का न मे क ह ने के स हि त (=स क र्ण ज ल्प क), और (३) वि वृ त क (=खु ली)। 144

I १—गू ढ क श ला का ग्रा ह—"भिक्षुओ ! कैसे गूढक-शलाकाग्राह होता है ? उस श ला का ग्र हा प क भिक्षुको शलाकाएँ भिन्न रगोकी बना एक, एक भिक्षु के पास जाकर ऐसे कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीको दिखलाना'। यदि (वह) जाने कि अ ध र्म-वा दी[2] वहुतर है, तो—'ठीकसे नही ग्रहण की गई'—(कह)लौटा लेना चाहिये। यदि जाने ध र्म वा दी वहुतर है, तो—ठीकसे ग्रहण की गई—कहना (=अनुश्रावण करना) चाहिये। भिक्षुओ! इस प्रकार गू ढ क शलाका-ग्रा ह होता है। 145

---

[1] चुल्ल ४§३।५ पृष्ठ ४०३। [2] चुल्ल पृष्ठ ३१०।

२—स क र्ण ज ल्प क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! सकर्ण जल्पक-शलाकाग्राह होता है ?—उस शलाकाग्रहापकको एक एक भिक्षुके कानके पास जाकर कहना चाहिये—'यह इस पक्षवालेकी शलाका है, यह इस पक्षवालेकी शलाका है, जिसे चाहते हो उसे ग्रहण करो।' (उसके शलाका) ग्रहण कर लेनेपर कहना चाहिये—'मत किसीसे कहना।' यदि (वह) जाने कि अ ध र्म वा दी वहुत है, ०। भिक्षुओ ! इस प्रकार गूढक शलाकाग्राह होता है। 146

३—वि वृ त क श ला का ग्रा ह—"कैसे भिक्षुओ ! विवृतक शलाकाग्राह होता है ?—यदि (वह) जाने कि धर्मवादी[1] बहुतर (=बहुमतमे) है, तो बेफिक्र हो खुली (=विवृतक) शलाकाये ग्रहण कराये। भिक्षुओ ! इस प्रकार विवृतक शलाकाग्राह होता है।" 147

ख अ नु वा द - अ धि क र ण—अनुवाद-अधिकरण कितने (प्रकारके) शमथोसे शात होता है ?—चार शमथोसे शात होता है, (१) समुख-विनय, (२) स्मृति-विनय, (३) अमूढ विनय, और (४) तत्पापीयसिक। 148

(क्या कोई) अनुवाद-अधिकरण अमूढ-विनय और तत्पापीयसिकाको छोळ, (सिर्फ) समुख-विनय और स्मृति-विनय दो ही शमथोसे शात होनेवाला हो सकता है ?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस तरह ?—जब भिक्षु (एक) भिक्षुको निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते है, तो भिक्षुओ ! पूरी स्मृति रखनेवाला होनेपर उस भिक्षुको स्मृ ति - वि न य देना चाहिये। 149

1 a स्मृ ति - वि न य दे ने का ढ ग—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (स्मृति-विनय) देना चाहिये—उस भिक्षुको सघके पास जा ०[2] ऐसा कहना चाहिये—'भन्ते ! भिक्षु मुझे निर्मूल ही शीलभ्रष्ट होनेका लाछन लगाते हैं, सो मै पूरी स्मृति रखनेवाला हो सघसे स्मृति-विनयकी या च ना करता हूँ। दूसरी वार भी ०। तीसरी वार भी 'भन्ते ! ०।'

"तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—०[2]।

"ग धा र णा—'सघने इस नामवाले पूरी स्मृति रखनेवाले भिक्षुको स्मृति-विनय दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात (=फैसलाशुदा) कहा जाता है। किससे शात ?—समुख विनयसे भी, स्मृति-विनयसे भी। क्या है यहाँ समुख विनय ?—०[3]।

b स्मृ ति वि न य—"क्या है वहाँ स्मृति विनय ?—जो कि स्मृतिविनयवाले कर्मकी क्रिया—करना, उपगमन—अभ्युपगमन, स्वीकार, अपरित्याग है, यह है उसका स्मृतिविनय। भिक्षुओ ! इस प्रकार शात हुये अधिकरणको यदि कारक (=लगानेवाला) फिरसे उभाडे (=उत्कोटन करे), तो दु क्को ट न क - पा चि त्ति य हो। छन्द देनेवाला यदि पछतावे, तो खी य न क-पा चि त्ति य हो। 150

"(क्या किसी) अनुवाद अधिकरणमे स्मृ ति वि न य और त त्पा पी य सि का को छोळ (सिर्फ) समुख-विनय और अमूढ-विनय दो ही शमथ हो सकते है ?—हो सकते है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—जव भिक्षु उन्मत्त (=पागल), चित्त-विपर्यास (=विक्षिप्त चित्तता)को प्राप्त होता है, उस उन्मत्त ० भिक्षुने वहुत श्रमण विरुद्ध (आचरण) ० किया होता है। उसे भिक्षु उन्मत्त ० हो किये गये वहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्मोके लिये दोषारोपण कर चोदित करते है—याद है आयुष्मान्ने इस प्रकारकी आपत्ति की ?' वह ऐसा वोलता है—'आवुसो ! मै उन्मत्त ० हो गया था, उन्मत्त ० हो

---

[1] देखो महावग्ग १०§२।१ पृष्ठ ३३४। [2] ज्ञप्ति, और तीन अनुश्रावण करने चाहिये।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

मैंने वहुतसे श्रमण-विरुद्ध कर्म किये । मुझे वह याद नही, मैंने मूढ (=होशमे न हो) वह (काम) किये।' ऐसा कहनेपर भी चोदित करते ही थे—'याद है ०।' भिक्षुओ ! ऐसे आमूढ भिक्षुको अमूढ-विनय देना चाहिये। ०[1]। 151

"घ धा र णा—'सघने अमूढ होनेसे इस नामके भिक्षुको अ मू ढ - वि न य दे दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै धारणा करता हूँ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात कहा जाता है ?—समुख-विनयसे और अमूढ-विनयसे। क्या है वहाँ समुख-विनयमे ? ०[2]। क्या है वहाँ अमूढ-विनयमे ? —जो अमूढ-विनयवाले कर्मकी क्रिया—करना ०, यह है वहॉ अमूढ-विनयमे। ०[3] खी य न - पा चि त्ति य हो। 152

"(क्या किसी) अनुवाद-अधिकरणमे स्मृति-विनय और अमूढ-विनयको छोळ (सिर्फ) समुख-विनय और तत्पापीयसिक-विनय दो ही शमथ हो सकते है ?—हो सकते है—कहना चाहिये। किस प्रकार ?—जव भिक्षु (एक) भिक्षुपर सघके बीच गु रु क - आ प त्ति (=भारी अपराध)का आरोप कर चोदित करते है—'याद है, आयुष्मान् ! तुमने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति की है,जैसे कि—पा रा जि क और पाराजिकके समीपकी?' फिर छुळानेका प्रयास करते उसको उनसे फिर घेरते पूछते है—'जरूर आवुस ! तुम ठीकसे ख्याल करो कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है ० ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे नही याद है, कि मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिकी है ० ? हाँ आवुसो ! मुझे याद है, कि मैंने छोटी सी आपत्तिकी।' छुळानेका प्रयास करते उसको फिर घेरते है—'जरूर ! आवुस ! तुम ठीकसे ख्याल करो, कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति तुमने की है० ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! इस छोटी आपत्तिको मैंने करके इसे विना पूछे भी मै (जब) स्वीकार करता हूँ, तो क्या इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति, जैसे कि पाराजिक या पाराजिकके समीपकी, करके पूछनेपर मैं स्वीकार न करूँगा ?' वह ऐसा कहते है—'आवुस ! इस छोटी आपत्तिको तुमने करके, उसे विना पूछे ही स्वीकार कर लिया, तो भला इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति ० करके पूछनेपर तुम स्वीकार न करोगे ? जरूर ! आवुस ! तुम ठीकसे ख्याल करो, कि इस प्रकारकी गुरुक-आपत्तिको तुमने की है ० ?' वह ऐसा कहता है—'आवुसो ! मुझे याद है, मैंने इस प्रकारकी गुरुक-आपत्ति ० की है। दव (=मस्ती)से मैंने यह कहा, रव (=गफलत)से मैंने यह कहा—'आवुसो ! मुझे नही याद है ०।' तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म करना चाहिये। 153

II त त्पा पी य सि क—"और भिक्षुओ ! इस प्रकार (उसे) करना चाहिये। चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'भन्ते ! सघ मेरी सुने, इस नामके इस भिक्षुने सघके वीच गुरुक-आपत्तिके वारेमे पूछनेपर, इनकार करके स्वीकार किया, स्वीकार करके इन्कार किया, दूसरा इसका वहाना किया, जान वूझकर झूठ कहा। यदि संघ उचित समझे, तो सघ इस नामके भिक्षुका तत्पापीयसिक-कर्म करे—यह सूचना है। ०[4]।

ग धा र णा—'सघने इस नामवाले भिक्षुका तत्पापीयसिक कर्म किया। संघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।'

"भिक्षुओ ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात ?—समुख-विनय और तत्पापीय

---

[1] देखो चुल्ल० ४§२।२ पृष्ठ ४०० ।
[2] देखो चुल्ल० ४§३।५ (I) पृष्ठ ४१०-११ ।
[3] देखो ऊपर ।
[4] तीन अनुश्रावण भी पढ़ना चाहिये ।

सिकासे। क्या है वहाँ समुख-विनयमे ? ०[1]। क्या है वहाँ तत्पापीयसिकामे ? जो वह पापीयसिका-कर्मकी क्रिया=करना ०। खी य न - पा चि त्ति य हो। 153

(ग) आ प त्ति - अ धि क र ण का श म न—"आपत्ति-अधिकरण कितने शमथोसे शात होता है?—समुख-विनय, प्रतिज्ञातकरण, और तिणवत्थारकसे।

"(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक ति ण व त्था र क शमथको छोळ (बाकी) समुख-विनय और प्रतिज्ञातकरण दो शमथोसे शात हो सके?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार?—यहाँ एक भिक्षुने लघुक-आपत्ति (=छोटे अपराध)की होती है। तब भिक्षुओ! वह भिक्षु एक भिक्षुके पास जा एक कधेपर उत्तरासग कर (अपनेसे) वृद्ध भिक्षुओके चरणोमे वन्दना कर, उँकळू वैठ हाथ जोळ ऐसा कहे—'आवुस! मैंने इस नामके भिक्षुने आपत्ति की है, उस आपत्तिकी प्रतिदेशना (=Confession) करताहूँ।'

"उस भिक्षुको कहना चाहिये—'देखते (=दिलसे अनुभव करते) हो (उस आपत्तिको)'?"

'हाँ देखता हूँ।'

'भविष्यमे सयम करना।'

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससे शात? समुख-विनयसे और प्र ति ज्ञा त- क र ण (=स्वीकार)से। क्या है वहाँ समुख-विनयमे? ०[1]। क्या है वहाँ प्रतिज्ञातकरणमे?—जो (यह) प्रतिज्ञातकरण-कर्मकी क्रिया—करना ० दुक्को ट क-पा चि त्ति य हो।

"ऐसा कर पाये, तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको वहुतसे भिक्षुओके पास जा ० ऐसा कहना चाहिये— ०— उस आपत्तिकी प्रतिदेशना करता हूँ।'

"उन भिक्षुओको कहना चाहिये—'देखते हो'?"

'हाँ, देखता हूँ।'

'भविष्यमे सयम करना।'

"० दु क्को टि क - पा चि त्ति य हो।

"ऐसा कर पाये तो ठीक, न कर पाये तो भिक्षुओ! उस भिक्षुको सघके पास जा ० ऐसे कहना चाहिये—०[1] खी य न क - पा चि त्ति य हो।" 154

(क्या कोई ऐसा) आपत्ति-अधिकरण है जो एक प्रतिज्ञातकरण शमथको छोळ (बाकी) समुख-विनय और तिणवत्थारक दो शमथोसे शान्त हो सके?—हो सकता है—कहना चाहिये। किस प्रकार?—यहाँ भडन, कलह, ०[2] करते भिक्षुओने वहुतसे श्रमण-विरोधी—अपराध किये है ०[2]।

ग धा र णा—'हमने ० इन आपत्तियोकी सघके वीच ति ण व त्था र क देशना कर दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।'

"भिक्षुओ! यह अधिकरण शात कहा जाता है। किससेशात?—स मु ख - वि न य और ति ण व त्था र क से। क्या है वहाँ समुख-विनयमे?—०[3]। क्या है वहाँ तिणवत्थारकमे?—जो कि तिणवत्थारक-कर्मकी क्रिया=करना ० खी य न क - पा चि त्ति य हो। 155

(घ) कृ त्य - अ धि क र ण—"कृत्य-अधिकरण कितने शमथोसे शात होता है?—कृत्य-अधिकरण समुख-विनय एक शमथसे शात होता है।" 156

चतुर्थ समथक्खंधक समाप्त ॥४॥

---

[1] ऊपर ही जैसा। [2] देखो चुल्ल० ४§२।६ पृष्ठ ४०४-५।
[3] देखो चुल्ल० ४§३।५ पृष्ठ ४१०-११।

५–क्षुद्रकवस्तु-स्कन्धक

१—स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिंगच्छेद, पात्र-चीवर थैली आदि । २—विहारमें चबूतरे, शाला, कोठरी, आसन आदि । ३—पखा, छात्ता, छीका, दण्ड, नख-केश-कनखोदनी, अजनदानी । ४—सघाटी, कमरबन्द, घुण्डी मुद्धी, वस्त्र पहिननेका ढंग । ५—बोझ ढोना, दतवन, आग-पशुसे रक्षा । ६—बुद्ध-वचनकी भाषा अपनी-अपनी, व्यर्थकी विद्याका न पढना, सभामें बैठनेके नियम, लहसुनका निषेध । ७—पाखाना, वृक्ष-रोपण, वर्तन-चारपाई आदि सामान ।

§१–स्नान, लेप, गीत, आम-खाना, सर्प-रक्षा, लिंगच्छेद पात्र-चीवर, थैली आदि

१—राजगृह

(१) स्नान

१—उस समय बुद्ध भगवान्[1] राजगृहमे विहार करते थे। उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते हुए वृक्षसे शरीरको रगळते थे, जघाको, वाहुको, छातीको, पेटको, भी। लोग खिन्न होते, धिक्कारते थे—'कैसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण नहाते हुए वृक्षसे०, जैसे कि मल्ल (=पहलवान्) और मालिश करनेवाले'। । भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! नहाते हुए भिक्षुको वृक्षसे शरीर न रगळना चाहिये, जो रगळे उसको 'दुष्कृत'की आपत्ति है।" 1

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नहाते समय खम्भेसे शरीरको भी रगळते थे ०।—

"भिक्षुओ ! नहाते समय भिक्षुको खम्भेसे शरीरको न रगळना चाहिये, जो रगडे उसको दुक्कट (दुष्कृति)की आपत्ति है।" 2

३—० षड्वर्गीय भिक्षु ० दीवारसे शरीरको भी रगळते थे ०।—

"भिक्षुओ ! ० दीवारसे शरीरको न रगळना चाहिये, ० दुक्कटकी आपत्ति है।" 3

४—० षड्वर्गीय भिक्षु अस्थान (=अट्वान)[2] पर नहाते थे। लोग हैरान ० होते थे—(०) जैसे कि काम भोगी गृहस्थ। ० भगवान्से यह बात कही ०।—

"भिक्षुओ ! अट्वान पर नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 4

---

[1] छोटे दोषोकी बातोका अध्याय ।

[2] काष्ठके चार पावोवाली बळी-बळी चौकियाँ घाटपर रक्खी रहती थी, जिनपर नहानेके सुगधित चूर्णको बिखेरकर उनपर लेटकर शरीर रगळते थे (—अट्ठकथा)।

५—० षड्वर्गीय भिक्षु गधर्व-हस्त (=ग न्ध ब्ब ह त्थ)से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान्से यह बात कही ० ।—

"भिक्षुओ ! ग ध ब्ब ह त्थ से नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 5

६—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कु रु वि न्द क सु त्ति (=कुरुविन्दक शुक्ति)[1] से नही नहाना चाहिये, ०-दुक्कट ० ।" 6

७—० षड्वर्गीय ० । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! एक दूसरेके शरीरसे रगळकर नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 7

८—० षड्वर्गीय भिक्षु म ल्ल क[2]से नहाते थे । ० जैसे काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! म ल्ल क से नही नहाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 8

९—०उससमय एक भिक्षुको दाद (=कच्छुरोग)की बीमारी थी, मल्लक विना उसे अच्छा न होता था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोगीको बिना गढे म ल्ल क की ।" 9

१०—उस समय बुढापेसे कमजोर एक भिक्षु नहाते वक्त स्वय अपने शरीरको नही रगळ सकता था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ दु क्का सि का (=कपळा ऐठकर वनाया रगळनेका कोळा)-की ।" 10

११—उस समय भिक्षु पीठ रगळनेमे हिचकिचाते थे ।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हाथसे रगळनेकी ।" 11

(२) आभूषण

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु वाली, पा म ग (=लटकन), कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अगूठी धारण करते थे । ० काम भोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! वाली, लटकन, कर्णसूत्र, कटिसूत्र, खडुआ, केयूर, हस्ताभरण, अगूठीको नही धारण करना चाहिये, दुक्कट ० ।" 12

० षड्वर्गीय लबे केश रखते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

(३) केश, कघी दर्पण आदि

१—"भिक्षुओ ! लम्बे केश नही रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोष है । दो मासके या दो अगुल (लम्बे केशो)की अनुमति देता हूँ ।" 13

२—० षड्वर्गीय भिक्षु कोच्छ (=थकरी)से केशोको सँवारते थे, फण (=कघी)से०, हाथकी कघीसे०, खली (मिले) तेलसे०, पानी (मिले) तेलसे केशोको चिकनाते थे । ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! कोच्छ०, कघी०, हाथकी कघी०, खली-तेल०, पानी-तेलसे केशोको नही सँवारना

---

[1] चूर्ण लगाकर शरीर घिसनेका लकळीका हाथ ।

[2] कुरुविन्दक पत्थरके चूर्णको लाखसे पिण्डी बाँध गुल्लियाँ बनाई जाती थीं, जिससे नहाते वक्त शरीरको रगळा जाता था ।

[3] मकरकी नाकको काटकर वनाया ।

चाहिये, ० दुक्कट ०।" 14

३—० षड्वर्गीय भिक्षु दर्पणमे भी, जल भरे पानीमे भी मुखके प्रतिविम्बको देखते थे ।० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! दर्पण या जलपात्रमे मुखके प्रतिविम्बको नही देखना चाहिये, ० दुक्कट।" 15

४—उस समय एक भिक्षुके मुखमे घाव था। उसने भिक्षुओसे पूछा—'आवुसो ! मेरा घाव कैसा है?' भिक्षुओने कहा—'आवुस ! ऐसा है।' वह नही विश्वास करता था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति दे देता हूँ, रोग होनेपर दर्पण या जलपात्रमे मुँहकी छायाको देखनेकी ।" 16

(४) लेप, मालिश आदि

१—० षड्वर्गीय भिक्षु मुखपर लेप करते थे, मुखपर मालिश करते थे, मुखपर चूर्ण डालते थे, मैनसिलसे मुखको अंकित करते थे, अंगराग (=शरीरमें लगानेका रग) लगाते थे, मुखराग लगाते थे, अंगराग और मुखराग (दोनो) लगाते थे । ०जैसे कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! मुखपर लेप, ० मालिश नही करनी चाहिये, मुखपर चूर्ण नही डालना चाहिये, मैनसिल (=मन शिला)से मुखको अंकित नही करना चाहिये, अंगराग०, मुखराग०, अंगराग और मुख-राग नही लगाना चाहिये, जो लगाये उसे दुक्कटका दोष है ।" 17

२—उस समय एक भिक्षुको आँखका रोग था । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर मुखपर लेप करनेकी ।" 18

(५) नाच-तमाशा

१—उस समय राजगृहमे गिरग्ग-समज्ज (=पहाडके पास मेला) था । षड्वर्गीय भिक्षु गिरग्ग-समज्ज देखने गये । ० जैसे कामभोगी गृहस्थ ० । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! नाच, गीत, बाजेको देखने नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 19

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बे गानेके स्वरसे धर्म (=बुद्धके उपदेश-सूत्र)को गाते थे । लोग हैरान०होते थे—जैसे हम गाते है, वैसे ही लम्बे गानेके स्वरसे यह शाक्य-पुत्रीय श्रमण (=साधु) भी धर्मको गाते है । ० सचमुच ० । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ लम्बे गानेके स्वरसे धर्मके गानेमे यह पाँच दोष है—(१) अपने भी उस स्वरमे रागयुक्त होता है, (२) दूसरे भी उस स्वरमे रागयुक्त होते है, (३) गृहस्थ लोग भी होते है, (४) अलाप लेनेकी कोशिश करनेमे समाधि-भग होती है, (५) आनेवाली जनता उनका अनुसरण करती है।—भिक्षुओ ! यह पाँच दोष ० ।

"भिक्षुओ ! लम्बे गानेके स्वरसे धर्मको नही गाना चाहिये, जो गाये उसे दुक्कटका दोष है ।" 20

३—उस समय भिक्षु स्वरभण्यके[1] (साथ सूत्र पढने)मे हिचकिचाते थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ स्वरभण्यकी ।" 21

---

[1] वेदपाठियोकी भाँति स्वरसहित पाठ ।

(६) शौकके वस्त्र

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बा हि र लो मी (=बाहर रोम निकला ओढना) । ऊनी (चद्दर)को धारण करते थे। ० कामभोगी गृहस्थ । ० भगवान् ० ।—

"भिक्षुओ ! बाहिर लोमी ऊनीको नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 22

(७) आम खाना

१—उस समय म ग ध रा ज सेनिय बिम्बिसारके बागमे आम फले हुए थे। मगधराज सेनिय बिम्बिसारने अनुमति दे रक्खी थी—'आर्य (लोग) इच्छानुसार आम खावे।' षड्वर्गीय भिक्षुओने कच्चे आमोहीको तुळवाकर खा डाला। मगधराज ०को आमकी जरूरत हुई, उसने आदमियोसे कहा—

"जाओ, भणे ! आरामसे आम लाओ !"

"अच्छा देव !"—(कह) मगधराज० को उत्तर दे, आराममे जा उन्होने बागवानोसे यह कहा—

"भणे ! देवको आमोकी जरूरत है, आम दो !"

"आर्यो ! आम नही है, कच्चे ही आमोको तुळवाकर भिक्षुओने आम खा डाले।"

तब उन मनुष्योने जाकर मगधराज०से वह बात कह दी ।—

"भणे ! अच्छा हुआ, आर्योने खा लिया। और भगवान्ने (खानेकी) मात्रा भी कही है।"

लोग हैरान० होते थे—'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण मात्राको बिना जाने राजाके आम खाते है !'

०भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! आम नही खाना चाहिये, जो खाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 23

२—उस समय एक पू ग[1] ने सघको भोज दिया था, दालमे आमकी फारियाँ (=पेशिका) भी डाली हुई थी। भिक्षु हिचकिचाते उसे नही ग्रहण करते थे ।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ, अनुमति देता हूँ, आमकी फारियोकी ।" 24

३—उस समय एक पू ग ने सघको भोज दिया था। वह आमोकी फारी नही बना सके, इसलिये परोसनेके वक्त पूरे आमको ले पाँतीमे फिरते थे। भिक्षु हिचकिचाते न ग्रहण करते थे ।—

"भिक्षुओ ! ग्रहण करो, खाओ। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ पाँच श्रमणोके योग्य फलको खाने की आगसे छिलका उतारे, हथियारसे छिले, नखसे छिले, बेगुठलीके, और पाँचवे निब्बट्ट बीज (=बीजवाला फल)को। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन पाँच श्रमणोके योग्य फलको खानेकी।" 25

(८) सर्पसे रक्षा

१—उस समय एक भिक्षु साँपके काटनेसे मर गया था। भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! उस भिक्षुने चार स र्प-रा जो के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमे नही रक्खा। यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने चार सर्प-राजो (=अ हि रा जो)के कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमे रक्खा होता, तो वह भिक्षु साँपके काटनेसे न मरता। कौनसे चार अहि-राज कुल है ?—(१) वि रु पा क्ष अहि-राज-कुल, (२) ए रा प थ (=ऐरावत)अहिराजकुल, (३) छ ब्या पु त्त अहिराजकुल, (४) कण्हा-गोतमक (=कृष्ण गोतमक) अहिराजकुल। भिक्षुओ ! जरूर उस भिक्षुने इन चार सर्पराजकुलोके प्रति०। "भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ इन चार अहिराज-कुलोके प्रति मैत्रीभाव चित्तमे करनेकी, अपनी

---

[1] वणिक्-मडली ।

गुप्ती=अपनी रक्षाके लिये आत्म-प रि त्र (=०रक्षावाक्य) करनेकी। 2(

२—"और भिक्षुओ! इस प्रकार (परित्र=प रि त्त) करनी च

वि रु पा क्ष से मेरी मित्रता (है), ए रा प थ से मेरी मित्रता,
छ ब्या पु त्त से मेरी मित्रता, क ण्हा-गो त म क से मेरी मित्रत
अपादकों[1]से मेरी मित्रता (है), द्विपादकों[2]से मेरी मित्रता।
चौपायोसे मेरी मित्रता, वहुपदो[3]से मेरी मित्रता ॥(२)॥
मुझे अपादक पीळा न दे, मुझे द्विपादक पीळा न दे।
चतुष्पद मुझे पीळा न दे, मुझे वहुप्पद पीळा न दे ॥(३)॥
सभी सत्त्व=सभी प्राणी और सभी केवल भूत।
सभी कल्याणको देखे, किसीके पास वुराई न जावे ॥(४)॥

"वुद्ध अप्रमाण (=जिनका परिमाण नही कहा जा सकता) है, धा
है, साँप, विच्छू, कनखजूरा, मकळी, छिपकली, चूहे—(आदि) सभी
प्रमाणवाले (=परिमित) है। मैने रक्षा कर ली, मैंने प रि त्त कर लिया,
सो मै भगवान्‌को नमस्कार करता हूँ, सातो[3] सम्यक् सवुद्धोको नमस्कार

(९) लिगच्छेदन

उस समय एक भिक्षुने वासनासे पीडित हो अपने लिगको काट दिया।
"भिक्षुओ! दूसरेको काटना था, उस मोघपुरुष (=निकम्मे आदम
"भिक्षुओ! अपने लिगको न काटना चाहिये, जो काटे उसे थु ल

(१०) पात्र

(क) पू र्व क था—उस समय रा ज गृ ह के श्रेष्ठीको एक महार्घ
मिली थी। तव राजगृहके श्रेष्ठीके मनमे हुआ—'क्यो न मै इस चन्दनग
मेरे कामका होगा, और पात्र दान दूंगा।' तव राजगृहके श्रेष्ठीने उस च
सीकेमे रख, वॉसके सिरेपर लगा, एकके ऊपर एक वॉसोको बँधवाकर
अर्हत् या ऋद्धिमान् हो (वह इस दान) दिये हुए पात्रको उतार ले।"

पूर्ण काश्यप जहाँ राजगृहका श्रेष्ठी रहता था, वहाँ गये। और जाक
"गृहपति! मै अर्हत् हूँ, ऋद्धिमान् भी हूँ। मुझे पात्र दो।"

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत् और ऋद्धिमान् है, तो दिया ही

तव म क्ख ली गो सा ल (=मस्करी गोशाल)०। अ जि त
का त्या य न०। स ज य वे ल ट्ठि-पुत्त०। नि ग ठ ना थ-पु त्त०। जहाँ
गये। जाकर राजगृहके श्रेष्ठीसे बोले—"गृह-पति! मै अर्हत् हूँ, और ऋ

"भन्ते! यदि आयुष्मान् अर्हत्०।"

उस समय आयुष्मान् मौ द् ग ल्या य न और आयुष्मान् पि डो ल
सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर ले राज-गृहमे पिंड (=भिक्षा)के लिये

"आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अर्हत् है, और ऋद्धिमान भी जाइये आयुष्मान् मौद्गल्यायन ! इस पात्रको उतार लाइये। आपके लिये ही यह पात्र है।"

"आयुष्मान् पिडोल भारद्वाज अर्हत् है, और ऋद्धिमान् भी०।"

तब आयुष्मान् पिंडोल भारद्वाजने आकाशमे उळकर, उस पात्रको ले, तीन बार राजगृहका चक्कर दिया। उस समय राजगृहके श्रेष्ठीने पुत्र-दारा-सहित हाथ जोळ, नमस्कार करते हुए अपने घरपर खळे हो—

"भन्ते ! आर्य-भारद्वाज ! यही हमारे घरपर उतरे।"

आयुष्मान् पिडोल भारद्वाज राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उतरे (=प्रतिष्ठित हुए)। तब राजगृहके श्रेष्ठीने आयुष्मान् पिडोल भारद्वाजके हाथमे पात्र लेकर, महार्घ खाद्यसे भरकर उन्हे दिया। आयुष्मान् पिडोल भारद्वाज पात्र-सहित आराम (=निवास-स्थान)को गये। मनुष्योने सुना—आर्य-पिडोल भारद्वाजने राजगृहके श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। वह मनुष्य हल्ला मचाते आयुष्मान् पिडोल भारद्वाजके पीछे पीछे लगे। भगवान्ने हल्लेको सुना, सुनकर आयुष्मान् आनन्दको सबोधित किया—"आनन्द ! यह क्या हल्ला-गुल्ला है ?"

"आयुष्मान् पि डो ल भा र द्वा ज ने भन्ते ! रा ज गृ ह के श्रेष्ठीके पात्रको उतार लिया। लोगोने (इसे) सुना०। भन्ते ! इसीसे लोग हल्ला करते आयुष्मान् पिडोल-भारद्वाजके पीछे पीछे लगे है। भगवान् वही यह हल्ला है।"

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे, भिक्षु-सघको जमा करवा, आयुष्मान् पिडोल भारद्वाजसे पूछा—

"भारद्वाज ! क्या तूने सचमुच राजगृहके श्रेष्ठीका पात्र उतारा ?"

"सचमुच भगवान् !"

भगवान्ने धिक्कारते हुए कहा—

"भारद्वाज ! यह अनुचित है प्रतिकूल=अ-प्रतिरूप, श्रमणके अयोग्य, अविधेय=अकरणीय है। भारद्वाज ! मुवे लकळीके वर्तनेके लिये कैसे तू गृहस्थोको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य दिखायेगा। । भारद्वाज ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।" (इस प्रकार) धिक्कारते (हुए) धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोको उत्तर-मनुष्य-धर्म ऋद्धि-प्रातिहार्य न दिखाना चाहिये, जो दिखाये उसको 'दुष्कृत'की आपत्ति। भिक्षुओ ! इस पात्रको तोळ, टुकळा-टुकळाकर, भिक्षुओको अंजन पीसनेके लिये दे दो। भिक्षुओ ! लकळीका वर्तन न धारण करना चाहिये। ०'दुष्कृत'।"

"भिक्षुओ ! सुवर्णमय पात्र न धारण करना चाहिये, रौप्यमय०, मणि-मय०, वैदुर्यमय०, स्फटिकमय०, कसमय, कॉचमय, रॉगेका० सीसेका०, ताम्रलोह (=ताँवा) का०, 'दुष्कृत'। भिक्षुओ ! लोहेके और मिट्टीके—दो पात्रोकी अनुज्ञा देता हूँ।" 28

उस समय पा त्र (=भिक्षापात्र)की पेंदी घिस जाती थी। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पा त्र म ड ल (=पात्रके नीचे रखनेकी गेडुरी)की।" 29

(ख) नि य म—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मडलको धारण करते थे। ०जैसे कामभोगी गृहस्थ। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ ! सुनहले, रुपहले नाना प्रकारके पात्र-मडलको नही धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ राँगे और सीसे इन दो प्रकारके पात्रमडलकी।" 30

२—अधिक म ड ल ठीक न आते थे।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रेखा डालनेकी।" 31

४—शिकन (=वलि) पळ जाती थी।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ मकरदत (=मगरदन्ती खूँटी) काटनेकी।" 32

५—उस समय षड्वर्गीय रूप (=मूर्ति) खीचे हुए, भित्तिकर्म किये (=रगसे चित्र खीचे) चित्र (विचित्र) पात्र-मडलको धारणकर सळकपर घूमते थे। लोग हैरान० होते थे०। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! रूप खीचे हुए, रगसे चित्र खीचे पात्र-मडलको न धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ प्रकृतिमडलकी।" 33

६—उस समय भिक्षु पानीसहित पात्रको सँभाल रखतेथे, पात्रमे दुर्गन्ध आने लगती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! पानीसहित पात्रको नही रख छोडना चाहिये, जो रख छोळे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, धूप दिखलाकर पात्रको रखनेकी। 34

७—पानी सहित पात्रको तपाते थे, पात्रमे दुर्गन्ध आती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०पानीसहित पात्रको न तपाना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पानी खाली कर धूप दिखला पात्रको रखनेकी। 35

८—०धूपमे पात्रको डाहते थे, पात्रका रग विकृत होता है। ०—

"०धूपमे पात्रको नही डाहना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ, मूहूर्तभर धूपमे रख पात्रको रख देनेकी।" 36

९—०उस समय बहुतसे पात्र खुली जगहमे आधारके विना रक्खे थे, बवडरने आकर पात्रोको तोळ दिया। भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके आधारकी।" 37

१०—०उस समय भिक्षु वारीपर पात्रको रखते थे, गिरकर पात्र टूट जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! वारीपर पात्रको न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 38

११—उस समय भूमिपर पात्रको औधा देते थे, पात्रोकी वारी घिस जाती थी। ०भगवान्०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, (नीचे) तृण बिछानेकी।" 39

१२—तृणके बिछौनेको कीळे खा जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, चोलक (=पोतन)की।" 40

१३—चोलकको कीळे खा जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्र-मालक (=घिडौची? घळथही)की।" 41

१४—पात्र-मालकसे गिरकर पात्र टूट जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्र-कडोलिका (=गेळुल)की।" 42

१५—पात्र-कडोलिकासे पात्र घिस जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, पात्रके थैले (=स्थविका)की।" 43

१६—सबधक (=गर्दन बाँधनेका बधन) न था। ०भगवान्०।—

"०अनुमति देता हूँ सबधककी, और बाँधनेकी सुतलीकी।" 44

१७—उस समय भिक्षु भीतकी खूँटीपर, नागदन्तक (=हथिदन्ती खूँटी)पर भी पात्रको लटका देते थे, गिरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको नही लटकाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 45

१८—उस समय भिक्षु चारपाईपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे चारपाईपर बैठते समय उतरकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"०पात्रको चारपाईपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 46

१९—०चौकीपर पात्र रख देते थे, याद न रहनेसे०। ०।—

"०पात्रको चौकीपर न रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 47

२०—उस समय भिक्षु पात्रको अक (=गोद)मे ले रखते थे, याद न रहने ०। ०।—

"०अकमे पात्र नही रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 48

२१—० छत्तेपर पात्रको रख देते थे, ऑधी आनेपर छत्ते के उठ जानेसे पात्र गिरकर टूट जाता था। ०।—

"० छत्तेपर पात्रको न रखना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 49

२२—उस समय भिक्षु पात्रको हाथमे लिये किवाळको खोलते थे, किवाळसे लगकर पात्र टूट जाता था। ०।—

"० पात्रको हाथमे ले किवाळ न खोलना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 50

२३—उस समय भिक्षु तूँबेके खप्परको ले भिक्षा मॉगने जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कि तीर्थिक। ०।—

"० तूँबेके खप्परमे भिक्षा माँगने नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। 51

२४—० घळेके खप्परमे ०। ० जैसे तीर्थिक। ०।—

"० घळेके खप्परमे भिक्षा मॉगने नही जाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 52

(११) चीवर

१—उस समय एक भिक्षु सर्वपासुकूलिक (=जिसके सभी कपळे रास्तेके फेंके चीथळोको सीकर बने हो)था, उसने मुर्देकी खोपळीका पात्र धारण किया। एक स्त्री देख डरके मारे चिल्ला उठी—'अभ्भु[1] मे! अभ्भु मे!! यह पिशाच है रे!!!' लोग हैरान ० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण मुर्देकी खोपळीके पात्रको धारण करेंगे, जैसेकि पिशाचिल्लकामे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० मुर्देकी खोपळीका पात्र नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 53

भिक्षुओ! सर्व पासुकूलिक नही होना चाहिये, ० दुक्कट ०। 54

२—उस समय भिक्षु च ल को (=चाभ कर फेकी चीजो को भी) (खाकर फेकदी गई) हड्डियोको भी, जूठे पानीको भी पात्रमे ले जाते थे। लोग हैरान ० होते थे—यह शाक्यपुत्रीय श्रमण जिसमे खाते है, वही इनका प्रतिग्रह (=दान) है। ०।—

"० पात्रमे चलक, हड्डी (और) जूठे पानीको नही ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, प्रतिग्रहकी।"55

३—उस समय भिक्षु हाथसे फाळकर चीवरको सीते थे, चीवर ठीक नही (=विलोम) होता था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ स त्थ क (=कैंची) और न म त क (=वस्त्र-खड) की।" 56

[1] डरके वक्त निकला शब्द (—अट्ठकथा)।

(१२) शस्त्र आदि

१—उस समय संघको दंड-सत्थक (=भुजाली) मिला था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, दंड-सत्थककी।" 57

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोने-रूपे (आदि) नाना तरहके सत्थक-दंड (=हथियार) को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०भगवान्०।—

"भिक्षुओ! सोने-रूपे (आदि) नाना तरहके सत्थक-दंडोंको नहीं धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सींग, नल (=नरकट), बाँस, काठ, लाख, फल, लोह (=ताँबा), शंखनाभि (=शंख) के सत्थके दंडोंकी।" 58

३—उस समय भिक्षु सुईको पाँगसे भी, बाँसकी सलीसे भी चीवरको सीते थे, चीवर ठीकसे न सिलता था। ०।—

"अनुमति देता हूँ, सूईकी।" 59

४—सूइयाँ मुर्चा खा जाती थीं।—

"०अनुमति देता हूँ, सूई (रखनेके लिये) नालिकाकी।" 60

नालिकामें होनेपर भी मुर्चा खा जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ किण्व (=चूर्ण)से भरनेकी।" 61

५—किण्व होनेपर भी मुर्चा खा जाती थी।

"०अनुमति देता हूँ सत्तूसे भरनेकी।" 62

६—सत्तूसे भी मुर्चा खा जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, सरितक (=पाषाण-चूर्ण)की।" 63

७—सरितकसे भी मुर्चा खा जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, मोमसे लपेटनेकी।" 64

८—सरितक टूट जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ मधुसित्थककी, सिपाटिका (=गोंदकी)की।" 65

(१३) कठिन-चीवर

(क) कठिनका फैलाना—उस समय वहाँ कील गाळकर (उससे) बाँध चीवरको सीते थे, चीवर बेढंगे कोनोवाला हो जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिन[1], कठिनकी रस्सीकी, उसमें बाँधकर चीवर सीना चाहिये। 66

ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर कठिनको फैलाते थे, कठिन टूट जाता था। ०।—

"ऊभळ-खाभळ (भूमि)पर कठिनको नहीं फैलाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 67

भूमिपर कठिनको फैलाते थे, कठिनमें धूल लग जाती थी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, तृणके बिछौनेकी।" 68

कठिनका छोर निर्बल हो जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, हवा आनेके रुख परिभंड (=ओट)के रखनेकी।" 69

(ख) कठिनकी सिलाई—कठिन पूरा न हो सकता था।—

"०अनुमति देता हूँ, दंडकठिनकी (=चौखटा), पिदलक (=खपाच), शलाका,

---

[1] सीनेका फट्ठा।

बाँधनेकी रस्सी, बाँधनेके सूतसे बाँधकर चीवरके सीनेकी।" 70

सु त्ता न्त रि का ये (=टाँके) बराबर न होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, कलम्बक (=पटियाना)की।" 71

सूत टेढे हो जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मो घ सु त्त क (=लगर)की।" 72

उस समय भिक्षु बिना पैर धोये क ठि न पर च ढ ते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०बिना पैर धोये कठिनपर नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 73

उस समय भिक्षु गीले पैरो कठिनपर चढ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०गीले पैरो कठिनपर नही चढना चाहिये, ०दुक्कट०।" 74

उस समय भिक्षु पैरमे जूता पहिने कठिनपर चढ जाते थे, कठिन मैला हो जाता था। ०।—

"०पैरमे जूता पहिने कठिनपर न चढना चाहिये, ०दुक्कट०।" 75

(ग) मि ज्रा ब कैं ची आ दि—उस समय भिक्षु चीवर सीते वक्त अँगुलीसे पकळते थे, अँगुलियाँ रुक्ष (=खुर्दरी) हो जाती थी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह (=मिज्राब)की।" 76

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके प्र ति ग्र ह को धारण करते थे।० जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०।—

"० सोना, रूपा (आदि) नाना प्रकारके परिग्रहको नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी,०[1] शखके (प्रतिग्रह)की।" 77

उस समय स त्थ क (=कैंची) और प्र ति ग्र ह (=मिज्राब) दोनो खो जाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, आवेसन-वित्थक (=सियनी)की।" 78

आवेसन-वित्थक उलझ जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, प्र ति ग्र ह की थैलीकी।" 79

कधे (पर थैलीको लटकाने)का बधन न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कधेपर बाँधनेके सूतकी।" 80

(घ) क ठि न शा ला—उस समय भिक्षु खुली जगहमे चीवर सीते थे। भिक्षु सर्दीसे भी तकलीफ पाते थे, गर्मीसे भी। ०।—

"०अनुमति देता हूँ कठिनशालाकी, कठिन-मडपकी।" 81

कठिनशाला नीची कुर्सीकी थी, पानी भर जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीकि ऊँची बनानेकी।" 82

चुनावट गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीनकी चुनाईकी।" 83

चढनेमे दु ख पाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी इन तीन प्रकारकी सीढीकी।" 84

चढते वक्त गिर जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ आलम्बन-बाहकी।" 85

---

[1] देखो चुल्ल० ५§१।१२ (२) पृष्ठ ४२६।

कठिनशालामे तृण-चूर्ण गिर जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्वन (=लेवारना) करके सफेद, काला, गेरूसे रँगने, माला, लता, मकरदन्त, पाँच पाटीके चीवरके वाँस, चीवरकी रस्सीकी।" 86

उस समय भिक्षु चीवर सीकर क ठि न (=फट्टा) को वही छोळ चले जाते थे, गिरकर कठिन टूट जाता था। ०।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भीतकी खूँटीपर नागदन्त(=हथिदन्ती खूँटी)पर लटकानेकी।" 87

२—वैशाली

तव भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर जिधर वै शा ली है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। उस समय भिक्षु सूई भी, सत्थक (=कैंची) भी, भैपज्य भी पात्रमे लेकर जाते थे। ०।—

(१४) थैली

"०अनुमति देता हूँ, भैपज्यकी थैली (=स्थविका)की।" 88

कधे (पर लटकानेका)का वधन न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, कधेके वधनकी, वधनके मूतकी।" 89

उस समय एक भिक्षु कायवधन (=कमरवद)से जूतेको बाँध गाँवमे भिक्षाके लिये गया। एक उपासकका शिर वदना करते वक्त जूतेसे लग गया। वह भिक्षु गुम हो गया। तव उस भिक्षुने आराममे जा भिक्षुओसे यह वात कही। भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, जूता (रखने)की थैलीकी।" 90

कधे (पर लटकानेका) वधन न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, कधेके वधनकी, वधनके सूतकी।" 91

(१५) जलछक्का

उस समय रास्तेमे (चलते) पानी अकल्प्य (=व्यवहारके अयोग्य था, और) जलछक्का (=परिस्रावण) न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, जलछक्केकी।" 92

चोलक (=कपळा) ठीक न आता था।—

"०अनुमति देता हूँ (लकळीके मेखलेमे मढकर बने) कलछी जैसे जलछक्केकी।" 93

चोळकसे काम न चलता था।—

"०अनुमति देता हूँ धर्मकरक (=गळुए)की।" 94

उस समय दो भिक्षु को स ल देशमे रास्तेमे जा रहे थे। एक भिक्षु अनाचार (=ठीक आचार न) करता था, दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! मत ऐसा कर, यह विहित नही है।"

उसने उसके प्रति गाँठ बाँध ली। तव प्याससे पीळित हो उस भिक्षुने गाँठ बाँध लिये भिक्षुसे यह कहा—

"आवुस! मुझे जलछक्का दो, पानी पिऊँगा।"

गाँठ बाँधे भिक्षुने न दिया। वह भिक्षु प्यासके मारे मर गया। तब उस भिक्षुने आराममे जा भिक्षुओसे वह वात कही।—

"क्या आवुस! माँगनेपर तूने जलछक्का नही दिया?"

"हाँ, आवुसो !"

जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—०। —सचमुच०" ।०—

"भिक्षुओ ! रास्तेमे जाते जलछक्का माँगनेपर देनेसे इन्कार नही करना चाहिये, जो न दे उमे दुक्कटका दोप हो। 95

"भिक्षुओ ! विना जलछक्केके रास्तेमे नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 96

"यदि जलछक्का न हो, तो संघाटीके कोनेसे ही छानकर पीनेका इरादा रखना चाहिये।"

§२—बिहार-निर्माण

(१) नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)

तब भगवान् क्रमश चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ गये। वहाँ भगवान् वैशालीमे महावनकी कूटागारशालामे विहार करते थे। उस समय भिक्षु नवकर्म (=नई इमारत बनवाना) करते थे, जलछक्का काम न दे सकता था। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, डडेमे लगे जलछक्केकी।" 97

डडेमे लगा जलछक्का भी काम न दे सकता था।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ ओत्थरक (=छन्ना)की।" 98

उस समय भिक्षु मच्छरोसे सताये जाते थे।०।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, मसहरीकी।" 99

उस समय वैशालीमे अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ था। भिक्षु अच्छे अच्छे भोजोको खाकर शरीरके अभिसन्न (=सन्न) होनेसे बहुत बीमार रहा करते थे। तब जीवक कौमारभृत्य किसी कामसे वैशाली गया। जीवक कौमारभृत्यने —होनेसे बीमार पळे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे जीवक कौमारभृत्यने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! इस समय वैशालीमे अच्छे अच्छे भोजोका सिलसिला लगा हुआ है। भिक्षु० बहुत बीमार पळे हुए है। अच्छा हो, भन्ते ! भगवान् भिक्षुओके लिये चक्रम (=टहलनेकी जगह) और जन्ताघर (=स्नानगृह)की अनुमति दे, इस प्रकार भिक्षु बीमार न पळेगे।"

तब भगवान्ने जीवक कौमारभृत्यको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित=सप्रहर्षित किया। तब जीवक कौमारभृत्य० प्रहर्षित हो आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओ को सबोधित किया—

(२) चक्रम, जन्ताघर

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चक्रम और जताघरकी।" 100

उस समय भिक्षु ऊभळ खाभळ चक्रमपर टहलते थे, पैर दर्द करते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, समतल करनेकी।" 101

चक्रम नीची कुर्सीका था, पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुर्सीके करनेकी।" 102

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ ईट, पत्थर और लकळी—तीन प्रकारकी चुनाईकी।" 103

चढनेमे तकलीफ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढियोकी—ईंटकी सीढी, पत्थरकी सीढी, लकळीकी सीढीकी।" 104

चढते समय गिर पळते थे।—

"०अनुमति देता हूँ बाही (=आलम्बन बाह)की।" 105

उस समय भिक्षु टहलते वक्त गिर पळते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ, चक्रमकी वेदीकी।" 106

उस समय भिक्षु चौळेमे टहलते सर्दी गर्मीसे तकलीफ पाते थे। ०।—

"०अनुमति देता हूँ घेरकर (ओगुम्बेत्त्वा) लीपने पोतनेकी,सफेद, काला, (या) गेरूसे रँगनेकी, माला, लता, मकरदन्त, पचपटिका (=पाँच पाटीके चीवरके पाँस), चीवर टाँगनेके अर्गन (=बाँस-रस्सी)के बनानेकी।" 107

जन्ताघर नीची कुर्सीका होता था, (बरसातमें) पानी लग जाता था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीका करनेकी।" 108

चिनाई गिर पळती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर, और लकळी—तीन प्रकारकी चिनाईकी।" 109

चढनेमे तकलीफ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढियोकी—ईंटकी सीढी, पत्थरकी सीढी (और) लकळीकी सीढीकी।" 110

चढते समय गिर पळते थे।—

"०अनुमति देता हूँ बाँहीकी।" 111

जन्ताघरमे किवाळ न होता था।—

"०अनुमति देता हूँ किवाळ, पृष्ठ-सघाट (=बिलाई), उलूखल (=देहरी), उत्तरपाशक (=सद्दल), अर्गलवर्तिक (=कपाट), कपिसीसक (=खूँटी), सूची (=कुजी), घटिक (=ताला), ताल-छिद्र (=तालेका छिद्र), आविञ्जनच्छिद्द (=रस्सीका छिद्र), आविञ्जनरज्जु (=लटकन रस्सी)की।" 112

जन्ताघरकी भीतकी जळ खियाती (=घिसती) थी।०—

"०अनुमति देता हूँ मेडरी बनानेकी।" 113

जन्ताघरमे धूमनेत्र (=धुँआ निकालनेकी चिमनी) न था। ०।—

"०अनुमति देता हूँ धूमनेत्रकी।" 114

उस समय भिक्षु छोटे जन्ताघरके बीचमे आगका स्थान भी बनाते थे। आने-जानेका अवकाश न रहता था।—

"०अनुमति देता हूँ, छोटे जन्ताघरमे एक ओर आगका स्थान बनानेकी, और बळे जन्ताघरमे बीचमे।" 115

जन्ताघरमे अग्निमुख (=पुत्ता) जल जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मुँहपर मिट्टी देनेकी।" 116

हाथमे मिट्टी भिगाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ मिट्टीके (भिगानेके लिये) दोनकी।" 117

मिट्टीमे दुर्गन्ध आती थी।—

"०अनुमति देता हूँ मिट्टीको वासनेकी ।" 118

जन्ताघरमे आग कायाको जलाती थी ।—

"०अनुमति देता हूँ पानी लाकर रखनेकी ।" 119

थालीमे भी पात्रमे भी पानी लाते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके स्थान (=उदकाधान)की, शराव (=पुरवे)की ।" 120

तृणसे छाया जन्ताघर कूळेसे भर जाता था ।—

"०अनुमति देता हूँ घेरकर लीपने-पोतनेकी ।" 121

जन्ताघरमे कीचळ हो जाती थी—

"०अनुमति देता हूँ ईट, पत्थर और लकळी—(इन) तीन प्रकारके विछावकी ।" 122

"०अनुमति देता हूँ, धोनेकी ।" 123

पानी लग जाता था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी ।" 124

उस समय भिक्षु जन्ताघरमे जमीनपर बैठते थे, शरीरमे खुजली होती थी ।—

"०अनूमति देता हूँ, जन्ताघरकी चौकीकी ।" 125

उस समय जन्ताघर घिरा न होता था ।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर और लकळी (इन) तीनके प्राकारोसे (जन्ताघरको) घेरनेकी ।" 126

(३) कोष्ठक

कोष्ठक (=द्वारका कोठा) न होता था ।—

"०अनुमति देता हूँ कोष्ठककी ।" 127

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुर्सीके (कोष्ठक)की ।" 128

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर और लकळी तीन प्रकारकी चिनाईकी ।" 129

"०अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी सीढियोकी—ईटकी सीढी, पत्थरकी मीढी और लकळीकी सीढीकी ।" 130

"०अनुमति देता हूँ बॉहीकी ।" 131

"०अनुमति देता हूँ किवाळ०[1] आविञ्जनरज्जुकी ।" 132

"०अनुमति देता हूँ मेडरी बनानेकी ।" 133

उस समय कोष्ठकमे तिनकोका चूरा गिरता था ।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[2] पचपटिकाकी ।" 134

कीचळ होता था ।—

"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=चूर्ण) फैलानेकी ।" 135

नही पूरा पडता था—

"०अनुमति देता हूँ पदरसिला (=गिट्टी) विछानेकी ।" 136

पानी पळा रहता था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी ।" 137

---

[1]चुल्ल० ५§२१२ पृष्ठ ४३० (112) । [2]चुल्ल० ५§२१२ पृष्ठ ४३० (107) ।

उस समय भिक्षु नगे होते एक दूसरेकी वदना करते कराते थे। एक दूसरेकी मालिश करते थे, एक दूसरे को (चीजे) देते थे, ग्रहण करते थे, खाते थे, आस्वादन करते थे, पीते थे। ०।—

"भिक्षुओ! नगा होते एक दूसरेकी वदना न करनी करानी चाहिये। एक दूसरेकी मालिश न करनी चाहिये, एक दूसरेको देना न चाहिये, ग्रहण न करना चाहिये, न खाना आस्वादन करना, (और) पीना चाहिये। जो वदना करे० पीये उसे दुक्कटका दोष हो।" 138

उस समय भिक्षु जन्ताघरमे जमीनपर चीवर रखते थे, चीवरमे धूल लग जाती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, जन्ताघरमे चीवर (टाँगनेके) बाँस और रस्सीकी।" 139

वर्षा होनेपर चीवर भीग जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ जन्ताघर-शालाकी।" 140

"०अनुमति देता हूँ ऊँची कुरसीकी करनेकी।" 141

"०अनुमति देता हूँ, ०[1] चिननेकी।" 142

"०अनुमति देता हूँ, ०[2] सीढीकी।" 143

"०अनुमति देता हूँ, बाहीकी।" 144

जन्ताघरकी शालामे तिनकेका चूरा पळता था—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[3] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीके बनानेकी। 145

उस समय भिक्षु जताघरमे और पानीमे नगे हो मालिश करनेमे हिचकिचाते थे।०।—

"०अनुमति देता हूँ, तीन प्रकारके पर्दे (मे नगे होने)की—जन्ताघरका पर्दा, पानीका पर्दा, (और) वस्त्रका पर्दा।" 146

(४) पानीके स्थान

उस समय जन्ताघरमे पानी नही रहता था।—

"०अनुमति देता हूँ उ द पा न (=घिळौंची)की।" 147

उदपानका कूल (=वारी) टूटता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट पत्थर और लकळीकी चिनाईकी।" 148

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची कुरसी बनानेकी।" 149

"०अनुमति देता हूँ, तीन प्रकारकी सीढियोकी०।" 150

"०अनुमति देता हूँ, बाँहीकी।" 151

उस समय भिक्षु वल्लीसे भी, कमरवदसे भी पानी निकालते थे—

"०अनुमति देता हूँ, पानी निकालनेके (=कूँएँ)की रस्सीकी।" 152

हाथमे दर्द होने लगता था—

"०अनुमति देता हूँ, तुला (=ढेकली), करकटक (=पुर) और चक्कवट्टक (=रहट)की।" 153

बर्तन बहुत टूटते थे—

"०अनुमति देता हूँ, तीन वारको (=रक्षको)की—लोहवारक, दारु-वारक और चर्म-खडकी।" 154

उस समय भिक्षु खुली जगहसे पानी निकालते वक्त सर्दीमे भी गर्मीमे भी कष्ट पाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, भिक्षुको उदपान-शाला (=कूँएँ परकी छाजन)की।" 155

---

[1] देखो पृष्ठ ४३०-३१ (107,127)।

[2] देखो पृष्ठ ४३१ (129)।

[3] देखो पृष्ठ ४३१ (130)।

उदपान-शालामे तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बनकर०[१] पचपटिका, चीवर (टाँगने)के बाँस रस्सीकी।" 156

उदपान (=कुआँ) ढँका न होता था, तिनकेका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पिहान (पिधान, ढक्कन)की।" 157

पानीका वर्तन न था—

"०अनुमति देता हूँ, पानीके दोनके, पानीके कडारकी।" 158

उस समय भिक्षु आराममे जहाँ तहाँ नहाते थे, उन्हे उससे आराममे कीचळ (=चिक्खल्ल) हो जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, च न्द नि का (=हौज)की।" 159

चन्दनिका ढँकी न होती थी।, भिक्षु नहानेमे लजाते थे—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळी—तीन प्रकारके प्राकारोसे घेरनेकी।" 160

चन्दनिकामे कीचळ हो जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळी इन तीन प्रकारके विछावकी।" 161

पानी लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 162

उस समय भिक्षुओके शरीर भीगे रहते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ अगोछे (=उदकपुछन चोलक)से सुखानेकी।" 163

उस समय एक उपासक सघके लिये पुष्करिणी वनवाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पुष्करिणीकी।" 164

पुष्करिणीका कूल (=किनारा) गिर जाता था—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 165

"०अनुमति देता हूँ, सीढीकी—०।" 166

"०अनुमति देता हूँ, वाहीकी।" 167

पानी पुराना हो जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी, पानीकी नहरकी।" 168

उस समय एक भिक्षु सघके लिये निल्लेख (=मुँडेरेवाला) जन्ताघर वनाना चाहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, निल्लेख जन्ताघरकी।" 169

(५) आसन, शय्या

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु चौमासे भर आसनी (=निपीदन)ले प्रवास करते थे।०—

"०भिक्षुओ! चौमासे भर आसनी ले प्रवास न करना चाहिये, जो प्रवास करे, उसे दुक्कटका दोप हो।" 170

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु फूल विखेरी शय्यापर सोते थे। लोग विहारमे घूमते वक्त (उन्हे) देखकर हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"०भिक्षुओ! फूल विखेरी शय्यापर न सोना चाहिये,० दुक्कट०।" 171

उस समय लोग गधकी माला भी लेकर आराममे आते थे। भिक्षु सदेहमें पळ नही लेते थे।०—

---

[१] देखो पृष्ठ ४३० (107)।

"०अनुमति देता हूँ, गधको ग्रहणकर किवाळमे पाँच अँगुलियोके छाप (=पचाँगुलिक) देनेकी, और फूलोको ग्रहण कर विहारके एक ओर रख देनेकी।" 172

उस समय सघको न म त क (=वस्त्र-खड) मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, नमतककी।" 173

तव भिक्षुओको यह हुआ—'क्या नमतकका इस्तेमाल (=अधिष्ठान) करना चाहिये, या विकल्प (=वारीसे इस्तेमाल) करना चाहिये ?'—

"भिक्षुओ ! नमतकका न अधिष्ठान करना चाहिये, न विकल्प करना चाहिये।" 174

उस समय षड् व र्गी य भिक्षु आसिक्तकोपधान (=ताँवे चाँदीके तारोसे खचित तकिये) को इस्तेमाल करते थे ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! आसिक्त-उपधानको नही इस्तेमाल करना चाहिये,० दुक्कट०।" 175

उस समय एक भिक्षु रोगी था, वह भोजन करते वक्त हाथमे पात्र न रख सकता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, म लो रि क (=आधार-टडेके आधार) की।" 176

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु एक वर्तनमे खाते थे, एक प्यालेमे भी पीते थे, एक चारपाईपर भी लेटते थे, एक विछौनेपर भी लेटते थे, एक ओढनेमे भी लेटते थे। एक ओढने-विछौनेमे भी लेटते थे। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! एक वर्तनमे नही खाना चाहिये, एक प्याले मे नही पीना चाहिये, एक चारपाई पर नही लेटना चाहिये, एक विछौनेपर नही लेटना चाहिये, एक ओढनेमे नही लेटना चाहिये, एक ओढने-विछौनेमे नही लेटना चाहिये। जो खायें० लेटे, उसे दुक्कटका दोष हो।" 177

(६) वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र ढाँकना

उस समय व ड्ढ लि च्छ वी मे त्ति य औ र भु म्म ज क भिक्षुओका मित्र था। तव व ड्ढ लिच्छवी जहाँ मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु थे, वहाँ गया। जाकर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षुओसे यह वोला—

"आर्यो ! वन्दना करता हूँ।"

ऐसा कहनेपर मेत्तिय भुम्मजक भिक्षु नही बोले।

दूसरी वार भी वड्ढ लिच्छवी०।

तीसरी वार भी वड्ढ लिच्छवी० यह वोला—

"आर्यो ! वन्दना करता हूँ।"

तीसरी वार भी मेत्तिय और भुम्मजक भिक्षु नही बोले।

"क्या मैने आर्योका अपराध किया ? क्यो आर्य मुझसे नही बोल रहे है ?"

"क्योकि आवुस वड्ढ ! द र्भ म ल्ल पु त्र [१] द्वारा हमें सताये जाते देखकर भी तुम पर्वाह नही करते।"

"(तो) आर्यो ! मै क्या करूँ ?"

"आवुस वड्ढ ! यदि तुम चाहो, तो आजही भगवान् आयुष्मान् दर्भमल्लपुत्रको नाश (निकाल) देगे।"

"आर्यो ! मै क्या करूँ ? मै क्या कर सकता हूँ ?"

"आओ आवुस वड्ढ ! जहाँ भगवान् है वहाँ जाकर भगवान्से यह कहो—

---

[१] देखो चुल्ल ४§२।१ पृष्ठ ३९५-९६।

'भन्ते ! यह योग्य नही०[1] पानी जलतासा मालूम पळता है। आर्य दर्भमल्लपुत्रने मेरी स्त्री को दूपित किया।'

"अच्छा आर्यो !"—०[1] ।

"भन्ते ! जन्मसे लेकर स्वप्नमे भी मैथुन सेवन करनेको मै नही जानता, जागतेकी तो वात ही क्या?"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ वड्ढ लिच्छवी पुत्रका पत्त-निकुज्जन करे।

"भिक्षुओ ! आठ वातोसे युक्त उपासकके लिये, पत्तनिकुज्जन (=उसकी भिक्षा आनेपर उसे न लेनेपर पात्रको मूँद दिया जाय) करना चाहिये—(१) भिक्षुओके अलाभ (=हानि)के लिये प्रयत्न करता है, (२) भिक्षुओके अनर्थके लिये प्रयत्न करता है, (३) भिक्षुओके अवास (=न रहने)के लिये प्रयत्न करता है, (४) भिक्षुओका आक्रोश (=निदा) परिहास करता है, (५) भिक्षुओकी आपसमे फूट कराता है, (६) बुद्धकी निदा करता है, (७) धर्मकी निन्दा करता है, (८) सघकी निन्दा करता है।—भिक्षुओ ! इन पाँच० । 178

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-निक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ भि क्षु सघको सूचित करे।—

"क ज्ञ प्ति ०। ख अ नु श्रा व ण ०।

"ग धा र णा—'सघने व ड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र ढाँक दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

तव आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्न समय पहिन कर पात्र चीवर ले जहाँ वड्ढ लिच्छवीका घर था, वहाँ गये। जाकर वड्ढ लिच्छवीसे यह बोले—

"आवुस वड्ढ ! सघने तेरे लिये पात्र ढाँक दिया, सघके उपयोगके तुम अयोग्य हो।"

तव वड्ढ लिच्छवी—'सघने मेरे लिये पात्र ढाँक दिया, मै सघके उपयोगके अयोग्य हूँ'—(सोच) वही मूर्छित हो गिर पळा। तव वड्ढ लिच्छवी मित्र-अमात्य, जाति-विरादरीवाले वड्ढ लिच्छवीसे यह बोले—

"वस आवुस वड्ढ ! मत शोक करो, मत खेद करो। हम भगवान् और भिक्षु-सघको मनावेगे।"

तव वड्ढ लिच्छवी स्त्री-पुत्र सहित, मित्र-अमात्य जाति-विरादरीवालो सहित भीगे वस्त्रो भीगे केशो सहित, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्‌के पैरोमे गिरसे पळकर भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ? वाल (=मूर्ख)सा, मूढसा, अचतुरसा हो मैने जो अपराध किया, जोकि मैने आर्य दर्भ, मल्लपुत्रको निर्मूल शील-भ्रष्टताका दोष लगाया, सो भन्ते ! भगवान् भविष्यमे सवर (=रोक करने) के लिये मेरे उस अपराधको अत्ययके तौरपर स्वीकार करे।"

"आवुस ! जो तूने वालसा हो अपराध किया०। चूँकि आवुस ! तू अपराधको अपराधके तौर पर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है, इसलिये हम उसे स्वीकार करते है। आवुस ! वड्ढ आर्य विनयमे यह वृद्धि (की वात) है, जो कि (किये) अपराधको अपराधके तौरपर देखकर धर्मानुसार (उसका) प्रतीकार करना, और भविष्यके सवरके लिये प्रयत्नशील होना।"

तव भगवान्‌ने भिक्षुओको सवोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्रको उघाळ दे।

---

[1] देखो चुल्ल० ४§२।१ पृष्ठ ३९५-६।

"भिक्षुओ ! आठ बातोसे युक्त उपासकके लिये सघ पत्त-उक्कुज्जन (=पात्र उघाळना) करे—(१) भिक्षुओके अलाभके लिये०, (२)० अनर्थके लिये०, (३)० अवासके लिये प्रयत्न नही करता, (४) भिक्षुओकी आक्रोश परिहास नही करता, (५) भिक्षुओकी आपसमे फूट नही करता, (६) बुद्धकी निन्दा नही करता, (७) धर्मकी निन्दा नही करता, (८) सघकी निन्दा नही करता।—इन पाँच०। 179

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार पत्त-उक्कुज्जन करना चाहिये—चतुर समर्थ सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति०। ख अ नु श्रा व ण ०।

"ग धा र णा—'सघने वड्ढ लिच्छवीके लिये पात्र उघाळ दिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ'।"

३—सुसुमारगिरि

तब भगवान् वैशालीमे इच्छानुसार विहारकर जिधर भ र्ग है उधर चारिकाके लिये चल पळे क्रमश चारिका करते जहाँ भर्ग था, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् भ र्ग (देश)के स सु मा र गि रि के भेस क ला व न के मृ ग दा व मे विहार करते थे।

(७) बोधिराजकुमारका सत्कार

उस समय बोधि राजकुमारने श्रमण या ब्राह्मण या किसी भी मनुष्यसे न भोगे को क न द नामक प्रासादको हालहीमे बनवाया था। तब बोधि-राजकुमारने स जि का पु त्र माणवकको सबोधित किया—

"आओ तुम सौम्य ! सजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् है, वहाँ जाओ। जाकर मेरे वचन से, भगवान्के चरणोमे शिरसे वन्दनाकर, आरोग्य, अन-आतक, लघु-उत्थान (=शरीरकी कार्यक्षमता) बल, अनुकूल विहार, पूछो—'भन्ते ! बोधि-राजकुमार भगवान्के चरणोमे शिरसे वन्दनाकर आरोग्य० पूछता है, और यह भी कहो—'भन्ते ! भिक्षु-सघसहित भगवान् बोधि-राजकुमारका कलका भोजन स्वीकार करें'।"

"अच्छा हो (=भो), कह सजिका-पुत्र माणवक जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्से (कुशल प्रश्न) पूछ, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठकर सजिका-पुत्र माणवकने भगवान्से कहा—"हे गौतम ! बोधि-राजकुमार आपके चरणोमे०। बोधिराज-कुमारका कलका भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनद्वारा स्वीकार किया। तब सजिका-पुत्र माणवक भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ जहाँ बोधि-राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर बो धि राजकुमारसे बोला—

"आपके वचनसे मैने उन गौतमको कहा—'हे गौतम ! बोधि-राजकुमार०। श्रमण गौतमने स्वीकार किया।"

तब बोधि राजकुमारने उस रातके बीतनेपर अपने घरमे उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थ) तैयार करवा, को क न द-प्रासादको सफेद (=अवदात) धुस्सोसे सीढीके नीचे तक बिछवा, सजिकापुत्र माणवकको सबोधित किया—

"आओ सौम्य ! सजिकापुत्र ! जहाँ भगवान् है, वहाँ जाकर भगवान्को काल कहो—'भन्ते ! काल है, भात (=भोजन) तैयार हो गया।"

---

[1] देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ४१२-१३।

"अच्छा भो !" काल कह ।

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्रचीवर ले, जहाँ बोधि-राजकुमारका घर (=निवेसन) था, वहाँ गये। उस समय बोधि-राजकुमार भगवान्‌की प्रतीक्षा करता हुआ, द्वारकोष्ठक (=नौवत-खाना)के बाहर खडा था। बोधि-राजकुमारने दूरसे भगवान्‌को आते देखा। देखते ही अगवानीकर भगवान्‌की वन्दनाकर, आगे आगे करके जहाँ कोकनद-प्रासाद था, वहाँ ले गया। तब भगवान् निचली सीढीके पास खळे हो गये। बोधि-राजकुमारने भगवान्‌से कहा—"भन्ते ! भगवान् धुस्सोपर चले। सुगत ! धुस्सोपर चले, ताकि (यह) चिरकाल तक मेरे हित और सुखके लिये हो।"

(८) पाँवळेका निषेध

१—ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे।

दूसरी बार भी बोधि-राजकुमारने०। तीसरी बार भी०।

तब भगवान्‌ने आयुष्मान् आनन्दकी ओर देखा। आयुष्मान् आनन्दने बोधि-राजकुमारको कहा—

"राजकुमार ! धुस्सोको समेट लो। भगवान् पाँवळे (=चैल-पक्ति)पर न चढेगे। तथागत आनेवाली जनताका ख्याल कर रहे है।"

बोधि-राजकुमारने धुस्सोको समेटवाकर, कोकनद-प्रासादके ऊपर आसन विछवाये। भगवान् कोकनद-प्रासादपर चढ, सघके साथ विछे आसनपर बैठे। तब बोधि-राजकुमारने बुद्धसहित भिक्षुसघको अपने हाथसे उत्तम खादनीय भोजनीय (पदार्थो)से सतर्पित किया, सतुष्ट किया। भगवान्‌के भोजनकर पात्रसे हाथ खीच लेनेपर, बोधिराजकुमार एक नीचा आसन ले, एक ओर बैठ गया।

एक ओर बैठे बोधिराजकुमारको भगवान् धार्मिक कथासे समुत्तेजित सप्रहर्षितकर आसनसे उठकर चले गये।

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाँवळेपर नही चलना चाहिये, जो चले, उसे दुक्कटका दोष हो।" 180

२—उस समय एक अपगतगर्भा (=ळळायन) स्त्रीने भिक्षुओको निमत्रित कर कपळा (=दुस्स) विछा यह कहा—

"भन्ते ! कपडेपर चले।"

भिक्षु हिचकिचाकर नही चल रहे थे।

"भन्ते ! मगलके लिये कपडेपर चले।"

भिक्षु हिचकिचाकर कपडेपर न चले। तब वह स्त्री हैरान ० होती थी—'कैसे आर्य लोग मगलके लिये याचना करनेपर भी पाँवडेपर नही चलते !' भिक्षुओने उस स्त्रीके हैरान ० होनेको सुना। तब उन भिक्षुओने यह बात भगवान्‌से कही।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थ लोग (मगल। होनेवाले कामोके) करनेवाले होते है। 181

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ गृहस्थोके मगलके लिये याचना करनेपर पाँवळेपर चलनेकी।" 182

§३—पंखा, छींका, छत्ता, दण्ड, नख-केश, कन-खोदनी, अंजन-दानी

४—श्रावस्ती

(१) घळा, झाळू

तब भगवान्‌ने भ र्ग (देश)मे इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है, उधर चारिकाके

लिये चल दिये। क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अनाथ-पिडिकके आराम जे त व न मे विहार करते थे। तव वि शा खा - मृ गा र मा ता घळे, कतक (=झाँवाँ) और झाळू लिवा जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठ गई। एक ओर बैठी विशाखा मृगारमाताने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते ! भगवान् मेरे घळे, कतक और झाळूको स्वीकार करे, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।"

भगवान्‌ने घळे और झाळूको ग्रहण किया, कितु कतकको नही ग्रहण किया। भगवान्‌ने विशाखा मृगारमाताको धार्मिक कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्पित किया। ० भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणा कर चली गई। तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया।—

" ० अनुमति देता हूँ घळे और झाळूकी। भिक्षुओ ! कतकका इस्तेमाल न करना चाहिये, ०दुक्कट ०। 183

" ० अनुमति देता हूँ, (पत्थरके) डले, कठल (=काठ) और समुद्रफेन=इन तीन प्रकारके पैर-घिसनाकी।" 184

(२) पखा

तब विशाखा मृगारमाता बेने और ताळके पखेको ले जहाँ भगवान् थे वहाँ गई। ०।—

"भन्ते ! भगवान् मेरे बेने और ताळके पखेको स्वीकार करे, जो कि चिरकाल तक मेरे हित-सुखके लिये हो।"

भगवान्‌ने बेने और ताळके पखेको स्वीकार किया। ०।—

" ० अनुमति देता हूँ बेने और ताडके पखेकी।" 185

उस समय सघको मच्छर हाँकनेकी बिजनी मिली थी। भगवान्से यह बात कही।—

" ० अनुमति देता हूँ, मच्छरकी बिजनीकी।" 186

चँवरकी बिजनी (=चमरीकी बिजनी) मिली थी।०—

"भिक्षुओ ! चँवरकी बिजनी नही धारण करनी चाहिये, ० दुक्कट ०। 187

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ तीन प्रकारकी बिजनियोकी—छालकी, खसकी और मोरपख-की।" 188

(३) छत्ता

उस समय सघको छत्ता मिला था।०—

" ० अनुमति देता हूँ छत्तेकी।" 189

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु छत्ता लेकर टहलते थे। उस समय एक (बौद्ध) उपासक बहुतसे यात्री आ जी व को के अनुयायियोके साथ बागमे गया था। उन आजीवक-अनुयायियोने दूसरे पड्वर्गीय भिक्षुओको छत्ता धारण किये आते देखा। देखकर उस उपासकसे यह कहा—

"आवुसो ! यह तुम्हारे भदन्त है छत्ता धारण करके आ रहे है, जैसे कि ग ण क म हा मा त्य (=हिसाब निरीक्षक) ! !"

"आर्यो ! यह भिक्षु नही हे, यह परिव्राजक है।"

'भिक्षु है, भिक्षु नही है'—इसके लिये उन्होने बाजी (=अद्भुत) लगाई । तब पासमे आनेपर परिव्राजक पहिचानकर वह उपासक हैरान ० होता था—'कैसे भदन्त छत्ता धारण कर टहलते है !'

भिक्षुओने उस उपासकके हैरान होने ० को सुना। तब उन भिक्षुओने भगवान्‌से यह बात कही।—"सचमुच ०।—

"भिक्षुओ ! छत्ता न धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 190

उस समय भिक्षु रोगी था, छत्तेके विना उसे अच्छा न होता था ।०—

" ० अनुमति देता हूँ रोगीको छत्तेकी।" 191

उस समय भिक्षु—भगवान्‌ने रोगीको ही छत्ता धारण करनेके लिये यही विधान किया है, अरोगीको नही—(सोच) आराममे ओर आरामके वासमे (भी) छत्ता धारण करनेमे हिचकिचाते थे ।०—

" ० अनुमति देता हूँ अरोगीको आराममे और आरामके पास छत्ता धारण करनेकी।" 192

(४) छीका, दड

उस समय एक भिक्षु सीके (=सिक्का)मे पात्रको डाल डडेसे लटका अपराह्णमे एक गाँवके द्वारसे जा रहा था।—लोग—यह आर्यो ! चोर है, तलवार इसकी दीख रही है—कह दौळे, (पीछे) पहिचानकर (उन्होने) छोळ दिया। तब भिक्षुने आराममे जा भिक्षुओसे यह बात कही।—

"क्या आवुस ! तूने सीका-डडा धारण किया था ?"

"हाँ, आवुसो !"

०अल्पेच्छ० हैरान होते थे ।० सचमुच०।०—

"भिक्षुओ ! सीका-डडा न धारण करना चाहिये,० दुक्कट०।" 193

उस समय एक भिक्षु बीमार था, डडे विना चल न सकता था।०—

"भिक्षुओ ! रोगी भिक्षुको डड रखनेकी समति देनेकी अनुमति देता हूँ। 194

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देना चाहिये—याचना—(१) "वह रोगी भिक्षु सघके पास जा[१] ० याचना करे—'भन्ते ! मै रोगी हूँ विना डडेके चल नही सकता। सो मैं भन्ते ! सघसे डडेकी सम्मति माँगता हूँ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति०।

"ख अनुश्रावण०।

"ग धारणा—'सघने इस नामवाले भिक्षुको डडा (रखने)की सम्मति दे दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ' ।"

उस समय एक भिक्षु रोगी था, विना सीकेके पात्र नही ले चल सकता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगी भिक्षुको सीकेके लिये सम्मति देनेकी ।" 195

"ओर भिक्षुओ ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[२] ।"

उस समय एक भिक्षु बीमार था, विना डडेके चल नही सकता था, विना सीकेके पात्र नही ले चल सकता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ रोगी भिक्षुको सीका-डडाके लिये सम्मति देनेकी।" 196

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार देनी चाहिये ०[२] ।"

---

[१]ऊपर दण्डकी सम्मतिकी भाँति ही ।

[२]ऊपरकी तरह।

उस समय भिक्षुओ ! एक जुगाली करनेवाला भिक्षु था, वह जुगाली कर करके खाता था। भिक्षु हैरान० होते थे—'यह भिक्षु दोपहर वाद (=विकाल)मे भोजन करता है !! भगवान्‌से यह वात कही—

"भिक्षुओ ! यह भिक्षु हालहीमे गायकी योनिसे (यहाँ) पैदा हुआ है ।

"०अनुमति देता हूँ रोमन्थक (=जुगाली करनेवाले)को जुगाली करनेकी। किन्तु, भिक्षुओ ! मुखके द्वारपर लाकर नही खाना चाहिये, जो खाये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये ।"। 197

उस समय एक पू ग (=वनियोका सघ)ने सघको भोज दिया था । (भिक्षुओने) चाकेमे वहुत जूठ विखेर दिया। लोग हैरान० होते थे—कैसे शाक्य-पुत्रीय श्रमण ओदन देनेपर सत्कारपूर्वक नही ग्रहण करते ! एक एक कनिका सौ कामासे वनता है।' भिक्षुओने सुना ।०।—

"०अनुमति देता हूँ, देते वक्त जो गिरे, उसे स्वय लेकर खानेकी। भिक्षुओ ! उसे दायकोने प्रदान किया है।" 198

(५) नख काटना

उस समय एक भिक्षु लवा नख (वढाये) भिक्षाचार करता था। एक स्त्रीने देखकर उस भिक्षुसे यह कहा—

"आओ, भन्ते ! मैथुन सेवन करो।"

"नही भगिनी ! यह (हमारे लिये) विहित नही है।"

"भन्ते ! यदि तुम न सेवन करोगे, इसी समय मै अपने नखोसे शरीरको नोचकर (तुम्हे) चिल्लाऊँगी—यह भिक्षु मुझे दूपित कर रहा है।"

"जैसा समझो भगिनी !"

तब वह स्त्री अपने नखोसे अपने शरीरको नोचकर चिल्लाई—'यह भिक्षु मुझे दूपित कर रहा है।' लोगोने दौडकर उस भिक्षुको पकड लिया। (तब) उन मनुष्योने उस स्त्रीके नखोमे खून भी, चमडा भी लगा देखा। देखकर—इसी स्त्रीका यह कर्म है, भिक्षुने कुछ नही किया—(सोच) उस भिक्षुको छोड दिया। तव उस भिक्षुने आराममे जा भिक्षुओसे यह वात कही।—

"क्या आवुस ! तूने लम्बा नख वढाया है ?"

"हाँ, आवुसो !"

० अल्पेच्छ ०।०—

"भिक्षुओ ! लम्बे नख नही धारण करने चाहिये, ० दुक्कट ०।" 199

उस समय भिक्षु नखसे भी नखको काटते थे, मुखसे भी नखको काटते थे, दीवारसे भी नखको घिसते थे—अगुलियाँ पीडा देती थी।०—

" ० अनुमति देता हूँ, नहन्नी (=नखच्छेदन)की।" 200

खून सहित नखको काटते थे, अगुलियोमे दर्द होता था—

" ० अनुमति देता हूँ, मासके वरावर तक नख काटनेकी।" 201

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु वीसतिमह कटाते (वीसो नखोमे लिखाते) थे। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! वीसतिमह नही कटाने चाहिये, ० दुक्कट ०। ० अनुमति देता हूँ, मैल मात्रको० निकालनेकी।" 202

(६) केश काटना

उस समय भिक्षुओके केश लम्वे होते थे।०—

"भिक्षुओ ! क्या भिक्षु एक दूसरेके केशको काट सकते है ?"

"हाँ काट सकते है, भन्ते !"

तब भगवान्ने इसी सबधमे० भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ छुरे, छुरेकी सिल, छुरेकी सिपाटिका (=चमोटी) नमतक (=नहन्नी ?) सभी छुरेके सामानकी।" 203

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु मूँछ कटवाते थे, मूँछ बढाते थे, गोलोमिका (=बकरे जैसी दाढी करवाते थे, चौकोर (=चतुरस्रक) कराते थे, परिमुख (=छातीका बाल कटवाना) कराते थे, अड्डुरक (=पेटके बालोमे रोम पक्ति छोडना) कराते थे, दाढी (=दाठिका) रखते थे, गुह्य स्थानके रोम कटवाते थे। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! मूँछ नही कटवानी चाहिये, मूँछ बढानी न चाहिये, गोलोमिका०, चतुरस्रकमे, परिमुख, अड्डुरक, नही कटवाना चाहिये, दाढी नही रखनी चाहिये, गुह्य स्थानके रोमको नही कटवाना चाहिये, जो ० कटवाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 204

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु कर्तरिका (=कैंची)से बाल कटाते थे। ० जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! कैचीसे वाल नही कटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 205

उस समय एक भिक्षुके शिरमे घाव था, छुरेसे बाल मुँळवा न, सकता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ, रोगके कारण कैंचीसे वाल कटवानेकी।" 206

उस समय भिक्षु नाकमे लम्बे लम्बे केश धारण करते थे।०—जैसे कि पिशाच (=पिशाचिल्लिका)।०—

"भिक्षुओ ! नाकमे लम्बे लम्बे केश न धारण करना चाहिये, ।० दुक्कट ०।" 207

उस समय भिक्षु ठीकरीसे भी मोमसे भी, नाकके केशोको उखळवाते थे, नाक दर्द करती थी।०—

" ० अनुमति देता हूँ, चिमटी (=सडास)की।" 208

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु पके बालोको निकलवाते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! पके बालोको न निकलवाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 209

(७) कन-खोदनी

उस समय एक भिक्षुका कान मैलसे भरा हुआ था।०—

" ० अनुमति देता हूँ कर्णमल-हरणीकी।" 210

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु नानाप्रकारकी कर्णमलहरणियाँ रखते थे सुनहली भी, रुपहली भी। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! सुनहली रुपहली (आदि) नाना प्रकारकी कर्णमलहरणियाँ नही रखनी चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ हड्डी, दाँत, सीग, नरकट, बाँस, काठ, लाख, फल, ताँबे और शखकी (कर्णमलहरणियोकी)।" 211

(८) ताँबे काँसेके बर्तन

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु बहुतसे ताँबे (=लोह) काँसेके भाँडोका सचय करते थे। लोग विहारमे घूमते वक्त देखकर हैरान होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण बहुतसे ताँबे, काँसेके भाँडोको सचय करते है, जैसे कि कसपत्थरिका (=कसेरा)। भगवानसे यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! ताँबे, काँसेके भाँडोका सचय नही करना चाहिये, ० दुक्कट ०। 212

(९) अंजनदानी

उस समय भिक्षु अजनदानीको भी, अजन सलाईको भी, कर्णमलहरणीको भी, बधनको भी रखनेमे हिचकिचाते थे ।०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ अजनदानीकी, अजन सलाईकी, कर्णमलहरणीकी, बधन माला-की ।" 213

§४—संघाटी, आयोग-पट्ट, घुंडी, मुद्धी, वस्त्र पहिननेके ढंग

(१) संघाटी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु सघाटी (के सहित) पलथी मार बैठते थे, सघाटीसे पात्र रगळ खाते थे ।०—

"भिक्षुओ ! सघाटी पलथीसे नही बैठना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 214

(२) आयोग-पट्ट

उस समय एक भिक्षु रोगी था, वह बिना आयोग[1] उसे ठीक न होता था ।०—

" ० अनुमति देता हूँ आयोगकी ।" 215

(क) आयोग बुनने का सामान—तब भिक्षुओको यह हुआ—कैसे आयोगको बुनना चाहिये । भगवान्से यह बात कही ।—

" ० अनुमति देता हूँ, तॉत (=तन्तक), वेमक (=वै), वट्ट (=झाप) शलाका और सभी तॉत (=कर्घे)के सामानकी ।" 216

(३) कमरबंद

१—उस समय एक भिक्षु बिना कमरबद (=कायबधन) बॉधे ही गॉवमे भिक्षाके लिये गया, मळकपर उसका अन्तरवासक खिसककर गिर गया । लोगोने ताली पीटी । वह भिक्षु मूक हो गया । उसने आराममे जाकर भिक्षुओसे यह बात कही ।०—

" ० विना कमरवदके गॉवमे भिक्षाके लिये नही प्रवेश करना चाहिये, ० दुक्कट ० । ० अनुमति देता हूँ, कमरबदकी ।" 217

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु कलावुक[2], देड्डुभक,[3] मुरज,[4] मद्दवीण[5] नाना प्रकारके कमरवद धारण करते थे ।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ ।०—

"भिक्षुओ ! कलावुक, देड्डुभक, मुरज, मद्दवीण—नाना प्रकारके कमरवदोको नही धारण करना चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 218

भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दो प्रकारके कमरवन्दोकी—पट्टीकी[6] और शूकरके ऑत जैसेकी ।"

३—कमरवदके किनारे छिन जाते थे ।—

" ० अनुमति देता हूँ मुरज और मद्दवीणकी ।" 219

४—कमरवदके छोर छिन जाते थे ।—

---

[1] उकळूं बैठे पीठ-पैरमे बॉधनेका अँगोछा । [2] गोल । [3] पानीके सॉपके फन जैसा ।
[4] मृदंग जैसा । [5] पामगके आकारका ।
[6] साधारणतया बुनी, या मछलीके कॉटे जैसी बुनी (—अट्ठकथा) ।

"० अनुमति देता हूँ शो भ क (=लपेटकर सिलाई), और गु ण क (=मृदगकी भाँति सिलाई) की।" 220

५—कमरवदका फदा छिन जाता था।—

"० अनुमति देता हूँ वीठ (=विठई) की।" 221

६—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु, सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी वी ठ धारण करते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! सोने रूपे नाना प्रकारकी वीठ नही धारण करनी चाहिये, ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शख और सूतकी।" 222

(४) घुण्डी, मुद्धी

१—उस समय आयुष्मान् आ न द हल्की सघाटी पहिन गाँवमे भिक्षाके लिये गये। हवाके झोकेने सघाटीको उळा दिया। आयुष्मान् आनदने आराममे जा भिक्षुओसे यह वात कही। भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही—

"० अनुमति देता हूँ घुडी, मुद्धीकी।" 223

२—० षड्वर्गीय भिक्षु सोनेकी भी रूपेकी भी नाना प्रकारकी घुडियाँ धारण करते थे।०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! सोने रूपे नाना प्रकारकी घुडीको नही धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ हड्डी०[1] शख और सूतकी (घुडीकी)।" 224

३—उस समय भिक्षु घुडी भी मुद्धी भी चीवरमे ही लगाते थे, चीवर जीर्ण हो जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, (चीवरमे) घुडी और मुद्धीके चकत्तेको लगानेकी।" 225

४—घुडी और मुद्धीके चकत्तेको (चीवरके) छोरपर लगाते थे, कोना खुल जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ घुडीके चकत्तेको अतमे लगानेकी, मुद्धीके चकत्तेको सात आठ अगुल भीतर हटकर।" 226

(५) वस्त्र पहिननेके ढंग

१—उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु गृहस्थो जैसे वस्त्र पहिनते थे—ह स्ति शौं डि क[2] भी, म त्स्य वा ल क[3] भी, च तु ष्क र्ण क[4], ता ल वृ न्त क[5], श त व ल्लि क[6] भी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ ०।०—

"भिक्षुओ! गृहस्थोकी भाँति—हस्तिशौंडिक, मत्स्यवालक, चतुष्कर्णक, तालवृन्तक, शतवल्लिक-वस्त्र नही पहिनना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 227

२—उस समय पड्वर्गीय भिक्षु कछनी काछते थे।०—जैसे कि राजाकी मुंडवट्टी (=वाहक)।०—

---

[1] पृष्ठ ४४१ (211)।

[2] चोल (देश)की स्त्रीकी भाँति नाभीसे नीचे तक लटकाना (—अट्ठकथा)।

[3] किनारी और छोरको चुनकर मछलीकी पूँछकी भाँति पहिनना।

[4] ऊपर दो, नीचे दो इस प्रकार चारो कोनोको दिखाते कपळोका पहिनना।

[5] तालके पत्तेकी भाँति चुनकर लटकाना।

[6] सैंकळो चुनावोको दिखाते पहिनना।

"भिक्षुओ ! कछनी नही काछनी चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 228

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु गृहस्थोकी भाँति कपळा ओढते थे।०—जेमे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ ! गृहस्थोकी भाँति कपळा नही ओढना चाहिये ० दुक्कट ० ।" 229

§५–बोझ ढोना, दतवन, आग-पशुसे रक्षा

(१) बँहगी

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु (कधेके) दोनो ओर बहँगी (=काज) ले जाते थे।०—जैसे राजाकी मुँडवट्टी।०—

"भिक्षुओ ! दोनो ओर बहँगी नही ले जाना चाहिये, ० दुक्कट ०। भिक्षुओ ! आनुमति देता हू एक ओर बहँगीकी, वीचमे का ज की, सिरके भारकी, कधके भारकी, कमरके भारकी, लटका कर (भार ले जानेकी)।" 230

(२) दतवन

१—उस समय भिक्षु दतवन नही करते थे, मुँहसे दुर्गन्ध आती थी।०—

"भिक्षुओ ! यह पाँच दतवन न करनेके दोप है—(१) आँखको नुकसान होता है, (२) मुखमे दुर्गन्ध आती है, (३) रस ले जानेवाली नाळियाँ शुद्ध नही होती, (४)कफ और पित्त भोजनसे लिपट जाते है, (५) भोजनमे रुचि नही होती। भिक्षुओ ! यह पाँच दोष है दतवन न करनेमे। भिक्षुओ ! यह पाँच गुण है दतवन करनेमे—(१) आँखको लाभ होता है, (२) मुखमे दुर्गन्ध नही होती, (३) रसवाहिनी नाळियाँ शुद्ध होती है, (४) कफ और पित्त भोजनसे नही लिपटते, (५) भोजनमे रुचि होती है। भिक्षुओ ! यह पाँच गुण है दतवन करनेमे।

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दतवनकी।" 231

२—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लम्बी दतवन करते थे, और उसीसे श्रामणेरोको पीटते थे। ०—

"भिक्षुओ ! लम्बी दतवन नही करनी चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आठ अगुल तककी दतवनकी। उससे श्रामणेरको नही पीटना चाहिये, ०दुक्कट०।" 232

३—उस समय एक भिक्षुको अ ति म टा ह क (=बहुत छोटी) दतवन करनेसे कठमे विलग्ग (=अँटक) हो गया। ०—

"०अतिमटाहक दतवन न करनी चाहिये, ०दुक्कट०। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, कमसे कम चार अगुलकी दतवनकी।" 233

(३) आगसे रक्षा

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु दाव (=वन)को लीपते थे।०—जैसे दावदाहक (=वन जलानेवाले)।०—

"भिक्षुओ ! दावको नही लीपना चाहिये, ०दुक्कट०।" 234

२—उस समय विहार तृणोसे भर गया था। जगल जलाते वक्त विहार भी जल जाता था।०—

'०अनुमति देता हूँ, जगलके जलाये जाते वक्त अग्निसे रोक और रक्षा करनेकी।" 235

(४) वृक्षपर चढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु वृक्षपर चढते थे।०—जैसे वानर।०—

"भिक्षुओ! वृक्षपर न चढना चाहिये, दुक्कट०।" 236

२—उस समय एक भिक्षुके कोसल देशमे श्रावस्ती जाते समय रास्तेमे एक हाथी निकला। तब वह भिक्षु दौळकर वृक्षके नीचे गया, किन्तु सन्देहमे पळकर पेळपर न चढ सका। वह हाथी दूसरी ओर चला गया। तब उस भिक्षुने श्रावस्तीमे जा यह बात भिक्षुओसे कही। ०—

"०अनुमति देता हूँ, काम होनेपर पोरिसाभर और आपत्कालमे यथेच्छ वृक्षपर चढनेकी।" 237

§६—बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामें, झूठी विद्या न पढ़ना, सभामें बैठनेका नियम, लहसुनका निषेध

(१) बुद्धवचनको अपनी अपनी भाषामे

उस समय यमेळ य मे ळ ते कु ल नामक ब्राह्मण जातिके सुन्दर (=कल्याण) वचनवाले, सुन्दर वचन बोलनेवाले दो भाई भिक्षु थे। वह जहाँ भगवान् थे वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! इस समय नाना नाम, गोत्र, जाति कुल, के (पुरुष) प्रव्रजित होते है, वह अपनी भाषामे बु द्ध व च न को (कहकर उसे) दूषित करते है। अच्छा हो भन्ते! हम बुद्धवचनको छ न्द[1] मे बना दे।"

भगवान्ने फटकारा—०। फटकारकर धार्मिक कथा कह भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! बुद्ध-वचनको छ न्द मे न करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 238

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अपनी भाषामे[2] बुद्धवचनके सीखनेकी।" 239

(२) झूठी विद्याओका न पढ़ना

१—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु लो का य त(-शास्त्र)[3] सीखते थे। लोग हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०।—

"भिक्षुओ! लो का य त नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 240

२—उस समय षड्वर्गीय लो का य त को पढाते थे। ०—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! लो का य त नही पढाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 241

३—उस समय षड्वर्गीय भिक्षु ति र च्छा न - वि द्या[4] पढते थे।०—कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही सीखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 242

४—"भिक्षुओ! तिरच्छान-विद्या नही पढानी चाहिये, ०दुक्कट०।" 243

---

[1] वेदकी भाँति सस्कृतमे (—अट्ठकथा)।

[2] अपनी भाषासे यहाँ मगधकी भाषासे मतलब है (—अट्ठकथा)।

[3] सामुद्रिक आदि।

(३) छींक आदिके मिथ्या-विश्वास

१—उस समय बडी भारी परिषद्से घिरे धर्मोपदेश करते भगवान्ने छीका। भिक्षुओने—भन्ते! भगवान् जीते रहे, सुगत जीते रहे'—(कह) ऊँचा शब्द (=आवाज) महान् शब्द किया। उस शब्दसे धर्मकथामे विक्षेप हुआ। तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! छीकनेपर 'जीते रहे' कहनेसे क्या उसके कारण (पुरुष) जीयेगा, मरेगा?"

"नही, भन्ते!"

"भिक्षुओ! छीकनेपर 'जीते रहे' नही कहना चाहिये, ०दुक्कट०।" 244

२—उस समय भिक्षुओके छीकनेपर लोग 'जीते रहे भन्ते!' कहते थे। भिक्षु सन्देहयुक्त हो नही बोलते थे। लोग हैरान० होते थे—"कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण छीकनेपर 'जीते रहे भन्ते!' कहने पर नही बोलते!" भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! गृहस्थ मागलिक होते है, भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, गृहस्थोके 'जीते रहे भन्ते!' कहनेपर, 'चिरजीव' कहनेकी।" 245

(४) लहसुन खानेका निषेध

१—उस समय भगवान् बडी परिषद्के बीच बैठे धर्मोपदेश करते थे। एक भिक्षुने लहसुन खाया था। भिक्षु न टोके, इस (विचार)से वह एक ओर (अलग) बैठा था। भगवान्ने उस भिक्षुको अलग बैठे देखा। देखकर भिक्षुओसे कहा—

"भिक्षुओ! क्यो वह भिक्षु अलग बैठा है?"

"भन्ते! इस भिक्षुने लहसुन खाया है। भिक्षु न टोके इस (विचार)से यह अलग बैठा हुआ है।"

"भिक्षुओ! क्या वह खाने लायक (चीज) है, जिसे खाकर इस प्रकारकी परिषद्से वाहर रहना पळे?"

"नही, भन्ते!"

"भिक्षुओ! लहसुन नही खाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 246

२—उस समय आयुष्मान् सा रि पु त्र के पेटमे दर्द था। तब आयुष्मान् म हा मो ग्ग ला न जहाँ आयुष्मान् सारिपुत्र थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह बोले—

"आवुस सारिपुत्र! तुम्हारा पेटका दर्द किससे अच्छा होता है?"

"लहसुनसे आवुस!"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोग होनेपर लहसुन खानेकी।" 247

§७–पेशाबखाना, पाखाना, वृक्षरोपण, बर्तन-चारपाई आदि सामान

(१) पेशाबखाना

१—उस समय भिक्षु आराममे जहाँ तहाँ पेसाव (=पस्साव) कर देते थे, आराम गदा होता था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर पेसाब करनेकी।" 248

२—आराममे दुर्गंध फैलती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पेसाबदानकी।" 249
३—तकलीफके साथ पेसाब करते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पेसावके पावदान (=पस्साव-पादुका)की।" 250
४—पेसावका पावदान खुली (जगहमे) था। भिक्षु पेसाव करनेमे लजाते थे। ०—
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चहारदीवारी (=प्राकार)से घेरनेकी।" 251
५—पेसाबदान खुला रहनेसे दुर्गंध करता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पिहानकी।" 252

(२) पाखाना

१—उस समय भिक्षु आराममे जहाँ तहाँ पाखाना करते थे, आराम गदा होता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, एक ओर पाखाना करनेकी।" 253
२—"०अनुमति देता हूँ, सडास (=वच्चकूप)की।" 254
३—सडासका किनारा टूटता था। ०—
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 255
४—सडास नीची मनका था, पानी भर जाता था।—
"०अनुमति देता हूँ, मनको ऊँची करनेकी।" 256
५—चिनाई गिर जाती थी।—
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीसे चिननेकी।" 257
६—चढनेमे तकलीफ पाते थे।—
"अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी सीढी बनानेकी।" 258
७—चढते वक्त गिर जाते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, बाँही लगानेकी।" 259
८—भीतर बैठकर पाखाना होते गिर जाते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, फर्श बनाकर बीचमे छेद रख पाखाना होनेकी।" 260
९—तकलीफके साथ बैठे पाखाना होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके पायदानकी।" 261
बाहर पेसाव करते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, पेसावकी नाली बनानेकी।" 262
१०—अवलेखण (=पोछनेका) काष्ठ न था।—
"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण काष्ठकी।" 263
११—अवलेखण-पिठर (=०ढेला) न था।—
"०अनुमति देता हूँ, अवलेखण-पिठरकी।" 264
१२—सडास खुला रहनेसे दुर्गंध देता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पिहान (=ढक्कन)की।" 265
१३—खुली जगहमे पाखाना होते सर्दीसे भी गर्मीसे भी पीळित होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, वच्च-कुटी (=पायखानेके घर)की।" 266
१४—वच्चकुटीमे किवाळ न था।—
"०अनुमति देता हूँ, किवाळ, पिट्ठिसघाट (=विलाई), उदुक्खलिक (=मलड), उत्तर-पासक (=पटदेहर), अग्गलवट्टि (=पटदेहरका छेद), कपिसीसक (=वनरमूळीखूटी), सूचिक

(=झिटकिनी), घटिक (=विलाई), तालच्छिद्द (=तालेका छेद), आविञ्जनच्छिद्द अविञ्जन (=रस्सीकी सिकडी)की।"267

१५—वच्चकुटीमे तिनकेका चूरा पळता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन करके०[1] चीवर (टाँगने)के वाँस और रस्सीकी।" 268

१६—उस समय एक भिक्षु वुढापेकी अति दुर्बलताके कारण पाखाना हो उठते समय पळा। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अवलम्बनकी।" 269

१७—वच्चकुटी घिरी न थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या काष्ठके प्राकारसे घेरनेकी।" 270

१८—कोष्ठक (=बराडा) न था।—

"०अनुमति देता हूँ, कोष्ठककी।" 271

१९—कोष्ठकमे किवाळ न था।—

"०अनुमति देता हूँ, किवाळ०[2] अविञ्जनरज्जुकी।" 272

२०—कोष्ठकमे तृणका चूरा गिरता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन करके०[2] पचपटिकाकी।" 273

२१—परिवेणमे (=पाखानेके आँगन)मे कीचळ होता था।—

"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=चूर्ण)के बिखेरनेकी।" 274

२२—पानी लगता था।—

"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 275

२३—(पाखानेके) पानीका घळा न था।—

"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके पानीके घळेकी।" 276

२४—पाखानेका शराव (=मे[3]टिया) न थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पाखानेके शरावकी।" 277

२५—तकलीफके साथ बैठकर पानी लेते थे।—

"०अनुमति देता हूं, पानी लेनेके पायदानकी।" 278

२६—पानी लेनेके पायदान वेपर्द थे, भिक्षु पानी लेनेमे लजाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, ईंट, पत्थर या लकळीके प्राकारसे घेरनेकी।" 279

पाखानेका गढा विना ढक्कनका था, तिनकेका चूरा भीतर पळता था।—

"०अनुमति देता हूँ, ढक्कनकी।" 280

(३) वृक्षका रोपना आदि

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु इस प्रकारके अनाचार करते थे—मालावच्छ (=फूलके पौधे) को रोपते रोपाते थे, सीचते सिचाते थे, चुनते चुनाते थे, गूँथते गुँथवाते थे। एक ओर की वँटी माला करते कराते थे। दोनो ओरसे वँटी माला०। मजरीक[4] वनाते वनवाते थे। विधू-तिक वनाते वनवाते थे। वटक वनाते वनवाते थे। अचेलक वनाते वनवाते थे। उरच्छद वनाते वनवाते थे।० और

---

[1]देखो ऊपर पृष्ठ ४३० (107)।

[2]देखो पृष्ठ ४३० (107)।

[3]देखो चुल्ल० १§३।१ पृष्ठ ३४९-५०।

[4] मालाओके भेद।

नाना प्रकारके अ ना चा र को करते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! नाना प्रकारके अनाचार नही करने चाहिये। जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 281

(४) ताँबे, लकळी, मट्टीके भाँडे

उस समय आयुष्मान् उ रु वे ल का श्य प के प्रब्रजित होनेपर सघको बहुतसे ताँबे (=लोह), लकळी, मिट्टीके भाँडे मिले थे। तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या भगवान्‌ने ताँबेके बर्तनकी अनमति दी है या नही दी है? लकळीके बर्तनकी० ? मिट्टीके बर्तनकी० ?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहरणी (=मारनेके हथियार)को छोळ सभी लोहेके भाँडोकी, आसन्दी (=कुर्सी) पलँग, लकळीके पात्र, और लकळीके खळाऊँको छोळ सभी लकळीके भाँडोकी, कतक (=झाँवा) और कुम्भकारिका (=मिट्टीके पकाये घळे)को छोळ सभी मिट्टीके भाँडोकी।" 282

खुद्दकवत्थुक्खन्धक समाप्त ॥५॥

६—शयन-आसन स्कन्धक

१—विहार और उसका सामान। २—विहारके रगादि और नाना प्रकारके घर। ३—नया मकान बनवाना, अग्रासल अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति जेतवन-स्वीकार। ४—विहारकी चीजोके उपयोग अधिकार, आसनग्रहणके नियम। ५—विहार और उसके लिये सामानका बनवाना, न बाँटनेकी वस्तुएँ, वस्तुओका हटाना या परिवर्तन, सफाई। ६—सघके बारह कर्मचारियोका चुनाव।

§१—विहार और उसका सामान

१—राजगृह

(१) राजगृह श्रेष्ठीका विहार बनवाना

१—उस समय वुद्ध भगवान् रा ज गृ ह के वे णु व न कलन्दकनिवापमे विहार करते थे। उस समय (तक) भगवान्ने भिक्षुओके लिये शयन-आसनका विधान न किया था, और वह भिक्षु जहाँ तहाँ—जगल, वृक्षके नीचे, पर्वत, कदरा, गिरिगुहा, स्मशान, वनप्रस्थ (=जगल), चौळे (मैदान) पुआलके गजमे विहार करते थे। वह समयपर जगल० पुआलके पुज वहाँसे, सुन्दर गमन-आगमन, अवलोकन-विलोकन, (अगोके) समेटने-पसारनेके साथ नीचे नजर करके ई र्या प थ[1] से युक्त हो निकलते थे।

तब रा ज गृ ह क श्रे ष्ठी[2] पूर्वाह्णमे वागको गया। राजगृहक श्रेष्ठीने पूर्वाह्णमे उन भिक्षुओ को जगलसे० ईर्यापथमे युक्त हो निकलते देखा। देखकर उसका चित्त प्रसन्न हो गया। तब राजगृहक श्रेष्ठी जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गया। जाकर उन भिक्षुओंसे यह बोला—

"भन्ते! यदि मै विहार बनवाऊँ, तो क्या मेरे विहारमे (आप सब) वास करेंगे?"

"गृहपति! भगवान्ने विहारोका विधान नही किया है।"

"तो भन्ते! भगवान्से पूछकर मुझसे कहना।"

"अच्छा, गृहपति!"—(कह) राजगृहक श्रेष्ठीको उत्तर दे वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! राजगृहक श्रेष्ठी विहार बनवाना चाहता है, भन्ते! कैसे करना चाहिये?"

भगवान्ने इसी सबधमें इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच (प्रकारकी) लेनो (=लयनो=निवास-स्थानो) की—(१) विहार, (२) अड्ढयोग, (=गरुळकी तरह टेढामकान), (३) प्रासाद, (४) हर्म्य (ऊपरका कोठा)

---

[1] अच्छी रहन-सहन।

[2] नागरिक राजकीय पदाधिकारी, Sheriff

और (५) गुहा[1]।"

तब वह भिक्षु जहाँ राजगृहक श्रेष्ठी था, वहाँ गये, जाकर राजगृहक श्रेष्ठीसे बोले—

"गृहपति! भगवान्ने विहारकी आज्ञा दे दी, अब जिसका तुम काल समझो (वैसा करो)।"

तब राजगृहक श्रेष्ठीने एकही दिनमे साठ विहार बनवाये। तब राजगृहक श्रेष्ठीने विहारोको तैयार करा जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे राजगृहक श्रेष्ठीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु सघसहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया।

तब राजगृहक श्रेष्ठी भगवान्की स्वीकृति जान आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया। तब राजगृहके श्रेष्ठीने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा भगवान्को कालकी सूचना दी—

"भन्ते! (भोजनका) समय है, भात तैयार है।"

तब भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले जहाँ राजगृहक श्रेष्ठीका घर था, वहाँ गये, जाकर भिक्षु-सघके साथ बिछे आसनपर बैठे। तब राजगृहका श्रेष्ठी बुद्धप्रमुख भिक्षु-सघको अपने हाथ से उत्तम खाद्य भोज्य द्वारा सतर्पित=सप्रवारितकर, भगवान्के भोजनकर पात्रसे हाथ हटा लेनेपर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! पुण्यकी इच्छासे स्वर्गकी इच्छासे मैने यह साठ विहार बनवाये है, भन्ते! मुझे उन विहारोके बारेमे कैसे करना चाहिये?"

(२) तीनो काल और चारो दिशाओंके सघको विहारका दान

"तो गृहपति! तू उन साठ विहारोको आगत-अनागत (=तीनो कालके) चातुर्दिश (=चारो दिशाओ अर्थात् सारी दुनियाके) भिक्षु-सघके लिये प्रतिष्ठापित कर।"

"अच्छा, भन्ते!" (कह) राजगृहके श्रेष्ठीने भगवान्को उत्तर दे उन साठ विहारोको आगत-अनागत चातुर्दिश सघको प्रदान कर दिया। तब भगवान्ने इन गाथाओसे राजगृहके श्रेष्ठी (के दान) को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है, और क्रूर जानवरोको भी,
सरीसृप और मच्छरोको, और शिशिरमे वर्षाको भी॥(१)॥
जब घोर हवा पानी आनेपर रोकता है,
लयन (=आश्रय)के लिये, सुखके लिये ध्यान और विपश्यन (=ज्ञान)के लिये॥(२)॥
सघके लिये विहारका दान बुद्धने श्रेष्ठ कहा है,
इसलिये पडित पुरुष अपने हितको देखते॥(३)॥
रमणीय विहारोको बनवाये, और वहाँ बहुश्रुतोका वास कराये,
और उन्हे सरलचित्त (भिक्षुओ)को अन्न-पान, वस्त्र और शयन-आसन
प्रसन्न चित्तसे प्रदान करे॥(४)॥
(तब) वह उसे सारे दु:खोके दूर करनेवाले धर्मको उपदेशते है,
जिस धर्मको यहाँ जानकर (पुरुष) मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है"॥(५)॥

---

[1] चार प्रकारकी गुहायें होती हैं—ईंटकी गुहा, पत्थरकी गुहा, लकळीकी गुहा, मिट्टीकी गुहा।

तब भगवान् राजगृहके श्रेष्ठीको इन गाथाओंसे अनुमोदनकर आसनसे उठ चले गये।

लोगोंने सुना—भगवान्ने विहारकी अनुमति दे दी है, और (वह) सत्कारसहित विहार बनवाने लगे। (उस समय) वह विहार बिना किवाळके थे। सांप भी, बिच्छू भी, कनगजूरे भी घुस जाते थे। भगवान्से यह बात कही।—

(३) किवाळ और किवाळके सामान

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ किवाळकी।" 2

भीतमें छेदकर वल्लीसे या रस्सीसे किवाळको बाँधते थे, उन्हें चूहे भी, दीमक भी खा जाते थे, बंधनोंके खाये जानेपर किवाळ गिर पळता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पिट्ठि-संघाट (=चौखठे), उदुक्खलिका (=सरूई) और उत्तर पासक (=दासो)की।" 3

किवाळ नहीं जुळते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, आविञ्जन-छिद्र और आविञ्जनकी रस्सीकी।" 4

किवाळ भेळे न जा सकते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, अग्गळवट्टि (=अर्गल फसाक), कपिसीस (=सिटकिनी लगाने का छिद्र), सूचिक और घटिक (=बेंळा)की।" 5

उस समय भिक्षु किवाळको बन्द न कर सकते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ तालेके छिद्रकी, लोह (=लोहे)के ताले, काठके ताले और सींगके ताले इन तीन तालोंकी।" 6

जो कोई भी खोलकर घुस जाते थे, विहार अरक्षित रहता था।०—

"०अनुमति देता हूँ सूचिका (=कुंजी) और यन्त्रक (=ताले)की।" 7

उस समय विहार तृणसे छाये होते थे, (जिससे) शीतकालमें शीतल और उष्णकालमें उष्ण (होते थे)।०—

"०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन कर लीपने-पोतनेकी।" 8

(४) जँगला

उस समय विहार बिना जँगले (=वातायन)के थे, (जिससे) देखनेमें अयोग्य तथा दुर्गंध-युक्त (होते थे)।०—

"०अनुमति देता हूँ, तीन (प्रकारके) जँगलों (=वातायन)की—(१) वेदिका—वातायन, जालीदार वातायन, और (३) छळोंवाले वातायनकी।" 9

जँगलेके भीतरसे काळक (=पक्षी विशेष) भी वगुलियाँ (=वगुले) भी घुस जाती थीं।०—

"०अनुमति देता हूँ जँगलोंके पर्दे (=चक्कलिका)की।" 10

चक्कलिकाके बीचमें भी काळक और वगुलिया घुस जाती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, जँगलेके किवाळकी, जँगलेकी भिसिका (=छज्जा)की।" 11

(५) चारपाई, चौकी आदि

उस समय भिक्षु भूमिपर सोते थे, देह भी, वस्त्र भी धूसर होते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ तृणके बिछौनेकी।" 12

तृणके बिछौनेको कीळे (=दीमक) खा जाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, मीड (=चटाई ?)की।" 13

मीडीसे देह दुखने लगती थी।०—

"०अनुमति देता हूँ बेतकी चारपाईकी।"14

उस समय सघको स्मशान मे फेकी म सा र क (=गद्दीदार बेच) चारपाई मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, मसारक मचे (=चारपाई)की।" 15

"०अनुमति देता हूँ, मसारक चौकी (=पीठ)की।" 16

उस समय सघको स्मशानवाली वुन्दिका (=चादर)से बँधी चारपाई मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, वुन्दिकावद्ध चारपाईकी।" 17

"०अनुमति देता हूँ, वुन्दिकावद्ध चौकीकी।" 18

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक[1] चारपाईकी।" 19

"०अनुमति देता हूँ, कुलीरपादक चौकीकी।" 20

"०अनुमति देता हूँ, आहच्च-पादक[2] मचेकी।" 21

"०अनुमति देता हूँ, आहच्चपादक पीठकी।" 22

उस समय सघको आसन्दिका (=चौकोर पीठ) मिली थी।०—

"०अनुमति देता हूँ, आसन्दिकाकी।" 23

"०अनुमति देता हूँ, ऊँची आसन्दिकाकी।" 24

"०अनुमति देता हूँ, सप्ताग (=कुर्सी ?)की।" 25

"०अनुमति देता हूँ, ऊँचे सप्तागकी।" 26

"०अनुमति देता हूँ, भद्रपीठ (=बेतकी चौकी)की।" 27

"०अनुमति देता हूँ, पी ठि का[1] की।" 28

"०अनुमति देता हूँ, एलकपादक[2]की।" 29

"०अनुमति देता हूँ, आमलकवण्टिक[3]की।" 30

"०अनुमति देता हूँ, फलक (=तख्त)की।" 31

"०अनुमति देता हूँ, कोच्छक (=खस या मूँज)की।" 32

"०अनुमति देता हूँ, पुआलके पीढेकी।" 33

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु ऊँची चारपाईपर सोते थे। लोग विहारमे घूमते समय देखकर हैरान० होते थे—०जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! ऊँची चारपाईपर न सोना चाहिये, जो सोये उसे दुक्कटका दोप हो।"34

उस समय एक भिक्षुको नीची चारपाईपर सोते वक्त साँपने काट खाया। भगवान्से यह वात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, चारपाईमे ओट (देने)की।"35

उस समय पड्वर्गीय भिक्षु ऊँचे चारपाईके ओट रखते थे, और चारपाईके ओटोके साथ सोते थे।०—

"भिक्षुओ! ऊँचे चारपाईके ओटोको नही रखना चाहिये, जो रक्खे उसे दुक्कटका दोप हो। ०अनुमति देता हूँ, आठ अगुल तकके चारपाईके ओटकी।"36

---

[1]वेदी और चौकोर वेदीकी भाँति।

[2]गद्दीदार चौकी।

[3]आँवलेके आकारकी बहुतसे पैरोवाली चौकी।

(६) सूत, बिस्तरा आदि

उस समय संघको सूत मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ (सूतसे) चारपाई बुननेकी।" 37

अंगोंमें बहुतसा सूत लग जाता था।—

"०अनुमति देता हूँ, अंगोंको बींधकर अष्टपदक (=शतरंजी) बुननेकी।" 38

चोलक (=कपड़ा) मिला था।—

"०अनुमति देता हूँ, चिलिमिका (=नाकी छालका बना कपड़ा) बनानेकी।" 39

तूलिका (=कपास) मिली थी।—

"०अनुमति देता हूँ, जटा खुलाकर तकिया (=बिम्बोहन) बनानेकी। तूल (=कपास) तीन हैं—वृक्षतूल (=सेमल आदिका), लतातूल (=मदार आदिका), पोटकी-तूल (=कपास)।" 40

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु अर्धकायिक (=आधा शरीर लम्बी) तकिया धारण करते थे। लोग विहारमें घूमते देखकर हैरान० होते थे—जैसे कामभोगी गृहस्थ।०—

"भिक्षुओ! अर्धकायिक तकियेको नहीं धारण करना चाहिये, जो धारण करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, सिरके बराबरके तकियेकी।" 41

उस समय राजगृहमें गिरग्गसमज्जा (=०मेला) था, लोग महामात्यों (=राजमंत्रियों) के लिये ऊन, (लत्ते), छाल, तृण, पत्तेके गद्दे (=भिसि) तय्यार कराते थे। समज्जा (=मेले)के खतम हो जानेपर वह खोल उतारकर ले जाते थे। भिक्षुओंने समज्जाके स्थानपर बहुतसे ऊन, लत्ते, छाल, तृण और पत्तोंको फेंका देखा। देखकर भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, ऊन, लत्ता, छाल, तृण और पत्ता इन पाँचके गद्देकी।" 42

उस समय संघको शयन-आसनके उपयोगी दुस्स (=थान) मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, (उससे) गद्दा सीनेकी।" 43

उस समय भिक्षु चारपाईके गद्देको चौकीपर बिछाते थे, चौकीके गद्देको चारपाईपर बिछाते थे। गद्दे टूट जाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, गद्दीदार चारपाई और गद्दीदार चौकीकी।" 44

अस्तर (=उल्लोक) बिना दिये बिछाते थे, नीचेसे गिरने लगता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, अस्तर देकर, बिछाकर गद्देको (चारपाईपर) सीनेकी।" 45

खोल खींचकर ले जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ (रंग) छिड़कनेकी।" 46

(फिर) भी ले जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, भत्तिकम्म (=तागना)की।" 47

(फिर) भी ले जाते थे।—

"०अनुमति देता हूँ हत्थ-भत्ति (=सी देना)की।" 48

§२—विहारकी रंगाई, और नाना प्रकारके घर

(१) भीतके रंग

उस समय तीर्थिकों (=अन्य मतके साधुओं)की शय्या सफेद होती थी, जमीन काली, और भीतपर गेरूका काम किया होता था। बहुतसे लोग शय्या देखने जाया करते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, विहारमें सफेद, काला और गेरूका काम करनेकी।" 49

उस समय कळी भूमिपर श्वेत रग नही चढता था।०—

"०अनुमति देता हूँ भूसीके पिडको देकर, हाथसे चिकनाकर सफेद रग करनेकी।" 50

सफेद रग रुकता न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, चिकनी मिट्टी दे हाथसे चिकनाकर सफेद रग करनेकी।" 51

सफेद रग न रुकता था।—

"०अनुमति देता हूँ, गोद और खली (देने)की।" 52

उस समय कही कही भीतपर गेरू नही चढता था।—

"०अनुमति देता हूँ, भूसीके पिडको देकर, हाथसे चिकनाकर गेरू रगनेकी।" 53

"० ०, खली मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर गेरू करनेकी।" 54

"० ०, सरसोकी खली और मोमके तेलकी।" 55

उस समय कळी (=परुष) भीतपर काला रग नही चढता था।—

"० ०, भूसीके पिडको देकर, हाथसे चिकनाकर काला रग करनेकी।" 56

"० ०, केचुयेकी मिट्टी दे, हाथसे चिकनाकर काला रग करनेकी।" 57

"० ०, गोद और (हर्रा आदिके) कषायकी।" 58

(२) भीतमें चित्र

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु विहारमें स्त्री, पुरुष आदिके चित्र अकित करते थे। लोग विहारमें घूमते समय देखकर हैरान होते थे०—जैसे कामभोगी गृहस्थ। ०—

"भिक्षुओ! स्त्री, पुरुषके चित्र[1] नही बनवाना चाहिये, जो बनवावे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ, माला, लता, मकरदन्त (=त्रिकोणोकी झाला), पचपट्टिका (=फर्शकी पटिया) की।" 60

(३) सीढ़ी आदि

उस समय विहारोकी कुर्सी नीची होती थी, पानी भरता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 61

चिनाई गिर जाती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 62

चढनेमें तकलीफ होती थी।—

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 63

(४) कोठरी

चढते वक्त गिर पडते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, आलम्बन बाँहीकी।" 64

उस समय भिक्षुओके विहार एक आँगनवाले थे। भिक्षु लेटनेमें लजाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, पर्दे (=तिरस्करिणी)की।" 65

तिरस्करिणीको उठाकर देखते थे।—

"०अनुमति देता हूँ, आधी दीवारकी।" 66

---

[1]श्रद्धा, वैराग्य उत्पन्न करनेवाले जातकोके चित्र बनवाये जा सकते है (—अट्ठकथा)।

आधी दीवारके ऊपरसे देखते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ, शिविका-गर्भ (=बराबर लम्बाई चौळाईकी कोठरी), नालिकागर्भ (=लम्बी कोठरी), और हर्म्य-गर्भ (=कोठेपरकी कोठरी)—इन तीन (प्रकारके) गर्भो (=कोठरियो)की ।" 67

उस समय भिक्षु छोटे विहारके बीचमे गर्भ (=कोठरी) बनाते थे, रास्ता न रहता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, छोटे विहारमे एक ओर गर्भ बनानेकी, और बळे विहारमे बीचमे।" 68

उस समय विहारकी भीतका पाया जीर्ण हो जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ कुलुक-पादक[1] की।" 69

उस समय (वर्षासे) विहारकी भीत ढहती है।०—

"अनुमति देता हूँ, रक्षा करनेकी टट्टी, और उद्‌सुधा[2] की ।" 70

उस समय एक तृणकी छतसे भिक्षुके कधेपर साँप गिरता था। वह डरके मारे चिल्ला उठा। भिक्षुओने दौळकर उस भिक्षुसे यह पूछा।—

"आवुस! क्यो तुम चिल्लाये ?"

उसने भिक्षुओसे वह बात कह दी। भिक्षुओने भगवान्‌से वह बात कही ।—

"०अनुमति देता हूँ वितान (=चाँदनी)की।" 71

उस समय भिक्षु चारपाईके पावोमे भी, चौकीके पावोमे भी थैला लटकाते थे। उन्हे चूहे भी खा जाते थे, दीमक भी खा जाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, भीतके कीलकी, नागदन्त (=खूँटी)की।" 72

उस समय भिक्षु चारपाईपर भी, चौकीपर भी चीवर लटकाते थे, चीवर कट जाता था।०—

"०अनुमति देता हूँ, चीवर (टाँगने)के बाँस और रस्सी(=अर्गनी की)।" 73

(५) आलिन्द-ओसारा

उस समय विहारोमे आलिन्द (=डचोढी) और ओसारे न होते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, आलिन्द, प्रघण (=देहली), प्रकुडच (=कोठरीकी दीवारके भीतर) और ओसारे (=ओसरक)की।" 74

आलिन्द खुले थे, भिक्षु वहाँ लेटनेमे लजाते थे ।—

"०अनुमति देता हूँ, ससरण (=चिक)किटिक और उद्‌घाटन किटिककी।" 75

(६) उपस्थानशाला

उस समय भिक्षु खुली जगहमे भोजन करते थे, और जाळे गर्मीसे तकलीफ पाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, उ प स्था न शा ला की।" 76

"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीको ऊँची करनेकी।" 77

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी ।" 78

"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 79

"०अनुमति देता हूँ, आलम्बनबाहु (=कटहरा)की।" 80

---

[1] काटकर ओटके लिए वहाँ गाळी वृक्षकी पेळी।

[2] बछळेके गोबर और राखको मिलाकर बनाया प्लास्तर (—अट्ठकथा)।

"०अनुमति देता हूँ, ओगुम्बन[1] करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 81
उस समय भिक्षु खुली जगहमे चीवर पसारते थे। चीवर धूसर होते थे।—
"०अनुमति देता हूँ, खुली जगहमे चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 82

(७) पानी शाला

पानी तप जाता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानी-शाला और पानी-मडपकी।" 83
"०अनुमति देता हूँ, कुर्सीको ऊँची करनेकी।" 84
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 85
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 86
"०अनुमति देता हूँ, आलम्बनवाहुकी।" 87
"०अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 88
पानीका वर्तन न था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानीके सख (=चुक्का ?) और पानीके शराव (=पुरवा)की।" 89

(८) विहार

उस समय विहार (दीवारसे) घिरा न होता था।—
"०अनुमति देता हूँ, ईट, पत्थर या लकळी (इन) तीन (तरह)के प्राकारोंसे।" 90
कोष्ठक (=द्वारपरका कोठा) न था।—
"०अनुमति देता हूँ, कोष्ठककी।" 91
"० ०, कुर्सी ऊँची करनेकी।" 92
कोष्ठकमे किवाळ न थे।—
"०अनुमति देता हूँ, किवाळ,० आविञ्जनच्छिद्दकी।" 93
कोष्ठकमे तिनकेका चूरा गिरता था।—
"० ०, ओगुम्बन करके०[2] पचपट्टिकाकी।" 94

(९) परिवेण

उस समय परिवेण (=आँगन)मे कीचळ होता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, मरुम्ब (=बालू) बिखेरनेकी।" 95
नही ठीक होता था।—
"०अनुमति देता हूँ, प्रदरशिला बिछानेकी।" 96
पानी लगता था।—
"०अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 97
उस समय भिक्षु परिवेणमे जहाँ तहाँ आग जलाते थे। परिवेण मैला होता था।०—
"०अनुमति देता हूँ, एक ओर अग्निशाला बनानेकी।" 98
"० ०, कुर्सी ऊँची बनानेकी।" 99
"० ०, ईट, पत्थर या लकळीकी चिनाईकी।" 100
"० ०, ईट, पत्थर या लकळीकी सीढीकी।" 101

---

[1]लम्बी लकळियोंको गाळ काँटेकी शाखा बाँधकर बनाया दँवान। [2]पृष्ठ ४५२।

"० ०, आलम्बन-बाहुकी।" 102

अग्निशालामे किवाळ न था।—

"० ०, किवाळ, ०[1] आविञ्जन-रज्जुकी।" 103

अग्निशालामे तिनकेका चूरा गिरता था।—

"० ०, ओगुम्बन करके०[2] चीवर (टाँगने)के बाँस-रस्सीकी।" 104

(१०) आराम

आराम (=भिक्षु-आश्रम) घिरा न होता था। गोरू बकरी आकर रोपे (पौधो)को नुकसान करते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, बाँसकी बाढ या काँटेकी बाढ (=वाट), अथवा परिखा (खाईं)से रोकनेकी।" 105

कोष्ठक (=फाटक) न था।—और उसी प्रकार गोरू बकरी आकर रोपे (पौधो)को नुकसान करते थे।—

"००अनुमति देता हूँ, कोष्ठक (=फाटक), आणेसी ५ जोडे किवाळ, तोरण और परिघ (=पहियेवाली किवाळ)की।" 106

कोष्ठक (=नौबतखाना)मे तिनकेका चूरा गिरता था।—

"० अनुमति देता हूँ ओगुम्बन करके०[2] पचपटिकाकी।" 107

आराममे कीचळ होता था।—

"० अनुमति देता हूँ मरूम्ब बिखेरनेकी।" 108

नही ठीक होता था।—

"० अनुमति देता हूँ प्रदरशिला (=पत्थरकी पट्टी) बिछानेकी।" 109

पानी लगता था।—

"० अनुमति देता हूँ, पानीकी नालीकी।" 110

(११) प्रासाद-छत

उस समय मगधराज सेनिय बिम्बिसार सघके लिये चूना मिट्टी (=सुधामत्तिका)से लिपा प्रासाद बनाना चाहता था। तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या भगवान्ने छतकी अनुमति दी है या नही।' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ पाँच प्रकारके छतोकी—ईंटकी छत, शिलाकी छत, चूने (=सुधा)की छत, तिनकेकी छत और पत्तेकी छत।" 111

प्रथम भाणवार समाप्त

§३–अनाथपिंडिककी दीक्षा, नवकर्म (=नया मकान बनवाना) अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति, तित्तिर जातक, जेतवन-स्वीकार

(१) अनाथपिंडिककी दीक्षा

[3]उस समय अनाथ-पिंडिक गृहपति (जो) राजगृहके-श्रेष्ठीका बहनोई था, किसी काम

---

[1]देखो पृष्ठ ४५२। [2]देखो पृष्ठ ४५२।

[3]मयु० नि० ११।१।८ भी।

से राजगृह गया। उस समय राजगृहक-श्रेष्ठीने संघ-सहित बुद्धको दूसरे दिनके लिये निमन्त्रण दे रक्खा था। इसलिये उसने दासो और क म - क रो को आज्ञा दी—

"तो भणे! समयपर ही उठकर खिचळी पकाओ, भात पकाओ,। सू प (=तेमन) तैयार करो ..।" तब अनाथपिंडिक गृहपतिको ऐसा हुआ—"पहिले मेरे आनेपर यह गृह-पति, सब काम छोळकर मेरेही आव-भगतमे लगा रहता था। आज विक्षिप्तसा दासो और कमकरोको आज्ञा दे रहा है— "तो भणे! समयपर०।" क्या इस गृहपतिके (यहाँ) आ वा ह होगा, या वि वा ह होगा, या महायज्ञ उपस्थित है, या लोग-बाग-सहित मगध-राज श्रे णि क बि म्बि सा र कलके लिये निमन्त्रित किये गये है?"

तव राज-गृहक श्रेष्ठी दासो और कमकरोको आज्ञा देकर, जहाँ अनाथ-पिंडिक गृहपति था, वहाँ आया। आकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिके साथ प्र ति स म्मो द न (=प्रणामापाती) कर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, राजगृहक श्रेष्ठीको अनाथ-पिंडिक गृहपतिने कहा—"पहिले मेरे आनेपर तुम गृहपति! ०।"

"गृहपति! मेरे (यहाँ) न आवाह होगा, न विवाह होगा, न ० मगध-राज० निमन्त्रित किये गये है। बल्कि कल मेरे यहाँ बळा यज्ञ है। संघ-सहित बुद्ध (=बुद्ध-प्रमुख संघ) कलके लिये निमन्त्रित है।"

"गृहपति! तू 'बुद्ध' कह रहा है?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध' कह रहा हूँ।"

"गृहपति! 'बुद्ध'०?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध'०?"

"गृहपति! हाँ 'बुद्ध'०।"

"गृहपति! 'बुद्ध' यह शब्द (=घो ष) भी लोकमे दुर्लभ है। गृहपति! क्या इस समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्-संबुद्धके दर्शनके लिये जाया जा सकता है?"

"गृहपति! यह समय उन भगवान् अर्हत् सम्यक्संबुद्धके दर्शनार्थ जानेका नही है।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपति—"अब कल समयपर उन भगवान्०के दर्शनार्थ जाऊँगा" इस बु द्ध - वि ष य क स्मृ ति को (मनमे) ले सो रहा। रातको सवेरा समझ तीन वार उठा। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहाँ (रा ज गृ ह नगरका) शि व द्वा र था, (वहाँ) गया। अ- म नु ष्यो (=देव आदि) ने द्वार खोल दिया। तब अ ना थ - पि डि क०के नगरसे बाहर निकलते ही प्रकाश अन्तर्धान हो गया, अन्धकार प्रादुर्भूत हुआ। (उसे) भय, जळता और रोमाच उत्पन्न हुआ। वहीसे उसने लौटना चाहा। तब शिवक यक्षने अन्तर्धान होते हुये शब्द सुनाया "सौ हाथी, सौ घोळे, (और) सौ खच्चरीके रथ, मणि कुंडल पहिने सौ हजार कन्याये एक पदके कथनके सोलहवे भागके मूल्यके बराबर भी नहीं है। चल गृहपति! चल गृहपति! चलना ही श्रेयस्कर है लौटना नही।"

तब अनाथ-पिंडिक गृहपतिका अंधकार नष्ट हो गया, प्रकाश उग आया। जो भय, जळता और रोमाच उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी अनाथ-पिंडिक गृहपतिको प्रकाश अन्तर्धान हो गया० रोमाच उत्पन्न हुआ था, वह नष्ट हो गया। तब अनाथ-पिंडिक गृहपति जहाँ सीत-वन (है वहाँ) गया। उस समय भगवान् रातके प्र त्यू ष (=भिनसार) कालमे उठकर चौळेमे टहल रहे थे। भगवान्ने अनाथ-पिंडिक गृहपतिको दूरसे ही आते हुये देखा। देखकर च ड्क्र म ण (=टहलनेकी जगह)से उतरकर, बिछे आसनपर बैठ गये। बैठकर अनाथ-पिंडिक गृहपतिसे कहा—"आ सु द त्त।"

अनाथ-पिंडिक गृहपति यह (सोच) "भगवान् मुझे नाम लेकर बुला रहे है" हृष्ट=उ द ग्र

(=फूला न समाता) हो, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्के चरणोमे शिरसे पळकर बोला—

"भन्ते ! भगवान्को निद्रा सुखसे तो आई ?"

"निर्वाण-प्राप्त ब्राह्मण सर्वदा सुखसे सोता है।
जोकि शीतल और दोप-रहित हो काम वासनाओमे लिप्त नही होता ॥
सारी आसक्तियोको खडितकर हृदयसे डरको हटाकर।
चित्तकी शातिको प्राप्तकर उपशात हो (वह) सुखसे सोता है ॥"

तब भगवान्ने अनाथ-पिडिक गृहपतिको आनुपूर्वी[1] कथा० कही। जैसे कालिमा-रहित शुद्ध-वस्त्र अच्छी तरह रग पकळता है, ऐसे ही अनाथपिडिक गृहपतिको उसी आसनपर 'जो कुछ समुदय-धर्म है वह निरोध-धर्म है', यह वि-रज=वि-मल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ। तब दृष्ट-धर्म=प्राप्त-धर्म=विदित-धर्म=पर्यवगाढ-धर्म, सदेह-रहित, वाद-विवाद-रहित, शास्ताके-शासन (=बुद्ध-धर्म)मे स्वतत्र हो, अनाथ-पिडिक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"आश्चर्य ! भन्ते ! आश्चर्य ! भन्ते ! जैसे औधेको सीधा कर दे, ढँकेको उघाळ दे, भूलेको रास्ता बतला दे, अधकारमें तेलका प्रदीप रख दे जिसमे आँखवाले रूप देखे, ऐसेही भगवान्ने अनेक प्रकारसे धर्मको प्रकाशित किया। मै भगवान्की शरण जाता हूँ, धर्म और भिक्षु-सघकी (शरण जाता हूँ)। आजसे मुझे भगवान् साजलि शरण-आया उपासक ग्रहण करे। भगवान् भिक्षु-सघके सहित कलका मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौनसे स्वीकार किया। तब अनाथ पिडिक० भगवान्की स्वीकृतिको जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादन कर, प्रदक्षिणा कर, चला गया। राजगृहक-श्रेष्ठीने सुना—अनाथ-पिडिक गृह-पतिने कलको भिक्षु-सघ-सहित बुद्धको निमत्रित किया है। तब राजगृहक-श्रेष्ठीने अनाथ-पिडिक गृह-पतिसे कहा—

"तूने गृह-पति ! कलके लिये भिक्षु-सघ-सहित बुद्धको निमत्रित किया है, और तू आगतुक (=पाहुना=अतिथि) है। इसलिये गृह-पति ! मै तुझे खर्च देता हूँ, जिससे तू बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके लिये भोजन (तैयार) करे ?"

"नही गृहपति ! मेरे पास खर्च है, जिससे मै बुद्ध-सहित भिक्षु-सघका भोजन (तैयार) करूँगा।"

राज-गृहके नैगमने[2] सुना—अनाथ पिडिक०। तब राजगृहके नैगमने अनाथ-पिडिक०को यो कहा—"०मै तुझे खर्च० देता हूँ।"

"नही आर्य ! मेरे पास खर्च है०।"

मगध-राज०ने सुना—०। तब मगध-राज०ने अनाथ-पिडिक०को कहा० "मै तुझे खर्च० देता हूँ।"

"नहीं देव ! मेरे पास खर्च है०।"

तब अनाथ-पिडिक गृहपतिने उस रातके बीत जानेपर, राजगृहके श्रेष्ठीके मकानपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करा, भगवान्को कालकी सूचना दिलवाई "काल है भन्ते ! भोजन तैयार हो गया।" तब भगवान् पूर्वाह्णके समय सु-आच्छादित हो, पात्र चीवर हाथमे ले, जहाँ राजगृहके श्रेष्ठीका मकान

[1] पृष्ठ ८४।

[2] 'श्रेष्ठी' या नगर-सेठ उस समयका एक अवैतनिक राजकीय पद था। इसी तरह 'नैगम' एक पद था, जो शायद 'श्रेष्ठी' से ऊपर था।

था, वहाँ गए। जाकर भिक्षुसघ महित बिछाये आसनपर बैठे। तब अनाथ-पिडिक गृह-पति बुद्ध-सहित भिक्षु-सघको अपने हाथमे उत्तम खाद्य भोज्यसे सर्तपित कर, पूर्णकर, भगवान्‌के भोजनकर, पात्रमे हाथ खीच लेनेपर, एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे अनाथ-पिडिक गृह-पतिने भगवान्‌से कहा—

"भिक्षु-सघके साथ भगवान् श्रा व स्ती मे व र्षा - वा स स्वीकार करें।"

"शून्य-आगारमे गृहपति! तथागत अ भि र म ण (=विहार) करते है।"

"समझ गया भगवान्! समझ गया सु ग त!"

उस समय अनाथ-पिडिक गृह-पति बहु-मित्र=बहु-सहाय, और प्रामाणिक था। रा ज गृ ह मे (अपने) कामको खतमकर, अनाथ-पिडिक गृह-पति श्रावस्तीको चल पळा। मार्गमे[1] उसने मनुष्योंको कहा—"आर्यो! आ रा म बनवाओ, वि हा र (=भिक्षुओंके रहनेका स्थान) प्रतिष्ठित करो। लोकमे बुद्ध उत्पन्न हो गये है, उन भगवान्‌को मैंने निमन्त्रित किया है, (वह) इसी मार्गसे आवेंगे।'

तब अनाथ-पिडिक गृह-पति-द्वारा प्रेरित हो, मनुष्योने आराम बनवाये, विहार प्रतिष्ठित किये दा न (=सदाव्रत) रक्खे।

तब अनाथ-पिडिक गृह-पतिने श्रावस्ती जाकर, श्रावस्तीके चारो ओर नजर दौळाई—

"भगवान् कहाँ निवास करेंगे? (ऐसी जगह) जो कि गाँवसे न बहुत दूर हो, न बहुत समीप, चाहनवालोंके आने-जाने योग्य, इच्छुक मनुष्योंके पहुँचने लायक हो। दिनको कम भीळ, रातको अल्प-शब्द=अ ल्प - नि र्घो ष, वि - ज न-वात (=आदमियोकी हवासे रहित), मनुष्योसे एकान्त, ध्यानके लायक हो।" अनाथ-पिडिक गृहपतिने (ऐसी जगह) जे त रा ज कु मा र का उद्यान देखा, (जो कि) गाँवसे न बहुत दूर था०। देखकर जहाँ जेत राजकुमार था, वहाँ गया। जाकर जेत राजकुमारसे कहा—

"आ र्य - पु त्र! मुझे आराम बनानेके लिये (अपना) उद्यान दीजिये।"

"गृहपति! 'को टि - स न्था र' से भी, (वह) आराम अ-देय है।"

"आर्य-पुत्र! मैंने आराम ले लिया।"

"गृहपति! तूने आराम नही लिया।"

'लिया या नहीं लिया', यह उन्होने व्य व हा र - अ मा त्यो (=न्यायाध्यक्ष)से पूछा। महामात्योंने कहा—

"आर्य-पुत्र! क्योकि तूने मोल किया, (इसलिये) आराम ले लिया।"

तब अनाथ-पिडिक गृहपतिने गाळियोपर हि र ण्य (=मोहर) ढुलवाकर जेतवनको 'को टि-स न्था र' (=किनारेसे किनारा मिलाकर) बिछा दिया[2]। एक बारके लाये (हिरण्य)से (द्वारके) कोठेके चारो ओरका थोळासा (स्थान) पूरा न हुआ। तब अनाथ-पिडिक गृहपतिने (अपने) मनुष्योंको आज्ञा दी—

"जाओ भणे! हिरण्य ले आओ, इस खाली स्थानको ढाकेगे। तब जे त रा ज कु मा र को (ख्याल) हुआ—"यह (काम) कम महत्त्वका न होगा, जिसमे कि यह गृहपति बहुत हिरण्य खर्च कर रहा है।"(और) अनाथ-पिडिक गृहपतिको कहा—

[1]जो धनी थे उन्होंने अपने बनाया, जो कम धनी या निर्धन थे, उन्हे धन दिया। इस प्रकार वह पैंतालीस योजन रास्तेमें योजन योजनपर विहार बनवा श्रावस्ती गया (—अट्ठकथा)।

[2]इस प्रकार अठारह करोळका एक चहबच्चा खाली हो गया। दूसरे आठ करोळसे आठ करीस भूमिमें यह विहार आदि बनवाये (—अट्ठकथा)।

"बस, गृहपति ! तू इस खाली जगहको मत ढँकवा। यह खाली-जगह (=अवकाश) मुझे दे, यह मेरा दान होगा।"

तब अनाथ-पिडिक गृहपतिने 'यह जेत कुमार गण्य-मान्य प्रसिद्ध मनुष्य है। इस ध र्म - वि न य (=धर्म)मे ऐसे आदमीका प्रेम होना लाभदायक है।' (सोच) वह स्थान जेत राजकुमारको दे दिया। तब जेत-कुमारने उस स्थानपर कोठा बनवाया। अनाथ-पिडिक गृहपतिने जेतवनमे वि हा र (=भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये। प रि वे ण (=आँगन सहित घर) बनवाये। कोठरियाँ०। उ प स्था न - शा ला ये (=सभा-गृह)० । अ ग्नि - शा ला ये (=पानी-गर्म करनेके घर)०। क ल्पि क - कु टि याँ (=भडार)०। पा खा ने ०। पे शा व खा ने०। च ङ्क म ण (=टहलनेके स्थान०)०। च ङ्क म ण-शा ला ये०। प्या उ०। प्या उ -घर ०। जताघर (=स्नानागार)० । ज न्ता घ र - शा ला ये०। पु ष्क रि णि याँ०। म ड प०।

२—वैशाली

(२) नवकर्म

भगवान् रा ज गृ ह मे इच्छानुसार विहारकर, जिधर वै शा ली थी, उधर चारिका (=रामत) को चल पळे। क्रमश चारिका करते हुये जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् वैशालीमे म हा व न की कू टा गा र - शा ला मे विहार करते थे।

उस समय लोग सत्कार-पूर्वक न व - क र्म (=नये घरका निर्माण) कराते थे। जो भिक्षु नव-कर्मकी देख-रेख (=अधिष्ठान) करते थे, वह भी (१) ची व र (=वस्त्र), (२) पि ड-पा त (=भिक्षान्न), (३) श य ना स न (=घर), (४) ग्ला न - प्र त्य य (=रोगि-पथ्य) भै प ज्य (=औषध) इन प रि ष्का रो से सत्कृत होते थे। तब एक दरिद्र त तु वा य (=जुलाहा)के (मनमे) हुआ—"यह छोटा काम न होगा, जो कि यह लोग सत्कार-पूर्वक नव-कर्म कराते है, क्यो न मै भी नव-कर्म बनाऊँ ?" तब उस गरीब तन्तुवायने स्वय ही कीचळ तैयारकर, ईंटे चिन, भीत खळीकी। अनजान होनेसे उसकी बनाई भीत गिर पळी। दूसरी बार भी उस गरीब०। तीसरी बार भी उस गरीब०। तब वह गरीब तन्तुवाय खिन्न होता था—"इन शाक्य-पुत्रीय श्रमणोको जो चीवर० देते है, उन्हीके नव-कर्मकी देख-रेख करते है। मै गरीब हूँ इसलिये कोई भी मुझे न उपदेश करता है, न अनुशासन करता है, और न नव-कर्मकी देख-रेख करता है।"

भिक्षुओने उस गरीब तन्तुवायको खिन्न होते सुना। तब उन्होने इस बातको भगवान्से कहा। तब भगवान्ने इसी सबधमे, इसी प्रकरणमे, धार्मिक-कथा कहकर, भिक्षुओको आ म न्त्रि त किया—

"भिक्षुओ ! न व - क र्म देनेकी आज्ञा करता हूँ। न व - क र्मि क (=विहार बनवानेका निरीक्षक) भिक्षुको विहारकी जल्दी तैयारीका ख्याल करना चाहिये। (उसे) टूटे फूटेकी मरम्मत करानी चाहिये।

"और भिक्षुओ ! (नव-कर्मिक भिक्षु) इस प्रकार देना चाहिये। पहिले भिक्षुसे प्रार्थना करनी चाहिये। फिर एक चतुर समर्थ भिक्षु-सघको सूचित करे।

"भन्ते ! सघ मेरी सुने। यदि सघको पसन्द है, तो अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म, अमुक भिक्षुको दिया जाये। यह ज्ञ प्ति (=निवेदन) है।

"भन्ते ! सघ मुझे सुने। अमुक गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाता है। जिस आयुष्मान्को मान्य है, कि अमुक-गृह-पतिके विहारका नव-कर्म अमुक भिक्षुको दिया जाय, वह चुप रहे, जिसको मान्य न हो, बोले।"

"दूसरी बार भी०।" "तीसरी बार भी०।"

"सघने० नव-कर्म अमुक भिक्षुको दे दिया,सघको मान्य है, इसलिये चुप है—ऐसा मै समझता हूँ।"

भगवान् वै शा ली मे इच्छानुसार विहार करके, जहाँ श्रा व स्ती है वहाँ चारिकाके लिये चले। उस समय छ - व र्गी य भिक्षुओके शिष्य, बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके आगे आगे जाकर, विहारोको दखलकर लेते थे, शय्याये दखलकर लेते थे—"यह हमारे उपाध्यायोके लिये होगा, यह हमारे आचार्योके लिये होगा, यह हमारे लिये होगा।" आयुष्मान् सा रि पु त्र, बुद्ध-सहित सघके पहुँचनेपर, विहारोके दखल हो जानेपर, शय्याओके दखल हो जानेपर, शय्या न पा, किसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। भगवान्ने रातके भिनसारको उठकर खाँसा। आयुष्मान् सा रि पु त्र ने भी खाँसा।

"कौन यहाँ है ?"

"भगवान्! मैं सारिपुत्र!"

"सारि-पुत्र! तू क्यो यहाँ बैठा है ?"

तब आयुष्मान् सारि-पुत्रने सारी बात भगवान्से कही। भगवान्ने इसी सबधमे—इसी प्रकरणमे भिक्षु-सघको जमा करवा, भिक्षुओसे पूछा—

"सचमुच भिक्षुओ! छ-वर्गीय भिक्षुओके अ न्ते वा सी (=शिष्य) बुद्ध-सहित सघके आगे आगे जाकर० दखलकर लेते हैं ?"

"सचमुच भगवान्!"

भगवान्ने धिक्कारा—"भिक्षुओ! कैसे वह नालायक भिक्षु बुद्ध-सहित सघके आगे० ? भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है, न प्रसन्नोको अधिक प्रसन्न करनेके लिये है, बल्कि अ-प्रसन्नोको (और भी) अप्रसन्न करनेके लिये, तथा प्रसन्नो (=श्रद्धालुओ)मेसे भी किसी किसीके उलटा (अप्रसन्न) हो जानेके लिये है।"

धिक्कार कर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया—

(३) अग्रासन अग्रपिंडके योग्य व्यक्ति

"भिक्षुओ! प्रथम आसन, प्रथम जल, और प्रथम परोसा (=अ ग्र - पिं ड)के योग्य कौन है ?"

किन्ही भिक्षुओने कहा—"भगवान्! जो क्षत्रिय कुलसे प्रव्रजित हुआ हो, वह योग्य है।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान् जो ब्राह्मण कुलसे प्रव्रजित हुआ है, वह०।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो गृ ह - प ति (=वैश्य) कुलमे।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो सौ त्रा ति क (=सूत्र-पाठी) हो०।"

किन्ही०ने कहा—"भगवान्! जो वि न य - ध र (=विनय-पाठी) हो०।"

किन्ही भिक्षुओने कहा—"भगवान् जो ध र्म - क थि क (=धर्मव्याख्याता) हो०।"

किन्ही०—"जो प्रथम ध्यानका लाभी (=पानेवाला) हो०।"

किन्ही०—"जो द्वितीय ध्यानका लाभी।" "जो तृतीय ध्यानका०।" "जो चतुर्थ ध्यान-का०।" "जो सो ता प न्न (स्रोतआपन्न) हो०।" "जो स कि दा गा मी (=सकृदागामी)०।". "जो अ ना गा मी०।" "जो अ र्ह त्०।" "जो त्रै वि द्य हो०।" "जो षट्-अ भि ज्ञ०।"

(४) तित्तिर जातक

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"पूर्वकालमे भिक्षुओ! हिमालयके पासमे एक बळा बर्गद था। उसको आश्रयकर, तित्तिर, वानर और हाथी तीन मित्र रहते थे। वह तीनो एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीविका न करते हुये, रहते थे। भिक्षुओ! उन मित्रोको ऐसा (विचार) हुआ—'अहो! जानना चाहिये, (कि हममे कौन जेठा है), ताकि हम जिसे जन्मसे बळा जाने, उसका सत्कार करे, गौरव करे, माने, पूजे, और उसकी सीखमे रहे।'

"तव भिक्षुओ! तित्तिर और मर्कट (=वानर)ने हस्ति-नागसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हे क्या पुरानी (वात) याद है?'

"'सौम्यो! जव मै बच्चा था, तो इस न्य ग्रो ध (वर्गद) को जाँघोके वीचमे करके लाँघ जाता था। इसकी फुनगी मेरे पेटको छूती थी। 'सौम्यो! यह पुरानी वात मुझे स्मरण है।'

"तव भिक्षुओ! तित्तिर और हस्ति-नागने वानरसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हे क्या पुरानी (वात) याद है?'

"'सौम्यो! जव मै बच्चा था, भूमिमे बैठकर इस वर्गदके फुनगीके अकुरोको खाता था। सौम्यो! यह पुरानी०।'

"तब भिक्षुओ! वानर और हस्ति-नागने तित्तिरसे पूछा—

"'सौम्य! तुम्हे क्या पुरानी (वात) याद है?'

"'सौम्यो! उस जगहपर महान् वर्गद था, उससे फल खाकर इस जगह मैने विष्टा की, उसीसे यह बर्गद पैदा हुआ। उस समय सौम्यो! मै जन्मसे वहुत सयाना था।'

"तव भिक्षुओ! हाथी और वानरने तित्तिरको यो कहा—

"'सौम्य! तू जन्ममे हम सबसे वहुत वळा है। तेरा हम सत्कार करेगे, गौरव करेगे, मानेगे, पूजेगे, और तेरी सीखमे रहेगे।'

"तब भिक्षुओ! तित्तिरने वानर और हस्ति-नागको पाँच शील[1] ग्रहण कराये, आप भी पाँच शील ग्रहण किये। वह एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीविका करते हुये विहारकर, काया छोळ मरनेके वाद, सुगति (प्राप्त कर) स्वर्ग लोकमे उत्पन्न हुये। यही भिक्षुओ! तै त्ति री य -ब्र ह्म च र्य हुआ—

"'धर्मको जानकर जो मनुष्य वृद्धका सत्कार करते है।
(उनके लिये) इसी जन्ममे प्रशसा है, और परलोकमे सुगति।'

"भिक्षुओ! वह ति र्य ग् (=पशु) यो नि के प्राणी (थे, तो भी) एक दूसरेका गौरव करते, सहायता करते, साथ जीवन-यापन करते हुये, वि हा र करते थे। और भिक्षुओ! यहाँ क्या यह शोभा देगा, कि तुम ऐसे सु-व्याख्यात धर्म-विनयमे प्रव्रजित होकर भी, एक दूसरेका गौरव न करते, सहायता न करते, साथ जीवन-यापन न करते (हुये) विहार करो। भिक्षुओ! यह न अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

धिक्कारकर धार्मिक कथा कहके उन भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! वृद्ध-पनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, (वळेके सामने खळा होना), हाथ जोळना, कुशल-प्रश्न, प्रथम-आसन, प्रथम-जल, प्रथम-परोसा देनेकी अनुज्ञा करता हूँ। साधिक वृद्धपनके अनुसरणको न तोळना चाहिये, जो तोळे उसको 'दु ष्कृ त'[2]की आपत्ति (होगी)।

"भिक्षुओ! यह दश अ-वन्दनीय है—

(५) वन्दनाका क्रम

"'पूर्वके उ प - स म्प न्न को पीछेका उ प स म्प न्न[3] अ-वन्दनीय है। अन्-उपसम्पन्न अवदनीय है। नाना सह-वासी, वृद्ध-तर अ-धर्म-वादी०। स्त्रियाँ०। नपुसक०। 'प रि वा स'[4] दिया गया०।

---

[1]अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मद-वर्जन। [2]भिक्षु-नियमके अनुसार छोटा पाप है। [3]भिक्षुकी दीक्षाको प्राप्त। [4]अपराधके कारण सघ द्वारा कुछ दिनके लिये पृथक्करण।

'मू ल से प्र ति - क र्ष णा र्हं०। 'मा न त्वा र्हं०[1]। 'मानत्व-चारिक०। 'आह्वा ना र्हं०। भिक्षुओ! यह तीन वदनीय है—पीछे उपसम्पन्न द्वारा पहिलेका उपसम्पन्न वन्दनीय है, नाना सहवास वाला वृद्धतर धर्मवादी०। देव-मार-ब्रह्मा सहित सारे लोकके लिये, देव-मनुष्य-श्रमण-ब्राह्मण सहित सारी प्रजाके लिये, तथागत अर्हत् सम्यक-सम्बुद्ध वन्दनीय है।

३—श्रावस्ती

(६) जेतवन स्वीकार

क्रमश चारिका करते हुये, भगवान् जहाँ श्रा व स्ती है, वहाँ पहुँचे। वहाँ श्रावस्तीमे भगवान् अनाथ-पिं डि क के आराम 'जे त - व न' मे विहार करते थे। तब अ ना थ - पिं डि क गृहपति जहाँ भगवान् थे, वहाँ आया, आकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे हुये, अनाथ-पिडिक गृहपतिने भगवान्से कहा—

"भन्ते! भगवान् भिक्षु-सघ-सहित कलको मेरा भोजन स्वीकार करे।"

भगवान्ने मौन रह स्वीकार किया। तब अनाथ-पिडिक० भगवान्की स्वीकृति जान, आसनसे उठ, भगवान्को अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर चला गया। अनाथ-पिडिकने उस रातके बीत जानेपर उत्तम खाद्य भोज्य तैयार करवा, भगवान्को काल सूचित कराया०। तब अनाथ-पिडिक गृहपति अपने हाथसे बुद्ध - सहित भि क्षु - स घ को उत्तम खाद्य भोज्यसे सतर्पितकर, पूर्णकर, भगवान्के पात्रसे हाथ हटा लेनेपर, एक ओर० बैठकर भगवान्से बोला—

"भन्ते! भगवान्! मै जेतवनके विषयमे कैसे करूँ?"

"गृहपति! जेतवन आ ग त - अ ना ग त चा तु र्दि श स घ के लिये प्रदान कर दे?"

अनाथ-पिंडिकने 'ऐसा ही भन्ते!' उत्तर दे, जेतवनको आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षुसघको प्रदान कर दिया।

तब भगवान्ने इन गाथाओसे अ ना थ पि डि क गृहपति (के दान)को अनुमोदित किया—

"सर्दी गर्मीको रोकता है०[2]।

"० मलरहित हो निर्वाणको प्राप्त होता है"॥(५)॥

तब भगवान् अनाथपिडिक गृहपति (के दान)को इन गाथाओसे अनुमोदितकर आसनसे उठ चले गये।

§४—विहारकी चीजोंके उपयोगका अधिकार आसन-ग्रहणके नियम

(१) विहारकी चीजोके उपयोगमे क्रम

उस समय लोग सघके लिये मडप, सन्थार (=बिछौना), अवकाश तैयार करते थे। ष ड् - व र्गी य भिक्षुओके शिष्य—भगवान् सघ (की चीज)के लिये ही वृद्धपनके अनुसार अनुमति दी है, (सघके) उद्देशसे कियेके लिये नही—(सोच) बुद्ध-सहित भिक्षु-सघके आगे आगे जा मडपो, सन्थारो, और अवकाशोको दखलकर लेते थे—यह हमारे उपाध्यायोके लिये होगा, यह हमारे आचार्योके लिये और यह हमारे लिये होगा। आयुष्मान् सा रि पु त्र बुद्ध-सहित भिक्षुसघके पीछे पीछे जाकर, मडपो, सन्थारो और अवकाशोके ग्रहणकर लिये जानेपर, अवकाश न मिलनेसे एक वृक्षके नीचे बैठे। तब भगवान्ने रातके भिनसारको खाँसा, आयुष्मान् सारिपुत्रने भी खाँसा।—

"कौन है यहाँ?"

"भगवान्! मै सारिपुत्र।"

---

[1]यह भी एक दड है।

[2]देखो चुल्ल ६§१।२ पृष्ठ ४५१।

"सारिपुत्र ! तू क्यो यहाँ बैठा है ?"

तब आयुष्मान् सारिपुत्र ने सारी बात भगवान्से कह दी –।०[१] ।

धिक्कारकर धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! (सघके) उद्देशसे कियेमे भी बृद्धपनके अनुसार (चीजोके ग्रहणकरनेके नियम)को नही उल्लघन करना चाहिये जो उल्लघनकरे उसे दुक्कटका दोष हो।" 113

(२) महार्घ शय्याका निषेध

उस समय लोग भोजनके समय अपने घरोमे ऊँचे शयन, महाशयन विछाते थे—जैसे कि आसन्दी, पलग, गोनक (=रोयेदार कम्बल) चित्रक (=नकशेदार), पटिक (=सीतलपाटी ?), पटलिक (=फूलदार), तूलिक (=रूईदार), विकतिक (=सिह व्याघ्रादिके चित्रवाला), उद्दलोमी (=ऊनी चादर जिसके दोनो ओर झालर लगे हो), एकन्तलोमी (=ऊनी चादर जिसके एक ओर झालर लगी है), कट्ठिस्स(=कामदार रेशम), कौपेय, कम्वल, कुत्तक(=एक प्रकारका सूती कपडा), हाथीका विछौना (=झूल), घोळेका विछौना, रथका विछौना, मृगछाला (=अजिनप्पवेनी), कादलि-मृगकाश्रेष्ठ प्रत्यस्तरण (=विछौना), ऊपरकी चादर और (=सिरहाने पैरहाने) दोनो ओर लाल तकियोके साथ। भिक्षु सन्देहमे पळ नही वैठे थे । भगवान्से यह बात कही ।—

"भिक्षुओ ! आसन्दी, पलग और तूलिक इन तीनको छोळ, वाकी सभी गृहस्थोके (आसनोपर) बैठनेकी, और उनपर लेटनेकी अनुमति देता हूँ।" 114

उस समय लोग भोजनके समय अपने घरमे रूई डाले मचको भी, पीठको भी विछाते थे।० नही बैठते थे।०—

" ० अनुमति देता हूँ, गृहस्थोके विछौनेपर बैठने और लेटने की।" 115

(३) आसन देना लेना

उस समय एक आजीवक-अनुयायी महामात्य (=राजमत्री)ने सघको भोज दिया था । आयुष्मान् उ प न न्द शा क्य पु त्र ने पीछे आ, भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा दिया। भोजन स्थानमे हल्ला हो गया। तव वह महामात्य हैरान० होता था—'कैसे शा क्य पु त्री य श्रमण पीछे आ भोजन करते समय पासके भिक्षुको उठा देते है, जिससे कि भोजन स्थानमे हल्ला मचता है, दूसरी जगह बैठकर भी तो यथेच्छ (भोजन) किया जा सकता है ? भिक्षुओने उस महामात्यके हैरान होनेको सुना। ० अल्पेच्छ-भिक्षु ० भगवान्से कहा।०—

"सचमुच भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! भोजन करते समय भिक्षुको उठाना न चाहिये, जो उठाये उसको दुक्कटका दोष हो।" 116

यदि उठाता है, और (वह भिक्षु) भोजन खतमकर चुका है, तो कहना चाहिये—जाओ पानी लाओ। यदि ऐसा (कहके अवसर) मिल सके तो ठीक, न हो तो कवलको अच्छी तरह निगलकर अपनेसे बृद्धको आसन देना चाहिये। 117

---

[१] देखो पृष्ठ ४६४ ।

"भिक्षुओ ! मै किसी प्रकारसे (अपनेसे) बृद्धके आसन हटानेके लिये नही कहता, जो हटाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 118

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु रोगी भिक्षुओको उठाते थे। रोगी ऐसा कहते थे—'आवुसो ! हम रोगी है, उठ नही सकते।' 'हम आयुष्मानोको उठावेहीगे'—(कह) पकळकर उठा खळे होनेपर छोळ देते थे। रोगी मूर्छित हो गिर पळते थे। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! रोगीको न उठाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 119

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हम रोगी है, उठाये नही जा सकते—(कह) अच्छे आसनो पर बैठते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रोगीको (उसके योग्य) आसन देनेकी।" 120

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु जरासे (शिर दर्द)से भी शयन-आसन हटाते थे।०—

"०जरासे शयन-आसनसे नही हटाना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 121

(४) सांघिक विहार

उस समय सप्तदशवर्गीय भिक्षु—यहाँ हम वर्षावास करेंगे—(विचार) एक छोर वाले विहारकी मरम्मत करवा रहे थे। षड्वर्गीय भिक्षुओने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओको विहारकी मरम्मत कराते देखा। देखकर ऐसा कहा—

"आवुसो ! यह सप्तदश वर्गीय भिक्षु एक विहारकी मरम्मत करा रहे है, आओ ! इन्हे हटावे।"

तब षड्वर्गीय भिक्षुओने सप्तदशवर्गीय भिक्षुओसे यह कहा—

"आवुसो ! उठो (यहाँसे) इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"तो आवुसो ! पहिले ही कहना चाहिए था, जिसमे कि हम दूसरे विहारकी मरम्मत करते ?"

(षड्०)—"आवुसो ! साघिक (=सघका) विहार है न ?"

(सप्तदश)—"हाँ, आवुसो ! साघिक विहार है।"

(षड्०)—"उठो आवुसो ! इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"

(सप्तदश)—"आवुसो ! विहार बळा है, तुम भी वास करो, हम० भी वास करेंगे।"

(षड्०)—"उठो आवुसो ! इस विहारमे हमारा (हक) प्राप्त होता है।"—(कह) कुपित असन्तुष्ट हो गर्दनसे पकळकर निकालते थे।

निकालनेपर वह रोते थे। भिक्षुओने पूछा—

"आवुसो ! किसलिये तुम रोते हो ?"

"आवुसो ! यह षड्वर्गीय भिक्षु कुपित असन्तुष्ट हो हमे साघिक विहारसे निकालते है।"

०अल्पेच्छ भिक्षु०। भगवान्से यह बात बोले।० सचमुच०।—

"भिक्षुओ ! कुपित असन्तुष्ट हो (किसी) भिक्षुको साघिक विहारसे नही निकालना चाहिये, जो निकाले उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ शयन-आसनके ग्रहण करानेकी।" 122

तब भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये ?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पाँच अगोसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन ग्रहापक (=शयन-आसनको ग्रहण करानेवाला अधिकारी) चुनने (=सम्मन्त्रण करने)की—(१) जो न स्वेच्छाचार

(=छन्द)के रास्ते जाये, (२) न द्वेष०, (३) न भय०, (४) न मोह०, (५) गये आयेको जाने।० 123

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर चतुर-समर्थ भिक्षु-सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति ०।

"ख अ नु श्रा व ण ० ।

"ग धा र णा—'सघने इस नामवाले भिक्षुको शयन-आसन-ग्रहापक चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।' "

(५) शयन-आसन-ग्रहापक

तव शयन-आसन-ग्रहापक भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे शयन-आसन ग्रहण कराना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहिले भिक्षुओको गिननेकी, भिक्षुओको गिनकर, शय्या (Seats) गिननेकी, शय्या गिनकर प्रथमकी (अच्छी) शय्यासे ग्रहण करानेकी।" 124

प्रथमकी शय्यासे ग्रहण कराते हुए शय्याओको वँचा लिया।—

"०अनुमति देता हूँ प्रथमके विहारसे ग्रहण करानेकी।" 125

प्रथमके विहारसे ग्रहण कराते हुए विहारोको वँचा दिया।—

"०अनुमति देता हूँ प्रथमके परिवेणसे ग्रहण करानेकी।" 126

"०अनुमति देता हूँ, अतिरिक्त भाग भी देनेकी, अतिरिक्त भाग दे देनेपर दूसरा भिक्षु आजाये, तो इच्छाके विना नही देना चाहिये।" 127

उस समय भिक्षु सीमासे वाहर ठहरेको शयन-आसन ग्रहण कराते थे।०—

"भिक्षुओ! सीमासे वाहर ठहरेको शयन-आसन नही ग्रहण कराना चाहिये, ०दुक्कट०।" 128

उस समय भिक्षु शयन-आसन ग्रहण करा सव समयके लिये रोक रखते थे। ०—

"०शयन-आसन ग्रहण करा, सव समयके लिये नही रोकना चाहिये, ०दुक्कट०। ० अनुमति देता हूँ वर्षाके तीन मासो तक रोक रखने की, और (बाकी) ऋतुओके समय नही रोकने की।" 129

तव भिक्षुओको यह हुआ—'शयन-आसनके ग्रहण कितने (प्रकारके) है?' भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसनके ग्रहण है—(१) पहिला, (२) पिछला, (३) बीचमे न छोळा। (१) आषाढ पूर्णिमाके एक दिन जानेपर प हि ला (शयन-आसन) ग्रहण कराना चाहिये, (२) आषाढ पूर्णिमाके मासभर बीत जानेपर पिछला०, (३) प्रवारणा (आश्विन पूर्णिमा)के एक दिन जानेपर आनेवाले वर्षावासके लिये बीचमे न छोळा ग्रहण कराना चाहिये।—भिक्षुओ! यह तीन शयन-आसन-ग्राह है।" 130

द्वितीय भाणवार समाप्त ॥२॥

(६) एकका दो स्थान लेना निषिद्ध

उस समय आयुष्मान् उ प न द शाक्यपुत्र श्रावस्तीमे शयन-आसन ग्रहणकर एक गाँवके आवास मे गये। वहाँ भी (उन्होने) शयन-आसन ग्रहण किया। तव भिक्षुओको यह हुआ—'आवुसो! यह आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्र भडन, कलह, विवाद, वकवाद और सघमे झगळा करनेवाले है। यदि यह यहाँ वर्षावास करेगे, तो हम सुखपूर्वक न वास कर सकेगे। अच्छा हो इन्हे पूछे।' तव उन भिक्षुओने आयुष्मान् उपनन्द शाक्यपुत्रसे यह कहा—

"आवुस उपनन्द ! आपने श्रावस्तीमे शयन-आसन ग्रहण किया है न ?"

"हाँ, आवुसो !"

"क्या आवुस उपनन्द ! आप अकेले दो (आसनो)को रखे हुए है ?"

"आवुसो ! मै इसे छोळता हूँ, उसे ग्रहण करता हूँ।"

०अल्पेच्छ० भिक्षु०। भगवान्से यह बात कही।

तब भगवान्ने इसी सवधमे इसी प्रकरणमे भिक्षुसघको जमाकर आयुष्मान् उपनन्द० से यह पूछा—

"सचमुच उपनन्द ! तू अकेले दो (आसनो)को रखे है ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा—"कैसे तू मोघपुरुष ! अकेले दो (स्थानो)को रखता है। मोघपुरुष ! तूने वहाँका रखा, यहाँका छोळ दिया, यहाँका रखा, वहाँका छोळ दिया। इस प्रकार मोघपुरुष ! तू दोनो से वाहर हुआ। मोघपुरुष ! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! एकको दो (स्थान) नही रोक रखना चाहिये, ०दुक्कट०।" 131

(७) एक आसनपर बैठना

उस समय भगवान् अनेक प्रकारसे भिक्षुओको विनयकी कथा कहते थे, विनयकी प्रशसा करते थे, विनयके आचरणकी प्रशसा करते थे आयुष्मान् उपालिकी प्रशसा करते थे। भिक्षु—भगवान् अनेक प्रकारसे विनयकी कथा कहते है,० आयुष्मान् उपालिकी प्रशसा करते है—(सोच), आओ आवुसो ! हम आयुष्मान् उपालिसे विनय सीखे। (और) बहुतसे वृद्ध मध्यम (वयस्क) भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास विनय सीखते थे। स्थविर भिक्षुओके गौरवके ख्यालसे आयुष्मान् उपालि खळे खळे पढाते थे। स्थविर भिक्षु भी धर्मके गौरवसे खळेही खळे बँचवाते थे। उससे स्थविर भिक्षु भी तकलीफ पाते थे, आयुष्मान् उपालि भी। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ (अपनेसे) कमके भिक्षुके पढते समय वराबर या ऊँचे आसनपर बैठनेकी, स्थविर भिक्षु बँचवाते समय धर्मके गौरवसे बराबर बैठे, या धर्मके गौरवसे (उससे) निचले आसन-पर।" 132

उस समय बहुतसे भिक्षु आयुष्मान् उपालिके पास खळे खळे पाठ सुनते तकलीफ पाते थे। भग-वान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ समान आसनवालोको एक साथ बैठनेकी।" 133

तब भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे समान-आसनवाला होता है ?' ०—

"०अनुमति देता हूँ, तीन वर्षके भीतर (के भिक्षुओ)को एक साथ बैठनेकी।" 134

उस समय बहुतसे समान-आसनवाले (भिक्षुओ)ने चारपाईपर एक साथ बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठको तोळ दिया। ०—

"०अनुमति देता हूँ, त्रिवर्ग (=तीनके समुदाय)को (एक साथ) चारपाईपर (बैठनेकी), त्रिवर्गको पीठ (पर बैठनेकी)।" 135

त्रिवर्गने भी चारपाईपर बैठ चारपाई तोळ दी, पीठपर बैठ पीठ तोळ दी।—

"०अनुमति देता हूँ, द्विवर्ग (=दो आदमियो) को चारपाईकी, द्विवर्गको पीठकी।" 136

उस समय भिक्षु अ-समान-आसनवालोके साथ लम्बे आसनपर बैठनेमे सकोच करते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, पडक, स्त्री और (स्त्री पुरुष) दोनो लिंगवालेको छोळ, अ-समान-आसन वालोके साथ लम्बे आसनपर बैठनेकी।" 137

तब भिक्षुओको हुआ—'कितने तक (लम्बा) लम्बा आसन (कहा) जाता है?'—

"०अनुमति देता हूँ, जो तीनसे नही पूरा होता उसे लम्बा आसन (मानने) की।" 138

§५–विहार और उसके सामानका बनवाना, बाँटने योग्य वस्तुयें, वस्तुओंका हटाना या परिवर्तन, सफाई

(१) सांघिक वस्तु

उस समय विशाखा मृगार-माता सघके लिये आलिन्द (=ड्योढी) सहित हस्तिनख-प्रासाद बनवाना चाहती थी। तब भिक्षुओको यह हुआ—'क्या भगवान्ने प्रासादके उपयोगकी अनुमति दी है या नही?'०—

"०अनुमति देता हूँ, सभी प्रासादोके उपयोगकी।" 139

उस समय कोसलराज प्रसेनजित्की माता (=अय्यका) मरी थी। उसके मरनेसे सघको वहुतसी अ-विहित वस्तुएँ मिली, जैसे कि आसन्दी, पलग, गोनक (=रोयेदार कम्बल) ०[1] दोनो ओर लाल तकियोके साथ० कादलीमृगका उत्तम विछौना। भगवान्से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, आसन्दीके पैरको काटकर इस्तेमाल करनेकी, पलगके वालको तोळकर, इस्तेमाल करनेकी, तूल (=रूई)की गुत्थियोको फोळकर तकिया बनानेकी, और बाकीको भूमिका विछौना बनानेकी।" 140

(२) पाँच अ-देय

१—उस समय श्रावस्तीके पासके एक ग्रामके आवासके भिक्षु आनेवाले भिक्षुओके लिये शयन-आसनका प्रवन्ध करते करते तग आगये थे। तब उन भिक्षुओको यह हुआ—'आवुसो! हम इस वक्त आनेवाले भिक्षुओके लिये शयन-आसनका प्रवन्ध करते करते तग आ गये है। आओ आवुसो! हम सभी साघिक शयन-आसनको एकको दे दे, और उस(के पास)से लेकर इस्तेमाल करेगे।' (तब) उन्होने सभी साघिक शयन-आसन एकको दे दिया। नवागन्तुक भिक्षुओने उन भिक्षुओसे यह कहा—

"आवुसो! हमारे लिये शयन-आसन बतलाओ।"

"आवुसो! साघिक शयन-आसन नही है, हमने सब (शयन-आसन) एकको दे दिये।"

"क्या आवुसो! तुमने साघिक शयन-आसनको दे डाला?"

"हाँ, आवुसो!"

०अल्पेच्छ भिक्षु०—हैरान० होते थे—०। भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच, भगवान्!"

भगवान्ने फटकारा—"कैसे भिक्षुओ! वह मोघपुरुष साघिक शयन-आसनको दे डालेगे!! न यह अप्रसन्नोको प्रसन्न करनेके लिये है०।"

फटकारकर भगवान्ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

---

[1] देखो पृष्ठ ४६६।

"भिक्षुओ ! यह पाँच अदेय हैं, इन्हे सघ, गण या व्यक्ति (किसीको) देनेका (हक) नही है, दे डालनेपर भी यह बिना दिये जैसे होते है। जो दे उसे थुल्लच्चयका दोष हो।" 141

"कौनसे पाँच ?—(१) आराम और आरामके मकान, यह पहिले अदेय है० जो दे उसे थुल्लच्चयका दोष हो। (२) विहार और विहारका मकान०। (३) चौपाई-चौकी गद्दा तकिया०। (४) लोह-कुभक, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, बँसूला, फरसा, कुदाल, खनती। (५) वल्ली, वेणु, मूँज, वल्वज (=भाभळ), तृण, मिट्टी, लकळीका बर्तन, मट्टीका बर्तन—यह पाँच अदेय है०।"

४—कीटागिरि

तब भगवान् श्रा व स्ती मे इच्छानुसार विहारकर सारिपुत्र-मौद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षुसघके साथ जिधर की टा गि रि है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। अ श्व जि त् और पु न र्व सु भिक्षुओने सुना—भगवान् सारिपुत्र मोद्गल्यायन तथा पाँचसौ महान् भिक्षु-सघके साथ कीटागिरि आ रहे है।

"तो आवुसो ! (आओ) हम सब सघके शयन-आसनको बाँट ले। सा रि पु त्र मौ द् ग ल्या य न पाप (=बुरी)-इच्छाओसे युक्त है। हम उन्हे शयन-आसन न देगे।" यह सोच उन्होने सभी साधिक[1] शयन-आसनोको बाँट लिया।

तब भगवान् क्रमश चारिका करते, जहाँ कीटागिरि है, वहाँ पहुँचे। तब भगवान्ने बहुतसे भिक्षुओको कहा—

"जाओ भिक्षुओ ! अश्वजित् पुनर्वसु भिक्षुओके पास जाकर ऐसा कहो—'आवुसो ! ० भगवान् आ रहे है। आवुसो ! भगवान्के लिये शयन-आसन ठीक करो, सघके लिये भी, और सारिपुत्र मौद्गल्यायनके लिये भी'।"

"अच्छा भन्ते !" कह उन भिक्षुओने जाकर अ श्व जि त्, पु न र्व सु भिक्षुओसे यह कहा—"०"। (उन्होने कहा)—

"आवुसो ! (यहाँ) साधिक शयन-आसन नही है, हमने सभी बाँट लिया। स्वागत है आवुसो ! भगवान्का। जिस विहारमे भगवान् चाहे, उस विहारमे वास करे। (किन्तु) पापेच्छु है सारिपुत्र मौद्गल्यायन०, हम उन्हे शायनासन नही देगे।"

"क्या आवुसो ! तुमने साधिक शयनासन (=घर, सामान) बाँट लिया ?"

"हाँ आवुस !"

तब उन भिक्षुओने जाकर यह बात भगवान्से कही। भगवान्ने धिक्कारकर भिक्षुओसे कहा—

(३) पाँच अ-विभाज्य

"भिक्षुओ ! यह पाँच अ-विभाज्य है, सघ-गण या पुद्गल (=व्यक्ति) द्वारा न बाँटने योग्य है। बाँटनेपर भी यह अविभक्त (=बिना बँटे) ही रहते है, जो बाँटता है, उसे स्थूल-अत्ययका अपराध लगता है। कौनसे पाँच ? (१) आराम या आराम-वस्तु (=आरामका घर) । (२) विहार या विहार-वस्तु । (३) मच, पीठ, गद्दा, तकिया । (४) लोह-कुभ, लोह-भाणक, लोह-वारक, लोह-कटाह, वासी (=बँसूला), फरसा, कुदाल, निखादन (=खननेका औजार) । (५) वल्ली, बाँस, मूँज, वल्वज, तृण, मिट्टी, लकडीका बर्तन, मिट्टीका बर्तन ।" 142

---

[1]सारे सघकी सम्पत्ति, एक व्यक्ति नही।

के पास चले गये भी०, तिर्यग्योनिमे चले गये भी०, मातृघातक भी०, पितृघातक भी०, अर्हद्घातक भी०, भिक्षुणी-दूपक भी०, सघमे फूट डालनेवाले भी०, (बुद्धके शरीरसे) खून निकालनेवाले भी०, (स्त्री-पुरुष) दोनोके लिगवाले भी बन जाते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! यदि (कोई) भिक्षु नवकर्म ग्रहण कर चला जाये० (स्त्री-पुरुष) दोनोके लिगवाला बन जाये, तो जिसमे सघ (के काम)का हर्ज न हो, (वह काम) दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! नवकर्म ग्रहणकर ठीकसे (काम) न कर चला जाये० दूसरेको देना चाहिये। यदि भिक्षुओ ! नवकर्म ग्रहणकर उसे पूरा करके चला जाये तो वह उसीका (काम) है। यदि भिक्षुओ ! नवकर्म ग्रहणकर पूरा करके गृहस्थ हो जाये, मर जाये, श्रामणेर बन जाये, शिक्षाको अस्वीकार करनेवाला०, अन्तिम अपराध का अपराधी हो जाये तो सघ मालिक है। यदि० पूरा करके उन्मत्त०, विक्षिप्त चित्त०, वेदनट्ट०,०उत्क्षिप्तक बन जाये, तो वह उसीका (काम) है। यदि० पूरा करके पडक०,० (स्त्री-पुरुप) दोनोके लिगवाला बन जाये, तो सघ मालिक है।" 150

(५) विहारके सामानका हटाना

उस समय भिक्षु एक उपासकके विहारमे उपयुक्त होनेवाले शय्या, आसनको दूसरे स्थानपर (ले जाकर) इस्तेमाल करते थे। वह उपासक हैरान० होता था—कैसे भदन्त (लोग) दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान)को दूसरे स्थानपर इस्तेमाल करेंगे।०—

"भिक्षुओ ! दूसरे स्थानके इस्तेमाल करने (के सामान)को दूसरे स्थानपर नही इस्तेमाल करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 151

उस समय भिक्षु उ पो स थ के स्थानपर भी आसन ले जानेमे सकोच करते थे, भूमिपर ही बैठते थे। ०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, कुछ समयके लिये ले जानेकी।" 152

उस समय सघका (एक) महाविहार गिर रहा था भिक्षु सकोच करते शय्या, आसनको नही हटाते थे।०—

"०अनुमति देता हूँ, रक्षाके लिये (सामानको) हटानेकी।" 153

(६) वस्तुओंका परिवर्तन

उस समय शय्या-आसनके कामका एक बहुमूल्य कम्बल सघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फातिकम्म (=सुभरता)के लिये (उसे) बदल लेने की।" 154

उस समय शय्या-आसनके कामका एक बहुमूल्य दुस्स (=थान) सघको मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ, फा ति क म्म के लिये (उसे) बदल लेनेकी।" 155

(७) आसन, भीतको साफ रखना

उस समय सघको भालूका चमळा मिला था।०—

"०अनुमति देता हूँ पापोश (=पाद-पुछन) बनानेकी।" 156

चक्कली (=?) मिली थी।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश बनानेकी।" 157

चोळक (=चोलक=लत्ता) मिला था।—

"०अनुमति देता हूँ, पापोश बनानेकी।" 158

उस समय भिक्षु विना धोये पैरोसे शय्या-आसनपर चढते थे, शय्या-आसन मैले होते थे।०—

"भिक्षुओ ! पैर धोये विना शय्या-आसनपर नही चढना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 159

उस समय भीगे पैरो शय्या-आसनपर चढते थे, ०मलिन० ।०—

"०भीगे पैरो शय्या-आसनपर नही चढना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 160

०जूते सहित शय्या-आसनपर चढते थे, ०मलिन० । ०—

"०जूते सहित शय्या-आसनपर नही चढना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 161

०काम की हुई भूमिपर थूकते थे, रग खराब होता था ।०—

"०काम की गई भूमिपर नही थूकना चाहिये, ०दुक्कट० । अनुमति देता हूँ, थूकदान (=खेळ-मल्लक)की ।" 162

०चारपाईके पाये भी चौकीके पाये भी काम की हुई भूमिको कुरेदते थे ।०—

"०अनुमति देता हूँ (पावोको) कपळेसे लपेटनेकी ।" 163

उस समय काम की हुई भीतपर ओठँगते थे, रग खराव होता था ।०—

"०काम की हुई भूमिपर नही ओठँगना चाहिये, ०दुक्कट० । अनुमति देता हूँ, ओठँगनेके तल्लेकी ।" 164

ओठँगनका तख्ता नीचेसे भूमिको कुरेदता था, और ऊपरसे भीतको नुकसान पहुँचाता था ।०—

"०अनुमति देता हूँ, ऊपरसे भी नीचेसे भी कपळा लपेटनेकी ।" 165

उस समय भिक्षु पैर धो लेटनेमे सकोच करते थे ।०—

"०अनुमति देता हूँ, विछाकर लेटनेकी ।" 166

§६—संघके बारह कर्मचारियोंका चुनाव

१—राजगृह

(१) भक्त-उद्देशक

तब भगवान् आ ल वी मे इच्छानुसार विहारकर जिधर रा ज गृ ह है, उधर चारिकाके लिये चल पळे । क्रमश चारिका करते जहाँ राजगृह है, वहाँ पहुँचे । वहाँ भगवान् राजगृहमे वे णु व न कलन्दक निवापमे विहार करते थे । उस समय राजगृहमें दुर्भिक्ष था । लोग सघको भोज नही दे सकते थे, उद्देश-भोज, शलाक-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (=पूर्णिमा अमावस्याका), प्रातिपदिक (=प्रतिपद्‌का) (भोज) कराना चाहते थे । भगवान्‌से यह बात कही ।—

"०अनुमति देता हूँ, सघ-भोज, उद्देश-भोज, शलाक-भोज, पाक्षिक, उपोसथिक (और), प्रातिपदिक(-भोज)की ।" 167

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु स्वय अच्छा अच्छा भोजन ले खराव खराव (अन्य) भिक्षुओको देते थे ।०—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको भक्त-उद्देशक (=भोजके लिए भिक्षुओको भेजनेवाला) चुननेकी—(१) जो न स्वेच्छाचारके रास्ते जाये, (२) न द्वेप०, (३) न भय०, (४) न मोह०, (५) उद्देश किये और उद्देश न कियेको जाने ।० 168

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनना चाहिये—पहिले (उस) भिक्षुसे पूछकर, चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति० ।

"ख अ नु श्रा व ण०।

"ग धा र णा—'संघने इस नामवाले भिक्षुको भक्त-उद्देशक चुन लिया। संघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ'।"

तब भक्त-उद्देशक भिक्षुओको यह हुआ—'कैसे भक्त (–भोज)का उद्देश (=वितरण) करना चाहिये?' भगवान्‌से यह बात कही।—

"०अनुमति देता हूँ, शलाका[1] (=सलाई)से या पट्टिका (=पटिया)से उपनिबधन (=लिख) कर, ओपुछन (=रला)कर उद्देश करने (चिट्ठी डालने)की।" 169

(२) शयनासन-प्रज्ञापक

उस समय सघका श य न-आ स न-प्र ज्ञा प क (=आसन बाँटनेवाला) न था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको शयन-आसन-प्रज्ञापक चुननेकी—०[2]।" 170

(३) भांडागारिक

उस समय सघका भ डा गा रि क (=भडारी) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको भडागारिक चुननेकी।—०[2]।" 171

(४) चीवर-प्रतिग्राहक

उस समय सघका ची व र-प्र ति ग्रा ह क (=दान मिले चीवरोका रखनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको चीवर-प्रतिग्राहक चुननेकी—०[2]।" 172

(५) चीवर-भाजक

उस समय सघका चीवर-भाजक (=चीवर वितरण करनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको चीवर-भाजक चुननेकी—०[2]।" 173

उस समय सघका यवागू-भाजक (=खिचळी बाँटनेवाला) न था।०—

(६) यवागू-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको यवागू-भाजक चुननेकी—०[2]।" 174

उस समय सघका फल-भाजक (=फल बाँटनेवाला) न था।०—

(७) फल-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको फल-भाजक चुननेकी—०[2]।" 175

उस समय सघका खाद्य-भाजक (=खानेकी चीजोका बाँटनेवाला) न था।०—

(८) खाद्य-भाजक

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको खाद्य-भाजक चुननेकी—०[2]। 176

(९) अल्पमात्रक-विसर्जक

उस समय सघके भडारमे थोळासा (=अल्पमात्रक) सामान मिला था।०—

---

[1]वृक्षके सारकी शलाका या बाँस या तालपत्रकी पट्टिकापर भोज देनेवालेका नाम लिख कर, सब शलाकाओको ऊपर नीचे हिला एकमें मिलाकर . स्थविरके आसनसे ही देना शुरू करना चाहिये (—अट्ठकथा)।

[2] भक्त-उद्देशकी तरह यहाँ भी (पृष्ठ ४७४)।

"०अनुमति देता हूँ, पाँच बातोसे युक्त भिक्षुको अल्पमात्रक-विसर्जक (=थोडीसी चीज़ोका बॉटनेवाला) चुननेकी–[1]।" 177

"उस अल्पमात्रक-विसर्जक भिक्षुको एक एकके लिये सुई देनी चाहिये, शस्त्रक (=कैंची) ०, जूता०, कमरबद०, असबधक (=कधेसे लटकानेका बधन) ०, जलछक्का०, धर्मकरक (=गळुआ)०, कुसि (=पटिया) ०, अर्धकुसि (=बेळी पटिया) ०, मण्डल (=गेळुई) ०, अर्धमण्डल०, अनुवाद परिभण्ड (=पेटी) देना चाहिये। यदि सघके पास घी, तेल मधु, खॉड हो, तो खानेके लिये एक वार देना चाहिये, यदि फिर प्रयोजन हो, तो फिर देना चाहिये।"

(१०) शाटिक ग्रहापक

उस समय सघका शाटिक-ग्रहापक (=शाटक बॉटनेवाला) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पॉच बातोसे युक्त भिक्षुको शाटिक-ग्रहापक चुननेकी—०[1]।" 178

(११) आरामिक-प्रेषक

उस समय सघका आरामिक-प्रेपक (=आरामके नौकरोका अफसर) न था।०—

"०अनुमति देता हूँ, पॉच बातोसे युक्त भिक्षुको आरामिक-प्रेपक चुननेकी—०[1]।" 179

(१२) श्रामणेर-प्रेषक

उस समय संघके पास श्रामणेर-प्रेपक (=श्रामणेरोका अफसर) न था।०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पॉच बातोसे युक्त भिक्षुको श्रामणेर-प्रेपक चुननेकी—०[1]।" 180

तृतीय भाणवार (समाप्त) ॥३॥

सेनासनक्खन्धक समाप्त ॥६॥

---

[1] भक्त-उद्देशकी तरह यहाँ भी (पृष्ठ ४७४)।

७—संघभेदक-स्कंधक

१—देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान। २—देवदत्तका अजातशत्रुको बहकाना, बुद्धपर आक्रमण, और सघमें फूट डालना। ३—सघराजी, सघभेद और सघसामग्रीकी व्याख्या। ४—नरकगामी और अचिकित्स्य व्यक्ति।

§१—देवदत्तकी प्रव्रज्या ऋद्धि-प्राप्ति और सम्मान

१—अनूपिय

(१) अनुरुद्ध आदिके साथ देवदत्तकी प्रव्रज्या

उस समय भगवान् मल्लोके कस्वे (=निगम) अनूपियामे विहार करते थे। उस समय कुलीन कुलीन शाक्य-कुमार भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनु-प्रव्रजित हो रहे थे। उस समय महानाम शाक्य और अनुरुद्ध-शाक्य दो भाई थे। अनुरुद्ध सुकुमार था, उसके तीन महल थे—एक जाळेके लिये, एक गर्मीके लिये, एक वर्षाके लिये। वह वर्षाके चार महीनोमे वर्षा-प्रासादके ऊपर अ-पुरुष-वाद्योके साथ सेवित हो, प्रासादके नीचे न उतरता था। तब महानाम शाक्यके (चित्तमे) हुआ—आज-कल कुलीन कुलीन शाक्यकुमार भगवान्के प्रव्रजित होनेपर अनुप्रव्रजित हो रहे है। हमारे कुलसे कोई भी घर छोड बेघर हो प्रव्रजित नही हुआ है। क्यो न मै या अनुरुद्ध प्रव्रजित हो। तब महानाम, जहाँ अनुरुद्ध शाक्य था, वहाँ गया। जाकर अनुरुद्ध शाक्यसे बोला—"तात! अनुरुद्ध! इस समय० हमारे कुलसे कोई भी० प्रव्रजित नही हुआ। इसलिये तुम प्रव्रजित हो या मै प्रव्रजित होऊँ।"

"मै सुकुमार हूँ, घर छोळ बेघर हो प्रव्रजित नही हो सकता, तुम्ही प्रव्रजित होओ।"

"तात! अनुरुद्ध! आओ तुम्हे घर-गृहस्थी समझा दूँ।—पहिले खेत जोतवाना चाहिये। जोतवाकर बोवाना चाहिये। बोवाकर पानी भरना चाहिये। पानी भरकर निकालना चाहिये, निकाल कर सुखाना चाहिये, सुखवाकर कटवाना चाहिये, कटवाकर ऊपर लाना चाहिये, ऊपर ला सीधा करवाना चाहिये, सीधा करा मर्दन करवाना (=मिसवाना) चाहिये, मिसवाकर पयाल हटाना चाहिये। पयालको हटाकर भूसी हटानी चाहिये। भूसी हटाकर फटकवाना चाहिये। फटकवाकर जमा करना चाहिये। इसी प्रकार अगले वर्षोमे भी करना चाहिये। काम (=आवश्यकताये) नाश नही होते, कामोका अन्त नही जान पळता।"

"कब काम खतम होगे, कब कामोका अन्त जान पळेगा? कब हम बे-फिकर हो, पाँच प्रकारके कामोपभोगोसे युक्त हो विचरण करेगे?"

"तात! अनुरुद्ध! काम खतम नही होते, न कामोका अन्त ही जान पळता है। कामोको विना खतम किये ही पिता और पितामह मर गये।"

"तुम्ही घर गृहस्थी सँभालो, हम ही प्रव्रजित होवेगे।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ माता थी वहाँ गया, जाकर मातासे बोला—

"अम्मा! मै घरसे बेघर हो प्रव्रजित होना चाहता हूँ, मुझे प्रव्रज्याके लिये आज्ञा दे।"

ऐसा कहनेपर अनुरुद्ध शाक्यकी माताने अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात! अनुरुद्ध! तुम दोनो मेरे प्रिय=मनआप—अप्रतिकूल पुत्र हो, मरनेपर भी (तुमसे) अनिच्छुक नही होऊँगी, भला जीते जी प्रव्रज्याकी स्वीकृति कैसे दूँगी?"

दूसरी बार भी अनुरुद्ध शाक्यने मातासे यो कहा०।

तीसरी बार भी०।

उस समय भद्दिय नामक शाक्य-राजा शाक्योपर राज्य करता था, (वह) अनुरुद्ध शाक्यका मित्र था। तब अनुरुद्ध शाक्यकी माताने (यह सोच)—यह भद्दिय (=भद्रिक) शाक्यराजा अनुरुद्धका मित्र शाक्योपर राज्य करता है, वह घर छोळ प्रव्रजित होना नही चाहेगा—और अनुरुद्ध शाक्यसे कहा—

"तात! अनुरुद्ध यदि भ द्दि य शाक्य-राजा प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना।"

तब अनुरुद्ध शाक्य जहाँ भद्दिय शाक्य-राजा था, वहाँ गया, जाकर भद्दिय शाक्य-राजासे बोला—

"सौम्य! मेरी प्रव्रज्या तेरे अधीन है।"

"यदि सौम्य! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है, तो वह अधीनता मुक्त हो। । सुखसे प्रव्रजित होओ।"

"आ सौम्य दोनो० प्रव्रजित होवे।"

"सौम्य! मै प्रव्रजित होनेमे समर्थ नही हूँ। तेरे लिये और जो मै कर सकता हूँ, वह करूँगा। तू प्रव्रजित हो जा।"

"सौम्य! माताने मुझे ऐसा कहा है—यदि तात अनुरुद्ध! भद्दिय शाक्य-राजा० प्रव्रजित हो, तो तुम भी प्रव्रजित होना। सौम्य! तू यह बात कह चुका है—'यदि सौम्य! तेरी प्रव्रज्या मेरे अधीन है, तो वह अधीनता मुक्त हो। । सुखसे प्रव्रजित होओ।' आ सौम्य! दोनो प्रव्रजित होवे।"

उस समयके लोग सत्यवादी सत्य-प्रतिज्ञ होते थे। तब भद्दिय शाक्य-राजाने अनुरुद्ध शाक्यको यो कहा—

"सौम्य! सात वर्ष ठहर। सात वर्ष बाद दोनो० प्रव्रजित होवेगे।"

"सौम्य! सात वर्ष बहुत चिर है। मै इतनी देर नही ठहर सकता।"

"सौम्य! छ वर्ष ठहर०।"

"०नही ठहर सकता।"

"०पॉच वर्ष०"। "०चार वर्ष०"। "०तीन वर्ष०"। "०दो वर्ष०"। "०एक वर्ष०"। "०सात मास०"। "०छ मास०"। "०पॉच मास०"। "०चार मास०"। "०तीन मास०"। "०दो मास०"। "०एक मास०"। "०आध मास बाद दोनो० प्रव्रजित होगे।"

"सौम्य! आध मास बहुत चिर है। मै इतनी देर नही ठहर सकता।"

"सौम्य! सप्ताहभर ठहर, जिसमे कि मै पुत्रो और भाइयोको राज्य सौप दूँ।"

"सौम्य! सप्ताह अधिक नही है, ठहरूँगा।"

(२) उपालि भी साथ

तब भ द्दि य शाक्य-राजा, अ नु रु द्ध, आ न न्द, भृ गु, कि म्बि ल, दे व द त्त और सातवाँ उ पा लि हजाम, जैसे पहिले चतुरगिनी-सेना-सहित बगीचे जाते थे, वैसे ही चतुरगिनी-सेना-सहित निकले। वह दूर तक जा, सेनाको लौटा, दूसरेके राज्यमे पहुँच, आभूषण उतार, उपरनेमे गॅठरी बॉध, उपालि हजामसे यो बोले—

"भणे ! उपालि ! तुम लौटो। तुम्हारी जीविकाके लिये इतना काफी है।" तब उपालि नाईको लौटते वक्त यो हुआ—

"शाक्य चड (=क्रोधी) होते हैं। 'इसने कुमार मार डाले', (समझ) मुझे मरवा डालेगे। यह राजकुमार हो, प्रव्रजित होगे, तो फिर मुझे क्या ?"

उसने गँठरी खोलकर, आभषणोको वृक्षपर लटका "जो देखे, उसको दिया, ले जाय" कह, जहाँ शाक्य-कुमार थे, वहाँ गया। उन शाक्य-कुमारोने दूरसे ही देखा कि उपालि नाई आ रहा है। देखकर उपालि नाईसे कहा—

"भणे ! उपालि ! किसलिये लौट आये ?"

"आर्य-पुत्रो ! लौटते वक्त मुझे यो हुआ—शाक्य चड होते है०। इसलिये आर्य-पुत्रो ! मै गँठरी खोलकर, आभूपणोको वृक्षपर लटका०, वहाँसे लौटा हूँ।"

"भणे ! उपालि ! अच्छा किया, जो लौट आये। शाक्य चड होते है। 'इसने कुमार मार डाले' (कह) तुझे मरवा डालते।"

तब वह शाक्य-कुमार उपालि हजामको ले वहाँ गये, जहाँ भगवान् थे। जाकर भगवान्की वन्दनाकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठकर उन शाक्य-कुमारोने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! हम शाक्य अभिमानी होते है। यह उ पा लि नाई, चिरकाल तक हमारा सेवक रहा है। इसे भगवान् पहिले प्रव्रजित कराये। (जिसमे) हम इसका अभिवादन, प्रत्युत्थान (=सम्मानार्थ खळा होना), हाथ जोळना करे। इस प्रकार हम शाक्योका शाक्य होनेका अभिमान मर्दित होगा।"

तब भगवान्ने उपालि हजामको पहिले प्रव्रजित कराया, पीछे उन शाक्य-कुमारोको। तब आयुष्मान् भद्दियने उसी वर्षके भीतर तीनो विद्याओको साक्षात् किया। आयुष्मान् अनुरुद्धने दिव्य-चक्षुको०। आ० आनन्दने सोतापत्ति फलको०। दे व द त्त ने पृथग्जनो(=अनार्यो)वाली ऋद्धिको सम्पादित किया।

उस समय आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमे रहते हुए भी, पेळके नीचे रहते हुए भी, शून्य गृहमे रहते हुए भी, बराबर उदान कहते थे—"अहो ! सुख ! ! अहो ! सुख ! !" बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर बैठ, उन भिक्षुओने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय अरण्यमे रहते०। नि सशय भन्ते ! आयुष्मान् भद्दिय बे-मनसे ब्रह्मचर्य चरण कर रहे है। उसी पुराने राज्य-सुखको याद करते अरण्यमे रहते०।"

तब भगवान्ने एक भिक्षुको सबोधित किया—"आ, भिक्षु ! तू जाकर मेरे वचनसे भद्दिय भिक्षु को कह—आवुस भद्दिय ! तुमको शास्ता बुलाते है।"

"अच्छा" कह, वह भिक्षु जहाँ आयुष्मान् भद्दिय थे, वहाँ गया। जाकर आयुष्मान् भद्दियसे बोला—"आवुस भद्दिय ! तुम्हे शास्ता बुला रहे है।"

"अच्छा आवुस !" कह उस भिक्षुके साथ (आयुष्मान् भद्दिय) जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे हुए आयुष्मान् भद्दियको भगवान्ने कहा—

"भद्दिय ! क्या सचमुच तुम अरण्यमे रहते हुए भी० उदान कहते हो०।"

"भन्ते ! हाँ !"

"भद्दिय ! किस बातको देख अरण्यमे रहते हुये भी०।"

"भन्ते ! पहिले राजा होते वक्त अन्त -पुरके भीतर भी अच्छी प्रकार रक्षा होती रहती थी। नगर-भीतर भी०। नगर-बाहर भी०। देश-भीतर भी०। देश-बाहर भी०। सो मैं भन्ते ! इस प्रकार

रक्षित गोपित होते हुये भी भीत, उद्विग्न, स-शक, त्रास-युक्त घूमता था। किन्तु आज भन्ते! अकेला अरण्यमे रहते हुये भी० शून्य-गृहमे रहते हुये भी, निडर, अनुद्विग्न, अ-शक अ-त्रास-युक्त, बेफिकर·· ··· ·· विहार करता हूँ। इस बातको देख भन्ते! अरण्यमे रहते०।"

तब भगवान्‌ने इस बातको जान उसी समय यह उदान कहा—

"जिसके भीतरसे कोप भाग गया, होने न होनेसे जो दूर हो गया।

उस निर्भय, सुखी, शोक-रहित (पुरुष)का देवता भी साक्षत्कार नही पा सकते।"

२—*कौशाम्बी*

(३) देवदत्तकी लाभ-सत्कारके लिये चाह

[1]तब भगवान् अनूपियामे इच्छानुसार विहार कर जिधर कौशाम्बी है, उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ कौशाम्बी है वहाँ पहुँचे।

वहाँ भगवान् कौशाम्बीमे घोषितारामसे विहार करते थे। उस समय देवदत्तको एकान्तमे बैठे, विचारमे बैठे, चित्तमे ऐसा विचार उत्पन्न हुआ—'किसको मै प्रसादित करूँ, जिसके प्रसन्न होनेपर मुझे बळा लाभ, सत्कार पैदा हो।' तब देवदत्तको हुआ—यह अजातशत्रु कुमार तरुण है, और भविष्यमे उत्तम (=भद्र) है, क्यो न मै अजातशत्रु कुमारको प्रसादित करूँ, उसके प्रसन्न होनेपर मुझे बळा लाभ, सत्कार पैदा होगा।'

तब देवदत्त शयनासन सँभालकर पात्र-चीवर ले जिधर राजगृह था, उधर चला। क्रमश जहाँ राजगृह था वहाँ पहुँचा। तब देवदत्त अपने रूप (=वर्ण)को अन्तर्धान कर कुमार (=बालक) का रूप बना, साकली मेखला (=तगळी) पहिन, अजातशत्रु कुमारकी गोदमे प्रादुर्भूत हुआ। अजातशत्रु कुमार भीत—उद्विग्न, उत्शकित=उत्-त्रस्त हो गया। तब देवदत्तने अजातशत्रु कुमारसे कहा—

"कुमार! तू मुझसे भय खाता है?"

"हाँ, भय खाता हूँ, तुम कौन हो?"

"मै देवदत्त हूँ।"

"भन्ते! यदि तुम आर्य देवदत्त हो, तो अपने रूप (=वर्ण)से प्रकट होओ।"

तब देवदत्त कुमारका रूप छोळ, सघाटी, पात्र-चीवर धारण किये अजातशत्रु कुमारके सामने खळा हुआ। तब अजातशत्रु कुमार, देवदत्तके इस दिव्य-चमत्कार (=ऋद्धि-प्रातिहार्य)से प्रसन्न हो पाँच सौ रथोके साथ साय प्रात उपस्थान (=हाजिरी)को जाने लगा। पाँच सौ स्थालीपाक भोजनके लिये ले जाये जाने लगे।

३—*राजगृह*

(४) देवदत्तकी महन्ताईकी इच्छा

तब लाभ, सत्कार, श्लोकसे अभिभूत—आदत-चित्त देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—मै भिक्षु-सघकी (महन्ताई) ग्रहण करूँ। यह (विचार) चित्तमे आते ही देवदत्तका (वह) योग-बल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।

तब भगवान् कौशाम्बीमे इच्छानुसार विहारकर चारिका करते जहाँ राजगृह है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् राजगृहमे कलन्दकनिवापके वेणुवनमे विहार करते थे।

---

[1]स० नि० १६। ४। ६।

तव बहुतसे भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे उन भिक्षुओंने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! अजातशत्रु सौ रथोके साथ०।"

"भिक्षुओ! देवदत्तके लाभ, सत्कार श्लोक(=तारीफ)की मत स्पृहा करो। जब तक भिक्षुओ! अजातशत्रु कुमार साय प्रात ० उपस्थानको जायेगा, पाँच सौ स्थाली-पाक भोजनके लिये जायेंगे, देवदत्तकी (उससे) कुशल-धर्मो (=धर्मो)मे हानि ही समझनी चाहिये, वृद्धि नही। भिक्षुओ! जैसे चड कुक्कुरके नाकपर पित्त चढे, इस प्रकार वह कुक्कुर और भी पागल हो, अधिक चड हो।"

"भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार श्लोक आत्म-वधके लिये उत्पन्न हुआ है।० पराभवके लिये०, जैसे भिक्षुओ! केला आत्म-वधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! बाँस आत्म-वधके लिये फल देता है, पराभवके लिये फल देता है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०। जैसे भिक्षुओ! नरकट आत्म-वधके लिये०। जैसे भिक्षुओ! अश्वतरी (=खचरी) आत्म-वधके लिये गर्भ धारण करती है, पराभवके लिये गर्भ धारण करती है, ऐसे ही भिक्षुओ! देवदत्तका लाभ-सत्कार०।

"फल ही केलेको मारता है, फल बाँसको, फल नरकटको (भी)।

सत्कार कुपुरुषको (वैसे ही) मारता है, जैसे गर्भ खचरीको।"(९)॥

उस समय आयुष्मान् महामौद्गल्यायनका सेवक ककुध नामक कोलियपुत्र हाल ही मे मरकर एक मनोमय (देव) लोकमे उत्पन्न हुआ था। उसका इतना बळा शरीर था, जितना कि दो या तीन मगधके गाँवोके खेत। वह उसका (उतना बळा) शरीर न अपने न दूसरोकी पीळाके लिये था। तब ककुध-देवपुत्र जहाँ आयुष्मान् महामौद्गल्यायन थे, वहाँ आया, आकर आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको अभिवादनकर एक ओर खळा हुआ। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने आयुष्मान् महामौद्गल्यान से यह कहा—

"भन्ते! लाभ, सत्कार, श्लोक (=प्रशसा)से अभिभूत=आदत्तचित, देवदत्तको इस प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई—'मै भिक्षु-सघ (की महताई)को ग्रहण करूँ। यह (विचार) चित्तमे आते ही देवदत्तका (वह) योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।"

ककुध देवपुत्रने यह कहा—यह कह आयुष्मान् महामौद्गल्यायन अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर वही अन्तर्धान हो गया।

तव आयुष्मान् महामौद्गल्यायन जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् महामोद्गल्यायनने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते! मेरा उपस्थाक (=सेवक) ककुध नामक कोलिय-पुत्र हालही मे मरकर एक मनोमय (देव-)लोकमे उत्पन्न हुआ है।०। एक ओर खळे हो ककुध देवपुत्रने मुझसे यह कहा—'भन्ते! ० देवदत्तका योगबल (=ऋद्धि) नष्ट हो गया।' वही अन्तर्धान हो गया।"

"क्या मौद्गल्यायन! तूने (योगबलसे) अपने चित्त द्वारा विचारकर जाना, कि जो कुछ ककुध देवपुत्रने कहा वह सब वैसा ही है, अन्यथा नही?"

"भन्ते! मैने अपने चित्त द्वारा विचारकर ककुध देवपुत्रको जाना है, कि जो कुछ ककुध देवपुत्रने कहा, वह सब वैसा ही है, अन्यथा नही।"

(५) पाँच प्रकारके गुरु

"मौद्‌गल्यायन ! रहने दो इस वचनको, रहने दो इस वचनको अब वह मोघपुरुष (=निकम्मा आदमी) स्वय ही अपनेको प्रकट करेगा । मौद्‌गल्यायन लोकमे यह पाँच (प्रकारके) गुरु (शास्ता) होते है। कौनसे पाँच !—(१) यहाँ मौद्‌गल्यायन ! एक शास्ता अशुद्ध-शील (=आचार) वाला होने पर भी मै शुद्ध-शीलवाला हूँ, मेरा शील शुद्ध=अवदात (=उज्ज्वल), निर्मल है—दावा करता है । उसके वारेमे (उसके) श्रावक (=शिष्य) जानते है—'यह आप शास्ता अशुद्ध-शीलवाले होनेपर भी० दावा करते है। यदि हम गृहस्थोको (उसे) कह दे, तो यह इनके लिये अच्छा न होगा। जो इनके लिये अच्छा नही, उसे हम क्यो कहे । यह चीवर पिडपात (=भिक्षान्न) शय्या-आसन, रोगीके पथ्य भैषज्यके सामानसे भी तो (हमारा) सन्मान करते है। जो जैसा करेगा, वैसा वह जानेगा'। मौद्‌गल्यायन ! इस प्रकारके गुरुके शील-शिष्य गोपन करते है। इस प्रकारका शास्ता शिष्योसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा रखता है। (२) और फिर मौद्‌गल्यायन ! यहाँ एक शास्ताकी आजीविका अशुद्ध होनेपर भी मै शुद्ध आजीविका वाला हूँ०। (३) एक शास्ताका धर्म-उपदेश अशुद्ध होनेपर भी मै शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ०। (४) एक शास्ताका व्याकरण (=भविष्य कथन) अशुद्ध होनेपर भी—मै शुद्ध व्याकरण वाला हूँ०। (५) ० एक शास्ताका ज्ञान-दर्शन (=ज्ञानका साक्षात्कार) अशुद्ध होनेपर भी—मै शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ०। मौद्‌गल्यायन ! लोकमे यह पाँच (प्रकारके) गुरु होते है।

"(१) मौद्‌गल्यायन ! शील शुद्ध होनेपर —मै शुद्ध शीलवाला हूँ, मेरा शील, शुद्ध=अवदात निर्मल है—यह दावा करता हूँ। मेरे शील शिष्य गोपन नही करते । मै शिष्योसे (अपने) शीलके गोपनकी अपेक्षा नही रखता। (२) आजीविका शुद्ध होनेपर मै शुद्ध आजीववाला हूँ०। (३) धर्म-उपदेश शुद्ध होनेपर मै शुद्ध धर्म-उपदेशवाला हूँ०। (४) व्याकरण शुद्ध होनेपर—मै शुद्ध व्याकरण वाला हूँ०। (५) ज्ञान-दर्शन शुद्ध होनेपर—मै शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ०।"

(६) देवदत्तका प्रकाशनीय कर्म

उस समय राजासहित वळी परिषद्‌से घिरे भगवान् धर्म-उपदेश कर रहे थे । तब देवदत्त आसनसे उठ एक कधेपर उत्तरासग करके, जिधर भगवान् थे उधर अजलि जोळ भगवान्‌से यह बोला—

"भन्ते ! भगवान् अब जीर्ण=वृद्ध=महल्लक=अध्वगत=वय-अनुप्राप्त है। भन्ते ! अब भगवान् निश्चिन्त हो इस जन्मके सुख-बिहारके साथ विहरे । भिक्षु-सघको मुझे दे, मै भिक्षु-सघको ग्रहण करूँगा।"

"अलम् (=बस, ठीक नही) देवदत्त ! मत तुझे भिक्षुसघका ग्रहण रुचे।"

दूसरी बार भी देवदत्त ने ०। ० तीसरी बार भी देवदत्तने०। ०

"देवदत्त ! सारिपुत्र मौद्‌गल्यायनको भी मै भिक्षुसघको नही देता, तुझ मुर्दे, थूकको तो क्या ?"

तब देवदत्तने—'राजासहित परिषद्‌मे मुझे भगवान्‌ने फेंका थूक कहकर अपमानित किया और सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायनको वढाया' (सोच) कुपित, असतुष्ट हो भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया । यह देवदत्तका भगवान्‌के साथ पहिला आघात (=द्रोह) हुआ ।

तब भगवान्‌ने भिक्षुसघको आमन्त्रित किया—

"भिक्षुओ ! सघ राजगृहमे दे व द त्त का प्रकाशनीय-कर्म करे—पूर्वमे देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म, सघ जिम्मेवार

नही। देवदत्त ही जिम्मेवार है। और भिक्षुओ ! इस प्रकार (प्र का श नी य कर्म) करना चाहिये—चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—1

"क ज्ञप्ति ०। ख अनुश्रावण ०।

"ग. धा र णा—'सघने देवदत्तका राजगृहमे प्रकाशनीय कर्म कर दिया—पूर्वमे देवदत्त अन्य प्रकृतिका था, अब अन्य प्रकृतिका। (अब) देवदत्त जो (कुछ) काय-वचनसे करे उसका बुद्ध, धर्म और सघ जिम्मेवार नही, देवदत्त ही जिम्मेवार है। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै उसे धारण करता हूँ।"

तब भगवान् ने आयुष्मान् सारिपुत्रको सबोधि किया—

"तो सारिपुत्र ! देवदत्त का तू राजगृहमे प्रकाशन कर।"

"भन्ते ! मैंने पहिले राजगृहमे देवदत्तकी प्रशसा की—गो धि-पु त्त (=देवदत्त) महर्द्धिक (=दिव्य शक्तिधारी)=महानुभाव है गोधि-पुत्र। कैसे मै भन्ते ! राजगृहमें देवदत्तका प्रकाशन करूँ ?"

"सारिपुत्र ! तूने तो यथार्थ ही देवदत्तकी प्रशसा की थी न—गोधिपुत्त महर्द्धिक है ० ?"

"हाँ, भन्ते !"

"इसी प्रकार सारिपुत्र ! यथार्थ ही देवदत्तका राजगृहमे प्रकाशन कर।"

"अच्छा, भन्ते !"—कह आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्को उत्तर दिया।"

तब भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! सघ सारिपुत्रको राजगृहमे देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये चुने—पहिले देवदत्त ०।2

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार चुनाव करना चाहिये। पहिले सारिपुत्रको पूछना चाहिये। फिर चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति०। ख अ नु श्रा व ण ०।

"ग धा र णा—'सघने राजगृहमे देवदत्तका प्रकाशन करनेके लिये ० आयुष्मान् सारिपुत्रको चुन लिया। सघको पसद है। इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ'।"

सघके द्वारा चुन लिये जानेपर, आयुष्मान् सारिपुत्रने बहुतसे भिक्षुओके साथ राजगृहमे प्रवेश कर राजगृहमे दे व द त्त का प्रकाशन किया—'पूर्वमे देवदत्त अन्य प्रकृतिका था ०। जो मनुष्य कि श्रद्धालु=अप्रसन्न, पडित, बुद्धिमान थे वह (सोचते थे)—'जिस तरह (कि) भगवान् राजगृहमें देवदत्त का प्रकाशन करवा रहे है, उससे यह छोटी बात न होगी।'

§२—देवदत्तका विद्रोह

(१) अजातशत्रुको बहकाकर पितासे विद्रोह कराना

तब देवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर अजातशत्रु कुमारसे बोला—

"कुमार पहिले मनुष्य दीर्घायु (होते थे), अब अल्पायु। हो सकता है, कि तुम कुमार रहते ही मर जाओ। इसलिये कुमार ! तुम पिताको मारकर राजा होओ, मैं भगवान्को मारकर बुद्ध होऊँगा।"

तब अजात-शत्रु कुमार जाँघमें छूरा बाँधकर भयभीत उद्विग्न, शंकित, त्रस्त (हो तेज़ीसे) मध्याह्नमें सहसा अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुआ। अन्तःपुरके उपचारक (=रक्षक) महामात्योंने ० पकड़.

शत्रु कुमारको० अन्त पुरमे प्रविष्ट होते देखा। देखकर पकळ लिया। कुमारसे कहा—

"कुमार तुम क्या करना चाहते थे ?"

"पिताको मारना चाहता था।"

"किसने उत्साहित किया ?"

"आर्य देवदत्तने।"

किन्ही किन्ही महामात्योने यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये, देवदत्तको भी, भिक्षुओको भी।'

किन्ही किन्ही ने०—'न कुमारको मारना चाहिये, न देवदत्तको, न भिक्षुओको, राजाको कहना चाहिये, जैसा राजा कहे, वैसा करेगे।'

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगध राज श्रेणिक विबिसार था, वहाँ गये, जाकर ०विबिसारको यह बात कह सुनाई।

"भणे! महामात्यने क्या सम्मति दी है ?"

"किन्ही किन्ही महामात्योने देव! यह सम्मति दी—'कुमारको भी मारना चाहिये० जैसा राजा कहे, वैसा करेगे।"

"भणे! बुद्ध, धर्म सघका क्या दोष है। भगवान्‌ने तो पहिले ही राजगृहमे देवदत्तका प्रकाशन करवा दिया है—०।"

तब जिन महामात्योने यह सलाह दी थी—'कुमारको भी मारना चाहिये०, उन्हे पदसे पृथक् कर दिया, और जिन महामात्योने यह सलाह दी थी—'न कुमारको मारना चाहिये०' उन्हे ऊँचे पदपर स्थापित किया।

तब वह महामात्य अजातशत्रुको ले जहाँ मगधराज श्रेणिक विबिसार था, वहाँ गये। जाकर राजा०को यह बात कह सुनाई।

तब राजा०ने अजात-शत्रु कुमारको कहा—

"कुमार! किसलिये तू मुझे मारना चाहता था ?"

"देव! राज्य चाहता हूँ।"

"कुमार! यदि राज्य चाहता है तो यह तेरा राज्य है।" कह अजात-शत्रु कुमारको राज्य दे दिया।

(२) बुद्धके मारनेके लिये आदमी भेजना

तब तेवदत्त जहाँ अजात-शत्रु कुमार था, वहाँ गया। जाकर कहा—

"महाराज! आदमियोको हुक्म दो, कि श्रमण गौतमको जानसे मार दे।"

तब अजात-शत्रु कुमारने मनुष्योसे कहा—

"भणे! जैसा आर्य देवदत्त कहे वैसा करो।"

तब देवदत्तने एक पुरुषको हुकुम दिया—

"जाओ आवुस! श्रमण गौतम अमुक स्थानपर विहार करता है। उसको जानसे मारकर, इस रास्तेसे आओ।"

उस रास्तेमे दो आदमियोको बैठाया—"जो अकेला पुरुष इस रास्तेसे आवे, उसे जानसे मारकर इस मार्गसे आओ।"

उस रास्तेमे चार आदमियोको बैठाया—"जो दो पुरुष इस रास्तेसे आवे, उन्हे जानसे मार कर, इस मार्गसे आओ।"

उस मार्गमे आठ आदमी बैठाये—"जो चार पुरुष० ।"

उस मार्गमे सोलह आदमी बैठाये—० ।

तव वह अकेला पुरुष ढाल तलवार ले तीर कमान चढा, जहाँ भगवान् थे वहाँ गया । जाकर भगवान्के अविदूरमे भयभीत, उद्विग्न० शून्य-शरीरसे खळा हुआ । भगवान्ने उस पुरुषको भीत० शून्य शरीर खळे हुये देखा । देखकर उस पुरुषको कहा—

"आओ, आवुस ! मत डरो ।"

तव वह पुरुष ढाल-तलवार एक ओर (रख) तीर-कमान छोळकर, जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया । जाकर भगवान्के चरणोमे शिरसे पळकर भगवान्से बोला—

"भन्ते ! बाल (=मूर्ख)सा मूढसा, अकुशल (=अ-चतुर)सा मैने जो अपराध किया है, जो कि मै दुष्ट-चित्त हो वध-चित्त हो, यहाँ आया, उसे क्षमा करे । भन्ते ! भगवान् भविष्यमे सवर (=रोक करने)के लिये, मेरे उस अपराध (=अत्यय)को अत्यय (=वीते)के तौरपर स्वीकार करे ।"

"आवुस ! जो तूने अपराध किया,० वध-चित्त हो यहाँ आया । चूँकि आवुस ! अत्यय (=अपराध)को अत्ययके तौरपर देखकर धर्मानुसार प्रतीकार करता है । (इसलिये) उसे हम स्वीकार करते है । ।"

तव भगवान्ने उस पुरुषको आनुपूर्वी-कथा कही०[1] । (और) उस पुरुषको उसी आसनपर० धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ ।०।

तव वह पुरुष भगवान्से वोला—

"आश्चर्य ! भन्ते ! ! ० भन्ते ! आजसे भगवान् मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत उपासक धारण करे ।"

तव भगवान्ने उस पुरुषसे—

"आवुस ! तुम उस मार्गसे मत जाओ, इस मार्गसे जाओ" (कह) दूसरे मार्गसे भेज दिया ।

तव उन दो पुरुषोने—'क्यो वह पुरुष देर कर रहा है' (सोच) ऊपरकी ओर जाते, भगवान्को एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। देखकर जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर वैठ गये। उन्हे भगवान्ने आनुपूर्वी-कथा कही० । ० । "आवुसो ! मत तुम लोग उस मार्गसे जाओ, इस मार्गसे जाओ" ।

तव उन चार पुरुषोने ० । ० । तव उन आठ पुरुषोने ० । ० । तव उन सोलह पुरुषोने ० । ० 'आजसे भन्ते ! भगवान् हमे अञ्जलि-बद्ध शरणागत उपासक धारण करे ।"

तव वह अकेला पुरुष जहाँ दे व द त्त था, वहाँ गया । जाकर देवदत्तसे वोला—

"भन्ते ! मै उन भगवान्को जानसे नही मार सकता । वह भगवान् महा-ऋद्धिक=महानुभाव है ।"

(३) देवदत्तका बुद्धपर पत्थर मारना

"जाने दे आवुस ! तू श्रमण गौतमको जानसे मत मार, मै ही जानसे मारूँगा ।"

उस समय भगवान् गृध्रकूट पर्वतकी छायामे टहलते थे । तव देवदत्तने गृध्रकूट पर्वतपर चढ कर—'इससे श्रमण गौतमको जानसे मारूँ'—(सोच) एक वळी शिला फेंकी । दो पर्वतकूटोने आकर उस शिलाको रोक दिया । उससे (निकली) पपळीके उछलकर (लगनेसे) भगवान्के पैरसे रुधिर वह निकला ।

---

[1] पृष्ठ ८४ ।

तब भगवान्‌ने ऊपर देख देवदत्तसे यह कहा—

"मोघ पुरुष ! तूने बहुत अ-पुण्य (=पाप) कमाया, जो कि तूने द्वेष-युक्त चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! देवदत्तने यह प्रथम आनन्तर्य (=मोक्षका बाधक) कर्म जमा किया, जोकि द्वेष-युक्त चित्तसे वधके चित्तसे तथागतका रुधिर निकाला।"

(४) तथागतकी अकाल मृत्यु नहीं

भिक्षुओने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की, तो वह भिक्षु भगवान्‌के विहार(=निवास-स्थान)के चारो ओर टहलते ऊँची आवाजसे बळी आवाजसे भगवान्‌की रक्षा=आवरण=गुप्तिके लिये स्वाध्याय (=सूत्र-पाठ) करते थे। भगवान्‌ने ऊँची आवाज बळी आवाजके स्वाध्यायके शब्दको सुना। भगवान्‌ने आयुष्मान् आनदको सबोधित किया—

"आनन्द ! यह क्या ऊँची आवाज, बळी आवाज, स्वाध्याय शब्द है?"

"भन्ते ! भिक्षुओने सुना कि देवदत्तने वध करनेकी कोशिश की० स्वाध्याय कर रहे है। वही यह भगवान्० स्वाध्याय शब्द है।"

"तो आनन्द ! मेरे वचनसे उन भिक्षुओको कहो— 'आयुष्मानोको शास्ता बुला रहे है।"

"अच्छा भन्ते ! "—(कह) भगवान्‌को उत्तर दे, आयुष्मान् आनन्द, जहाँ वह भिक्षु थे, वहाँ गये। जाकर उन भिक्षुओसे यह बोले—

"आवुसो ! आयुष्मानोको शास्ता बुला रहे है।"

"अच्छा आवुस !"—(कह) आयुष्मान् आनन्दको उत्तर दे, वह भिक्षु जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे उन भिक्षुओसे भगवान्‌ने यह कहा—

"भिक्षुओ ! इसका स्थान नही, यह सभव नही कि दूसरेके प्रयत्नसे तथागतका जीवन छूटे, भिक्षुओ ! तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नही (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।

"भिक्षुओ ! लोकमे यह पाँच (प्रकारके) (गुरु) (=शास्ता) होते है०[1]।

"भिक्षुओ ! शील-शुद्ध होनेपर—मै शुद्ध शीलवाला हूँ,०[1] (५) ०मै शुद्ध ज्ञान दर्शनवाला हूँ०।

"भिक्षुओ ! इसका स्थान नही० तथागत (दूसरेके) उपक्रमसे नही (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते है। भिक्षुओ ! जाओ तुम अपने अपने विहारको, तथागतोकी रक्षाकी आवश्यकता नही।"

(५) देवदत्तका बुद्धपर नालागिरि हाथीका छुळवाना

उस समय राजगृहमे ना ला-गि रि नामक मनुष्य-घातक, चड हाथी था। देवदत्तने राजगृहमे प्रवेशकर हथसारमे जा फीलवान्‌से कहा—

" जब श्रमण गौतम इस सळकपर आये, तब तुम नाला-गिरि हाथीको खोलकर, इस सळक पर कर देना।"

"अच्छा भन्ते !"

---

[1] देखो ७§१।५ (पृष्ठ ४८२)।

भगवान् पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले, बहुतसे भिक्षुओंके साथ राजगृहमे पिंडचारके लिये प्रविष्ट हुए। तब भगवान् उसी सळकपर आये। उन फीलवान्ने भगवान्को उस सळकपर आते देखा। देखकर नालागिरि हाथीको छोळकर, सळकपर कर दिया। नालागिरि हाथीने दूरसे भगवान्को आते देखा। देखकर सूँळको खळाकर, प्रहृष्ट हो, कान चलाते जहाँ भगवान् थे, उधर दौळा। उन भिक्षुओंने दूरसे नालागिरि हाथीको आते देखा। देखकर भगवान्से कहा—

"भन्ते! यह चड, मनुष्य-घातक ना ला गि रि हाथी इस सळकपर आ रहा है, हट जाये भन्ते! भगवान्, हट जाये सुगत!"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

उस समय मनुष्य प्रासादोपर, हर्म्योपर, छतोपर, चढ गये थे। उनमे जो अश्रद्धालु=अप्रसन्न, दुर्बुद्धि (=मूर्ख) मनुष्य थे, वह ऐसा कहते थे—"अहो! महाश्रमण अभिरूप (था, सो) नागसे मारा जायेगा।" और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पडित थे, उन्होने ऐसा कहा—"देर तक जी! नाग[1] नाग (=बुद्ध)से, सग्राम करेगा।"

तब भगवान्ने नालागिरि हाथीको मैत्री (भावना)युक्त चित्तसे आप्लावित किया। तब नालागिरि हाथी भगवान्के मैत्री (पूर्ण) चित्तसे स्पृष्ट हो, सूँडको नीचे करके, जहाँ भगवान् थे, वहाँ जाकर खळा हुआ। तब भगवान्ने दाहिने हाथसे नालागिरिके कुम्भको स्पर्श (किया)।

"आओ भिक्षुओ! मत डरो। भिक्षुओ! इसका स्थान नही० तथागत (परके) उपक्रमसे नही (अपनी मौतसे) परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ करते हैं।"

दूसरी बार भी भगवान्ने नालागिरि० स्पर्श किया।

स्पर्शकर नालागिरि हाथीसे गाथाओमे कहा—

"कुँजर! मत नाग[1]को मारो, कुँजर! नागका मारना दुख (मय) है।
क्योकि कुजर! ना ग[1]को मारनेवालेकी न यहाँ सुगति होती, न परलोकमे ही॥(२)॥
मत मदको मत प्रमादको प्राप्त हो, इसके कारण प्रमादी सुगतिको नही प्राप्त होते।
तू ही ऐसा कर, जिससे कि तू सुगतिको प्राप्त हो"॥ (३)॥

तब ना ला गि रि हाथीने सूँडसे भगवान्की चरण-धूलिको ले शिरपर डाल, जब तक भगवान्को देखता रहा पीठकी ओरसे लौटता रहा। तब नालागिरि हाथी हथसारमे जा अपने स्थान पर खळा हुआ। इस प्रकार नालागिरि हाथीका दमन हुआ। उस समय मनुष्य यह गाथा गाते थे—

"कोई कोई दडसे, अकुश और कशासे दमन करते थे।
महर्षिने विना दड विना शस्त्र नागको दमन किया"॥ (४)॥

लोग हैरान होते थे—'कैसा पापी अलक्षणी देवदत्त है, जो कि ऐसे महर्द्धिक (=तेजस्वी) ऐसे महानुभाव श्रमण गौतमके वधकी कोशिश करता है!!'

देवदत्तका लाभ-सत्कार नष्ट हो गया, भगवान्का लाभ-सत्कार वढा।

(६) देवदत्तके सम्मानका ह्रास

उस समय दे व द त्त लाभ-सत्कारसे हीन होनेसे घरोसे माँग माँगकर खाता था। लोग हैरान० होते थे—

'कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण घरोसे माँग माँग कर खाते है!!'

---

[1] न+अग=पापरहित=बुद्ध।

०अल्पेच्छ० भिक्षु० भगवान्से बोले।—

"सचमुच, भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

०फटकारकर भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! कुलोमे भिक्षुओके लिये तीन (प्रकार)के भोजनका विधान करता हूँ, तीन मतलवसे—(१) कुटिल (=दुम्मकू) व्यक्तियोके निग्रहके लिये, (२) अच्छे भिक्षुओ के ठीकसे विहारके लिये, (३) (और जिसमे कि)बुरी नियतवाले पक्ष या सघमे फूट नड ाल दे। कुलोके अनुदर्शनके लिये धर्मानुसार गण-भोजन (=जमातका भोज) कराना चाहिये।"

(७) संघमे फूट डालना

तब देवदत्त जहाँ कोकालिक कटमोर-तिस्सक, और खडदेवी-पुत्र समुद्रदत्त थे, वहाँ गया। जाकर बोला—

"आओ आवुसो ! हम श्रमण गौतमका सघ-भेद (=फूट)=चक्रभेद करे। आओ हम श्रमण गौतमके पास चलकर पाँच वस्तुएँ माँगे। —'अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक रहे, जो गाँवमे बसे, उसे दोष हो। (२) जिन्दगी भर पिडपातिक (=भिक्षा माँगकर खानेवाले) रहे, जो निमत्रण खाये, उसे दोष हो। (३) जिन्दगी भर पासुकूलिक (=फेंके चीथळे सीकर पहननेवाले) रहे, जो गृहस्थके (दिये) चीवरको उपभोग करे, उसे दोष हो। (४) जिन्दगी भर वृक्ष-मूलिक (=वृक्ष के नीचे रहनेवाले) रहे, जो छायाके नीचे जाये, वह दोषी हो। (५) जिन्दगी भर मछली मास न खाये, जो मछली मास खाये , उसे दोष हो।, श्रमण गौतम इसे नही स्वीकार करेगा। तब हम इन पाँच वातोसे लोगोको समझायेगे। "

तव देवदत्त परिषद्-सहित जहाँ भगवान् थे, वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर, एक ओर वैठा। एक ओर बैठे देवदत्तने भगवान्से कहा—

" अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (१) जिन्दगी भर आरण्यक हो० ।"

"अलम् देवदत्त ! जो चाहे आरण्यक हो, जो चाहे ग्राममे रहे। जो चाहे पिडपातिक हो, जो चाहे निमत्रण खाये। जो चाहे पासुकूलिक हो, जो चाहे गृहस्थके (दिये) चीवरको पहने। देवदत्त ! आठ मास मैंने वृक्षके नीचे वास (=वृक्ष-मूल-शयनासन)की अनुज्ञा दी है। अदृष्ट[1], अ-श्रुत[2],अ-परिशकित,[3] इस तीन कोटिसे परिशुद्ध मासकी भी मैंने अनुज्ञा दी है। "

तव देवदत्त—भगवान् इन पाँच वातोकी अनुमति नही देते है—(सोच) हर्षित=उदग्र हो परिषद्-सहित आसनसे उठ भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चला गया।

तव देवदत्त परिषद्-सहित राजगृहमे प्रवेशकर (उन) पाँच बातोको ले लोगोको समझाता था—'आवुसो ! हमने श्रमण गौतमके पास जा पाँच बातोकी याचना की—भन्ते ! भगवान् अनेक प्रकार से अल्पेच्छ, सतुष्ट, सल्लेख (=तप), धुत(=त्यागमय रहन सहन)', प्रासादिक, अपचय(=त्याग)वीर्यारम्भ (=उद्योग)के प्रशसक है। भन्ते ! यह पाँच बाते अनेक प्रकारसे अल्पेच्छता० वीर्यारम्भता के लिये है। अच्छा हो भन्ते ! भिक्षु (२) जिन्दगी भर आरण्यक रहे०। इन पाँच बातोकी श्रमण गौतम अनुमति नही देता। और हम इन पाँचो बातोको लेकर वर्तते है।" वहाँ जो आदमी अश्रद्धालु=अप्रसन्न,

---

[1] 'मेरे लिये मारा गया'—यह देखा न हो। [2] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सुना न हो।
[3] 'मेरे लिये मारा गया'—यह सन्देह न हो।

दुर्बुद्धि थे वह ऐसा बोलते थे—'यह शाक्यपुत्रीय श्रमण अवधूत, सल्लेखवृत्ति (=तपस्वी) है। श्रमण गौतम बटोरू है, बटोरने के लिये चेताता है। और जो मनुष्य श्रद्धालु=प्रसन्न, पडित, बुद्धिमान् थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे देवदत्त, भगवान्के सघ भेदके लिये, चक्रभेदके लिये कोशिश कर रहा है।'

भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान० होनेको सुना—०।

तब उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।—

"सचमुच भिक्षुओ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान्!"

"बस देवदत्त! तुझे सघमे फूट डालना मत पसद होवे। देवदत्त! सघ-भेद भारी (अपराध) है। देवदत्त! जो एकमत सघको फोळता है, वह कल्प भर रहनेवाले पापको कमाता है, कल्प भर नरक मे पकता है। देवदत्त! जो फूटे सघको मिलाता है, वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है, कल्प भर स्वर्गमे आनन्द करता है। बस देवदत्त! तुझे सघमे फूट डालना मत पसद होवे, देवदत्त! सघभेद भारी (अपराध) है।"

तब आयुष्मान् आनन्द पूर्वाह्ण समय पहिनकर पात्र-चीवर ले राजगृहमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुये। देवदत्तने आयुष्मान् आनन्दको राजगृहमे भिक्षाचार करते देखा। देखकर जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे यह बोला—

"आजसे आवुस आनन्द! मै भगवान्से अलग ही भिक्षु-सघसे अलग ही उपोसथ करूँगा, अलग ही सघ-कर्म करूँगा।"

तब आयुष्मान् आनन्द भोजनकर भिक्षासे निवृत्त हो जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ गये। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवानसे यह कहा—

"आज मै भन्ते! पूर्वाह्ण समय० राजगृहमे भिक्षाके लिये प्रविष्ट हुआ।० अलग ही सघ-कर्म करूँगा। भन्ते! आज देवदत्त सघको फोळेगा।"

तब भगवान्ने इस बातको जान उसी समय इस उदानको कहा—

"साधु (=भले मनुष्य)के साथ भलाई सुकर है, पापीके साथ भलाई दुष्कर है।
पापीके साथ पाप सुकर है, आर्योके साथ पाप दुष्कर है" ॥(५)॥

द्वितीय भाणवार समाप्त

(८) देवदत्तका संघसे अलग होजाना

तब दे व द त्त ने उस दिन उपोसथ[1]को आसनसे उठकर शलाका[2] (=वोटकी लकळी) पकळवाई—"हमने आवुसो! श्रमण-गौतमको जाकर पाँच वस्तुएँ माँगी—०। उन्हे श्रमण गौतमने नही स्वीकार किया। सो हम (इन) पाँच वस्तुओको लेकर वर्तेगे। जिस आयुष्मान्को यह पाँच बाते पसद हो, वह शलाका ग्रहण करें।"

उस समय वैशालीके पाँच सौ व ज्जि पु त्त क नये भिक्षु असली बातको न समझनेवाले थे। उन्होंने—'यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन(=गुरुका उपदेश)है'—(सोच) शलाका ले ली। तब देवदत्त सघको फोळ (=भेद)कर, पाँच सौ भिक्षुओको ले, जहाँ गयासीस[3] था वहाँको चल दिया।

---

[1]कृष्ण चतुर्दशी या पूर्णिमा। [2]वोट (=मत पाली, छन्द) लेनेकी आसानीके लिये जैसे आजकल पुर्जा (बैलट) चलती है, वैसे ही पूर्वकालमें छन्द-शलाका चलती थी। [3]ब्रह्मयोनि पर्वत (गया)।

आयुष्मान् सा रि पु त्र और मौ द् ग ल्या य न जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। । आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌को कहा—

"भन्ते! देवदत्त सघको फोळकर, पाँच सौ भिक्षुओको लेकर जहाँ ग या सी स है, वहाँ चला गया।"

"सारिपुत्र! तुम लोगोको उन नये भिक्षुओपर दया भी नही आई? सारिपुत्र! तुम लोग उन भिक्षुओके आपद्‌मे पळनेसे पूर्वही जाओ।"

"अच्छा भन्ते!"

उस समय बळी परिषद्‌के बीच बैठा देवदत्त धर्म-उपदेश कर रहा था। दे व द त्त ने दूरसे सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायनको आते देखा। देखकर भिक्षुओको आमन्त्रित किया।—

"देखो भिक्षुओ! कितना सु-आख्यात (=सु-उपदिष्ट) मेरा धर्म है। जो श्रमण गोतमके अग्र-श्रावक सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायन हैं, वह भी मेरे पास आ रहे, मेरे धर्मको मानते है।"

ऐसा कहनेपर कोकालिकने देवदत्तसे कहा—

"आवुस देवदत्त! सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायनका विश्वास मत करो। सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायन वदनीयत (=पापेच्छ) है, पापक (=बुरी) इच्छाओके वशमे है।"

"आवुस, नही, उनका स्वागत है, क्योकि वह मेरे धर्मपर विश्वास करते है।"

तव देवदत्तने आयुष्मान् सारिपुत्रको आधा आसन (देनेको) निमत्रित किया—

"आओ आवुस! सारिपुत्र! यहाँ वैठो।"

"आवुस! नही" (कह) आयुष्मान सारिपुत्र दूसरा आसन लेकर एक ओर वैठ गये। आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायन भी एक आसन लेकर० वैठ गये। तव देवदत्त बहुत रात तक भिक्षुओको धार्मिक कथा (कहता) आयुष्मान् सारिपुत्रसे वोला—

"आवुस! सारिपुत्र! (इस समय) भिक्षु आलस-प्रमाद-रहित हैं, तुम आवुस सारिपुत्र! 'भिक्षुओको धर्म-देशना करो, मेरी पीठ अगिया रही है, सो मै लम्वा पळूँगा।"

"अच्छा आवुस!"

तव देवदत्त चौपेती सघाटीको विछवाकर दाहिनी वगलसे लेट गया। स्मृति-रहित सप्रजन्य-रहित (होनेसे) उसे मुहूर्त भरमे ही निद्रा आ गई। तव आयुष्मान् सारिपुत्रने आदेशना-प्रातिहार्य (=व्याख्यानके चमत्कार) और अनुशासनीय-प्रातिहार्यके साथ, तथा आयुष्मान् महामौद्‌गल्यायनने ऋद्धि-प्रातिहार्य (=योग-वलके चमत्कार) के साथ भिक्षुओको धर्म-उपदेश किया, अनुशासन किया। तव उन भिक्षुओको विरज–विमल धर्म-चक्षु उत्पन्न हुआ—जो कुछ समुदय धर्म (=उत्पन्न होनेवाला) है, वह निरोध-धर्म (=विनाश होनेवाला) है०'।

आयुष्मान् सारिपुत्रने भिक्षुओको निमन्त्रित किया—

"आवुसो! चलो भगवान्‌के पास चले, जो उस भगवान्‌के धर्मको पसद करता है वह आवे।"

तव सारिपुत्र मौद्‌गल्यायन उन पाँच सौ भिक्षुओको लेकर जहाँ वेणुवन था, वहाँ चले गये। तव कोकालिकने देवदत्तको उठाया—

"आवुस देवदत्त! उठो, मैंने कहा न था—आवुस देवदत्त! सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायनका विश्वास मत करो। ०।"

तव देवदत्तको वही मुखसे गर्म खून निकल पळा।

तव सा रि पु त्र, और मौ द्‌ ग ल्या य न जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर, एक ओर वैठे। एक ओर वैठे आयुष्मान् सारिपुत्रने भगवान्‌से यह कहा—

"अच्छा हो भन्ते ! फूट डालनेवाले अनुयायी भिक्षु फिर उपसपदा पावे।"

"नही, सारिपुत्र ! मत तुझे रुचे फूटके अनुयायी भिक्षुओकी उपसम्पदा। तो सारिपुत्र ! तू फूटके अनुयायी भिक्षुओको थुल्लच्चयकी देशना (=क्षमापन) करा। सारिपुत्र ! कैसे देवदत्त तेरे साथ पेश आया ?"

"जैसे भन्ते ! भगवान् वहुत रात तक भिक्षुओको धर्म कथा द्वारा समुत्तेजित सप्रहर्षित ० कर मुझको आज्ञा देते हैं—'सारिपुत्र ! चित्त और शरीरके आलस्यसे रहित है भिक्षुसघ। सारिपुत्र ! तू भिक्षुओको धार्मिक कथा कह। पीठ मेरी अगिया रही, सो मै लम्बा पळूँगा।' ऐसे ही भन्ते ! देवदत्तने भी मेरे साथ किया।"

हाथी और गीदळकी कथा

तव भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पूर्वकालमे जगलमे एक महासरोवर (था, जिसके) आश्रयसे हाथी (=नाग) रहते थे। वह महासरोवरमे घुसकर सूँळसे भसीड और मृणालको निकाल, अच्छी तरह धो, विना कीचळका कर खाते थे। वह उनके वलके लिये भी सौन्दर्यके लिये भी होता था। उनके कारण मरण या मरण-समान दु खको न प्राप्त होते थे। भिक्षुओ ! उन्ही हाथियोकी नकल करते थे तरुण स्यारके वच्चे। वह उस सरोवरमे घुस सूँळसे भसीड और मृणालको निकाल। अच्छी तरह धोये विना, विना कीचळका किये विना खाते थे। वह उनके बलके लिये, सौन्दर्यके लिये नही होता था उनके कारण वह मरण या मरण समान दु खको प्राप्त होते थे। ऐसे ही भिक्षुओ। देवदत्त मेरी नकल कर कृपण (हो) मरेगा।—

"धरती खोद नदीमे धो भसीड खाते महावराहकी भाँति कीचड खाते स्यारकी भाँति मेरी नकल कर (वह) कृपण मरेगा॥ (६)"॥

(९) दूतके लिये अपेक्षित गुण

"भिक्षुओ ! आठ वातोसे युक्त भिक्षु दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षु (१) श्रोता होता है, (२) श्रावयिता (=सुनानेवाला), (३) उद्गृहीता (=ग्रहण करनेवाला), (४) धारयिता (=स्मरण रखनेवाला), (५) विज्ञाता, (६) विज्ञापयिता, (७) हित अहितमे कुशल (=चतुर), और (८) कलहकारक नही होता। भिक्षुओ ! इन आठ वातोमे युक्त भिक्षु दूत भेजन लायक है। 4

"भिक्षुओ ! आठ वातोसे युक्त होनेसे सारिपुत्र दूत भेजने लायक है। कौनसे आठ ?—यहाँ भिक्षुओ ! सारिपुत्र (१) श्रोता है, ० (८) हित अहितमे कुशल है।०।

"जो उग्रवादी परिषद्को पा पीडित नही होता।
(किसी) वचनको न छोळता है, और न भाषणको ढाँकता है॥ (७)॥
विना वतलाये कहता है, पूछनेपर कोप नही करता।
यदि ऐसा भिक्षु है, तो वह दूत वनकर जाने लायक है" ॥(८)॥

(१०) देवदत्तके पतनके कारण

"भिक्षुओ ! आठ अ-सद्धर्मोसे अभिभूत=पर्यादत्त-चित्त (=लिप्त चित्त) हो देवदत्त अपायिक=नारकीय कल्पभर (नरकमे रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! देवदत्त लाभसे अभिभूत=पर्यादत्तचित्त ० चिकित्साके अयोग्य है, (२) अलाभसे०, (३) यशसे०, (४) अयशसे०, (५) सत्कारसे०, (६) असत्कारसे०, (७) पापेच्छता (=वद-

नीयती)से०, (८) पापमित्रतासे० । भिक्षुओ ! इन आठ० ।

"अच्छा हो भिक्षुओ ! भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहार करे, ० प्राप्त अलाभ०, ० प्राप्त यश०, ० प्राप्त अयश०, ० प्राप्त सत्कार०, ० प्राप्त असत्कार०, ० प्राप्त पापेच्छता०, ० प्राप्त पापमित्रता० ।

"भिक्षुओ ! क्या बात देख भिक्षु प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करे, ०, ० प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा करके विहार करे ?—भिक्षुओ ! प्राप्त लाभकी उपेक्षा किये विना विहार करते समय जो पीळा-दाह करनेवाले आस्रव (=चित्त-मल) उत्पन्न होते है, प्राप्त लाभकी उपेक्षा करके विहार करनेपर वह पीळा-दाह करनेवाले आस्रव नही उत्पन्न होगे ।० प्राप्त अलाभकी उपेक्षा किये बिना०, प्राप्त यशकी उपेक्षा किये विना०, प्राप्त अयशकी उपेक्षा किये बिना०, प्राप्त सत्कारकी उपेक्षा किये विना०, प्राप्त असत्कारकी उपेक्षा किये विना०, प्राप्त पापेच्छताकी उपेक्षा किये विना०, प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा किये विना० । भिक्षुओ ! यह बात देख० । इसलिये भिक्षुओ ! तुम्हे सीखना चाहिये—० । प्राप्त लाभकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा, ०, प्राप्त पापमित्रताकी उपेक्षा कर करके विहरूँगा ।

"भिक्षुओ ! तीन असद्धर्मोसे लिप्त=पर्यादत्त चित्त हो देवदत्त अपायिक=नारकीय, कल्प भर (नरकमे रहनेवाला) चिकित्साके अयोग्य है । कौनसे तीन ?—(१) पापेच्छता, (२) पापमित्रता, (३) थोळीसी विशेषता प्राप्त होनेसे अन्तराव्यवसान (=इतराना) करना । भिक्षुओ ! इन तीन असद्धर्मोसे लिप्त ० ।—

"लोकमें मत कोई पापेच्छ उत्पन्न हो,
सो इससे जानो, जैसी कि पापेच्छोकी गति होती है ॥(९)॥
'पडित है, ऐसा प्रसिद्ध है' 'भावितात्मा' होनेकी मान्यता है,
मैंने सुना—जलकी भाँति देवदत्तमे यश (आदि) आठ हैं ॥(१०)॥
तथागतसे द्रोह करके उसने प्रमाद किया,
चार द्वारवाले भयानक नरक अवीचिको प्राप्त हुआ ॥(११)॥
पाप कर्मको न करनेवाले द्वेषरहित (पुरुष)का जो द्रोह करता है,
आदरहीन द्वेष-युक्त उसी पापीको वह लगता है ॥(१२)॥
यदि (कोई) विषके घळेसे (सारे) समुद्रको दूषित करना चाहे,
(तो), उससे वह दूषित नही हो सकता, क्योकि समुद्र महान् है ॥(१३)॥
इसी प्रकार जो तथागतको वाद (विवाद)से पीडित करना चाहे,
(तो उन) सम्यक्त्वको प्राप्त शान्त-चित्त (तथागत)को (वह) वाद नही लग सकता ॥(१४)॥
पडित (जन) वैसेको मित्र करे, और वैसेका सेवन करे ।
जिसके मार्गका अनुसरण करके भिक्षु दु:ख-विनाशको प्राप्त कर सके" ॥(१५)॥

३—संघमें फूट (व्याख्या)

तव आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्‌को अभिवादनकर एक ओर वैठे । एक ओर वैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्‌से यह कहा—

(१) संघ-राजीकी व्याख्या

"भन्ते ! सघ-राजी (=सघमे पार्टी होना) सघ-राजी[1] कही जाती है, कैसे भन्ते ! सघ-राजी होती है, और सघ-भेद नही होता है, और कैसे भन्ते ! सघ-राजी भी होती है, सघ-भेद भी होता है ?"

"उपालि ! (१) एक ओर एक होता है, एक ओर दो, (और) चौथा (भिक्षु) अ नु श्रा व ण[2] करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह ध र्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन (=उपदेश) है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो।' इस प्रकार उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (२) एक ओर दो (भिक्षु) होते है, एक ओर दो, (और) पाँचवाँ (भिक्षु) अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (३) एक ओर उपालि ! दो होते है, एक ओर तीन और छठाँ अ नु श्रा व ण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इस प्रकार व्याख्यान करो'—इस प्रकार भी उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघभेद नही होता। (४) एक ओर उपालि ! तीन होते हैं, एक ओर तीन, और सातवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघ-भेद नही होता। (५) एक ओर उपालि ! तीन होते है, एक ओर चार, और आठवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार भी उपालि ! सघ-राजी होती है, किन्तु सघ-भेद नही होता। (६) एक ओर उपालि चार होते है, एक ओर चार और नवाँ अनुश्रावण करता है, ०—०—इस प्रकार उपालि ! सघ-राजी भी होती है सघ-भेद भी। उपालि ! नव (भिक्षुओके होने)से या नवसे अधिक होनेसे सघ-राजी भी होती है, सघ-भेद भी। उपालि ! न भिक्षुणी, सघमे भेद (=फूट) करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। उपालि ! न शि क्ष मा णा, सघमे भेद करती, हाँ भेदके लिये प्रयत्न कर सकती है। ० न श्रामणेर०। ० न श्रामणेरी ०। ० न उपासक ०। ० न उपासिका ०। उपालि ! अपराध-रहित (=प्रकृतस्थ) एक आवासवाले एक सीमामे स्थित भिक्षु सघ भेद करते है।" 5

(२) सङ्घ-भेदकी व्याख्या

"भन्ते ! सघ-भेद सघ-भेद कहा जाता है, कैसे कितनेसे भन्ते ! सघ भि न्न (=फूटा हुआ) होता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अ ध र्म (=बुद्धका जो उपदेश नही)को धर्म कहते है, (२) ध र्म को अ-धर्म कहते है। (३) अ-विनयको वि न य कहते है, और (४) विनयको अ-विनय कहते है। (५) तथागतके अ-भाषित अ-लपितको तथागतका भाषित लपित कहते है, (६) तथागतके भाषित, लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित कहते है। (७) तथागतके अन्-आचीर्ण (=आचरण न किये कामो)को ० आचीर्ण कहते है, (८) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहते है। (९) ० न विधान किये (=अ-प्रज्ञप्त)को ० प्रज्ञप्त ०, (१०) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहते है। (११) अन्-आपत्ति (=जो अपराध नही)को आपत्ति ० (१२) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहते है। (१३) लघुक-आपत्ति (=छोटे गिने जानेवाले अपराध)को गुरुक (=बळी) आपत्ति कहते है, (१४) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहते है। (१५) सावशेष (=जिसके अतिरिक्त भी आपत्तियाँ बची है)-आपत्तियोको निरवशेष-आपत्तियाँ कहते है, (१६) निरवशेष-आपत्तियाँको सावशेष-आपत्तियाँ कहते है। (१७)

---

[1] कोरम्से कममें फूट होनेपर सघ-राजी और कोरम् पूरा होनेपर (उसे सघ और तवकी) फूटको सघ-भेद कहते है।

[2] सघकी सम्मति लेकर प्रस्ताव जिन शब्दोमें रखा जाता है उसे अनुश्रावण कहते है।

दुट्ठुल्ल (=दु स्थौल्य)-आपत्तियोको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते है, (१८) अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियोको दुट्ठुल्ल आपत्ति कहते है। वह इन अठारह बातोसे अपकासन (=अननुज्ञात)को विपकासन (=अनुज्ञात) करते है, आवेणि (=स्थानीय सघकी परम्परासे आया)-उपोसथ करते है, आवेणिप्रवारणा करते है, आवेणि-सघ कर्म करते है।—इतनेसे उपालि ! सघ भिन्न (=फूट गया) होता है।" 6

(३) सङ्घ-सामग्रीकी व्याख्या

"भन्ते ! सघ-सामग्री (=सघमे एकता) सघ-सामग्री कही जाती है, कितनेसे भन्ते ! सघ समग्र (=एकताको प्राप्त) कहा जाता है ?"

"उपालि ! जब भिक्षु (१) अधर्मको अधर्म कहते है, (२) धर्मको धर्म कहते है। (३) अविनयको अविनय०, (४) विनयको विनय०। (५) तथागतके अ-भापित=अ-लपितको तथागतका अ-भाषित अ-लपित०, (६) ०भापित=लपितको ० भाषित=लपित०। (७) ० अन्-आचीर्णको अन्-आचीर्ण०, (८) ० आचीर्णको ० आचीर्ण०। (९) ० अ-प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त ०, (१०) ० प्रज्ञप्तको ० प्रज्ञप्त ०। (११) अन्-आपत्तिको अन्-आपत्ति, (१२) आपत्तिको आपत्ति०। (१३) लघुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति, (१४) गुरुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति०। (१५) स-अवशेष आपत्तिको सावशेष-आपत्ति०, (१६) अन्-अवशेष-आपत्तिको अन्-अवशेष-आपत्ति०। (१७) दुट्ठुल्ल-आपत्तिको दुट्ठुल्ल-आपत्ति०, (१८) अ-दुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल-आपत्ति कहते है। वह इन अठारह बातोसे न अपकासन करते है, न विपकासन करते है, न आवेणि-उपोसथ करते है, न आवेणि प्रवारणा करते है, न आवेणि-सघ-कर्म करते है।—इतनेसे उपालि ! सघ समग्र होता है।" 7

§४—नरकगामी, अचिकित्स्य व्यक्ति

(१) सङ्घमे फूट डालनेका पाप

"भन्ते ! समग्र सघको भिन्न (=फूटा) करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! समग्र सघको भिन्न करके कल्पभर रहनेवाला पाप कमाता है, कल्पभर नरकमे रहता है। 8

"सघ-भेदक (पुरुष) कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला होता है।
वर्ग (पार्टीबाजी)मे रत, अ-धर्ममे स्थित (अपने) योग-क्षेमका नाश करता है।
समग्र सघको भिन्न करके कल्प भर नरकमे रहता है" ॥(१६)॥

"भन्ते ! भिन्न सघको समग्र करके वह क्या कमाता है ?"

"उपालि ! भिन्न सघको समग्र करके वह ब्राह्म (=उत्तम) पुण्यको कमाता है, कल्पभर स्वर्गमे आनन्द करता है। 9—

"सघकी समग्रता (=एकता) सुखमय है, और समग्रोका अनुग्रह (भी)।
समग्रतामे रत, धर्ममे स्थित (पुरुष अपने) योग-क्षेमका नाश नही कराता।
सघसे समग्र करके कल्प भर (वह) स्वर्गमे आनद करता है" ॥(१७)॥

(२) कैसा सघमे फूट डालनेवाला नरकगामी और अचिकित्स्य होता है, और कैसा नही

"क्या भन्ते ! सघ-भेदक (=सघमे फूट डालनेवाला), (जोकि) कल्पभर अपाय=नरकमे रहनेवाला है, अचिकित्स्य (=जिसका इलाज नही हो सकता, जो सुधर नही सकता) है ?"

"है, उपालि ! सघ-भेदक ० अ-चिकित्स्य।"

"क्या भन्ते ! सघ भेदक (ऐसा भी) हो सकता है। (जो कि) नही कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य है?"

"हो सकता है, उपालि ! (जो कि) नही कल्प भर ०।"

"भन्ते ! कौनसा सघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, अचिकित्स्य होता है?"

१—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) अ-धर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टि (=धारणा)की फूट (=भेद)मे अधर्म-दृष्टिवाला हो, (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका उपदेश है, इसे ग्रहण करो, इसका व्याख्यान करो। उपालि ! यह (कहनेवाला) सघभेदक कल्प भर अपाय=नरकमे रहनेवाला, अ-चिकित्स्य (=लाइलाज) है। (२) और फिर उपालि ! एक भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है। उस अधर्म दृष्टिके भेदमे धर्म दृष्टिवाला हो, (वैसी)०। (३)० उस अधर्म दृष्टि-भेदमे सदेह युक्त हो, (वैसी)०।

ख "(४) और फिर उपालि ! जो भिक्षु अधर्मको धर्म कहता है, उस अधर्म दृष्टिमे धर्म-दृष्टि-भेदको धारणकर दृष्टिको धारणकर, क्षान्ति=रुचि=भावको रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण करता है—यह धर्म है ०। (५) ० धर्म-दृष्टि-भेदमे धर्म-दृष्टि रखकर ०। (६) ० उस धर्म दृष्टि-भेदमे सन्देह युक्त होकर ०।

ग "(७) ० उस सदेहवाले भेद मे अधर्म दृष्टिवाला होकर ०। (८) ० उस सदेहवाले भेद मे धर्म दृष्टिवाला होकर०। (९) ० उस सदेहवाले भेदमे सदेह-युक्त हो ०।[1]

२—क "उपालि ! जो भिक्षु (१) धर्मको अधर्म कहता है, उस अधर्म-दृष्टिके भेद मे अधर्म दृष्टिवाला हो (वैसी) क्षान्ति=रुचि=भाव रखकर अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—०[1]। (९) ० उस अधर्म-दृष्टिके भेदमे सदेह-युक्त हो ०।

३—क "० (१) अविनयको विनय कहता है, उस अविनय-दृष्टिके भेदमे अविनय दृष्टिवाला हो (वैसी) ०[1]।

४—क "० (१) विनयको अविनय कहता है ०[2]।

५—क "० (१) तथागतके अ-भापित=अ-लपितको तथागतका भाषित=लपित कहता है, ०[3]।

६—क "० (१) ० भापित=लपितको ० अभाषित=अलपित कहता है, ०[3]।

७—क "० (१) ० अन्-आचीर्णको ० आचीर्ण कहता है, ०[3]।

८—क "० (१) ० आचीर्णको ० अन्-आचीर्ण कहता है, ०[3]।

९—क "० (१) ० अ-प्रज्ञप्तको ० प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

१०—क "० (१) ० प्रज्ञप्तको ० अ-प्रज्ञप्त कहता है, ०[3]।

११—क "० (१) अन्-आपत्तिको आपत्ति कहता है, ०[3]।

१२—क "० (१) आपत्तिको अन्-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१३—क "० (१) लघुक-आपत्तिको गुरुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१४—क "० (१) गुरुक-आपत्तिको लघुक-आपत्ति कहता है, ०[3]।

१५—क "० (१) स-अवशेप आपत्तियोको निर्-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१६—क "० (१) निर्-अवशेप आपत्तियोको स-अवशेष आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

१७—क "० (१) दुट्ठुल्ल आपत्तियोको, अ-दुट्ठुल्ल आपत्तियाँ कहता है, ०[3]।

---

[1]देखो ऊपर अठारह। [2]ऊपरकी नव कोटियोको दुहराओ।
[3]पृष्ठ ४९३-९४ के २-१७ तकको भी ऐसेही दुहराना चाहिये।

१८—क "और फिर उपालि जो भिक्षु (१) अदुट्ठुल्ल आपत्तियोंको दुट्ठुल्ल कहता है। उस अधर्म-दृष्टिके भेदमे अधर्म दृष्टि रख, दृष्टि, क्षान्ति=रुचि=भावको रख अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है ० इसका व्याख्यान करो।' उपालि ! यह भी सघ-भेदक ० लाइलाज है।०[1] । (९) ० उस सन्देहवाले भेदमे सदेह युक्त हो० ।" 10

"भन्ते ! कौन सा सघ भेदक न अपायमें=न नरकमें जानेवाला, न (उसमे) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है ?"

१—"उपालि ! जोभिक्षु धर्मको धर्म कहता है। उस धर्म-दृष्टि-भेद (=धर्मके सिद्धान्तके मतभेद)मे धर्म-दृष्टि हो, दृष्टि क्षान्ति=रुचि=भावको न पकळ, अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है० इसका व्याख्यान करो।' उपालि ! यह सघ-भेदक न अपायमे न नरकमे जानेवाला, न (उसमे) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है। ०[1] ।

१८—"उपालि ! जो भिक्षु अदुट्ठुल्ल-आपत्तिको अ-दुट्ठुल्ल आपत्ति कहता है। उस धर्म-दृष्टिभेदमे धर्म-दृष्टि हो, दृष्टि=क्षान्ति=रुचि=भावको न पकळ, अनुश्रावण करता है, शलाका ग्रहण कराता है—'यह धर्म है ० इसका व्याख्यान करो।' उपालि ! यह सघ-भेदक न अपायमें=न नरकमे जानेवाला, न (उसमे) कल्प भर रहनेवाला, न अ-चिकित्स्य होता है।" 11

संघभेदकक्खन्धक समाप्त ॥७॥

---

[1]पृष्ठ ४९३-९४के २-१७ तकको भी ऐसे ही दुहराना चाहिये ।

८—व्रत-स्कन्धक

१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य । २—भोजन-सबधी नियम । ३—भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य । ४—आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम । ५—शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्त्तव्य ।

§१—नवागन्तुक, आवासिक और गमिकके कर्त्तव्य

१—श्रावस्ती

उस समय बुद्ध भगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ पि डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे ।

(१) नवागन्तुकके व्रत

उस समय नवागन्तुक भिक्षु जूता पहिने भी आराममे घुसते थे, छत्ता लगाये भी०, शरीर ढँके (=अवगुंठित) भी०, शिरपर चीवर रक्खे भी० । पीनेके (पानी)से भी पैर धोते थे, (अपनेसे) बृद्ध भिक्षुको भी अभिवादन न करते थे, न (उनसे) शय्या-आसनके लिये पूछते थे । एक नवागन्तुक भिक्षु सूने विहार (=कोठरी)मे घटिका (=साकल) उघाळ, किवाळ खोल एक दम भीतर घुस गया । उसके ऊपर बैठा साँप (उसके) कधेपर गिरा । वह डरके मारे चिल्ला उठा । भिक्षुओने दौळकर उससे पूछा—

"आवुस ! क्यो तू चिल्लाया ?"

तब उस भिक्षुने उन भिक्षुओसे वह बात कह दी ।

जो अल्पेच्छ ० भिक्षु थे, वह हैरान ० होते थे—'कैसे नवागतुक भिक्षु जूता पहिने आराममे घुस जाते है ! ० शय्या-आसनके लिये नही पूछते !!'

उन्होने यह बात भगवान्से कही ।—

"सचमुच भिक्षुओ ! ० ?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

० फटकारकर, भगवान्ने भिक्षुओको सबोधित किया—

"तो भिक्षुओ ! नवागन्तुकोके व्रत (=कर्तव्य)का विधान करता हूँ, जैसे कि नवागन्तुक भिक्षुओको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ ! नवागन्तुक भिक्षुको आराममे प्रवेश करते वक्त जूतेको निकाल, नीचे करके फटफटाकर (हाथमे) ले, छत्तेको उतार, शिरको खोल, शिरके चीवरको कधेपर कर ठीक तरहसे विना जल्दी किये आराममे प्रवेश करना चाहिये ।

"आराममे प्रवेश करते वक्त देखना चाहिये कि कहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण (=आना-

जाना) कर रहे है। उपस्थान-शाला, मडप या वृक्ष-छाया जहाँ आवासिक भिक्षु प्रतिक्रमण कर रहे हो, वहाँ जाकर एक ओर पात्र रखकर, एक ओर चीवर रखकर योग्य आसन ले बैठना चाहिये। पीनेके (पानी) और इस्तेमालके (पानी)को पूछना चाहिये—कौन पीनेका (पानी) है, कौन इस्तेमालका है ? यदि पीनेके (पानी)का प्रयोजन हो तो पानीय लेकर पीना चाहिये। यदि इस्तेमालके (पानी)का प्रयोजन हो तो उसे लेकर पैर धोना चाहिये। पैर धोते वक्त एक हाथसे पानी डालना चाहिये, दूसरे हाथसे पैर धोना चाहिये। उसी हाथसे पानी डालना और उसी हाथसे पैर धोना न करना चाहिये। जूता पोछनेके कपळेको माँगकर जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आवासिक भिक्षु (अपनेसे भिक्षु होनेमे) वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। यदि नवक (=अपनेसे कम समयका भिक्षु) हो तो अभिवादन करवाना चाहिये। (अपने लिये) शयन-आसन (कहाँ है) पूछना चाहिये। गोचर (=भिक्षाके ग्राम) पूछना चाहिये, अ-गोचर०, शैक्ष स म्मत[1] कुलोको०, पाखानेका स्थान (=वच्चट्ठान)०, पेसावका स्थान (=पस्सावट्ठान)०, पीनेका (पानी)०, धोनेका पानी (=परिभोजनीय)०, कत्तरदड (=बैशाखी)०, सघके कतिक सस्थान (=स्थानीय नियमकी बाते)०, (कतिक-सस्थानमे) किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय निकलना चाहिये (—पूछना चाहिये)। यदि विहार (बहुत समयसे)खाली रहा हो, तो किवाळको खटखटाकर थोळी देर ठहरना, घटिका (=घरन्)को उघाळ, किवाळको खोल बाहर खळे ही खळे देखना चाहिये। यदि विहार साफ न हो, चारपाईपर चाँदी रक्खी हो, चौकीपर चौकी रक्खी हो, ऊपर शयनासन (=शय्या, आसन) जमा कर दिया गया हो, तो यदि कर सकता हो, तो साफ करना चाहिये।

"विहार साफ करते वक्त पहिले भूमिके फर्शको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। (चारपाईके पाये)के ओरको हटाकर एक ओर रखना चाहिये। तकिये-गद्दे को०। आसन, बिछौनेकी चद्दरको०। चारपाईको नवाकर बिना रगळे ठीकसे बिना किवाळसे टकराये ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। चौकी (=पीठ)को नवाकर बिना रगळे, बिना किवाळसे टकराये, ठीकसे निकालकर एक ओर रखना चाहिये। ०[2] सिरहानेके पटरे (=ओठँगनेके पटरे)को धूपमे तपा, साफकर ले आकर उसके स्थानपर रखना चाहये। पात्र-चीवरको रखना चाहिये। पात्रको रखते वक्त एक हाथमे पात्र ले, दूसरे हाथसे नीचे चारपाई या चौकीको टटोलकर पात्र रखना चाहिये। बिना ढँकी भूमिपर पात्र नही रखना चाहिये। चीवरको रखते वक्त एक हाथमे चीवर ले, दूसरे हाथसे चीवर (टाँगने)के बाँस, चीवर (टाँगने)की रस्सीको झाळकर पहली ओर पिछले छोर और उरली ओर शिरको करके चीवर रखना चाहिये।

"यदि धूलि लिये पुरवा हवा चल रही हो,०[2] यदि पाखानेकी मटकीमे पानी न हो, तो पानी भर कर रखना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह नवागन्तुक भिक्षुओका व्रत है, जैसे कि आगन्तुक भिक्षुओको वर्तना चाहिये।" 1

(२) आवासिकके व्रत

उस समय आवासिक भिक्षु आगन्तुक भिक्षुओको देख नही आसन देते थे, न पैर धोनेका जल (=पादोदक), न पादपीठ, न पादकठलिक (=पैर घिसनेकी लकळी) रखते थे। न अगवानी करके

---

[1]परम श्रद्धालू किन्तु अत्यन्त दरिद्र कुल, जिनके कष्टको ख्यालकर भिक्षुको उनके घर भिक्षा माँगनेके लिये नही जाना चाहिये।

[2]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)।

पात्र-चीवर ग्रहण करते थे। न पीनेके (पानी) के लिये पूछते थे। (अपनेसे) वृद्ध आगन्तुक भिक्षुका अभिवादन नही करते थे। न शय्या-आसन प्रज्ञापन (=बिछाना) करते थे। जो अल्पेच्छ ० भिक्ष थे, वह हैरान ० होते थे—० । ०—

"तो भिक्षुओ! आवासिकोके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आवासिक भिक्षुओको वर्तना चाहिये—

"भिक्षुओ! यदि आगन्तुक भिक्षु अपनेसे वृद्ध हो, तो आसन प्रदान करना चाहिये, पादोदक, पाद-पीठ, पाद-कठलिक पास रखना चाहिये। अगवानी करके पात्र-चीवर ग्रहण करना चाहिये। पीनेके (पानी)के लिये पूछना चाहिये। यदि सकता हो (बीमार आदि न हो) तो जूता पोछना चाहिये। जूता पोछते वक्त पहिले सूखे कपळेसे पोछना चाहिये, पीछे गीलेसे। जूता पोछनेके कपळेको धोकर एक ओर रख देना चाहिये। यदि आगन्तुक भिक्षु वृद्ध हो, तो अभिवादन करना चाहिये। शयन-आसन बतलाना चाहिये। गोचर०, अ-गोचर०, शैक्ष-सम्मत कुलोको०, ०[1] सघका कतिक-सस्थान (=स्थानीय नियमकी बाते) वतलानी चाहिये—किस समय प्रवेश करना चाहिये, किस समय जाना चाहिये। शयन-आसन वतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। (अधिक समयसे) वास किया है या वास नही किया है—यह बतलाना चाहिये। यदि आगन्तुक (भिक्षु) नवक (=नवही) है, तो अभिवादन करने देना चाहिये, शयन-आसन वतलाना चाहिये—यह आपके लिये शयन-आसन है। ०[1]किस समय जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आवासिक भिक्षुओके व्रत है, ०।" 2

(३) गमिक[2] के व्रत

उस समय गमिक भिक्षु लकळी-मिट्टीके बर्तनोको बिना सँभाले, खिळकी, दर्वाजेको खोले ही छोळ शयन-आसनके लिये पूछे (=सँभलवाये) बिना चले जाते थे। लकळी-मिट्टीका बर्तन नष्ट हो जाता था। शयन-आसन अ-रक्षित होता था। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु थे, वह हैरान० होते थे—० ।०।—

"तो भिक्षुओ! गमिक[2] भिक्षुओके व्रतको बतलाता हूँ, जैसे कि गमिक भिक्षुओको बर्तना चाहिये। भिक्षुओ! गमिक भिक्षुको लकळी-मिट्टीके बर्तनको सँभालकर, खिळकी दर्वाजोको बन्दकर शयन-आसन के लिये पूछकर जाना चाहिये। यदि भिक्षु न हो तो श्रामणेरसे पूछना चाहिये, यदि श्रामणेर न हो तो आरामिक (=आरामके सेवक)को पूछना चाहिये। यदि भिक्षु हो, न श्रामणेर ही, न आरामिक ही, तो चार पत्थरोपर चारपाईको बिछाकर, चारपाईपर, चारपाई, चौकीपर चौकी रखकर ऊपर शयन-आसनको जमा करे। लकळी-मिट्टीके बर्तनोको सँभालकर, खिळकी-दर्वाजोको वन्द करके जाना चाहिये। यदि विहार चूता है, तो समर्थ होनेपर छा देना चाहिये, या (उसके लिये) यत्न करना चाहिये —जिसमे विहार छा जाये। यदि ऐसा हो सके तो ठीक, यदि न हो सके, तो जिस स्थानपर न चूता हो वहाँ चार पत्थरोपर चारपाईको विछाकर,० खिळकी-दर्वाजोको वन्द करके जाना चाहिये। यदि सारा ही विहार चूता हो, तो यदि समर्थ हो, तो शयन-आसनको गाँवमे ले जाना चाहिये, या प्रयत्न करना चाहिये, जिसमे कि शयन-आसन गाँवमे चला जाये। यदि ऐसा करनेको मिले तो ठीक, न मिले, तो चार पत्थरो पर चारपाईको बिछाकर०[3] लकळी-मिट्टीके वर्तनोको सँभाल, घास या पत्तेसे ढाँककर जाना चाहिये, जिसमे कि कुछ भाग तो बच जाये। भिक्षुओ! यह गमिक भिक्षुओका व्रत है, ०।"

---

[1]देखो पृष्ठ ४९८।
[2]यात्रापर जानेवाला।
[3]देखो ऊपर।

§२—भोजन-सम्बन्धी नियम

(१) भोजनका अनुमोदन

उस समय भिक्षु भोजके समय (दानका) अनुमोदन न करते थे। लोग हैरान० होते थे—कैसे शाक्यपुत्रीय श्रमण भोजनके समय अनुमोदन नही करते।' भिक्षुओने० सुना। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक-कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भोजनके समय अनुमोदन करनेकी।"

तब उन भिक्षुओको यह हुआ—किसे भोजनके समय अनुमोदन करना चाहिये। भगवान्से यह बात कही।०—

(२) भोजनके समयके नियम

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, स्थविर (=वृद्ध) भिक्षुको अनुमोदन करनेकी।"

उस समय एक पूग (=बनियोका समुदाय)ने सघको भोज दिया था। आयुष्मान् सारिपुत्र सघ-स्थविर (=सघमे सबसे पुराने भिक्षु) थे। भिक्षु—स्थविर भिक्षुको भगवान्ने भोजनके समय अनुमोदन करनेकी अनुमति दी है—(सोच) आयुष्मान् सारिपुत्रको अकेले छोळ चले गये। तब आयुष्मान् सारिपुत्र उन मनुष्योसे (दानका) अनुमोदनकर पीछे अकेले ही चले। भगवान्ने आयुष्मान् सारिपुत्रको दूरसे ही आते देखा। देखकर आयुष्मान् सारिपुत्रसे यह कहा—

"सारिपुत्र! भोजन ठीक तो हुआ?"

"भोजन ठीक हुआ, भन्ते! मुझे भन्ते! अकेले छोळ भिक्षु चले आये।"

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भोजनकी पाँतमे चार पाँच (उपसपदाके क्रमसे) स्थविरो अनु-स्थविरोको (अनुमोदन कर लेने तक) प्रतीक्षा करनेकी।"

उस समय एक स्थविरने शौचकी इच्छा रहते प्रतीक्षा की। शौचको वह रोकते मूर्छित हो गिर पळा। भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, काम होनेपर अपने बादवाले भिक्षुको पूछकर जानेकी।"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बिना ठीकसे पहिने-ढँके भोजनकी पाँतमे जाते थे। स्थविर भिक्षुओको भी धक्का देकर बैठते थे, नवक भिक्षुओको भी आसनसे रोकते थे। सघाटीको भी बिछाकर बैठते थे।० ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओके व्रतका विधान करता हूँ—जैसे कि भिक्षुओको भोजनकी पाँतमे वर्तना चाहिये।

"यदि आराममे कालकी सूचना आई हो, तो तीनो मडलोको ढाँकते[1] परिमडल[2] (चीवर) पहिन कमरबन्द (=काय-बन्धन)को बाँध, चौपेत (=सगुण)कर सघाटीको पहिन, मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीकसे—बिना जल्दीके गाँवमे प्रवेश करना चाहिये। आगे बढकर स्थविर भिक्षुओके आगे आगे नही जाना चाहिये।

"(गृहस्थोके)[1] घरके भीतर सुप्रतिच्छन्न (=अच्छी तरह ढँके शरीरवाला) होकर जाना

---

[1]भिक्खु पातिमोक्ख §७।२ (पृष्ठ ३३)।
[2]देखो भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

चाहिये, खूब सयम (=सुसवर)के साथ०, नीची निगाह करके०, शरीरको उतान नही करके घरके भीतर जाना चाहिये, उज्जग्घिका (=हँसी, मजाक)के साथ नही०, चुपचाप घरमे जाना चाहिये, देह भाँजते नही०, बाँह भाँजते नही, शिर हिलाते नही०, खम्भेकी तरह खळे नही०, (देहको) अवगुठित (किये) नही०, निहुरे नही, (गृहस्थके) घरके भीतर जाना चाहिये। सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर बैठना चाहिये, खूब सयमके साथ०, नीची निगाह करके, ०, अवगुण्ठित नही०, पलथी मारकर नही०, स्थविर भिक्षुओको धक्का देकर नही०, नये भिक्षुओको आसनसे हटाकर नही बैठना चाहिये, सघाटी बिछाकर नही बैठना चाहिये, पानी लेते वक्त दोनो हाथसे पात्र पकळ पानीको लेना चाहिये। नवाकर अच्छी तरह बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेकनेका बर्तन (=उदक-प्रतिग्राहक) हो, तो नवाकर (धोये पानी)को उदक-प्रतिग्राहकमे डाल देना चाहिये, उदक-प्रतिग्राहकको नही भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक नही हो तो नीचे करके भूमिपर पानी डालना चाहिये, जिसमे कि पासके भिक्षुओपर पानीका छीटा न पळे, सघाटीपर पानीका छीटा न पळे। भात परोसते वक्त दोनो हाथोसे पात्र को पकळकर भातको लेना चाहिये, सूप (=तेमन)के लिये जगह बनानी चाहिये। यदि घी, तेल या उत्तरिभग (=पीछेका स्वादिष्ट भोजन) हो तो स्थविरको कहना चाहिये—सबको बराबर दीजिये। सत्कारपूर्वक भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते भिक्षान्नको ग्रहण करना चाहिये। मात्राके अनुसार सूपके साथ भिक्षान्नको०। समतल (रक्खे) भिक्षान्नको०। जब तक सबको भात नही पहुँच जाये, स्थविरको नही खाना चाहिये। सत्कारके साथ भिक्षान्नको खाना चाहिये, पात्रकी ओर ख्याल रखते०। एक ओरसे०। मात्राके अनुसार सूपके साथ० ।

"पिंड[1] (=स्तूप=पुरिया)को मीज मीजकर नही खाना चाहिये।
अधिककी इच्छासे दाल या भाजी (=व्यजन)को भातसे नही ढाँकना चाहिये।
नीरोग होते अपने लिये दाल या भातको माँगकर नही भोजन करना चाहिये।
न अवज्ञा (=उञ्झान)के ख्यालसे दूसरेके पात्रको देखना चाहिये।
न बहुत बळा ग्रास बनाना चाहिये।
ग्रासको गोल बनाना चाहिये।
ग्रासको बिना मुख तक लाये मुखके द्वारको नही खोलना चाहिये।
भोजन करते समय सारे हाथको मुँहमे नही डालना चाहिये ।
ग्रास पळे मुखसे बात नही करनी चाहिये ।
ग्रासको उछाल उछालकर नही खाना चाहिये।
ग्रासको काट काटकर नही खाना चाहिये।
गाल फुला फुलाकर नही खाना चाहिये।
हाथ झाळ झाळकर नही खाना चाहिये ।
जूठ बिखेर बिखेरकर नही खाना चाहिये ।
जीभ निकाल निकालकर नही खाना चाहिये।
चप चपकर नही खाना चाहिये।
सुळसुळाकर नही खाना चाहिये।
हाथ चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

---

[1] मिलाओ भिक्खु-पातिमोक्ख §७।३ (पृष्ठ ३४)।

पात्र चाट चाटकर नही खाना चाहिये ।

ओठ चाट चाटकर नही खाना चाहिये।

जूठ लगे हाथसे पानीका बर्तन नही पकळना चाहिये।

जब तक सब न खा चुकें, (सघके) स्थविरको पानी नही लेना चाहिये।

पानी दिये जाते वक्त दोनो हाथोसे पात्रको पकळकर पानी लेना चाहिये।

"नवा कर बिना घँसे पात्रको धोना चाहिये। यदि पानी फेकनेका बर्तन हो, तो नवाकर उसे बर्तनमे डाल देना चाहिये। उदक प्रतिग्राहक (=पानी छोळनेके बर्तन)को नही भिगोना चाहिये। यदि उदक-प्रतिग्राहक न हो, तो नवाकर भूमिपर पानी डाल देना चाहिये, जिसमे कि पासके भिक्षुओपर पानीका छीटा न पळे। सघाटीपर पानीका छीटा न पळे।

"जूठे सहित पात्रके धोवनको घरके भीतर नही फेकना चाहिये।

लौटते वक्त नवक भिक्षुओको पहिले लौटना चाहिये, स्थविर भिक्षुओको पीछे।

सुप्रतिच्छन्न हो (गृहस्थके) घरमे जाना चाहिये।०[1]

निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये।

"भिक्षुओ! भोजनकी पाँतके लिये भिक्षुओका यह व्रत है, जैसे कि भिक्षुओको भोजनके समय वर्तना चाहिये।"[1]

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§२–भिक्षाचारी और आरण्यकके कर्त्तव्य

(१) भिक्षाचारी (=पिंडचारिक)के व्रत

उस समय पिंडचारिक[2] भिक्षु बिना ठीकसे पहिने—ढँके बुरी सूरतमे पिंडचार(=भिक्षाचार) करते थे। बिना जाने भी घरके भीतर प्रवेश करते थे। बिना जाने निकलते थे। बळी जल्दी जल्दी घरमे प्रवेश करते थे, बळी जल्दी (घरसे) निकलते थे। बहुत दूर भी खळे होते थे, बहुत समीप भी खडे होते थे। बहुत देर तक (भिक्षाके लिये द्वारपर) खळे रहते थे, बहुत जल्दी भी लौट पळते थे। एक पिंडचारिक पुरुषने बिना जाने घरके भीतर प्रवेश किया। द्वार समझते हुए वह एक कमरे मे चला गया। उस कमरेमे (कोई) स्त्री नगी उतान लेटी हुई थी। उस भिक्षुने उस स्त्रीको नगे उतान लेटे देखा। देखकर—यह द्वार नही है, कमरा है—(सोच) उस कमरेसे निकल आया। उस स्त्रीके पतिने उसे नगे उतान लेटी देखा। इस भिक्षुने मेरी स्त्रीको दूषित किया—(सोच) उसने उस भिक्षुको पकळकर पीटा। तब उस स्त्री ने (मारकी) आवाजसे जागकर उस पुरुषसे यह कहा—

"किसलिये आर्य! तुम इस भिक्षुको पीटते हो?"

"इस भिक्षुने तुझे दूषित किया है।"

"आर्य! इस भिक्षुने मुझे दूषित नही किया। इस भिक्षुने कुछ नही किया।"—(कह) उस भिक्षुको छुळवा दिया।

तब उस भिक्षुने आराममे जाकर यह बात भिक्षुओसे कही।

०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

---

[1] देखो पिछले पृष्ठ (५००) पर।

[2] भिक्षाके लिये गाँवमें घूमनेवाला।

"तो भिक्षुओ ! पिडचारिक भिक्षुओके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि पिडचारिक भिक्षुओको वर्तना चाहिये। भिक्षुओ ! पिडचारिक भिक्षुको ग्राममे प्रवेश करते समय तीनो मडलोको ढाँकते परिमडल (चीवर) पहिन, कमरबन्दको बाँध चौपेतकर सघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीक से—विना जल्दीके गाँवमे प्रवेश करना चाहिये०[१]।

"निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये ।

"घरमे प्रवेश करते समय—इससे प्रवेश करूँगा, इससे निकलूँगा—यह सोच लेना चाहिये। वहुत जल्दीमे नही प्रवेश करना चाहिये ।

"वहुत जल्दीमे नही निकलना चाहिये।

न वहुत दूर खळा होना चाहिये।

न वहुत समीप खळा होना चाहिये ।

न बहुत देर तक खळा रहना चाहिये ।

न बहुत जल्द लौट जाना चाहिये ।

"खळे रहते समय जानना चाहिये, कि (घरवाली) भिक्षा देना चाहती है, या नही देना चाहती। यदि (हाथका) काम छोळ देती है, आसनसे उठती है, कलछी पकळती है, वर्तन पकळती या रखती है, तो देना चाहती सी है (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा देते वक्त बाये हाथसे सघाटी हटाकर, दाहिने हाथसे पात्रको निकाल, दोनो हाथोसे पात्रको पकळ, भिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

"भिक्षा देनेवालीके मुँहकी ओर नही देखना चाहिये।

"ख्याल करना चाहिये, सूप (=दाल)को देना चाहती है या नही देना चाहती। यदि कलछी पकळती है, वर्तनको पकळती या रखती है, तो देना चाहती है, (सोच) खळा रहना चाहिये।

"भिक्षा दे दी जानेपर सघाटीसे पात्रको ढाँक, अच्छी तरह—विना जल्दीके लौटना चाहिये।

"सुप्रतिच्छन्न हो घरके भीतर जाना चाहिये। ०३

निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पहिले लौटे, उसे आसन विछाना चाहिये, पादोदक पाद-पीट, पाद-कठलिक रखने चाहिये। कूळे (=अवक्कार)की थाली धोकर रखना चाहिये। पीनेके और धोनेके (पानी)को रखना चाहिये।

"जो गाँवसे भिक्षा लेकर पीछे लौटे, (वह) भोजन (मेसे जो) वचा हो, यदि चाहे, तो खाये, यदि नही चाहे तो (ऐसे) स्थानमे, जहाँ हरियाली न हो छोळ दे, या प्राणीरहति पानीमे छोळ दे। (वह) आसनोको समेटे। पीनेके पानीको समेटे। कूळेकी थाली धोकर समेटे। खानेकी जगहपर झाळू दे। पानीके घळे, पीनेके घळे या पाखानेके घळेमे जिसे खाली देखे, उसे (भरकर) रख दे। यदि वह उससे होने लायक नही हो, तो हाथके इशारेसे, हाथके सकेतसे दूसरेको वुलाकर पानीके घळेको (भरकर) रखवा दे। उसके लिये वाग्-युद्ध नही करना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह पिडचारिक भिक्षुओके व्रत है, ०।" 4

(२) आरण्यकके व्रत

उस समय वहुतसे भिक्षु अरण्यमे विहार करते थे। वह न पीनेके या धोनेके (पानी)को उपस्थित रखते थे, न आगको उपस्थित रखते थे। न अ र णी के साथ०। न नक्षत्रो (=तारो)के मार्गको जानते

---

[१]देखो पीछे ८§२।२ (पृष्ठ ५००)।

थे। न दिशाओको जानते थे। चोरोने जाकर उन भिक्षुओसे यह कहा—

"भन्ते! पीनेका (पानी) है?"

"नही है, आवुसो!"

"भन्ते! धोनेका (पानी) है?"

"नही है, आवुसो!"

"भन्ते! आग है?"

"नही है, आवुसो!"

"भन्ते! अरणीका सामान है?"

"नही है, आवुसो!"

"भन्ते! नक्षत्रोका मार्ग (मालूम) है?"

"नही जानते, आवुसो!"

"भन्ते! दिशा (मालूम) है?"

"नही जानते, आवुसो!"

भन्ते! आज किस (तारे)से युक्त (चन्द्रमा) है?"

"नही जानते, आवुसो!"

तब उन चोरोने—न इनके पास पीनेका (पानी) है० न दिशाको जानते है—कह (सोच)—यह चोर है भिक्षु नही है—(कह) पीटकर चले गये।

तब उन भिक्षुओने यह बात भिक्षुओसे कही। उन भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही।०—

"तो भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुओके व्रतका विधान करता हूँ, जैसे कि आरण्यक भिक्षुओको वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको समयसे उठकर पात्रको थैलेमे रख कधेपर लटका चीवरको कधेपर रख जूता पहिन, लकळी-मिट्टीके वर्तन सँभाल, खिळकी-दर्वाजोको बन्दकर, शयन-आसनसे उतरना चाहिये। अब गाँवमे प्रवेश करना है—(सोच)जूता उतार नीचेकर फटफटाकर थैलेमे रख कधेसे लटका तीनो मडलोको ढाँकते परिमडल (चीवर) पहिन कमरबन्दको बाँध चौपेतकर सघाटीको पहिन मुद्धी दे, धोकर पात्र ले ठीकसे—विना जल्दीके गाँवमे प्रवेश करना चाहिये०[1]।

"निहुरे नही घरके भीतर जाना चाहिये।

"गाँवसे निकलकर पात्रको थैलेमे रख कधेसे लटका, चीवरको समेट शिरपर कर, जूता पहिन चलना चाहिये।

"भिक्षुओ! आरण्यक भिक्षुको पीने धोनेके पानीको रखना चाहिये। आग रखनी चाहिये। (सामान-) सहित अरणी रखनी चाहिये। कत्तरदड (=वैसाखी) रखना चाहिये। सभी या कुछ नक्षत्रोके मार्ग सीखने चाहिये।०[2] दिशाओका जाननेवाला होना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आरण्यक भिक्षुओके व्रत है, जैसे०।" 5

§४–आसन, स्नानगृह और पाखानेके नियम

(१) शयन-आसनके व्रत

उस समय बहुतसे भिक्षु खुली जगहमे चीवर (सीने)का काम कर रहे थे। षड्वर्गीय भिक्षुओ

---

[1]देखो पीछे ८§२।२ पृष्ठ ५००।　　[2]देखो ऊपर।

ने आँगनमें हवाके रुग्न शय्या-आसन फटफटाये। भिक्षु धूलसे भर गये। ०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओके लिये शयन-आसनका व्रत वतलाता हूँ, जैसेकि भिक्षुओको शयन-आसनके सबधमे वर्तना चाहिये।

"जिस विहारमे भिक्षु वास करता है, यदि वह विहार साफ न हो, और समर्थ हो तो साफ करना चाहिये। विहारकी सफाई करते वक्त पहिले पात्र-चीवर निकालकर, एक ओर रखना चाहिये०[1] यदि पाखानेकी मटकीमे जल न हो०।

"यदि वृद्धके साथ एक विहारमे रहना हो, तो वृद्धसे विना पूछे उद्देश नही (=प्रस्ताव) देना चाहिये, परिपृच्छा (=प्रश्न पूछना) नही देनी चाहिये, स्वाध्याय (=सूत्रोका ऊँचे स्वर से पाठ) नही करना चाहिये, न धर्म-भापण करना चाहिये, न दीपक जलाना चाहिये, न दीपक बुझाना चाहिये, न खिळकी खोलनी चाहिये, न खिळकी वन्द करनी चाहिये। यदि वृद्धके साथ एकही चक्रम (=टहलनेके स्थान) पर टहलता हो, तो जिधर वृद्ध टहलता हो, उधरसे घूम जाना चाहिये। वृद्धकी सघाटीके कोनेको नही रगळना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओके शयन-आसनके व्रत है, जैसे०।" 6

(२) जन्ताघर[2]के व्रत

उस समय ष ड् व र्गी य भिक्षु स्थविर भिक्षुओके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमे वहुतसा काष्ठ रख आग डाल द्वार वन्दकर वाहर वैठते थे। भिक्षु गर्मीसे तप्त हो (निकलनेके लिये) द्वार न पा मूर्छित हो गिर पळते थे। ०अल्पेच्छ०भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ! स्थविर भिक्षुओके निवारण करनेपर भी अनादर करनेके लिये जन्ताघरमे वहुतसा काष्ठ रखकर आग न डालनी चाहिये, जो दे उसे दुक्कटका दोष हो।

"भिक्षुओ! द्वार वन्दकर वाहर न वैठना चाहिये, जो वैठे उसे दुक्कटका दोष हो।

"तो भिक्षुओ! भिक्षुओको जन्ताघरका व्रत प्रज्ञापन करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओको जन्ताघरमे वर्तना चाहिये।

"जो पहिले जन्ताघरमे जाये, यदि राख जमा हो, तो उसे फेंक देना चाहिये। यदि जन्ताघर मैला हो, तो जन्ताघरमे झाळू देना चाहिये। यदि परिभड (=गच) मैला हो, तो परिभडमे झाळू देना चाहिये। यदि परिवेण (=आँगन) मैला हो०। यदि कोष्ठक (=कोठरी) मैला हो०। यदि जन्ताघर-शाला मैली हो०। (स्नानके) चूर्णको भिगोना चाहिये, मिट्टीको भिगोना चाहिये। पानीकी द्रोणी (=टब्)मे पानी भरना चाहिये। जन्ताघरमे प्रवेश करना चाहिये। जताघरमे प्रवेश करते समय मुखको ले मिट्टी मल, आगे पीछे ढाँककर जताघरके पीठ (=चौकी या पीढा)पर जताघरमे प्रवेश करना चाहिये। स्थविर भिक्षुओको धक्का देते नही वैठना चाहिये। (अपनेसे पीछे-पीछे नये भिक्षुओको आसनसे नही उठाना चाहिये। यदि सकना हो, तो जताघरमे (नहाते) स्थविर भिक्षुओका शरीर मलना चाहिये। जताघरसे निकलते समय, जताघरके पीठको लेकर आगे पीछे (वाले शरीरको) ढाँक कर . निकलना चाहिये। यदि सके तो पानीमे भी स्थविर भिक्षुओका शरीर मलना चाहिये। स्थविर भिक्षुओके आगे नहाना चाहिये, ऊपर नही नहाना चाहिये। नहाकर निकलते वक्त भीतर उतरनेवालोको रास्ता देना चाहिये। जो पीछे जताघरसे निकले, यदि जन्ताघरम कीचळ हो गया हो, (तो वह उसे) धोये, मिट्टीसे द्रोणीको धोकर जन्ताघरके पीठको सभाल आगको बुझा

---

[1]देखो महावग्ग पृष्ठ १०१–२। [2]स्नानगृह।

द्वार बंद कर जाना चाहिये।

"भिक्षुओ ! यह भिक्षुओका जन्ताघर-व्रत है, जैसे कि०।" 7

(३) वच्चकुटी[1]का व्रत

उस समय ब्राह्मण जातिका एक ब्राह्मण शौच हो पानी नही लेना चाहता था (यह ख्याल कर कि) कौन इस वृषल (=नीच) दुर्गंधको छुयेगा। उसके शौच-मार्गमे कीळे रहते थे। तब उस भिक्षुने भिक्षुओसे यह बात कही।

"क्या तू आवुस ! शौच हो पानी नही लेता ?"

"हाँ, आवुसो !"

०अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"भिक्षुओ ! शौच हो, पानी रहते, बिना पानी छुये नही रहना चाहिये, जो पानी न छुये उसे दुक्कटका दोष हो।"

उस समय भिक्षु पाखानेमे बृद्धताके अनुसार शौच करते थे। नये (हुये) भिक्षु पहिले ही आकर शौचके लिये इन्तिजार करते थे। रोकनेमे मूर्छित हो गिर पळते थे। भगवान्‌से यह बात कही।—

"सचमुच, भिक्षुओ ! ०?"

"(हाँ) सचमुच भगवान् !"

०फटकारकर भगवान्‌ने धार्मिक कथा कह भिक्षुओको संबोधित किया—

"भिक्षुओ ! पाखानेमे बुड्ढपनके अनुसार शौच नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो। अनुमति देता हूँ भिक्षुओ ! आनेके क्रमसे शौच होनेकी।"

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु बहुत शीघ्रतासे पाखानेमे जाते थे, पाखाना होते (=उब्भिज्जित्वा) भी०। गिरते पळते भी शौच होते थे। दातवन करते भी०। पाखाने के द्रोण (=गमला) के बाहर भी०। पेसावके द्रोणक (=नाली)के बाहर भी पेशाव करते थे। पेसावकी दोनीमे भी थूकते थे। कठोर काठसे अपलेखन (=पोछना) करते थे। अपलेखके काष्ठको सडासमें डाल देते थे। बळी शीघ्रतासे (दौळते हुये) पाखानेसे निकलते थे। शौच होते ही निकलते थे। चपचप करते पानी छूते थे। पानी छूनेके शराव (=कुल्हिया) मे भी पानी छोळ देते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु०।०।—

"तो भिक्षुओ ! भिक्षुओको वच्चकुटी (=पाखाने)का व्रत प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि भिक्षुओ को वच्चकुटीमे वर्तना चाहिये।

"जो वच्चकुटी जाये, बाहर खळे हो उसे खाँसना चाहिये। भीतर बैठेको भी खाँसना चाहिये। चीवर (टाँगने)के बाँस या रस्सीपर चीवरको रख, अच्छी तरह—बिना त्वराके पाखानेमे जाना चाहिये। न बहुत जल्दीसे प्रवेश करना चाहिये, न शौच होते प्रवेश करना चाहिये। पाखानेके पायदान-पर बैठकर शौच करना चाहिये। हिलते हुये नही शौच करना चाहिये। दातवन करते नही०। पाखानेकी नालीके बाहर नही०। पेशाबकी नालीके बाहर नही पेसाव करना चाहिये।० पेसावकी नालीमे थूक नही फेंकना चाहिये। कठोर काष्ठसे अपलेखन नही करना चाहिये। अपलेखनको सडासमे नही डालना चाहिये। पाखानेके पायदानपर खळे हो (अपने शरीरको) ढाँक लेना चाहिये। बहुत जल्दी मे नही निकलना चाहिये। न कूद कर निकलना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर स्थित हो अविज्जन (=जल-सिंचन) करना चाहिये। चप-चप करते पानी नही छूना चाहिये।

---

[1]पाखाना।

पानी छूनेके शरावमे पानी नही छोळ डालना चाहिये। पानी छूनेके पायदानपर खळे हो ढाक लेना चाहिये। यदि पाखाना गदा हो गया हो तो धो देना चाहिये। यदि अपलेखन (काष्ठ फेंकने)की टोकरी पूरी हो गई हो, तो अपलेखन काष्ठको फेक देना चाहिये। यदि वच्चकुटीमे उकलाय हो, तो झाळ देना चाहिये। यदि परिभण्ड०। यदि परिवेण उकलाप हो तो परिवेणको झाळ देना चाहिये। यदि कोष्ठक गदा हो, तो० झाळ देना चाहिये। यदि पानी छूनेके घळे मे पानी न हो, तो (उसमे) पानी भर देना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह भिक्षुओका वच्चकुटीका व्रत है, जैसे कि०।" 8

§५-शिष्य-उपाध्याय, अन्तेवासी-आचार्यके कर्तव्य

(१) शिष्य-व्रत[1]

उस समय शिष्य उपाध्यायके साथ ठीकसे वर्ताव न करते थे।

०अल्पेच्छ०।०।—

"तो भिक्षुओ! शिष्योका उपाध्यायोके प्रति व्रत प्रज्ञापित करते है, जैसे कि शिष्योको उपाध्यायोके प्रति वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ!—शिष्यको उपाध्यायके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यका उपाध्यायके प्रति व्रत, जैसे कि०।" 9

(२) उपाध्याय-व्रत[2]

उस समय (१) उपाध्याय शिष्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [1]अल्पेच्छ०।०—

"तो भिक्षुओ! शिष्यके प्रति उपाध्यायके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि उपाध्यायोको शिष्योके साथ वर्तना चाहिये। ०

"भिक्षुओ! यह उपाध्यायका शिष्यके प्रति व्रत है, जैसे कि०।" 10

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) अन्तेवासी-व्रत[3]

उस समय अन्तेवासी (=शिष्य) आचार्योके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे। [2]अल्पेच्छ० भिक्षु ०।०।—

"तो भिक्षुओ! आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ, जैसे कि अन्तेवासीको आचार्यके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! अन्तेवासीको आचार्यके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह आचार्यके प्रति अन्तेवासीके व्रत है, जैसे कि०।" 11

(४) आचार्य-व्रत[4]

उस समय आचार्य अन्तेवासियोके साथ अच्छा वर्ताव न करते थे।० अल्पेच्छ० भिक्षु[3]।०।—

"तो भिक्षुओ! अन्तेवासीके प्रति आचार्यके व्रतको प्रज्ञापित करता हूँ जैसे कि आचार्यको

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ १०२)। [2]देखो महावग्ग १§२।२ (पृष्ठ १०३)।
[3]देखो महावग्ग १§२।८ (पृष्ठ १०९)। [4]देखो महावग्ग १§२।९ (पृष्ठ ११०)।

अन्तेवासीके साथ वर्तना चाहिये।

"भिक्षुओ! आचार्यको अन्तेवासीके साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये।

"भिक्षुओ! यह शिष्यके प्रति आचार्यका व्रत है, जैसे कि[1]।" 12

अष्टम वत्तक्खन्धक समाप्त[2] ॥८॥

---

[1]देखो महावग्ग १§२।१ (पृष्ठ१०२)।

[2]अन्तमें पाँच गाथायें हैं—जो व्रतको नही पूरा करता, वह शीलको नही पूरा करता।
अशुद्धशील दुष्प्रज्ञ (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको नही प्राप्त होता ॥(१)॥
विक्षिप्त चित्त एकाग्रता रहित (पुरुष) ठीकसे धर्मको नही देखता।
सद्धर्मको विना देखे दु:खसे नही छूट सकता ॥(२)
व्रतको पूरा करनेवाला शीलको भी पूरा करता है।
विशुद्धशील प्रज्ञावान् (पुरुष) चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होता है ॥(३)॥
अ-विक्षिप्त चित्त एकाग्रता युक्त (पुरुष) ठीकसे धर्मको देखता है।
सद्धर्मको देखकर वह दु:खसे छूट जाता है ॥(४)॥
इसलिये चतुर जिन-पुत्र (=बौद्ध) व्रतको पूरा करे।
(यह) श्रेष्ठ बुद्धका उपदेश है उससे निर्वाणको प्राप्त होगा ॥(५)॥

९—प्रातिमोक्ष-स्थापन स्कन्धक

१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये ? २—नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना। ३—अपराध योंही स्वीकारना, और दोषारोप।

§१—किसका प्रातिमोक्ष स्थगित करना चाहिये

१—श्रावस्ती

(१) उपोसथमें पापी भिक्षु

उस समय बुद्ध भगवान् श्रावस्तीमें मृगार माता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते थे।

उस समय भगवान् उपोसथके दिन भिक्षु-संघके साथ बैठे थे। तब आयुष्मान् आनन्द रात चली जानेपर, प्रथम याम बीत जानेपर उत्तरासंगको एक कंधेपर कर जिधर भगवान् थे, उधर हाथ जोळ भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! रात चली गई, पहिला याम बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश (=० पाठ) करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और) रात चली जानेपर बिचले यामके भी बीत जानेपर दूसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! रात चली गई। बिचला याम भी बीत गया। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये पातिमोक्ष-उद्देश करें।"

ऐसा कहनेपर भगवान् चुप रहे। (और भी) रात चली जानेपर अन्तिम यामके भी बीत जानेपर तीसरी बार आयुष्मान् आनन्द० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! रात चली गई। अन्तिम याम भी बीत गया। अरुण निकल आया, नन्दीमुखा (=उषा) रात है। भिक्षु-संघ देरसे बैठा है। भन्ते! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

"आनन्द! (यह) परिषद् शुद्ध नहीं है।"

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनको यह हुआ—'किस व्यक्तिके लिये भगवान्ने यह कहा—आनन्द! परिषद् शुद्ध नहीं है', तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने (अपने) चित्तमें ध्यान करते भिक्षु-संघको देखा, और (तब) आयुष्मान् महामौद्गल्यायनने उस पापी, दुःशील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे कर्म वाले श्रमण होनेके दावेदार अ-श्रमण होते, ब्रह्मचारी न होते ब्रह्मचारी होनेका दावा करनेवाले भीतर-सळे, (पीब) भरे, कलूष रूप उस व्यक्तिको संघके बीचमें बैठे देखा। देख कर जहाँ वह पुरुष था वहाँ गये, जाकर उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस! उठ, भगवान्ने तुझे देख लिया। (अब) तेरा भिक्षुओंके साथ वास नहीं हो सकता।"

ऐसा कहनेपर वह पुरुष चुप रहा।

दूसरी बार भी आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषसे यह बोले—

"आवुस ! उठ, भगवान्ने तुझे देख लिया ।०।"

दूसरी बार भी वह पुरुष चुप रहा ।

तीसरी बार भी० वह पुरुष चुप रहा ।

तब आयुष्मान् महामौद्गल्यायन उस पुरुषको बाँह पकळकर द्वार कोठक (=प्रधान द्वार) से बाहर निकाल (निकालकर) बिल्लाई (=सूची, घटिका) दे जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्से यह बोले—

"भन्ते ! मैंने उस पुरुषको निकाल दिया, परिषद् शुद्ध है। भन्ते ! भगवान् भिक्षुओंके लिये प्रातिमोक्ष-उद्देश करें।"

"आश्चर्य है मौद्गल्यायन ! अद्भुत है मौद्गल्यायन !! जो हाथ पकळनेपर वह मोघ पुरुष गया !!!"

तब भगवान्ने भिक्षुओंको संबोधित किया—

(२) बुद्ध-धर्ममें आठ अद्भुत गुण

"भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य अद्भुत गुण (=धर्म) हैं, जिन्हें देख असुर (लोग) महासमुद्रमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा (=निम्न)=क्रमशः प्रवण (=नीचा), क्रमशः प्राग्भार (=झुका) होता है, एकदम किनारेसे खळा गहरा नहीं होता। जो कि भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा०, यह भिक्षुओ ! महासमुद्रमें—प्रथम आश्चर्य अद्भुत गुण है, जिसे देख असुर०। (२) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है—किनारेको नहीं छोळता। जो कि०। (३) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नहीं वास करता। महासमुद्रमें जो मरा-मुर्दा होता है, उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है, या स्थलपर फेंक देता है। जो कि०। (४) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई महानदियाँ हैं, जैसे कि गंगा, यमुना, अचिरवती (=रापती), सरभू (=सरयू, घाघरा) और मही (=गंडक), वह सभी महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती हैं, महासमुद्रके ही (नामसे) प्रसिद्ध होती हैं। जो कि०। (५) और फिर भिक्षुओ ! जो कोई भी संसारमें बहनेवाली (=पानीकी धारें) समुद्रमें जाती हैं, और जो कोई अन्तरिक्षसे (वर्षाकी) धारा गिरती है, उससे महासमुद्रकी ऊनता (=कमी) या पूर्णता नहीं दीख पळती। जो कि०। (६) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र एक रस है, लवण (ही उसका) रस है। जो कि०। (७) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र बहुतसे रत्नों-वाला है। रत्न यह हैं जैसे कि—मोती, मणि, वैडूर्य (=हीरा), शंख, शिला, मूँगा, चाँदी, सोना, लोहितांक (=रक्तवर्ण मणि), मसारगल्ल (=एक मणि)। जो कि०। (८) और फिर भिक्षुओ ! महासमुद्र महान् प्राणियों (=भूतों) का निवास-स्थान है। प्राणी ये हैं, जैसे कि तिमि, तिमिंगिल, तिमिरपिंगल, असुर, नाग, गंधर्व। महासमुद्रमें सौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं, दोसौ योजनवाले शरीरधारी भी हैं तीन-सौ योजनवाले०, चार सौ योजनवाले०। पाँच सौ योजनवाले भी शरीरधारी हैं। जो कि०। भिक्षुओ ! महासमुद्रमें यह आठ आश्चर्य-अद्भुत गुण हैं ।०

"ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म-विनय (=बुद्धधर्म) में आठ आश्चर्य अद्भुत धर्म (=गुण) हैं, जिन्हें देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमें अभिरमण करते हैं। कौनसे आठ ?—(१) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र क्रमशः गहरा, क्रमशः प्रवण, क्रमशः प्राग्भार है, एक दम किनारेसे खळा गहरा नहीं होता, ! ऐसे ही भिक्षुओ ! इस धर्म-विनयमें क्रमशः शिक्षा, क्रमशः क्रिया, क्रमशः मार्ग (=प्रतिपद्) है, एक दम (शुरूही) से आज्ञा (=मुक्तिपद) का प्रतिवेध (=साक्षात्कार) नहीं है। जो कि भिक्षुओ ! इस

धर्म-विनयमे क्रमश शिक्षा, क्रमश क्रिया, क्रमश मार्ग है, एक दम (शुरूही)से आ ज्ञा का प्रतिवेध नहीं, यह भिक्षुओ ! इस धर्म-विनयमे प्रथम आश्चर्य=अद्‌भुत धर्म है, जिसे देख देखकर भिक्षु इस धर्म-विनयमे अभिरमण करते है। (२) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र स्थिर-धर्म है=किनारेको नही छोळता, ऐसे ही भिक्षुओ ! जो मैंने श्रावको (=शिष्यो)के लिये शिक्षा-पद (=आचार-नियम) प्रज्ञापित (=विहित) किये, उन्हे मेरे श्रावक प्राणक लिये भी अति-क्रमण नही करते। जो कि०। (३) जैसे भिक्षुओ! महासमुद्र मरे मुर्देके साथ नही वास करता। महासमुद्रमे जो मरा मुर्दा होता है उसे शीघ्र ही तीरपर बहाता है, या स्थलपर फेक देता है, ऐसे ही भिक्षुओ ! जो व्यक्ति (=पुद्‌गल) पापी, दु शील, अ-शुचि, मलिन-आचारी, छिपे-कर्मान्त (= ० पेशे)वाला, अश्रमण होता श्रमण होनेका दावेदार, अब्रह्मचारी होते ब्रह्मचारी होनेका दावेदार, भीतर सब, (पीळा) भरा, कलुषरूप होता है, उसके साथ सघ नही वास करता। शीघ्र ही एकत्रित हो उसे निकालता (=उत्क्षेपण करता) है । चाहे वह भिक्षु-सघके बीचमे बैठा हो, तो भी वह सघसे दूर है, और सघ उससे (दूर है)। जो कि ०। (४) जैसे भिक्षुओ ! ० महानदियाँ ० महासमुद्रको प्राप्त हो अपने पहिले नाम-गोत्रको छोळ देती है, महासमुद्रके ही (नाममे) प्रसिद्ध होती है, ऐसे ही भिक्षुओ ! क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य (और) शूद्र—यह चारो वर्ण तथागत जतलाये धर्म-विनयमे घरसे बेघर प्रव्रजित (=सन्यासी) हो पहिलेके नाम-गोत्रको छोळते है, शाक्य पुत्रीय श्रमणके ही (नामसे) प्रसिद्ध होते है। जो कि ०। (५) जैसे भिक्षुओ ! जो भी ससारमे बहनेवाली (पानीकी धारे) समुद्रमे जाती है, और जो अन्तरिक्ष (=आकाश)से (वर्षाकी) धाराये गिरती है, उससे समुद्रकी ऊनता या पूर्णता नही दीख पळती, ऐसे ही भिक्षुओ ! चाहे बहुतसे भिक्षु अनुपादिशेष (=उपादि जिसमे शेष नही रहती) निर्वाण धातु (=निर्वाणपद)को प्राप्त हो, उससे निर्वाण-धातुकी ऊनता या पूर्णता नही दीख पळती। जो कि०। (६) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र एक-रस है, लवण (ही उसका) एक रस है, ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय एक रस है विमुक्ति (=मुक्ति ही इसका एक)रस है, जो कि ०। (७) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्र बहुतसे रत्नोवाला है, ०, ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय बहुतसे रत्नोवाला है, अनेक रत्नोवाला है। वहाँपर रत्न है जैसे कि[1]—चार [१-४] स्मृ ति - प्र स्था न, चार [५-८] स म्य क् प्र धा न, चार [९-१२] ऋ द्धि पा द, पाँच [१३-१७] इ न्द्रि य, पाँच [१८-२२] ब ल, सात [२३-२९] बो ध्य ग, [३०-३७] आ र्य अ ष्टा गि क मा र्ग। जो कि ०। (८) जैसे भिक्षुओ ! महासमुद्रमे महान् प्राणियोका निवास-स्थान है०, ऐसे ही भिक्षुओ ! यह धर्म-विनय महान् प्राणियोका निवास है। वहाँ यह प्राणी है जैसे कि—स्रो त - आ प न्न=(निर्वाणके) स्रोतकी प्राप्ति (रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त, स कृ दा - गा मी=एक ही बार (इस ससारमे) आकर (निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त, अ ना गा मी=(इस ससारमे) न आकर (दूसरे लोक हीमे निर्वाण प्राप्त करना रूपी) फलके साक्षात्कार करनेके मार्ग प्राप्त, अर्हत्—अर्हत्त्व (=मुक्तपन) फलके साक्षात्कार करनेके मार्गको प्राप्त। जो कि ०।"

तब भगवान्‌ने इस अर्थका ख्यालकर उसी समय यह उ दा न कहा—

"ढाँकनेकी बुद्धि रखनेवाला (फिर) दोष करता है, खुले (दिल)वाला नही दोष करता।
इसलिये ढँकेको खोल दे, जिसमे कि अधिक दोष न करे ॥(१)॥"

(३) बुद्धका फिर उपोसथमे नही शामिल होना

तब भगवान्‌ने भिक्षुओको सबोधित किया—

---

[1]यही सैंतीस बोधिपक्षीय धर्म कहे जाते है।

"भिक्षुओ ! अब इसके बाद मैं उपोसथ नही करूँगा, प्रातिमोक्षका उद्देश (=पाठ) नही करूँगा। इसके बाद भिक्षुओ ! तुम्ही उपोसथ करना, प्रातिमोक्षका उद्देश करना। भिक्षुओ ! इसके लिये जगह नही, यह सभव नही कि तथागत अशुद्ध परिषद्मे उपोसथ करे, प्रातिमोक्षका उद्देश करे !

"भिक्षुओ ! दोषयुक्त (भिक्ष)को प्रातिमोक्ष नही सुनना चाहिये, जो सुने उसे दुक्कटका दोष हो। ० अनुमति देता हूँ, जो दोषयुक्त होते प्रातिमोक्ष सुने, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करनेकी। 1

"और भिक्षुओ ! इस प्रकार स्थगित करना चाहिये। चतुर्दशी या पूर्णमासीके जिस उपोसथके दिन वह व्यक्ति दिखाई दे, सघके बीच कहना चाहिये—'भन्ते ! सघ मेरी सुने इस नामवाला व्यक्ति दोष युक्त है, इसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। इसकी उपस्थितिमे प्रातिमोक्षका उद्देश नही होना चाहिये।' (ऐसा कहनेपर) प्रातिमोक्ष स्थगित होता है।" 2

§२–नियम-विरुद्ध और नियमानुसार प्रातिमोक्ष स्थगित करना

उस समय षड्वर्गीय भिक्षु—हमे कोई नही जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते थे। दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओसे कहते थे—'आवुसो ! इस इस नामवाले षड्वर्गीय भिक्षु—हमे कोई नही जानता—(सोच) दोषयुक्त रहते भी प्रातिमोक्ष सुनते है। षड्वर्गीय भिक्षुओने सुना—दूसरेके चित्तको जाननेवाले स्थविर भिक्षु भिक्षुओसे कहते हैं—०। तब अच्छे भिक्षुओ द्वारा उनके प्रातिमोक्षके स्थगित किये जानेसे पूर्व ही वह शुद्ध दोषरहित भिक्षुओके प्रातिमोक्षको विना बात, विना कारण स्थगित करते थे। ० अल्पेच्छ ० भिक्षु ०। ०।—

"भिक्षुओ ! शुद्ध, दोष-रहित भिक्षुओके प्रातिमोक्षको विना बात विना कारण स्थगित नही करना चाहिये, ० दुक्कट ०। 3

"भिक्षुओ ! प्रातिमोक्ष स्थगित करना एक अधार्मिक (=धर्म-विरुद्ध) है, और एक धार्मिक (धर्मानुसार)। ० दो अधार्मिक है, दो धार्मिक। ० तीन अ-धार्मिक है, तीन धार्मिक। ० चार अ-धार्मिक है, चार धार्मिक ०। ० पाँच अधार्मिक, पाँच धार्मिक ०। ० छ अ-धार्मिक है, छ धार्मिक। ० सात अ-धार्मिक है, सात धार्मिक। ० आठ अ-धार्मिक है, आठ धार्मिक। ० नौ अ-धार्मिक है, नौ धार्मिक।० दस अ-धार्मिक है, दस धार्मिक। 4

(१) नियम-विरुद्ध प्रातिमोक्ष स्थगित करना

१—"कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना अधार्मिक है?—निर्मूलक शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करता है। यह एक प्रातिमोक्ष स्थगित करना अ-धार्मिक है। कौन सा एक प्रातिमोक्ष-स्थगित-करना धार्मिक है?—स-मूलक (=कारण होने) शील-भ्रष्टता (का दोष लगा) प्रातिमोक्ष स्थगित करता है। ० 5

२—"कौनसे दो प्रातिमोक्ष स्थगित-करने अ-धार्मिक है?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे ०। (२) निर्मूलक आचार-भ्रष्टतासे०। 6

कौनसे दो ० धार्मिक है?—(१) समूलक शील-भ्रष्टतासे० (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे ०। ०। 7

३—"कौनसे तीन ० अ-धार्मिक है?—(१) निर्मूलक शील-भ्रष्टतासे०। (२) निर्मूलक आचार-भ्रष्टतासे ०। (३) निर्मूलक दृष्टि-भ्रष्टता (=अच्छी धारणासे च्युत होने)से०। कौनसे तीन धार्मिक है?—(१) समूल शीलक भ्रष्टतासे०। (२) समूलक आचार-भ्रष्टतासे०। (३) समूलक दृष्टि-भ्रष्टतासे ०। ०। 8

४—"कौनसे चार ० अ-धार्मिक है ?—०[1] । (४) निर्मूलक भ्रष्ट-आजीविकता (=जीवयापनका जरिया भ्रष्ट होने)से ० । ० चार ० धार्मिक है ?—०[1] । (४) समूलक भ्रष्ट-आजीविकता से ० । ० । 9

५—"कौनसे पाँच ० अ-धार्मिक है ?—०[1] । (५) निर्मूलक दु क्क ट(का दोष लगाने)-से ० । ० पाँच ० धार्मिक है ?—०[1] । (५) समूलक दु क्क ट से ० । ० । 10

६—"कौनसे छ ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक (=निर्मूलक) (और) न की हुई शील-भ्रष्टतासे ० । (२) अमूलक, (किंतु)की हुई शील-भ्रष्टतासे ० । (३) अमूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक (किन्तु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक (किन्तु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे० । कौनसे छ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक (और) न की हुई शील भ्रष्टतासे० । (२) समूलक (किन्तु)की हुई शील-भ्रष्टतासे० । (३) समूलक (और) न की हुई आचार-भ्रष्टतासे० । (४) समूलक (किंतु)की हुई आचार-भ्रष्टतासे ० । (५) समूलक (और) न की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ० । (६) समूल (किंतु)की हुई दृष्टि-भ्रष्टतासे ० । ० । 11

७—"कौनसे सात० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक पा रा जि क(के दोष)से ० । (२) अमूलक सघादिसेससे० । (३) अमूलक थु ल्ल च्च य से० । (४) अमूलक पा चि त्ति य से० । (५) अमूलक प्रा ति दे श नी य से० । (६) अमूलक दु क्क ट से० । (७) अमूलक दु र्भा पि त से० । कौनसे सात ० धार्मिक है ?—(१) समूलक पाराजिकसे । ० । (७) समूलक दुर्भापितसे ० । ० । 12

८—"कौनसे आठ० अ-धार्मिक है ?—(१) अमूलक, अकृत (=न की हुई) शील-भ्रष्टतासे० । (२) अमूलक, कृत (=की हुई) शील भ्रष्टतासे० । (३) अमूलक अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक कृत आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक अकृत दृष्टि भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक कृत दृष्टि भ्रष्टतासे० । (७) अमूलक अकृत भ्रष्टाजीविकतासे० । (८) अमूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे० । कौनसे आठ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे० । ० । (८) समूलक कृत भ्रष्टाजीविकतासे० । ० । 13

९—"कौनसे नौ० अधार्मिक है ?—(१) अमूलक अकृत शीलभ्रष्टतासे० । (२) अमूलक, कृत शील-भ्रष्टतासे० । (३) अमूलक, कृत-अकृत शील-भ्रष्टतासे० । (४) अमूलक, अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (५) अमूलक, कृत आचार-भ्रष्टतासे० । (६) अमूलक, कृत-अकृत आचार-भ्रष्टतासे० । (७) अमूलक, अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (८) अमूलक, कृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । (९) अमूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । ० । कौनसे नौ ० धार्मिक है ?—(१) समूलक, अकृत शील-भ्रष्टतासे० । ० । (९) समूलक, कृत-अकृत दृष्टि-भ्रष्टतासे० । ० । 14

१०—"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक है ?—(१) न पाराजिक-दोषी उस परिषद्में बैठा होता है, (२) न पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है, (३) न (भिक्षु) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है, (४) न शिक्षाको प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है, (५) न धार्मिक (संघकी) सामग्री (=एकता)में (वह भिक्षु) जाता है, (६) न धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना) करता है, (७) न धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है, (८) न (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शंकित होती है, (९) न

[1] पहिलेको लेकर ।

(उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है, (१०) न (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है।—यह दस प्रातिमोक्ष-स्थगित करने अ-धार्मिक है।

(२) नियमानुसार प्रातिमोक्ष-स्थगित करना

"कौनसे दस प्रातिमोक्ष-स्थगितकरने धार्मिक है?—(१) पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)मे बैठा होता है, (२) या पाराजिककी बात वहाँ चलती होती है, (३) शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्में बैठा होता है, (४) या शिक्षाके प्रत्याख्यानकी बात वहाँ चलती होती है, (५) धार्मिक सामग्रीके लिये (वह भिक्षु) जानेवाला होता है, (६) धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करता है, (७) धार्मिक सामग्रीके प्रत्यादानकी बात वहाँ चलती होती है, (८) (उसकी) शील-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है, (९) (उसकी) आचार-भ्रष्टता देखी, सुनी या शकित होती है, (१०) (उसकी) दृष्टि-भ्रष्टता देखी सुनी या शकित होती है। यह दस प्रातिमोक्ष स्थगित करने धार्मिक है। 15

(क) पाराजिक दोषी परिषद्में हो—

(क) "कैसे पाराजिक-दोषी उस परिषद् (=बैठक)मे बैठा होता है?—(१) यहाँ भिक्षुओ! जिन आकारो=लिंगो=निमित्तोमे पाराजिक दोष (=धर्म)का दोषी होता है, उन आकारो=लिंगो=निमित्तोमे भिक्षुने (स्वय) उस भिक्षुको पाराजिक दोष करते देखा। (२) भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वय) नही देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुको कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया। (३) न भिक्षुने पाराजिक दोषको करते (स्वय) देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोषको किया', बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—आवुस! मैने पाराजिक दोष किया'। तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर (वह) भिक्षु उस (१) देखे, (२) उस सुने, और (३) उस शकासे चतुर्दशी या पूर्णमासीके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सघके बीच कह दे—'भन्ते! सघ मेरी सुने, इस नामवाले भिक्षुने पाराजिक दोष किया है, उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ।' उसके उपस्थित न होनेपर प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। (वह) प्रातिमोक्ष-स्थगित करना धार्मिक (=नियमानुकूल) है। 16

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर, राजा, चोर, आग, पानी, मनुष्य, अ-मनुष्य (=भूत-प्रेत), जगली जानवर, सरीसृप (=साँप आदि), प्राणसकट या धर्मसकट—इन आठ अन्तरायो (=विघ्नो)मे से किसी विघ्नके कारण यदि परिषद् (=बैठक) उठ जावे, तो भिक्षुओ! इच्छा होनेपर भिक्षु उस आवासमे या दूसरे आवासमे उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सघके बीच कहे—'भन्ते! सघ मेरी सुने, इस नामवाले भिक्षुके पाराजिककी बात चल रही थी, वह बात अभी ते न हो पाई है। यदि सघ उचित समझे तो सघ उस बात (=वस्तु, मुकदमे)का विनिश्चय (=फैसला) करे।' इस प्रकार यदि (अभीष्ट) प्राप्त हो सके, तो ठीक नही तो अमावास्या या पूर्णिमाके उपोसथके दिन उस व्यक्तिके उपस्थित होनेपर सघके बीच कहे—'भन्ते! सघ मेरी सुने—इस नामके भिक्षुके पाराजिककी कथा चल रही थी, उस बातका फैसला नही हुआ। उसके प्रातिमोक्षको स्थगित करता हूँ। उसकी उपस्थितिमे प्रातिमोक्षका उद्देश नही करना चाहिये।' (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 17

(ख) शि क्षा - प्र त्या ख्या न क र्त्ता प रि ष द् मे हो—"कैसे शिक्षाका प्रत्याख्यान करनेवाला उस परिषद्मे बैठा होता है?—(१) यदि भिक्षुओ! ० उन आकारो ० से भिक्षुने (स्वय) उस भिक्षुको शिक्षाका प्रत्याख्यान करते देखा। (२) भिक्षुने (स्वय) शिक्षाका प्रत्याख्यान करते नही देखा किन्तु दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस! इस नामवाले भिक्षुने शि क्षा का प्रत्याख्यान किया है। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—

'आवुस ! मैंने शिक्षाका प्रत्याख्यान कर दिया।' तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[1] । (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 18

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

क "कैसे धार्मिक सामग्रीमे नही जाता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० से भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमे नही जाते देखता है। (२) भिक्षु (स्वय) उस भिक्षुको धार्मिक सामग्रीमे जाते नही देखता है, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा है—आवुस ! इस नाम-वाला भिक्षु धार्मिक सामग्रीमे नही जाता। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मै धार्मिक सामग्रीमे नही जाता'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 19

["भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1]। (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।]

ख "कैसे धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान (=किये फैसलेका उलटाना?) होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो ० से भिक्षुने (स्वय) (उस) भिक्षुको धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान करते देखा। (२) ० दूसरे भिक्षुने उस भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! इस नामवाले भिक्षुने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया है'। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! मैने धार्मिक सामग्रीका प्रत्यादान किया'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होने-पर ०[1]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 20

"भिक्षुके प्रातिमोक्ष स्थगित कर देनेपर ०[1] । (यह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है।

ग "कैसे शील-भ्रष्टतामे देखा (=दृष्ट) सुना (=श्रुत) शका किया (=परिशकित होता है?—(१) यदि भिक्षुओ ! ० उन आकारो०से भिक्षु (स्वय) (उस) भिक्षुको शील-भ्रष्टतामे देखा-सुना-शका किया देखता है। (२) भिक्षुने (स्वय) ० नही देखा, किन्तु दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—'आवुस ! इस नामवाला भिक्षु शील भ्रष्टतामे दृष्ट-श्रुत-परिशकित है'। (३) न ० स्वय देखा, नही दूसरे भिक्षुने (उस) भिक्षुसे कहा—०, बल्कि उसीने (उस) भिक्षुसे कहा है—'आवुस ! मैं शील भ्रष्टतामे दृष्ट-श्रुत-परिशकित हूँ'। तो भिक्षुओ ! इच्छा होनेपर ०[2]। (वह) प्रातिमोक्ष स्थगित करना धार्मिक है। 21

घ "कैसे आचार-भ्रष्टतामे दृष्टश्रुत-परिशकित होता है?—०[3]। 22

ङ "कैसे दृष्टि-भ्रष्टतामे दृष्ट-श्रुत-परिशकित होता है?—०[3]।" 23

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥ १ ॥

§२—अपराधोंका यों ही स्वीकारना और दोषारोप

तब आयुष्मान् उपालि जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये, जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् उपालिने भगवान्से यह कहा—

(१) आत्मादान

"भन्ते ! आत्मादान[4] लेनेवाले भिक्षुको किन बातोसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये?"

---

[1]ऊपर पृष्ठ ५१४(१७)की तरह। [2]देखो पृष्ठ ५१४(१६)(पाराजिक शब्द बदलकर)। [3]शील-भ्रष्टताकी तरह यहाँ भी समझना। [4]धर्मकी शुद्धिके विचारसे, भिक्षु जिस अधिकरण (=मुकदमे)को अपने ऊपर ले लेता है, उसे आत्मादान कहते हैं।

"उपालि ! आत्मादान लेनेवाले भिक्षुको पाँच वातोसे युक्त आत्मादानको लेना चाहिये। (१) आत्मादान लेनेकी इच्छावाले भिक्षुको यह सोचना चाहिये—जिस आत्मादानको मै लेना चाहता हूँ, क्या उसका काल है या नही। यदि उपालि ! सोचते हुए यह समझे—यह इस आत्मादानका अकाल है, काल नही है, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नही लेना चाहिये। (२) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह इस आत्मादानका काल है, अकाल नही है, तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस आत्मादानको मै लेना चाहता हूँ क्या वह भूत (=यथार्थ) हे या नही हे।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अ-भूत है, भूत नही है, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नही लेना चाहिये। (३) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान भूत ह, अभूत नही, तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मै लेना चाहता हूँ, क्या यह आत्मादान अर्थ-सहित (=सार्थक) है, या नही।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान अनर्थक है, सार्थक नही, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नही लेना चाहिये। (४) किन्तु यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—यह आत्मादान सार्थक है, अनर्थक नही, तो उपालि ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'जिस इस आत्मादानको मै लेना चाहता हूँ, क्या इस आत्मादानके लिये वर्तमानमे सम्भ्रान्त भिक्षुओको ध र्म और वि न य के अनुसार सहायक पाऊँगा या नही।' यदि उपालि ! सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमे सम्भ्रान्त भिक्षुओको ध र्म और वि न य के अनुसार मै सहायक न पा सकूँगा, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नही लेना चाहिये। (५) किन्तु यदि उपालि। भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लिये वर्तमानमे सम्भ्रान्त, भिक्षुओको ध र्म और वि न य के अनुसार मै सहायक पा सकूँगा, तो भिक्षुओ ! उस भिक्षुको आगे सोचना चाहिये—'क्या इस आत्मादानके लेनेपर, उसके कारण सघमे भडन=कलह, विवाद, सघ-भेद, स घ - रा जी, सघ-व्यवस्थान (=सघमे अलगा-विलगी=सघका-नानाकरण) होगा या नही ?' यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—इस आत्मादानके लेनेपर, उसके कारण सघमे कलह ० होगा, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको नही लेना चाहिये। किन्तु यदि उपालि ! भिक्षु सोचते हुये यह समझे—० उसके कारण सघमे कलह ० नही होगा, तो उपालि ! वैसे आत्मादानको लेना चाहये। उपालि ! इस प्रकार पाँच वातोसे युक्त आत्मादानको लेनेपर पीछे भी पछतावा नही करना होगा।" 24

(२) दोषारोपके लिये अपेक्षित बाते

१—"भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोपारोपण करते वक्त कितनी वातोके वारेमे अपने भीतर प्रत्यवेक्षण (=अच्छी तरह देख-भाल) कर दूसरेपर दोपारोपण करना चाहिये?"

(१) उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोपण करते वक्त इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मै शुद्ध कायिक आचरणवाला हूँ न ? छिद्रादि मलरहित परिशुद्ध कायिक आचरणसे युक्त हूँ न ? यह धर्म मुझमे है या नही है ? यदि उपालि ! भिक्षु शुद्ध कायिक आचरणवाला नही है ०। तो उसके लिये कहनेवाले होगे—'आयुष्मान् (पहिले स्वय तो) कायिक (आचार)का अभ्यास करे। (२) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—मै शुद्ध वाचिक आचरण-वाला हूँ न ? ०। (३) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—सब्रह्मचारियोमे द्रोह रहित मैत्री भाव युक्त मेरा चित्त सदा रहता है न ? यह धर्म मुझमे है या नही। यदि उपालि ! भिक्षुका सब्रह्मचारियोमे द्रोह-रहित मैत्रीभावयुक्त चित्त सदा नही रहता तो उसके लिये कहनेवाले होगे—'आयुष्मान् पहिले सब्रह्मचारियोमे मैत्रीभाव तो कायम करे। (४)और उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्य-वेक्षण करना चाहिये—मै वहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुत-सचयी तो हूँ न ? जो वह धर्म आदि-कल्याण, मध्य-कल्याण, पर्यवसान-कल्याण है, (जो) अर्थ, और व्यजनके सहित केवल=परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्यको

बखानते है, वैसे धर्मको मैंने बहुत सुना, धारण किया, वचनसे परिचित किया (=समझा) मनसे जाँचा, दृष्टि से अच्छी तरह समझा है न ? यह धर्म मुझमे है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षु बहुश्रुत ० नही है, तो उसे कहनेवाले होगे—पहिले आयुष्मान् आगमको पढे (५) और फिर उपालि ! ० इस प्रकार प्रत्यवेक्षण करना चाहिये—(भिक्षु भिक्षुणी) दोनोके प्रातिमोक्षोको मैंने विस्तारके साथ हृदयस्थ किया, सविभक्त किया, सुप्पवत्ती, सूत्रो और अनुव्यजनोसे अच्छी तरह विनिश्चित किया है न ? यह धर्म मुझमे है या नही ? यदि उपालि ! भिक्षुने दोनो प्रातिमोक्षोको विस्तारके साथ नही हृदयस्थ किया ० अच्छी तरह नही विनिश्चित किया है, तो—इसे भगवान् ने कहाँपर कहा ?—(पूछनेपर) उत्तर न दे सकेगा। फिर उसे कहनेवाले होगे—पहिले आयुष्मान् विनयको पढे। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर यह पाँच बाते (पहिले) अपने भीतर प्रत्यवेक्षण करके दूसरेपर दोषारोपण करना चाहिये।" 25

२—"भन्ते ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातो (=धर्मो)को अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये—(१) समयपर बोलूँगा, बेसमय नही, (२) यथार्थ बोलूँगा, अयथार्थ नही, (३) मधुरताके साथ बोलूँगा, कठोरताके साथ नही, (४) सार्थक बोलूँगा, निरर्थक नही, (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे बोलूँगा, भीतर द्वेष रखकर नही। उपालि ! दोषारोपक भिक्षुको० इन पाँच बातोको अपने भीतर स्थापितकर दूसरेपर दोषारोप करना चाहिये।" 26

३—"भन्ते ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे (=विप्रतिसार) पछतावा लाना चाहिये ?"

"उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे पछतावा लाना चाहिये—(१) आयुष्मान् असमयसे दोषारोप करते है समयसे नही, आपका पछतावा व्यर्थ। (२) ०अयथार्थ बोलते है, यथार्थ नही०। (३) ० कठोरताके साथ दोषारोप करते है, मधुरताके साथ नही०। (४) ०निरर्थक दोषारोप करते है, सार्थक नही०। (५) ०भीतर द्वेष रखकर दोषारोप करते है, मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही०। उपालि ! अधर्मसे दोषारोप करनेवाले भिक्षुको पाँच प्रकारसे विप्रतिसार (=पछतावा) दिलाना चाहिये। सो क्यो ? जिसमे दूसरे भिक्षु भी असत्य दोषारोप करनेकी इच्छा न करे।" 27

४—"भन्ते ! अधर्मपूर्वक दोषारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे अ-विप्रतिसार (=न पछतावा) धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार धारण करना चाहिये—(१) बेसमय आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया, समयसे नही, आपको विप्रतिसार (=पछतावा) नही करना चाहिये। (२) असत्यसे आयुष्मान्पर दोषारोप किया गया, सत्यसे नही, ०। (३) कठोरतासे०, मधुरतासे नही, ०। (४) ०निरर्थकसे०, सार्थकसे नही,०। (५) भीतर द्वेष रखकर० मैत्रीपूर्ण चित्तसे नही,०। ऐसे पाँच प्रकारसे अ-विप्रतिसार कराना चाहिये।" 28

५—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोषारोप करनेवाले भिक्षुको कितने प्रकारसे अविप्रतिसार धारण करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे०—(१) समयसे आयुष्मान्ने दोषारोप किया, बेसमयमे नही, तुम्हे पछताना नही चाहिये। (२) सत्यसे०, अ-सत्यसे नही, ०। (३) मधुरतासे०, कठोरतासे नही, ०। (४) सार्थकसे०, निरर्थकसे नही, ०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे०, भीतर द्वेष रखकर नही, तुम्हे पछताना

नही चाहिये। उपालि ! ० ऐसे पाँच प्रकार अविप्रतिसार धारण करना चाहिये।" 29

६—"भन्ते ! धर्मपूर्वक दोपारोप किये गये भिक्षुको कितने प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच प्रकारसे विप्रतिसार धारण कराना चाहिये—(१) समयसे आयुष्मान् पर दोषारोप किया गया है, असमयसे नही, नाराज (=विप्रतिसार) नही होना चाहिये। (२) सत्यसे० असत्यसे नही०। (३) मधुरताके साथ०, कठोरताके साथ नही०। (४) सार्थक०, निरर्थक नही०। (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे०, भीतर द्वेष रखकर नही०। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे०। 30

७—"भन्ते ! दोपारोप करनेवाले भिक्षुको दूसरेपर दोषारोप करनेकी इच्छा होनेपर कितनी बातोको अपने भीतर मनमे करके दूसरेपर दोपारोप करना चाहिये ?"

"उपालि ! ० पाँच बातोको०—(१) कारुणिकता, (२) हितैपिता, (३) अनुकम्पकता, (४) आपत्तिसे उद्धार होना, (५) विनय पुरस्सर होना। उपालि ! ऐसे पाँच प्रकारसे०।" 31

८—"भन्ते ! दोपारोप किये गये भिक्षुको कितनी बाते (=धर्म) (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये ?"

"उपालि ! दोपारोप किये गये भिक्षुको सत्य और अकोप्य (=अटलपना) ये दो बाते (अपने भीतर) स्थापित करनी चाहिये।" 32

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

नवाँ पातिमोक्खट्ठपनक्खन्धक समाप्त ॥९॥

१०–भिक्षुणी-स्कंधक

१—भिक्षुणियोकी प्रव्रज्या, उपसम्पदा और भिक्षुओके साथ अभिवादन। २—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, आपत्ति-प्रतिकार, संघ-कर्म, अधिकरण-शमन, और विनय-वाचन। ३—अभद्र परिहास। ४—उपदेश-श्रवण, शरीरका सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना। ५—आसन, वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ स्थगित करना, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा। ६—अरण्य-वास-निषेध, भिक्षुणी-निवास निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दडितको साथिन देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान।

§१–भिक्षुणियोंकी प्रव्रज्या-उपसम्पदा, और भिक्षुओंके साथ अभिवादन और भिक्षुणियोंके शिक्षापद

१—*कपिलवस्तु*

उस समय बुद्ध भगवान् शा क्यो (के देश) मे क पि ल व स्तु के न्य ग्रो धा रा म मे विहार करते थे।

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ आई। आकर भगवान्को वन्दनाकर, एक ओर खळी हो गई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्से कहा—"भन्ते! अच्छा हो (यदि) मातृग्राम (=स्त्रियाँ) भी तथागतके दिखाये धर्म-विनय (=धर्म) मे घरसे बेघर हो प्रव्रज्या पावे।"

"नही गौतमी! मत तुझे (यह) रुचै—स्त्रियाँ तथागतके दिखाये धर्ममें०।"

दूसरी बार भी०। तीसरी बार भी०।

तब म हा प्र जा प ती गौ त मी—भगवान्, तथागत-प्रवेदित धर्म-विनय (=बुद्धके दिखलाये धर्म) मे स्त्रियोको घर छोळ बेघर हो प्रव्रज्या (लेने) की अनुज्ञा नही करते—जान, दु खी=दुर्मना अश्रु-मुखी (हो) रोती, भगवान्को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई।

२—*वैशाली*

(१) स्त्रियोका भिक्षुणी होना

भगवान् क पि ल-व स्तु मे इच्छानुसार विहारकर (जिधर) वै शा ली थी, (उधर) चारिकाको चल दिये। क्रमश चारिका करते हुए, जहाँ वैशाली थी, वहाँ पहुँचे। भगवान् वैशालीमे महावनकी कूटागारशालामे विहार करते थे। तब महाप्रजापती गौतमी, केशोको कटाकर काषायवस्त्र पहिन, बहुतसी 'शाक्य-स्त्रियो'के साथ, जिधर वैशाली थी (उधर) चली। क्रमश चलकर वैशालीमे जहाँ महावनकी कूटागारशाला थी (वहाँ) पहुँची। महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे, दु खी=दुर्मना अश्रु-मुखी, रोती, द्वार-कोष्ठक (=बडा द्वार, जिसपर कोठा होता था) के बाहर जा खळी हुई। आयुष्मान् आनन्दने महाप्रजापती०को खळा देखकर पूछा—

"गौतमी ! तू क्यो फूले पैरो० ?"

"भन्ते ! आनन्द ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे स्त्रियोकी घर छोळ बेघर प्रव्रज्याकी भगवान् अनुज्ञा नही देते।"

"गौतमी ! तू यही रह, बुद्ध-धर्ममे स्त्रियोकी० प्रव्रज्याके लिये मै भगवान्से प्रार्थना करता हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर० बैठ, भगवान्से बोले—

"भन्ते ! महाप्रजापती गौतमी फूले-पैरो धूल-भरे शरीरसे दुःखी दुर्मना अश्रु-मुखी रोती हुई द्वार-कोष्ठकके बाहर खळी है (कि),—भगवान् (बुद्ध-धर्ममे) स्त्रियोकी० प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नही देते। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोको (बुद्ध-धर्ममे) ०प्रव्रज्या मिले।"

"नही आनन्द ! मत तुझे रुचे—तथागतके जतलाये धर्ममे स्त्रियोकी घरसे बेघर हो प्रव्रज्या।"

दूसरी बार भी आयुष्मान् आनन्द०। तीसरी बार भी०।

तब आयुष्मान् आनन्दको हुआ,—भगवान् तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे स्त्रियोकी घरसे बेघर प्रव्रज्याकी अनुज्ञा नही देते, क्यो न मै दूसरे प्रकारसे ०प्रव्रज्याकी अनुज्ञा माँगूँ। तब आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से कहा—

"भन्ते ! क्या तथागत-प्रवेदित धर्ममे घरसे बेघर प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ स्रोत-आपत्तिफल, सकृदागामि-फल, अनागामि-फल, अर्हत्त्व-फलको साक्षात् कर सकती है ?"

"साक्षात् कर सकती है, आनन्द ! तथागत-प्रवेदित०।"

"यदि भन्ते ! तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे ०प्रव्रजित हो, स्त्रियाँ ०अर्हत्त्व-फलको साक्षात् करने योग्य है। जो, भन्ते ! अभिभाविका, पोषिका, क्षीर-दायिका हो, भगवान्की मौसी महाप्रजापती गौतमी बहुत उपकार करनेवाली है। जननीके मरनेपर (उसने) भगवान्को दूध पिलाया। भन्ते ! अच्छा हो स्त्रियोको० प्रव्रज्या मिले।"

(२) भिक्षुणियोके आठ गुरु धर्म

"आनन्द ! यदि महाप्रजापती गौतमी आठ गुरु-धर्मो (=बळी शर्तो)को स्वीकार करे, तो उसकी उपसम्पदा हो।—

(१) सौ वर्षकी उप-सम्पन्न (=उपसम्पदा पाई) भिक्षुणीको भी उसी दिनके उप-सम्पन्न भिक्षुके लिये अभिवादन प्रत्युत्थान, अजलि जोळना, सामीची-कर्म करना चाहिये। यह भी धर्म सत्कार-पूर्वक गौरव-पूर्वक मानकर, पूजकर जीवनभर न अतिक्रमण करना चाहिये।

(२) (भिक्षुका) उपगमन (=धर्मश्रवणार्थ आगमन) करना चाहिये। यह भी धर्म०।

(३) प्रति आधेमास भिक्षुणीको भिक्षु-सघमे पर्येषण (प्रार्थना) करना चाहिये। यह०।

(४) वर्षा-वास कर चुकनेपर भिक्षुणीको (भिक्षु, भिक्षुणी) दोनो सघोमे देखे, सुने, जाने तीनो स्थानोसे प्रवारणा करनी चाहिये।०

(५) गुरु-धर्म स्वीकार किये भिक्षुणीको दोनो सघोमे पक्ष-मानता करनी चा०।

(६) किसी प्रकार भी भिक्षुणी भिक्षुको गाली आदि (=आक्रोश) न दे। यह भी०।

(७) आनन्द ! आजसे भिक्षुणियोका भिक्षुओको (कुछ) कहनेका रास्ता बन्द हुआ०।

(८) लेकिन भिक्षुओका भिक्षुणियोको कहनेका रास्ता खुला है। यह०।

"यदि आनन्द ! महाप्रजापती गौतमी इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करे, तो उसकी उप-सम्पदा हो।"

तब आयुष्मान् आनन्द भगवान्‌के पास, इन आठ गुरु-धर्मोको समझ (=उद्ग्रहण=पढ)कर जहाँ महाप्रजापती गौतमी थी, वहाँ गये। जाकर महाप्रजापती गौतमीसे बोले—

"यदि गौतमी ! तू इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करे, तो तेरी उपसम्पदा होगी—(१) सौ वर्षकी उपसम्पन्न० (८)०।"

"भन्ते ! आनन्द ! जैसे शौकीन शिरसे नहाये अल्प-वयस्क, तरुण स्त्री या पुरुष उत्पल की माला, वार्षिक (=जूही)की माला, या अतिमुक्तक (=मोतिया)की मालाको पा, दोनो हाथोमे ले, (उसे) उत्तम-अग शिरपर रखता है। ऐसे ही भन्ते ! मै इन आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार करती हूँ।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे, वहाँ गये। जाकर ०अभिवादनकर० एक ओर बैठकर, भगवान्‌से बोले—

"भन्ते ! प्रजापती गौतमीने यावज्जीवन अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्वीकार किया।"

"आनन्द ! यदि तथागत-प्रवेदित धर्म-विनयमे स्त्रियाँ प्रव्रज्या न पाती, तो (यह) ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी होता, सद्धर्म सहस्र वर्ष तक ठहरता। लेकिन चूँकि आनन्द ! स्त्रियाँ० प्रव्रजित हुई, अब ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी न होगा, सद्धर्म पाँच ही सौ वर्ष ठहरेगा। आनन्द ! जैसे बहुत स्त्रीवाले और थोळे पुरुषोवाले कुल, चोरो द्वारा, भँडियाहो (=कुम्भ-चोरो) द्वारा आसानीसे ध्वसनीय (=सु-प्र-ध्वस्य) होते है, इसी प्रकार आनन्द ! जिस धर्म-विनयमे स्त्रियाँ ०प्रबज्या पाती है, वह ब्रह्मचर्य चिर-स्थायी नही होता। जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तैयार,) लहलहाते धानके खेतमे सेतट्ठिका (=सफेदा)नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह शालि-क्षेत्र चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द ! जिस धर्म-विनय मे०। जैसे आनन्द ! सम्पन्न (=तैयार) ऊखके खेतमे माजेष्ठिका (=लाल रोग) नामक रोग-जाति पळती है, जिससे वह ऊखका खेत चिर-स्थायी नही होता, ऐसे ही आनन्द०। आनन्द ! जैसे आदमी पानीको रोकनेके लिये, बळे तालावकी रोक-थामके लिये, मेड (=आली) बाँधे, उसी प्रकार आनन्द ! मैने रोक-थामके लिये भिक्षुणियोके जीवनभर अनुल्लघनीय आठ गुरु-धर्मोको स्थापित किया।"

भिक्षुणियोके आठ गुरु धर्म समाप्त

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ भगवान् थे, वहाँ गई। जाकर भगवान्‌को अभिवादन कर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने भगवान्‌से यह कहा—

"भन्ते ! इन शाक्यनियोके साथ मुझे कैसे करना चाहिये ?"

तब भगवान्‌ने धार्मिक कथा द्वारा महाप्रजापती गौतमीको सदर्शित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। तब भगवान्‌की धार्मिक कथा द्वारा ०समुत्तेजित सप्रहर्षित हो महाप्रजापती गौतमी भगवान्‌को अभिवादनकर प्रदक्षिणाकर चली गई। तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

(३) भिक्षुणियोकी उपसम्पदा

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाकी।" 2

तब भिक्षुणियोने महाप्रजापती गौतमीसे यह कहा—

"आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सबको उपसम्पदा मिली है। भगवान्‌ने इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गई। जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर एक ओर खळी हुई। एक ओर खळी महाप्रजापती गौतमीने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"भन्ते आनन्द ! यह भिक्षुणियाँ मुझसे यह कहती है—आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सबको

उपसम्पदा मिली है। भगवान्नें इस प्रकार भिक्षुओ द्वारा भिक्षुणियोकी उपसम्पदाका विधान किया है।"

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ भगवान् थे वहाँ गये। जाकर भगवान्को अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठे आयुष्मान् आनन्दने भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द! यह भिक्षुणियाँ मुझसे ऐसा कहती है—आर्याको उपसम्पदा नही है, हम सबको उपसम्पदा मिली है०।"

"आनन्द! जिस समय महाप्रजापती गौतमीने आठ गु रु-ध र्म ग्रहण किये, तभी उसे उपसम्पदा प्राप्त हो गई।"

(४) भिक्षुणियोका भिक्षुओको अभिवादन

तब महाप्रजापती गौतमी जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ जाकर० अभिवादनकर एक ओर खळी ०हो० यह बोली—

"भन्ते आनन्द! मै भगवान्से एक वर माँगती हूँ, अच्छा हो भन्ते! भगवान् भिक्षुओ और भिक्षुणियोमे (परस्पर) (उपसम्पदाके) वृद्धपनके अनुसार अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथ जोळने= सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) करनेकी अनुमति दे दे।"

तब आयुष्मान् आनन्द० जाकर भगवान्को अभिवादन कर० एक ओर बैठे० भगवान्से यह बोले—

"भन्ते! महाप्रजापती गौतमी ऐसा कहती है—भन्ते आनन्द! मै भगवान्से एक वर माँगती हूँ, ०।"

"आनन्द! इसकी जगह नही, इसका अवकाश नही, कि तथागत स्त्रियो (=मातृग्राम)को अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोळने, सामीचि-कर्म करनेकी अनुमति दे। आनन्द! यह तीर्थिक (=दूसरे मतवाले साधु) भी जिनका धर्म ठीकसे नही कहा गया है, वह भी स्त्रियोको अभिवादन० करनेकी अनुमति नही देते, तो भला कैसे तथागत स्त्रियोको अभिवादन करनेकी अनुमति दे सकते है?"

तब भगवान्ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह, भिक्षुओको सबोधित किया

(१०) "भिक्षुओ! स्त्रियोको अभिवादन, प्रत्युत्थान, हाथजोळना, सामीचि-कर्म (=यथोचित सत्कारादि) नही करना चाहिये, जो करे उसे दुक्कटका दोष हो।" 3

(५) भिक्षुओ और भिक्षुणियोके समान और भिन्न शिक्षापद

तब महाप्रजापती गौतमी० जाकर० भगवान्को अभिवादनकर० एक ओर खळी (हो)०भगवान्से यह बोली—

"भन्ते! जो शिक्षापद (=आचार-नियम) भिक्षुओ और भिक्षुणियोके एकसे है, भन्ते! उनके विषयमे हमे कैसे करना चाहिये?"

"गौतमी! जो शिक्षापद० एकसे है, उनका जैसे भिक्षु अभ्यास करते है, वैसेही तुम भी अभ्यास करो।"

"भन्ते! जो शिक्षापद भिक्षुओ और भिक्षुणियोके पृथक् है, भन्ते! उनके विषयमे हमे कैसे करना चाहिये?"

"गौतमी! जो शिक्षापद० पृथक् है, विधानके अनुसार उनको सीखना (=अभ्यास करना) चाहिये।"

(६) धर्मका सार

तब महाप्रजापती गौतमीने० जाकर० भगवान्से यह कहा—

"भन्ते! अच्छा हो (यदि) भगवान् सक्षेपसे धर्मका उपदेश करे, जिसे भगवान्से सुनकर, एकाकी=उपकृष्ट, प्रमाद-रहित हो (मै) आत्म-सयमकर विहार करूँ।"

"गौ त मी! जिन धर्मोको तू जाने कि, वह (धर्म) स-रागके लिये है, विरागके लिये नही। सयोगके लिये है, वि-स यो ग (=वियोग=अलग होना)के लिये नही। जमा करनेके लिये है, विनाशके लिये नही। इच्छाओको वढानेके लिये है, इच्छाओको कम करनेके लिये नही। असन्तोषके लिये है, सन्तोषके लिये नही। भीळके लिये है, एकान्तके लिये नही। अनुद्योगिताके लिये है, उद्योगिता (=वीर्यारभ)के लिये नही। दुर्भरता (=कठिनाई)के लिये है, सुभरताके लिये नही। तो तू गौतमी! सोलहो आने (=ए का से न) जान, कि न वह धर्म है, न विनय है, न शास्ता (=बुद्ध)का शा स न (=उपदेश) है।

"और गौतमी! जिन धर्मोको तू जाने, कि वह विरागके लिये है, सरागके लिये नही। वियोग के लिये०। उद्योगके लिये०। विनाश०। इच्छाओको अल्प करनेके लिये०। सन्तोप के लिये०। एकान्तके लिये०। उद्योगके लिये०। सु भ र ता (=आसानी)के लिये०। तो तू गौतमी! सोलहो आने जान, कि यह धर्म है, यह विनय है, यह शास्ताका शासन है।"

§२—प्रातिमोक्षकी आवृत्ति, दोष-प्रतिकार, संघ-कर्म, अधिकरण-शमन और विनय-वाचन

(१) प्रातिमोक्ष[1]की आवृत्ति

१—उस समय भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षका पाठ (=उद्देश) न होता था। भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-प्रातिमोक्षके[2] उद्देश करनेकी।" 4

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—किसे भिक्षुणी-प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओको भिक्षुणियोके (लिये) प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 5

३—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोके आश्रम (=उपश्रय)मे जाकर भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षका उद्देश करते थे। लोग हैरान होते थे—'यह इनकी जायाये (=भार्यायें) है, यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) है। अब यह इनके साथ मौज करेगे।' भिक्षुओने उन मनुष्योके हैरान० होनेको सुना। तव उन भिक्षुओने भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोको प्रातिमोक्षका उद्देश नही करना चाहिये,० दुक्कट०। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके प्रातिमोक्षके उद्देश करनेकी।" 6

४—भिक्षुणियाँ न जानती थी, कैसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये। ०—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओसे भिक्षुणियोको सीखनेकी—ऐसे प्रातिमोक्षका उद्देश करना चाहिये।" 7

(२) दोषका प्रतिकार

१—उस समय भिक्षुणियाँ आपत्तियो(=दोषो)का प्रतिकार नही करती थी। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको आपत्तियोका न-प्रतिकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट।"०। 8

२—भिक्षुणियाँ न जानती थी, कि कैसे आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये।०—

---

[1] देखो भिक्खुणीपातिमोक्ख (पृष्ठ ३९—७०) भी। [2] देखो वहीं पृष्ठ ३९—७०।

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओसे भिक्षुणियोको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिका प्रतिकार करना चाहिये।" 9

३—तब भिक्षुओको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोके प्रतिकार (=Confession)को स्वीकार करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, भिक्षुओको भिक्षुणियोके प्रतिकारको स्वीकार करनेकी।" 10

४—उस समय भिक्षुणियाँ सळकपर भी, व्यूह (=भिड)मे भी, चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासगको एक कधेपरकर उकळूँ वैठ, हाथ जोळ आपत्तिका प्र ति- का र करती थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है, यह इनकी जारियाँ (=रखेलियाँ) है, रातको नाराज करके अव क्षमा करा रही है। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोके आपत्ति-प्रतिकारको नही स्वीकार करना चाहिये, ० ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके आपत्ति-प्रतिकारको ग्रहण करनेकी।" 11

५—भिक्षुणियाँ न जानती थी, कैसे आपत्तिको स्वीकार करना चाहिये। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओसे, भिक्षुणियोको सीखनेकी—इस प्रकार आपत्तिके (प्रतिकार) को स्वीकार करना चाहिये।" 12

(3) संघ-कर्म

१—उस समय भिक्षुणियोमे क र्म (–चुनाव आदि) न होता था। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोको, क र्म करनेकी।" 13

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—किसे भिक्षुणियोका कर्म करना चाहिये। ०—

"०अनुमति देता हूँ, भिक्षुओको भिक्षुणियोका कर्म करनेकी।" 14

३—उस समय जिनका कर्म (=दड) हो गया होता था, वह भिक्षुणियाँ सळकपर भी, व्यूहमे भी, चौरस्तेपर भी भिक्षुको देख पात्रको भूमिपर रख उत्तरासगको एक कधेपर कर, उकळूँ वैठ, हाथ जोळ—ऐसा करना चाहिये—(सोच) क्षमा कराती थी। लोग हैरान० होते थे—'यह इनकी जाया है, यह इनकी जारियाँ है, रातको नाराजकर अव क्षमा करा रही है। ०'—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोका क र्म नही कराना चाहिये, ०दुक्कट०।" 15

४—भिक्षुणियाँ न जानती थी, ०। ०—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओसे, भिक्षुणियोको सीखनेकी—इस प्रकार कर्म करना चाहिये।" 16

(४) अधिकरण-शमन

१—उस समय भिक्षुणियाँ सघके वीच भडन=कलह, विवाद करती एक दूसरेको मुख(रूपी) शक्ति (=शस्त्र)से पीळित कर रही थी। उस अधिकरण (=झगळे)को शान्त न कर सकती थी। भगवान्से यह वात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको, भिक्षुणियोके अधिकरणका फैसला (=शान्त) करनेकी।" 17

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोके अधिकरणका फैसला करते थे। उस अधिकरणके विनिश्चय (=देखने)के समय क र्म को प्राप्त भी दोषी भी भिक्षुणियाँ देखी जाती थी। भिक्षुणियोने यह कहा—

"अच्छा होता, भन्ते! आर्यायें ही भिक्षुणियोके क र्म को करती, आर्यायें ही भिक्षुणियोकी आपत्तिको स्वीकार करती, (किन्तु) भगवान्ने अनुमति दी है भिक्षुओको भिक्षुणियोके अधिकरणको शान्त करनेकी।"

भगवान्से यह वात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कर्मका आरोपकर भिक्षुणियोको देने की, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोके कर्मके करनेकी, भिक्षुओको भिक्षुणियोपर आपत्तिका आरोपकर भिक्षुणियो को देनेकी, भिक्षुणियोको भिक्षुणियोकी आपत्तिको स्वीकार करनेकी।" 18

(५) विनय-वाचन

उस समय उ त्प ल व र्णा भिक्षुणीकी अन्तेवासिनी (=शिष्या) वि न य सीखनेके लिये सात वर्षसे भगवान्का अनुवध (=अनुगमन) कर रही थी। स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर वह भूल जाती थी। उस भिक्षुणीने सुना कि भगवान् श्रावस्ती जाना चाहते हैं। तव उस भिक्षुणीसे यह हुआ—'मैं सात वर्षसे विनय सीखती भगवान्का अनुवध कर रही हूँ, स्मृति न रहनेसे सीख सीखकर उसे भूल जाती हूँ। स्त्रीके लिये जीवनभर शास्ताका अनुवध करना कठिन है। मुझे क्या करना चाहिये।' भगवान्से यह वात कही।—

"०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको भिक्षुणियोके लिये वि न य वाँचनेकी।" 19

प्रथम भाणवार (समाप्त) ॥१॥

§२—अभद्र परिहास

३—श्रावस्ती

(१) भिक्षुओका भिक्षुणियोपर कीचळ पानी डालना निषिद्ध

१—तव भगवान् वै शा ली मे इच्छानुसार विहारकर जिधर श्रा व स्ती है उधर चारिकाके लिये चल पळे। क्रमश चारिका करते जहाँ श्रावस्ती है वहाँ पहुँचे। वहाँ भगवान् श्रावस्तीमे अ ना थ - पिं डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु भिक्षुणियोपर पानी-कीचळ डालते थे, जिसमे कि वह उनकी ओर आसक्त हो। भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! भिक्षुओको भिक्षुणियोपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुके दडकर्म करनेकी।" 20

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—क्या दड-कर्म करना चाहिये? भगवान्से यह वात कही।—

"भिक्षुओ! उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 21

(२) भिक्षुओका भिक्षुणियाको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

उस समय प ड् व र्गी य भिक्षु शरीर खोलकर भिक्षुणियोको दिखलाते थे, उरु०, पुरुप-इन्द्रिय०, भिक्षुणियोसे दिल्लगी करते थे, भिक्षुणियोके पास (पुरुपोको वुरी इच्छासे) भेजते थे—जिसमे कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको शरीर०, उरु०, पुरुप-इन्द्रियको खोलकर भिक्षुणियोको नही दिखलाना चाहिये, भिक्षुणियोसे दिल्लगी नही करनी चाहिये, भिक्षुणियोके पास (पुरुपोको वुरी इच्छासे) भेजना नही चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ उस भिक्षुका दड-कर्म करनेकी। । उस भिक्षुको भिक्षुणी-सघ द्वारा न-वदनीय कराना चाहिये।" 22

(३) भिक्षुणियोका भिक्षुओपर कीचळ-पानी डालना निषिद्ध

१—उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ भिक्षुओपर पानी-कीचळ डालती थी०।—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको भिक्षुओपर कीचळ-पानी नही डालना चाहिये,०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दड-अकर्म करनेकी।" 23

२—तव भिक्षुओको यह हुआ—क्या दड-कर्म करना चाहिये ? भगवान्‌से यह बात कही।—
"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ आवरण (=रद्दकर देना) करनेकी।" 24

३—आवरण करनेपर भी उसे ग्रहण न करती थी। ०—
"०अनुमति देता हूँ (उस भिक्षुणीको) उपदेशसे वचित करनेकी।" 25

(४) भिक्षुणियोका भिक्षुओको नग्न शरीर दिखलाना निषिद्ध

१—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ शरीर०, स्तन०, उरु०, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुओको दिखलाती थी, भिक्षुओसे दिल्लगी करती थी, भिक्षुओके पास (स्त्रीको) भेजती थी—जिसमे कि वह उनपर आसक्त हो। ०—

"भिक्षुओ ! भिक्षुणीको शरीर०, स्तन०, उरु०, स्त्री-इन्द्रिय खोलकर भिक्षुको नही दिखलाना चाहिये, भिक्षुओसे दिल्लगी नही करनी चाहिये, भिक्षुओके पास (स्त्रीको) नही भेजना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीका दड-कर्म करनेकी।" ०। 26

२—"०अनुमति देता हूँ, आवरण करनेकी।" ०। 27
"०अनुमति देता हूँ, उपदेशसे वचित करनेकी।" 28

तव भिक्षुओको यह हुआ—क्या उपदेशसे वचित की गई भिक्षुणियोके साथ उपोसथ करना विहित है या नही ? ०—

"भिक्षुओ ! उपदेशसे वचित की गई (=उपदेश स्थगित) भिक्षुणीके साथ उपोसथ नही करना चाहिये, जव तक कि उस अधिकरणका फैसला न हो जाये।" 29

§४—उपदेश-श्रवण, शरीर सँवारना, मृत भिक्षुणीका दायभाग, भिक्षुको पात्र दिखलाना, भिक्षुसे भोजन ग्रहण करना

(१) उपदेश स्थगित करना

१—उस समय आयुष्मान् उ दा यी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये। भिक्षुणियाँ हैरान० होती थी—'कैसे आर्य उदायी उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये चले गये ! !' भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर चारिकाके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०। 30

२—उस समय मूढ अजान उपदेश स्थगित करते थे। ०—
"भिक्षुओ ! मूढ अजानको उपदेश स्थगित नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 31

३—उस समय भिक्षु विना (कोई) वातके, अकारण उपदेश स्थगित करते थे। ०—
"भिक्षुओ ! विना (कोई) वातके अकारण उपदेश स्थगित नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 32

४—उस समय भिक्षु उपदेश स्थगितकर विनिश्चय (फैसला) न देते थे। ०—
"भिक्षुओ ! उपदेश स्थगितकर न-विनिश्चय देना नही चाहिये, ०दुक्कट०। 33

(२) उपदेश सुनने जाना

१—उस समय भिक्षुणियाँ उपदेश (=अववाद) मे न जाती थी। ०—
"भिक्षुओ ! भिक्षुणियोको उपदेशमे न-जाना नही चाहिये, जो न जाये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये।" 34

२—उस समय सारा भिक्षुणी-सघ उपदेश (सुनने) के लिये जाता था। लोग हैरान० होते थे—

यह इन (भिक्षुओ)की जाया है, यह इनकी जारियाँ है, अब यह इन (भिक्षुओ)के साथ मौज करेगी।'०—

"भिक्षुओ! सारे भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, जाये तो दुक्कटका दोप हो। भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, चार पाँच भिक्षुणियोको (एक साथ) उपदेशके लिये जानेकी।" 35

३—उस समय चार पाँच भिक्षुणियाँ (साथ) उपदेशके लिये जा रही थी। लोग हैरान० होते थे—यह इनकी जाया है०।०—

"भिक्षुओ! चार पाँच भिक्षुणियोको उपदेशके लिये नही जाना चाहिये, ०दुक्कट०।०अनुमति देता हूँ, तीन भिक्षुणियोको उपदेशके लिये जानेकी।"

"एक भिक्षुके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग करके चरणमे वदना करके उकळूँ बैठ हाथ जोळ उनसे ऐसा कहना चाहिये—'आर्य! भिक्षुणी-सघ भिक्षु-सघके चरणोमे वदना करता है, उपदेशके लिये आनेकी प्रार्थना करता है। भन्ते! भिक्षुणी-सघको उपदेशके लिये आने(की स्वीकृति) मिलनी चाहिये। प्रातिमोक्ष-उपदेशक भिक्षुको पूछना चाहिये—क्या कोई भिक्षु भिक्षुणियो का उपदेशक चुना गया है? यदि कोई भिक्षु भिक्षुणियोका उपदेशक चुना गया है, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशक भिक्षुको कहना चाहिये—इस नामवाला भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक चुना गया है, भिक्षुणी-सघ उसके पास जावे।' यदि कोई भिक्षुणी-सघको उपदेश नही देना चाहता, तो प्रातिमोक्ष-उद्देशकको कहना चाहिये—'कोई भिक्षु भिक्षुणी-सघका उपदेशक नही चुना गया है। अच्छी तरह (=प्रासादि-केन) भिक्षुणी-सघ (अपना काम) सम्पादित करे'।" 36

(३) भिक्षुओका उपदेश स्वीकार करना

१—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार न करते थे।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुको उपदेश अ-स्वीकार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 37

२—उस समय एक भिक्षु अजान था, भिक्षुणियोने उसके पास जाकर यह कहा—

"आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार करो।"

"भगिनी! मै अजान हूँ, कैसे मै उपदेश (की प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! उपदेश(की प्रार्थना)को, भगवानने विधान किया है—भिक्षुको उपदेश अस्वीकार नही करना चाहिये।"

भगवान्से यह बात कही—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, अजानको छोळकर बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 38

३—उस समय एक भिक्षु रोगी था, भिक्षुणियो ने उसके पास जाकर यह कहा—०।—

"भगिनी! मै रोगी हूँ, कैसे मै उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करूँ।"

"स्वीकार करो आर्य! भगवान्ने विधान किया है, अजानको छोळ बाकी को उपदेश (की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।"

भगवान्से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ अजान और रोगीको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 39

४—उस समय एक भिक्षु ग मि क (=यात्रापर जानेवाला) था।०।—

"०अनुमति देता हूँ, अजान, रोगी और गमिकको छोळ बाकीको उपदेश(की प्रार्थना) स्वीकार करनेकी।" 40

५—उस समय एक भिक्षु अरण्यमें विहार करता था।०।—

"०अनुमति देता हूँ आरण्यक भिक्षुको उपदेश (देनेकी प्रार्थना)को स्वीकार करनेकी, और दूसरे स्थानपर प्रतिहार (=प्रतीक्षा) करनेका सकेत करनेकी।" 41

६—उस समय भिक्षु उपदेश(की प्रार्थना)को स्वीकार कर नही उपदेश करते थे। ०—

"भिक्षुओ! उपदेश-न-करना नही चाहिये, ०दुक्कट०।" 42

उस समय भिक्षु उपदेशको स्वीकारकर प्रत्याहरण (=पालन करना) नही करते थे।०—

"भिक्षुओ! उपदेशका न-प्रत्याहार नही करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 43

(४) भिक्षुणियोंको उपदेश सुननेके लिए न जानेपर दण्ड

उस समय भिक्षुणियाँ (उपदेशके लिये) बतलाये स्थानपर नही जाती थी।०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको बतलाये स्थानपर न जाना नही चाहिये, जो न जाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 44

(५) कमरबन्द

उस समय भिक्षुणियाँ लम्बे कायबधन (=कमरबद)को धारण करती थी। उन्हीकी पोछ (=फासुका) लटकाती थी। लोग हैरान होते० थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ-(स्त्रियाँ)! ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको लम्बा काय-बधन नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०। ०अनुमति देता हूँ भिक्षुओको एक फेरा कायबधनकी, उसकी पोछ नही लटकानी चाहिये, जो लटकावे उसे दुक्कटका दोष हो।" 45

(६) सँवारनेके लिए कपळा लटकाना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ वी लि व (=वाँसके बने) पट्टकी पोछ लटकाती थी, चर्मपट्टकी०, दुस्स (=थान) पट्ट०, दुस्स-वेणी (=कपडेको गूथकर)०, दुस्स-वट्टी (=झालर०), चोल-पट्ट (=साडीका चुनाव)०, चोल-वेणी०, चोल-वट्टी०, सूतकी वेणी०, सूतकी वट्टी०। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)। ०—

"भिक्षुओ! भिक्षुणियोको वीलिव-पट्ट०, चर्म-पट्ट०, दुस्स-पट्ट०, दुस्स-वेणी०, दुस्स-वट्टी०, चोल-पट्ट०, चोल-वेणी०, चोल-वट्टी०, सूतकी वेणी०, सूतकी वट्टीकी पोछ नही लटकानी चाहिये, जो लटकाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 46

(७) सँवारनेके लिये मालिश करना निषिद्ध

उस समय भिक्षुणियाँ (गायकी जाँघकी) हड्डीसे जाँघको मसलवाती थी, गायके हनुक (=(=नीचेके जवडेकी हड्डी)से पेडुलीको थपकी लगवाती थी, हाथ०, हाथकी मुसुक०, पैर०, पैरके ऊपरी भाग०, ०, जाँघ०, मुख०, दाँतके मसूळेको थपकी लगवाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)! ०—

"०भिक्षुणियोको हड्डीसे जाँघको नही मसलवाना चाहिये, गायके हनुकसे पेडुलीको नही थपकी लगवानी चाहिये, हाथ०, हाथकी मुसुक०, पैरके ऊपरी भाग०, जाँघ०, मुख०, दाँतके मसूँळेमे थपकी नही लगवानी चाहिये, जो लगवाये उसे दुक्कटका दोष हो।" 47

(८) मुखके लेप, चूर्ण आदिका निषेध

उस समय ष ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ मुखपर लेप करती थी, मुखकी मालिश करती थी, मुखपर चूर्ण डालती थी, मुखको मैनसिलसे लाछित करती थी, अगराग (=अबटन) लगाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ)!! ०—

"०भिक्षुणियोको मुखपर लेप नही करना चाहिये, मुखकी मालिश नही करनी चाहिये, मुख पर चूर्ण नही डालना चाहिये, मुखको मैनसिलसे लाछित नही करना चाहिये, अगराज नही लगाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 48

(९) अंजन देने, नाच तमाशा, दूकान व्यापार करनेका निषेध

उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ अपाग (=आँजन) करती थी, (कपोलपर) विशेषक (=चिह्न) करती थी। झरोखेसे झाँकती थी। द्वारपर शरीर दिखाती खळी होती थी। समज्या (=नाच-नाटक) कराती थी। वेश्या बैठाती थी। दूकान लगाती थी। पान-आगार (=शरावखाना) चलाती थी। मासकी दूकान करती थी। सूदपर (रुपया) लगाती थी। व्यापारमे (रुपया) लगाती थी। दास रखती थी। दासी रखती थी। नौकर (=कर्मकर) रखती थी। नौकरानी रखती थी। तिर्यग्योनि-वालोको रखती थी। हर्रा पाक (पसारीकी दूकान) पसारती थी, नमतक (=वस्त्र-खड) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ) ! ०—

"०भिक्षुणियोको आँजन नही करना चाहिये,० नमतक नही धारण करना चाहिये, ० ०दुक्कट० ।" 49

(१०) बिलकुल नीले, पीले आदि चीवरोका निषेध

उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ सारे ही नीले[१] चीवरोको धारण करती थी, सारे ही पीले०, सारे ही लाल०, सारे ही मजीठ०, सारे ही काले०, सारे ही महारगसे रगे, सारे ही हल्दीसे रँगे चीवरोको धारण करती थी। कटी किनारीवाले०, लम्बी किनारीवाले०, फूलदार किनारीवाले०, फण(की शकल)की किनारीवाले चीवरोको धारण करती थी। कचुक धारण करती थी, तिरीटक (=वृक्षकी छाल) धारण करती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ !" भगवान्‌से यह बात कही।—

"०भिक्षुणियोको सारे ही नीले चीवरोको नही धारण करना चाहिये, सारे ही पीले०,०, तिरी-टक नही धारण करना चाहिये, ०दुक्कट०।" 50

(११) भिक्षुणियोंके दायभागी

उस समय एक भिक्षुणीने मरते समय यह कहा—मेरा सामान (=परिष्कार) सघका हो। वहाँ भिक्षु और भिक्षुणियाँ दोनो विवाद करती थी—'हमारा होता है, हमारा होताहै।' भगवान्‌से यह बात कही।—

"यदि भिक्षुओ ! भिक्षुणीने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षु-सघ उसका मालिक नही, भिक्षुणी-सघका ही वह होता है। यदि शिक्षमाणाने ०। यदि श्रामणेरीने०। यदि भिक्षुओ ! भिक्षुने मरते वक्त कहा हो—मेरा सामान सघका हो, तो भिक्षुणी-सघ उसका मालिक नही, भिक्षु-सघका ही वह होता है। यदि श्रामणेरने०। यदि उपासकने०। यदि उपासिकाने० भिक्षु-सघका ही वह होता है।" 51

(१२) भिक्षुको ढकेलनेका निषेध

उस समय एक भूतपूर्व पहलवान स्त्री (=मल्ली) भिक्षुणियोमे प्रव्रजित हुई थी। वह सळकमे दुर्वल भिक्षुको देख असकूट (=दाहिना कधा खुला जाकट)से प्रहार दे गिरा देती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—कैसे भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार देगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

---

[१] मिलाओ महावग्ग, चीवरक्खधक ८ (पृष्ठ ३५३)।

"भिक्षुओ ! भिक्षुणी भिक्षुको प्रहार न देवे,० दुक्कट०।० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणीको भिक्षु देख दूर हट (उसे) मार्ग देना।" 52

(१३) भिक्षुको पात्र खोलकर दिखलाना चाहिये

१—उस समय एक स्त्रीका पति परदेश चला गया था, और उसे जारसे गर्भ हो गया। उसने गर्भ गिराकर (वरावर) घर आनेवाली भिक्षुणीसे यह कहा अच्छा हो आर्ये ! इस गर्भको पात्रमे वाहर ले जाओ। तव वह उस भिक्षुणीके उस गर्भको पात्रमे रख मघाटीसे ढाँक चली गई। उस समय एक पिंडचारिक (=निमत्रण न ले सदा भिक्षा माँगकर खानेवाला) भिक्षुने प्रतिज्ञा की थी—मै जो भिक्षा पहिले पाऊँगा, उसे भिक्षु या भिक्षुणीको विना दिये नही खाऊँगा। तव उस भिक्षुने उस भिक्षुणीको देख यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

"नही, आर्य !"

दूसरी वार भी०। तीसरी वार भी उस भिक्षुने उम भिक्षुणीको यह कहा—

"हन्त भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

"नही, आर्य !"

"भगिनी ! मैंने समारतन (=प्रतिज्ञा)की है, मै जो भिक्षा पहिले पाऊँगा, उसे भिक्षु या भिक्षुणीको विना दिये नही खाऊँगा। हन्त, भगिनी ! भिक्षा स्वीकार कर।"

तव उस भिक्षु-द्वारा अत्यन्त वाध्य किये जानेपर उस भिक्षुणीने पात्र निकालकर दिखला दिया—

"देखो आर्य ! पात्रमे गर्भ है। मत किसीसे कहना।"

तव वह भिक्षु हैरान० होता था—'कैसे भिक्षुणी पात्रमे गर्भ ले जायेगी'। तव उस भिक्षुने भिक्षुओको यह वात कही। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षु०।०—

"० भिक्षुणीको पात्रमे गर्भ नही ले जाना चाहिये,० दुक्कट ०।० अनुमति देता हूँ भिक्षुको देख कर भिक्षुणीको पात्र निकालकर दिखलानेकी।" 53

२—उस समय षड्वर्गीया भिक्षुणिया भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदीको दिखलाती थी। भिक्षु हैरान० होते थे—०।

भगवान्‌से यह वात कही—

"० भिक्षुणियोको भिक्षु देख उलटकर पात्रकी पेंदी नही दिखलानी चाहिये,० दुक्कट ०।० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणीको भिक्षु देख पात्रको उघाळकर दिखलानेकी, और जो पात्रमे भोजन हो, उसके लिये निमन्त्रित करनेकी।" 54

(१४) पुरुष-व्यजन देखनेका निषेध

उस समय श्रावस्तीमे सळकपर पुरुष व्यजन (=लिंग)फेंका हुआ था। भिक्षुणियाँ वडे गौरसे देखने लगी। मनुष्योने ताना (=उक्कुट्ठि) मारा। वह भिक्षुणियाँ (लज्जासे) चुप मूक हो गईं। तव उन भिक्षुणियोने उपश्रय (=आश्रम) मे जा भिक्षुणियोसे यह वात कही। जो वह अल्पेच्छ० भिक्षुणियाँ थी, वह हैरान ० होती थी—कैसे भिक्षुणियाँ पुरुष-व्यजनको गौरसे देखेगी ! ! तव उन भिक्षुणियोने भिक्षुओ से यह वात कही। भिक्षुओने भगवान्‌से यह वात कही।—

"० भिक्षुणियोको पुरुष-व्यजन नही गौरसे देखना चाहिये,० दुक्कट ०।" 55

(१५) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको परस्पर भोजन देनेमें नियम

१—उस समय लोग भिक्षुओंको भोजन (=आमिष) देते थे। भिक्षु (उसे), भिक्षुणियोंको दे देते थे। लोग हैरान ० होते थे—'कैसे भदन्त (लोग) अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरे को देंगे!! क्या हम दान देना नही जानते?' ०—

"भिक्षुओ! अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नही देना चाहिये।० दुक्कट ०।" 56

२—उस समय भिक्षुओंके पास अधिक भोजन (=आमिष) जमा हो गया था। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, सघको देनेकी।" 57

३—बहुत ही अधिक जमा हो गया था।०—

"० अनुमति देता हूँ, व्यक्तिके लिये भी देनेकी।" 58

४—उस समय भिक्षुओंको जमा किया भोजन मिला था।०—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंके जमा किये (पदार्थ)को भिक्षुओंको दिलवाकर खानेकी।" 59

५—उस समय लोग भिक्षुणियोंको भोजन देते थे ०।—

"० भिक्षुणियोंको अपने खानेके लिये दिये गये (भोजन)को दूसरेको नही देना चाहिये,० दुक्कट ०।"० 60

६—"० अनुमति देता हूँ सघको देनेकी।"० 61

७—"० अनुमति देता हूँ व्यक्तिके लिये भी देनेकी।"० 62

८—"० अनुमति देता हूँ भिक्षुओंके जमा किये हुये (पदार्थ)को भिक्षुणियोंको दिलवाकर खानेकी।" 63

§५—आसन-वसन, उपसम्पदा, भोजन, प्रवारणा, उपोसथ-स्थान, सवारी और दूत द्वारा उपसम्पदा

(१) भिक्षुओंका भिक्षुणियोंको आसन आदि देना

उस समय भिक्षुओंके पास शयन-आसन (=आसन-बिछौना) अधिक था, भिक्षुणियोंके पास न था। भिक्षुणियोंने भिक्षुओंके पास सन्देश भेजा—"अच्छा हो भन्ते! आर्य (लोग) हमें कुछ समयके लिये शयन-आसन दें। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ भिक्षुणियोंको कुछ समयके लिये शयन-आसन देनेकी।" 64

(२) ऋतुमती भिक्षुणीके नियम

१—उस समय ऋतुमती भिक्षुणियाँ गद्दीदार चारपाइयों गद्दीदार चौकियोंपर बैठती भी लेटती भी थीं। शयन-आसन खूनसे सन जाता था।०—

"० ऋतुमती भिक्षुणियोंको गद्दीदार चारपाइयों गद्दीदार चौकियोंपर नहीं बैठना चाहिये, लेटना चाहिये,० दुक्कट ०।"

"०अनुमति देता हूँ आवसथ-चीवर[1]की।" 65

२—(आवसथ-चीवर) खूनसे सन जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ आणि-चोळ (=लोहू-सोख) की।" 66

३—आणि-चोळक गिर जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, सूतसे बाँधकर उसमे बाँधनेकी।" 67

४—सूत टूट जाता था।०—

"० अनुमति देता हूँ ऐंठे (=संवेल्लिय) कटि-सूत्रकी।" 68

५—उस समय पड्वर्गीया भिक्षुणियाँ सर्वदा ही कटि-सूत्र धारण करती थी। लोग हैरान ० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (-स्त्रियाँ)!! ०—

"० भिक्षुणियोको सर्वदा कटिसूत्र नही धारण करना चाहिये,० दुक्कट०। अनुमति देता हूँ ऋतुमतीको कटि-सूत्रकी।" 69

द्वितीय भाणवार (समाप्त) ॥२॥

(३) उपसम्पदाके लिये शारीरिक दोषका ख्याल रखना

१—उस समय उपसपदा प्राप्त (भिक्षुणियाँ)मे देखी जाती थी—निमित्त (=स्त्री चिन्ह) रहित भी, निमित्तमात्रा (=हिजडिन)भी, आलोहिता[2] भी, ध्रुवलोहिता[2] भी, ध्रुवचोळा[2] भी, पग्घरन्ती[2] भी, शिखरिणी भी, स्त्रीपडक (=हिजळिन)भी, द्विपुरुषिका भी, सम्भिन्न भी, (स्त्री पुरुष) दोनोके लक्षणवाली भी। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, उपसम्पदा देते वक्त चौवीस अ न्त रा यि क (=विघ्नकारक) धर्मो (=बातोके) पूछनेकी। 70

"और ऐसे पूछना चाहिये—[3] (१) तू निमित्त-रहित तो नही है? (२) निमित्त-मात्र०? (३) आलोहिता०? (४) ध्रुवलोहिता०? (५) ध्रुवचोळा०? (६) पग्घरन्ती०? (७) शिखरिणी,०? (८) स्त्री-पडक०? (९) द्वेपुरुषिक०? (१०) सम्भिन्ना०? (११) दोनो लक्षणवाली ०? क्या तुझे ऐसी बीमारी है,[1] जैसे कि (१२) कोढ, (१३) गड (=एक प्रकारका बुरा फोळा), गड (=एक प्रकारका फोळा), (१४) किलास (=एक प्रकारका बुरा चर्म रोग), (१५) शोथ, (१६) मृगी? (१७) तू मनुष्य है? (१८) तू स्त्री है? (१९) तू स्वतत्र (=अदासी) है, (२०) तू उऋण है? (२१)तू राज-भटी (=राजाकी सैनिक स्त्री) तो नही है? (२२) तुझे मात, पिता और पतिने अनुमति दी है (भिक्षुणी बननेकी)? (२३) तू पूरे बीस वर्षकी की है? (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (सख्यामे) पूरे है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनी (=गुरु)का क्या नाम है?"

२—उस समय भिक्षु भिक्षुणियोके अ न्त रा यि क धर्मोको पूछते थे। उपसपदा चाहनेवाली लजाती थी, चुप हो जाती थी, उत्तर नही दे सकती थी,। भगवान्से यह बात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, (पहिले) एक (भिक्षुणी-सघ)मे उपसपन्न हुई, (अन्तरायिक दोषोसे)शुद्ध को (फिर) भिक्षु-सघमे उपसपदा देनेकी।" 71

अ नु शा स न—उस समय अनुशासन न किये ही उपसपदा चाहनेवालीसे भिक्षु लोग (तेरह) विघ्नकारक बातोको पूछते थे। उपसपदा चाहनेवाली चुप हो जाती थी, मूक हो जाती

---

[1]ऋतुकालके उपयोगके लिये कपळा। [2]ऋतुविकारवाली स्त्रियोकी सज्ञा।

[3]मिलाओ महावग्ग १§४।६ (पृष्ठ १३२)।

थी, उत्तर नही दे सकती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, पहले अनुशासन दे (=सिखा) करके, पीछे अन्तरायिक बाधक बातोके पूछनेकी।"

वही सघके बीचमे अनुशासन करते। उपसपदा चाहनेवाली (फिर) उसी तरह चुप रह जाती थी, मूक हो जाती थी, उत्तर न दे सकती थी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ, एक ओर ले जाकर विघ्नकारक बातोके अनुशासन करनेकी, और सघके बीचमे पूछनेकी और भिक्षुओ! इस प्रकार अनुशासन करना चाहिये—पहले उपाध्याय ग्रहण कराना चाहिये।

उपाध्याय ग्रहण करा पात्र-चीवरको बतलाना चाहिये—

"यह तेरा पात्र है, यह सघाटी, यह उत्तरा-सग, यह अन्तरवासक, यह सकच्चिक (=अगरखा), यह उदक-शाटी (=ऋतु वस्त्र) है। जा उस स्थानमे खळी हो।"

तब उस उपसपदा चाहनेवालीके पास जाकर ऐसा कहना चाहिये।

अमुक नामवाली! सुनती हो? यह तुम्हारा सत्यका काल=भूतका काल है। जो जानता है सघके बीच पूछनेपर है होनेपर "है" करना चाहिये, नही होनेपर "नही" कहना चाहिये। चुप मत होजाना, मूक मत हो जाना, (सघमे) इस प्रकार तुझसे पूछेगे—

(१) तू निमित्त-रहित तो नही है,०, (२४) तेरे पास पात्र-चीवर (सख्यामे) पूरे तो है? तेरा क्या नाम है? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है?

३ (उस समय अनुशासिका और उपसपदा चाहनेवाली दोनो) एक साथ (सघमे) आती थी। (भगवान्‌से यह बात कही)।—

"भिक्षुओ! एक साथ नही आना चाहिये।" 73

उपसम्पदाकी कार्यवाही

"अनुशासिका पहले आकर सघको सूचित करे—

क आर्यो! सघ मेरी (बात) सुने! यह इस नामकी इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। मैने उसको अनुशासन किया है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उपसम्पदा चाहनेवाली) आवे। 'आओ!' कहना चाहिये। (फिर) एक कधेपर उत्तरासघको करवाकर भिक्षुणियोके चरणोमे वदना करवा उकळूँ बैठवा, हाथ जोळवा, उपसपदा के लिये याचना करवानी चाहिये—

ᶦयाचना (१) आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(२) दूसरी बार भी०।

(३) तीसरी बार भी याचना करवानी चाहिये—आर्ये! सघसे उपसपदा माँगती हूँ। आर्ये! सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे।

(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको ज्ञापित करे—

भन्ते! सघ मेरी सुने—

यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मेदवार) से विघ्नकारक बातोको पूछूँ।

सुनती है इस नामवाली! यह तेरा सत्यका (भूतका) काल है। जो उसे पूछती हूँ।

होनेपर 'है' कहना नही होनेपर 'नही है' कहना। क्या (१) तू निमित्त-रहित तो नही ० तेरे पात्र-चीवर (पूर्ण-सख्यामे) है ? तेरा क्या नाम है ? तेरी प्रवर्तिनीका क्या नाम है ?

"(फिर) चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको सूचित करे—

"क ज्ञप्ति—आर्ये ! सघ मेरी (वात) सुने, यह इस नामवाली, इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली (शिष्या), विघ्नकारक वातोसे शुद्ध है। (इसके) पात्र-चीवर परिपूर्ण है। (यह) इस नामवाली (उम्मीदवार) इस नामवाली (भिक्षुणीको) प्रवर्तिनी वना सघसे उपसपदा चाहती है। यदि सघ उचित समझे तो इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमे उपसपदा दे—यह सूचना।

"ख अनुश्रावण—(१) आर्य ! सघ मेरी सुने। यह इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसपदा चाहनेवाली शिष्या अन्तरायिक वातोसे परिशुद्ध है, (इसके) पात्र-चीवर परिपूर्ण है। (यह) इस नामवाली उम्मीदवार इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमे उपसपदा चाहती है। सघ इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमे उपसपदा देता है। जिस आर्याको इस नामवाली (उम्मीदवार)की इस नामवाली (आयुष्मान्)के उपाध्यायत्वमे उपसपदा पसद है वह चुप रहे। जिसको पसद नही है वह वोले। (२) दूसरी वार भी इसी वात को कहता हूँ—आर्ये ! सघ मेरी सुने ०। (३) तीसरी वार भी इस वातको कहती हूँ—आर्ये ! सघ मेरी सुने ० जिसको पसद नही है वह वोले।

ग धारणा—"इस नामवाली (उम्मीदवार)को इस नामवाली (आर्या)के उपाध्यायत्वमे उपसपदा सघने दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ।"

(४)उसी वक्त उसे लेकर भिक्षु-सघके पास जा एक कधेपर उत्तरा-सग करवा भिक्षुओके चरणोमे वन्दना करवा उकळूँ वैठवा हाथ जोळवा उपसपदा मँगवानी चाहिये—

याचना—"(१) आर्यो ! मै इस नामवाली इस नामवाली आर्याकी उपसपदापेक्षी (=शिष्या), एक ओर (भिक्षुणी-सघमे) उपसपदा पाई, भिक्षुणी-सघमे (पूछे गये अन्तरायिक दोषोसे) शुद्ध हूँ। आर्यसघसे मै उपसपदा माँगती हूँ। आर्य-सघ अनुकपा करके मेरा उद्धार करे। (२) दूसरी बार भी, आर्यो ! मै इस नामवाली०।

"तीसरी वार भी, आर्यो ! मै इस नामवाली०।"

तव चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

ज्ञप्ति०। प्र० द्वि० तृ० अनुश्रावण०।

फिर चतुर समर्थ भिक्षु—पसद नही है वह वोले।

ग (धारणा)—"इस नामवाली (उम्मेदवार)को इस नामवाली आर्याके प्रवर्तिनीत्वमे सघने उपसपदा दी। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करता हूँ।"

५—उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये। ऋतुका प्रमाण वतलाना चाहिये। दिनका भाग वतलाना चाहिये। सगीति [1]वतलानी चाहिये। भिक्षुणियोको कहना चाहिये—'इसे तीन निश्रय[2] और आठ अकरणीय वतलाओ।'

(४) भोजनसे उठनेके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ भोजनके समय आसनपर (सूत्रोका) सगायन (=साथ

---

[1]छाया, ऋतु और दिनका भाग इन तीनोको इकट्ठा करनेको सगीति कहते है।

[2]महावग्ग पृष्ठ १३४-३५ (वृक्षके नीचे निवासको छोळकर)।

मिलकर स्वर सहित पाठ) करती समय विताती थी। भगवान्‌से यह वात कही—

"० अनुमति देता हूँ आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार वाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी)।" 76

२—उस समय भिक्षुणियाँ —भगवान्‌ने आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार (उठनेकी) आज्ञा दी है—(सोच) सभी जगह आठ ही भिक्षुणियाँ वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा करती थी, और बाकी आनेके क्रमके अनुसार (चली जाती थी)। भगवान्‌से यह वात कही।—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके समय आठ भिक्षुणियोको वृद्धपनके अनुसार और बाकीको आनेके क्रमके अनुसार। और सव जगह वृद्धपनके अनुसार प्रतीक्षा नही करनी चाहिये,० दुक्कट ०।" 77

(५) प्रवारणाके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ प्र वा र णा[1] नही करती थी।०—

"० भिक्षुणियोको प्रवारणा-न-करना नही चाहिये, जो प्रवारणा न करे उसका धर्मके अनुसार (दड) करना चाहिये।" 78

२—० भिक्षुणियाँ अपनेमे प्रवारणा करके भिक्षु-सघमे प्रवारणा नही करती थी।०—

"० भिक्षुणियोका अपनेमे प्रवारणा करके भिक्षुसघमे प्रवारणा न करना ठीक नही, जो न करे उसे धमके अनुसार (दड) करना चाहिये।" 79

३—० भिक्षुणियोने भिक्षुओके साथ एक समय प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको भिक्षुओके साथ एक समय प्रवारणा नही करनी चाहिये, ० दुक्कट ०।" 80

४—० भिक्षुणियाँ भोजनमे पहिले प्रवारणा करती थी, (उसमे उन्होने भोजनके) कालको विता दिया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भोजनके वाद प्रवारणा करनेकी।" 81

५—भोजनके वाद प्रवारणा करते विकाल हो गया।०—

"० अनुमति देता हूँ, आज (अपने सघमे) प्रवारणा करके कल भिक्षु-सघम प्रवारणा करनेकी।" 82

(६) प्रतिनिधि भेज भिक्षु-सङ्घमे प्रवारणा

उस समय सारे भिक्षुणी-सघने (भिक्षुसघमे जा) प्रवारणा करते कोलाहल किया।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे प्रवारणा करनेके लिये एक चतुर समर्थ भिक्षुणीको चुननेकी।" 83

"और इस प्रकार चुनाव (=समत्रण) करना चाहिये—पहिले उस भिक्षुणीसे पूछकर चतुर समर्थ भिक्षुणी सघको सूचित करे—

"क ज्ञ प्ति—'आर्या सघ! मेरी सुने—यदि सघ उचित समझे, तो भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुने—यह सूचना है।

"ख अ नु श्रा व ण—(१)'आर्या सघ! मेरी सुने—सघ भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे

---

[1] मिलाओ महावग्ग, प्रवारणा-स्कन्धक (पृष्ठ १८५)।

प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन रहा है, जिस आर्याको पसद हो, वह चुप रहे, जिस आर्याको पसद न हो वह बोले ।'

"(२) दूसरी वार भी, आर्या सघ ! मेरी सुने—० ।

"(३) तीसरी वार भी, आर्या सघ ! मेरी सुने—० ।

"ग धा र णा—'सघने भिक्षुणी-सघकी ओरसे भिक्षु-सघमे प्रवारणा करनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारण करती हूँ' ।"

वह चुनी गई (=सम्मत) भिक्षुणी भिक्षुणी-सघको (साथ) ले भिक्षु सघके पास जा, उत्तरासगको एक कधेपर कर भिक्षुओके चरणोमे वन्दनाकर, उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसे कहे—

(१) "आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे, सुने, और शका किये (सभी दोषोके लिये) भिक्षु-सघके पास प्रवारणा करता है। आर्यो ! कृपा करके भिक्षु-सघ भिक्षुणी-सघको (उसके दोष) कहे, देखनेपर (वह उसका) प्रतिकार करेगा ।

"(२) दूसरी वार भी, आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे० ।

"(३) तीसरी वार भी, आर्यो ! भिक्षुणी-सघ देखे० ।"

(७) उपोसथ स्थगित करना

उस समय भिक्षुणियाँ भिक्षुओके उपोसथको स्थगित करती थी, प्रवारणा स्थगित करती थी, वात मारती (=सवचनीय करती) थी, अ नु वा द (=निन्दा) प्रस्थापित करती थी, अवकाश करवाती थी, दोपारोप करती थी, स्मरण दिलाती थी ।०—

"० भिक्षुणियोका भिक्षुओका उपोसथ स्थगित नही करना चाहिये (उनका) स्थगित किया न स्थगित किया होगा, स्थगित करनेवालीको दुक्कटका दोप होगा। प्रवारणा स्थगित नही करनी चाहिये०, वात नही मारनी चाहिये०, अनुवाद प्रस्थापित नही करना चाहिये०, अवकाश नही करवाना चाहिये०, दोषरोप नही करना चाहिये०, स्मरण नही दिलाना चाहिये, स्मरण दिलाया भी न-स्मरण-दिलाया होगा, स्मरण दिलानेवालीको दुक्कटका दोप होगा।" 84

उस समय भिक्षु भिक्षुणियोके उपोसथको स्थगित करते थे,०, स्मरण दिलाते थे ।०—

"० अनुमति देता हूँ, भिक्षुओको भिक्षुणियोके उपोसथको स्थगित करनेकी, स्थगित किया ठीक स्थगित किया (समझा) जायेगा, और स्थगित करनेवालेको दोप नही होगा, ० स्मरण दिलानेकी, स्मरण दिलाया ठीकसे स्मरण दिलाया (समझा) जायेगा, और स्मरण दिलानेवालेको दोप नही होगा ।" 85

(८) सवारीके नियम

१—उस समय प ड् व र्गी या भिक्षुणियाँ स्त्रीयुक्त दूसरे पुरुपवाले, पुरुषयुक्त दूसरी स्त्रीवाले यान (=सवारी)से जाती थी । लोग हैरान ० होते थे—जैसे गगाका मेला (=गगामहिया) । भगवान्से यह बात कही—

"० भिक्षुणीको यानमे नही जाना चाहिये, जो जाये उसे धर्मानुसार (दड) करना चाहिये ।" 86

२—० एक भिक्षुणी बीमार थी, पैरसे नही चल सकती थी ।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमारको यानकी।" 87

तब भिक्षुणियोको यह हुआ—क्या स्त्री-युक्त (यान)की या पुरुप-युक्त (यान)की ? भगवान्से यह बात कही ।—

"० अनुमति देता हूँ, स्त्री-युक्त, पुरुप-युक्त (और) हत्थवट्टक (=हाथसे खीचे)की ।" 88

३—उस समय एक भिक्षुणीको यानके उद्घात (=झटका)से बहुत अधिक कष्ट हुआ ।०—

"० अनुमति देता हूँ, शिविका, (और) पाटकी (=पालकी)की ।" 89

(९) दूत भेजकर उपसम्पदा

१—उस समय अ ड्ढ का सी (=आढच-काशी, काशी देशकी धनिक) गणिका भिक्षुणियोमे प्रव्रजित हुई थी। वह भगवान्‌के पास जा उपसम्पदा पानेकी इच्छासे श्रा व स्ती जाना चाहती थी। बदमाशो (=धूर्तो)ने सुना—आ ढ्य का शी गणिका श्रावस्ती जाना चाहती है। वह मार्गमे जा लगे। आढचकाशी गणिकाने सुना—मार्गमे बदमाश लगे है। उसने भगवान्‌के पास दूत भेजा—'मै उपसम्पदा लेना चाहती हूँ, मुझे क्या करना चाहिये ?'

तब भगवान्‌ने इसी सबधमे इसी प्रकरणमे धार्मिक कथा कह भिक्षुओको सबोधित किया—

"भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, दूत द्वारा उपसम्पदा देनेकी ।" 90

२—भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा करते थे।०—

"भिक्षुओ ! भिक्षु-दूत भेजकर उपसम्पदा नही देनी चाहिये, ० दुक्कट ० ।" 91

३—शिक्षमाणा-दूत भेजकर० ।

४—श्रामणेर-दूत भेजकर ० ।

५—श्रामणेरी-दूत भेजकर ० ।

६—मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा करते थे ।०—

"भिक्षुओ ! मूर्ख अजान दूतको भेजकर उपसम्पदा नही करनी चाहिये, ० दुक्कट ० । भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ, चतुर समर्थ भिक्षुणीको दूत (बना) भेजकर उपसम्पदा देनेकी । 92

"उस भिक्षुणी-दूतको सघके पास जाकर एक कधेपर उत्तरासग कर भिक्षओके चरणोमे वन्दना कर उकळूँ बैठ हाथ जोळ ऐसा कहना चाहिये—"(१) आर्यो ! इस नामवाली (भिक्षुणी)की इस नामवाली उपसम्पदा चाहनेवाली है। एक ओरसे उपसम्पदा पा चुकी, भिक्षुणी-सघमे (दोषोसे) शुद्ध है। वह किसी अन्तराय (=विघ्न)से नही आ सकती। (वह) इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है। आर्यो ! कृपा करके सघ उसका उद्धार करे।

"(२) आर्यो ! इस नामवाली० । दूसरी वार भी इस नामवाली सघसे उपसम्पदा माँगती है।

"(३) आर्यो ! इस नामवाली० । तीसरी वार भी ० ।

"तब चतुर समर्थ भिक्षु सघको सूचित करे—

"क. ज्ञ प्ति० । ख अ नु श्रा व ण० । ग धा र णा० ।

"उसी समय (समय जाननेके लिये) छाया नापनी चाहिये०[1] । ०—इसे तीन निश्रय और आठ अ-करणीय बतलाओ।"

§६—अरण्यवास निषेध, भिक्षुणी-विहारका निर्माण, गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन, दण्डिताको साथिनी देना, दुबारा उपसम्पदा, शौच-स्नान

(१) अरण्यवासका निषेध

उस समय भिक्षुणियाँ अरण्य (=जगल)मे वास करती थी ! बदमाश बलात्कार करते थे।०—

---

[1]देखो पृष्ठ ५३४ ।

" ० भिक्षुणियोको अरण्यमें नही वास करना चाहिये, ० दुक्कट ०।" 93

(२) भिक्षुणी-विहार बनवाना

१—उस समय एक उपासकने भिक्षुणी-सघको उ द्दो सि त (=छप्पर) दिया। भगवानसे यह बात कही।—

" ० अनुमति देता हूँ, उद्दोसितकी।" 94

२—उद्दोसित ठीक नही होता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ उपश्रय (=भिक्षुणी-आश्रम)की।" 95

३—उपश्रय ठीक नही होता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ, नवकर्म (=इमारत बनानेका काम)की।" 96

४—नवकर्म ठीक नही होता था।०—

" ० अनुमति देता हूँ, व्यक्तिगत भी करनेकी।" 97

(३) गर्भिणी प्रव्रजिताकी सन्तानका पालन

१—उस समय एक आसन्नगर्भा स्त्री भिक्षुणियोमे प्रव्रजित हुई थी, प्रव्रजित होनेपर उसे गर्भोत्थान (=प्रसव काल) हुआ। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसा करना चाहिये? भगवान्से यह बात कही।—

" ० अनुमति देता हूँ, जब तक वह बच्चा सयाना हो जाये तब तक पोसनेकी।" 98

२—तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—मै अकेली रह नही सकती, और दूसरी भिक्षुणी बच्चेके साथ नही रह सकती, कैसे मुझे करना चाहिये?' ०—

" ० अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीको साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 99

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना (=समत्रण करना) चाहिये—

क ज्ञ प्ति—"आर्या सघ मेरी सुने, यदि सघ उचित समझे, तो सघ इस नामवाली भिक्षुणीका साथी होनेके लिये इस नामकी भिक्षुणीको चुने।—यह सूचना है।

ख अ नु श्रा व ण०।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे धारणा करती हूँ।"

३—तब उस साथिन भिक्षुणीको यह हुआ—मुझे इस बच्चेके साथ कैसे करना चाहिये।०—

" ० एक घरमे रहना छोळ, अनुमति देता हूँ, जैसे दूसरे पुरुषके साथ वर्तना चाहिये, वैसे उस बच्चेके साथ बर्तनेकी।" 100

(४) मानत्त्वचारिणीको साथिन देना

उस समय एक भिक्षुणी गु रु - ध र्म[1]का दोष करके मानत्त्वचारिणी हुई थी। तब उस भिक्षुणीको यह हुआ—'मै अकेली नही रह सकती, और दूसरी भिक्षुणी मेरे साथ नही वास कर सकती, मुझे कैसे करना चाहिये?' भगवान्से यह बात कही।—

" ० अनुमति देता हूँ, उस भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये एक भिक्षुणीको चुनकर देनेकी। 101

"और भिक्षुओ! इस प्रकार चुनना चाहिये—०[2]।

---

[1]देखो आठ गुरु-धर्म चुल्ल १०§१।२ पृष्ठ ५२०-२१। [2]ऊपर जैसे ही।

ग धा र णा—"सघने इस नामवाली भिक्षुणीकी साथिन होनेके लिये इस नामवाली भिक्षुणीको चुन लिया। सघको पसद है, इसलिये चुप है—ऐसा मैं इसे धारण करती हूँ।"

(५) दुबारा उपसम्पदा

१—उस समय एक भिक्षुणी (भिक्षुणीकी) शिक्षाको त्याग गृहस्थ बन गई। वह फिर आकर भिक्षुणियोसे उपसपदा माँगने लगी। भगवान्‌से यह बात कही।—

"० भिक्षुणियोका (कोई दूसरा) शिक्षाका परित्याग नही, जभी उसने वेष छोळा, उसी समय वह अ-भिक्षुणी हो गई।" 102

२—उस समय एक भिक्षुणी अपने आवास (=आश्रम)को छोळ तीर्थायतन (=दूसरे मत-वालोके स्थानपर) चली गई। उसने फिर लौट आ भिक्षुणियोसे उपसपदा माँगी।०—

"० जो भिक्षुणी अपने आवासको छोड तीर्थायतनमे चली गई, फिर आनेपर उसे उपसम्पदा न देनी चाहिये।" 103

(६) पुरुषो द्वारा अभिवादन केशच्छेदन आदि

उस समय भिक्षुणियाँ पुरुषो द्वारा अभिवादन, केशच्छेदन, नख-च्छेदन, घावकी दवा करानेमे सकोच कर नही सेवन करती थी।०—

"० अनुमति देता हूँ, सेवन करनेकी।" 104

(७) बैठनेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पलथी मारकर बैठे पार्ष्णि (=एळी)के स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पलथी मारकर बैठे पार्ष्णिके स्पर्शका स्वाद नही लेना चाहिये, ० दुक्कट०।" 105

उस समय एक भिक्षुणी बीमार थी, पलथी मारकर बैठे विना उसे आराम न मिलता था।०—

"० अनुमति देता हूँ, बीमार भिक्षुणीको आधी पलथीकी।" 106

(८) पाखानेके नियम

उस समय भिक्षुणियाँ पाखानेमे शौच जाती थी, षड्वर्गीया भिक्षुणियाँ वही गर्भ गिराती थी।०—

"० भिक्षुणियोको पाखानेमे शौच नही जाना चाहिये ० दुक्कट ०। अनुमति देता हूँ, नीचे (भूमिपर) खुले और ऊपरसे छाये (स्थानमे) शौच जानेकी।" 107

(९) स्नानके नियम

१—उस समय भिक्षुणियाँ (स्नानके सुगधित) चूर्णसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी स्त्रियाँ।०—

"० भिक्षुणीको चूर्णसे नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ कुक्कुस मिट्टीकी।" 108

२—उस समय भिक्षुणियाँ वासित (=सुगधित) मिट्टीसे नहाती थी। लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ स्त्रियाँ।०—

"० भिक्षुणीको वासित मिट्टीसे नही नहाना चाहिये,०दुक्कट०। अनुमति देता हूँ स्वाभाविक मिट्टीकी।" 109

३—उस समय भिक्षुणियोने जन्ताघरमे नहाते वक्त कोलाहल किया।०—

"० भिक्षुणियोको जन्ताघरमे नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट०।" 110

४—उस समय भिक्षुणियाँ उलटी धार नहाती थी, और धारके स्पर्शका स्वाद लेती थी।०—

"० भिक्षुणियोको उलटी धार नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 111

५—उस समय भिक्षुणियाँ बेघाट नहाती थी, बदमाश बलात्कार करते थे।०—

"० भिक्षुणियोको बेघाट नही नहाना चाहिये, ०दुक्कट० ।" 112

६—उस समय भिक्षुणियाँ मर्दाने घाटपर नहाती थी, लोग हैरान० होते थे—जैसे कामभोगिनी गृहस्थ (स्त्रियाँ) ! ०—

"० भिक्षुणियोको मर्दाने घाटपर नही नहाना चाहिये, जो नहाये उसे दुक्कटका दोष हो। भिक्षुओ ! अनुमति देता हूँ महिलातीर्थ (=जनाने घाट)पर नहानेकी।" 113

तृतीय भाणवार समाप्त ॥ ३ ॥

दशम भिक्खुनी-क्खन्धक समाप्त ॥१०॥

११—पंचशतिका-स्कंधक

१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही। २—निर्वाणके समय आनदकी भूल। ३—आयुष्मान् पुराण-का सगीति पाठकी पाबदीसे इन्कार। ४—छन्नको ब्रह्मदड और उदयनको उपदेश।

§१—प्रथम संगीतिकी कार्यवाही

[1]—*राजगृह*

तब आयुष्मान् म हा का श्य प ने भिक्षुओको सबोधित किया। आवुसो! एक समय मै पॉच सौ भिक्षुओके साथ पा वा और कु सी ना रा के बीच रास्तेमें था। तब आवुसो! मार्गसे हटकर मै एक वृक्षके नीचे बैठा। उस समय एक आ जी व क कुसीनारासे मदारका पुष्प लेकर पावाके रास्ते मे जारहा था। आवुसो! मैंने दूरसे ही आजीवकको आते देखा। देखकर उस आजीवकसे यह कहा —"आवुस! हमारे शास्ताको जानते हो?"

"हाँ आवुसो! जानता हूँ, आज सप्ताह हुआ, श्रमण गौ त म परिनिर्वाणको प्राप्त हुआ। मैंने यह मन्दारपुष्प वहीसे लिया है।" आवुसो! वहाँ जो भिक्षु अवीत-राग (=वैराग्य वाले नही) थे, (उनमे) कोई-कोई बॉह पकळकर रोते थे 'कटे पेळके सदृश गिरते थे, लोटते थे—'भगवान् वहुत जल्दी परिनिर्वाणको प्राप्त हो गये'। किन्तु जो वीतराग भिक्षु थे, वह स्मृति-सम्प्रजन्यके साथ स्वीकार (=सहन)करते थे—सस्कार (=कृत वस्तुये) अनित्य है, वह कहाँ मिलेगा ०।'

'उस समय आवुसो! सुभद्र नामक एक वृद्ध प्रव्रजित उस परिषद्में बैठा था। तव वृद्ध प्रव्रजित सुभद्रने उन भिक्षुओको यह कहा—'मत आवुसो! मत शोक करो, मत रोओ। हम सुयुक्त हो गये उस महाश्रमणसे पीळित रहा करते थे। यह तुम्हे बिहित नही है। अब हम जो चाहेगे सो करेंगे, जो नही चाहेगे उसे न करेंगे'। "अच्छा हो आवुसो! हम धर्म और विनय का सगान (=साथ पाठ) करे, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, अविनय प्रकट हो रहा है, विनय हटाया जा रहा है। अधर्मवादी बलवान् हो रहे है,० धर्मवादी दुर्बल हो रहे है, ० निनय-वादी हीन हो रहे है।"

"तो भन्ते! (आप) स्थविर भिक्षुओको चुने।" तब आयुष्मान् महा का श्य प ने एक कम पाँचसौ अर्हत् चुने। भिक्षुओने आयुष्मान् महाकाश्यपसे यह कहा—

"भन्ते! यह आनन्द यद्यपि शैक्ष्य (अन्-अर्हत्) है, (तो भी) छद (=राग) द्वेष, मोह, भय, अगति (=बुरे मार्ग) पर जानेके अयोग्य है। इन्होने भगवान्के पास वहुत धर्म (=सूत्र) और विनय प्राप्त किया है, इसलिये भन्ते! स्थविर आयुष्मान्को भी चुन ले।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दको भी चुन लिया। तव स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—'कहाँ हम धर्म और विनयका सगायन करे?' तव स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—

---

[1]मिलाओ महापरिनिब्बाणसुत्त (दीघनिकाय) भी।

(१) राजगृहमे सगीति करनेका ठहराव

"राजगृह महागोचर (=समीपमे वहुत वस्तीवाला) वहुत शयनासन (=वास-स्थान) वाला है, क्यो न राजगृहमे वर्पावास करते हम धर्म और विनयका सगायन करे। (लेकिन) दूसरे भिक्षु राजगृह मत जावे"। तव आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति–"आवुसो! सघ सुने, यदि सघको पसन्द है, तो सघ इन पाँचसौ भिक्षुओको राजगृहमे वर्पा-वास करते धर्म और विनय सगायन करनेकी समति दे। और दूसरे भिक्षुओको राजगृहमे नही वसने की।" यह ज्ञप्ति (=सूचना) है।

अ नु श्रा व ण—"भन्ते! सघ सुने, यदि सघको पसन्द है०। जिस आयुष्मान्को इन पाँचसौ भिक्षुओका, ० सगायन करना, ओर दूसरे भिक्षुओका राजगृहमे वर्पावास न करना पसदहो, वह चुप रहे, जिसको नही पसदहो, वह वोले।

"दूसरी वार भी०।

"तीसरी वार भी०।

धा र णा—"सघइन पाँचसौ भिक्षुओके० तथा दूसरे भिक्षुओके राजगृहमे वास न करनेमे सहमत हे, सघको पसद है, इसलिये चुप है'—यह धारण करता हूँ।"

तव स्थविर भिक्षु! धर्म और विनयके सगायन करनेके लिये राजगृह गये। तव स्थविर भिक्षुओको हुआ—

'आवुसो! भगवान्ने टूटे फूटेकी मरम्मत करनेको कहा है। अच्छा आवुसो! हम प्रथम मासमे टूटे फूटेकी मरम्मत करे, दूसरे मासमे एकत्रित हो धर्म और विनयका सगायन करे।'

तव स्थविर भिक्षुओने प्रथम मासमे टूटे फूटेकी मरम्मत की।

आयुष्मान् आ न न्द ने—'वैठक (=सन्निपात) होगी, यह मेरे लिये उचित नही, कि मै शैक्ष्य रहते ही वैठकमे जाऊँ' (सोच) वहुत रात तक काय-स्मृतिमे विताकर, रातके भिनसारको लेटनेकी इच्छासे शरीरको फैलाया, भूमिसे पैर उठ गये, और शिर तकियापर न पहुँच सका। इसी वीचमे चित्त आस्रवो (=चित्तमलो)से अलग हो, मुक्त होगया। तव आयुष्मान् आनन्द अर्हत् होकर ही वैठकमे गये।

(२) उपालिसे विनय पूछना

आयुष्मान् म हा का श्य प ने सघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! सघ सुने, यदि सघको पसद हे तो मे उपालिसे विनय पूछूँ?"

आयुष्मान् उपालिने भी सघको ज्ञापित किया—

"[1]भन्ते! सघ सुने यदि सघको पसद है, तो मै आयुष्मान् महाकाश्यपसे पूछे गये विनय-का उत्तर दूँ?"

अव आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको कहा—

"आवुस! उपालि! [2]प्रथम-पाराजिका कहाँ प्रज्ञप्त की गई?" "राजगृहमे भन्ते!"

"किसको लेकर?" "सु दि न्न कलन्द-पुत्तको लेकर।"

"किस वातमे?" "मैथुन-धर्ममे।"

---

[1]उस सघमें सभी महाकाश्यपसे पीछेके बने भिक्षु थे, इसलिये 'आवुस' कहा।

[2]यहाँ उस सघमे महाकाश्यप उपालिसे वडे थे, इसलिये 'भन्ते' कहा।

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उ पा लि को प्रथम पाराजिकाकी वस्तु (=कथा)भी पूछी, निदान (=कारण)भी पूछा, पुद्गल (=व्यक्ति)भी पूछा, प्रज्ञप्ति (=विधान)भी पूछी, अनुप्रज्ञप्ति (=सवोधन)भी पूछी, आपत्ति (=दोप-दड)भी पूछी, अन्-आपत्ति भी पूछी।

"आवुस उपालि! [1]द्वितीय-पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "राजगृहमे भन्ते !"

"किसको लेकर ?" "धनिय कुभकार-पुत्रको।"

"किस वस्तुमे ?" "अदत्तादान (=चोरी)मे।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् उपालिको द्वितीय पाराजिकाकी वस्तु (=कथा) भी पूछी, निदान भी० अनापत्ति भी पूछी।—

"आवुस उपाली! [2]तृतीय पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालिमे, भन्ते।"

"किसको लेकर ?" "बहुतसे भिंक्षुओको लेकर।"

"किस वस्तुमे ?"

"मनुष्य-विग्रह (=नर-हत्या)के विपयमे।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने०।—

"आवुस उपालि! चतुर्थ पाराजिका कहाँ प्रज्ञापित हुई ?" "वैशालीमे भन्ते!"

"किसको लेकर ?" "वग्गु-मुदा-तीरवासी भिक्षुओको लेकर।"

"किस वस्तुमे ?" "उत्तर-मनुष्य-धर्म (=दिव्य-शक्ति)मे।"

तब आयुष्मान् काश्यपने०। इसी प्रकारसे दोनो (भिक्षु, भिक्षुणी)के विनयोको पूछा। आयुष्मान् उपालि पूछेका उत्तर देते थे।

(३) आनन्दसे सूत्र पूछना

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने सघको ज्ञापित किया—

"आवुसो! सघ मुझे सुने। यदि सघको पसन्द हो, तो मै आयुष्मान् आनन्दको धर्म (=सूत्र) पूछूँ ?"

तब आयुष्मान् आ न न्द ने सघको ज्ञापित किया—

"भन्ते! सघ मुझे सुने। यदि सघको पसन्द हो, तो मै आयुष्मान् महाकाश्यपमे पूछे गये धर्मका उत्तर दूँ ?"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने आयुष्मान् आनन्दसे कहा—

"आवुस आनन्द! 'ब्र ह्म जा ल'[3] (सूत्र)को कहाँ भापित किया ?"

"रा ज गृ ह और ना ल न्दा के बीचमे, अ म्ब ल ट्ठि का के राजागारमे।"

"किसको लेकर ?"

"सुप्रिय परिव्राजक और ब्रह्मदत्त माणवकको लेकर।"

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने 'ब्रह्मजाल'के निदानको भी पूछा, पुद्गलको भी पूछा।

"आवुस आनन्द! '[4]सा म ञ्ञ (=श्रामण्य) फल'को कहाँ भापित किया ?"

"भन्ते! राजगृहमे जी व क म्ब-वनमे।"

"किसके साथ ?"

---

[1]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३०८। [2]देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ३१२।
[3]दीघनिकायका प्रथम सूत्र। [4]देखो दीघनिकायका द्वितीय सूत्र।

(२) किसी भी भिक्षु-नियमको न छोड़ा जाय

तब आयुष्मान् महाकाश्यपने संघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति—"आवुसो ! संघ मेरी सुने । हमारे शिक्षापद गृहीगत भी हैं (=गृहस्थ भी जानते हैं)—'यह तुम शाक्यपुत्रीय श्रमणोंको विहित (=कल्प्य) है, यह नहीं विहित है।' यदि हम क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापदोंको हटायेंगे, तो कहनेवाले होंगे—'श्रमण गौतमने धुयेंके कालिक जैसा शिक्षापद प्रज्ञप्त किया, जबतक इनका शास्ता रहा, तब तक यह शिक्षापद पालते रहे, जब इनका शास्ता परिनिर्वृत्त हो गया, तब यह शिक्षापदोंको नहीं पालते।' यदि संघको पसंद हो तो संघ अ-प्रज्ञप्त (=अविहित)को न प्रज्ञापन (=विधान) करे, प्रज्ञप्तको न छेदन करे। प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमे बर्ते—यह ज्ञप्ति (=सूचना) है—

अ नु श्रा व ण—"आवुसो ! संघ सुने० प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंमे बर्ते । जिस आयुष्मान्को अ-प्रज्ञप्तका न प्रज्ञापन, प्रज्ञप्तका न छेदन, प्रज्ञप्तिके अनुसार शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तना पसन्द हो, वह चुप रहे, जिसको नही पसन्द हो वह बोले ।

० धा र ण —"संघ न अप्रज्ञप्तका प्रज्ञापन करता है, न प्रज्ञप्तका छेदन करता है० । प्रज्ञप्तिके अनुसार ही शिक्षापदोंको ग्रहणकर बर्तता है—(यह) संघको पसन्द है, इसलिये मौन है—ऐसा धारण करता हूँ ।"

तब स्थविर भिक्षुओंने आयुष्मान् आ न न्द से कहा—

---

[1]देखो भिक्खुपातिमोक्ख (पृष्ठ ८-२६) ।

"आवुस आनन्द ! यह तूने बुरा किया (=दुक्कट), जो भगवान्‌को नही पूछा—'भन्ते ! कौनसे है वह क्षुद्र-अनुक्षुद्र शिक्षापद । अत अब तू दुक्कटकी देशनाकर' ।"

"भन्ते ! मैंने याद न होनेसे भगवान्‌को नही पूछा—'भन्ते ! कौनसे है० । इसे मै दुक्कट नही समझता । किन्तु आयुष्मानोके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ ।"

(३) आनन्दकी कुछ और भूले

(१) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌की वर्षाशाटी (=वर्षाऋतुमे नहानेके कपळे) को (पैरसे) दाबकर सिया, इस दुष्कृतकी देशनाकर ।"

"भन्ते ! मैंने अगौरवके ख्यालसे भगवान्‌की वर्षाकी लुगीको आक्रमणकर नही सिया, इसे मै दुष्कृत नही समझता, किन्तु आयुष्मानोके ख्यालसे देशना (=क्षमा-प्रार्थना) करता हूँ ।"

(२) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने प्रथम भगवान्‌के शरीरको स्त्रीसे[1] वन्दना करवाया, रोती हुई उन स्त्रियोके आँसुओसे भगवान्‌का शरीर लिप्त होगया, इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"भन्ते ! वि(=अति)-कालमे न हो—इस (ख्याल)से मैंने भगवान्‌के शरीरको प्रथम स्त्रीसे वन्दना करवाया, मै उसे दुष्कृत नही समझता० ।"

(३) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने भगवान्‌के उल्लसित होते समय भगवान्‌के उदार (=ओलारिक) अवभास करनेपर, भगवान्‌से नही प्रार्थना की—'भन्ते ! बहुजन-हितार्थ बहुजन-सुखार्थ, लोकानुकपार्थ, देव-मनुष्योके अर्थ=हित=सुखके लिये भगवान्-कल्पभर ठहरे, सुगत कल्पभर ठहरे ।' इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"मैंने भन्ते ! मारसे परि-उत्थित-चित्त (भ्रममे) होनेसे, भगवान्‌से प्रार्थना नही की० । इसे मै दुष्कृत नही समझता ० ।"

(४) "यह भी आवुस आनन्द ! तेरा दुष्कृत है, जो तूने तथागतके बतलाये धर्म (=धर्म-विनय)मे स्त्रियोकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की । इस दुष्कृतकी देशना कर ।"

"भन्ते ! मैंने—'यह म हा प्र जा प ती गो त मी भगवान्‌की मौसी, आपादिका=पोपिका, क्षीरदायिका है, जननीके मरनेपर स्तन पिलाया' (ख्यालकर) तथागत-प्रवेदित धर्ममे स्त्रियोकी प्रव्रज्याके लिये उत्सुकता पैदा की । मै इसे दुष्कृत नही समझता, किन्तु० ।"

§३—आयुष्मान् पुराणका संगीति-पाठकी पाबन्दीसे इन्कार

उस समय पाँच सौ भिक्षुओके महाभिक्षु-सघके साथ आयुष्मान् पुराण दक्षिणागिरि[2]मे चारिका कर रहे थे । आयुष्मान् पु रा ण स्थविर-भिक्षुओके धर्म और विनयके सगायन समाप्त होजानेपर, द क्षि णा गि रि मे इच्छानुसार विहरकर, जहाँ रा ज गृ ह मे कलदक-निवापका वेणुवन था, जहाँ पर स्थविर भिक्षु थे, वहाँ गये । जाकर स्थविर भिक्षुओके साथ प्रतिसमोदनकर, एक ओर बैठे । एक ओर बैठे हुये आयुष्मान् पुराणको स्थविर भिक्षुओने कहा—

"आवुस पुराण ! स्थविरोने धर्म और विनयका सगायन किया है। आओ तुम (भी) सगीतिको (मानो) ।"

---

[1] निर्वाणके समय (देखो बुद्धचर्या पृष्ठ ५३९) । [2] राजगिरके दक्खिनवाला पहाळी प्रदेश ।

"आवुस ! स्थविरोंने धर्म और विनयको सुन्दर तौरसे सगायन किया है। तो भी जैसा मैंने भगवान्‌के मुँहसे सुना है, सुखसे ग्रहण किया है, वैसा ही मैं धारण करूँगा।"

§४—उदयनको उपदेश और छन्नको ब्रह्मदंड

तब आयुष्मान् आनन्दने स्थविर-भिक्षुओंसे यह कहा—

"भन्ते ! भगवान्‌ने परिनिर्वाणके समय यह कहा—'आनन्द ! मेरे न रहनेके बाद सघ छन्न (= छ द क) को ब्रह्म द डकी आज्ञा दे।"

"आवुस ! पूछा तुमने ब्रह्मदड क्या है ?"

"भन्ते ! मैंने पूछा०।—'आनन्द ! छन्न भिक्षु जैसा चाहे वैसा बोले, भिक्षु छन्नको न बोले, न उपदेश करे, न अनुशासन करे।"

"तो आवुस आनन्द ! तू ही छन्न भिक्षुको ब्रह्मदडकी आज्ञा दे।"

"भन्ते ! मैं छन्नको ब्रह्मदडकी आज्ञा करूँगा, लेकिन वह भिक्षु चड परुष (=कटुभाषी) है।"

"तो आवुस आनन्द ! तुम बहुतसे भिक्षुओंके साथ जाओ।"

"अच्छा भन्ते।" कहकर आयुष्मान् आनन्द पाचसौ भिक्षुओंके महाभिक्षुसघके साथ नाव-पर कौशाम्बी गये।

(१) उदयन और उसके रनिवासको उपदेश

२—कौशाम्बी

नावसे उतरकर राजा उदयनके उद्यानके समीप एक वृक्षके नीचे बैठे। उस समय राजा उ द य न रनिवास (=अवरोध)के साथ बागमें सैर कर रहा था। राजा उदयनके अवरोधने सुना—हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं। तब अवरोधने राजा उदयनसे कहा—

"देव ! हमारे आचार्य आर्य आनन्द उद्यानके समीप एक पेळके नीचे बैठे हैं, देव ! हम आर्य आनन्दका दर्शन करना चाहती हैं।"

"तो तुम श्रमण आनन्दका दर्शन करो।"

तब अवरोध जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ जाकर अभिवादनकर एक ओर बैठा। एक ओर बैठे हुए रनिवासको आयुष्मान् आनन्दने धार्मिक कथासे सदर्शित=प्रेरित=समुत्तेजित, सप्रहर्षित किया। तब राजा उदयनके अवरोधने आयुष्मान् आनन्दको पाँच सौ चादरे (=उत्तरासग) प्रदान की। तब अवरोध आयुष्मान् आनन्दके भाषणको अभिनन्दित कर, अनुमोदित कर, आसनसे उठ आयुष्मान् आनन्दको अभिवादनकर, प्रदक्षिणाकर, जहाँ राजा उदयन था वहाँ चला गया। राजा उदयनने दूरसे ही अवरोधको आते देखा, देखकर अवरोधसे कहा—

"क्या तुमने श्रमण आनन्दका दर्शन किया ?" "दर्शन किया देव ! हमने आनन्दका।"

"क्या तुमने श्रमण आनन्दको कुछ दिया ?" "देव ! हमने पाँच सौ चादरे दी।"

राजा उदयन हैरान होता था, खिन्न होता था=विपाचित होता था—'क्यो श्रमण आनन्दने इतने अधिक चीवरोको लिया, क्या श्रमण आनन्द कपळेका व्यापार (=दुस्सवणिज्ज) करेगा, या दूकान खोलेगा।'

तब राजा उदयन जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गया, जाकर आयुष्मान् आनन्दके साथ सम्मोदन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे राजा उदयनने आयुष्मान् आनन्दसे यह कहा—

"हे आनन्द ! क्या हमारा अवरोध यहाँ आया था ?" "आया था महाराज ! यहाँ तेरा अवरोध।"

"क्या आपन आनन्दको कुछ दिया ।" "महाराज ! पाँच सौ चादरे दी ।"

"आप आनन्द ! इतने अधिक चीवर क्या करेंगे ?" "महाराज ! जो फटे चीवर वाले भिक्षु हैं, उन्हे बाँटेंगे ।"

"और जो वह पुराने चीवर हैं, उन्हे क्या करेंगे ?" "महाहाराज ! बिछौनेकी चादर बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने बिछौनेकी चादरे हे, उन्हे क्या करेंगे ?" " उनसे गद्देका गिलाफ बनायेंगे ।"

" जो वह पुराने गद्देके गिलाफ हे, उन्हे क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! फर्श बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने फर्श हैं, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! पायदाज बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने पायदाज हैं, उनका क्या करेंगे ?" " उनका महाराज ! झाळन बनावेंगे ।"

" जो वह पुराने झाळन हैं० ?" " उनको कूटकर, कीचळके साथ मर्दनकर पलस्तर करेंगे ।"

तब राजा उदयनने—'यह सभी शाक्यपुत्रीय श्रमण कार्यकारण देखकर काम करते हे, व्यर्थ नही जाने देते'—(कह), आयुष्मान् आनन्दको पाँच-सौ और चादरे प्रदान की । यह आयुष्मान् आनन्दको एक हजार चीवरोकी प्रथम चीवर-भिक्षा प्राप्त हुई ।

(२) छन्नको ब्रह्मदण्ड

तब आयुष्मान् आनन्द जहाँ घोषिताराम था, वहाँ गये, जाकर बिछे आसनपर बेठ । आयुष्मान् छन्न जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दको अभिवादन कर एक ओर बैठे । एक ओर बैठे आयुष्मान् छन्नसे आयुष्मान् आनन्दने कहा—

"आवुस ! छन्न ! सघने तुम्हे, ब्रह्मदडकी आज्ञा दी हे ।"

"क्या है भन्ते आनन्द ! ब्रह्मदड ?"

"तुम आवुस छन्न ! भिक्षुओको जो चाहना सो बोलना, किन्तु भिक्षुओको तुमसे नही बोलना होगा, नही अनुशासन करना होगा ।"

"भन्ते आनन्द ! मै तो इतनेसे मारा गया, जो कि भिक्षुओको मुझसे नही बोलना होगा० ।" —(कह) वही मूर्छित होकर गिर पळे । तब आयुष्मान् छन्न ब्रह्मदण्डसे वेधित, पीळित, जुगुप्सित हो, एकाकी, निस्सग, अ-प्रमत्त, उद्योगी, आत्मसयमी हो, विहार करते, जल्दी ही जिसके लिये कुल-पुत्र प्रव्रजित होते है, उस सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-फलको इसी जन्ममे स्वय जानकर=साक्षात्कारकर=प्राप्तकर विहरने लगे । और आयुष्मान् छन्न अर्हतोमे एक हुए ।

तब आयुष्मान् छन्न अर्हत्-पदको प्राप्तहो जहाँ आयुष्मान् आनन्द थे, वहाँ गये, जाकर आयुष्मान् आनन्दसे बोले—

"भन्ते आनन्द ! अब मुझसे ब्रह्मदण्ड हटा ले ।"

"आवुस छन्न ! जिस समय तूने अर्हत्त्वका साक्षात्कार किया, उसी समय ब्रह्म-दण्ड हट गया ।"

इस विनय-सगतिमे पाँचसौ भिक्षु—न कम न बेशी थे । इसलिये यह विनय-सगीति 'पच शतिका' कही जाती है ।

ग्यारहवाँ पंचसतिकाक्खन्धक समाप्त ॥११॥

१२—सप्तशतिका-स्कंधक

१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार । २—दोनो ओरसे पक्ष-सग्रह । ३—द्वितीय सगीतिकी कार्यवाही ।

§१—वैशालीमें विनय-विरुद्ध आचार

१—वैशाली

(१) वैशालीमे पैसे रुपयेका चढ़ावा

उस समय भगवान्‌के परिनिर्वाणके सौ वर्ष बीतनेपर, वै शा ली-निवसी व ज्जि पु त्त क (=वृज्जि-पुत्र) भिक्षु दश वस्तुओका प्रचार करते थे—

"भिक्षुओ ! (१) शृङ्गि-लवण-कल्प विहित है । (२) द्वि-अगुल-कल्प० । (३) ग्रामान्तर-कल्प० । (४) आवास-कल्प० । (५) अनुमति-कल्प० । (६) आचीर्ण-कल्प० । (७) अमथित-कल्प० । (८) जलोगीपान० । (९) अ-दशक० (१०) जातरूप-रजत० ।

उस समय आयुष्मान् य श का क ण्ड क-पुत्त व ज्जी मे चारिका करते जहाँ वैशाली थी वहाँ पहुँचे । आयुष्मान् यश० वैशालीमे म हा व न की कूटागार-शालामे विहार करते थे । उस समय वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षु उपोसथके दिन कॉसेकी थालीको पानीसे भर भिक्षु-सघके बीचमे रखकर, आने जाने वाले वैशालीके उपासकोको कहते थे—

"आवुसो ! सघको कार्षापण[1] दो, अधेला=अर्द्ध-कार्षापण दो, पाई (=पाद-कार्षापण) दो, मासा (=मापक रूप) भी दो। सघके परिष्कार (=सामान) का काम होगा ।"

ऐसा कहनेपर आयुष्मान् यश० ने वैशालीके उपासकोसे कहा—"मत आवुसो ! सघको कार्षापण (=पैसा)० दो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोको जातरूप (=सोना) रजत (=चाँदी) विहित नही हैं, शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप रजत उपभोग नही कर सकते, ०जातरूप-रजत स्वीकार नही कर सकते । शाक्यपुत्रीय श्रमण जात-रूप-रजत त्यागे हुये हैं । । आयुष्मान् यश०के ऐसा कहनेपर भी ० उपासकोने सघको कार्षापण० दिया ही । तब वैशालिक वज्जि-पुत्तक भिक्षुओने उस रातके बीतनेपर, भोजनके समय हिस्सा लगाकर बॉट दिया । तब वैशालीके वज्जि-पुत्तक भिक्षुओने आयुष्मान् यश काकण्डपुत्तसे कहा—

"आवुस यश ! यह हिरण्य (=अशर्फी) का हिस्सा तुम्हारा है ।"

"आवुसो ! मेरा हिरण्यका हिस्सा नही, मैं हिरण्यको उपभोग नही कर सकता ।"

(२) पैसा न लेनेसे यशका प्रतिसारणीय कर्म

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओने—'यह य श का क ण्ड क पु त्त, श्रद्धालु=प्रसन्न उपासकोको

---

[1] कार्षापण अर्ध कार्षापण, पाद कार्षापण, माषक रूप—यह उस समयके ताँबेके सिक्के थे ।

निन्दता है, फटकारता है, अ-प्रसन्न करता है, अच्छा हम इसका प्रतिसारणीय[1] कर्म करे।' उन्होंने उनका प्रतिसारणीय कर्म किया। तब आयुष्मान् यश०ने वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओसे कहा—

"आवुसो! भगवान्ने आज्ञा दी है कि प्रतिसारणीय कर्म किये गये भिक्षुको, अनुदूत देना चाहिये। आवुसो! मुझे (एक) अनुदूत भिक्षु दो।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओने सलाहकर ० यशको एक अनुदूत (=साथ जानेवाला) दिया। तब आयुष्मान् यश ० ने अनुदूत भिक्षुके साथ वैशालीमें प्रविष्ट हो, वैशालिक उपासकोसे कहा—

"आयुष्मानो! मै श्रद्धालु=प्रसन्न, उपासकोको निन्दता हूँ, फटकारता हूँ, अप्रसन्न करता हूँ, जो कि मै अधर्मको अधर्म कहता हूँ, धर्मको धर्म कहता हूँ, अविनयको अविनय कहता हूँ, विनयको विनय कहता हूँ? आवुसो! एक समय भगवान् श्रा व स्ती मे अ ना थ-पि ण्डि क के आराम जे त व न मे विहार करते थे। वहाँ आवुसो! भगवान्ने भिक्षुओको आमन्त्रित किया—'भिक्षुओ! चन्द्र-सूर्यको चार उपक्लेश (=मल) है, जिन उपक्लेशोमे उपक्लिष्ट (मलिन) होनेपर, चन्द्र-सूर्य न तपते है=न भासते है, न प्रकाशते है। कौनसे चार? भिक्षुओ! बादल, चन्द्र-सूर्यका उपक्लेश है, जिस उपक्लेश-मे ०। भिक्षुओ! महिका (=कुहरा) ०। धूमरज (=धूमकण) ०। राहु असुरेन्द्र (=ग्रहण) ०। इसी प्रकार भिक्षुओ! श्रमण ब्राह्मणके भी चार उपक्लेश है, जिन उपक्लेशोमे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नही तपते ०। कौनसे चार? भिक्षुओ! (१) कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सुरा पीते है, मेरय (=कच्ची शराब) पीते है, सुरा-मेरय-पानसे विरत नही होते। भिक्षुओ! यह प्रथम ० उपक्लेश है ०। (२) भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण मैथुनधर्म सेवन करते है, मैथुन-धर्मसे विरत नही होते। ० यह दूसरा०। (३) ०जातरूप-रजत उपभोग करते है, जातरूप-रजतके ग्रहणसे विरत नही होते०। (४) ०मिथ्या-जीविका करते है, मिथ्या-आजीवसे विरत नही होते। भिक्षुओ! यह चार श्रमणोके उपक्लेश है०। जिन उपक्लेशोमे उपक्लिष्ट हो श्रमण ब्राह्मण नही तपते ०।'

"आवुसो! भगवान्ने यह कहा। यह कहकर सुगतने फिर यह और कहा—
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण राग-द्वेपसे लिप्त हो,
अविद्यासे ढँके पुरुष, प्रिय (वस्तुओ)को पसन्द करनेवाले॥ (१)॥
सुरा और कच्ची शराब पीते है, मैथुनका सेवन करते है।
(वह) अज्ञानी चाँदी और सोनेको सेवन करते है॥ (२)॥
कोई कोई श्रमण ब्राह्मण झूठी आजीविकासे जीवन बिताते है।
आदित्य-बधु[2] मुनिने इन्हे उपक्लेश कहे है॥ (३)॥
जिन उपक्लेशोमे उपक्लिष्ट हो यह श्रमण ब्राह्मण,
अशुद्ध और मलिन हो न तपते न भासते न विरोचते है" ॥ (४)॥
अन्धकारसे घिरे तृष्णाके दास बधनमे बँधे,
घोर कटसी[3] को बढाते है (और) आवागमनमे पळते है" ॥(५)॥

(३) यशका अपना पक्ष मजबूत करना

"ऐसा कहनेवाला मै श्रद्धालु, प्रसन्न आयुष्मान् उपासकोको निन्दता हूँ०? सो मै अधर्मको अधर्म कहता हूँ०। एक समय आवुसो! भगवान् रा ज गृ ह मे कलन्दक-निवापके वेणुवनमे विहार करते

---

[1]देखो महावग्ग ९§४।४ (पृष्ठ ३१४)। [2]सूर्य-वशी।
[3]श्मशानमें बार बार जलना गळना।

थे। उस समय आवुसो! राजान्त पुर (=राज-दर्बार)मे राज-सभामे एकत्रित लोगोमे यह बात उठी—'शाक्यपुत्रीय श्रमण सोना-चाँदी (=जातरूप-रजत) उपभोग करते है स्वीकार करते है।' उस समय म णि चू ळ क ग्रामणी उस परिषद्मे बैठा था। तब मणिचूळक ग्रामणीने उस परिषद्से कहा—मत आर्यो! ऐसा कहो, शाक्यपुत्रीय श्रमणोको जातरूप-रजित नही कल्पित (=विहित, हलाल) है,०। वह मणि-सुवर्ण त्यागे हुए है, शाक्यपुत्रीय श्रमण, जातरूप रजत छोळे हुये है०।' आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझा सका। तब आवुसो! मणिचूळक ग्रामणी उस परिषद्को समझाकर जहाँ भगवान् थे वहाँ गया। जाकर भगवान्को अभिवादनकर एक ओर बैठ भगवान्से यह बोला—

"भन्ते! राजान्त पुरमे राजसभामे ० बात उठी ०। मै उस परिषद्को समझा सका। क्या भन्ते! ऐसा कहते हुये मै भगवान्के कथितका ही कहनेवाला होता हूँ? असत्यमे भगवान्का अभ्यारथान् (=निन्दा)तो नही करता? धर्मानुसार कथित कोई धर्म-वाद निन्दित तो नही होता?"

"निश्चय ग्रामणी! ऐसा कहनेसे तू मेरे कथितका कहनेवाला है ०, कोई धर्मवाद निन्दित नही होता। ग्रामणी! शाक्यपुत्रीय श्रमणोको जातरूप-रजत विहित नही है ०। ग्रामणी! जिसको जात-रूप-रजत कल्पित है, उसे पाँच काम-गुण भी कल्पित है, जिसको पाँच काम-गुण (=काम-भोग) कल्पित है, ग्रामणी! तुम उसको विल्कुल ही अ-श्रमण-धर्मी, अ-शाक्यपुत्रीय-धर्मी समझना। और मै ग्रामणी! ऐसा कहता हूँ, तिन-का चाहनेवाले (=तृणार्थी)को तृण खोजना होता है, शकटार्थीको शकट ०, पुरुपार्थीको पुरुप ०, किन्तु ग्रामणी! किसी प्रकार भी मै जातरूप-रजतको स्वादितव्य, पर्येपितव्य (=अन्वेपणीय) नही मानता।' ऐसा कहनेवाला मै ० आयुष्मान् उपासकोको निन्दता हूँ ०।"

"आवुसो! एक समय उसी रा ज गृ ह मे भगवान्ने आयुष्मान् उ प न न्द शाक्यपुत्रको लेकर, जातरूप-रजतका निपेध किया, और शिक्षापद (=भिक्षु-नियम) बनाया। ऐसा कहनेवाला मै ०।"

ऐसा कहनेपर वै शा ली के उपसकोने आयुष्मान् यश काकडकपुत्तसे कहा—

"भन्ते! एक आर्य यश ही शाक्यपुत्रीय श्रमण है, यह सभी, अश्रमण है, अ-शाक्यपुत्रीय है। आर्य यश ० वैशालीमे वास करे। हम आर्य यश ० के लिये चीवर, पिडपात शयनासन ग्लान-प्रत्यय भैपज्य परिष्कारोका प्रबन्ध करेगे।"

तब आयुष्मान् यश ० वैशालीके उपासकोको समझाकर, अनुदूत भिक्षुके साथ आरामको गये। तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओने अनुदूत भिक्षुसे पूछा—

"आवुस! क्या यश काकण्ड-पुत्तने वैशालिक उपासकोसे क्षमा माँगी?"

"आवुसो! उपासकोने हमारी निन्दाकी—एक आर्य यश ० ही श्रमण है, शाक्य-पुत्रीय है, हम सभी अश्रमण, अशाक्य-पुत्रीय बना दिये गये।"

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओने (विचारा)—'आवुसो! यह यश काकण्डक-पुत्त हमारी असम्मत (बात)को गृहस्थोको प्रकाशित करता है, अच्छा तो हम इसका उ त्क्षे प णी य[1] कर्म करे।' वह उनका उत्क्षेपणीय-कर्म करनेके लिये एकत्रित हुए। तब आयुष्मान् यश आकाशमे होकर कौशाम्बी जा खळे हुए।

---

[1]देखो महावग्ग ९§४।५ (पृष्ठ ३१४)।

§२—दोनों ओरसे पक्ष-संग्रह

२—*कौशाम्बी*

(१) यशका अवन्ती-दक्षिणापथके भिक्षुओं और सभूत साणवासीको अपने पक्षमें करना

तव आयुष्मान् यश काण्डक-पुत्तने पा वा वासी और अ व न्ती-द क्षि णा प थ-वासी भिक्षुओके पास दूत भेजा—'आयुष्मानो ! आओ, इस झगळेको मिटाओ, सामने अधर्म प्रकट हो रहा है, धर्म हटाया जा रहा है, ० अविनय प्रकट होरहा है ०,०[1] ।

उस समय आयुष्मान् स भू त सा ण वा सी अ हो ग ग-प र्व त पर वास करते थे । तव आयुष्मान् यश० जहाँ अहोगग-पर्वत था, जहाँ आ० सभूत थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् सभूत साणवासीको अभिवादनकर एक ओर वैठ आयुष्मान् सभूत साणवासीसे वोले—

"भन्ते ! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमें दश वस्तुओका प्रचार कर रहे है ० । अच्छा हो भन्ते ! हम इस झगळे (=अधिकरण)को मिटावे ० ।"

"अच्छा आवुस !"

तब साठ पा वे य क भिक्षु—सभी आरण्यक, सभी पिंडपातिक, सभी पाँसुकूलिक, सभी त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वत[2] पर एकत्रित हुए । अ व न्ती-द क्षि णा प थ के अट्ठासी भिक्षु—कोई आरण्यक, कोई पिंडपातिक, कोई पाँसुकूलिक, कोई त्रिचीवरिक, सभी अर्हत्, अहोगग-पर्वतपर एकत्रित हुये । तव मत्रणा करते हुये स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—'यह झगळा (=अधिकरण) कठिन और भारी है, हम कैसे (ऐसा) पक्ष (=सहायक) पावे, जिसमे कि हम इस अधिकरणमे अधिक बलवान् होवे ।

उस समय वहुश्रुत, आगतागम, धर्मधर, विनयधर, मात्रिकाधर (=अभिधर्मज्ञ), पडित, व्यक्त, मेधावी, लज्जी, कौकृत्यक (=सकोची), शिक्षाकाम आयुष्मान् रे व त सो रे य्य[3] मे वास करते थे,—'यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्षमे पावे, तो हम इस अधिकरणमे अधिक बलवान् होगे ।'

आयुष्मान् रेवतने अमानुप, विशुद्ध, दिव्य श्रोत्र-धातुसे स्थविर भिक्षुओकी मत्रणा सुन ली । सुनकर उन्हे ऐसा हुआ—'यह अधिकरण कठिन ओर भारी है, मेरे लिये अच्छा नही कि म ऐसे अधिकरण (=विवाद)मे न फसूँ, अब वह भिक्षु आवेगे उनसे घिरा मै सुखसे नही जा सकूँगा, क्यो न मै आगे ही जाऊँ ।' तब आयुष्मान् रेवत सोरेय्यसे सकाश्य[4] गये । स्थविर भिक्षुओने सोरेय्य जाकर पूछा— 'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होने कहा—आयुष्मान् रेवत स का श्य गये ।' तव आयुष्मान् रेवत सकाश्यसे क न्न कु ज्ज (=कान्यकुब्ज, कन्नौज) गये । स्थविर भिक्षुओने सकाश्य जाकर पूछा—'आयुष्मान् रेवत कहाँ है ?' उन्होने कहा—'आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्ज गये ।' आयुष्मान् रेवत कान्यकुब्जसे उ दु म्ब र गये ।०।०उदुम्बरसे अग्गलपुर गए ।०। अग्गलपुरसे स ह जा ति[5] गये ।०। तव स्थविर भिक्षु आयुष्मान् रेवतसे सहजातिमे जा मिले ।

३—*सहजाति*

(२) रेवतको पक्षमे करना

आयुष्मान् सभूत सा ण वा सी ने आयुष्मान् यश०से कहा—"आवुस ! यश ! यह आयुष्मान् रेवत वहुश्रुत०शिक्षाकामी है । यदि हम आयुष्मान् रेवतको प्रश्न पूछे, तो आयुष्मान् रेवत एक

---

[1]चुल्ल ११§१।१ (पृष्ठ ५४२) । [2]हरद्वारके पास कोई पर्वत (?)। [3]सोरो (जिला, एटा) । [4]सकिसा (मोटा स्टेशन E I R के पास)। [5]भीटा, जि० इलाहाबाद ।

ही प्रश्नमें सारी रात बिता सकते हैं। अब आयुष्मान् रेवत अन्तेवासी स्वरभाणक (=स्वरसहित सूत्रो को पढनेवाले) भिक्षुको (सस्वर पाठके लिये) कहेगे। स्वर-भणन समाप्त होनेपर, आयुष्मान् रेवतके पास जाकर इन दश वस्तुओको पूछो।"

"अच्छा भन्ते!"

तब आयुष्मान् रेवतने अन्तेवासी (=शिष्य) स्वरभाणक भिक्षुको आज्ञा (=अध्येषणा) की। तब आयुष्मान् यश उस भिक्षुके स्वरभणन समाप्त होनेपर, जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये। जाकर०रेवतको अभिवादन कर एक ओर बैठे। एक ओर बैठ आयुष्मान् यश०ने आयुष्मान् रेवतसे कहा—

(१) "भन्ते! शृंगि-लवण-कल्प विहित है?"

"क्या है आवुस! यह शृंगि-लवण-कल्प?"

"भन्ते! सीगमे नमक रखकर पास रक्खा जा सकता है, कि जहाँ अलोना होगा, लेकर खायेंगे? क्या यह विहित है?" "आवुस! नही विहित है।"

(२) "भन्ते! द्वयंगुल-कल्प विहित है?" "क्या है अवुस! द्वयंगुल-कल्प?"

"भन्ते! (दोपहरको) दो अगुल छायाको बिताकर भी विकालमे भोजन करना क्या विहित है?" "आवुस नही विहित है।"

(३) "भन्ते! क्या ग्रामान्तर-कल्प विहित है?" "क्या है आवुस! ग्रामान्तर-कल्प?"

"भन्ते! भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर गाँवके भीतर भोजन करने जाया जा सकता है?" "आवुस! नही है।"

(४) "भन्ते! क्या आवास-कल्प विहित है?" "क्या है आवुस! आवास-कल्प?"

"भन्ते! 'एक सीमाके बहुतसे आवासोमे उपोसथको करना' क्या विहित है?"

"आवुस! नही विहित है॥

(५) "भन्ते! क्या अनुमति-कल्प विहित है?" "क्या है आवुस! अनुमति-कल्प?"

"भन्ते! (एक) वर्गके सघका (विनय-)कर्म करना, 'यह ख्याल करके, कि जो भिक्षु (पीछे) आवेंगे, उनको स्वीकृति दे देंगे, क्या यह विहित है?"

"आवुस! नही विहित है।"

(६) "भन्ते! क्या आचीर्ण-कल्प विहित है?" "क्या हैं आवुस! आचीर्ण-कल्प?"

"भन्ते! 'यह मेरे उपध्यायने आचरण किया है, यह मेरे आचार्यने आचरण किया है' (ऐसा समझकर) किसी बातका आचरण करना, क्या विहित हैं?"

"आवुस! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई अविहित है।"

(७) "भन्ते! अमथित-कल्प विहित है?" "क्या है आवुस! अमथित-कल्प?"

"भन्ते! जो दूध दूध-पनको छोळ चुका है, दहीपनको नही प्राप्त हुआ है, उसे भोजन कर चुकनेपर, छक लेनेपर, अधिक पीना क्या विहित है?" "आवुस! नही विहित।"

(८) "भन्ते! जलोगी-पान विहित है?" "क्या है आवुस! जलोगी?"

"भन्ते! जो सुरा अभी चुवाई नही गई है, जो सुरापनको अभी प्राप्त नही हुई है, उसका पीना क्या विहित है?" "आवुस! विहित नही है।"

(९) "भन्ते! अदशक निषीदन (=बिना मगजीका आसन) विहित है?"

"आवुस! नही विहित है।"

(१०) "भन्ते! जातरूप-रजत (=सोना चाँदी) विहित है?" "आवुस! नही विहित है।"

"भन्ते वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वैशालीमे इन दश वस्तुओका प्रचार कर रहे है । अच्छा हो भन्ते ! हम इस अधिकरणको मिटावे० ।"

"अच्छा आवुस !" (कह) आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् यश० को उत्तर दिया ।

प्रथम भाणवार समाप्त ॥१॥

(३) वैशालीके भिक्षुओका भी प्रयत्न

वै शा ली के व ज्जि पु त्त क भिक्षुओने सुना, यश काकण्डकपुत्त, इस अधिकरणको मिटानेके लिये पक्ष ढूँढ रहा है । तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह अधिकरण कठिन है, भारी है, कैसा पक्ष पावे कि इस अधिकरणमे हम अधिक बलवान् हो ।'

तब वैशालिकवज्जिपुत्तक भिक्षुओको यह हुआ—'यह आयुष्मान् रेवत बहुश्रुत० है, यदि हम आयुष्मान् रेवतको पक्ष (मे) पावे, तो हम इस अधिकरणमे अधिक बलवान् हो सकेगे । तब वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षुओने श्रमणोके योग्य बहुत सा परिष्कार (=सामान) सम्पादित किया—पात्र भी, चीवर भी, निषीदन (=आसन, बिछौना) भी, सूचीघर (=सूईकी फोफी) भी, कायबधन (=कमर-बद) भी, परिस्रावण (=जलछक्का) भी, धर्मकरक (=गळुवा) भी । तब ०वज्जिपुत्तक भिक्षु उन श्रमण-योग्य परिष्कारोको लेकर नावसे सहजातीको दौळे । नावसे उतरकर एक वृक्षके नीचे भोजन करने लगे ।

तब एकान्तमे स्थित, ध्यानमे बैठे आयुष्मान् साढके चित्तमे इस प्रकारका वितर्क उत्पन्न हुआ—'कौन भिक्षु धर्मवादी है ? पावेयक (=पश्चिमवाले) या प्राचीनके (=पूर्ववाले) ?' तब धर्म ओर विनयकी प्रत्यवेक्षासे आयुष्मान् साढको ऐसा कहा—

"प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक भिक्षु धर्मवादी है ।" ।

तब वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु उस श्रमण-परिष्कारको लेकर, जहॉ आयुष्मान् रेवत थे, वहॉ जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

"भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करे—पात्रभी० ।"

"नही आवुसो ! मेरे पात्र-चीवर पूरे है ।" ।

(४) उत्तरका वैशालीवालोके पक्षमे होजाना

उस समय बीस वर्षका उत्तर नामक भिक्षु, आयुष्मान् रे व त का उपस्थाक (=सेवक) था । तब ०व ज्जि पु त्त क भिक्षु, जहॉ आयुष्मान् उ त्त र थे, वहॉ गये, जाकर आयुष्मान् उत्तरको बोले—

"आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करे—पात्र भी० ।"

"नही आवुसो ! मेरे पात्रचीवर पूरे है ।"

"आवुस उत्तर ! लोग भगवान्के पास श्रमण-परिष्कार ले जाया करते थे, यदि भगवान् ग्रहण करते थे, तो उससे वह सन्तुष्ट होते थे, यदि भगवान् नही ग्रहण करते थे, तो आयुष्मान् आनन्दके पास ले जाते थे—'भन्ते ! स्थविर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करे, जैसे भगवान्ने ग्रहण किया, वैसा ही (आपका ग्रहण) होगा ।' आयुष्मान् उत्तर श्रमण-परिष्कार ग्रहण करे, यह स्थविर (=रेवत)के ग्रहण करने जैसा ही होगा ।"

तब आयुष्मान् उत्तरने ०वज्जिपुत्तक भिक्षुओसे दबाये जानेपर एक चीवर ग्रहण किया—

"कहो, आवुसो ! क्या काम है, कहो ?"

"आयुष्मान् उत्तर स्थविरको इतनाही कहे—'भन्ते ! स्थविर (आप) सघके बीचमे इतनाहो कह दे—प्राचीन (=पूर्वीय) देशो (जनपदो)में बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते हैं, प्राचीनक (=पूर्वीय) भिक्षु धर्मवादी है, पावेयक भिक्षु अधर्मवादी है ।"

"अच्छा आवुस !" कह आयुष्मान् उत्तर जहाँ आयुष्मान् रेवत थे, वहाँ गये । जाकर आयुष्मान् रेवतसे बोले—

"भन्ते ! (आप) स्थविर, सघके बीचमे इतनाही कहदे—प्राचीन देगमे बुद्ध भगवान् उत्पन्न होते है, प्राचीनक भिक्षु धर्मवादी है, और पावेयक भिक्षु अधर्म-वादी ।"

"भिक्षु ! तू मुझे अधर्ममे नियोजित कर रहा है" (कहकर) स्थविरने आयुष्मान् उत्तरको हटा दिया । तब ०वज्जिपुत्तकोने आयुष्मान् उत्तरसे कहा—

"आवुस उत्तर ! स्थविरने क्या कहा ?"

"आवुस ! हमने बुरा किया । 'भिक्षु ! तू मुझे अधर्मर्मे नियोजित कर रहा है'—(कह कर) स्थविरने मुझे हटा दिया ।"

"आवुस ! क्या तुम वृद्ध, बीस-वर्ष (के भिक्षु) नही हो ?" "हूँ आवुस !"

"तो हम (तुम्हे) बळा मानकर ग्रहण करते है ।"

उस अधिकरणका निर्णय करनेकी इच्छासे सघ एकत्रित हुआ । तब आयुष्मान् रेवतने सघको ज्ञापित किया—

"आवुस ! सघ मुझे सुने—यदि हम इस विवाद (=अधिकरण)को यहाँ शमन करेंगे, तो शायद प्रतिवादी (=मूलदायक) भिक्षु कर्म(=न्याय)के लिये अमान्य (=उत्कोटन) करेंगे । यदि सघको पसन्द हो, तो जहाँ यह विवाद उत्पन्न हुआ है, सघ वहीं इस विवादको शात करे ।"

तब स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णयके लिये वैशाली चले ।

४—वैशाली

(५) सर्वकामीका यशके पक्षमे होना

उस समय पृथिवीपर आयुष्मान् आ न न्द के शिष्य स र्व का मी नामक सघ-स्थविर, उपसपदा (=भिक्षुदीक्षा) होकर एकसौ बीस वर्षके, वै शा ली में वास करते थे । तब आयुष्मान् रेवतने आ० सभूत साणवासी (=श्मशान वासी, या सन-वस्त्र-धारी) से कहा—

"आवुस ! जिस विहारमें सर्वकामी स्थविर रहते है, मै वहा जाऊँगा, सो तुम समयपर आयुष्मान् सर्वकामीके पास आकर इन दश वस्तुओको पूछना ।" "अच्छा, भन्ते !"

तब आयुष्मान् रेवत, जिस विहारमे आयुष्मान् सर्वकामी थे, उस विहारमे गये । कोठरी (=गर्भ)के भीतर आयुष्मान् सर्वकामीका आसन बिछा हुआ था, कोठरीके बाहर आयुष्मान् रेवतका । तब आयुष्मान् रेवत—'यह स्थविर वृद्ध (होकर भी) नही लेट रहे हैं'—(सोचकर) नही लेटे । आयुष्मान् सर्वकामी भी—यह नवागत भिक्षु थका (होनेपरभी) नही लेट रहा है—(सोच कर) नहीं लेटे । तब आयुष्मान् सर्वकामीने रातके प्रत्यूष (=भिनसार)के समय आयुष्मान् रेवतसे यह कहा—

"तुम आजकल किस विहारसे (=ध्यान) अधिक विहरते हो ?"

"भन्ते ! मैत्री विहारसे मैं इस समय अधिक बिहरता हूँ ।"

"कुल्लक (=बेळा) विहारसे तुम इस समय अधिक बिहरते हो, यह जो मैत्री है, यही कुल्लक बिहार है ।"

"भन्ते ! पहिले गृहस्थ होनेके समय भी मै मैत्री (भावना) करता था, इसलिये अब भी

में अधिकतर मैत्री विहारसे विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्-पद पाये चिर हुआ। भन्ते! स्थविर आजकल किस विहारसे अधिक विहरते हैं। ?"

"भुम्म! मैं इस समय अधिकतर शून्यता विहारसे विहरता हूँ।"

"भन्ते! इस समय स्थविर अधिकतर महापुरुष-विहारसे विहरते हैं। भन्ते! यह 'शून्यता' महापुरुष-विहार है।"

"भुम्म! पहिले गृही होनेके समय मै शून्यता विहारसे विहरा करता था, इसलिये इस समय शून्यता विहारसेही अधिक विहरता हूँ, यद्यपि मुझे अर्हत्त्व पाये चिर हुआ।"

(जब) इस प्रकार स्थविरोकी आपसमे बात हो रही थी, उस समय आयुष्मान् साणवासी पहुँच गये। तब आयुष्मान् सभूत साणवासी जहाँ आयुष्मान् सर्वकामी थे, वहाँ गये। जाकर आयुष्मान् सर्वकामीको अभिवादनकर एक ओर बैठ यह बोले—

"भन्ते! यह वैशालिक वज्जिपुत्तक भिक्षु वै शा ली मे दश वस्तुका प्रचार कर रहे है०। स्थविरने (अपने) उपाध्याय (=आनन्द)के चरणमे बहुत धर्म और विनय सीखा है। स्थविरको धर्म और विनय देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु, या पावेयक ?"

"तूने भी आवुस! उपाध्यायके चरणमे बहुत धर्म और विनय सीखा है। तुझे आवुस! धर्म और विनयको देखकर कैसा मालूम होता है? कौन धर्मवादी है, प्राचीनक भिक्षु या पावेयक ?"

"भन्ते! मुझे धर्म और विनयको अवलोकन करनेसे ऐसा होता है—'प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक[1] भिक्षु धर्मवादी है। ।"

"मुझे भी आवुस!० ऐसा होता है—प्राचीनक भिक्षु अधर्मवादी है, पावेयक धर्मवादी।" ।

§३—सङ्गीतिकी-कार्यवाही

(१) उद्वाहिकाका चुनाव

तब उस विवादके निर्णय करनेके लिये सघ एकत्रित हुआ। उस अधिकरणके विनिश्चय (=फैसला) करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते थे, एक भी कथनका अर्थ मालूम नही पळता था। तब आयुष्मान् रेवतने सघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति "भन्ते! सघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते है०। यदि सघको पसन्द हो, तो सघ इस अधिकरणको उ द्वा हि का (=सेलेक्ट कमीटी)मे शान्त करे।"

चार प्राचीनक भिक्षु और चार पावेयक भिक्षु चुने गये। प्राचीनक भिक्षुओमे आयुष्मान् स र्व का मी, आयुष्मान् साढ, आयुष्मान् क्षु द्र शो भि त (=खुज्ज सोभित) और आयुष्मान् वा र्ष भ-ग्रा मि क (=वासभगामिक)। पावेयक[1] भिक्षुओमे आयुष्मान् रे व त, आयुष्मान् स भू त सा ण वा सी, आयुष्मान् य श का क ड पु त्त और आयुष्मान् सु म न। तब आयुष्मान् रेवतने सघको ज्ञापित किया—

ज्ञ प्ति "भन्ते! सघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय अनर्गल बकवाद उत्पन्न होते है०। यदि सघको पसन्द हो, तो सघ चार प्राचीनक (और) चार पावेयक भिक्षुओंकी उद्वाहिका इस विवादको शमन करनेके लिये चुने—यह ज्ञप्ति है।

---

[1]पश्चिमी युक्तप्रान्तवाले।

अ नु श्रा व ण—"भन्ते ! सघ मुझे सुने—हमारे इस विवादके निर्णय करते समय०। सघ चार प्राचीनक और चार पावेयक भिक्षुओकी, उ द्वा हि का से इस विवादको शान्त करनेके लिये चुनता है। जिस आयुष्मान्‌को चार प्राचीनक०, चार पावेयक भिक्षुओकी उद्वाहिकासे इस विवादका शान्त करना पसन्द है, वह चुप रहे, जिसको नही पसन्द है वह बोले।

धा र णा—"सघने मान लिया, सघको पसन्द है, इसलिये चुप है—ऐसा मै इसे समझता हूँ।"

(२) अजित आसन-विज्ञापक हुये

उस समय अजित नामक दशवर्षीय[1] भिक्षु-सघका प्रातिमोक्षोद्देशक (=उपोसथके दिन भिक्षु नियमोकी आवृत्ति करनेवाला) था। सघने आयुष्मान् अजितको ही स्थविर भिक्षुओका आसन-विज्ञापक (=आसन विछानेवाला) स्वीकार किया। तव स्थविर भिक्षुओको यह हुआ—'यह वा लु का रा म रमणीय शब्दरहित=घोष-रहित है, क्यो न हम वालुकाराममे (ही) इस अधिकरणको शान्त करे।'

(३) सङ्गीतिकी कार्यवाही

तव स्थविर भिक्षु उस विवादके निर्णय करनेके लिये वालुकाराम गये। आयुष्मान् रे व त ने सघको ज्ञापित किया—

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यदि सघको पसन्द हो, तो मै आयुष्मान् सर्वकामीको विनय पूछूँ?"

आयुष्मान् सर्वकामीने सघको ज्ञापित किया—

"आवुस सघ ! मुझे सुने—यदि सघको पसन्द हो, तो मै आयुष्मान् रेवत द्वारा पूछे विनयको कहूँ।"

आयुष्मान् रेवतने आयुष्मान् सर्वकामीसे कहा—

(१) "भन्ते ! श्रृगि-लवण-कल्प विहित है?"

"आवुस ! श्रृगि-लवण-कल्प क्या है?" "भन्ते ! सीगमे०।"

"आवुस ! विहित नही है।"

"कहॉ निषेध किया है?"

"श्रावस्तीमे, सुत्त 'विभग'[2]मे।"

"क्या आपत्ति (=दोष) होती है?"

"सन्निधिकारक (=सग्रहीत वस्तु) के भोजन करनेमे 'प्राश्चित्तिक' (=पाचित्तिय)[3]।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह प्रथम वस्तु सघने निर्णय किया। इस प्रकार यह वस्तु धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे वाहरकी है। यह प्रथम शलाकाको छोळता हूँ।"

(२) "भन्ते ! द्वयगुल-कल्प विहित है?"०।०।

"आवुस ! नही विहित है।"

"कहॉ निषिद्ध किया?"

"राजगृहमे, 'सु त्त वि भ ग'[3]मे।"

"क्या आपत्ति होती है?"

---

[1]उपसम्पदा होकर दश वर्षका। [2]पातिमोक्ख-सुत्तकी प्राचीन व्याख्या भिक्षु-भिक्षुणी-विभग ही सुत्त-विभग कहा जाता है। [3]भिक्खुपातिमोक्ख §५।३८ (पृष्ठ २६)।

"विकाल भोजन-विषयक 'पाचित्तिय'[1]की ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह द्वितीय वस्तु सघने निर्णय किया ।०। यह दूसरी शलाका छोळता हूँ ।"

(३) "भन्ते ! 'ग्रामान्तर-कल्प' विहित है ?०।०।

"आवुस नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?"

"श्रा व स्ती मे 'सुत्तविभग'[2]मे ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"अतिरिक्त भोजन विषयक 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—० ।"

(४) "भन्ते ! 'आवास-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषिद्ध किया ?" "राजगृहमे 'उपोसथ-सयुत्त'[3]मे ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय (=भिक्षु-नियम)के अतिक्रमणसे दुक्कट (=दुष्कृत) ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(५) "भन्ते ! 'अनुमति-कल्प' विहित है ?"० ।०। "आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"चा म्पे य क वि न य-व स्तु मे[4] ।"

"क्या आपत्ति होती है ?"

"विनय-अतिक्रमणसे 'दुक्कट' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(६) "भन्ते ! 'आचीर्ण-कल्प' विहित है ?"०।०।

"आवुस ! कोई कोई आचीर्ण-कल्प विहित है, कोई कोई नही ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

(७) "भन्ते 'अमथित-कल्प' विहित है ?" ०।० ।

"आवुस ! नही विहित है ।"

"कहाँ निषेध किया ?"

"श्रा व स्ती मे 'सु त्त-वि भ ग[5] मे' ।"

"क्या आपत्ति है ?"

"अतिरिक्त भोजन करनेमे 'पाचित्तिय' ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने० ।"

---

[1]वही §५।३७(पृष्ठ २६) । [2]वही §५।३५ (पृष्ठ २५) ।

[3]महावग्ग उपोसथ-क्खन्धक (पृष्ठ १३८) ।

[4]चाम्पेय्यस्कन्धक (महावग्ग ९) चम्पेयविनयवस्तु है । सर्वास्तिवादी विनय-पिटकमें महावग्ग और चुल्लवग्गको विनयमहावस्तु और विनयक्षुद्रकवस्तु कहा है ।

[5]भिक्खु-पातिमोक्ख §५।३७ (पृष्ठ २६) ।

(८) "भन्ते ! 'जलोगी-पान' विहित है ?" ०।०।
"आवुस ! नही विहित है।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"कौशाम्बी में, 'सुत्त-विभग'[1] मे।"
"क्या आपत्ति होती है ?"
"सुरा-मेरय पानमे 'पाचित्तिय'।"
"भन्ते ! सघ मुझे सुने०।"

(९) "भन्ते ! 'अदशक-निषीदन' (=बिना मगजीका बिछौना) विहित है ? '
"आवुस ! नही विहित है।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"श्रावस्तीमे 'सुत्त-विभग'मे।"
"क्या आपत्ति होता है ?"
"काट डालनेका 'पाचित्तिय'[2]।"
"भन्ते ! सघ मुझे सुने०।"

(१०) "भन्ते ! 'जातरूप-रजत' (=सोना-चाँदी) विहित है ?"
"आवुस ! नही विहित है।"
"कहाँ निषेध किया ?"
"राजगृहमे 'सुत्त-विभग' मे[3]।"
"क्या आपत्ति है ?"
"जात-रूप-रजत प्रतिग्रहण विषयक 'पाचित्तिय'।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह दसवी वस्तु सघने निर्णय की। इस प्रकार यह वस्तु। धर्म-विरुद्ध, विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है। यह दसवी शलाका छोळता हूँ।"

"भन्ते ! सघ मुझे सुने—यह दश वस्तु, सघने निर्णयकी'। इस प्रकार यह वस्तु धम विनय-विरुद्ध, शास्ताके शासनसे बाहरकी है।"

(सर्वकामी)—"आवुस ! यह विवाद निहत हो गया, शात, उपशात, सु-उप गया। आवुस ! उन भिक्षुओकी जानकारीके लिये (महा-)सघके बीचमे भी मुझे इन दश व पूछना।"

तब आयुष्मान् रेवतने सघके बीचमे भी आयुष्मान् सर्वकामीको यह दस वस्तु पूछनेपर आयुष्मान् सर्वकामीने व्याख्यान किया।

इस विनय-सगीतिमे, न कम, न बेशी सात सौ भिक्षु थे। इसलिये यह विनय-सगीति शतिका' कही जाती है।

बारहवाँ सत्तसतिका क्खन्धक समाप्त ॥१२॥

चुल्लवग्ग समाप्त

---

[1] भिक्खुपातिमोक्ख §५।५१ (पृष्ठ २७)।　[2] वही §५।८९ (पृष्ठ ३१)।
[3] वही §५।८४ (पृष्ठ ३०)।

श्रावस्ती
उत्तर
१००० फुट
रसियानाला
राजमहल
पूर्वद्वार (का हभारी दरवाजा)
(हनुमनवा)
(बाजार दरवाजा)

१—कथा-सूची

(परिशिष्ट १)

२—नाम-अनुक्रमणी

३—शब्द-अनुक्रमणी